954

10.X.42
168
91/86.
954.0

इतिहास-प्रवेश

[भारतीय इतिहास का दिग्दर्शन]

(प्रारम्भिक काल से आज तक)

लेखक

जयचन्द्र विद्यालंकार

सम्पादक

स्वर्गीय डॉक्टर काशीप्रसाद जायसवाल

प्रकाशक

सरस्वती प्रकाशन-मन्दिर,

(Saraswati Publishing House)

इलाहाबाद

१९४२

दूसरा संस्करण]

[मूल्य ~~[illegible]~~ ४)

प्रकाशक—
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर,
जार्ज टाउन, इलाहाबाद

954

मुद्रक—
सुशील चन्द्र वर्मा बी० एस-सी०
सरस्वती प्रेस,
जार्जटाउन, इलाहाबाद

वस्तुकथा

भारतीय पुरातत्व सम्मेलन (ओरियंटल कान्फ़रेन्स) के छठे अधिवेशन के सभापति पद से स्वर्गीय रायबहादुर हीरालाल जी ने कहा था, 'इस समय विशेष कर एक बड़ी आवश्यकता उत्कट रूप से अनुभव होती है, और वह है भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की।'

ये शब्द सन् १९३० में कहे गये थे। उसके नौ बरस पहले मुझे भी इस आवश्यकता ने बेचैन किया था, जिससे सन् १९२१ में मैंने "भारतीय इतिहास की रूपरेखा" लिखनी शुरू की। सन् १९३३ में उसकी १०८० पृष्ठों की पहली दो जिल्दें प्रकाशित हुईं, जिनमें हमारे इतिहास की कहानी सातवाहन युग के अन्त (लगभग २०० ई०) तक पहुँची है। उसी पैमाने पर भारतवर्ष का पूरा इतिहास लिखने के लिए काफ़ी साधनों और सुविधाओं की ज़रूरत थी; पर मेरे पास उनका अत्यन्त अभाव था। उस दशा में मेरे एक मित्र ने मुझे यह सुझाया कि जब तक वे सुविधाएँ मुझे नहीं मिलतीं, मैं भारतीय इतिहास का एक दिग्दर्शन लिख दूँ, जिससे भारतीय दृष्टि के अनुसार भारतीय इतिहास का स्वरूप दुनिया के सामने आ जाय। यह सलाह मुझे जँच गयी, और एप्रिल सन् १९३२ में, जब कि "रूपरेखा" की पाँडुलिपि प्रकाशक के पास थी, मैंने इस छोटी पोथी में हाथ लगा दिया।

रा० ब० हीरालाल के इस कथन में कि आज भारतीय दृष्टि से लिखे हुए एक इतिहास की आवश्यकता है, एक विशेष तत्त्व है। विन्सेंएट स्मिथ के इतिहास की आलोचना करते हुए प्रोफ़ेसर विनयकुमार सरकार ने लिखा था, "स्मिथ ने जिस सामग्री को बरता है, एक भारतीय विद्वान् उसी का उपयोग करता तो एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिल्कुल दूसरी कहानी पेश करता।"* आज १९ बरस बाद प्रोफ़ेसर सरकार की वह भविष्यवाणी सफल हो रही है।

---

* पोलिटिकल साइन्स क्वार्टरली, न्यु यार्क; दिसम्बर १९१९, पृ० ६४७।

डा० हीरालाल ने जिसे "भारतीय दृष्टि" कहा था, उसकी कुछ व्याख्या मैं अपने नागपुर, आरा और शिमला के अभिभाषणों* में कर चुका हूँ। जैसा कि मैंने आरा के अभिभाषण में कहा था, "राष्ट्रीय दृष्टि से अपने इतिहास का मनन करने का यह अर्थ हर्गिज़ नहीं कि हम अपने राष्ट्र की कमज़ोरियों को नज़रअन्दाज़ करें। उल्टा उन्हीं को समझने के लिए हमें अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। और हमीं उन्हें ठीक समझ सकते हैं, क्योंकि अपने इतिहास को समझने के लिए जो अन्तर्दृष्टि हममें हो सकती है वह विदेशियों में नहीं हो सकती।" सर यदुनाथ सरकार ने उसी बात को दूसरे शब्दों में कहा है, "किसी राष्ट्र के अतीत इतिहास के पुनर्ग्रथन में उस राष्ट्र की सन्तानों को ऐसी सुविधाएँ प्राप्त होती हैं जिन्हें कोई भी विदेशी ...... नहीं पा सकता।...राष्ट्रीय इतिहास घटनाओं के वर्णन में सच्चा और उनकी व्याख्या करने में तर्कसंगत होना चाहिए...। वह राष्ट्रीय होगा इस अर्थ में नहीं कि वह हमारे देश के अतीत की किन्हीं लज्जास्पद घटनाओं को छिपाने या लज्जास्पद चरित्रों पर सफ़ेदी पोतने की कोशिश करेगा।"†

इस दृष्टि से अपने इतिहास के पुनर्ग्रथन के कार्य में पिछले ३०-३५ बरस से अनेक भारतीय विद्वान् लगे हुए हैं। भारतीय इतिहास के विभिन्न अंशों या पहलुओं पर उनके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं और उनसे मुझे भरपूर सहायता मिली है। किन्तु मोहनजो दड़ो से मोहनदास गान्धी तक समूचे भारतीय इतिहास को आधुनिक खोज की रोशनी में भारतीय दृष्टि से कहने का काम शायद पहले-पहल मेरे ही हिस्से में पड़ा है।

हमारे इतिहास की धारा में जो अनेक विवाद के भँवर हैं, इस छोटी पोथी में मैंने उनसे भरसक बच कर खेने की कोशिश की है। इसके साथ ही, जहाँ तक बन पड़ा है, मैंने इतिहास के मूल लेखों के शब्दों को उद्धृत किया है। उन उद्धरणों से विद्वान् पाठकों को संकेत मिल जायगा कि कौन सी बात किस आधार पर लिखी गयी है।

---

* इतिहास-परिषद् के सभापति-पद से अभिभाषण, अखिल-भारतीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, नागपुर, २५ एप्रिल १९३६, तथा शिमला, १८ सितम्बर १९३८; बिहार प्रादेशिक हिन्दी साहित्य-सम्मेलन, आरा, २५ दिसम्बर १९३७।

† भारतीय इतिहास परिषद्, आरम्भिक अधिवेशन के सभापति-पद से अभिभाषण; बनारस, ३० दिसम्बर १९३७।

पिछले सात बरस में इस पोथी की तैयारी में मुझे अपने गुरुजनों और मित्रों की सहायता जिस प्रकार मिलती रही है, उसके अनेक प्रसंगों की पर्यालोचना आज अनेक मधुर और करुण स्मृतियों को जगा देती है। मेरे श्रद्धेय गुरु स्व० डा० काशीप्रसाद जायसवाल कैसे स्नेह और चाव से इसकी प्रगति में रुचि लेते और इसके प्रकाशित होने की राह देखते रहे! काश कि आज वे इसे देख पाते! इसके पहले सात प्रकरणों की पांडुलिपि को उन्होंने और श्री राहुल सांकृत्यायन ने ध्यान से पढ़ा और सुधारा था। जायसवालजी के हाथ की लिखी हुई तीन-चार पंक्तियाँ भी इसमें हैं।

पुस्तक के चित्रों के चुनाव और प्रामाणिकता का निश्चय करने में मेरे मित्र राय कृष्णदास जी और डा० मोतीचन्द्र जी ने बड़ी सहायता की है। अधिकांश चित्र वस्तुओं के मूल फोटोग्राफ़ हैं, और उनमें से अनेक खास तौर से इसी पोथी के लिए लिये गये हैं। प्रत्येक चित्र के प्राप्तिस्थान और कापीराइट के स्वत्वाधिकारी का भी उल्लेख किया गया है। जिन चित्रों के नीचे स्वत्वाधिकारी का नाम नहीं दिया गया, वे प्रायः प्रकाशक या लेखक के हैं। बनारस के श्री दुर्गाप्रसाद जी और श्री श्रीनाथ साह का मैं विशेष अनुगृहीत हूँ। उन्होंने न केवल अपने सिक्कों के संग्रहों का मुझे उपयोग करने दिया, प्रत्युत जिन सिक्कों के चित्रों की मुझे ज़रूरत थी, उनके पैरिस-प्लास्टर के ढार स्वयम् तैयार करा के मुझे दे दिये। पुरातत्व-विभाग के चित्र जल्दी प्राप्त करने में भारतीय पुरातत्व-विभाग के विद्वान् अध्यक्ष रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित से जो सहायता मिली है, उसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

नक़्शे तैयार करने में श्री रजनीकान्त दास ने मेरे साथ बैठ कर जो मेहनत की है, उसके लिए वे मेरे धन्यवाद के पात्र हैं।

पुस्तक के प्रकाशक श्री शालिग्राम वर्मा और उनके सहकारियों का हार्दिक सहयोग और श्रम भी उल्लेखनीय हैं।

इस पोथी का उर्दू, अँगरेज़ी और बंगला अनुवाद हो रहा है। अन्य भाषाओं में जो सज्जन अनुवाद करना चाहें, अथवा इसके नक्शों, चित्रों या अन्य सामग्री का किसी भी प्रकार उपयोग करना चाहें, वे लेखक या प्रकाशक से इजाज़त लेना न भूलें।

प्रो॰ बिनयकुमार सरकार, डा॰ हीरालाल और सर यदुनाथ सरकार का भारतीय दृष्टि से लिखे हुए इतिहास से जो अभिप्राय था, यदि उसका इस "इतिहास-प्रवेश" से कुछ आभास मिल सके, यदि इसके द्वारा भारत के नवयुवक अपने "राष्ट्र के आत्मपर्यवेक्षण, आत्मानुचिन्तन, आत्मस्मरण और आत्मानुध्यान"* का रास्ता देख सकें, तो मैं अपने श्रम को सफल मानूँगा।

काशी विद्यापीठ, बनारस
कार्तिक पूर्णिमा, १९९५ वि॰

जयचन्द्र

दूसरे संस्करण की वस्तुकथा

"इतिहास-प्रवेश" का दूसरा संस्करण करते हुए मैं अपने बुज़ुर्ग और मित्र रावबहादुर काशीनाथ नारायण दीक्षित, डा॰ सुनीतिकुमार चटर्जी, राय कृष्णदास, श्री आनन्द कौशल्यायन तथा महाराजकुमार डा॰ रघुवीरसिंह को अनेक धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इसमें सुधार करने की अनेक कीमती सलाहें दी हैं। प्राचीन और पहले मध्य काल की कुछ जगह से अलग मांग थी, इसलिए उतना अंश अलग भी छपवाया जा रहा है।

प्रयाग
१७ भादों १९९७ वि॰
(१--९--१९४०)

जयचन्द्र

---

* नागपुर अभिभाषण, पृ॰ २।

विषय-सूची

पहला प्रकरण—हमारा देश और उसके निवासी

अध्याय १

हमारा देश

१. सीमाएँ,— २. उत्तर भारत का मैदान,— ३. विन्ध्य-मेखला,— ४. दक्खिन,— ५. हिमालय-हिन्दूकुश,— ६. समुद्र,— ७. भौमिक परिस्थिति का जीवन पर प्रभाव, भारतवर्ष की विविधता में एकता,— ८. उत्तर भारत के मुख्य राजपथ,— ९. सीमान्त के रास्ते,— १०. विन्ध्य-मेखला के रास्ते,— ११. दक्खिन के रास्ते,— १२. भू-परिवर्तन । १-१२

अध्याय २

भारतवर्ष के निवासी

१. भारतवर्ष की भाषाएँ,— २. आर्य्य और द्राविड जातियाँ,— ३. किरात जाति,— ४. मुंड या कोल जाति,— ५. भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला । परिशिष्ट १ । १३-१८

अध्याय ३

सभ्यता का विकास और उसका इतिहास जानने के साधन

१. हमारे पुरखों की विरासत,— २. मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ,— ३. सभ्यता के चिन्ह—इतिहास के उपकरण,— ४. भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ । १९-२५

दूसरा प्रकरण—आरम्भिक आर्यों का ज़माना

अध्याय १

राजनीतिक वृत्तान्त

१. पौराणिक ख्यातें,— २. मानव और ऐल वंश,— ३. राजा भरत का वृत्तान्त,— ४. राम दाशरथि,— ५. यादव और कौरव वंश—महाभारत युद्ध । २६-३७

अध्याय २

वैदिक आर्यों का जीवन

१. वेद,— २. वैदिक समाज की बनावट,— ३. वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन,— ४. राज्य-संस्था,— ५. धर्म-कर्म,— ६. सामाजिक जीवन, खान-पान, वेश-भूषा, विनोद आदि। ३८-४३

तीसरा प्रकरण—महाजनपदों का युग

[लगभग १४२५-३६६ ई० पू०]

अध्याय १

ाजनीतिक वृत्तान्त

१. जनपदों का उदय,— २. सोलह महाजनपद,— ३. पारसी साम्राज्य में गान्धार का सम्मिलित होना,— ४. मगध का पहला साम्राज्य,— ५. पांड्य, चोल, केरल और सिंहल राष्ट्रों की स्थापना। ४४-५७

अध्याय २

बुद्ध, महावीर और उनके समय का भारतीय जीवन

१. बुद्ध से ठीक पहले का समाज और धर्म,— २. महावीर और बुद्ध के जीवन और उपदेश,— ३. बुद्ध युग का आर्थिक जीवन,— ४. राज-काज की संस्थाएँ,— ५. सामाजिक जीवन,— ६. बुद्ध-युग का साहित्य। ५८-७१

चौथा प्रकरण—नन्द-मौर्य्य साम्राज्य

[३६६—२११ ई० पू०]

अध्याय १

नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढ़ाई

१. नन्द वंश,—२. अलक्सान्दर की चढ़ाई। ७२-७७

अध्याय २

मौर्य्य साम्राज्य का दिग्विजय युग [३२५-२६२ ई० पू०]

१. चन्द्रगुप्त मौर्य्य और चाणक्य,— २. बिन्दुसार,— ३. अशोक,— ४. मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध। ७७-८५

अध्याय ३

अशोक की धर्म-विजय और पिछले मौर्य्य सम्राट् [२६४—२११ ई० पू०]

१. अशोक के सुधार,— २. धर्म-विजय की नयी नीति,— ३. अशोक की इमारतें,— ४. पिछले मौर्य्य सम्राट्,—५. मौर्य्य भारत की सभ्यता । ८५--९३

पाँचवाँ प्रकरण—सातवाहन-युग

[लगभग २१० ई० पू० से १७६ ई०]

अध्याय १

यवन और शुंग राजा [लगभग २१०—१०० ई० पू०]

१. दक्खिन और कलिंग में सातवाहन और चेदि-वंश,— २. पार्थव और बाख्त्री राज्य,— ३. डिमित, खारवेल, शातकर्णि (१म) और पुष्यमित्र,— ४. यवन राज्य,— ५. गण राज्यों का पुनरुत्थान । ९४–१००

अध्याय २

शक और सातवाहन [लगभग १०० ई० पू० से ७८ ई०]

१. मध्य एशिया में जातियों की उथल-पुथल; कम्बोज-वाह्लीक में 'युचि'-तुखारों का आना,— २. शकों का भारत-प्रवास,— ३. उजैन, मथुरा और पंजाब में शक,— ४. राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि,—५. मालव संवत् या विक्रम संवत् — ६. कन्दहार के पह्लव,—७. सातवाहनों की चरम उन्नति । १००-१०८

अध्याय ३

पैठन और पेशावर के साम्राज्य [७८ ई० से १७६ ई०]

१. तारीम काँठे में चीन और भारत का मिलना,— २. राजा कुषाण,— ३. युचि और सातवाहनों का युद्ध,— ४. देवपुत्र कनिष्क,— ५. कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और पिछले सातवाहन,— ६. तामिल और सिंहल राष्ट्र । १०८-११४

अध्याय ४

बृहत्तर भारत

१. चीन-हिन्द, सुवर्णभूमि और सुवर्ण-द्वीप,— २. चीन और रोम से सम्बन्ध। ११५-११८

अध्याय ५

सातवाहन-युग की समृद्धि और सभ्यता

१. पौराणिक धर्म और महायान,— २. नवीन संस्कृत, प्राकृत और तामिल साहित्य,— ३. सातवाहन शिल्प-कला,— ४. आर्थिक जीवन,— ५. राज-संस्था,— ६. सामाजिक जीवन। ११८-१२७

छठा प्रकरण—नाग वाकाटक और गुप्त साम्राज्य

[लगभग १७६ से ५४० ई०

अध्याय १

भारशिव और वाकाटक साम्राज्य [लगभग १७६—३४० ई०]

१. सातवाहनों के उत्तराधिकारी, —२. भारशिव-नागों का उदय, तुखार साम्राज्य का अन्त,— ३. मालव और यौधेय-गण,— ४. वाकाटक और पल्लव वंश,— ५. सम्राट् प्रवरसेन, ६. कादम्ब और गुप्त राज्यों का उदय। १२८-१३३

अध्याय २

गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष [लगभग ३४०—४५५ ई०]

१. दिग्विजयी समुद्रगुप्त,— २. चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य,— ३. रानी प्रभावती, — ४. कुमार-गुप्त (१म),— ५. मध्य एशिया में हूण और गान्धार में किदार वंश। १३३-१४०

अध्याय ३

गुप्त साम्राज्य. हूण और यशोधर्मा [लगभग ४५५—५४० ई०]

१. सम्राट् स्कन्द-गुप्त,— २. बुध-गुप्त और भानु-गुप्त,— ३. गान्धार में हूण; तोरमाण और मिहिरकुल,— ४. यशोधर्मा। १४१-१४८

अध्याय ४

वाकाटक-गुप्त-युग का भारतवर्ष

१. गुप्त सुशासन और समृद्धि,— २. ग्रामों और जनपदों के सङ्घ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, व्यापारियों के निगम,— ३. वाकाटक-गुप्त-युग का बृहत्तर भारत,— ४. फ़ाहियेन, कुमारजीव और गुणवर्मा,— ५. नाग-वाकाटक-गुप्त-युग का धर्म, कला, साहित्य, ज्ञान और संस्कृति। १४५-१५८

सातवाँ प्रकरण—कन्नौज और कर्णाटक के साम्राज्य

[५४०—११९० ई०]

अध्याय १

पिछले गुप्त, मौखरि, बैस और चालुक्य राज्य [लगभग ५४०—६९६ ई०]

१. पिछले गुप्त और मौखरि,— २. चालुक्य और पल्लव,— ३. कुरुक्षेत्र का प्रभाकरवर्धन,— ४. रानी राज्यश्री,— ५. हर्ष-वर्धन,— ६. पुलकेशी और विक्रमादित्य चालुक्य; पल्लव महेन्द्र-वर्मा और नरसिंहवर्मा,— ७. आदित्यसेन और विनयादित्य,— ८. नेपाल, कश्मीर के राज्य,— ९. मध्य एशिया में तुर्कों का प्रवेश और दमन,— १०. तिब्बत का उत्थान,— ११. कम्बुज राष्ट्र और शैलेन्द्र साम्राज्य। १५९-१७१

अध्याय २

इस्लाम का उदय और भारतवर्ष में प्रवेश [लगभग ६२०—७९० ई०]

१. हज़रत मुहम्मद,— २. ख़िलाफ़त का विस्तार,— ३. भारत के सीमान्त पर हमले,— ४. सिन्ध-विजय,— ५. सिन्ध का अरब राज्य,— ६. कन्नौज का राजा यशोवर्मा; गुप्त राजवंश का अन्त,— ७. मध्य एशिया में तिब्बत, अरब और चीन की कश-मकश; राजा ललितादित्य,— ८. ख़िलाफ़त की सभ्यता। १७२-१७८

अध्याय ३

पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट [लगभग ७५०—९९५ ई०]

१. कन्नौज साम्राज्य की अवनति,— २. पाल, गंग, राष्ट्रकूट और

प्रतिहार राज्यों का उदय,— ३. धर्मपाल, नागभट (२य) और गोविन्द,— ४. अमोघवर्ष और कृष्ण; मिहिर भोज और महेन्द्रपाल,— ५. चोल, कश्मीर और ओहिन्द के नये राज्य,— ६. दूसरे कन्नौज साम्राज्य की अवनति,— ७. चेदि, जझौती, मालवा, गुजरात, राजपूताना, पंजाब और महाराष्ट्र के नये राज्य। १७६-१८६

अध्याय ४

गज़नी और तांजोर के साम्राज्य [६८५—१०४५ ई०]

१. तुर्कों का फिर बढ़ना,— २. सुबुक्-तगीन,— ३. महमूद गज़नवी,— ४. महमूद का चरित्र,— ५. राजराज और राजेन्द्र चोल। १८६-१६५

अध्याय ५

पहले मध्य काल के अन्तिम राज्य [लगभग १०१०—११६४ ई०]

१. महमूद के वंशज,— २. राजा भोज, गांगेयदेव और कर्ण, ३. कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड्वाल,— ४. राजेन्द्र चोल के वंशज,— ५. कर्णाटक की प्रधानता; सेन और कर्णाट वंश,— ६. गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चौहान,—७. गाहड्वाल वंश, ११००-११६४ ई०,— ८. धोरसमुद्र और ओरंगल राज्य,—६. देवगिरि के यादव १६५-१६८

अध्याय ६

पहले मध्य काल की सभ्यता

१. बौद्ध धर्म की अवनति, वज्रयान,— २. शंकराचार्य,— ३. पौराणिक धर्म की अवनति, मूर्तिपूजा और भक्ति-मार्ग,— ४. ललित कला,— ५. विद्या और साहित्य,— ६. देशी भाषाएं,—७. सामुद्रिक जीवन और परला हिन्द,—८. राजनीतिक और आर्थिक जीवन,— ६. सामाजिक जीवन, जात-पाँत। १६६-२१५

आठवाँ प्रकरण—दिल्ली की पहली सल्तनत

[११९४—१५०९ ई०]

अध्याय १

दिल्ली और लखनौती में मुस्लिम राज्य की स्थापना [११७५—१२०६ ई०]—

१. शहाबुद्दीन ग़ोरी के आरम्भिक प्रयत्न,—२. अजमेर और दिल्ली का पतन,—३. बिहार-बंगाल में तुर्क सल्तनत,—४. विन्ध्य और हिमालय की तरफ़ बढ़ने की विफल चेष्टाएँ,— २१६-२२८

अध्याय २

दिल्ली की पहली सल्तनत—गुलाम वंश [१२०६—१२९० ई०]—

१. कुतुबुद्दीन ऐबक,— २. इल्तुतमिश,— ३, मंगोलों का आतंक,—४. जझौती और मालवा पर चढ़ाइयाँ—५. सुल्ताना, रज़िया,—६. नासिरुद्दीन और बलबन,—७. तेरहवीं शती के हिन्दू राज्य,— २२८-२३८

अध्याय ३

मंगोलों का विश्व-साम्राज्य [१२१९—१३७० ई०]

१. मंगोल साम्राज्य का विस्तार.—२. परले हिन्द और आसाम में चीन किरात जातियों का आना,—३. संसार की सभ्यता को मंगोलों की देन,— २३८-२३३

अध्याय ४

दिल्ली साम्राज्य का चरम उत्कर्ष [१२९०—१३२५ ई०]

१. जलालुद्दीन ख़िलजी —मालवा की विजय,— २. अलाउद्दीन ख़िलजी—गुजरात, राजपूताना और दक्खिन की विजय,— ३. अलाउद्दीन का शासन,—४. लखनौती सल्तनत का विस्तार,—५. ख़िलजी वंश का अन्त—६. गयासुद्दीन तुग़लक़—७. दिल्ली साम्राज्य की सीमाएँ,—२३३-२४१

अध्याय ५

दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यों का उदय [१३२५—९८ ई०]

१. मुहम्मद तुग़लक,—२. मेवाड़, कर्णाटक और तेलंगण का स्वतन्त्र होना,—३. बंगाल, कश्मीर और महाराष्ट्र की नयी सल्तनतें,—४. फ़ीरोज़ तुग़लक,—५. इलियासशाह और गणेश्वर,—६. सिन्ध के जाम,—७. दक्खिनी रियासतें,—८. तैमूर की चढ़ाई,—९. प्रादेशिक राज्यों का युग.— २४१-२५०

अध्याय ६

पिछले मध्य युग के प्रादेशिक राज्य [१३९८--१५१० ई०]

१. मेवाड़, (१३८२-१४३३),—२. राजा गणेश और शिवसिंह,—३. इब्राहीम शर्क़ी,—४. हुशंग गोरी और अहमदशाह गुजराती,—५. उत्तर-पच्छिमी प्रान्त (१३९८-१४५० ई०)—जसरथ खोकर और ज़ैनुलआबिदीन,—६. बुन्देलखंड, बघेलखंड, छत्तीसगढ़ और गोंडवाना,—७. फीरोज़ और अहमद बहमनी.—८. कुम्भा और महमूद खिलजी,—९. कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम—पूरबी और दक्खिनी भारत (१४३५-१५०९ ई०),—१०. बहलोल लोदी और दिल्ली की नयी सल्तनत,—११. महमूद बेगड़ा,—१२. हुसेनशाह बंगाली और सिकन्दर लोदी,—१३. हिन्द महासागर पर पुर्तगालियों का अधिकार होना,— २५१-२५७

अध्याय ७

पिछले मध्य-काल का भारतीय जीवन—

१.हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण,—२. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना,—३. भारतीय उपनिवेशों का अन्त,—४. सामन्त शासन-प्रणाली और जागीर पद्धति,—५. सामाजिक जीवन—जात-पाँत, परदा और बाल-विवाह,—६. धार्मिक जीवन (अ) तौहीद और मूर्त्तिपूजा—(इ) जड़पूजा, वाम मार्ग और अन्धविश्वास—(उ) सन्त और सूफी सुधारक सम्प्रदाय—(ऋ) भारतीय इस्लाम,—७. शिल्प कला,—८. साहित्य-मध्यकाल का ज्ञान, और अर्वाचीन काल का आरम्भ,— २५७-२७९

नवाँ प्रकरण—मुग़ल साम्राज्य

[१५०९-१७२० ई०]

अध्याय १

साम्राज्य के लिए पहली जद्दोजहद [१५०९—१५३० ई०]

१. राणा साँगा—पच्छिमी मंडल की राजनीतिक जद्दोजहद,—२. कृष्णदेवराय—दक्खिनी मंडल की राजनीतिक जद्दोजहद,—३. बाबर का पूर्व चरित (१४९४-१५१२ ई०)--उत्तरी मंडल में राजनीतिक कशमकश—(अ) तुर्किस्तान—(इ) काबुल—(उ) उज़बग –(ऋ) बाबर की पंजाब पर चढ़ाइयाँ,—४. दिल्ली और पूरब की राजनीति,—५. उत्तर भारत का सम्राट् बाबर (१५२६-३० ई०) (अ) पंजाब और पानीपत—(इ) हिन्दुस्तान—(उ) खानवा का युद्ध—(ऋ) राजपूताना—मालवा—(लृ) पूरब के प्रदेश— २७९-२८९

अध्याय २

साम्राज्य के लिए दूसरी जद्दोजहद और सूर साम्राज्य [१५३०—१५५४ ई०]

१. बादशाह हुमायूँ—पहली परिस्थिति,— २. बहादुरशाह गुजराती,— ३. हुमायूँ का मालवा, गुजरात जीतना,— ४. पुर्तगालियों का तट-राज्य,— ५. बिहार का बेताज बादशाह शेरखाँ,— ६. शेरखाँ का बंगाल जीतना,— ७. हुमायूँ की शेरखाँ पर चढ़ाई और बंगाल जीतना,— ८. बंगाल और जोनपुर का बादशाह शेरशाह,— ९. शेरशाह का हिन्दुस्तान और पंजाब जीतना,— १०. राजपूताना और मालवा में मालदेव का प्रबल होना,— ११. शेरशाह की साम्राज्य-वृद्धि (अ) मालवा—(इ) पूरबी मालवा और मुलतान-सक्खर—(उ) राजपूताना (ऋ) बुन्देलखंड,— १२, शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य,— १३. शेरशाह की शासन-व्यवस्था,— १४. इस्लामशाह सूर (१५४५-५४ ई०),— २९०-३०२

अध्याय ३

साम्राज्य के लिए तीसरी जद्दोजहद [१५५४—७६ ई०]

१. हुमायूँ की वापिसी—(१५५५ ई०),— २. अकबर का राज पाना; सूर साम्राज्य का अन्त (१५५६-५८ ई०),— ३. अन्य भारतीय राज्य (१५४२-५८ ई०),— ४. मालवा, उत्तरी राजपूताना और गोंडवाना की विजय (१५६०-६४ ई०),— ५. अकबर के पहले सुधार,— ६. विजयनगर का पतन (१५६५ ई०),— ७. मेवाड़ और उड़ीसा का पतन,— ८. गुजरात और बंगाल पर विजय (१५७२-७६ ई०),—३०२-३०९

अध्याय ४

मुग़ल साम्राज्य का वैभव [१५७६—१६६६ ई०]

१. अकबर की शासन व्यवस्था,— २. अकबर की धर्मसम्बन्धी नीति,— ३. अकबर के पिछले युद्ध और विजय,— ४. अकबर-युग में साहित्य और कला,— ५. जहाँगीर बादशाह,— ६. मेवाड़, बुन्देलखंड, बंगाल, दक्खिन और काँगड़ा,— ७. अराकानी और पुर्तगाली,— ८. भारतीय समुद्र में ओलन्देज़, अँगरेज़ और फ्रान्सीसी,— ९. क़न्दहार का पतन तथा शाहजहाँ और महाबतख़ाँ के विद्रोह,— १०. शाहजहाँ बादशाह,— ११. बुन्देलों से युद्ध; सिक्खों और जाटों के विद्रोह,— १२. दक्खिन (१६२८-४५ ई०),— १३. क़न्दहार, बलख़, बदख़्शाँ (१६३७-५३ ई०),— १४. शाहजहाँ के शासन-काल में पुर्तगाली, ओलन्देज़ और अँगरेज़,— १५. शिवाजी का उदय और दक्खिन की राजनीति (१६४६-५८ ई०),— १६. मुग़ल साम्राज्य का वैभव,— १७. मुग़लों का भ्रातृ-युद्ध (१६५८-६० ई०),— १८. औरंगज़ेब बादशाह, आरम्भिक शान्ति-स्थापना (१६५९-६१ ई०),— १९. शिवाजी के ख़िलाफ़ अफ़ज़लख़ाँ और शाइस्ताख़ाँ; सूरत की लूट (१६५८-६४ ई०),— २०. आसाम और चटगाँव की विजय (१६६०-६६ ई०),— २१. पुरन्दर की सन्धि; शिवाजी का क़ैद होना और भागना (१६६५-६६ ई०),— ३०९-३३३

अध्याय ५

मुग़ल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार [१६६७—१७२० ई०]

१. सीमान्तों पर अशान्ति,— २. शिवाजी की शासन व्यवस्था,— ३. औरंगज़ेब की हिन्दू विरोधी नीति,— ४. शिवाजी का पिछला चरित,— ५. उत्तर भारत में हिन्दुओं के विद्रोह (१६६९-७९ ई०),— ६. छत्रसाल का उदय (१६७१-७९ ई०),— ७. राजपूत युद्ध (१६७९-८१ ई०),— ८. मुग़ल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार,— ९. महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध (१६९०-१७०७ ई०),— १०. उत्तर भारत में हिन्दुओं का उठना (१६८१-१७०७ ई०),— ११. औरंगज़ेब के समय में फ़िरंगी व्यापारी डकैत,— १२. बहादुरशाह और उसकी सुलह की नीति,—१३. बन्दा वैरागी और सिक्खों का विद्रोह (१७१० ई०),— १४. फर्रुखसियर और सैयद बन्धु,— १५. मराठों का गृह-युद्ध (१७०८-१३ ई०),— १६. राजपूतों, सिक्खों और जाटों से युद्ध (१७१२-१८ ई०),— १७. हुसेनअली की दिल्ली पर चढ़ाई और फर्रुखसियर का अन्त,— १८. निज़ाम का दक्खिन भागना और सैयदों का पतन (१७२० ई०),— १९. अँगरेज़ों की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति (१७०१-१८ ई०),— ३३३-३६०

दसवाँ प्रकरण—मराठा प्रमुखता

[१७२०·१७६६ ई०]

अध्याय १

पेशवा बाजीराव (१७२०—४० ई०)

१. मुहम्मदशाह—बुन्देलों, जाटों और राजपूतों से युद्ध (१७२०-२४ ई०),— २. बाजीराव की तैयारी (१७२०-२४ ई०),—३. निज़ाम का स्वतन्त्र होना; गुजरात, कर्णाटक, मालवा और बुन्देलखंड में युद्ध (१७२४-२८ ई०),— ४. बाजीराव की पहली विजयें (१७२८-३० ई०),— ५. गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड में मराठों की स्थापना (१७३१-३३ ई०),— ६. उत्तर भारत पर मराठों की चढ़ाई (१७३४-३६ ई०), —७. बाजीराव की दिल्ली पर चढ़ाई (१७३७-३८ ई०),--८. अँगरेज़ और आँग्रे;

पुर्तगालियों से युद्ध (१७२१-३६ ई०),—९. नादिरशाह की चढ़ाई (१७३८-३६ ई०),—१०. बाजीराव का अन्त,— ३६०-३७१

अध्याय २

पेशवा बालाजीराव [१७४०—६१ ई०]

१. तामिलनाड और बंगाल पर चढ़ाइयाँ (१७४०-४३ ई०),—२. उड़ीसा पर दखल, बंगाल-बिहार पर आधिपत्य,—३. राजपूताना और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े (१७४३-५२ ई०),—४. उत्तर भारत में अफ़ग़ान और मराठे,—५. दक्खिन में फ्रान्सीसी और अँगरेज़ी शक्ति का उदय (१७४४-५२ ई०),—६. उत्तर और दक्खिन भारत पर चढ़ाइयाँ (१७५३-५६ ई०)—(अ) उत्तर भारत—(इ) दक्खिन भारत,—७. अब्दाली की दिल्ली-मथुरा चढ़ाई; अँगरेज़ों का बंगाल-बिहार तथा मराठों का पंजाब जीतना (१७५६-५८ ई०),—८. फ़्रान्सीसी शक्ति का अन्त तथा निज़ामअली का पराभव (१७५८-६१ ई०),—९. मराठा-अफ़ग़ान-संघर्ष (१७५९-६१ ई०),— ३७२-४०२

अध्याय ३

पेशवा माधवराव [१७६१-७२ ई०]

१. मराठा साम्राज्य की कठिनाइयाँ (१७६१-६३ ई०),—२. पठानों तथा सिक्खों-जाटों का संघर्ष; सिक्ख राज्य की स्थापना (१७६१-६७ ई०,)—३. बंगाल-बिहार, आन्ध्रतट और तामिलनाड में अँगरेज़ी राज्य की स्थापना (१७६०-६७ ई०),—४. हैदरअली (१७६१-६९ ई०),—५. नेपाल में गोरखा राज्य की स्थापना,— ६. साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न (१७६९-७२ ई०).— ७. बिहार और बंगाल में दुराज और दुर्भिक्ष; रेग्युलेटिंग ऐक्ट (१७६७-७३ ई०),— ४०२-४१५

अध्याय ४

नाना फडनीस [१७७२—१७९९ ई०]

१. बिहार-बंगाल में अँगरेज़ी शासन की स्थापना,—२. पेशवा नारायणराव और राघोबा; बारा भाई की समिति (१७७२-७५ ई०),—

३. अवध और रुहेलखंड पर ब्रिटिश आधिपत्य (१७७४-७५ ई०)—४. पहला अँगरेज़ मराठा युद्ध (१७७५-८४ ई०) (अ) पुरन्दर की सन्धि तक—(इ) वडगाँव का ठहराव और गौडर्ड का प्रयाण—(उ) त म संगठित युद्ध (१७८०-८१ ई०) (ऋ) साल्बाई और मंगलूर की सन्धियाँ (१७८२-८४ ई०),—५. पिट का इंडिया ऐक्ट तथा कार्नवालिस का शासन,—६. नेपालियों का पहाड़ी साम्राज्य (१७७८-९२ई०),—७. उत्तर भारत में महादजी शिन्दे (१७८२-९२ ई०),—८. टीपू से युद्ध (१७८५-९२ ई०),—९. मराठों की अन्तिम सफलता (१७९२-९५ ई०),—१०. मराठा साम्राज्य की दुर्दशा (१७९५-९९ ई०),— ४१५-४२९

अध्याय ५

अठारहवीं शती का भारतीय समाज

१. हिन्दू पुनरुत्थान,—२. साहित्य और कला,—३. जनता का सुख-दुःख, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन,—४. ज्ञान-जागृति का अभाव,—५. इंगलैंड में व्यावसायिक क्रान्ति,— ४३०-४४३

ग्यारहवाँ प्रकरण—अँगरेज़ी राज्य

[१७९९—]

अध्याय १

भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना [सन् १७९८-१८२७ ई०]

१. ज़मानशाह और नैपोलियन का आतंक,—२. हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश प्रभुता की स्थापना,—३. ज़मानशाह की चढ़ाई,—४. तामिलनाड और रुहेलखंड पर ब्रिटिश दखल,—५. गायकवाड़ और पेशवा का ब्रिटिश रक्षा में आना,—६. दूसरा मराठा युद्ध (१८०३ ई०),—७. होलकर से युद्ध (१८०४-५ ई०),—८. मराठा राज्यों की अवनति,—९. उत्तर-पच्छिमी सन्धियाँ (१) ईरान, (२) अफ़ग़ानिस्तान, (३) सिन्ध,— १०. रणजीतसिंह का उदय और उसकी रोक-थाम,—११. भारतीय समुद्र पर एकाधिपत्य,—१२. भारत में ब्रिटेन की औप-

निवेशिक नीति,—१३. नेपाल-युद्ध (१८१४-१६ ई०),—१४. पेंढारी तथा तीसरा मराठा युद्ध (१८१७-१९ ई०),—१५. पहला बरमा युद्ध (१८२४-२६),—१६. रणजीतसिंह का सेना-संगठन और राज्य-बृद्धि (१८०९-२७ ई०)। ४४४-४६९

अध्याय २

अँगरेज़ी शासन का संगठन [१७९९–१८३६ ई०]

१. मुनरो, एल्फिन्स्टन, मालकम, मेटकाफ़ और वेण्टिंक का कार्य,—२. मद्रास और मुम्बई का रैयतवारी बन्दोबस्त,—३. ग्राम्य पंचायतें और अँगरेज़ी शासन-योजना,—४. उत्तर भारत का महालवारी बन्दोबस्त,—५. नमक और अफ़ीम का एकाधिकार,—६. शिक्षा, क़ानून और अन्य सुधार,—७. वेण्टिंक के समय की राजनीतिक घटनाएँ। ४६९-४७७

अध्याय ३

उत्तर-पच्छिमी सीमान्त की ओर बढ़ना [१८३०–१८४६ ई०]

१. मध्य एशिया में रूसी और अँगरेज़ी अग्रदूत,—२. सिन्धु नौचालन-योजना,—३. बर्न्स की मध्य एशिया-यात्रा,—४. सिक्ख राज्य का दक्खिन और पच्छिम से घेरा जाना,—(अ) शाह शुजा की अफ़ग़ानिस्तान पर दूसरी चढ़ाई (१८३३-३५ ई०),—(इ) सिन्ध, के लिए स्पर्द्धा (१८३५-३७ ई०),—(उ) सिक्ख-अफ़ग़ान युद्ध (१८३५-३७ ई०),—(ऋ) काबुल में अँगरेज़ 'वाणिज्य-दूत,'—(ऌ) सिक्खों का लदाख जीतना,—५. त्रिपक्ष सन्धि,—६. अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई,—७. कुमार नौनिहालसिंह,—८. सिक्ख सेना की शक्ति का उदय,—९. अफ़ग़ानों का विद्रोह,—१०. चीन से युद्ध,—११. अफ़ग़ान युद्ध का अन्त,—१२ सिन्ध पर दखल,—१३. ग्वालियर का अन्तिम पराभव,—१४. पंजाब में सेना का राज्य और उसके ख़िलाफ़ तैयारी,—१५. सतलज की लड़ाइयाँ,—१६. कोट की हत्याएँ। ४७७-४९९

अध्याय ४

खंडहरों की सफ़ाई

१. खंडहरों की सफ़ाई,—२. दूसरा सिक्ख युद्ध (१८४८-४९ ई०),—३. दूसरा बरमा युद्ध,—४. ज़ब्तियाँ और दखल। ४९९-५०३

अध्याय ५

स्वाधीनता का विफल युद्ध

१. स्वाधीनता-युद्ध का आयोजन,—२. मंगल पाँडे और मेरठ का बलवा,—३. दबाने की पहली चेष्टाएँ—४. विप्लव का चौमुखी फूटना (१) अन्तर्वेद और अवध (२) बिहार-बंगाल (३) विन्ध्य-मेखला (४) पंजाब और नेपाल (५) दक्खिन.—५. इलाहाबाद और कानपुर का पतन,—६. दिल्ली का पतन.—७. लखनऊ और झाँसी का पतन,—८. अवध, रुहेलखंड और विन्ध्य-मेखला में पिछली कशमकश। ५०३-५२०

अध्याय ६

कम्पनी-राज्य में भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा

१. कम्पनी के शासन में भारतीय किसानों की हालत,—२. शिल्प का ह्रास,—३. खिराज और राष्ट्रीय ऋण,—४. गोरे प्लाण्टर तथा भारतीय कुली,—५. नमक का एकाधिकार,—६. नहरें और रेल-पथ,—७. भारत-विषयक अध्ययन का उदय,—८. शिक्षा और सामाजिक दशा,—९. ब्रिटिश सरकार का कम्पनी से भारत को ख़रीदना। ५२०-५२८

अध्याय ७

महारानी का राज (१८५८–१८७६ ई०)

१. ग़दर के कारण शासन-नीति में परिवर्तन,—२. वहाबी और कूका विद्रोह,—३. कृषक-अधिकार-क़ानून तथा प्रान्तीय अर्थ-नीति,—४. सीमा पार की घटनाएँ,—५. भारत ब्रिटिश पूँजीशाही के शिकंजे में। ५२९-५३६

अध्याय ८

सम्राज्ञी का राज (१८७६–१९०१ ई०)

१. युरोप की विश्वप्रभुता,—२. दूसरा अफ़ग़ान युद्ध,—३.— मिस्र पर ब्रिटिश नियन्त्रण,—४. भारतीय जागरण का आरम्भ,—५. स्थानीय स्वशासन, कृषक अधिकार-क़ानून तथा इल्बर्ट बिल,—६. रूस से सीमा-निर्णय,—७. उत्तरी बरमा का जीता जाना,—८. सीमान्तों पर अग्रसर नीति,—९. भारत में ब्रिटिश अर्थनीति १८७६-१९०१ ई०,—१०. जनता में असन्तोष,—११. भारत द्वारा अँगरेज़ी साम्राज्य-साधना। ५३७-५५३

अध्याय ९

हमारा ज़माना (१९०१-)—

१. फ़ारिस-खाड़ी और तिब्बत में हस्तक्षेप,—२. कर्ज़न के अन्यकार्य, बंग-भंग,—३. स्वदेशी आन्दोलन,—४. आँग्ल-रूसी समझौता,—५. मौर्ली-मिण्टो सुधार,—६. बंग-भंग का रद्द होना,—७. तिब्बत पर आधिपत्य,—८. विश्वव्यापी युद्ध,—९. विप्लव की चेष्टाएँ,—१०. भारत में युद्धकालीन परिवर्तन,—११. मौण्टेंगू चेम्सफोर्ड सुधार और राउलट कानून,—१२. अफ़ग़ानिस्तान का स्वतन्त्र होना,—१३. असहयोग और खिलाफ़त आन्दोलन,—१४. असहयोग और क्रान्ति आन्दोलनों की प्रतिक्रिया,—१५. पहला सत्याग्रह युद्ध, (अ) पहली मुहिम, (इ) गान्धी-इर्विन समझौता, (उ) दूसरी मुहिम,—१६. भारतीय संघ के विभिन्न आदर्शों का संघर्ष,—१७. सिंहावलोकन। ५५३-५९०

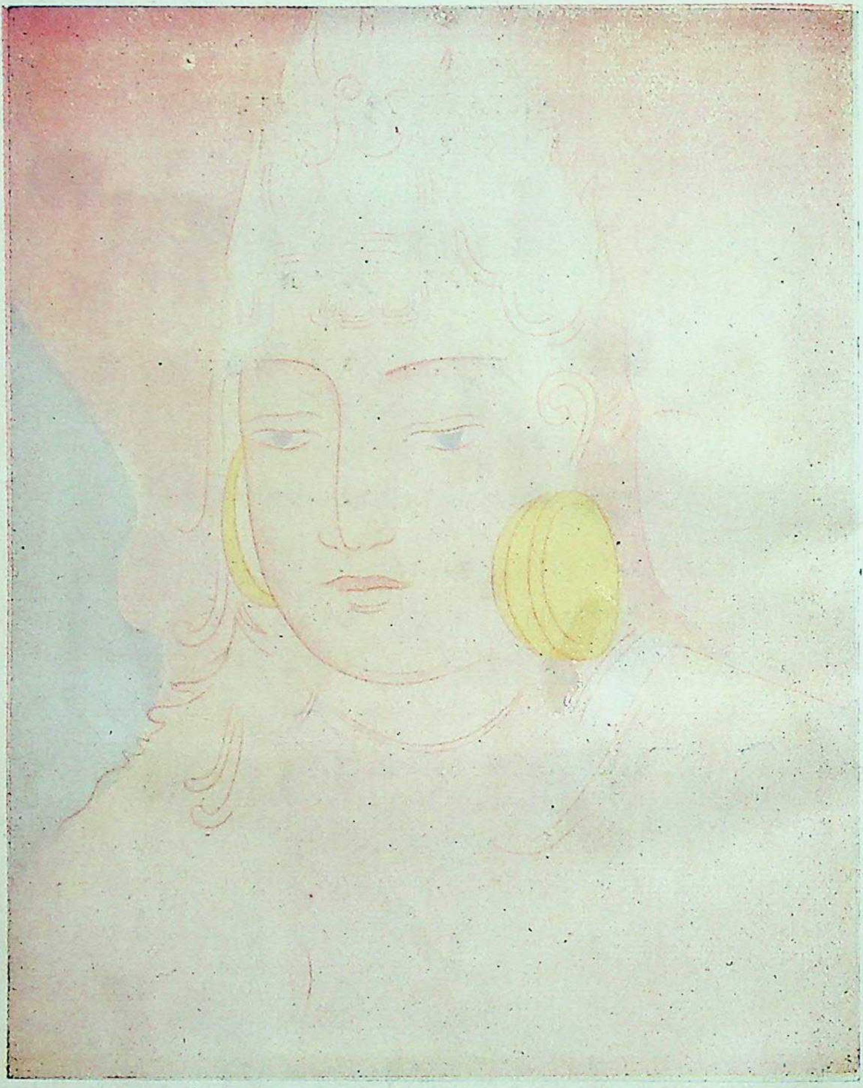

सित्तनवासल की गुफा में महेन्द्र वर्मा का समकालीन चित्र

(एक आधुनिक चित्रकार द्वारा प्रतिलिपि)

[राय कृष्णदास के सौजन्य से]

[राजा की बायीं तरफ़ रानी का चित्र है, जिसकी मुख-रेखा मात्र इस प्रतिलिपि में आयी है ।]

इतिहास-प्रवेश

पहला प्रकरण

हमारा देश और उसके निवासी

अध्याय १

हमारा देश

§१. **सीमाएँ**—प्रकृति ने हमारे देश भारत की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट हदबन्दी कर दी है। संसार भर में सबसे ऊँचा पर्वत हिमालय उसके उत्तर लगातार चला गया है। उत्तर-पच्छिम तरफ़ पामीर और हिन्दूकुश पहाड़ तथा अफ़गानिस्तान और क़लात पठार, और उत्तर-पूरब तरफ़ नामकिउ, पतकोई, नागा और लुशाई के पहाड़ हिमालय के साथ मिल कर हमारे देश का परकोटा बनाते हैं। पूरब, दक्खिन और पच्छिम की बाक़ी आधी चौहद्दी समुद्र ने पूरी की है।

§२. **उत्तर भारत का मैदान**—हिमालय और पूरबी पच्छिमी समुद्र के बीच, उत्तर भारत का खुला और विस्तृत मैदान है। हिमालय से उतरने वाला सब पानी इस मैदान को सींचता हुआ समुद्र में बह जाता है। उस पानी के दो प्रस्रवण-क्षेत्र यानी बहाव के रास्ते हैं। सिन्ध का पानी हिमालय से निकल कर दक्खिन-पच्छिम बह जाता है; गंगा के पानी का रुख़ दक्खिन-पूरब है।

उत्तर भारत की बरखा अधिकतर पुरवा चलने पर होती है। पुरवा जिन बादलों को लाती है वे बंगाल की खाड़ी से उठने वाली भाप के बने होते हैं। इससे उन बादलों का ज़ोर गंगा के काँठे* पर अधिक होता है, सिन्ध के काँठे में कम रह जाता

---

* काँठा = मैदान में किसी नदी के दोनों तरफ़ की भूमि। किसी नदी का काँठा यदि पहाड़ में घिरा हो तो उसे दून (द्रोणी) कहते हैं। अँगरेज़ी में दोनों के लिए व्हैली शब्द है।

है। इसी कारण गंगा का काँठा सिन्ध के काँठा से अधिक हरा-भरा और आबाद है। यह दुनिया भर के सब से अधिक उपजाऊ और आबाद प्रदेशों में से एक है।

सिन्ध और गंगा के पानी का रुख एक तरफ नहीं है। इससे प्रकट है कि दोनों के बीच एक ऊँचा पनढाल है, जिसके कारण सतलज और जमना एक दूसरे से हटती गयी हैं। नदियों के काँठों की उपजाऊ ज़मीन को 'खादर' कहते हैं और नदियों की पहुँच से बची सूखी ऊँची ज़मीन को 'बाँगर'। सतलज के खादर को जमना के खादर से ऊपर तो कुरुक्षेत्र का बाँगर अलग करता है, और नीचे जा कर उन दोनों के बीच राजपूताने के पहाड़ और जंगल तथा थर की मरुभूमि आ गयी है। सिन्ध के काँठे से गंगा के काँठे तक जाना हो तो इस थर और इन पहाड़ी जंगलों को लाँघना बहुत कठिन होता है। उनके बीच एकमात्र सुगम रास्ता कुरुक्षेत्र-पानीपत के तंग बाँगर में से ही है। इसी कारण यह बाँगर सिन्ध और गंगा के काँठों के बीच एक भारी नाका है। भारतवर्ष के इतिहास की अनेक भाग्य-निर्णायक लड़ाइयाँ इसी बाँगर में हुई हैं।

नक्शे पर देखने से सिन्ध और गंगा के काँठों के कई स्पष्ट हिस्से दिखायी पड़ते हैं। सिन्ध नदी ने ऊपर जहाँ अपनी पाँचों बाहें फैला रक्खी हैं वह पंजाब है। जहाँ उसका समूचा पानी सिमट कर एक धारा में आ गया है वह सिन्ध प्रान्त कहलाता है। गंगा-जमना का रुख शुरू में जहाँ दक्खिन-पूरब है, वही ठेठ हिन्दुस्तान या अन्तर्वेद है। बीच में जहाँ गंगा लगभग सीधी पूरब बहती है वह बिचला गंगा का काँठा बिहार कहलाता है। फिर जहाँ गंगा ने समुद्र की तरफ़ मुँह फेर कर अपनी बाहें फैला दी हैं और ब्रह्मपुत्र भी उसमें आ मिली है वह बंगाल प्रान्त है। ब्रह्मपुत्र का उपरला अकेला काँठा आसाम है।

§३. **विन्ध्य-मेखला**—जमुना और गंगा में बहुत नदियाँ दक्खिन तरफ़ से भी आ मिलती हैं। इन नदियों का निकास ज़मीन के उठान को सूचित करता है। गंगा के काँठे के दक्खिन यह जो उठान लगातार चला गया है, वह विन्ध्याचल की शृंखला या विन्ध्य-मेखला के कारण है। राजपूताने का प्रसिद्ध पहाड़ आड़ावला* तथा नर्मदा और तापी (ताप्ती) के बीच का सातपुड़ा पहाड़ भी विन्ध्य-मेखला के ही बढ़ाव हैं। उस मेखला के उत्तरी अंचल को बनास, चम्बल, बेतवा, केन, सोन

---

* अँगरेज़ी में इसे 'आड़ावली' लिखते हैं, जिसे अशुद्ध पढ़ कर लोगों ने 'अरवली' बना डाला है।

आदि नदियाँ धोती हैं। पच्छिमी अंचल को लूनी, साबरमती और मही; दक्खिनी अंचल को नर्मदा, तापी, वर्धा, वेणगंगा, महानदी और वैतरणी; तथा पूरबी अंचल को सुवर्णरेखा और दामोदर। इन नदियों के बीच आबू से पारसनाथ पहाड़ तक विन्ध्य-मेखला है।

इस मेखला के कई स्पष्ट टुकड़े हैं। पच्छिम से पूरब चलें तो सबसे पहले गुजरात-काठियावाड़ का हरा-भरा मैदान है जो विन्ध्य-मेखला की बगल में रह जाता है। उसके उत्तर-पूरब आड़ावला के चौगिर्द राजपूताना है।। फिर चम्बल और सिन्ध की दूनें मालवे के प्रसिद्ध पठार को सूचित करती हैं, जिसके दक्खिनी अंचल को नर्मदा और तापी धोती हैं। आगे बेतवा और केन के काँठों तथा नर्मदा के उपरले काँठे वाला टुकड़ा बुन्देलखंड है। उसके पूरब सोन का उपरला काँठा बघेलखंड है; और सोन के समानान्तर दक्खिन तथा नर्मदा-काँठे के पूरब, महानदी का उपरला काँठा छत्तीसगढ़ है। बघेलखंड-छत्तीसगढ़ के पूरब विन्ध्य-मेखला का बाकी हिस्सा झाड़खंड या छोटा नागपुर है।

§४. **दक्खिन**—तापी, वर्धा, वेणगंगा, महानदी और सुवर्णरेखा के उपरले काँठों के दक्खिन, समुद्र की तरफ़ बढ़ा हुआ, जो तिकोना पठार यानी पहाड़ी मैदान है, उसी को दक्खिन कहते हैं। इस तिकोने के पच्छिमी किनारे के साथ-साथ पच्छिमी घाट या सह्याद्रि चला गया है, और पूरबी किनारे पर पूरबी घाट अथवा महेन्द्र और मलय पर्वत हैं। दक्खिन की सब बड़ी नदियाँ पच्छिम से पूरब बहती हैं। इसका यह अर्थ है कि पच्छिमी घाट के पूरब तरफ़ ढाल है, और पूरबी घाट की शृंखला बीच-बीच में ऐसी टूटी हुई है कि उसमें से बड़ी नदियाँ लाँघ सकती हैं। पच्छिमी और पूरबी दोनों घाटों और समुद्रों के बीच मैदान की एक-एक हरी किनारी है। पच्छिम तरफ़ की किनारी बहुत सँकरी है; पूरब का हाशिया अच्छा चौड़ा है। पच्छिमी मैदान की किनारी को उत्तर वाले हिस्से में कोंकण और दक्खिन वाले हिस्से में केरल या मलबार कहते हैं। पूरबी किनारे का दक्खिनी अंश चोलमंडल* और उत्तरी अंश कलिंग है।

कृष्णा नदी दक्खिन के पठार को दो हिस्सों में बाँटे हुए है। उसके उत्तर के हिस्से का पच्छिमी अंश महाराष्ट्र और पूरबी अंश कृष्णा-गोदावरी के मुहानों सहित तेलंगाना है। तेलंगाना के उत्तर-पूरब महानदी का निचला काँठा उड़ीसा है। कृष्णा

---

* अँगरेज़ी कारोमंडल इसी का बिगड़ा हुआ रूप है।

के दक्खिन, पच्छिमी और पूरबी घाट एक दूसरे के निकट आते-आते नीलगिरि पर मिल गये हैं। उनके मेल से बना उँचा पठार मैसूर या कर्णाटक है। कर्णाटक के पूरब तट का मैदान चोलमंडल या तामिल देश है। नीलगिरि के दक्खिन और केरल तथा चोलमंडल के बीच मलय पर्वत है। वह भी तामिल देश में है। समुद्र पार सिंहल द्वीप भी भारतवर्ष का एक हिस्सा है।

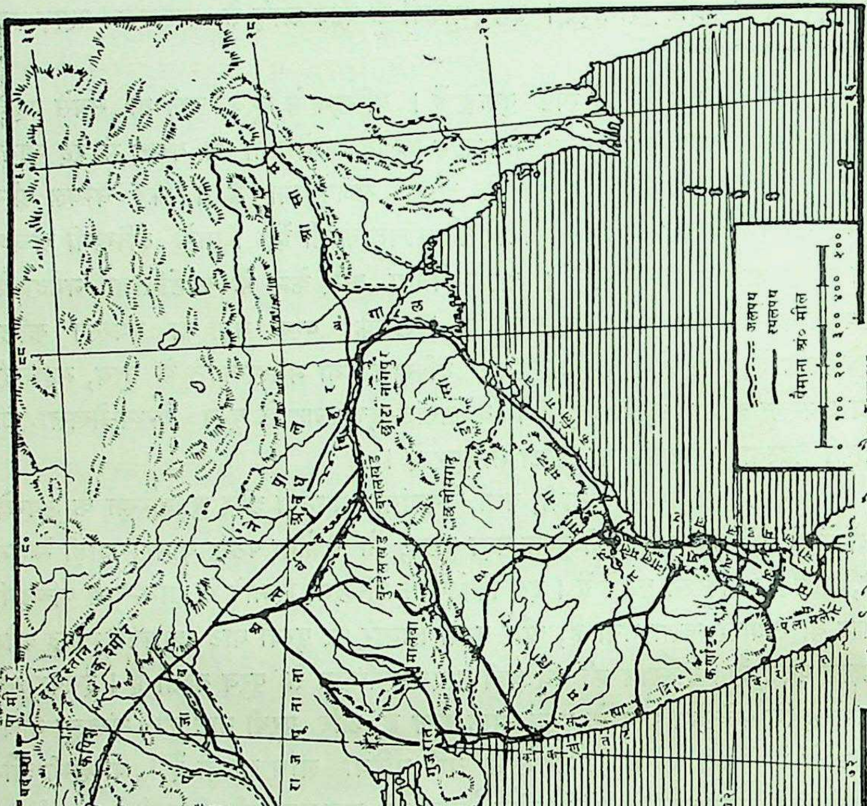
जलपथ
स्थलपथ
पैमाना १" = ... मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
कपिश
कश्मीर
राजपूताना
गुजरात
मालवा
छोटा नागपुर
छत्तीसगढ़
कर्णाटक
सिंहल

भारतवर्ष के मुख्य प्रदेश और राजपथ

दक्खिन में मैदान के जो तंग फ़ीते हैं, वे उत्तर भारत के विशाल मैदान के मुकाबले में बहुत छोटे हैं। तो भी उन में से कई बड़े उपजाऊ हैं। कोंकण और केरल तो मानो भारतवर्ष के बाग़ ही हैं। नारियल, अनन्नास, काजू और बाइस क़िस्म के केले के सिवाय लौंग, इलायची आदि मसालों के पौधे भी केरल में होते हैं, और उसके पड़ोस का मलय पर्वत अपने सुपारी, चन्दन और कपूर के जंगलों के लिए प्रसिद्ध है। चोलमंडल का तट उपज और आबादी में गंगा के काँठे से कम नहीं है। तापी और वर्धा के उपरले काँठों—यानी बराड़ और खानदेश—की काली मिट्टी अत्यन्त उपजाऊ है, और उनमें भारतवर्ष की सब से अच्छी कपास पैदा होती है। इसके अलावा दक्खिन और विन्ध्य-मेखला के पहाड़ों में अनेक क़ीमती खानें हैं। पुराने ज़माने में तेलंगाना के इलाकों में गोलकुंडा की हीरे की खान दुनिया भर में मशहूर थी। आजकल मैसूर रियासत में कोल्हार की सोने की खान वैसी ही प्रसिद्ध है। अभ्रक, लोहे, कोयले आदि की खानों से छोटा नागपुर के पहाड़ भरे पड़े हैं।

§५. हिमालय-हिन्दूकुश—भारतवर्ष की उत्तरी सीमा पर जो बड़े-बड़े पहाड़ हैं, उन की शृंखलाओं के फैलाव के बीच भी अनेक आबाद बस्तियाँ और इलाके हैं। सिन्ध और ब्रह्मपुत्र दोनों नदियाँ हिमालय की पीठ पीछे कैलाश पर्वत के पास से निकलती हैं। दोनों उलटी दिशाओं को रवाना होतीं, और ७-८ सौ मील का सफ़र कर एकाएक भारत के मैदान की तरफ़ ढल पड़ती हैं। उन दोनों नदियों के उन मोड़ों को आजकल के विद्वान हिमालय की पच्छिमी और पूरबी सीमा मानते हैं। हिमालय की गोद में पच्छिम से पूरब, हज़ारा, कश्मीर, काँगड़ा, कुल्लू, क्युंठल, गढ़वाल, कुमाऊँ, नेपाल, भूटान आदि रमणीक प्रदेश हैं।

भारतवर्ष के उत्तर-पूरब जो पहाड़ हैं उनकी पच्छिमी तलैटी ही हमारे देश की सीमा है। इस कारण उनके अन्दर के प्रदेशों से हमें मतलब नहीं। उत्तरी बंगाल के आगे ब्रह्मपुत्र का और पूरबी बंगाल के आगे सुरमा नदी का काँठा उत्तर-पूरबी सीमान्त पहाड़ों के अन्दर तक मैदान को बढ़ा ले गया है।

उत्तर-पच्छिम के पहाड़ी इलाके बड़े महत्त्व के हैं। सिन्ध नदी में पच्छिम तरफ़ से गिल्गित, स्वात, कुनार, काबुल, कुर्रम, गोमल आदि नदियाँ हिन्दूकुश और अफ़गानिस्तान का धोवन लाती हैं। भूमि की बनावट की दृष्टि से इनकी दूनें भी भारतवर्ष के भाग हैं। आजकल भारतवर्ष और अफ़गानिस्तान के राज्य अलग-अलग हैं, किन्तु पिछले ज़मानों में वे प्रायः इकट्ठे रहे हैं। पामीर और अफ़गानिस्तान के

पठारों के उत्तरी छोर असल में भारतवर्ष की उत्तरपच्छिमी सीमा है ।।पामीर का पठार—जिसे दुनिया की छत कहा जाता है—हमारे देश के मस्तक पर मुकुट के समान है। उसके पच्छिमी धोवन को लिये हुए, हिन्दूकुश के उस पार, आमू दरिया बहता है। उसी का पुराना नाम वंक्षु है। पामीर का पूरबी पानी रस्कम या यारकन्द

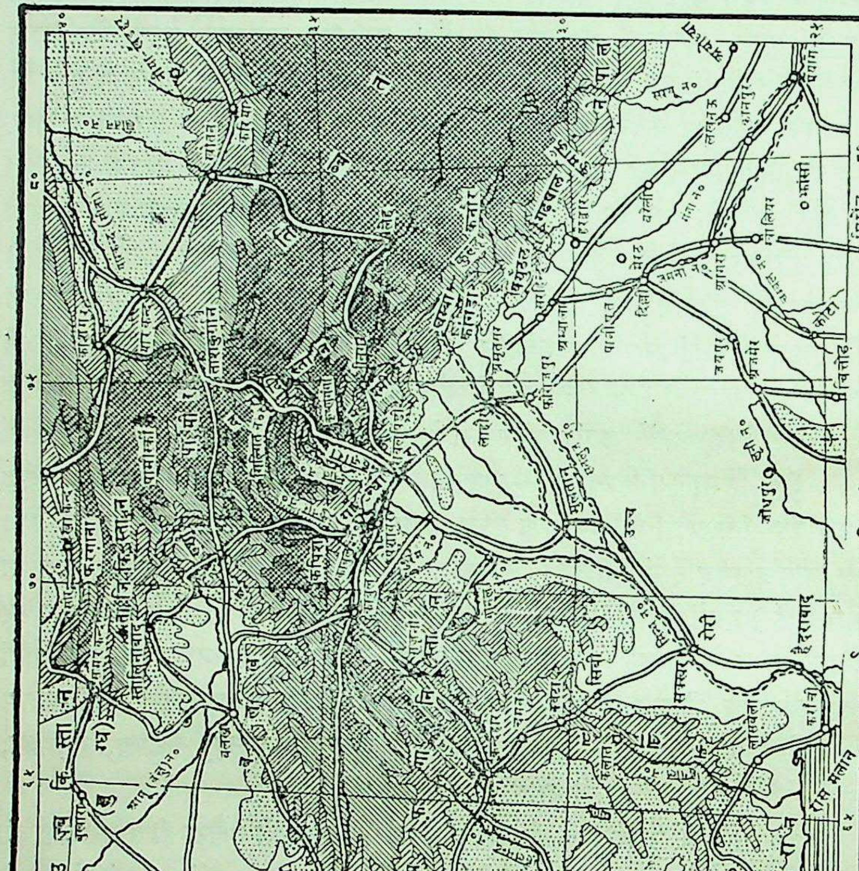
१२००० फ़ुट
८००० फ़ुट
४००० फ़ुट
१००० फ़ुट
समुद्र सतह
रेलपथ
जलपथ
प्राचीन नाम कोष्ठों में
० ५० १०० मील
दिल्ली
लाहौर
मुलतान
पेशावर
काबुल
कन्दहार
मशहद
हेरात
बलख
करांची
जयपुर
अजमेर
जोधपुर
कोटा
चित्तौड़
फ़िरोज़
झाँसी
ग्वालियर
आगरा
मेरठ
लखनऊ
प्रयाग
बरेली
हरद्वार
पानीपत
अम्बाला
अमृतसर
फ़ीरोज़पुर
सक्खर
रोड़ी
हैदराबाद
रास मलान
मकरान
सीस्तान
ताशकुरगान
यारकन्द
काशगर
खोतन
समरकन्द
बुखारा

भारतवर्ष का उत्तर-पच्छिमी सीमान्त

दरिया में जाता है, जिसका पुराना नाम सीता है। सीता नदी आगे चल कर तारीम में जा मिली है। आमू दरिया पामीर से निकल कर बदख्शाँ और बलख प्रदेशों की उत्तरी सीमा बनाता गया है। पामीर के पच्छिम बदख्शाँ है और फिर बलख। तीनों हिन्दूकुश के उत्तर सटे हुए हैं। वंक्षु, सीता और तारीम के काँठों से हमारे देश का बड़ा सम्बन्ध रहा है। हिन्दूकुश के इस तरफ़, उसके और काबुल नदी के बीच, काफ़िरिस्तान और याग़िस्तान (गान्धार) प्रदेश हैं। फिर हिन्दूकुश, पामीर और कृष्णगंगा* दून के बीच दरद-देश या दरदिस्तान; काबुल नदी के दक्खिन, हेलमन्द नदी के बिचले काँठे और सुलेमान पहाड़ तक ठेठ अफ़गानिस्तान है। सुलेमान के किनारे से सिन्ध के मैदान की एक नोक—जिस में सिबी की बस्ती है—पहाड़ों में पच्चर की तरह बढ़ी हुई है। उसी नोक के ऊपर बोलान दर्रा है। सिन्ध के मैदान के पच्छिम पहाड़ों में कलात और लासबेला प्रदेश हैं। वे प्रदेश तथा उनके पच्छिम में ठेठ बिलोचिस्तान का पूरबी अंश मिला कर आजकल भारतीय साम्राज्य का बिलोचिस्तान प्रान्त बनता है। ठीक-ठीक कहें तो कलात-लासबेला के पच्छिम का प्रदेश हमारे देश का हिस्सा नहीं है। इस तरफ़ हिंगोल नदी और रास (अन्तरीप) मलान हमारे देश की सीमाएँ रही हैं।

यदि हम भारतवर्ष के उत्तरी और उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर ध्यान दें तो दोनों में एक स्पष्ट भेद दिखायी देता है। हिमालय के उस पार तिब्बत है, जो एक लम्बा-चौड़ा और बीहड़ पठार है। किन्तु इधर हिन्दूकुश के उस पार आमू और सीर दरिया के काँठे गंगा-जमना के काँठों की तरह हैं। पामीर के पूरब सीता और तारीम का काँठा भी खुला मैदान है। आमू-सीर और तारीम के मैदानों तथा सिन्ध के मैदान के बीच जो पहाड़ी बाँध है वह तिब्बत के पहाड़ी बाँध से बहुत कम चौड़ा है। इसी कारण हिमालय और तिब्बत के आरपार भारत का दूसरे देशों के साथ वैसा सम्बन्ध नहीं रहा, जैसा कि हिन्दूकुश-पामीर के रास्ते से।

§६. **समुद्र**—भारतवर्ष को तीन तरफ़ से घेरने वाला समुद्र बड़े महत्त्व का है। उसके द्वारा विदेशों से भारतवर्ष का सम्बन्ध बहुत पुराने समय से रहा है। आजकल के जहाज़ महासागरों में भी चलते हैं, पर पुराने समय के समुद्री व्यापार-पथ प्रायः तट के साथ-साथ थे। एशिया के नक़्शे पर ध्यान देने से मालूम होगा कि भारतवर्ष

---

* जेहलम में उत्तर-पच्छिम से आ कर मिलने वाली नदी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के एक तरफ़ आफ्रिका, अरब और ईरान हैं, तो दूसरी तरफ़ हिन्दचीन, सुमात्रा, जावा और चीन। अमेरिका को हम नयी दुनिया कहते हैं। पुरानी दुनिया के लोगों को उसका पता कोई साढ़े चार सौ बरस से मिला है। लेकिन जो पुरानी दुनिया के सभ्य देश थे, उनके समुद्री रास्तों के ठीक बीचोंबीच भारतवर्ष पड़ता था। इसी कारण वह सभ्य जगत के समुद्री व्यापार का सदा केन्द्र रहा।

§७.भौमिक परिस्थिति का जीवन पर प्रभाव, भारतवर्ष की विविधता में एकता—हमारा देश विशाल है, और उसमें अनेक प्रकार के प्रदेश हैं। कहीं खुले विस्तृत मैदान हैं तो कहीं तंग पहाड़ी दूनें; कहीं हरे-भरे खादर हैं तो कहीं बंजर मरुभूमि, इत्यादि। विविध प्रदेशों की भौमिक परिस्थिति का प्रभाव वहाँ के निवासियों के जीवन पर भी पड़ता है। किन्तु हमारे देश की बनावट में कुछ बातें ऐसी भी हैं जो इसकी विविधता में गहरी एकता पैदा कर देती हैं। समुद्र और हिमालय, जो कि इसकी सीमाएँ हैं, इसे स्पष्ट एक देश बना देते हैं। फिर वही समुद्र और हिमालय मानो हमारे समूचे जीवन को भी चलाते हैं। समुद्र से गर्मी में जो भाप के बादल उठते हैं, वे हिमालय को नहीं लाँघ पाते। वे या तो लौट कर भारत के मैदानों पर बरसते हैं, या हिमालय की गोदी में बरफ़ बन कर बैठ जाते और फिर नदियों के रूप में उन्हीं मैदानों को सींचते हुए समुद्र में वापिस जा पहुँचते हैं। समुद्र और हिमालय के बीच पानी उछालने का जो यह खेल लगातार चलता है, इसी से हमारी सर्दी, गर्मी और बरसात की ऋतुएँ होती हैं, हमारी खेती-बारी होती है और हमारी नदियों के तथा उनके द्वारा हमारे वाणिज्य-व्यापार के रास्ते निश्चित होते हैं। समूचे भारत की ऋतु-पद्धति इसी कारण एक है। सच कहें तो उत्तर भारत का विशाल खादर हिमालय की ही देन है। वह नदियों द्वारा बहा कर लायी हुई उसी की मिट्टी से बना है। नदियों के किनारे ही प्रारम्भिक बस्तियाँ बसीं और नदियों के द्वारा ही उनमें परस्पर व्यापार चलता रहा है। स्थल के रास्ते भी मनमानी दिशा में नहीं जा सकते, वे नदियों, पहाड़ों आदि की बनावट देख कर चलते हैं। इसी कारण हमारे देश में पुराने समय से कई एक प्रमुख रास्ते चले आते हैं, और उनकी सामान्य दिशा सदा एक सी रही है।

§८. उत्तर भारत के मुख्य राजपथ—उनमें सब से मुख्य वह रास्ता है जो उत्तर-भारतीय मैदान को आरपार पच्छिम से पूरब लाँघता है। अटक (सिन्ध नदी) के पच्छिम से चल कर, पंजाब की नदियों को उथले घाटों पर लाँघता हुआ, कुरुक्षेत्र के बाँगर में से हो कर, वह गंगा के काँठे में पहुँचता है और फिर बनारस के पास

गंगा के दक्खिन उतर कर उसके दाहिने किनारे के साथ-साथ बंगाल के बन्दरगाहों तक जा निकलता है। कुरुक्षेत्र के बाँगर के अतिरिक्त उस रास्ते के दो और बड़े नाके हैं। एक तो सिन्ध और जेहलम नदी के बीच, जहाँ वह नमक-पहाड़ियों की शृंखला को लाँघता है; दूसरे बिहार और बंगाल की सीमा पर मुंगेर से राजमहल तक, जहाँ गंगा तक बढ़ी हुई झाड़खंड की पहाड़ियाँ उसे तंग दरों में से गुज़रने को बाधित करती हैं।

अन्तर्वेद से इस राजपथ की एक बड़ी शाखा हिमालय के नीचे-नीचे अवध से आसाम तक चली गयी है। उसी प्रकार एक बड़ी शाखा पंजाब से सिन्ध की तरफ़ पंजाब की नदियों की दिशा में गयी है। इस मुख्य राजपथ से उत्तर तरफ़ अनेक छोटे रास्ते हिमालय की ओर बढ़ते हैं।

§९. **सीमान्त के रास्ते**—उत्तर-पच्छिमी और उत्तर-पूरबी सीमान्तों के रास्ते उत्तर भारत के राजपथ के ही बढ़ाव हैं। जेहलम और अटक के बीच से उस राजपथ में से फट कर एक हिमालय-गामी रास्ता, जेहलम-दून के द्वारा, कश्मीर में घुसता है। उसी के पड़ोस से रास्तों का एक समूह सीधा सिन्ध-दून के ऊपर को, अथवा सिन्ध पार कर स्वात या कुनार की दून में चढ़ता है, और आगे बढ़ कर हिन्दूकुश के घाटों को लाँघता हुआ बदख़शाँ या पामीर में जा पहुँचता है। उसकी शाखाएँ बदख़शाँ से आमू के काँठे में और पामीर में से पूरब उतर कर सीता और तारीम के काँठों में चली जाती हैं। जेहलम से कुनार तक के पहाड़ी प्रदेश का पुराना नाम गान्धार है, इसलिए इन रास्तों को गान्धार के रास्ते कहना चाहिए।

सीमान्त के रास्तों का दूसरा बड़ा समूह अफ़गानिस्तान में से गुजरता है। उनमें से एक प्रसिद्ध रास्ता काबुल नदी का है। आजकल यह अटक से काबुल नदी के दक्खिन—पेशावर और ख़ैबर हो कर—बढ़ता है। पुराने समय में वह काबुल नदी के ठीक साथ-साथ जाता था। आगे काबुल के उपरले सोतों से हिन्दूकुश पर चढ़ कर वह आमू के सोतों के साथ बलख और आमू-मैदान में उतर जाता है। कुर्रम की दून से भी अफ़गानिस्तान में घुसने का रास्ता है। एक और व्यापार-पथ वह है जो डेरा-इस्माइलखाँ से गोमल के रास्ते गज़नी और कन्दहार की तरफ़ बढ़ता है। और नीचे एक रास्ता सक्खर, सिबी और दर्रा बोलान के निर्जल प्रदेश में से हो कर क़न्दहार को, और कन्दहार से हरात को, अफ़गान पहाड़ों के दक्खिन-दक्खिन चला गया है। सिन्ध के मैदान के ठीक पच्छिम कलात और खीरथर पहाड़ों में से लाँघने

वाले रास्ते बड़े विकट हैं। कराची से तट के साथ-साथ भी मकरान द्वारा पच्छिम जाने का एक रास्ता है।

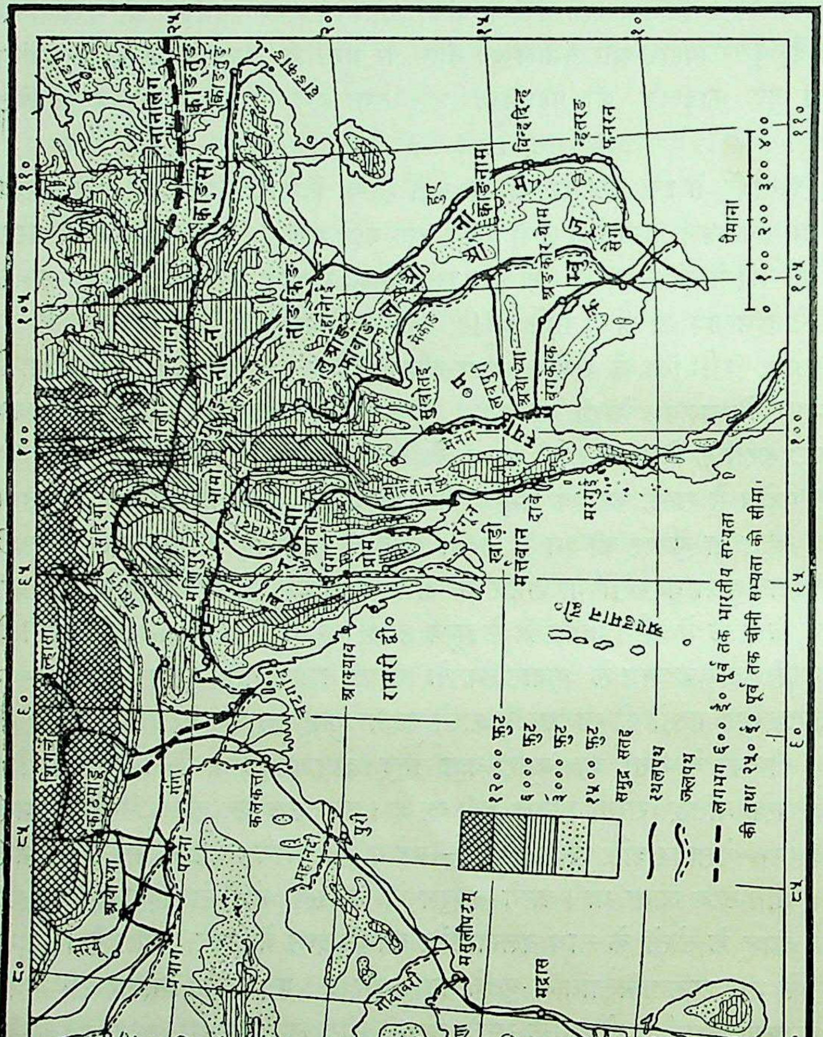
कलकत्ता
पटना
प्रयाग
पुरी
मसुलीपटम
मद्रास
गोदावरी
कृष्णा
महानदी
काठमांडू
ल्हासा
रामरी द्वी०
मर्तबान
रंगून
मरगुई
सालवीन
मेनम
अयोध्या
बंगकाक
लवपुरी
सुखोदइ
युइनान
मणिपुर
पैमाना
० १०० २०० ३०० ४००
१२००० फ़ुट
६००० फ़ुट
३००० फ़ुट
१५०० फ़ुट
समुद्र सतह
स्थलपथ
जलपथ
लगभग ६०० ई० पूर्व तक भारतीय सभ्यता
की तथा २५० ई० पूर्व तक चीनी सभ्यता की सीमा।

भारतवर्ष का पूरबी सीमान्त

उत्तर-पूरबी सीमान्त पर रास्तों के तीन स्पष्ट समूह हैं। पहला उपरले ब्रह्मपुत्र काँठे से पतकोई पहाड़ों को पार कर चिन्दविन, इरावती, सालवीन या मेकौङ की

उपरली दूनों में पहुँचता, और उन नदियों के साथ हिन्दचीन के खुले मैदान में उतर जाता है। दूसरा सुरमा के काँठे से मणिपुर के पहाड़ लाँघ कर चिन्दविन और इरावती के काँठों में पहुँचता है और फिर उनके साथ, अथवा और पूरब बढ़ कर सालवीन या मेकौङ के साथ, दक्खिन उतरता है। तीसरा चटगाँव से समुद्र-तट के साथ-साथ जाता है।

§१०. **विन्ध्य-मेखला के रास्ते**—उत्तर भारत को गुजरात और दक्खिन से मिलाने वाले रास्ते सब विन्ध्य-मेखला को लाँघ कर जाते हैं। सिन्ध से सीधा गुजरात भी जा सकते हैं; पर बीच में थर का दक्खिनी छोर और कच्छ का रन पड़ने से वह रास्ता बहुत कठिन है। कच्छ का रन असल में उथला कीचड़ है जिसे झाड़-झंखाड़ ने और भी बीहड़ बना दिया है। इस कारण पंजाब से यदि गुजरात या महाराष्ट्र जाना हो तो दिल्ली और राजपूताने या दिल्ली और मालवे के रास्ते जाना होता है। इस प्रकार कुरुक्षेत्र-पानीपत का नाका जैसे पंजाब से गंगा-काँठे के रास्ते पर क़ाबू करता है, वैसे ही वह पंजाब और दक्खिन के बीच के रास्तों को भी दबाये हुए है।

अजमेर का नाका, ठीक बीच में, राजपूताने के रास्ते पर काबू करता है। वहीं वह रास्ता आड़ावाला को पार कर उसके पच्छिम जा निकलता है, और वहीं से उसकी एक शाखा सीधे दक्खिन मालवे को चली जाती है। मालवे का रास्ता, ठेठ हिन्दुस्तान और दक्खिन के ठीक बीच पड़ने से विन्ध्य-मेखला के रास्तों में सब से मुख्य रहा है। मालवा से निकल कर उस रास्ते की एक शाखा पच्छिमी तट के बन्दरगाहों को चली जाती है। और दूसरी नर्मदा और तापी को उपरले घाटों पर लाँघ कर बराड़ पहुँचती है, और फिर वर्धा नदी के साथ पूरबी तट को जाती है। प्रयाग के पास से दक्खिन जाना चाहें तो बुन्देलखंड लाँघ कर जाते हैं। किन्तु यदि उसके और पूरब, बिहार से दक्खिन जाना हो तो छोटा नागपुर को लाँघने के बजाय उस का चक्कर लगा कर, बंगाल-उड़ीसा हो कर, जाना सुगम होता है। इसी कारण छोटा नागपुर या झाड़खंड को उत्तर से दक्खिन या दक्खिन से उत्तर जाने वाले विजेताओं ने बहुत कम लाँघा है, और उसके जंगलों में आज तक भी बहुत सी जंगली जातियाँ आराम से रहती आ रही हैं। बंगाल से उड़ीसा होता हुआ समुद्रतट के साथ-साथ जाने वाला रास्ता बहुत सुगम है।

§११. **दक्खिन के रास्ते**—पूरबी तट के इस रास्ते के सिवाय दक्खिन भारत के सब प्रमुख रास्ते उसकी नदियों के बहाव के साथ-साथ पच्छिम से पूरब

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जाते हैं। एक तापी के घाटों को गोदावरी के मुहाने से, दूसरा उत्तरी महाराष्ट्र को कृष्णा के मुहाने से, तीसरा दक्खिनी महाराष्ट्र और कर्णाटक को कावेरी के मुहाने से, तथा चौथा केरल को कावेरी या वैगै के मैदान से मिलाता है। यह अन्तिम रास्ता नीलगिरि और मलयगिरि के बीच पालक्काड* से गुज़रता है।

गोदावरी और कृष्णा के रास्तों के बीच पड़ने से गोलकुंडा-हैदराबाद पठार का बड़ा महत्त्व है। उसी प्रकार कृष्णा-तुंगभद्रा का दोआब महाराष्ट्र और कर्णाटक के रास्तों पर बीचोंबीच काबू करने से बड़े महत्व का है। यह दोआब तो दक्खिन का कुरुक्षेत्र है। इस हिसाब से महाराष्ट्र दक्खिन भारत का अफ़गानिस्तान है, और चोलमंडल उसका गंगा का मैदान। महाराष्ट्र के पठार से कोंकण तट के बन्दरगाहों तक जाने को सह्याद्रि के ऊँचे घाट लाँघने पड़ते हैं। घाटों के वे तंग रास्ते भी महत्त्व के हैं और उनकी तुलना हिन्दूकुश और आमू-काँठे के बीच के घाटों से हो सकती है।

§१२. **भू-परिवर्तन**—भूमि-सम्बन्धी अवस्थाएँ मनुष्यों के जीवन पर प्रभाव डालती हैं, किन्तु वे अवस्थाएँ स्वयं भी बदलती रहती हैं। पहाड़ की बनावट में भूकम्प आदि के बिना परिवर्तन नहीं होते, पर नदियों के रास्तों और समुद्रतट की शकल प्रायः बदला करती है। बंगाल में तामलूक, ताम्रपर्णी के मुहाने पर कोरकई, और सिन्ध में ठट्ठा पिछले युगों में बन्दरगाह थे; पर अब वे सब सूखे में हैं। बहुत पुराने समय में राजपूताने का थर उथला समुद्र था और सरस्वती नदी उसी में मिलती थी।

नदियाँ भी प्रायः अपने रास्ते बदला करती हैं। बाईस सौ वर्ष पहले पटना शहर गंगा और सोन के संगम पर था। आज सोन उसके बारह मील पच्छिम खसक गया है। ब्यास नदी बहुत पुराने समय में आजकल की तरह सतलज में मिलती थी; फिर बहुत समय तक वह अपनी धारा बदल कर मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती रही। मनुष्य अपने हाथों भी भूमि-सम्बन्धी अवस्थाओं को बहुत-कुछ बदल लेता है। जंगल काट कर, नहरें निकाल कर, तालाब बाँध कर और दलदलें सुखा कर ज़मीन की शकल बदल डालता और वर्षा के परिमाण को भी बहुत कुछ घटा-बढ़ा देता है। भारतवर्ष के सब उपजाऊ मैदान पहले घने जंगल थे, और हमारे पुरखों ने शताब्दियों मेहनत करके उन्हें साफ़ किया था।

---

*अँगरेज़ी रूप—पालघाट।

अध्याय २

भारतवर्ष के निवासी

§१. **भारतवर्ष की भाषाएँ**—भारतवर्ष बहुत बड़ा देश है। उसमें कई जातियों के लोग रहते हैं। भिन्न-भिन्न जातियों के लोगों को उनकी बोलचाल से पहचाना जा सकता है। कहावत है कि "कोस-कोस पर बदले पानी, चार कोस पर बानी।" किन्तु बोलचाल की वाणी चाहे चार कोस पर बदल जाय, लिखने-पढ़ने की भाषा बहुत दूर तक एक सी रहती है। हमारे अन्तर्वेद (युक्त प्रान्त) यानी ठेठ हिन्दुस्तान में लिखने-पढ़ने की भाषा हिन्दी-उर्दू है। हिन्दी और उर्दू असल में एक ही भाषा के दो नाम हैं। नागरी अक्षरों या लिपि में लिखने से वह हिन्दी कहलाती है, फ़ारसी लिपि में लिखने से उर्दू। बिहार, राजपूताना और बुन्देलखंड-छत्तीसगढ़ (मध्य प्रान्त) में भी हिन्दी-उर्दू का चलन है। बंगाल के लोग बँगला पढ़ते-लिखते हैं, और आसाम के असमिया। गुजरात में गुजराती चलती है और महाराष्ट्र में मराठी। भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में इस प्रकार कुल जो भाषाएँ जारी हैं उन्हें अगले नक़्शे में दिखलाया गया है। भारतवर्ष की सब बड़ी-बड़ी भाषाओं में दो साधारण सी बातें किस प्रकार कही जाती हैं, उसका एक नमूना परिशिष्ट १ में दिया गया है।

इन नमूनों को ध्यान से तुलना करने पर प्रकट होगा कि भारतवर्ष की बहुत सी भाषाओं का एक दूसरी से बड़ा सम्बन्ध है। हिन्दी, बँगला, उड़िया, असमिया, पहाड़ी, मराठी, सिंहली, सिन्धी, पंजाबी, कश्मीरी और पश्तो भाषाएँ एक ही माँ की बेटियाँ हैं। जहाँ आजकल ये भाषाएँ बोली जाती हैं, वहीं पहले ज़मानों में संस्कृत, पालि और कई प्राकृतें बोली जाती थीं। वे इन सब की पूर्वज थीं और उनकी जड़ भी शुरू में एक थी। इन सब भाषाओं के समूह को हम आर्य भाषाएँ कहते हैं।

§२ **आर्य और द्राविड जातियाँ**—आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालों के पुरखा अलग-अलग जातियों के थे। उन जातियों के रंग-रूप में भी फ़रक था। आर्य के ख़ास चिन्ह हैं—रंग गोरा या गेहुँआँ, कद ऊँचा, माथा उभरा हुआ, नाक लम्बी और नुकीली, दाढ़ी-मूँछ भरपूर। काला रंग, कद कुछ कम और चौड़ी नाक द्राविडों की विशेषताएँ हैं। किन्तु ऐसा न समझना चाहिए कि आज जो

लोग आर्य भाषाएँ बोलते हैं वे सब पुराने आर्यों की ही सन्तान हैं, और जो द्राविड भाषाएँ बोलते हैं वे द्राविडों की ही। दोनों जातियों में परस्पर मिश्रण भी खूब हुआ

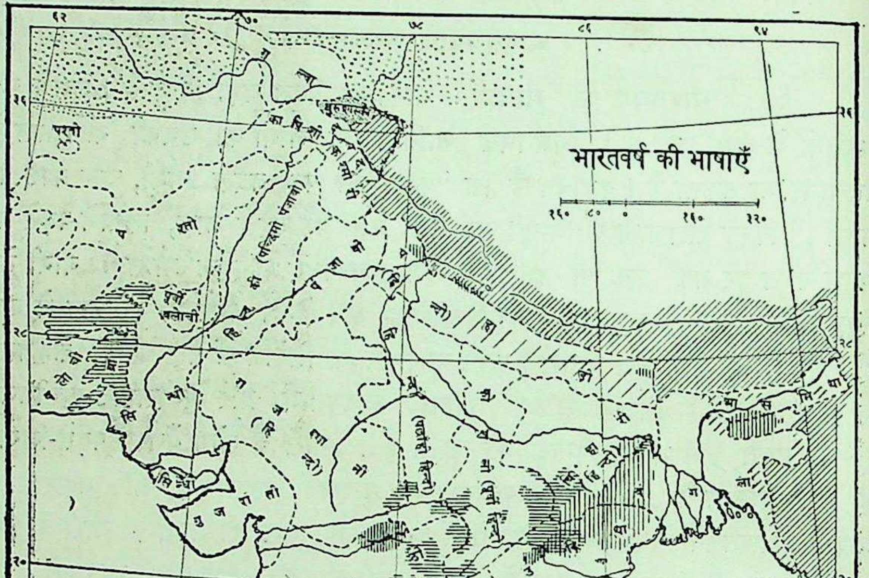
भारतवर्ष की भाषाएँ
२६० ८० ० १६० ३२०
आर्य भाषाएँ
द्राविड भाषाएँ
मुंड भाषाएँ
किरात भाषाएँ
अन्य भाषाएँ
भाषा सीमा
–x–x–x– दरद भाषा की प्राचीन पूर्वी सीमा
पश्तो
पूर्वी बलोची
गुजराती
पच्छिमी पंजाबी
पूर्वी हिन्दी
७० ७८ ८६ ९४
२० २८ ३६ १२

["भारतभूमि और उसके निवासी" के आधार पर]

टिप्पणी—दक्खिन की द्राविड भाषाओं के अतिरिक्त कलात में ब्राहूई नामक एक द्राविड बोली है, तथा गंगा और गोदावरी के बीच कई जगह एक द्राविड बोली—गोंडी—है। पामीर की गल्चा बोलियाँ आर्य हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

है। दोनों की भाषाओं का भी एक दूसरे पर बड़ा प्रभाव पड़ा है। बहुत लोगों ने अपनी असल भाषा छोड़कर जहाँ बस गये वहाँ की प्रधान भाषा अपना ली। आज भारतवर्ष में ७६·५ फ़ी सदी आर्यभाषी, और २०·५ फ़ी सदी द्राविड भाषी हैं। बाक़ी ३ फ़ी सदी और जातियाँ हैं।

आर्यावर्त्ती आर्य

[श्री देवेन्द्र सत्यार्थी के सौजन्य से]

द्राविड भाषाओं का भारतवर्ष के बाहर और किसी भाषा से रिश्ता-नाता नहीं दिखायी देता। किन्तु आर्य भाषाओं का परिवार बहुत बड़ा है। ईरान और युरोप की सब मुख्य-मुख्य भाषाएँ इसी वंश की हैं। इन सब भाषाओं को बोलने वाली जातियों के पुरखा शुरू में कहीं एक जगह रहते होंगे। आर्य जाति का वह आदिम घर कहाँ था, इसपर अनेक अटकलें लगायी गयी हैं। मध्य-एशिया, पच्छिमोत्तर युरोप, उत्तरी ध्रुव, गंगा-काँठा, आर्मीनिया, उराल, दान्यूब-काँठा या सिबिरिया में—विभिन्न विद्वानों ने आर्यों का मूल अभिजन होने का अन्दाज़ लगाया है। फ़िलहाल इस विषय का निपटारा नहीं हो सकता।

द्राविड

[श्री आ० अय्यप्पन के सौजन्य से]

§३. **किरात जाति**—भारतवर्ष की जनसंख्या की तीन फ़ी सदी गौण जातियों के विषय में भी हमको कुछ जानना आवश्यक है। इन में से आधे से अधिक एक ऐसी जाति के लोग हैं, जो हिमालय के उत्तरी अंचल में और आसाम के कुछ हिस्सों में पाये जाते हैं। इनकी भाषाएँ तिब्बत और बरमा की भाषाओं से मिलती हैं; उन भाषाओं और उनके बोलने वालों को आजकल के विद्वान् तिब्बती-बरमी कहते हैं। उनका पुराना नाम किरात है। किरात और चीनी जाति मिला कर मनुष्य जाति का एक बड़ा वंश बनता

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

है, जिसे चीन-किरात (Tibeto-Chinese) कहते हैं। चीन-किरात वंश की मुख्य पहचान यह है कि उनकी नाक की जड़ कुछ चपटी, गालों की हड्डियाँ उभरी हुई, दाढ़ी-मूँछ न के बराबर तथा चेहरा चपटा होता है। हमने भारतीय किरातों की जो संख्या बतलायी है उसमें केवल उनकी गिनती की है जो अब भी किरात भाषाएँ बोलते हैं; किन्तु आसाम और बंगाल और पहाड़ की जनता में बहुत से आर्य-भाषी भी हैं जिनकी नसों में अंशतः चीन-किरात खून बहता है।

भारतीय किरात

[रिस्ली के आधार पर]

§४. **मुंड या कोल जाति**—दूसरी गौण जाति का नाम मुंड है। मुंड भाषाएँ बोलने वाले विशेष कर उड़ीसा के पास झाड़खंड में रहते हैं। सन्थाल, मुंडा, शबर आदि उनमें से मुख्य हैं। उन्हें बहुत लोग कोल भी कहते हैं। शकल-सूरत में वे लोग द्राविडों के से हैं, पर उनकी बोली बिलकुल अलग है। भारतवर्ष में वे थोड़े हैं, किन्तु बाहर उन की नस्ल बहुत दूर-दूर तक फैली है। आज भी हिन्द चीन में उनका बड़ा अंश मौजूद है, पर किसी ज़माने में तो वहाँ वही लोग बसते थे। प्रशान्त महासागर के द्वीपों में भी उसी वंश के लोग हैं। वे जातियाँ संसार के आग्नेय अर्थात् दक्खिन-पूरबी कोण में रहती हैं, इसलिए आजकल के विद्वानों ने उन का नाम आग्नेय (Austric) वंश रक्खा है*। मुंड जाति इसी वंश की एक शाखा है। भारतर्ष में उस के बहुत से लोग आर्य और द्राविड भाषाएँ बोलने वालों में मिल गये हैं। भारतवर्ष के सब से पुराने निवासी शायद वही हैं।

मुंडा [पटना म्यूज़ि०]

---

*यह विषय अब कुछ विवाद-ग्रस्त है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§५. **भारतवर्ष की लिपियाँ और भारतीय वर्णमाला**—हमने अभी तक अपने देश की भाषाओं पर ध्यान दिया है। वे भाषाएँ किन लिपियों में लिखी जाती हैं, यदि हम इस ओर ध्यान दें तो हमें कई काम की बातें मालूम होंगी।

हिन्दी, मराठी, पर्वतिया और कश्मीरी की लिखावट बिलकुल एक सी है। वे चारों अब नागरी लिपि में लिखी जाती हैं। नागरी, बंगला और गुजराती में थोड़ा-थोड़ा अन्तर दिखायी देता है, पर तीनों के अन्दर बिलकुल एक हैं। नागरी में जैसे अ, आ, इ, ई, ···क, ख, ग, ··· हैं, ठीक वैसे ही गुजराती में और वैसे ही बंगला में। दक्खिन की भाषाओं की लिखावट तो नागरी से बहुत भिन्न दिखायी देती है, पर वर्णमाला उनकी भी वही है। बात यह है कि पहले सारे भारत में एक ही लिपि थी और विद्यमान सब लिपियाँ उसी से निकली हैं। वर्णमाला उन सब की अब भी वही एक है। वह वर्णमाला पहले आर्य भाषाओं की थी, पीछे द्राविड भाषाओं ने भी उसे अपना लिया। आर्य और द्राविड जातियों में एक दूसरे से किस प्रकार मेल-जोल हुआ है उसका यह भी एक नमूना है। भारत के बाहर बरमा, तिब्बत, स्याम और कम्बुज (कम्बोदिया) आदि की भाषाओं ने भी हमारी वर्णमाला को अपना रक्खा है। यह कैसे हुआ, सो हम आगे चल कर देखेंगे।

नागरी	अ	इ	उ	ए	क	का	कि	कु	के
गुजराती	અ	ઇ	ઉ	એ	ક	કા	કિ	કુ	કે
गुरमुखी	ਅ	ਇ	ਉ	ਏ	ਕ	ਕਾ	ਕਿ	ਕੁ	ਕੇ
बंगला	অ	ই	উ	এ	ক	কা	কি	কু	কে
उड़िया	ଅ	ଇ	ଉ	ଏ	କ	କା	କି	କୁ	କେ
तेलुगु	అ	ఇ	ఉ	ఎ	క	కా	కి	కు	కె
कन्नड	ಅ	ಇ	ಉ	ಎ	ಕ	ಕಾ	ಕಿ	ಕು	ಕೆ
तामिल	அ	இ	உ	எ	க	கா	கி	கு	கெ
मलयालम	അ	ഇ	ഉ	എ	ക	കാ	കി	കു	കെ
सिंहली	අ	ඉ	උ	එ	ක	කා	කි	කු	කෙ
तिब्बती	ཨ	ཨི	ཨུ	ཨེ	ཀ		ཀི	ཀུ	ཀེ
म्यम्म (बरमी)	အ	ဣ	ဥ	ဧ	က	ကာ	ကိ	ကု	ကေ
स्यामी	อ	อิ	อุ	เอ	ก	กา	กิ	กุ	เก

परिशिष्ट १

संस्कृत	अहम् अद्य आत्मनो [मम] गृहं गच्छामि [व्रजामि, यामि]	एकस्य पितुर् द्वौ पुत्राव् आस्ताम्
पाली	अहं अज्ज मम घरं गच्छामि	एकस्स पितुनो द्वे बाला अहेसुं
हिन्दी	मैं आज अपने घर जाता हूँ	एक बाप [पिता] के दो बेटे [पुत्र] थे
गुजराती	हुँ आजे मारे घर जाउँछुं	एक बापना बे बेटा हता
पहाड़ी	आज म आफ्नो घर जान्छु	यौटा बाबु को दुइटा छोरा थिये
बंगला	आमि आज आमार बाड़ी जाइतेछि	एक पितार दुइ पुत्र छिल
असमिया	मैं आजि मोर घरलै जाम	एजन पितेकर दुजन पुतेक आछिल
उड़िया	मुं आजि आपणा घरकु जाउछि	एक पितांकर दुइटि पुत्र थिले
मराठी	मी आज आपल्या घरीं जात आहे	एका पित्यास दोन पुत्र होते
सिंहली	मम अद मगे गेदर यमि	एक पियेकुट पुत्रयो देदेनेक वूह
पंजाबी	मैं अज आपणे घर जांदा हां	इक प्योदे दो पुत्तर सन
हिन्दकी	मैं आज आपणे घर वैंदाँ	हिक पिउदे द्रू पुत्र हन
सिन्धी	मां अजु पहिंजे घरि वंञाथो	हिक पीउजा ब पुट हुआ
कश्मीरी	ब छुस अज़ पनुन गर गछान [मैं हूँ आज अपने घर जाता]	अकिस मालिस आस्य ज़ न्यचिव्य [एक बाप के थे दो बेटे]
पश्तो	ज़ें निन अखपुला कोर ते [ला] ज़ूँम	यवो पिलार द्वा ज़मन अवूः
कन्नड	इवत्तु नानु [नन्न] मनेगे होगुत्तेने [आज मैं मेरे घर जाता हूँ]	ओब्ब तन्देगे इब्बरु मक्कलु इद्दरु
तेलुगु	नेनु ईरोजनां माइंटिकि वेल्लु चुन्नानु	वोक तंड्रिकी इद्दरु कोडुकुलु उंडिरि
तामिल	नान इन्रु एन्नुडैय वीट्टिकुं पोकिरेन	ओरु तकप्पनारुक्कु इरंडु कुमारर्कल इरुन्दनर
मलयालम	ञान् इन्नु स्वगृहत्तिल् पोकुन्नु	ओरु पिताविन्नु रंडु पुत्रन्मार उंटायिरुन्नु

अध्याय ३

सभ्यता का विकास और उसका इतिहास जानने के साधन

§१. **हमारे पुरखों की विरासत**—हमारा देश कैसा है, और उसमें रहने वाले लोग कौन-कौन हैं, यह हमने देखा। हमारे पुरखा अधिकतर दो जातियों के थे—एक आर्य, दूसरे द्राविड। हमारे पुरखों का व्यौरेवार वृत्तान्त ही हमारे देश का इतिहास है। ज़रा विचार कर देखें, हमारे पुरखों का हम पर कितना एहसान है! आज जिन खेतों से हमें खाने को अनाज मिलता है, उन्हें दो चार बरस खाली छोड़ दें तो उनकी क्या हालत हो? जंगली झाड़ उन्हें घेर लें और जंगली जानवर उनमें मँडराने लगें! भारतवर्ष के सब उपजाऊ प्रदेश शुरू में वैसे ही डरावने जंगल थे और हमारे पुरखों ने बड़ी मेहनत कर उन्हें आबाद किया था। अनेक बार अपना खून बहा कर उन्होंने उनकी रक्षा की थी। जिन कुओं, तालाबों, झीलों और नहरों से आज हमारे खेतों और बगीचों की सिंचाई होती है, वे सब उन्हीं की मेहनत का फल हैं। जिन रास्तों से हमारा आना-जाना और वाणिज्य-व्यापार होता है, जिन किलों और गढ़ों से देश की रक्षा होती है और जिन बस्तियों में हम आराम से रहते हैं, वे सब उन्हीं की रचनाएँ हैं। इन बाहरी चीज़ों का क्या कहना, हमारी जो बोल-चाल, रहन-सहन और रीति-रिवाज हैं, वे सब भी हमें अपने पुरखों से प्राप्त हुए हैं। जो ज्ञान पा कर हम शिक्षित कहलाते हैं, वह भी अधिकांश हमारे पुरखों की खोज और मेहनत से संचित हुआ था। आज हमारी जो मानसिक निधि है वह भी बहुत-कुछ उन्हीं की विरासत है।

हमारे देश की चप्पा-चप्पा भूमि हमारे पुरखों के महान् कार्यों की याद दिलाती है। उनके उन कार्यों का वृत्तान्त हमें अपने इतिहास में मिल सकता है। सच्चे इतिहास से हमें न केवल उनकी खूबियाँ प्रत्युत उनकी ग़लतियाँ भी मालूम होंगी। और यदि हममें बुद्धि है तो हम उनके अनुभव से लाभ उठा कर उनकी ग़लतियों से बचेंगे और उनके गुणों का अनुसरण करेंगे। मनुष्य का मनुष्यत्व इसी में है कि वह अपने पुरखों के ज्ञान से लाभ उठाता और उसे आगे बढ़ाता है। इसी प्रकार मनुष्य की सभ्यता में उन्नति होती चली आती है।

§२. मानव सभ्यता की सीढ़ियाँ—मनुष्य सब प्राणियों में श्रेष्ठ कहा जाता है। उसकी श्रेष्ठता इस बात में है कि उसमें सोचने विचारने की शक्ति है। इसके अलावा दूसरे बहुत से जानवरों से उसमें एक और भी विशेषता है। वह यह कि वह दोपाया है। मनुष्य सामूहिक प्राणी है, और बड़ा अनुकरणशील है। एक मनुष्य जो काम करता है उसे दूसरा भी जल्द सीख लेता है। सामूहिक प्राणी होने के कारण मनुष्य अकेले-अकेले नहीं रहते। उनके झुंड या गिरोह शुरू से रहे हैं जो बाद में जातियाँ बन गये। संसार के सब जन्तुओं में और जन्तुओं के झुंडों में लगातार जीवन का संग्राम चल रहा है, जिसमें प्रबल और योग्य की विजय होती है और कमज़ोर और निकम्मे मारे जाते हैं।

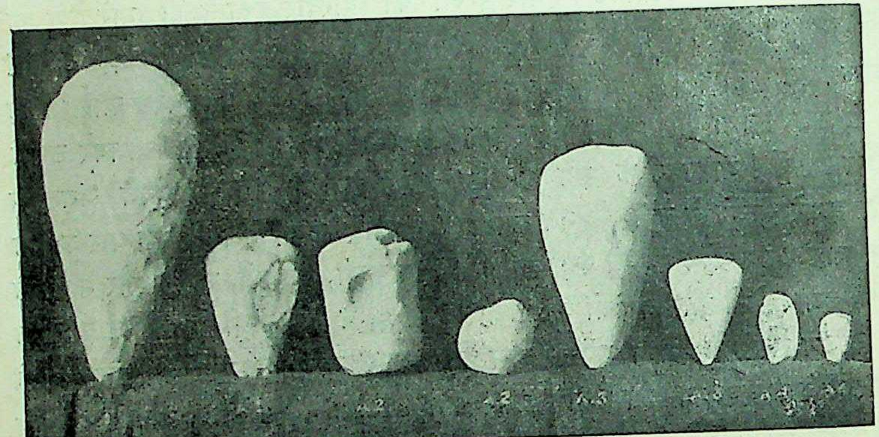

पत्थर के हथियार—बाँदा ज़िले से [लखनऊ म्यूज़ियम]

मनुष्य जिन बातों के कारण जीवन की कशमकश में दूसरे प्राणियों से आगे बढ़ा, वे हैं उसका दिमाग़, उसकी सामूहिक शक्ति और उसके हाथ। मनुष्य-जातियाँ आपस की कशमकश में भी अपने ज्ञान, अपने सामूहिक संगठन और अपने हाथों के हथियारों और उपकरणों को लगातार उन्नत कर रही हैं। हाथ होने के कारण मनुष्य हथियार बना और चला सकता तथा अस्त्र फेंक सकता है। दुनिया की लड़ाई में इससे उसे बड़ी शक्ति मिली।

शुरू में उसने लकड़ी, पत्थर और हड्डी के हथियार बनाये। बाद में जब धीरे-धीरे उसे धातों का ज्ञान हुआ तो उसने खानें खोदना और धातें साफ़ करना सीखा। तब वह काँसे, ताँबे और लोहे के हथियार बनाने लगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु हथियार किस लिए थे ? अपनी रक्षा और अपनी जीविका के लिए। मनुष्य अपनी जीविका में भी लगातार उन्नति करता गया है। पहले मनुष्यों के झुंड

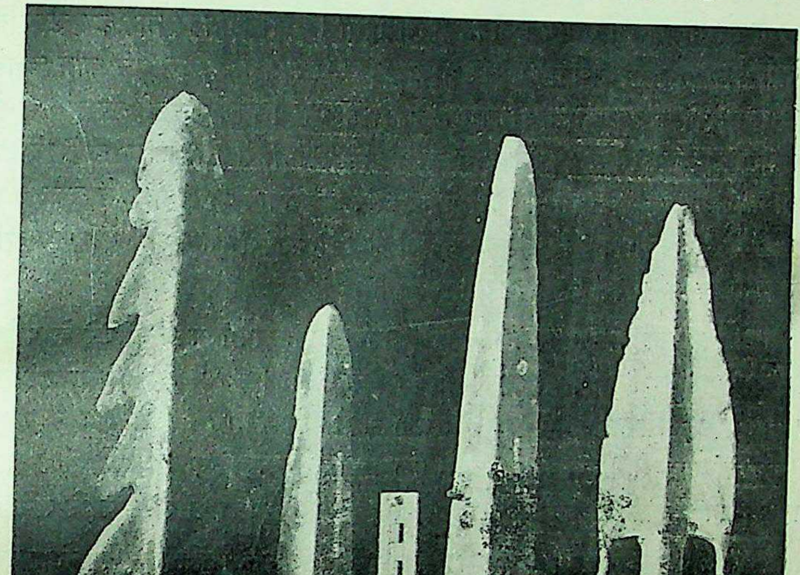

ताँबे के हथियार—बिठूर, सरथौली (जि० शाहजहाँपुर) तथा राजपुर (जि० बिजनौर) से
[लखनऊ म्यू०]

दूसरे जानवरों की तरह शिकारी थे—अर्थात् वे प्रकृति से अपना भोजन सीधे ले लेते

थे, जंगल में फल-मूल जमा कर या शिकार कर गुज़ारा करते थे। जानवरों का आखेट करते-करते धीरे-धीरे उन्होंने जानवर पालना सीखा। यह एक बड़ा भारी आविष्कार हुआ। इसने मनुष्य का तमाम जीवन बदल दिया। एक जानवर मार कर खाने से जितने दिन गुज़ारा हो सकता था उसके दूध से उससे कहीं अधिक दिन काम चलने लगा। इस प्रकार एक वर्गमील जंगल के शिकार से जितने मनुष्यों का गुज़ारा हो सकता था, एक वर्गमील चरागाह में चरने वाले जानवरों से उससे कहीं अधिक मनुष्यों का काम चलने लगा। फिर पैदल और घुड़सवार की लड़ाई में क्या कोई मुकाबला है? इस प्रकार पशुपालक मनुष्य कोरे शिकारियों से आगे बढ़ गये और जीवन के क्षेत्र में फूलने फलने लगे।

शिकारी मनुष्य भी जब फल बीन कर लाता था तो अपने अस्थायी डेरे के पड़ोस में कई बार गुठलियों या बीजों से पौदे उगते देखता था। इस प्रकार पौदे उगाने का ज्ञान शायद उसे शिकारी दशा में ही हो गया था। किन्तु असल खेती तब शुरू हुई जब उसने जानवरों को पाल कर उनसे हल जोतना शुरू किया। कृषि सीख जाने से मनुष्यों की जीविका में बड़ी उन्नति हुई और उनके समाज और भी बढ़ने लगे।

शिकारी और पशुपालक खानाबदोश होते हैं। कृषकों ने जहाँ खेत बोया वहाँ कमसे कम फ़सल काटने तक उन्हें रहना चाहिए। फिर जहाँ सिंचाई का सामान किया गया, बगीचे लगाये गये, वहाँ तो हमेशा के लिए बस जाना होता है। इस प्रकार कृषि शुरू होने पर मनुष्यों के समूह टिक कर रहने लगे, और उनमें असली सभ्यता का उदय हुआ। तब उनके बाकायदा राज्य और समाज स्थापित तथा संगठित होने लगे और लिखने की कला का आविष्कार हुआ। खानाबदोश दशा में भी कुछ ज्ञान-विचार और शिक्षा थी, पर लिखने की कला का आविष्कार होने पर शिक्षा देने और पाने की परिपाटी चली जिससे ज्ञान और साहित्य चमका।

कृषि के बाद मनुष्य ने अनेक प्रकार के शिल्प निकाले। कई शिल्प—जैसे ऊन कातने-बुनने का—शायद खानाबदोशों में भी थे। किन्तु टिक कर बस जाने के बाद शिल्पों की बहुत उन्नति हुई, यहाँ तक कि आजकल का युग तो शिल्प-युग ही कहलाता है; क्योंकि कल-कारखानों के ज्ञान के बिना आज कोई जाति ज़िन्दा नहीं रह सकती।

§३. सभ्यता के चिन्ह—इतिहास के उपकरण—सभ्यता अपने चिन्ह पीछे छोड़ती जाती है। पुराने लोगों के बनाये हुए पत्थर और हड्डी के हथियार अब तक

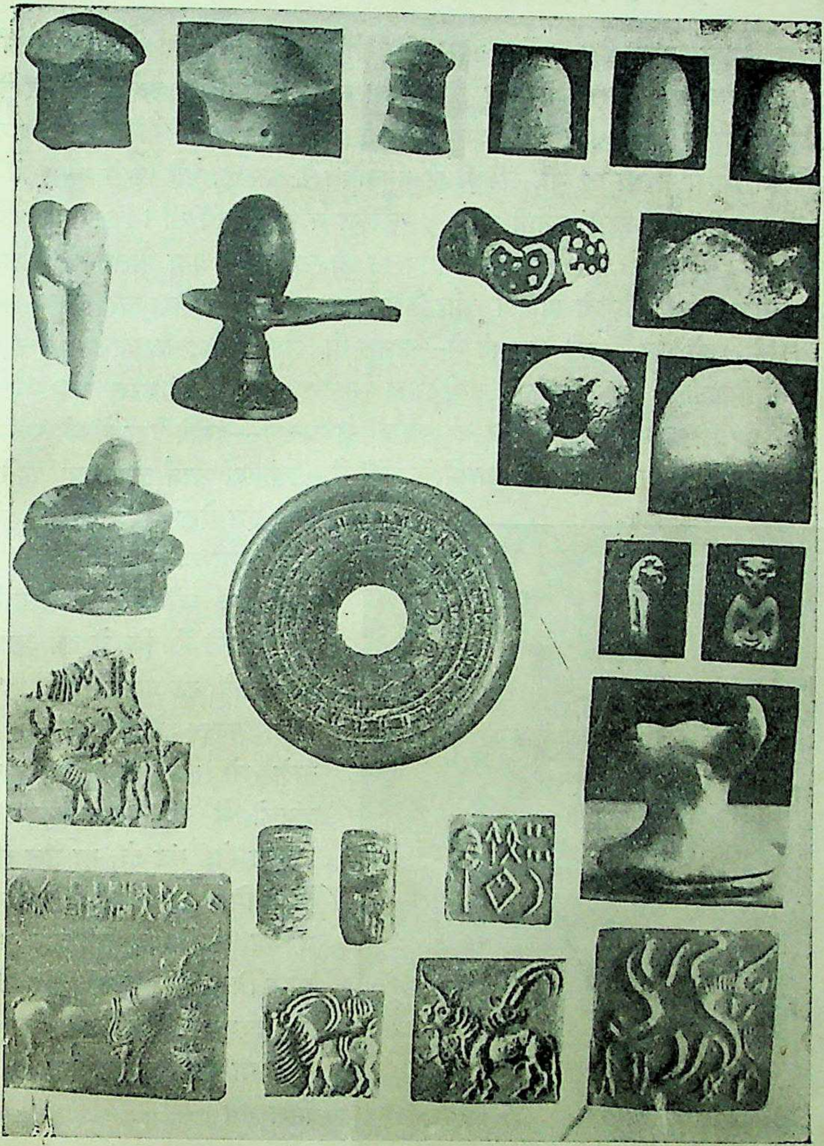

मोहनजो दड़ो की खुदाई में पायी गयी मुहरें, मूर्त्तियाँ आदि

(दूसरी पंक्ति में एक आधुनिक शिवलिंग तुलना के लिए रक्खा है ।)

[कापीराइट—भारतीय पुरातत्व-विभाग]

दबे हुए निकल आते हैं। ताँबे, काँसे और लोहे के पुराने किस्म के हथियार भी पुरानी बस्तियों की खुदाई में पाये जाते हैं। सभ्य मनुष्यों के अनेक प्रकार के उपकरणों और उनकी बनायी हुई इमारतों से उनका हाल जाना जाता है। मकान बनाने का शिल्प चलने पर भी, लकड़ी की बहुतायत के कारण, बड़े अरसे तक हमारे देश में लकड़ी की इमारतें बनती रहीं। ये सुरक्षित न रह सकती थीं। किन्तु बाद की पत्थर की इमारतों से हमें उन युगों की हालत का बहुत कुछ पता मिलता है। फिर हमारे पूर्वज अपने पीछे जो साहित्य और लेख छोड़ गये हैं—वे लेख चाहे पत्थर पर हों, चाहे सिक्कों पर, चाहे पुस्तकों में—उनसे तो उनका वृत्तान्त जानने में बड़ी सहायता मिलती है। सभ्यता के वे सभी चिह्न हमारे इतिहास के उपकरण हैं।

§४. **भारत और संसार की पहली सभ्यताएँ**—हमारे देश में जो पत्थर के पुराने हथियार पाये गये हैं, वे आर्यों के नहीं हैं, क्योंकि आर्य लोग जब पहले-पहल इस देश में प्रकट हुए, तो उनमें एक साहित्य का उदय हो चुका था, और उस साहित्य से हम जानते हैं कि वे तब कृषि और धातों का प्रयोग जानते थे। पुराने पत्थर के हथियार बरतने वाले जो लोग उत्तर भारत के जंगलों में रहते थे, वे प्राचीन द्राविड हों, मुंड हों, या उन सब से भी भिन्न कोई जाति हों। आर्यों ने जब उनके जंगल काट कर साफ़ किये, तो वे झाड़खंड जैसे दूर प्रदेशों में भाग गये, नष्ट हो गये, या कुछ अंश में आर्यों में मिल गये।

शव दफ़नाने का मटका—हड़पा से [भा० पु० वि०]

कृषक जातियाँ पहले-पहल नदियों के उपजाऊ काँठों में बसीं। संसार भर में नदियों के चार काँठे, जिनमें सबसे पहले सभ्यता का विकास हुआ,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुत ही प्रसिद्ध हैं। एक चीन की याङ्चेक्याङ और होग्राङ्हो नदियों का काँठा, दूसरे हमारे गंगा-जमना और सिन्ध-सतलज के काँठे, तीसरे ईरान की खाड़ी में गिरने वाली दजला और फ़रात नदियों का काँठा, और चौथे मिस्र की नील नदी का काँठा। नील के काँठे में पहले-पहल मिस्र के पुराने निवासी हामी या हैमेटिक लोगों की सभ्यता का उदय हुआ; दजला-फ़रात के तटों पर पहले अक्काद और सुमेर नाम की और फिर बाबुल (Babylon) और खल्द (Chaldae) नाम की बस्तियाँ थीं। अक्काद और सुमेर के लोग न जाने कौन थे। उनके द्राविड या तूरानी (तुर्कों-तातारों के सजातीय) होने की अटकल लगायी गयी है, पर वे किसी और जाति के भी हो सकते हैं। बाबुली लोग सामी या सैमेटिक जाति के थे, जिसमें अब अरब और यहूदी हैं। हमारे उत्तर भारत में आर्य जाति थी और चीन में चीनी। प्राचीन जगत् में यही सभ्य जातियाँ थीं और यही सभ्यता के केन्द्र थे।

हमारे सिन्ध प्रान्त के लारकानो ज़िले में मोहनजो दड़ो नामक स्थान की खुदाई से एक बड़ी पुरानी सभ्यता के अवशेष मिले हैं। उस स्थान पर एक सुन्दर नगरी थी जिसकी इमारतें ईंट और पत्थर की थीं, और जिसके मकान, नालियाँ, गलियाँ और बाज़ार बड़े सिलसिले से बने थे। उस नगरी के सभी मकान प्रायः एक सी हैसियत के हैं—ऐसा नहीं कि प्रजा के छोटे-छोटे मकानों के बीच कोई एक बड़ा राजमहल हो। इससे जान पड़ता है कि वहाँ प्रजातन्त्र राज्य था। वहाँ के लोग गेहूँ की खेती, कपास के कपड़े बनाना और लिखना भी जानते थे। उस नगरी के खंडहरों में बाट भी पाये गये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि वहाँ व्यापार-विनिमय भी चलता था। वहाँ से जो हथियार निकले हैं वे सब पत्थर और ताँबे के हैं; लोहे का पता वहाँ के लोगों को न था। अन्य कई जानवरों से परिचित होते हुए भी वे घोड़े को न जानते थे। कला की रुचि उनमें थी। वह बस्ती अन्दाज़न पाँच हज़ार बरस पुरानी है। उसी तरह के अवशेष हड़पा (ज़िला मन्टगुमरी), नाल (बिलोचिस्तान) आदि स्थानों में भी पाये गये हैं; और उनमें तथा सुमेर अक्काद के अवशेषों में बड़ी समानता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पाँच हज़ार बरस पहले पच्छिम एशिया से सिन्ध काँठे तक एक ही सभ्यता फैली थी। वह सभ्यता किस जाति की थी सो अभी कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। मोहनजो दड़ो की मुहरों के लेख अभी तक पढ़े नहीं जा सके; उनके पढ़े जाने पर इस प्रश्न का फ़ैसला हो सकेगा।

दूसरा प्रकरण

आरम्भिक आर्यों का ज़माना

अध्याय १

राजनीतिक वृत्तान्त

§१. **पौराणिक ख्यातें**—आर्य लोग भारतवर्ष में कब, कैसे और किधर से आये, इन प्रश्नों पर बड़ा विवाद है। वे समूचे उत्तर भारत और महाराष्ट्र में कैसे फैल गये इसका ब्यौरेवार वृत्तान्त हमारे पुराण नाम के ग्रन्थों से मिलता है। पुराण का अर्थ है पुराना वृत्तान्त या पुरानी ख्यात। शुरू में उन ग्रन्थों में उन ख्यातों के सिवा और कुछ न था। किन्तु बाद के लोगों ने पुराणों में धर्मोपदेश की और अन्य अनेक विषयों की भी बातें मिला दीं, और उन ख्यातों को भी अनेक कल्पित कहानियों में उलझा दिया, जिससे आज उनमें से सच को बीनना कठिन हो गया है। तो भी पिछले चालीस वर्ष में कुछ विद्वानों ने उनकी छानबीन कर उनमें से सच्चे अंश को उभारने की कोशिश की है।

हमारे पुराणों में आर्य राज्यों के आरम्भ से ले कर गुप्त राजाओं—जिनकी आगे चर्चा की जायगी—तक की ख्यातें हैं। उन ख्यातों में महाभारत का युद्ध बहुत प्रसिद्ध है। उस युद्ध पर आर्य इतिहास का पहला प्रकरण समाप्त होता है। हमारे देश में बहुत लोगों का विश्वास है कि वह युद्ध आज से पाँच हज़ार बरस पहले हुआ था, जब कि कलियुग का संवत् चला। किन्तु वह विक्रम-संवत् से ३०४४ बरस पहले चला, यह बात पीछे की बनी हुई है। पुरानी ख्यातों के अनुसार महाभारत का युद्ध विक्रम-संवत् से प्रायः १४ शती पहले हुआ था।

हममें से बहुत से लोग यह माने हुए हैं कि महाभारत युद्ध से भी लाखों बरस पहले हमारा इतिहास शुरू होता है। किन्तु पुराणों की ख्यातों में राजा इक्ष्वाकु के समय से उस युद्ध के समय तक राजाओं की कुल ६४-६५ पीढ़ियाँ लिखी हैं। एक पीढ़ी का समय औसतन १६ बरस मानने से उस इतिहास का आरम्भ महाभारत-युद्ध से प्रायः १५०० बरस पहले होता है। शायद किसी का यह खयाल हो कि एक पीढ़ी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के लिए १६ बरस बहुत कम समय है, हमारे पुरखा बहुत बरसों तक जिया करते थे। यदि हम मान भी लें कि हमारे पुरखा औसतन १५० बरस जीते थे, तो भी एक राजा जब मरा, उसके बेटे की आयु १२५ या १३० बरस की हुई; फिर वह तो केवल २५ या २० बरस ही राज्य कर सकेगा और उसके मरने पर उसका बेटा भी बूढ़ा हो चुकेगा। इस तरह औसत प्रायः वही निकल आयगा।

§२. मानव और ऐल वंश—पुरानी ख्यातों के अनुसार हमारे देश में पहले दो वंशों के राजा थे—एक मानव या सूर्य वंश के, दूसरे ऐल या चन्द्र वंश के। हमारे इतिहास का आरम्भ वे मानव वंश के राजा इक्ष्वाकु और ऐल वंश के राजा पुरूरवा से करते हैं। राजा पुरूरवा के वंश में चौथी पीढ़ी पर राजा ययाति हुआ। उसके पाँच बेटे थे—यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु, अनु और पुरु। इन भाइयों के नाम से अलग-अलग वंश चले; यदु के वंशज यादव कहलाये, पुरु के पौरव, आदि।

राजा इक्ष्वाकु के वंश में २०वीं पीढ़ी पर राजा मान्धाता और ३२वीं पीढ़ी पर राजा हरिश्चन्द्र हुए। मान्धाता आर्यावर्त्त यानी आर्यों के देश का सब से पहला सम्राट् था। उसके बाद की पुरानी ख्यातों में तीन उपाख्यान या वृत्तान्त सब से अधिक प्रसिद्ध हैं—एक पौरव वंश के राजा दुष्यन्त के पुत्र भरत का, दूसरा इक्ष्वाकु वंश के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्र का, और तीसरा महाभारत युद्ध का। भरत का समय पुरूरवा से ४२वीं पीढ़ी पर और रामचन्द्र का इक्ष्वाकु से ६४वीं पर है।

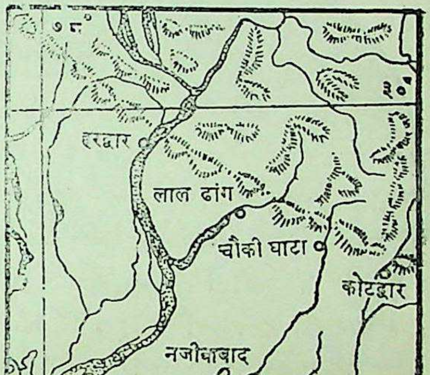

मालिनी नदी और उसका पास-पड़ोस

इस हिसाब से भरत हुए अन्दाज़न २२५० ई० पू० में और रामचन्द्र अन्दाज़न १९०० ई० पू० में।

§३. **राजा भरत का वृत्तान्त**—पौरव वंश में राजा दुष्यन्त के पुरखा अपना राज खो चुके थे। दुष्यन्त ने फिर से एक नया राज्य स्थापित किया। वह राज्य गंगा-जमना दोआब के उत्तरी हिस्से में प्रायः आजकल के मेरठ-बिजनौर ज़िलों में था। दुष्यन्त अपनी जवानी के दिनों में एक बार हिमालय की तराई में शिकार खेलने गया। दो बीहड़ जंगल पार कर उसकी सेना खुले सुनसान मैदान में जा निकली, जिसके आगे एक मनोरम वन दिखायी दिया। उस वन के परले छोर को मालिनी नदी धोती थी, जिसके किनारे एक ऋषि का आश्रम बसा जान पड़ता था। मालिनी आजकल मालिन कहलाती है, और गढ़वाल में तराई के पहाड़ों से निकल कर नजीबाबाद के पच्छिम बहती हुई गंगा में जा मिलती है। उसके तट पर का आश्रम कण्व ऋषि का था। गढ़वाल में चौकीघाटा नामक स्थान के उत्तर आज भी लोग किनकसोत नाम का एक कुंज दिखलाते, और उसे कण्व के आश्रम का स्थान कहते हैं। आश्रम को देख राजा ने सेना वहीं छोड़ दी और कुछ एक साथियों के साथ आगे बढ़ा। ऋषि के स्थान की तरफ़ जाते हुए वह अकेला रह गया। वहाँ उसे **"सूखे पत्तों में खिली कली के समान"** तापसी-वेष में एक युवती दिखायी पड़ी। कण्व **फल लाने को बाहर गये हुए थे और दो दिन बाहर ही रहे। उनकी अनुपस्थिति में**

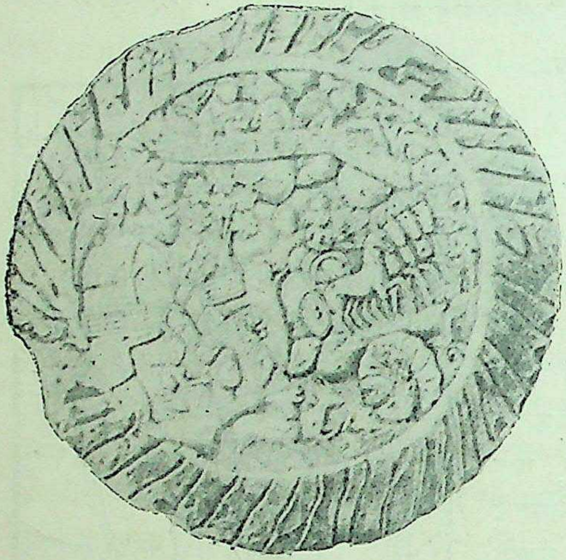

कण्व के आश्रम में दुष्यन्त का आगमन। भीटा (ज़िला इलाहाबाद) की खुदाई से पाये गये शुंग-युग के एक मिट्टी के टिकरे पर अंकित इस सुन्दर चित्र में शकुन्तला की कहानी अंकित जान पड़ती है।

[भा० पु० वि०]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनकी पुत्री शकुन्तला ने ही राजा का आतिथ्य किया। दुष्यन्त और शकुन्तला का परस्पर प्रेम और विवाह भी हो गया। कण्व के लौट आने पर शकुन्तला संकोच में बैठी थी, उनका बोझा उतारने को आगे नहीं बढ़ी। सब हाल जान लेने पर पिता ने उसे आशीर्वाद दिया।

शकुन्तला की कोख से एक बड़ा पराक्रमी बालक पैदा हुआ। वही प्रतापी भरत था। बड़ा होने पर उसने थानेसर के पास की सरस्वती नदी से गंगा तक और गंगा से अवध की सीमा तक अन्तर्वेद (ठेठ हिन्दुस्तान) का समूचा पच्छिमी भाग जीत लिया। वह 'चक्रवर्त्ती' (यानी जिसके रथ का चक्र समूचे आर्यावर्त्त में चले) और 'सम्राट्' कहलाया। भरत के वंशज भारत कहलाये, और उन भारतों में बड़े-बड़े राजा और ऋषि हुए। हमारे देश का नाम भारत भी शायद भरत के नाम से ही पड़ा। भरत के वंश में उससे छठी पीढ़ी पर राजा हस्ती हुआ, जिसने हस्तिनापुर नाम की बस्ती बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। मेरठ ज़िले के उत्तर-पूरबी कोने में अब भी, गंगा के पाँच मील पच्छिम, हसनापुर नाम के क़स्बे में उस बस्ती के अवशेष हैं।

भरत के राज्य में अवध के पच्छिम का ठेठ हिन्दुस्तान का समूचा इलाका था। किन्तु पीछे हस्तिनापुर के राज्य से उसका पूरबी हिस्सा अलग हो गया। वह पंचाल देश कहलाने लगा। उसके भी दो टुकड़े हुए। गंगा-जमना दोआब का निचला हिस्सा दक्षिण पंचाल कहलाया। उसकी राजधानी काम्पिल्य थी, जिसका नाम आज तक फ़र्रुख़ाबाद ज़िले के काम्पिल गाँव के नाम में ज़िन्दा है। उसके उत्तर गंगा पार उत्तर पंचाल देश था। उसकी राजधानी अहिच्छत्रा थी, जिसकी जगह पर आज बरेली ज़िले का रामनगर क़स्बा है।

§४. **राम दाशरथि**—अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकु के वंशजों का राज्य चला आता था। अयोध्या के ही नाम से वह इलाक़ा अब अवध कहलाता है। उसका पुराना नाम कोशल था। इक्ष्वाकु के वंश में ६१वीं पीढ़ी पर रघु हुआ; रघु के पोते राजा दशरथ हुए। राजा दशरथ के तीन रानियाँ थीं—कौशल्या, कैकेयी और सुमित्रा। "कौशल्या" का अर्थ है कि वह कोशल देश की थीं और "कैकेयी" केकय देश की;—उनके असली नाम हम नहीं जानते। केकय देश उत्तर-पच्छिमी पंजाब में चिनाब नदी के पच्छिम नमक की पहाड़ियों तक था। आजकल के गुज़रात, शाहपुर और जेहलम ज़िले उसे सूचित करते हैं। उन ज़िलों के

वीर और सुन्दर स्त्री-पुरुष आज भी प्रसिद्ध हैं। कैकेयी वैसी ही वीर और सुन्दर स्त्री थी। एक बार युद्ध में राजा दशरथ के रथ का पहिया धुरी से निकल गया, तब कैकेयी ने अपना हाथ लगा कर उसे सँभाला। उस आपत्ति में उनको बचाने के कारण दशरथ ने कैकेयी को मुँह-माँगे दो वर देने का वचन दिया।

राजा दशरथ की रानियों से चार बेटे हुए—कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न। कोशल देश की पूरबी सीमा सदानीरा यानी गंडक नदी थी। उसके पूरब विदेह देश था, जिसे आजकल तिरहुत कहते हैं। वहाँ भी इक्ष्वाकुओं के सम्बन्धियों की एक शाखा का राज्य बहुत पहले से स्थापित हो चुका था, और उसके सब राजा 'जनक' कहलाते थे। राजा सीरध्वज जनक की बेटी सीता जब युवती हो गयीं, तब उन्होंने उनके लिए स्वयम्वर रचा। एक भारी कड़ा धनुष उन्होंने स्वयम्वर-मंडप में रखवा दिया, और जो कोई राजकुमार उसे उठा कर चढ़ा ले और उसमें बाण तान ले, उसके साथ सीता का विवाह करने की प्रतिज्ञा की। राम उस परीक्षा में सफल हुए, तब सीता ने उन्हें अपना पति चुना।

राजा दशरथ ने रामचन्द्र को युवराज-तिलक दे बुढ़ापे में राज-काज से छुट्टी पाने का विचार किया। उनकी प्रजा ने राम का अभिषेक करने की स्वीकृति दे दी। उस समय के आर्यावर्त्त में नये राजा को जब राज्य मिलता, तब उसका एक बाकायदा संस्कार होता था, और उसे प्रजा के साथ कई प्रतिज्ञाएँ करनी पड़ती थीं। उसी समय उसका 'अभिषेक' यानी सींचने या शुद्ध करने की रस्म होती थी, जिसके लिए गंगा सरस्वती आदि पवित्र नदियों का पानी लाया जाता, और जिस देश का वह राजा होता, उसके एक तालाब का पानी भी उन पानियों में मिलाया जाता। राम के अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी, तो कैकेयी रूठ बैठीं। उन्होंने राजा से ये वर माँगे कि भरत को गद्दी दी जाय, और रामचन्द्र को चौदह बरस का बनवास मिले! दशरथ लाचार हो गये।

राम वन को चले गये; सीता और लक्ष्मण भी उनके साथ गये। उधर भरत अपनी ननिहाल केकय देश में थे। उन्हें बुलाया गया तो वे अपनी माता के काम पर बहुत लज्जित हुए। दशरथ भरत के पहुँचने से पहले चल बसे थे। अयोध्या में पहुँच कर भरत अपने भाई के पास वन में गये, और भाई की आज्ञानुसार उनके प्रतिनिधि की हैसियत से कोशल का राज्य करने लगे।

राम प्रयाग पर गंगा पार कर (आधुनिक बुन्देलखंड में) चित्रकूट पहुँचे। वहाँ से वन ही वन वे गोदावरी के किनारे दंडक वन में पंचवटी नामक स्थान पर गये, और वहाँ कुछ समय काटा। पंचवटी का स्थान आजकल के नासिक तीर्थ में माना

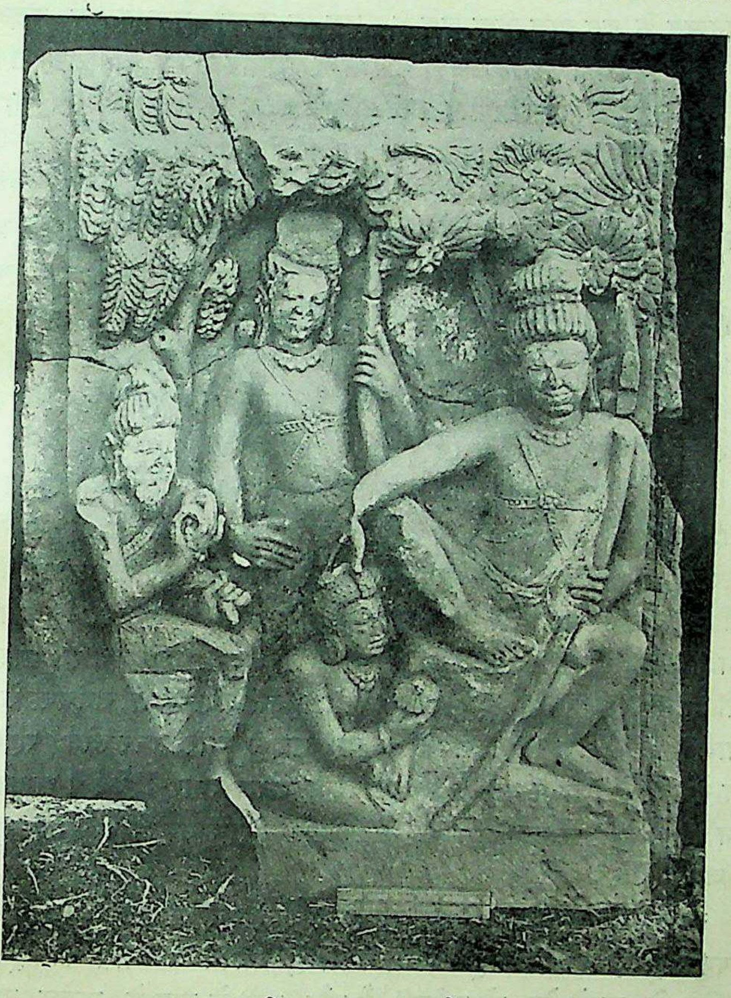

रामचन्द्र अहिल्या का उद्धार करते हुए (?)

देवगढ़ (जि० झाँसी) के गुप्तकालीन मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य

[भा० पु० वि०]

जाता है। पंचवटी से वे गोदावरी के निचले काँठे में गये, जहाँ जनस्थान नाम की राक्षसों की एक बस्ती थी। उन्हीं राक्षसों का एक राज्य लंका में भी था। रामचन्द्र अपने वनवास के दस बरस बिता चुके थे, जब कि उनकी जनस्थान में राक्षसों के साथ छेड़छाड़ हो गयी, और राक्षसों का राजा दशग्रीव रावण सीता को लंका ले भागा। राम सीता की तलाश में दक्खिन-पच्छिम तरफ़ पम्पा सरोवर पर पहुँचे, जहाँ उनकी सुग्रीव और उसके मन्त्री हनुमान से भेंट हुई। वहाँ किष्किन्धा नाम की वानरों की बस्ती थी, और सुग्रीव उसी के राजा बाली का निर्वासित भाई था। हैदराबाद रियासत में अनगुंडी नामक बस्ती को पुरानी किष्किन्धा की जगह पर माना जाता है। राम ने बाली को मार कर सुग्रीव को वानरों का राजा बनाया। उसकी तथा हनुमान की सहायता से वानरों और ऋक्षों की एक बड़ी सेना के साथ 'लंका' में प्रवेश किया, और रावण को मार कर सीता को वापिस लिया। 'लंका' से सिंहल द्वीप समझा जाता है और वहाँ आजकल की पोलननारुव (पौलस्त्य-नगर) नाम की बस्ती को लंका की पुरानी राजधानी बताया जाता है।

काव्य-कल्पना ने रामचन्द्र के वृत्तान्त पर रंग चढ़ा दिया है। हमको उसे इतिहास की दृष्टि से देखना चाहिए। प्रामाणिक विद्वानों का कहना है कि 'लंका' विन्ध्यमेखला में अमरकंटक की चोटी पर थी; किष्किन्धा, जनस्थान और पंचवटी बस्तियाँ उसके उत्तर थीं, तथा 'गोदावरी' भी चित्रकूट और अमरकंटक के बीच कोई छोटी नदी थी। किन्तु यदि लंका को प्रचलित विश्वास के अनुसार सिंहल द्वीप में भी मानें तो भी यह स्पष्ट है कि विन्ध्यमेखला में और उसके दक्खिन रामचन्द्र के समय तक आर्यों की कोई बड़ी बस्ती न थी। वहाँ राक्षस और वानर लोग रहते थे। कल्पना ने राक्षसों और वानरों के भी विचित्र रंग-रूप बना दिये हैं। असल में वे दक्खिन की दो पुरानी मनुष्यजातियाँ थीं। आर्यों के साथ राक्षसों के विवाह-सम्बन्ध भी हो जाया करते थे।

वानर और ऋक्ष भी दक्खिन की कोई पुरानी जातियाँ थीं। जंगली जातियाँ प्रायः पशुओं, पेड़ों आदि की पूजा किया करती हैं, और जिस चीज़ को पूजती हैं, उसके चित्र से अपने देह को आँकतीं हैं और उसी के नाम से उनका नाम पड़ जाता है। वानर और नाग प्राचीन भारत की ऐसी ही जातियाँ थीं। एक मत यह है कि वानर शब्द ओराँव नामक द्राविड जाति के नाम का संस्कृत रूपान्तर है। रामचन्द्र की ख्यात से यह सार निकलता है कि उस

समय तक आर्य लोग दक्खिन में न पहुँचे थे, और रामचन्द्र ने पहलेपहल दक्खिन का रास्ता खोला।

चौदह बरस बाद घर लौट कर राम ने कोशल का राज्य सँभाला। उनका शासन इतना समृद्ध और न्यायपूर्ण था कि अब भी जिस शासन में प्रजा बड़ी सुखी हो उसे रामराज्य कहा जाता है। उनके भाई भरत को अपने ननिहाल का केकय देश का राज्य मिला था। केकय देश के साथ लगा हुआ सिन्धु देश था जिस में आजकल के सिन्धसागर दोआब का नमक-पहाड़ियों के दक्खिन का अंश और डेराजात (अर्थात् सिन्ध काँठे के डेरा-इस्माइलखाँ, डेरा-गाज़ीखाँ ज़िले) शामिल थे। वह भी भरत के राज्य में था। पच्छिम के ईरानी लोग इसी सिन्धु देश को 'हिन्दु' बोलते थे। बाद में इसी के नाम से उन्होंने हमारे सारे देश का नाम 'हिन्द' डाल दिया। यूनानी और युरोपियन लोग उसी को 'इन्द' बोलने लगे।

भरत के पुत्र तक्ष और पुष्कर थे। कहते हैं, उन्होंने गान्धार देश जीत कर तक्षशिला और पुष्करावती बस्तियाँ बसायी थीं। गान्धार देश केकय के उत्तर-पच्छिम और सिन्धु देश के उत्तर सटा हुआ था। तक्षशिला* रावलपिंडी से २० मील उत्तर-पच्छिम थी, और पुष्करावती काबुल (कुभा) और स्वात (सुवास्तु) नदियों के संगम पर। तक्षशिला का इलाक़ा पूरबी गान्धार था, और पुष्करावती का पच्छिमी गान्धार। आगे चल कर हमको इन प्रदेशों और नगरियों से बहुत वास्ता पड़ेगा।

§५. यादव और कौरव वंश—महाभारत-युद्ध—महाराज राम से पहले यादव वंश की बड़ी वृद्धि हुई थी, और पीछे और भी हुई। यादवों के कई राज्य थे जो मथुरा से गुजरात तक फैले हुए थे। मथुरा के चौगिर्द का प्रदेश शूरसेन कहलाता था। जमना के दक्खिन का प्रदेश जिसे आजकल बुन्देलखंड कहते हैं चेदि कहलाता था; वहाँ भी यादव बसे हुए थे। आजकल के मालवा के पच्छिम भाग को अवन्ति और पूरब को दशार्ण देश कहते थे। दशार्ण देश में दशार्णा नदी बहती थी, जो अब भी धसान कहलाती है। अवन्ति और दशार्ण में तथा आजकल के गुजरात-काठियावाड़ में भी यादव लोग बसे थे। अवन्ति की राजधानी उज्जयिनी (उज्जैन) के दक्खिन, नर्मदा नदी में एक टापू है जिसे आजकल मान्धाता कहते हैं। वहाँ

---

* तक्षशिला के खंडहर बहुत दूर-दूर तक फैले हैं। उसकी सबसे पुरानी बस्ती वह थी जहाँ आजकल भीर गाँव है, तथा पुरातत्व-संग्रहालय (आर्कियोलौजिकल म्यूज़ियम) बना है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

माहिष्मती नाम की यादवों की एक प्रसिद्ध नगरी थी। मालवा से दक्खिन जाने वाले रास्ते को वह सब से बड़े नाके पर काबू करती थी। उसके दक्खिन विदर्भ देश था जिसे आजकल बराड़ कहते हैं। वह भी एक यादव राज्य था।

इधर भारत वंश में भरत से प्रायः २८ वीं पीढ़ी पर, कुरु नाम का एक राजा हुआ। उसी के नाम से सरस्वती का काँठा कुरुक्षेत्र कहलाने लगा। कुरु के वंशज कौरव कहलाये। उस वंश की एक छोटी शाखा में आगे चल कर वसु नाम का राजा हुआ। वसु ने चेदि, कौशाम्बी और मगध को जीत लिया। आजकल के प्रयाग का इलाका तब वत्स देश कहलाता था। उसकी राजधानी कौशाम्बी प्रयाग से ३२ मील ऊपर जमना किनारे थी, जहाँ अब कोसम का ढहा हुआ शहर और गढ़ है। मगध दक्खिनी बिहार का नाम था, जिसमें अब पटना और गया ज़िले हैं। वसु के समय से पहले वह निरा जंगल था, और उसमें आर्यों की बस्ती नाम को ही थी; किन्तु वसु के पीछे उसके जो वंशज मगध में रहे, उन्होंने उसे एक बड़ा राज्य बना दिया। मगध का राजा जरासन्ध और चेदि का राजा शिशुपाल वसु के वंशज थे।

कौरव वंश की बड़ी शाखा हस्तिनापुर में राज्य करती रही। उस वंश में धृतराष्ट्र और पांडु दो भाई हुए। धृतराष्ट्र अन्धा था। उसकी रानी गान्धारी अर्थात् गान्धार देश की राजकुमारी से उसके बहुत से बेटे हुए, जिनमें दुर्योधन, दुःशासन आदि मुख्य थे। पांडु की दो रानियाँ थीं—कुन्ती और 'माद्री'। पंजाब में रावी और चिनाब के बीच मद्र देश था जिसकी राजधानी शाकल (आजकल का स्यालकोट) थी। मद्र की स्त्रियाँ हमारे प्राचीन इतिहास में अद्वितीय सुन्दरियाँ प्रसिद्ध थीं। पांडु की छोटी रानी मद्र की होने से माद्री कहलायी। विवाह होने से पहले कुन्ती के एक बेटा हो चुका था जिसे उसने शर्म के मारे बहा दिया। एक सूत ने उसे उठा कर पाल लिया था। उसका नाम कर्ण था। कर्ण को दुर्योधन ने शरण दी। पांडु के पाँच बेटे हुए। कुन्ती से युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन; और माद्री से नकुल, सहदेव। वे पाँच पांडव कहलाये। धृतराष्ट्र के बेटे कौरव ही कहलाते रहे। कौरवों और पांडवों में बचपन से बड़ी डाह थी।

जरासन्ध ने मगध के राज्य को एक साम्राज्य बना लिया। सब पड़ोसी राजा उसे अपना बड़ा मानते थे। चेदि का शिशुपाल उसका मित्र था। मथुरा के अन्धक-यादवों का राजा कंस भी, जो जरासन्ध का दामाद था, उसे अपना अधिपति मानता और उसके सहारे प्रजा पर जुल्म करता था। अन्धकों ने उसके विरुद्ध अपने पड़ोसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वृष्णि-यादवों से मदद माँगी। वृष्णियों के नेता वासुदेव कृष्ण थे। कृष्ण ने कंस को मार डाला। किन्तु जरासन्ध का मुकाबला वे लोग न कर सकते थे। अन्धक और वृष्णि द्वारका की तरफ़ चले गये, जहाँ उनका एक 'संघ' अर्थात् पंचायती राज्य स्थापित हुआ। इस संघ के दो 'संघ-मुख्य' अर्थात् मुखिया (प्रेसिडेंट) एक साथ चुने जाते थे। उग्रसेन एक मुखिया थे और वासुदेव कृष्ण दूसरे।

इधर कौरव-पांडवों की डाह बढ़ती गयी। पांडवों ने दक्खिन पंचाल के राजा द्रुपद यज्ञसेन की लड़की कृष्णा को स्वयम्वर में प्राप्त कर उससे विवाह किया। उन्होंने राज्य में अपना हिस्सा माँगा, पर कौरव उन्हें कुछ न देना चाहते थे। अन्त में यह ठहरा कि जमना पार कुरुक्षेत्र के दक्खिन के जंगल को वे बसा लें। वह जंगल तब खांडव वन कहलाता था। उसे जला कर पांडवों ने वहाँ इन्द्रप्रस्थ नगर बसाया जिसके नाम की याद अब दिल्ली के पुराने किले के पास इन्दरपत बस्ती में है। इन्द्रप्रस्थ की समृद्धि जल्द बढ़ने लगी। पांडव महत्वाकांक्षी थे, चुपचाप न बैठ सके। उनके नये राज्य के दक्खिन सटा हुआ शूरसेन देश था, जहाँ जरासन्ध की तूती बोलती थी। इसी कारण जरासन्ध से उनका बैर और वासुदेव कृष्ण से मैत्री हो गयी। कृष्ण की सहायता से भीम और अर्जुन ने जरासन्ध को मार डाला। उसका साम्राज्य टूट गया। मगध के ठीक पूरब सटा हुआ अंग देश (मुंगेर-भागलपुर) पहले उसके अधीन था। अब दुर्योधन की सहायता से कर्ण वहाँ का राजा बना। इधर चेदि का राजा शिशुपाल अपने पड़ोसियों में प्रबल हो गया।

आर्यों के महत्वाकांक्षी राजा दिग्विजय करके राजसूय या अश्वमेध यज्ञ किया करते थे। पांडवों ने भी राजसूय किया। कई पड़ोसी राजाओं ने खुशी से, कई एक ने डर और दबाव से, उनकी सत्ता मानी और उनके यज्ञ में भाग लिया। धृतराष्ट्र के बेटों को अपने भाइयों के विजयोत्सव में आना पड़ा; पर उनका दिल जला जाता था। जरासन्ध के मित्र शिशुपाल को कृष्ण से विशेष चिढ़ थी। उनकी स्पर्धा यहाँ तक बढ़ी कि उसी यज्ञ में कृष्ण ने उसे मार डाला। यों पांडवों के एक और पड़ोसी प्रतिद्वन्द्वी का अन्त हुआ।

कौरवों के मामा गान्धार देश के शकुनि ने उन्हें पांडवों के पराभव का एक उपाय सुझाया। उस युग के आर्यों में जुआ खेलने का बड़ा व्यसन था। जुए की चिनौती से मुँह मोड़ना वैसा ही लज्जास्पद समझा जाता था जैसा युद्ध से। शकुनि और दुर्योधन ने पांडवों को जुए का निमन्त्रण दिया। उसमें वे अपना राज्य तक हार

बैठे, और उन्हें बारह बरस बनवास और एक बरस के अज्ञात वास का

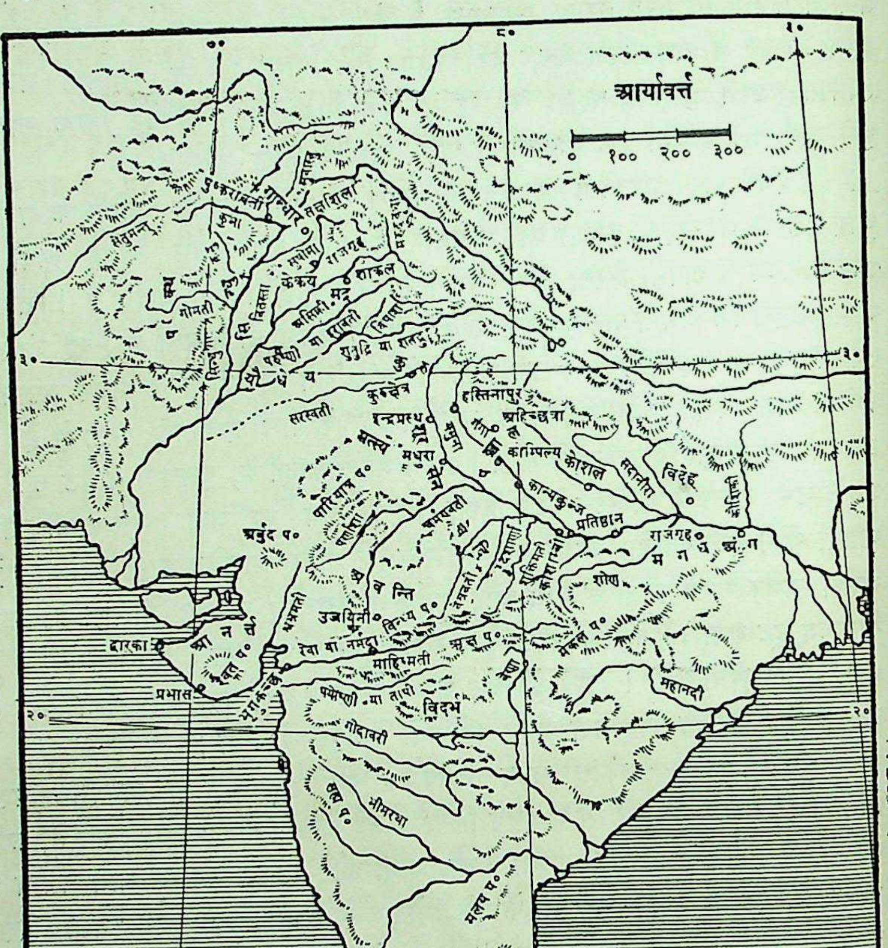
आर्यावर्त्त
० १०० २०० ३००
पुष्करावती
गान्धार
तक्षशिला
कुभा
सुवास्तु
सेतुमन्त्
सुषोमा
राजगृह
कैकय
वितस्ता
शाकल
मद्र
असिक्नी
परुष्णी या इरावती
विपाशा
शुतुद्रि या शतद्रु
गोमती
सिन्धु
यौधेय
कुरु
कुरुक्षेत्र
सरस्वती
इन्द्रप्रस्थ
मत्स्य
मथुरा
यमुना
गंगा
हस्तिनापुर
अहिच्छत्रा
कांपिल्य
कोशल
सदानीरा
विदेह
कौशिकी
कान्यकुब्ज
प्रतिष्ठान
राजगृह
मगध
अंग
शोण
पारियात्र प०
अर्बुद प०
चर्मण्वती
अवन्ति
उज्जयिनी
विन्ध्य प०
आनर्त
द्वारका
प्रभास
रेवा या नर्मदा
माहिष्मती
ऋक्ष प०
मेकल प०
पयोष्णी या तापी
विदर्भ
भृगुकच्छ
गोदावरी
महानदी
भीमरथी
सह्य प०
मलय प०
३०
२०
१०
७०
८०
९०

दंड मिला।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उनके पीछे दुर्योधन ने अपना पक्ष दृढ़ किया । पांडव तेरहवें बरस अपने राज्य के पड़ोस में मत्स्य देश (आजकल के अलवर) के राजा विराट् के यहाँ आ गये । उनका तेरहवाँ बरस बीतने को था कि कौरवों ने अपने पड़ोसी त्रिगर्त्त देश (जलन्धर-हुशियारपुर-कांगड़ा जिलों)के राजा के साथ मिल कर मत्स्यों पर धावा किया और उनके डंगर लूट ले चले । पांडवों की सहायता से विराट् ने उन्हें हराया ।

उसके बाद पांडवों ने अपना राज्य वापिस माँगा, पर दुर्योधन ने कहा—मैं युद्ध के बिना सुई की नोक बराबर भूमि भी न दूँगा । दोनो पक्षों में युद्ध ठन गया और वह घरेलू आग भभक कर भारत के सब राज्यों में फैल गयी । त्रिगर्त्त देश का राजा दुर्योधन का मित्र था, और गान्धार का शकुनि उसका मामा था । इनके अतिरिक्त सिन्धु देश का राजा जयद्रथ भी उसका बहनोई था । इन तीनों के दबाव से पंजाब के प्रायः सभी राज्य कौरवों की तरफ़ हो गये । इसी तरह कर्ण के दबाव से पूरब के राज्य भी उनमें आ मिले । ठेठ हिन्दुस्तान और गुजरात के राज्य दोनों तरफ़ बँटे थे । पांडवों की सेनाएँ मत्स्य की राजधानी उपप्लव्य पर जुटने लगीं; कौरवों की सेनाएँ पंजाब के पूरबी छोर और हस्तिनापुर पर जमा होने लगीं । सन्धि की बातचीत विफल होने पर पांडव सेना उनके बीच उत्तर को बढ़ी, और कुरुक्षेत्र पर दोनों तरफ़ के प्रवाह आ टकराये । अठारह दिन के घमासान युद्ध के बाद पांडवों की जीत हुई । वे कुरु देश के राजा और आर्यावर्त्त के सम्राट् हुए ।

रामायण की ख्यात से यदि हम महाभारत की ख्यात की तुलना करें तो यह स्पष्ट होता है कि इस बीच आर्य्यों की बस्तियाँ काफ़ी फैल गयी थीं । वे पूरब की तरफ़ मगध और अंग तक, और दक्खिन की तरफ़ माहिष्मती और विदर्भ तक जा पहुँची थीं । यों तो महाभारत में और आगे पूरब और दक्खिन के राजाओं के भी नाम दिये हैं, पर छानबीन से पाया जाता है कि वे पीछे जोड़े गये हैं । विदर्भ और अंग इस युद्ध के समय तक आर्यावर्त्त की अन्तिम सीमाएँ थीं ।

अध्याय २

वैदिक आर्यों का जीवन

§१. **वेद**—आर्यावर्त्त के आर्यों में वेद नाम का साहित्य प्रचलित था। वेद का अर्थ है ज्ञान। हमारे आर्य्य पुरखों का वह वेद संसार भर में सब से पुराना साहित्य है। वेद का बड़ा अंश कविता में है। उसमें जो एक-एक साधारण पद्य होता है उसे ऋच् या ऋचा कहते हैं। जो ऋचाएँ गाने लायक हैं, अर्थात् जो गीतियाँ हैं, उन्हें साम कहते हैं। वेद का कुछ अंश गद्य भी है, और उस गद्य के एक-एक सन्दर्भ को यजुष् कहते हैं। ऋचाओं, सामों और यजुषों को मन्त्र भी कहते हैं।

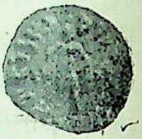
विश्वामित्र ऋषि
दूसरी शती ई० पू०
के औदुम्बर गण के
एक सिक्के पर से

प्रत्येक वेदमन्त्र अर्थात् प्रत्येक ऋचा साम और यजुष् के साथ किसी न किसी ऋषि का नाम जुड़ा हुआ है। अधिकांश हिन्दू वेदों को अपौरुषेय मानते हैं। उनका कहना है कि वेद अनादि हैं, और ऋषियों के द्वारा परब्रह्म की प्रेरणा से प्रकट हुए हैं। ऋषियों ने वेदों का दर्शन पाया था; वे 'मन्त्रद्रष्टा' थे। आधुनिक और कुछ प्राचीन विवेचक वेद-मन्त्रों को बनाने का श्रेय ऋषियों को ही देते हैं। उनका कहना है कि ऋषि वे प्रतिभाशाली कवि थे, जिन्होंने ऋचाएँ (और साम तथा यजुष् भी) रचीं।

आर्य्य लोग निरे योद्धा ही नहीं थे। उनमें अपने चारों तरफ़ की वस्तुओं को ध्यान से देखने और उनके विषय में सोचने-विचारने की उत्कट प्रवृत्ति थी। अपने विचारों को उन्होंने सुन्दर भाषा में प्रकट किया है। सब से पहले प्रसिद्ध ऋषि विश्वामित्र थे जो इक्ष्वाकु से २६ वीं पीढ़ी के समय अर्थात् अन्दाजन २४७५ ई० पू० में थे। ऋषियों का सिलसिला तभी शुरू हुआ और प्रायः सात सौ बरस चला।

ऋचाएँ, साम और यजुष् पहले फुटकर रूप में थे। भिन्न-भिन्न ऋषियों के परिवारों या शिष्य-परम्पराओं में धीरे-धीरे उनका संग्रह होता गया। इस प्रकार उनकी संहिताएँ बनने लगीं। संहिता का अर्थ है संकलन या संग्रह। महाभारत युद्ध के समय कृष्ण द्वैपायन मुनि हुए। उन्होंने अन्तिम बार अपने समय तक के समूचे 'वेद' की अर्थात् समूचे ज्ञान की बाकायदा संहिताएँ बना दीं, जो आज तक चली

आती हैं। उन्होंने कुल ऋचाओं की एक संहिता बनायी जिसमें उन ऋचाओं को छाँट कर ऋषि-वार और विषय-वार विभाग कर दिया। इसी तरह सामों और यजुषों की अलग-अलग संहिताएँ कर दीं।

ऋक्संहिता, सामसंहिता और यजुःसंहिता मिल कर "त्रयी" कहलायीं। त्रयी हमारे साहित्य का सब से पुराना और पवित्र संग्रह है। ऋक्-संहिता में कुल १०१७ सूक्त या कविताएँ हैं जो दस मंडलों में बँटी हैं। 'सूक्त' का अर्थ है अच्छी उक्ति, सुभाषित। प्रत्येक सूक्त में ३-४ से ले कर ५०-१०० तक ऋचाएँ हैं। सामसंहिता, ऋक्संहिता की करीब तिहाई है, और उसमें बहुत से साम ऐसे हैं जो ऋक्संहिता में आ चुके हैं। यजुःसंहिता और भी छोटी है, और वह कुल ४० अध्यायों में बँटी है। दूसरे प्रकार के कुछ विविध मन्त्रों को कृष्ण द्वैपायन ने त्रयी से अलग अथर्वसंहिता में संगृहीत किया, और फिर उसी तरह सूतों की ख्यातों की भी एक संहिता बनायी, जिसका नाम हुआ पुराणसंहिता। त्रयी के साथ अथर्ववेद और पुराणवेद (अथवा इतिहासवेद) को मिला कर पाँच वेद कहा गया। वेद अर्थात् ज्ञानकोश का इस प्रकार बँटवारा करने के कारण कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास अर्थात् वेद-विभाजक कहलाये।

आजकल जिसे हम उर्दू-हिन्दी की खड़ी बोली कहते हैं, वह उसी इलाके की ठेठ बोली है, जहाँ हस्तिनापुर और उत्तर पंचाल के प्राचीन राज्य थे। ऋग्वेद भी उसी इलाके की पुरानी भाषा में है। अधिकतर ऋषि भरत वंश के और उत्तर पंचाल तथा हस्तिनापुर राज्यों के ही थे।

§२. **वैदिक समाज की बनावट**—आर्य लोग खास कर पशुपालक, कृषक और योद्धा थे। वे ऐसे छोटे-छोटे समूहों में रहते थे जो परिवार के नमूने पर बने हुए थे। उन समूहों को वे 'जन' कहते थे, और जन के सब आदमी 'सजात' यानी एक ही वंश के कहे जाते थे। एक जन के सब सजात मिला कर 'विशः' अर्थात् प्रजा कहलाते। कृषक होने के कारण प्रत्येक जन की विशः किसी न किसी इलाके में प्रायः बस चुकी थीं, किन्तु कोई-कोई विशः 'अनवस्थित' अर्थात् खानाबदोश भी थीं। प्रत्येक जन की कई खाँपें या टुकड़ियाँ होतीं जो 'ग्राम' कहलाती थीं। ग्राम शब्द का असल अर्थ है जत्था या समुदाय। बाद में एक-एक ग्राम जहाँ बस गया, वह ज़मीन भी ग्राम कहलाने लगी। कई घूमते-फिरते ग्रामों का हाल भी मिलता है। ग्राम का नेता 'ग्रामणी' कहलाता था। लड़ाई के लिए जन के सब लोग ग्रामवार जमा होते थे; उनका वह ग्रामवार जमाव 'संग्राम'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कहलाता था। उसी से 'संग्राम' का अर्थ युद्ध हो गया। संग्राम में प्रत्येक जवान अपने शस्त्रास्त्र ले कर और कवच पहन कर आता था। साधारण लोग पैदल और नेता लोग रथों में आते थे। रथ प्रायः बैल के चमड़े से मढ़े होते थे। संग्राम में घुड़सवारों का उल्लेख नहीं मिलता। धनुष, भाला, बर्छा, कृपाण और फरसा मुख्य शस्त्र थे। बाण या शर प्रायः सरकंडे के होते थे और उनकी अनी, सींग हड्डी या धातु की।

युद्ध आर्यों के जनों में परस्पर भी होते थे और 'दासों' अर्थात् पुराने निवासियों के साथ भी। 'दास' आर्य्यों से भिन्न रंग के, काले, होते थे और उनकी नाक नुकीली और उभरी न होती थी। इस कारण आर्य्य लोग उन्हें 'अनासः' अर्थात् बिना नाक के कहते थे।

एक-एक ग्राम का मुखिया जैसे ग्रामणी कहलाता था, वैसे ही सारे जन का राजा। वह जन या विशः का राजा होता था न कि भूमि का। उसका राज्य 'जान-राज्य' अर्थात् जन का मुखियापन कहलाता था और वह एक किस्म का "ज्यैष्ठ्य" यानी जेठापन या नेतृत्व था, न कि मिल्कियत।

§३. वैदिक आर्यों का आर्थिक जीवन—पशुपालन और कृषि आर्यों की मुख्य जीविकाएँ थीं। कृषि के लिए सिंचाई भी होती थी। खादों का प्रयोग शायद न होता था, उस समय बाग़बानी भी शुरू न हुई थी। खेती की उपज मुख्य कर अनाज थे। आर्य लोग कपास को न जानते थे। उस समय संसार की दूसरी जातियों को भी प्रायः उसका पता न था। लोगों का धन मुख्यतः उनके पशुओं के रेवड़ और दास-दासियाँ होती थीं। भूमि भी पारिवारिक सम्पत्ति में शामिल होती थी, पर उसके खरीदने-बेचने का रिवाज नहीं के बराबर था। दाय-भाग से, जंगल साफ़ करने से या नये देश खोजने या जीतने से नयी भूमि पायी जा सकती थी। युद्ध में जीती भूमि राजा की न होती, वह सारे जन में बँट जाती थी। जंगम सम्पत्ति का क्रय-विक्रय काफ़ी था। गाय तो प्रायः सिक्के का काम देती थी; चीज़ों के दाम गौवों में गिने जाते थे।

निष्क नाम का एक सोने का सिक्का भी चलता था; पर शुरू में तो वह भूषण था और बाद में प्रायः दान या खंडनी (ransom) देने में उसका अधिक ज़िक्र आता है, व्यापार में नहीं। ऋण देने-लेने की प्रथा थी, और प्रायः जुए में हारना ऋण लेने का कारण होता था। ऋण न चुकाने से दास बनना पड़ता था। दास-दासियाँ ज़रूर थीं, पर लोग उनपर निर्भर न थे। बढ़ई या रथकार का काम बहुत ऊँचा माना जाता था क्योंकि युद्ध और खेती के लिए रथ, हल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और गाड़ियाँ वही बनाता था। उसी तरह लोहार (कर्म्मार) की बड़ी हैसियत थी; पर कई विद्वानों का कहना है कि वह ताँबे के ही हथियार बनाता था, अर्थात् आर्य लोग तब लोहे को न जानते थे। चमड़ा रंगने और ऊन, सन, क्षौम (अलसी के रेशे) आदि का कपड़ा बुनने के काम भी ऊँचे गिने जाते थे। स्त्रियाँ चटाइयाँ भी बुनतीं थीं। प्रत्येक ग्राम में कृषकों के साथ सूत, रथकार, कर्म्मार (लोहार) आदि भी होते थे, जिनकी हैसियत साधारण लोगों से ऊँची—प्रायः ग्रामणी के बराबर—मानी जाती थी। थोड़ा व्यापार भी था। नदियों में तो नावें खूब चलती ही थीं, शायद वे ईरान की खाड़ी में भी किनारे के साथ-साथ जाती थीं।

§४. राज्य-संस्था—राजनीतिक रूप से संगठित जन को "राष्ट्र" कहते थे। राजा राष्ट्र का मुखिया होता था। वह मनमानी न कर सकता था। विशः अर्थात् प्रजा राजा का "वरण" करती थीं। वरण का यह अर्थ था कि या तो वे उसे चुनती थीं, या यदि वह पिछले राजा का बेटा हो तो उसके राजा बनने की स्वीकृति देती थीं। वरण होने पर राज्याभिषेक होता था, जिसमें राजा विशः के साथ 'प्रतिज्ञा' अर्थात् इकरार करता था, उसे राज्य की थाती सौंपी जाती और किरीट (मुकुट) पहनाया जाता था। वरण उसकी आयु भर के लिए होता था, पर यदि वह 'प्रतिज्ञा' तोड़ दे, तो उसे निकाला जा सकता था। निर्वासित राजा का कभी-कभी फिर भी वरण हो जाता था।

राजा एक 'समिति' की सहायता से राज्य करता था। राज्य की असल बाग-डोर उसी समिति के हाथ में रहती थी। समिति समूची विशः की संस्था थी। उसमें कौन-कौन जाते थे सो कहना कठिन है। ग्रामणी, सूत, रथकार और कर्म्मार उसमें अवश्य शामिल होते थे। राजा का वरण, निर्वासन, पुनर्वरण सब समिति करती थी। उसका एक 'पति' या 'ईशान' होता था। राजा भी समिति में जाता था। समिति के अतिरिक्त 'सभा' नाम की एक संस्था भी थी, जो शायद समिति से छोटी थी। सभा ही राष्ट्र का मुख्य न्यायालय थी। प्रत्येक ग्राम में भी अपनी-अपनी सभा होती थी। उन सभाओं में जवान लोग भी भाग लेते थे। आवश्यक कार्य्यों के बाद सभा में विनोद की बातें भी होती थीं और तब वह गोष्ठी का काम देती थी। समिति के सदस्य 'राजकृतः' अर्थात् राजा के कर्ता-धर्ता होते थे। वे राजा भी कहलाते थे। कई राष्ट्र ऐसे भी थे जिनमें एक राजा न होता था; समिति के सदस्य मिल कर ही राज्य करते थे।

§५. धर्म-कर्म—आर्य्यों का धर्म-कर्म आरम्भ में बहुत सरल था । पीछे पुरोहितों की चेष्टाओं से कुछ पेचीदा हो गया । देव-पूजा और पितृ-पूजा उसके मुख्य चिन्ह थे । वह पूजा यज्ञ में आहुति देने से होती थी । यज्ञों के लिए प्रत्येक गृहस्थ के घर में सदा अग्नि उपस्थित रहता था । नित्य की पूजा में देवताओं की मूर्त्तियाँ तब नहीं थीं । इन्द्र मुख्य देवता था । प्रकृति की बड़ी-बड़ी शक्तियों में आर्य्य लोग दैवी अभिव्यक्ति देखते थे, और उन्हीं शक्तियों की उन्होंने भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप में कल्पना की थी । उदाहरण के लिए द्यौः अर्थात् आकाश एक देवता है; उसी तरह पृथिवी भी; और 'द्यावापृथिवी' का जोड़ा प्रायः इकट्ठा गिना जाता है । वरुण भी द्यौः का एक रूप है, उसकी ज्योति का सूचक । वह धर्मपति है; लोगों के अन्तरात्मा की बात जानता है । उसके हाथ में पाश रहता है । वही नदियों और समुद्र का भी देवता है । द्यावापृथिवी और वरुण की अपेक्षा इन्द्र की महिमा बहुत बड़ी है । वैदिक देवताओं में वही मुख्य है । वह वृष्टि का अधिष्ठाता है, और उसके हाथ में बिजली का वज्र है जिससे वह वृत्र अर्थात् अनावृष्टि के दैत्य को मारता है ।

सूर्य के भिन्न-भिन्न गुणों से कई देवताओं की कल्पना हुई है । प्रभात समय 'उषा' एक सुन्दरी के रूप में प्रकट होती है, उसका प्रेमी सूर्य उसके पीछे-पीछे आता है । उदय होता हुआ सूर्य्य ही 'मित्र' है, वह मैत्रीपूर्ण देवता मनुष्यों को नींद से उठाता और काम में जुटाता है । सूर्य पूरा उदय हो कर अपनी किरणों से जब जगत् को जीवन देता है, तब वही 'सविता' है । जैसे मित्र उसके तेज का सूचक है और सविता जीवन-शक्ति का, वैसे ही पूषा उसकी उत्पादक शक्ति का और विष्णु उसकी क्षिप्र गति का, इत्यादि । अग्नि और सोम की माहिमा केवल इन्द्र से कम है । अग्नि के तीन रूप हैं, सूर्य्य, विद्युत् और अग्नि । 'सोम' वनस्पति भी है, और चन्द्रमा भी । प्रकृति में जो कुछ भयंकर और घातक है, उस सब की जड़ में 'रुद्र' है । किन्तु रुद्र भी शान्त होने पर शिव अर्थात् मंगल रूप धारण कर लेता है । आर्य्यों की देव-कल्पना मधुर और सौम्य थी; घिनौने, डरावने या अश्लील देवताओं को उसमें जगह न थी । उसमें कवि के स्निग्ध हृदय और अन्तर्दृष्टि की झलक है ।

देवताओं की तृप्ति यज्ञ में आहुति या बलि देने से होती थी । दूध, घी, अनाज, मांस और सोमरस (एक लता का रस) इन सभी वस्तुओं की आहुति दी जाती थी । आहुतियों के साथ ऋचाएँ पढ़ी जाती थीं और साम गाये जाते थे । ऐसी ख्यात है कि राजा वसु के समय ऋषियों का एक सम्प्रदाय उठा,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिसका यह मत था कि यज्ञ में मांस के बजाय अन्न की ही आहुति दी जाय। वह सम्प्रदाय भक्ति पर भी ज़ोर देता था। बाद में यज्ञों का आडम्बर बहुत बढ़ गया, और धनी लोग बड़े-बड़े यज्ञ पुरोहितों से कराने लगे। किन्तु साधारण आर्य अग्नि में अपनी दैनिक आहुति स्वयम् दे लेता था। देवों के अतिरिक्त वह पितरों का तर्पण भी स्वयम् करता था।

§६. **सामाजिक जीवन. खान-पान, वेष-भूषा, विनोद आदि**—आर्यों का सामाजिक जीवन भी उनके जीवन की अन्य बातों की तरह सरल था। राजा भरत के समय दीर्घतमा नाम का एक ऋषि था। कहते हैं उससे पहले विवाह-संस्था प्रायः नहीं थी; उसने उसे स्थापित किया। तब से विवाह एक पवित्र और स्थायी सम्बन्ध माना जाने लगा। युवक-युवती को अपना साथी या संगिनी चुनने की पूरी स्वतन्त्रता रहती थी। विनोद के कार्यों और स्थानों में उन्हें परस्पर 'अभ्ययन' और 'अभिमनन' करने (मिलने, पीछे लगने, मनाने, रिझाने) के यथेष्ट अवसर मिलते थे। राजपुत्रियों के स्वयम्वर होते थे। विधवाएँ फिर विवाह कर लेती थीं। स्त्रियाँ हर काम में पुरुषों का साथ देती थीं। वेद के ऋषियों में भी लोपामुद्रा आदि अनेक स्त्रियों की गिनती है।

समाज में ऊँचनीच कुछ ज़रूर थी; पर विशेष भेद न थे। रथी और महारथी की हैसियत साधारण योद्धा से कुछ ऊँची थी। तो भी रथियों के वे 'क्षत्रिय' परिवार साधारण विशः का ही अंश थे। आर्य और दास का बड़ा भेद था; पर आर्यों और दासों में भी परस्पर सम्बन्ध हो ही जाते थे।

खान-पान बहुत सादा था। दूध, दही, घी, अनाज, मांस मुख्य भोजन थे। वेष भी बहुत सादा था। ऊपर नीचे के लिए उत्तरीय और अधोवस्त्र होता था। उष्णीष अर्थात् पगड़ी का रिवाज था, जिसे स्त्रियाँ भी पहनती थीं। पुरुष स्त्री दोनों सोने के हार, कुंडल, केयूर आदि पहनते थे। पुरुष प्रायः केशों का जूड़ा बनाते या काकपक्ष (कानों पर लटकते केश) रखते थे। स्त्रियाँ वेणी बनाती थीं। मिलजुल कर विनोद और व्यायाम खूब होते थे। रथों और वाजि यानी घोड़े की दौड़ का विशेष प्रचार था। उस पर बाजी भी लगाते थे। जुआ खेलने का व्यसन काफ़ी था। संगीत, वाद्य और नृत्य का शौक भी बहुत था। आर्य लोग सत्य का बहुत मान करते थे और झूठ से उन्हें बड़ी चिढ़ थी। जब छोटा बड़े के सामने जाता तो अपना नाम ले कर प्रणाम करता था। बड़ों के नाम का ज़िक्र उनके गोत्र से किया जाता और बोलने में अदब-कायदे की बड़ी पाबन्दी रक्खी जाती थी।

तीसरा प्रकरण

महाजनपदों का युग

[लगभग १४२५—३६६ ई० पू०]

अध्याय १

राजनीतिक वृत्तान्त

§१. **जनपदों का उदय**—महाभारत युद्ध के बाद हस्तिनापुर का भारत राजवंश वहाँ से उठ कर वत्सदेश की राजधानी कौशाम्बी में चला गया। आर्य लोग अब गोदावरी के काँठे में विदर्भ (वराड़) से और आगे बढ़ने लगे। वहाँ उनके दो नये राज्य मूलक और अश्मक स्थापित हुए। मूलक की राजधानी प्रतिष्ठान (आधुनिक पैठन) उपरले गोदावरी काठे में थी; अश्मक और नीचे था। उसके पूरब कलिंग (उड़ीसा) था। विदर्भ, मूलक और अश्मक मिल कर बाद का महाराष्ट्र बना। मूलक और अश्मक के परे आन्ध्र, शबर और मूचिक (मूषिक) नाम की अनार्य जातियाँ रहती थीं, जिनसे आर्यों का सम्पर्क था। आन्ध्र लोग तब आजकल के आन्ध्र देश (तेलंगाना) के उत्तरी छोर पर तेल नदी पर रहते थे। बस्तर की शबरी और हैदराबाद की मूसी नदी शबरों और मूचिकों की याद दिलाती हैं।

इसी समय आर्य राज्यों के अन्दर ही अन्दर एक भारी परिवर्तन हुआ। पहले जो राज्य जनों के थे, अब वे जनपदों के हो गये। जिन प्रदेशों पर जन बस गये थे, वही उनके जनपद कहलाये। जैसे कुरु जन जहाँ बसा वह कुरु जनपद और मद्र जन जहाँ बसा वह मद्र जनपद हुआ। अब 'जान-राज्य' के बजाय 'जानपद राज्य' होने लगे। मद्र जनपद में अब जो कोई बस जाता वह मद्रक कहलाता और मद्र राज्य की प्रजा हो सकता था। यही बात और जनपदों में भी थी। उन जनपदों में अब शिल्प-व्यापार भी बढ़ने लगा, जिससे नगरियाँ स्थापित होने लगीं।

§२. **सोलह महाजनपद**—कुछ समय बाद कुछ जनपदों ने दूसरों का प्रदेश जीत कर और कुछ ने आपस में मिल कर अपनी भूमि बहुत बढ़ा ली। वे

महाजनपद कहलाये। इन महाजनपदों का आरम्भ-काल आठवीं-सातवीं शती ईसा पूर्व का है; वे पाँचवीं शती ईसा पूर्व तक जारी रहे। इनका हाल हम विशेष कर बौद्ध और जैन ग्रन्थों से जानते हैं। भगवान् बुद्ध और महावीर स्वामी ने छठी शती ई० पू० में प्रकट हो कर धार्मिक सुधार की एक प्रबल लहर चला दी। उस लहर की प्रेरणा से बहुत से नये ग्रन्थ भी रचे गये, जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे। इन ग्रन्थों में सोलह महाजनपदों के नाम बहुत प्रसिद्ध हैं, यहाँ तक कि सोलह महाजनपद उस समय में एक मुहावरा सा बन गया था। उन सोलह में आठ जोड़ियाँ यों थीं—(१) अंग-मगध, (२) काशी-कोशल, (३) वृजि-मल्ल, (४) चेदि-वत्स, (५) कुरु-पंचाल, (६) मत्स्य-शूरसेन, (७) अश्मक-अवन्ति, (८) गान्धार-काम्बोज।

यह गिनती पूरब से शुरू होती है। अंग की राजधानी चम्पा या मालिनी उस समय भारत की बड़ी समृद्ध नगरियों में से थी। भागलपुर शहर का पच्छिमी हिस्सा चम्पानगर, जो चम्पा नाला या चम्पा नदी के किनारे बसा है, ठीक उसी जगह है। मगध की राजधानी राजगृह थी। वहाँ उस समय काशी से निकले शिशुनाक वंश के राजा राज्य करते थे।

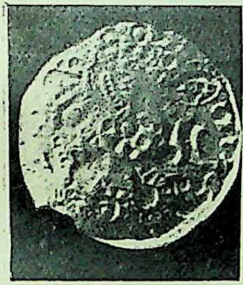

कोशल महाजनपद का एक आहत सिक्का (दुर्गाप्रसाद-संग्रह से)

काशी राष्ट्र की राजधानी वाराणसी भारतवर्ष भर में सब से समृद्ध और शिल्प-व्यापार का सबसे बढ़ा-चढ़ा केन्द्र था। कोशल का साकेत (अयोध्या) नगर भी प्रसिद्ध था; पर इस युग में कोशल की राजधानी अचिरावती (राप्ती) नदी के तट पर श्रावस्ती थी। उसके खँडहर अब गोंडा-बहराइच ज़िलों की सीमा पर सहेठ-महेठ गाँवों में है।

मल्ल और वृजि-राष्ट्र क्रमशः कोशल के पूरब थे। ये दोनों संघ-राष्ट्र अर्थात् पंचायती राज्य थे। मल्लों का संघ आधुनिक गोरखपुर ज़िले में था। पावा और कुशिनार उनके नगर थे। कुशिनार (कुशिनगर) का अवशेष अब कसिया है।

वृजि-संघ में दो जातियाँ शामिल थीं—विदेह और लिच्छवि। विदेह राष्ट्र में जनकों का पुराना राजवंश खतम हो कर पंचायती राज्य स्थापित हो चुका था। वृजि-संघ की राजधानी वैशाली थी, जिसके खँडहर अब मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

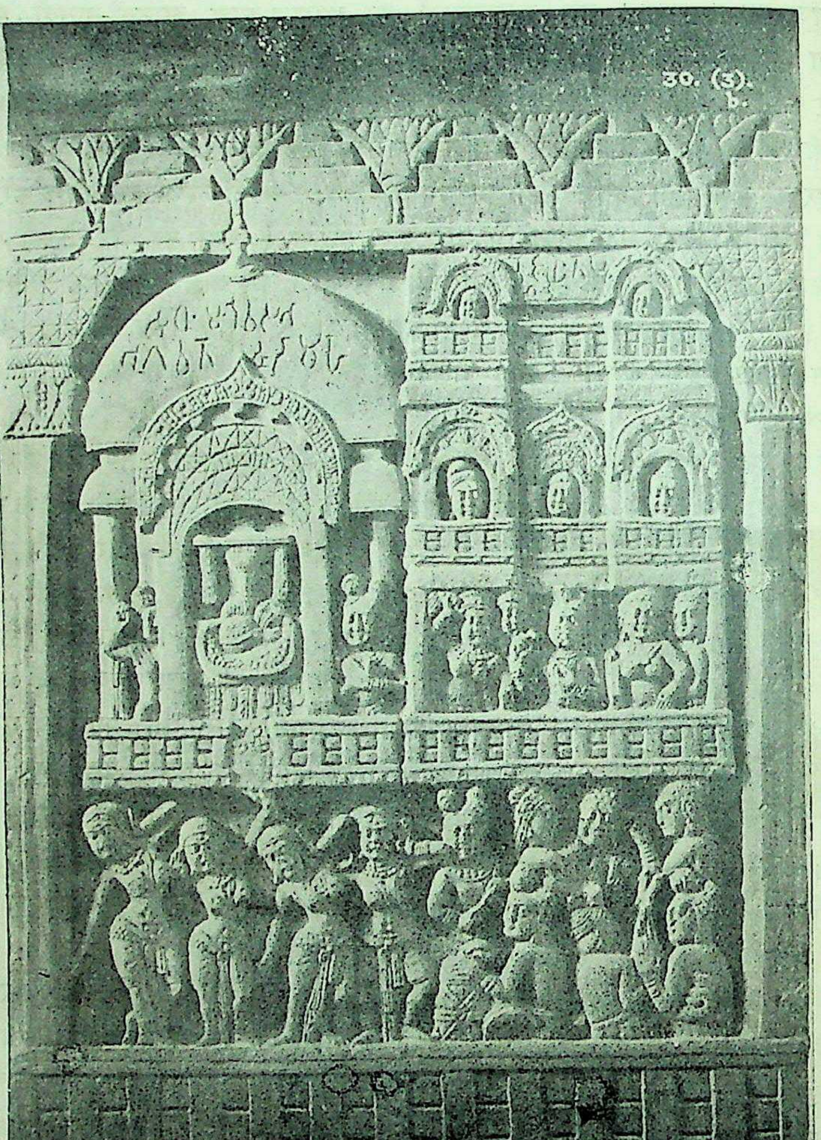

देवताओं की सभा 'सुधर्मा'—भारहुत स्तूप (शुंग-युग) का एक मूर्त्त दृश्य

[इंडियन म्यू०, कलकत्ता; भा० पु० वि०]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बसाढ़ नामक बड़े गाँव में हैं। उसके चौगिर्द तिहरा परकोटा था, जिसमें जगह-जगह द्वार और गोपुर (पहरा देने के मीनार) बने थे। वह बड़ी सुन्दर नगरी थी! कहते हैं वृजियों के ७७०७ राजा होते थे जो सब एक परिषद् में राजकीय मामलों पर विचार करते थे। भगवान् बुद्ध वैशाली नगरी के और वृजि-संघ के संगठन को बहुत पसन्द करते थे। एक बार उन्होंने अपने शिष्यों को वृजियों की परिषद् दिखा कर कहा था, "तुम में से जिन्होंने देवताओं की परिषद् न देखी हो वे इस परिषद् को देखें!" वैशाली नगरी के बीच एक पोखरनी थी, जिसमें उन ७७०७ राजाओं और उनकी रानियों का अभिषेक होता था। इसपर लोहे का जँगला और जाली इसलिए लगी रहती थी कि दूसरा कोई न नहा सके।

वत्स देश काशी के पच्छिम था, और चेदि (आजकल का बुन्देलखंड) उसके पच्छिम और जमना के दक्खिन था। वत्स की राजधानी कौशाम्बी में बुद्ध के समय राजा उदयन राज करता था। भारत वंश का होने के कारण उसका बड़ा आदर था। महाकवि भास ने अपने एक नाटक में कहलाया है—'यह वह भारत वंश है जिसका नाम आम्नाय (वेदों) में प्रविष्ट है।'

कुरु और पंचाल पुराने राष्ट्र थे, जिनकी अब कोई विशेष राजनीतिक शक्ति न रही थी। पर इस युग में भी "कुरुधर्म" यानी कुरु देश के लोगों का चरित्र सारे भारतवर्ष के लिए आदर्श माना जाता था; मत्स्य और शूरसेन का भी विशेष राजनीतिक महत्त्व न रह गया था।

अवन्ति बड़ा राज्य था; उसकी राजधानी उज्जयिनी व्यापार की बड़ी मंडी थी। दक्खिनी रास्ते का नाका माहिष्मती भी उसी के अधीन था। भरुकच्छ (भरुच) आदि पच्छिमी बन्दरगाहों और दक्खिन से आने वाले व्यापार-पथ उज्जयिनी पर मिलते थे; वहाँ से एक रास्ता विदिशा (भेलसा), कौशाम्बी हो कर काशी और श्रावस्ती की तरफ़, और दूसरा मथुरा हो कर कुरु और गान्धार की तरफ़, चला जाता था। अश्मक की सीमा अवन्ति से लगती थी, क्योंकि बीच का मूलक राष्ट्र अब उसी में शामिल था।

गान्धार देश की राजधानी तक्षशिला इस युग में विद्या का सब से बड़ा केन्द्र था। वहाँ बड़े-बड़े "दिशाप्रमुख" अर्थात् जगत्प्रसिद्ध आचार्य रहते थे, और "तीन वेद तथा अठारह विद्याएँ" पढ़ायी जाती थीं। आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य आत्रेयों का गुरुकुल तक्षशिला में ही था। काशी, कोशल, मगध आदि देशों के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

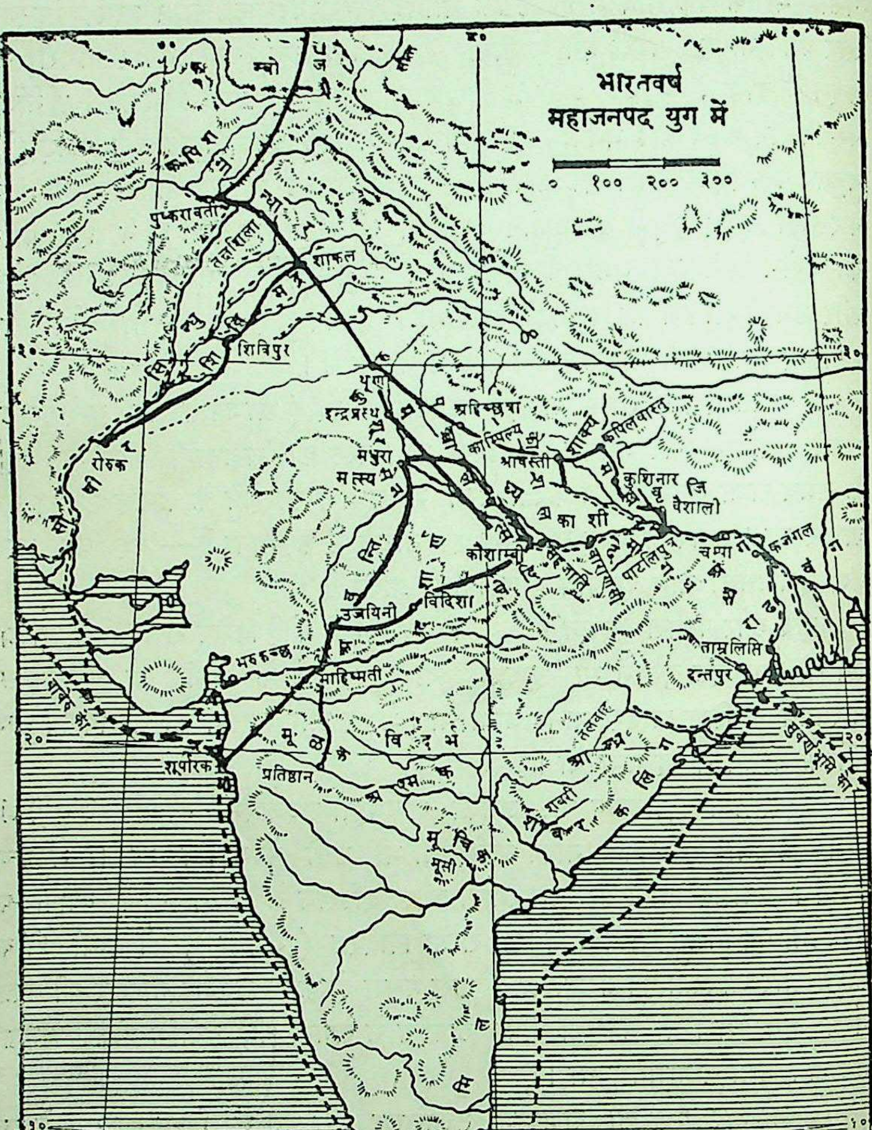
भारतवर्ष
महाजनपद युग में
० १०० २०० ३००
कम्बोज
गन्धार
कपिश
पुष्करावती
तक्षशिला
शाकल
मद्र
शिविपुर
सिन्धु
सोवीर
रोरुक
थूण
कुरु
इन्द्रप्रस्थ
अहिच्छत्रा
काम्पिल्य
मथुरा
मत्स्य
श्रावस्ती
शाक्य
कपिलवस्तु
कुशिनार
वृजि
वैशाली
काशी
कौशाम्बी
पाटलिपुत्र
चम्पा
कजंगल
अवन्ति
उज्जयिनी
विदिशा
भरुकच्छ
माहिष्मती
मूलक
विदर्भ
प्रतिष्ठान
अश्मक
शूर्पारक
तेलवाह
आन्ध्र
शबरी
कलिङ्ग
मूसी
ताम्रलिप्ति
दन्तपुर
बावेरु को
सुवर्णभूमि को
ताम्रपर्णी
२०
३०
१०
८०
राजपथ
जलपथ

राजकुमार, सेठों के लड़के और गरीब किसानों के बेटे—सभी तक्षशिला पढ़ने पहुँचते थे। वहाँ के आचार्यों के चरणों में बैठे बिना उस समय भारतवर्ष में कोई आदमी पंडित न कहला पाता था। कश्मीर भी गान्धार के अधीन था। पामीर और बदख्शाँ का नाम कम्बोज था, वह भी तब भारतवर्ष में शामिल था।

इन महाजनपदों के अलावा कुछ छोटे जनपद भी थे। कोशल के उत्तर शाक्यों का संघ था जिसकी राजधानी कपिलवास्तु थी। पच्छिम-दक्खिनी पंजाब में शिवि और सिन्धु राष्ट्र प्रसिद्ध थे। आधुनिक सिन्ध का नाम तब सौवीर राष्ट्र था। उसकी राजधानी रोरुक (आजकल की रोरी) उस युग की सुन्दर नगरियों में गिनी जाती थी।

दक्खिन की तरफ़ आन्ध्र राष्ट्र, द्रामिल (तामिल) राष्ट्र और ताम्रपर्णी द्वीप (लंका) से अब आर्यों का सम्पर्क बढ़ा हुआ था। उनमें आर्य मुनि और दूसरे आर्य लोग जा-जा कर अपने आश्रम और उपनिवेश बसाते थे, और भरुकच्छ और वाराणसी के व्यापारी जहाज़ ले कर पहुँचते थे। दूर के नये देशों के विषय में कहानियाँ बन जाती हैं। ताम्रपर्णी के विषय में यह प्रसिद्ध था कि वहाँ यक्षिणियाँ रहती थीं, जो वहाँ भटक कर पहुँचने वाले व्यापारियों को लुभा ले जाती थीं। चम्पा के व्यापारी, पूरब तरफ़, बरमा के तट से व्यापार करते थे और उसे वे सुवर्णभूमि कहते थे, क्योंकि उधर से सोना आता था और उसके व्यापार में बड़ा नफ़ा था। भरुकच्छ से बावेरु अर्थात् बाबुल को भी लोग व्यापार करने जाते थे। वहाँ मोर न होता था, और भारत के व्यापारियों ने पहले-पहल मोर ले जा कर एक-एक हज़ार कार्षापण* में बेचा था! भारतवासियों की पहुँच की इस युग में प्रायः यही सीमाएँ थीं।

इन जनपदों और महाजनपदों की चढ़ा-उतरी का वृत्तान्त भी मनोरंजक है। सब से पहले, सातवीं शती ई० पू० के शुरू में, काशी राष्ट्र ने एक बड़ा साम्राज्य बना लिया। काशी के बाद कोशल के बढ़ने की बारी आयी। दोनों में खूब लड़ाई चलती रही। अन्त में कोशल के एक राजा ने काशी को जीत लिया (अन्दाज़न ६२५ ई० पू०)†। उस राजा को महाकोशल कह कर याद किया जाता है। उसका

---

* एक सिक्का जो आजकल के १२ आने के बराबर था।

† इस प्रसंग में जितनी तिथियाँ दी गयी हैं सब बुद्ध के निर्वाण की प्रचलित तिथि ५४४ ई० पू० मान कर हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बेटा प्रसेनजित् बुद्ध का समकालीन था। उसने तक्षशिला में शिक्षा पायी थी। प्रसेनजित् का बहनोई मगध का राजा बिम्बिसार था। मगध भी इस समय तक अंग को जीत चुका था। वत्स का राजा उदयन और अवन्ति का राजा प्रद्योत भी बुद्ध के समय में थे। प्रद्योत को उसके सब पड़ोसी "चंड" (डरावना) कहते थे। मगध, कोशल, वत्स और अवन्ति ये चार बड़े राज्य बुद्ध के समय 'मध्यदेश' यानी भारत के बीच के हिस्से में थे। पाँचवाँ बड़ा राज्य गान्धार का था।

वासवदत्ता-हरण

कौशाम्बी से पाया गया शुंग-युग का पकाई मिट्टी का टिकरा

[भारत-कलाभवन, काशी]

मगध की गद्दी पर राजा बिम्बिसार के बाद उसका बेटा अजातशत्रु बैठा (५५२ ई० पू०)। उसके बैठते ही मगध और कोशल में युद्ध ठन गया। तीन युद्धों में अजातशत्रु ने प्रसेनजित् को हराया; पर चौथी बार बूढ़े प्रसेनजित् ने उसे कैद कर लिया और उसे अपनी लड़की ब्याह में दे कर छोड़ दिया।

इधर चंड प्रद्योत भी आर्यावर्त्त का चक्रवर्ती होना चाहता था। उसका राज्य मथुरा तक फैला था। उसके और मगध के बीच वत्स का राज्य पड़ता था। राजा उदयन को हाथी पकड़ने का शौक था। वह संगीत में अत्यन्त निपुण था और 'हस्ति-कान्त वीणा' बजा कर हाथियों को काबू में कर लेता था।

एक बार प्रद्योत ने सीमा पर के जंगल में चिथड़े लपेट कर रँगा हुआ काठ का एक हाथी छोड़वा दिया। उदयन उसे पकड़ने पहुँचा। वीणा बजाने पर हाथी उल्टी तरफ़ दौड़ा। उदयन ने घोड़े पर पीछा किया। उसके साथी पिछड़ गये। प्रद्योत के कुछ सैनिक हाथी के पेट में और कुछ जंगल में छिपे हुए थे। उन्होंने उदयन को पकड़ लिया। प्रद्योत ने अपने कैदी से अपनी लड़की वासवदत्ता को संगीत सिखाने का काम लिया। कुछ दिन बाद युवक और युवती षड्यन्त्र कर भाग निकले! पर कैदी उदयन की अपेक्षा दामाद उदयन प्रद्योत के लिए अधिक उपयोगी हुआ और इसी कारण मगध को अब अवन्ति के लिए अधिक सतर्क होना पड़ा (५५० ई० पू०)। किन्तु पाँच बरस बाद प्रद्योत की मृत्यु हो जाने पर मगध को अवन्ति का डर जाता रहा (५४५ ई० पू०)।

कोशल में प्रसेनजित् के बाद उसका बेटा विरूढक राजा हुआ। जब वह युवराज था तो उसके रिश्तेदार और पड़ोसी शाक्यों ने उसका अपमान किया था, और विरूढक ने उन्हें जड़ से मिटा देने की ठान ली थी। शाक्य वे लोग थे जिनमें बुद्ध ने जन्म लिया था। विरूढक तीन बार उनपर चढ़ाई करते-करते बुद्ध के समझाने से रुक गया, पर अन्त में बुद्ध ने भी दखल देना व्यर्थ समझा। विरूढक ने कपिलवास्तु पर चढ़ाई कर उसे घेरा और शाक्यों का संहार किया।

उसी तरह अजातशत्रु भी अपना राज्य बढ़ाने के लिए वृजि-संघ पर घात लगाये हुए था। जब बुद्ध अपने जीवन में अन्तिम बार राजगृह आये, तो उसने अपने मन्त्री वर्षकार को उनके पास भेज कर जानना चाहा कि बुद्ध इस बारे में क्या कहते हैं। बुद्ध ने वृजियों की बाबत सात प्रश्न पूछे और तब अपनी सम्मति दी।

उनके कहने का सार यह था कि जब तक वृजि लोग अपनी परिषदों में नियम से इकट्ठे होते हैं, जब तक वे एक साथ बैठते, एक साथ उद्यम करते, और एक साथ वृजि-कार्यों (राष्ट्रीय कार्यों) को निबाहते हैं, जब तक वे बाकायदा कानून बनाये बिना कोई आज्ञा जारी नहीं करते और बने हुए नियम का उल्लंघन नहीं

करते, जब तक वे अपने 'वृजि-धर्म' (राष्ट्रीय नियम और संस्थाओं) के अनुसार मिल कर आचरण करते हैं, जब तक वे अपने वृद्धों (मुखियों) का आदर करते और उनकी सुनने लायक बातें सुनते हैं, जब तक वे अपनी कुल-स्त्रियों और कुल-कुमारियों पर किसी किस्म की ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं करते, जब तक वे अपने वृजि-चैत्यों (राष्ट्रीय मन्दिरों) का आदर करते और अपने अरहतों (त्यागी विद्वानों) की रक्षा करते हैं, तब तक उनका अभ्युदय और बढ़ती ही होगी, उनकी हानि नहीं हो सकती ।

अजातशत्रु ने समझ लिया कि वह अपनी सैनिक शक्ति से वृजि-संघ को नहीं तोड़ सकता । तो भी उसने निश्चय किया, "मैं इन्हें अनीति-मार्ग में फँसा दूँगा" । उसने अपने गुप्तचरों के षड्यन्त्रों और रिशवत द्वारा उनमें फूट डालना शुरू किया और बुद्ध के निर्वाण के चार बरस पीछे वैशाली को जीत लिया (५४० ई० पू०) ।

§३. पारसी साम्राज्य में गान्धार का सम्मिलित होना—भारतवर्ष के पच्छिम में भी आर्यों की कई शाखाएँ रहती थीं । जैसे हमारे पुरखा अपने देश को आर्यावर्त कहते थे, वैसे ही अफ़गानिस्तान के पच्छिम में जो आर्य रहते थे, वे अपने देश को ऐर्यान अर्थात् ऐर्यों या आर्यों का देश कहते थे । उसी से ईरान शब्द बना है । और आगे पच्छिमी एशिया और यूनान में भी आर्य लोग थे । किन्तु इन सभी देशों में अभी तक आर्यों की शक्ति चमक न पायी थी; अभी तक वहाँ बावेरु, मिस्र आदि के सामी (सैमिटिक) और हामी (हैमिटिक) राज्यों की तूती बोलती थी । छठी शती ई० पू० में उन सभी देशों में एक आर्य साम्राज्य स्थापित हो गया । ईरानी आर्यों में पार्स नाम की एक जाति ईरान की खाड़ी पर रहती थी, उसके कारण उस देश का नाम पारस पड़ गया था ।

हमारे यहाँ, इस युग में, जैसे बुद्ध भगवान् हुए, वैसे ही ईरान में ज़रथुस्त्र नाम के धर्मसुधारक हुए थे । पारस में हखामनि नाम के एक पुरुष ने सातवीं शती ई० पू० में एक राजवंश स्थापित किया था । उस वंश में दिग्विजयी सम्राट् कुरु (Cyrus)* हुआ (५५६-५२६ ई० पू०) । उसके अधीन समूचा ईरान था । बावेरु और मिस्र आदि के सैमिटिक और हैमिटिक राज्यों को भी उसने जीत लिया।

---

* कुरु का नाम यूनानी लोग जैसे लिखते थे उसका अंगरेजी रूप साइरस है। उसका मूल उच्चारण कुरुष् है । "कुरुष्" का अन्तिम ष् प्रथमा एकवचन का सूचक है, जैसा संस्कृत में भी होता है ।

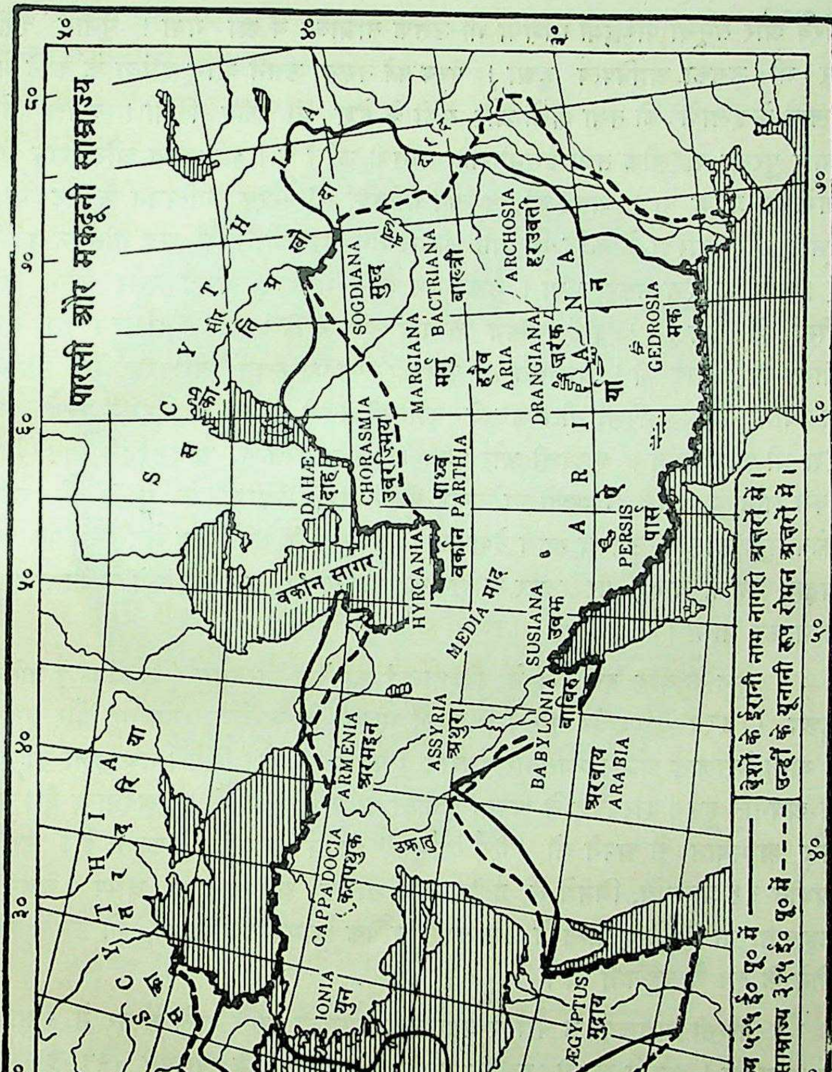

पारसी और मकदूनी साम्राज्य

पारसी साम्राज्य ५२५ ई० पू० में ——
सिकन्दर का साम्राज्य ३२५ ई० पू० में - - - -
देशों के ईरानी नाम नागरी अक्षरों में।
उन्हीं के यूनानी रूप रोमन अक्षरों में।
SCYTHIA
स क
SCYTHIA शक
थ र स
I
SOGDIANA सुग्ध
BACTRIANA बाख्त्री
MARGIANA मरगु
ARIA हरैव
CHORASMIA उवारज़्मिय
DAHAE दाह
PARTHIA पार्थव
HYRCANIA वर्कान
वर्कान सागर
ARCHOSIA हरउवती
DRANGIANA ज़रंक
GEDROSIA मक
ARIANA
PERSIS पार्स
MEDIA माद
SUSIANA उवज
BABYLONIA बाबिरु
ASSYRIA अथुरा
ARMENIA अरमइन
CAPPADOCIA कतपथुक
उफ़्रातु
ARABIA अरबाय
IONIA युन
ÆGYPTUS मुद्राय
SPARTA स्पर्द
५०
४०
३०
२०
१०
२०
३०
४०
५०
६०
७०
८०
९०

अरब और समूचा पच्छिमी एशिया भी उसके साम्राज्य में आ गया। यूनान देश पर भी उसका आधिपत्य हुआ। पूरब की तरफ़ उसने आमू दरिया के काँठे में बलख के इलाके को तथा शकों और मकों के देश को जीत लिया। बलख को हमारे पुरखा वाह्लीक तथा ईरानी लोग बाख्त्री कहते थे। वह भारत और ईरान के साझे का प्रदेश था। शकों की तब तीन बस्तियाँ थीं—एक कास्पियन के तट पर, दूसरी सीर दरिया के काँठे में, और तीसरी शकस्थान में, जिसे अब सीस्तान कहते हैं। मकों का देश मकरान था। शकस्थान और मकरान भारत और ईरान की सीमा के देश थे। इन्हें जीतने के बाद कुरु ने हिन्दूकुश के दक्खिन उतर कर भारत पर चढ़ाई की। आजकल जो इलाका काफ़िरिस्तान कहलाता है, उसकी राजधानी तब कापिशी थी। कुरु ने कापिशी नगरी उजाड़ दी। उसने पक्थों का देश भी जीत लिया। कापिशी और पक्थ-देश तब भारत के अन्दर गिने जाते थे। पक्थ लोग आजकल के पख्तो या पश्तो बोलने वाले पठानों के पुरखा थे और झोब नदी की दून उनका खास देश था। मकरान के रास्ते कुरु ने सिन्ध पर भी चढ़ाई करनी चाही, पर उधर से हार कर वह केवल सात साथियों के साथ जान बचा कर भागा।

कुरु के बाद इस वंश में विश्तास्प† का बेटा दारयवहु (Darius) प्रसिद्ध हुआ (५२१--४८५ ई० पू०)। उसने भारत के कम्बोज, गान्धार और सिन्धु (यानी डेराजात और सिन्धसागर दोआब) प्रदेश भी जीत लिये। तक्षशिला की तब से अवनति हुई। दारयवहु ने अपना वृत्तान्त पत्थर की चट्टानों पर खुदवाया है। वह बड़े अभिमान से अपने को "ऐर्य ऐर्यपुत्र" (आर्य आर्यपुत्र) कहता है। उसके अधीन २१ प्रान्त थे, जिनमें से प्रत्येक का शासक क्षथ्रपावन् या क्षथ्रप (क्षत्रप) कहलाता था। सिन्धु प्रान्त से उसे सबसे अधिक आमदनी होती थी, जो उसके यहाँ सोने के रूप में पहुँचती थी।

पारसी साम्राज्य के बराबर बड़ा कोई साम्राज्य इससे पहले संसार में स्थापित न हुआ था। भारत के जो इलाके उसके अधीन हुए, वे लगभग ४२५ ई० पू० तक स्वतन्त्र हो गये। बाकी साम्राज्य प्रायः सौ बरस और बना रहा।

---

† विश्त = विंशत्, बीस; अस्प = अश्व, घोड़ा। पुराने ईरानी शब्द संस्कृत से कितने मिलते-जुलते हैं!

§४. मगध का पहला साम्राज्य (५५०-३६६ ई० पू०)—जिस हिस्से में आजकल पढ़ने-लिखने की भाषा हिन्दी है, प्रायः उसी को प्राचीन लोग 'मध्यदेश' कहते थे। छठी शती ई० पू० के उत्तरार्ध में उसमें मगध की तूती बोलने लगी।

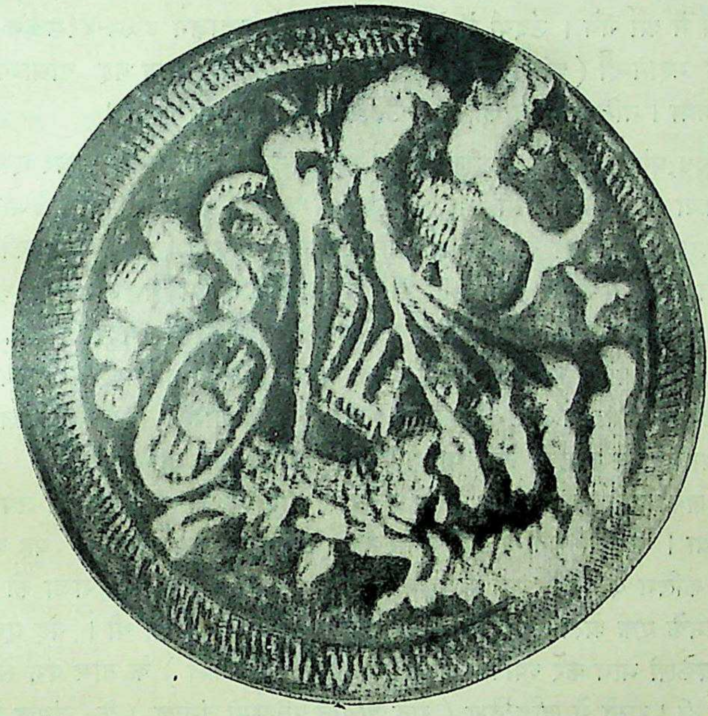

मगध का एक रथी योद्धा

सन् १९३४ में पटना को नाला की खुदाई में जिस गहराई पर काली मिट्टी का यह टिकरा पाया गया है, उनसे सिद्ध होता है कि यह मगध के पहले साम्राज्य के समय का है। असल साइज़। [पटना म्यूज़ियम]

अजातशत्रु के समय तक मगध, अंग को हज़म कर चुका, कोशल को नीचा दिखा चुका और वृजि-संघ का राज्य छीन चुका था। उसके मुकाबले में अब केवल अवन्ति बाकी था। अजातशत्रु का पोता राजा अज उदयी था (अन्दाज़न ४८६--४६७ ई० पू०)। मगध के राज्य में मिथिला भी शामिल हो जाने से उसकी पुरानी राजधानी राजगृह एक कोने में पड़ गयी थी। इसलिए उदयी ने गंगा और सोन के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

संगम पर पाटलिपुत्र नगरी की स्थापना की, जो आगे चल कर संसार भर में प्रसिद्ध हुई। पाँडर (पाटलि) के पेड़ वहाँ अधिक होने से उसका यह नाम पड़ा। वही आजकल का पटना है। उदयी ने अवन्ति का भी पराभव किया और उसे अपने अधीन कर लिया। मध्यदेश के और सब जनपद इससे पहले या पीछे मगध की छत्रछाया में आ गये। उदयी के बेटे नन्दिवर्धन (अन्दाज़न ४५८-४१८ ई० पू०) और पोते महानन्दी (अन्दाज़न ४०६-३७४ ई० पू०) के समय यह साम्राज्य और भी बढ़ गया। नन्दिवर्धन ने कलिंग (उड़ीसा) को भी जीत लिया।

§५.**पांड्य, चोल, केरल और सिंहल राष्ट्रों की स्थापना**—इधर एक और बड़ी प्रक्रिया इस समय जारी थी। दक्खिन में अश्मक के और आगे, भारत के अन्तिम छोर तक, आर्य बस्तियाँ और राज्य स्थापित हो गये। पांडु नाम की जाति पंजाब या मधुरा (मथुरा) में रहती थी। उसकी एक शाखा ने भारत के अन्तिम दक्खिनी कोने में जा कर एक नयी मधुरा नगरी बसायी जो अब मदुरा कहलाती है। वह नया राज्य पांड्य कहलाया। पांड्य के पच्छिम, समुद्र-तट पर, चेर राज्य था, और पांड्य के उतर चोल। चेर का ही दूसरा रूप केरल है। चेर और चोल राज्य आर्य प्रवासियों ने स्थापित किये या द्राविडों ने सो नहीं कहा जा सकता।

लंका या ताम्रपर्णी द्वीप में भी उत्तर से आर्यों ने जा कर एक नया उपनिवेश बसाया था। उसका वृत्तान्त एक मनोरंजक कहानी में गुँथ गया है। वह कहानी यों है। कलिंग देश की एक राजकुमारी वंग (पूरबी बंगाल) के राजा को व्याही थी। उनके एक अत्यन्त रूपवती कन्या हुई जो बड़ी निडर भी थी। वह एक बार घर से अकेली भाग कर व्यापारियों के एक सार्थ (काफ़िले) के साथ वंग से मगध को चल दी। रास्ते में लाड देश (राढ अर्थात् पच्छिमी बंगाल) के जंगल में एक सिंह उसे उठा ले गया। उस युवती से उस सिंह के सिंहबाहु नाम का पुत्र और सिंहवल्ली नाम की कन्या हुई। सिंहबाहु ने बड़े हो कर सिंहपुर बसा कर उसे अपनी राजधानी बनाया। उसका बेटा विजय बड़ा क्रूर था। प्रजा के कहने से पिता ने उसे देसनिकाला दे दिया। सात सौ साथियों के साथ नाव पर बैठा कर उन्हें छोड़ दिया गया। "दिशामूढ" हो कर उनकी नाव कोंकण में शूर्पारक पट्टन (बम्बई के उत्तर आजकल के सोपारा) पर जा लगी। वहाँ के लोगों ने उनका स्वागत किया; पर वे भी विजय के साथियों से ऊब गये। उसी नाव पर वह मंडली फिर रवाना की गयी और लंका पहुँची। वहाँ तब यक्ष लोग राज्य करते थे। विजय ने यक्ष राजकुमारी कुवेणी

से विवाह किया, पर पीछे उसे त्याग दिया। तब उसने मधुरा के पांड्य राजा की कन्या को ब्याहा और ताम्रपर्णी नगरी बसा कर अड़तीस बरस धर्म से राज्य किया। उसके साथियों ने वहीं अनुराधपुर, उज्जयिनी आदि नगरियाँ बसायीं। ये लोग सिंहपुर से आये थे, इस कारण इस द्वीप का नाम सिंहल पड़ा, जो अब तक चला आता है।

इस कहानी में चाहे जितना अंश सच का हो, परन्तु इसमें सन्देह नहीं कि पांड्य आदि बस्तियों की अपेक्षा सिंहल में आर्यों की बहुत बड़ी संख्या पहुँची, क्योंकि पुराने पांड्य, चेर और चोल राष्ट्रों में जहाँ अब द्राविड भाषाएँ बोली जाती हैं, वहाँ सिंहल की भाषा आर्य है। इस प्रकार ४०० ई० पू० के करीब तक आर्य सत्ता भारतवर्ष के अन्तिम छोरों तक पहुँच गयी और दूसरी जातियाँ पूरी तरह उसके प्रभाव में आ गयीं।

अध्याय २

बुद्ध, महावीर और उनके समय का भारतीय जीवन

§१. **बुद्ध से ठीक पहले का समाज और धर्म**—वेद-संहिताएँ बनने के बाद यज्ञों में उनके मन्त्रों का प्रयोग करने के लिए 'ब्राह्मण' नाम के गद्य-ग्रन्थ बने। उनके ज़माने को उत्तर वैदिक काल अर्थात् पिछला वैदिक ज़माना कहते हैं। आर्यों का समाज और धर्म तब पहले से अधिक जटिल हो चला था। उस समाज में भिन्न-भिन्न दर्जों का थोड़ा-थोड़ा भेद प्रकट होने लगा था। जो रथ में बैठने वाले क्षत्रिय सरदार थे, वे पहले ही साधारण लोगों से कुछ ऊँचे गिने जाते थे। उन्हीं के नमूने पर ब्राह्मणों की भी (जो मन्त्र पढ़ने वाले थे) अब एक अलग सी श्रेणी दिखायी देने लगी। बाकी जो साधारण 'विशः' बचे, वे वैश्य अर्थात् जनसाधारण कहलाने लगे। बहुत से दास लोग भी आर्यों के समाज में मिल गये थे; वे शूद्र कहलाये। दासों के प्रति जो घृणा का भाव था वह शूद्रों के प्रति भी (परन्तु कुछ दर्जे कम) बना रहा। वे आर्यों से भिन्न वर्ण—यानी रंग—के थे।

वर्ण शब्द आर्यों की विभिन्न श्रेणियों के लिए भी बरता जाने लगा था। किन्तु उस समय के वर्णों के बीच कोई बाँध न बँधा था। तीन वर्णों के आदमी आसानी से एक से दूसरे वर्ण में चले जाते थे। चार आश्रमों अर्थात् मनुष्य-जीवन के चार विभागों का विचार पहले-पहल उत्तर वैदिक काल में ही परिपक्व हुआ। चौथा आश्रम—सन्यास—केवल ब्राह्मणों अर्थात् विद्वानों के लिए था। यज्ञों के कर्मकांड का आडम्बर इस युग में बहुत बढ़ गया था। किन्तु आरण्यकों अथवा वानप्रस्थों अर्थात् जंगल में रहने वाले मुनियों के आश्रमों में, जो दार्शनिक विचार के केन्द्र थे, उस कर्मकांड के विरुद्ध एक लहर उठी। उन्हीं आश्रमों में अब उपनिषद्-ग्रन्थों की रचना हुई। उपनिषदों ने सीधे शब्दों में कहा कि "ये यज्ञ फूटी नाव की तरह हैं।" आदर्श को खोजने वाले लोग उनसे ऊब कर विचार और दार्शनिक चिन्तन की तरफ़ झुकने लगे। किन्तु वे दार्शनिक विचार भी केवल विद्वानों की प्यास बुझा सकते थे। जनसाधारण के लिए या तो यज्ञों का कर्मकांड था, या जड़-जन्तु-पूजा। उनसे लोगों का मन नहीं भरता था। लोग मानो किसी सरल मार्ग

के लिए तरस रहे थे। समय की ज़रूरत से वैसा मार्ग दिखाने वाले कई महात्मा प्रकट हुए। महावीर और बुद्ध उनमें से मुख्य थे।

§२. **महावीर और बुद्ध के जीवन और उपदेश**—श्रावस्ती से ६० मील पर, रोहिणी नदी के पच्छिम, कपिलवास्तु नगरी शाक्यों के संघराष्ट्र की राजधानी थी। रोहिणी के पूरब कोलिय "राजाओं" का देवदह नगर था। शुद्धोदन शाक्य कुछ समय के लिए कपिलवास्तु के राजा अर्थात् राष्ट्रपति थे। उन्होंने देवदह की दो शाक्य कन्याओं, माया और प्रजावती, से व्याह किया था।

बरसों की प्रतीक्षा के बाद महामाया को पुत्र होने की आशा हुई। दोनों बहनें मायके रवाना हुईं। रास्ते में लुम्बिनी के वन में माया ने उस पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम आज संसार के आधे के करीब स्त्री-पुरुष प्रतिदिन जपते हैं। सात दिन बाद उसे प्रजावती के हाथ सौंप वह परलोक सिधार गयीं। लुम्बिनी को आजकल रुम्मिनदेइ कहते हैं, और वह बस्ती ज़िले की सीमा पर नेपाल की तराई में है।

बालक सिद्धार्थ गौतम की बचपन से ही चिन्ताशील प्रवृत्ति देख कर पिता ने १८ वर्ष की आयु में उसका विवाह कर दिया, पर तो भी उसकी प्रवृत्ति न बदली। छोटी-छोटी घटनाएँ उसके दिल पर असर कर जाती थीं। एक दिन रथ में सैर करते समय उसने एक बूढ़े को कमर झुकाये देखा। इसकी यह दशा क्यों है? बुढ़ापे के कारण। बुढ़ापा क्या चीज़ है? क्या वह इसी आदमी को सताता है या सब को? इत्यादि प्रश्न उसके जी में उठे। इसी तरह सिद्धार्थ ने एक रोगी और एक लाश को देखा। और अन्त में एक शान्त प्रसन्नमुख सन्यासी को देख कर उसके विचार एक निश्चित इरादे की ओर बढ़ने लगे।

वह तब अट्ठाइस बरस का था। नदी-तट पर एक बगीचे में बैठे उसे अपने पुत्र होने की खबर मिली। चारों तरफ़ उत्सव-गीत गाये जाने लगे। पर सिद्धार्थ के मन में कुछ और ही समा चुका था। उसी धुन को ले कर वह उस रात अन्तिम बार अपनी स्त्री के पास गया। दिये के उजाले में उसने उस युवती को सोते देखा। उसका एक हाथ बच्चे के सिर पर था। जी में आया एक बार बच्चे को गोदी ले ले; पर अन्दर की एक आवाज़ ने सावधान किया। हृदय को कड़ा करके वह उसी रात गृहस्थ के सब सुखों को त्याग सन्यास के लिए निकल पड़ा। इसे गौतम का 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं।

गौतम डील के लम्बे थे; उनकी आँखें नीली, रंग गोरा, कान लटकते हुए और हाथ लम्बे थे जिनकी अँगुलियाँ घुटनों तक पहुँचती थीं। केश घूँघर वाले और छाती चौड़ी थी।

मल्लों के देश को जल्द लाँघ सिद्धार्थ वैशाली पहुँचे और वहाँ से राजगृह। उन दोनों स्थानों में उन्होंने दो बड़े दार्शनिकों के पास उस समय की विद्याएँ पढ़ीं। गृहस्थों के हिंसापूर्ण कर्मकांड से ऊब कर वे दर्शन की ओर झुके थे। पर उस सूखी दिमागी कसरत में भी उन्हें वह शान्ति न मिली जिसे वे अपने और संसार के लिए खोज रहे थे। तब उन्होंने एक और कठिन मार्ग पकड़ा। उसी आश्रम के पाँच विद्यार्थियों को साथी बना, वे गया के पहाड़ी जंगलों में उस समय के नियम के अनुसार तपस्या करने गये। वहाँ निरंजना नदी के किनारे छः बरस तक घोर तप करते-करते उनका केवल हाड़-चाम बाकी रह गया।

कहानी है कि एक बार कुछ नाचने वाली स्त्रियाँ गाती हुई उस जंगली राह से गुजरीं। उनके गीत की ध्वनि गौतम के कान में पड़ी। वे गाती थीं, 'अपनी वीणा के तार को ढीला न करो, नहीं तो वह बजेगा नहीं, और उसे इतना कसो भी नहीं कि वह टूट ही जाय!' पथिकों के उस गीत से गौतम को बड़ी शिक्षा मिली। उन्होंने देखा,

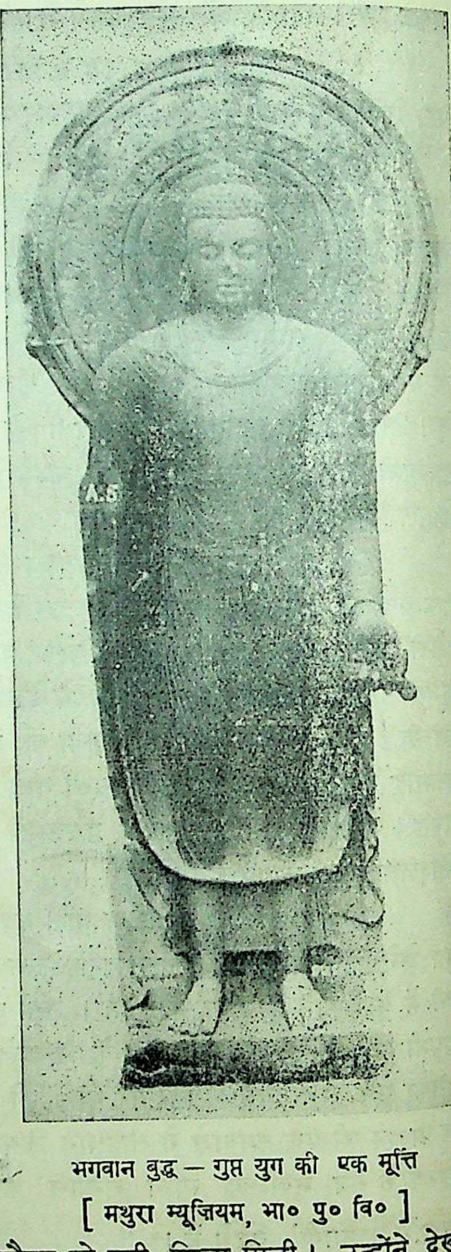

भगवान बुद्ध — गुप्त युग की एक मूर्त्ति

[मथुरा म्यूजियम, भा० पु० वि०]

वे अपने जीवन के तार को बहुत कसे जा रहे हैं। तब से वे अपने देह की सुधि लेने लगे। उनके साथी उन्हें तप से डरा समझ, साथ छोड़ कर बनारस चले गये। वे अकेले देहाती स्त्रियों से भिक्षा पा-पा कर धीरे-धीरे स्वास्थ्य प्राप्त करने लगे। सुजाता नाम की एक युवती ने वहाँ गौतम को बड़ी श्रद्धा से पायस खिलाया।

स्वस्थ होने के बाद, एक दिन गौतम एक पीपल के पेड़ के नीचे बैठे विचार करते थे। पर ध्यान लगाते ही "मार" (यानी मनुष्य की अपनी वासनाओं) ने उनपर हमला किया। जल्द ही गौतम ने मार को जीत लिया, अर्थात् उनके चित्त के सब विक्षेप शान्त हो गये। तब उन्हें वह "बोध" (ज्ञान) हुआ जिसके लिए वे भटकते फिरते थे। उसी दिन से गौतम "बुद्ध" हुए, और वह पीपल भी बोधि वृक्ष कहलाया। गौतम की बोधि या बूझ क्या थी ? वह केवल यह थी कि सरल सच्चा जीवन ही धर्म का सार है; वह सब यज्ञों, शास्त्रार्थों और तपों से बढ़ कर है। संयम-सहित सच्चा आचरण ही असल धर्म है।

गौतम अपने बोध से स्वयम् सन्तुष्ट हो कर बैठने वाले न थे। 'उत्थान' (उठना, उद्यम करना) और 'अप्रमाद' (कभी ढील न करना) उनके जीवन और उनकी शिक्षा का मूल मन्त्र था। बनारस पहुँच कर (जहाँ आजकल सारनाथ है) वे अपने पुराने साथियों से मिले और उन्हें समझाया। "भिक्खुओ, सन्यासी को दो अन्तों (सीमाओं) का सेवन न करना चाहिए। वे दो अन्त कौन से हैं ? एक तो काम और विषय-सुख में फँसना जो अत्यन्त हीन, ग्राम्य और अनार्य है, और दूसरा शरीर को व्यर्थ कष्ट देना जो अनार्य और अनर्थक है। इन दोनों अन्तों को त्याग कर तथागत (ठीक समझ वाले, बुद्ध) ने मध्यमा प्रतिपदा (मध्यम मार्ग) को पकड़ा है, जो आँख खोलने वाली और ज्ञान देने वाली है।" यह मध्यम मार्ग ही बौद्ध धर्म का निचोड़ है।

बुद्ध का यह पहला उपदेश "धर्मचक्र-प्रवर्त्तन" कहलाता है। जिस प्रकार राजा लोग चक्रवर्त्ती बनने के लिए अपने रथ का चक्र चलाते थे, वैसे ही बुद्ध ने धर्म का चक्र चलाया। चौमासे में सन्यासी यात्रा नहीं करते, इसलिए उस चौमासे में वे वहीं रहे। धीरे-धीरे उनके चेलों में साठ भिक्खु और बहुत से उपासक (गृहस्थ अनुयायी) हो गये। बुद्ध ने उन भिक्खुओं को एक "संघ" अर्थात् प्रजातन्त्र के रूप में संगठित कर दिया। बौद्ध धर्म में किसी एक आदमी की हुकूमत न थी, संघ ही सब कुछ था। तब बुद्ध ने कहा—"भिक्खुओ, अब तुम जाओ, जनता के हित के लिए घूमो। कोई भी दो भिक्खु एक तरफ़ न जाओ।"

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

स्वयम् बुद्ध भी भ्रमण को निकले। सबसे पहले वे गया की तरफ़ गये। वहाँ तीन काश्यप भाई रहते थे, जो बड़े विद्वान् कर्मकांडी थे और जिनके पास सैकड़ों विद्यार्थी पढ़ते थे। बुद्ध का उपदेश सुन कर उन्होंने यज्ञों की सब सामग्री निरंजना में बहा दी, और उनके साथ चल दिये। इस बात का मगध की जनता और राजा बिम्बिसार पर बड़ा प्रभाव पड़ा। वे भी बुद्ध के उपासक हो गये। राजगृह के पास सारिपुत्र और मोग्गलान (मौद्गलायन) नाम के दो बड़े विद्वान् ब्राह्मण बुद्ध के चेले बने। बौद्ध संघ में वे उनके "अग्र श्रावक" अर्थात् प्रमुख शिष्य कहलाये।

बुद्ध का यश अब कपिलवास्तु तक पहुँच गया और उन्हें वहाँ का निमन्त्रण स्वीकार करना पड़ा। वे भिक्खुओं के साथ भिक्षापात्र हाथ में लिये उन्हीं घरों के सामने भिक्षा के लिए मौन खड़े हुए, जिनके वे राजा हो सकते थे! शुद्धोदन शाक्य उन्हें भिक्खुओं सहित अपने महल में ले गये, जहाँ सब स्त्री-पुरुषों ने उनका उपदेश सुना। किन्तु राहुल की माता (गौतम की पत्नी) उन श्रोताओं में न थी। बुद्धदेव सारिपुत्र और मोग्गलान के साथ स्वयम् उसके मकान पर गये। वह उन्हें देख कर एकाएक गिर पड़ी और पैर पकड़ कर रोने लगी। जल्द ही उसने अपने को सँभाला और बुद्ध का उपदेश सुना। सात दिन बाद जब फिर बुद्ध शुद्धोदन के घर आये तो उसने राहुल को बतलाया, 'ये तुम्हारे पिता हैं, इनसे अपनी पितृ-दाय (बपौती) माँगो।' कुमार राहुल ने बुद्ध के पास जा कर कहा, 'भिक्खु, मुझे मेरा पितृ-दाय दो।' बुद्ध ने सारिपुत्र से कहा, 'राहुल को प्रव्रज्या (सन्यास) दान करो।' तब से वह कुमार भिक्खु हो गया।

कपिलवास्तु का पंचायती राजा इस बार भद्रक शाक्य था। बुद्ध के वापिस चले जाने पर अनुरुद्ध शाक्य अपनी माँ के पास गया और भिक्खु बनने की आज्ञा माँगने लगा। माँ ने कहा, 'बेटा यदि राजा भद्रक घर छोड़ दे तो तू भी भिक्खु हो जा।' अनुरुद्ध के कहने से भद्रक भी तैयार हो गया। आनन्द आदि कई और शाक्य भी साथ हो गये और मल्ल राष्ट्र की तरफ़, जहाँ बुद्ध ठहरे हुए थे, चले। कुछ दूर जा कर उन्होंने अपने गहने और कीमती कपड़े उतार दिये और दुपट्टे में लपेट कर अपने नौकर उपालि नाई को देते हुए कहा, 'जाओ, तुम्हारी जीविका के लिए यह काफ़ी होगा।' पर उपालि के दिल में कुछ और था। वह भी उनके साथ-साथ गया। बाद में ये लोग बड़े

प्रसिद्ध हुए। आनन्द तो बुद्ध का दिन-रात का साथी, उनका "उपस्थापक" (प्राइवेट सेक्रेटरी) बन गया। उपालि बुद्ध के पीछे संघ का प्रमुख चुना गया।

एक बरस के इस भ्रमण के बाद बुद्ध राजगृह लौट आये। वहाँ उन्हें श्रावस्ती का करोड़पति सेठ सुदत्त अनाथपिंडक निमन्त्रण देने आया। सुदत्त ने बौद्ध संघ को दान करने के लिए श्रावस्ती के राजकुमार जेत से एक बगीचा खरीदना चाहा। जेत ने कहा, 'जितने सोने के सिक्के उस बाग में बिछ जाँय, वह उसकी कीमत है।' सुदत्त ने कहा, 'मैंने बाग ले लिया।' जेत ने कहा, 'मैंने

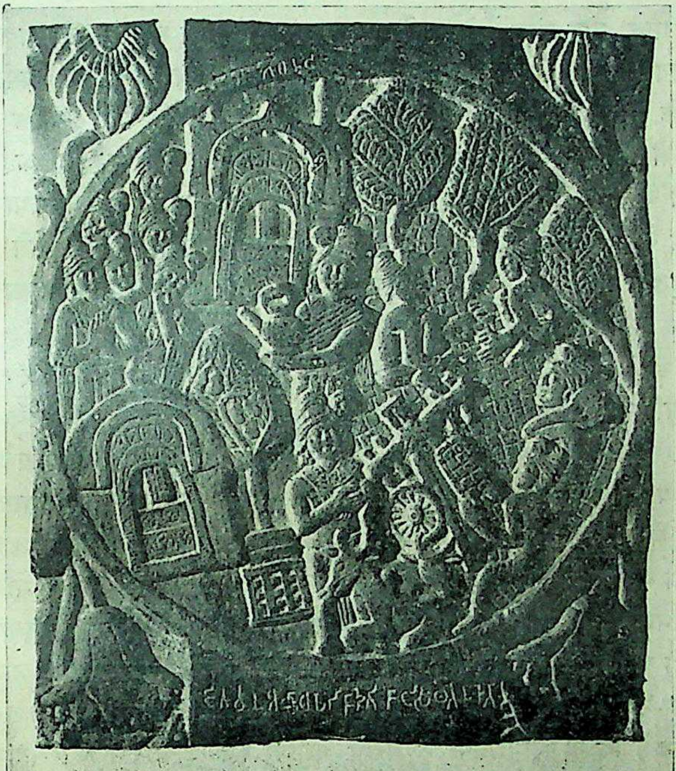

जेतवन की खरीद और दान

सुदत्त जलपात्र लिये दान करने खड़े हैं; गाड़ी पर सिक्के हैं जो बगीचे में बिछाये जा रहे हैं।

शुंग-युग के भारहुत स्तूप का मूर्त्त दृश्य [इं० म्यू०, कलकत्ता]

नहीं बेचा।' तब यह विवाद अदालत में गया। अदालत ने सुदत्त के पक्ष में फ़ैसला दिया, क्योंकि जेत ने अधिक से अधिक मूल्य कहा था और सुदत्त उतना भी देने को तैयार था। सुदत्त ने तब वह बाग जेतवन खरीद लिया और उसमें बौद्ध संघ के लिए विहार यानी मठ बनवाया।

प्रायः तीन बरस पीछे शुद्धोदन शाक्य का देहान्त हुआ। तब प्रजावती और राहुलमाता देवी ने भिक्खुनी बनने का संकल्प किया। अनेक शाक्य स्त्रियों के साथ वे बुद्ध के पास वैशाली पहुँचीं। कुछ अरसे तक बुद्ध हिचकिचाये, क्योंकि उस समय तक स्त्रियों के लिए सन्यास मार्ग खुला न था। अन्त में आनन्द के कहने से बुद्ध ने स्त्रियों के लिए वह मार्ग खोल दिया। भिक्खुनी संघ की अलग स्थापना हुई। उस संघ ने भी बड़ा काम किया। वृद्ध भिक्खु थेर (स्थविर) कहलाते थे। उसी प्रकार वृद्धा भिक्खुनियाँ थेरी कहलाती थीं। थेरों की वाणियाँ थेरगाथा नाम की पुस्तक में है। वैसे ही थेरियों की थेरी-गाथा में।

४५ बरस तक ठेठ हिन्दुस्तान के सब जनपदों में बुद्ध बराबर घूमते रहे। उनके अन्तिम समय में उनके पुराने साथी प्रायः उठ गये थे। अपने भ्रमण के ४५वें बरस उन्हें विरूढक की करतूत से कपिलवास्तु के खँडहर देखने पड़े; और वे राजगृह पहुँचे तो अजातशत्रु वैशाली को ढहा देने की घात में था। वैशाली जा कर वे शहर के बाहर ठहरे। अम्बपाली गणिका को खबर मिली कि बुद्धदेव उसकी आम की बगिया में पधारे हैं। उसने उनके पास जा कर भिक्खु-संघ को भोजन कराने की प्रार्थना की, जो बुद्ध ने चुप रह कर स्वीकार की। लिच्छवि लोग सुन्दर रथों पर सवार हो जब बुद्ध के दर्शन को चले तो उन्होंने देखा कि अम्बपाली उनके पहियों से पहिया टकराते हुए अपना रथ हाँकती लौट रही है। लिच्छवियों ने पूछा, 'यह क्या बात है कि तू लिच्छवियों के बराबर अपना रथ हाँक रही है?' अम्बपाली ने उत्तर दिया, 'आर्यपुत्रो, मैंने भगवान् को भिक्खु-संघ के साथ कल के भोजन के लिए न्यौता जो दिया है।' उन्होंने कहा, 'अम्बपाली, हमसे एक लाख मुद्रा ले कर यह भोजन हमें कराने दे।' उत्तर मिला, 'आर्यपुत्रो, आप मुझे वैशाली का समूचा राज्य दें तब भी यह जेवनार नहीं दूँगी।' निराश हो कर लिच्छवियों ने कहा, 'अम्बका ने हमें हरा दिया।' वे उसकी बगिया की ओर बढ़े। बुद्ध ने उन्हें आते देखा और भिक्खुओं से कहा, "जिन भिक्खुओं ने तावतिंश देवताओं को नहीं देखा है, वे लिच्छवियों की इस परिषद को देखें और इससे देवताओं की परिषद का अनुमान करें!' उपदेश

सुन चुकने पर लिच्छवियों ने बुद्ध से दूसरे दिन का भोजन करने की प्रार्थना की। "लिच्छवियो, मैंने क़ल के दिन अम्बपाली गणिका का न्योता मान लिया है।" तब उन्होंने निराश हो कर अपने हाथ पटके और कहा—'हमें अम्बका ने हरा दिया!' दूसरे दिन उपदेश सुनने और भोजन कराने के बाद अम्बपाली ने कहा, 'भगवन्, मैं यह आराम (बगीचा) भिक्खुओं के संघ के लिए, जिसके मुखिया बुद्ध हैं, देती हूँ।' वह दान स्वीकार किया गया। अम्बपाली पीछे थेरी हो गयी; उसके गीत भी थेरीगाथा में हैं।

वैशाली से बुद्ध एक गाँव गये। वहाँ उनके बड़ा दर्द उठा और मृत्यु निकट दिखायी दी। आनन्द ने कहा, 'भगवन्, जब तक आप भिक्खु-संघ को ठीक राह पर नहीं डाल देते, आशा है तब तक देह न त्यागेंगे।' उत्तर मिला, "आनन्द, भिक्खु-संघ मुझसे क्या आशा करता है? मैंने धर्म का साफ़-साफ़ उपदेश कर दिया। तथागत (बुद्ध) के धर्म में कोई गाँठ या पहेली तो नहीं है। अब तुम अपनी ही ज्योति में चलो, अपनी शरण जाओ···धर्म की ज्योति में, धर्म की शरण में चलो।"

मल्लों के अनेक गाँवों में होते हुए बुद्ध पावा पहुँचे। वहाँ चुन्द लोहार ने उन्हें भोजन कराया और उसमें सुअर का मांस भी परस दिया। गृहस्थों से यह कहने की कि मैं अमुक चीज़ खाता हूँ अमुक नहीं खाता हूँ, बुद्ध की आदत न थी। उस भोजन से उनका दर्द बढ़ गया; रक्तातिसार हो गया। अन्तिम समय तक बड़ी पीड़ा रही। पावा से वे कुशिनगर को गये जो मल्लों की राजधानी थी। गोरखपुर के पास कसिया गाँव उसकी याद कराता है। रास्ते में उन्होंने आनन्द से कहा, "चुन्द के मन में कहीं कोई यह शंका न डाले कि उसके भोजन से बुद्ध का निर्वाण हो गया। आयुष्मान् चुन्द से कहना, मेरे लिए उसका भोजन और सुजाता का भोजन एक समान है।"

नदी में स्नान कर बुद्ध एक शाल-वन में आसन बिछवा कर लेट गये। शाल के पेड़ अपने फूल उनपर बरसाने लगे! तब भी बुद्ध भिक्खुओं की शंकाएँ दूर करते रहे। इसी बीच सुभद्र नाम का पंडित बाहर से उनसे कुछ पूछने आया। आनन्द ने उसे रोक दिया, पर पता लगने पर बुद्ध ने पास बुला कर उसे उपदेश दिया। तब उन्होंने कहा, "भिक्खुओ, मैं तुम्हें अन्तिम बार बुलाता हूँ। संसार की सब सत्ताओं की अपनी-अपनी आयु है। अप्रमाद से काम करते जाओ। यही तथागत की अन्तिम वाणी है।" ऐसा कहते हुए, अस्सी बरस की आयु में उन्होंने आँखें मूँद लीं (५४५ ई० पू०)। यही उनका "महापरिनिर्वाण" (बुझना) था।

कुशिनगर के मल्लों ने उनका दाह-कर्म करके उनके 'धातुओं' (फूलों) को भालों-धनुषों से घेर आठ दिन तक नाच-गान किया। निर्वाण का समाचार सुन कर चारों तरफ़ के राष्ट्रों के दूत आ जुटे। उन फूलों के आठ भाग कर वे अपने-अपने राष्ट्र में ले गये, जहाँ उनपर स्तूप बनवाये गये। स्तूप उस इमारत को कहते हैं जो किसी पवित्र अवशेष के ऊपर या किसी घटना की यादगार में बनायी जाय। उसके अन्दर नींव में अवशेष रक्खा जाता था। यह वैदिक रीति थी।

निर्वाण के बाद ५०० भिक्खु राजगृह में इकट्ठे हुए और उन्होंने बुद्ध के वचनों को मिल कर गाया। वह बौद्धों की पहली "संगीति" थी। सौ बरस बाद दूसरी संगीति वैशाली में हुई, और फिर तीसरी राजा अशोक के समय पटना में। इन संगीतियों में बौद्धों का धार्मिक साहित्य तैयार हुआ। शुरू में उसके दो अंश थे—धम्म और विनय। धम्म में बुद्ध के उपदेश बातचीत रूप में थे; विनय में भिक्खुओं के आचरण के नियम। अशोक के समय तक "त्रिपिटक" अर्थात् तीन पेटियाँ बन गयीं। विनय का विनयपिटक बना; धम्म का संग्रह सुत्त-(सूक्त-) पिटक में हो गया। सुत्त-पिटक में बुद्ध की सूक्तियाँ हैं। और अभिधम्म-पिटक नाम से एक तीसरा पिटक बन गया जिसमें बौद्धों के दार्शनिक सिद्धान्त हैं। जिस प्रकार आजकल हिन्दी की खड़ी बोली के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ हैं, वैसे ही तब संस्कृत के सिवाय बोलचाल की कई बोलियाँ थीं जो प्राकृत कहलाती थीं। त्रिपिटक पहले-पहल पालि नाम की प्राकृत में लिखा गया।

भगवान् महावीर बुद्धदेव के समकालीन थे। वे वैशाली के पास कुंडग्राम में वृजिगण के ज्ञात्रिक नाम के एक कुल में 'राजा' सिद्धार्थ के घर पैदा हुए थे। उनकी माता का नाम त्रिशला था, और उनका अपना नाम वर्धमान। सिद्धार्थ और त्रिशला तीर्थंकर पार्श्व नाम के एक धर्म-सुधारक के अनुयायी थे, जो प्रायः दो शती पहले बनारस में हुए थे। वर्धमान भी उन्हीं की शिक्षा पर चले। बड़े होने पर यशोदा नाम की देवी से उनका विवाह हुआ, जिससे एक लड़की हुई। माता पिता के मरने पर तीस बरस की आयु में बड़े भाई से आज्ञा ले उन्होंने घर छोड़ा। बारह बरस के भ्रमण और तप के बाद उन्होंने "कैवल्य" (ज्ञान) पाया। तब से वे अर्हत् (पूज्य), जिन (विजेता), निर्ग्रन्थ (बन्धनहीन) और महावीर कहलाने लगे। उनके अनुयायियों को अब हम जैन कहते हैं।

निर्ग्रन्थ ज्ञातिपुत्र अथवा महावीर अर्हत् होने के बाद निर्वाण-काल तक लगातार मिथिला, कोशल आदि में भ्रमण करते रहे। बुद्ध-निर्वाण के एक बरस पहले पावापुरी में उनका निर्वाण हुआ*। बुद्ध और उनकी शिक्षा में मुख्य भेद यह है कि बुद्ध जहाँ मध्यम मार्ग का उपदेश देते थे, वहाँ महावीर तप और कृच्छ्र तप को जीवन-सुधार का एक मुख्य उपाय मानते थे। महावीर का अहिंसावाद भी अन्तिम सीमा तक पहुँचा था, बुद्ध उस बारे में भी मध्यम-मार्गी थे। दोनों वेद और ईश्वर को न मानते थे। मगध आदि देशों में महावीर की शिक्षा जल्द फैल गयी, कलिंग उनके जीते जी उनका अनुयायी हो गया। राजपूताने में उनके निर्वाण के एक शताब्दी बाद ही उनके मत की जड़ जम गयी। जैनों का पवित्र साहित्य भी काफ़ी बड़ा है, और वह अवध या कोशल की पुरानी प्राकृत अर्धमागधी में है।

§३. **बुद्ध-युग का आर्थिक जीवन**—वैदिक काल से अब तक भारतवासियों के जीवन में बड़ा परिवर्तन हो गया था। उस काल में आर्यों की मुख्य जीविका पशुपालन और कृषि थी, अब शिल्प और व्यापार भी उनके बराबर बढ़ गये थे। कृषि में भी उन्नति हो चुकी थी। अब आराम और उद्यान (बगीचे) प्रायः हर बस्ती में लग चुके थे। कपास के पौधे का ज्ञान भी आर्यों को इसी युग में हुआ। उससे पहले संसार की अधिकांश जातियाँ कपास की खेती न जानती थीं†। उसकी खेती दूसरे सब देशों ने पहले-पहल भारतवर्ष से ही सीखी। यूनान के लोग जब यहाँ पहले-पहल आये, तो कपास देख कर बड़े चकित हुए, और उसे ऊन का पौधा कहने लगे। शिल्प की उन्नति के साथ हर बस्ती में शिल्प से जीविका चलाने वाले शिल्पियों के अलग-अलग संगठन बन गये। उन्हें श्रेणियाँ कहते थे। एक नगर के सब बढ़इयों की मिल कर एक "श्रेणि" होती थी। इसी तरह लोहारों, कुम्हारों, मालियों, मल्लाहों, सुनारों आदि की अलग-अलग श्रेणियाँ थीं। श्रेणि का एक मुखिया चुना जाता था जिसे प्रमुख या जेट्ठक (ज्येष्ठक) कहते थे। बनारस जैसी बड़ी नगरियों में एक-एक शिल्प के गली-मुहल्ले ही अलग हो गये थे; जैसे दन्तकार-वीथी में खाली हाथी-दाँत का काम करने वाले ही रहते थे।

---

* १४वीं शती से आधुनिक जैन लोग इस पावापुरी को राजगृह के पास मानते आये हैं। एक पावापुरी मल्लों के देश (गोरखपुर) में भी थी।

† मोहनजो दड़ो में कपास का कपड़ा पाया गया है। किन्तु आर्यों के साहित्य में उत्तर वैदिक काल से पहले कपास का कहीं पता नहीं मिलता।

शिल्प के साथ-साथ स्थल और जल का व्यापार भी खूब चलने लगा। व्यापारी लोग साथों यानी क़ाफ़िलों में चलते थे। नगरों में व्यापारियों के भी संगठन बन गये थे जिन्हें निगम कहते थे। निगम का मुखिया भी चुना जाता था और सेट्ठी (श्रेष्ठी) कहलाता था। वाराणसी, चम्पा, भरुकच्छ, शूर्पारक आदि के व्यापारी अपने जहाज़ ले कर सुवर्णभूमि, ताम्रपर्णी और बावेरु (बाबुल) तक जाते थे। सात-सात सौ आदमी जिनसे लम्बी यात्रा कर सकें, इतने बड़े जहाज़ बनने लगे थे। जहाँ पहले गाँव ही गाँव थे, वहाँ अब शिल्प और व्यापार बढ़ने के कारण बहुत सी नगरियाँ स्थापित हो गयीं थीं।

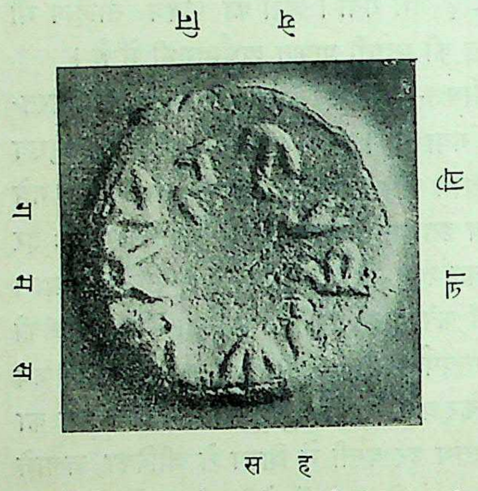

'भीटा' (ज़ि० इलाहाबाद) की खुदाई में पायी गयी "सहजातिये निगमस" (सहजात-निगम की) मोहर*। [भा० पु० वि०]

§४. राज-काज की संस्थाएँ—

ग्राम भी जहाँ पहले एक तरह के जत्थे थे, वहाँ अब वे कृषकों के संघ हो गये। जनों के राज्य जनपदों के राज्य बन गये थे, सो हम बतला चुके हैं। वैदिक काल में राष्ट्र के सामूहिक जीवन में सब से छोटी इकाइयाँ ग्राम थे। अब श्रेणि और निगम भी उसी नमूने की इकाइयाँ बन गये। श्रेणियाँ न केवल अपना आर्थिक प्रबन्ध खुद करती थीं, प्रत्युत अपने नियम-कानून बनाना, अपने सदस्यों को नियम पर चलाना और अपने मामलों का फैसला करना—सब उन्हीं के हाथ में था। यही हालत निगमों की भी थी। नगरियों का प्रबन्ध भी मुख्यतया निगमों के ही हाथ में था। इसलिए नगर की सभा भी पहले-पहल निगम ही कहलाने लगी।

---

*पुरानी बस्ती के दबे हुए खँडहरों से बने टीले को इलाहाबाद इलाके में भीटा कहते हैं। वह जातिवाचक संज्ञा है। उसी को पच्छिमी पंजाब में भिड़ या ढेरी, पूरबी पंजाब में थेह और भोजपुरी में भीठ कहते हैं। इलाहाबाद के पास जो भीटा है उसका पुराना नाम सहजाति था। वह चेदि जनपद में था। इस मोहर के अक्षरों की लिखावट से और खुदाई में जिस सतह से यह पायी गया है उससे सिद्ध होता है कि यह मौर्य-युग से कुछ पहले की है।

राज-सभा में भी श्रेणियों और निगमों का बड़ा प्रभाव था। रामायण-महाभारत की ख्यातें तो पुरानी हैं, पर अब जो रामायण हमें मिलती है उसका बहुत सा हिस्सा और वैसे ही महाभारत का कुछ अंश भी लगभग ५०० ई० पू० का लिखा हुआ है। रामायण में जहाँ रामचन्द्र को युवराज बनाने के लिए राजा दशरथ की सभा का चित्र खींचा गया है, उसमें श्रेणियों के मुखियों और निगमों के श्रेष्ठियों का ऊँचा स्थान दिया है। इसी तरह महाभारत में गन्धर्वों से हारने पर दुर्योधन कहता है कि मैं श्रेणि-मुख्यों को कैसे मुँह दिखाऊँगा। वैदिक ज़माने की समिति अब न रही थी, पर इस युग के छोटे-छोटे जनपदों की अपनी परिषदें थीं, जिनमें ग्रामों, श्रेणियों आदि के लोग जमा हो कर ठहराव करते और राजा को सलाह देते थे। कई संघ-राष्ट्रों में राजा न होता था और परिषदें ही सब कुछ करती थीं। परिषदों में प्रस्ताव रखने, भाषण देने, सम्मति लेने आदि के बाकायदा नियम थे। शाक्यों की परिषद् जिस भवन में जुटती थी उसे सन्थागार कहते थे।

इस प्रकार आर्थिक और राजनीतिक जीवन में उन्नति हो जाने के कारण कानूनों की भी ज़रूरत पड़ी और कानून इसी युग में इकट्ठे किये गये। कानून के दो पहलू थे—धर्म और व्यवहार। धार्मिक सामाजिक जीवन का कानून 'धर्म' कहलाता था, और दीवानी और फ़ौजदारी कानून 'व्यवहार'। मुकद्दमों का फैसला करने वाले न्यायाधीश 'वोहारिक' ('व्यावहारिक')कहलाते थे। श्रेणियों के परस्पर झगड़ों के फैसला करने को एक खास वोहारिक होता था।

§५. **सामाजिक जीवन**—वर्ण और आश्रम का विचार पहले-पहल किस रूप में प्रकट हुआ था, यह बतलाया जा चुका है। पर वर्ण जाति न थे। आर्यों के समाज की निचली सतह में अब कुछ अनार्य शूद्र जातियाँ भी शामिल हो गयी थीं। वे जातियाँ—निषाद, चंडाल, पुक्कस आदि—नीची गिनी जाती थीं। महाजनपदों के ज़माने में क्षत्रिय लोग भी अपने को एक 'जाति' कहने लगे थे और सब से ऊँचा मानते थे। मगध के पहले साम्राज्य के अन्तिम समय में ब्राह्मण भी कहीं-कहीं अपने को 'जाति' कहने लगे थे। क्षत्रिय और ब्राह्मण कल्पित जातियाँ थीं; क्योंकि वास्तव में सब क्षत्रिय और ब्राह्मण एक ही आर्य जाति के थे। बाकी सब प्रजा में कई काम और कई शिल्प ऊँचे और कई नीचे गिने जाते थे। किन्तु जात-पाँत का भेद तब तक न था। ऊँचे-नीचे लोगों में मिल कर खाना-पीना, ब्याह-शादी सब कुछ जारी था। कुछ ब्राह्मण पिछले समय में अपने को जाति ज़रूर कहने लगे, पर वे

साधारण प्रजा से अपने को अलग न कर पाये थे। क्षत्रियों में कुलीनता का विचार सब से अधिक था, पर ज़रूरत पड़ने पर वे भी सब धन्धे करते और सब से ब्याह-शादी कर लेते थे। ये सब बातें पालि की पुस्तकों से मालूम हुई हैं। तब दास-प्रथा भी थी; पर दास थोड़े थे और उनके साथ अच्छा बर्त्ताव होता था। वे घरेलू सेवा करते थे, खेती आदि का काम उनसे न लिया जाता था।

९६.बुद्ध-युग का साहित्य—पालि त्रिपिटक का परिचय ऊपर दिया गया है। सातवीं-छठी शती ई० पू० में भारत में बहुत सी मनोरंजक कहानियाँ प्रसिद्ध थीं। उन सब को बुद्ध के पूर्व-जन्म की कहानियों की शकल दे कर और उनका नाम 'जातक' रख कर उन्हें सुत्तपिटक के एक हिस्से में शामिल किया गया है। ५५० के करीब वे कहानियाँ संसार भर में सब से पुरानी और अत्यन्त रुचिकर हैं।

बौद्ध साहित्य के साथ-साथ वैदिक साहित्य का अन्तिम अंश भी बन रहा था। उसमें ब्राह्मणों-उपनिषदों के बाद वेदांग बने। वेदांग छः थे। उनमें से एक व्याकरण था। दूसरा निरुक्त, जिसमें यह देखा जाता था कि शब्दों का विकास और परिवर्तन कैसे हुआ। तीसरा शिक्षा, अर्थात् वर्णों या अक्षरों के उच्चारण की शिक्षा। चौथा छन्द। पाँचवाँ था ज्योतिष और छठा कल्प। ज्योतिष में गणित सम्मिलित था। कल्प के तीन हिस्से हैं—एक श्रौत, जिसमें यज्ञों की विधि कही गयी है; दूसरा गृह्य, जिसमें घरेलू संस्कारों का विधान है; और तीसरा धर्म अर्थात् धार्मिक-सामाजिक रीतियाँ और कानून।

इस प्रकार आर्यों के व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक रहन-सहन और संस्कारों के सब नियम कल्प में हैं। वेदांगों का समय ८वीं से ५वीं शती ई० पू० तक है। व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि विषय पहले तो वेद के अंग रूप में पैदा हुए, पर पीछे ये स्वतन्त्र विज्ञान बन गये। वेदांग प्रायः सब 'सूत्रों' में हैं। किसी बात को कहने के लिए जो छोटे से छोटा वाक्य बनाया जा सके, उसे सूत्र कहते हैं। ब्राह्मणों, उपनिषदों की तरह वेदांग भी आश्रमों में तैयार हुए थे।

पीछे जब वेदों से स्वतन्त्र फुटकर विद्याएँ भी चल पड़ीं, तब कई बड़े मार्के के ग्रन्थ तैयार हुए। भारतवर्ष का पहला दार्शनिक कपिल इसी युग में हुआ। तक्षशिला के आत्रेय भारतीय आयुर्वेद के पहले प्रसिद्ध आचार्य थे। कपिल और आत्रेयों के ग्रन्थ अब मूल रूप में नहीं मिलते। पच्छिमी गान्धार में पुष्करावती के पास सुवास्तु (स्वात) नदी के काँठे में शालातुर नामी गाँव में, जो आजकल

के यूसुफ़ज़ई इलाके में पड़ता है, ४०० ई० पू० के करीब व्याकरण के एक बहुत बड़े विद्वान् हुए जिनका नाम पाणिनि था। पाणिनि के जोड़ का वैयाकरण शायद आज तक पैदा नहीं हुआ। पाणिनि ने संस्कृत का एक बड़ा पूर्ण व्याकरण सूत्रों में लिखा जिसका नाम अष्टाध्यायी है। पाटलिपुत्र के राजा ने पाणिनि को वहाँ बुला कर उनका बड़ा आदर किया।

रामायण का मुख्य अंश और महाभारत का कुछ अंश भी इसी युग के हैं। भगवद्गीता बुद्ध के बाद लिखी गयी। वह महाभारत में और पीछे मिलायी गयी। उसका लेखक जो उपदेश देना चाहता था उसने बड़े अच्छे ढंग से उसे कृष्ण के मुँह से युद्ध-क्षेत्र में कहलवा दिया है। पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता लगता है कि उससे पहले नाटक-कला शुरू हो चुकी थी और उसपर भी सूत्र लिखे गये थे। सूद जैसे विषय पर भी सूत्र बन गये थे। जिस प्रकार धर्मों का विचार धर्म-सूत्रों में हुआ उसी प्रकार व्यवहारों का विचार अर्थशास्त्रों में किया गया। जातकों की कहानियों से पहले कई अर्थशास्त्र भी तैयार हो चुके थे। उपनिषदों और कपिल के सम्प्रदाय में दार्शनिक विचार पहले-पहल शुरू हुआ था।

चौथा प्रकरण

नन्द-मौर्य साम्राज्य

(३६६-२११ ई० पू०)

अध्याय १

नन्द साम्राज्य और अलक्सान्दर की चढ़ाई

(३६६-३२५ ई० पू०)

§ १. **नन्द वंश**—शिशुनाक वंश के राजा महानन्दी के दो बेटों (३७४-३६६ ई० पू०) का अभिभावक महापद्म नन्द था। उन दोनों को मार कर वह खुद मगध की गद्दी पर बैठ गया। उसके वंश में केवल दो पीढ़ी राज्य रहा। महापद्म एक दृढ़ और चतुर शासक था। मगध के साम्राज्य की शक्ति उसने पहले से अधिक बढ़ा दी। उस साम्राज्य के अधीन जितने छोटे-छोटे जनपदों के राजा थे, उन सब की सफ़ाई करके उसने सब जनपदों को सीधे अपने शासन में ले लिया। इसी कारण उसे 'सर्वक्षत्रान्तक' अर्थात् सब क्षत्रियों का काल कहते थे। वह उग्रसेन भी कहलाता था। 'महापद्म' और 'उग्रसेन' दोनों असल में उसके विरुद थे। महापद्म इस कारण कि उसके कोष में पद्मों धन था, और उग्रसेन इस कारण कि उस की भयंकर सेना थी। किन्तु वह प्रजापीडक था। उसके बेटों में धन नन्द मुख्य हुआ। उसके समय में मकदूनिया के राजा अलक्सान्दर (सिकन्दर) ने पंजाब पर हमला किया, जिसके वृत्तान्त पर अब हमें ध्यान देना होगा।

§ २. **अलक्सान्दर की चढ़ाई**—यूनानी लोग भी आर्य थे, और ९वीं-८वीं शती ई० पू० से वे सभ्य होने लगे थे। प्राचीन भारतवासी उन्हें यवन कहते थे। उनके देश में बहुत से छोटे-छोटे राष्ट्र थे। उनमें से अधिकांश संघ-राष्ट्र थे। छठी शती ई० पू० से उन्होंने बड़ी उन्नति की। उनके उत्तर तरफ़ मकदूनिया का पहाड़ी देश था। उसे वे बर्बर अर्थात् जंगली कहते थे। किन्तु चौथी शती ई० पू० के मध्य में उसी मकदूनिया के राजा फ़िलिप ने सभ्य यूनान के सब छोटे-छोटे राष्ट्रों को, जो आपस में लड़ा करते थे, जीत कर कुचल दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फ़िलिप का बेटा अलक्सान्दर बचपन से दुनिया जीतने के सपने देखा करता था। उसके सामने कौन सी दुनिया थी ? यूनान के उत्तर और पच्छिम के आधुनिक युरोप के देश तो तब निरे जंगली थे। यूनानियों का उनसे बहुत कम सम्पर्क था। उन जंगलियों को वे "उत्तरी हवा के लोग" कहा करते थे। किन्तु पूरब तरफ़ ईरान का विशाल साम्राज्य था। उसके पूरब हिन्द का नाम भी अलक्सान्दर ने सुन रक्खा था, पर उसे वह एक छोटा सा देश समझता था। उसके आगे चीन का पता उसे न था।

अलक्सान्दर
भारत में पाये जाने वाले सिक्कों पर का चित्र [दुर्गाप्रसाद-संग्रह से]

राज पाते ही अलक्सान्दर दिग्विजय को निकला। विशाल पारसी साम्राज्य अन्दर से बोदा हो चुका था। उसे उसने दो-चार ठोकरों में ही गिरा दिया, और चार बरस (३३०–३२६ ई० पू०) में समूचा जीत लिया। ईरान का सम्राट् दारयवहु (२य) बाख्त्री की ओर भाग निकला। आमू और सीर नदी के बीच के दोआब को, जिसमें अब बुखारा-समरकन्द की बस्तियाँ हैं, ईरानी लोग सुग्ध या सुग्द् कहते थे। वहाँ ईरानियों का अन्तिम पराभव हुआ। उस युद्ध में उनकी तरफ़ से हिन्दूकुश के उत्तर तरफ़ का एक पहाड़ी हिन्दू राजा शशिगुप्त भी लड़ा था। हारने के बाद वह उस समय के कायदे के अनुसार अलक्सान्दर के अधीन हो कर उसकी तरफ़ से लड़ने लगा। अलक्सान्दर जब सुग्ध में ही था, तभी उसके पास तक्षशिला के राजा आम्भि के दूत भी अधीनता का सँदेसा ले कर गये थे।

जिन यूनानी लेखकों ने अलक्सान्दर की यात्रा का हाल लिखा है, वे हिन्दूकुश के ठीक दक्खिन से उसकी भारत की चढ़ाई शुरू करते हैं। काबुल नदी में मिलने वाली कुनार, पंजकोरा और स्वात नदियों की दूनों में जो वीर जातियाँ तब रहती थीं, उन्होंने चप्पा-चप्पा ज़मीन छोड़ने से पहले सख़्त मुकाबला किया। पंजकोरा को तब गौरी कहते थे। उसके पूरब 'मसग' नाम के एक किले में ६ हज़ार पंजाबी सैनिक थे, जो अपनी स्त्रियों सहित एक-एक करके बड़ी वीरता से लड़ मरे।

सिन्ध नदी पार करने में अलक्सान्दर को कुछ कठिनाई न हुई, क्योंकि आम्भि उसके पक्ष में था। पर गान्धार के पूरब, केकय देश का वीर राजा पुरु, सेना के साथ, वितस्ता (जेहलम) पर उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। केकय के ठीक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उत्तर अभिसार देश* था। काबुल के उत्तरी पहाड़ों के अनेक योद्धा भाग कर वहाँ आ जुटे थे। अभिसार का राजा पुरु से मिलने की तैयारी कर रहा था। इससे पहले कि वे दोनों मिल पायँ, सख़्त गरमी की परवा न कर, अलक्सान्दर तुरन्त वितस्ता के

उत्तर-पश्चिमी भारत सिकन्दर की चढ़ाई के समय

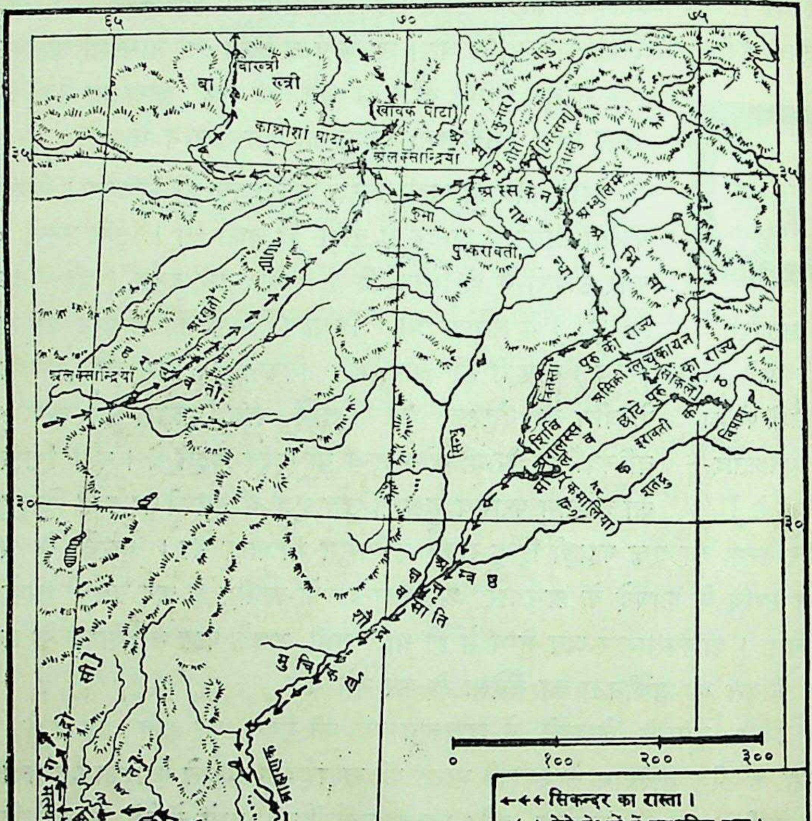
६५
७०
७५
३५
३०
२५
बाख्त्री
(खावक घाटा)
काओशां घाटा
अलक्सान्द्रिया
अस्सकेनि
(कुनार)
अभिसार
कुभा
पुष्करावती
अलक्सान्द्रिया
सिन्धु
वितस्ता
पुरु का राज्य
ग्लुचुकायन
छोटे पुरु का राज्य
शिवि
इरावती
विपाशा
शतद्रु
(कमालिया)
मालव
मुचिकर्ण
पातानप्रस्थ (हैदराबाद)
पातानप्रस्थ
सिन्ध
मकरान
० १०० २०० ३००
←←← सिकन्दर का रास्ता।
( ) ऐसे कोष्ठों में आधुनिक नाम।
{ } ऐसे कोष्ठों में वे यूनानी नाम जिनका मूल रूप अभी नहीं जाना जा सका।
[ ] ऐसे कोष्ठों में उन बस्तियों के नाम जिनका स्थान अन्दाज से रक्खा गया है, अभी ठीक जाना नहीं जा सका।

---

* आजकल की राजौरी, भिम्भर और पुंच रियासतें।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किनारे पहुँच गया। किन्तु पुरु सब घाट रोके हुए था। अलक्सान्दर ने पहले तो सेना में ऐसी चहल-पहल रक्खी कि पुरु को रोज़ मालूम हो कि आज हमला होगा; फिर ऐसी रसद जुटानी शुरू की कि मानो अब वह महीनों वहीं टिकेगा। इस तरह पुरु जब कुछ असावधान हुआ, तब एक रात वर्षा में चुपके-चुपके अलक्सान्दर ने अपनी फ़ौज के बड़े अंश को २० मील हटा कर नदी पार कर ली। पता लगते ही पुरु भी जल्दी उधर बढ़ा।

जम कर लड़ने में अलक्सान्दर भी उसका मुकाबला न कर सकता, पर अलक्सान्दर की असल शक्ति उसके फुर्तीले सवारों में थी। पारसी सम्राट् की तरह पुरु भागा नहीं। जब तक उसकी सेना में ज़रा भी व्यवस्था रही, वह ऊँचे हाथी पर चढ़ा लड़ता रहा। उसके नंगे कन्धे पर शत्रु का एक बर्छा लगा। जब अन्त में उसे पीछे हटना पड़ा तो आम्भि ने घोड़ा कुदाते हुए उसका पीछा किया, और पुकार कर उसे अलक्सान्दर का सँदेसा दिया। घायल हाथ से पुरु ने घृणित देश-द्रोही पर बर्छा चलाया, पर आम्भि बच निकला। पुरु को फिर सवारों ने घेर लिया, उनमें से एक उसका मित्र भी था। जब घायल और थका माँदा वह अलक्सान्दर के सामने लाया गया तो अलक्सान्दर ने आगे बढ़ कर उसका स्वागत किया, और दुभाषिये द्वारा उससे पूछा कि उसके साथ कैसा बर्ताव किया जाय। "जैसा राजा राजाओं के साथ करते हैं"—पुरु ने अभिमान से उत्तर दिया। सकन्दर ने उसे शशिगुप्त की तरह अपनी सेना में ऊँचा पद दिया।

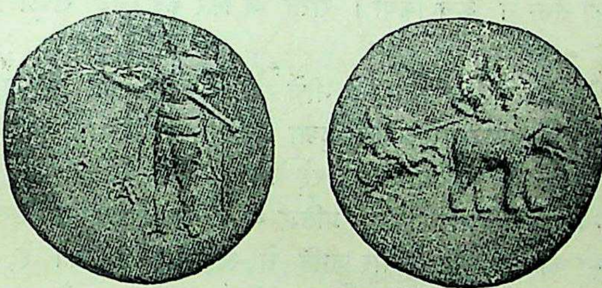

सिकन्दर-पुरु-युद्ध का स्मारक पदक—आम्भि ने घोड़ा कुदाते हुए उसका पीछा किया
[दुर्गाप्रसाद संग्रह से]

आगे पूरब की ओर बढ़ते हुए अलक्सान्दर को कई छोटे-छोटे संघ-राष्ट्रों से लड़ना पड़ा। रावी और व्यास के बीच कठ नाम का राष्ट्र था, जिसकी राजधानी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सांकल थी। सांकल के चौगिर्द रथों के तीन घेरे बना कर कठ लोग जी-जान से लड़े। बड़ी परेशानी के बाद, पीछे से पुरु की कुमुक आने पर, अलक्सान्दर उन्हें जीत सका, पर वह इतना खीझ गया था कि सांकल नगर को उसने जीतने के बाद मट्टी में मिलवा दिया। व्यास के तट पर पहुँचने के बाद अभी पंजाब का एक बड़ा संघ-राष्ट्र सामने था, और उससे आगे नन्द सम्राट् भी अपनी सेना के साथ सतर्क था। अलक्सान्दर की फ़ौज यह जान कर घबड़ा उठी कि अभी हिन्दुस्तान की असल शक्ति से तो मुकाबला बाकी ही है। वह बगावत कर बैठी। लाचार अलक्सान्दर को लौटने का निश्चय करना पड़ा।

वितस्ता पर वापिस आ कर भारी तैयारी की गयी। २ हज़ार नावों का बेड़ा बनाया गया। यात्रा के शकुन देख कर, नदी के बीच खड़े हो, सुनहले बरतन से सिकन्दर ने भारत की नदियों और अन्य देवताओं को अर्घ्य दिया और तब जल और स्थल से उसकी सेना ने कूच किया। रास्ते में फिर कई छोटे राष्ट्रों से मुकाबला करना पड़ा।

वितस्ता और रावी के संगम के नीचे रावी के दोनों तटों पर मालव-संघ का राज्य था और उसके पूरब तरफ़ मिला हुआ क्षुद्रकों का संघ-राष्ट्र था। मालव और क्षुद्रक मिल कर लड़ने की तैयारी कर रहे थे। वे दोनों जातियाँ समूचे पंजाब में अत्यन्त स्वतन्त्रता-प्रेमी और लड़ाकू प्रसिद्ध थीं। अलक्सान्दर की सेना यह जान कर कि भारत की एक सब से वीर जाति से लड़ना अभी बाकी है, फिर बगावत करने लगी। बड़ी मुश्किल से अलक्सान्दर ने उन्हें सँभाला और इससे पहले कि क्षुद्रक लोग आ पाते या मालव कृषक सेना के रूप में जुट पाते, वह मालवों के गाँवों और नगरों पर टूट पड़ा। तो भी मुलतान के करीब ४० मील उत्तर-पूरब (अन्दाज़न आजकल के कोट कमालिया की जगह पर) मालवों के एक नगर ने उसका सख्त मुकाबला किया। वहाँ अलक्सान्दर की छाती में एक बर्छा लगा जिससे वह बेहोश हो कर गिर पड़ा। उस समय तो वह बच गया, पर आगे चल कर वही घाव उसके जल्द मरने का कारण हुआ।

उत्तरी सिन्ध में भी कई छोटे राष्ट्रों का मुकाबला करते हुए, अन्त में मकदूनी सेना पातन या पातानप्रस्थ नामक नगर में पहुँची, जो आजकल के हैदराबाद की जगह पर था। वहाँ से अलक्सान्दर की कुछ सेना जलमार्ग से और बाकी स्थल-मार्ग से पच्छिम मुड़ी। उसके मुँह फेरते ही भारत में बलवे होने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उधर घर पहुँचने से पहले ही बाबुल में अलक्सान्दर का देहान्त हो गया (३२३ ई० पू०)।

विशाल ईरानी साम्राज्य को जहाँ उसने चार साल में जीत लिया था, वहाँ भारत के केवल उत्तर-पच्छिमी अंचल में उसे साढ़े तीन बरस लग गये, और यहाँ पग-पग पर सख्त मुकाबला झेलना पड़ा। वह भारत के इस अंचल पर आँधी की तरह आया और बगूले की तरह चला गया। तो भी उसने प्राचीन जातियों के बीच जो रास्ता खोल दिया वह फिर खुला ही रहा। उसके कारण प्राचीन सभ्य जातियों की कूप-मंडूकता बहुत कुछ दूर हुई। उसने यूनानी, ईरानी और भारतीय आर्यों में बहुत से परस्पर विवाह कराके इन जातियों को मिलाने का यत्न भी किया।

अध्याय २

मौर्य साम्राज्य का दिग्विजय युग

(३२५-२६२ ई० पू०)

§१. **चन्द्रगुप्त मौर्य और चाणक्य**—अलक्सान्दर जब तक्षशिला में था, उसके पास एक भारतीय युवक आया था, जो नन्दों के विशाल साम्राज्य को जीत लेना चाहता था। उसकी अलक्सान्दर से कुछ खरी-खरी बातें हुईं, और उसे वहाँ से भागना पड़ा। उस युवक का नाम चन्द्रगुप्त मौर्य था।

बुद्ध के समय मोरिय नाम की एक जाति का एक छोटा संघ-राज्य हिमालय की तराई में था। उसी 'मोरिय' का संस्कृत रूप मौर्य है; और इस 'मौर्य' नाम पर से यह कहानी पीछे बना ली गयी कि चन्द्रगुप्त मुरा नाम की एक दासी का बेटा था। कोई घटना ऐसी हुई जिससे मोरिय संघ के उस युवक ने प्रजा-पीडक नन्दों के वंश को उखाड़ फेंकने का इरादा कर लिया। नन्द राजा ने उसे मार डालने का हुक्म निकाल रक्खा था, और फाँसी का परवाना सिर पर लिये वह मारा-मारा फिरता था। उसी समय तक्षशिला में उसे एक अपने जैसा धुन का पक्का ब्राह्मण मिल गया। उस ब्राह्मण का नाम विष्णुगुप्त चाणक्य या कौटल्य था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चाणक्य और चन्द्रगुप्त दोनों असाधारण कर्तृत्ववान्, दृढ़व्रती और प्रतिभाशाली थे। वे दोनों एक साथ एक ही धन्दे में लग गये। अलक्सान्दर के मरने के बाद एक बरस के अन्दर ही चन्द्रगुप्त ने पंजाब और सिन्ध के राष्ट्रों को यूनानियों के खिलाफ़ उभाड़ दिया और अलक्सान्दर जो सेना वहाँ छोड़ गया था उसे मार भगाया। तब उसने उन्हीं पंजाबी राष्ट्रों से एक बड़ी सेना खड़ी करके नन्द साम्राज्य पर हमला किया* और पाटलिपुत्र को जा घेरा। नन्द सम्राट् को मार कर उसने मगध का शासन अपने हाथ में कर लिया (३२२ ई० पू०)। चाणक्य उसका प्रधान अमात्य बना। नन्द राजा का एक मन्त्री राक्षस नाम का था; उसने उसके बाद भी चन्द्रगुप्त के विरुद्ध विद्रोह कराने के कई जतन किये; किन्तु चाणक्य की चतुराई से वे सब निष्फल हुए।

उसी समय एक और बड़ा शत्रु चन्द्रगुप्त पर चढ़ाई करने आ रहा था। अलक्सान्दर के पीछे यूनानी साम्राज्य के कई टुकड़े हो गये। उनमें से समूचा पच्छिमी और मध्य एशिया सेलेउक† नामक सेनापति के हिस्से में पड़ा। उसने भारतीय प्रान्तों को वापिस लेने के ख़याल से चढ़ाई की। पर उसे लेने के देने पड़ गये। चन्द्रगुप्त ने उसे हरा दिया और सेलेउक को उलटा चार प्रान्त देने पड़े। वे चार प्रान्त ये थे—(१) हिन्दूकुश और काबुल का प्रदेश, (२) हरात, (३) हरह्वती या अरखुती (कन्दहार)‡ और (४) गदरोसिया (कलात, लासबेला, मकरान)। हिन्दूकुश के उत्तर तरफ़ कम्बोज देश अर्थात् बदख्शाँ और पामीर भी मौर्य साम्राज्य के अधीन हो गया। सेलेउक ने चन्द्रगुप्त को अपनी लड़की भी ब्याह दी और अपने दूत मेगास्थेने को उसके दरबार में रक्खा। चन्द्रगुप्त और चाणक्य ने मिल कर अपने साम्राज्य की सेना और शासन का प्रबन्ध भी बहुत अच्छा और मज़बूत किया।

---

* श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल तथा अन्य अनेक विद्वानों का मत है कि उसने पहले मगध जीता, बाद पंजाब लिया।

† सेलेउक़स् (Seleucus) में अन्तिम स् प्रथमा एकवचन का सूचक है।

‡ कन्दहार नगर जिस नदी के किनारे बसा है उसका नाम अब भी अरगन्दाब है। वह हेलमन्द (सेतुमन्त) की एक शाखा है। अरगन्द नदी का पुराना नाम अरखुती था। "अरखुती" शब्द "हरह्वती" या "हरक्वती" का रूपान्तर था और वह "सरस्वती" का। जिस प्रकार "सिन्धु" से "हिन्दु" हो गया, उसी प्रकार 'सरस्वती' से 'हरह्वती' हुआ। असल में उस नदी और उसकी दून का नाम तब हरह्वती या हरउवती था, जिसे यूनानी अरखुती (Archotia) बोलते थे।

§२. **बिन्दुसार**—चन्द्रगुप्त के बाद उसका बेटा बिन्दुसार अमित्रघात राजा हुआ (२६८ या ३०२ ई० पू०)। उसने प्रायः २५ बरस तक अपने पिता की तरह योग्यता से शासन किया। बौद्ध साहित्य में लिखा है कि चाणक्य उसके समय में भी प्रधान अमात्य रहा और उसने १६ राजधानियाँ जीत कर पूरब से पच्छिम समुद्र तक की भूमि बिन्दुसार के अधीन कर दी। वे १६ राजधानियाँ दक्खिनी राष्ट्रों की थीं। उनमें से आन्ध्र राष्ट्र बहुत प्रबल माना जाता था। मौर्य साम्राज्य की सीमा

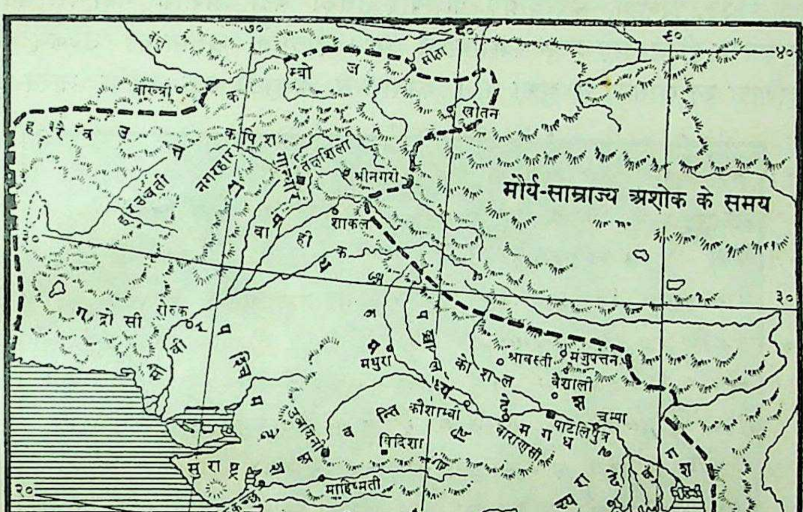
मौर्य-साम्राज्य अशोक के समय
बाख्त्री
कपिश
नगरहार
गान्धार
तक्षशिला
श्रीनगरी
खोतन
शाकल
हरउवती
मथुरा
श्रावस्ती
मंजुपत्तन
वैशाली
कौशाम्बी
पाटलिपुत्र
चम्पा
वाराणसी
मगध
कोशल
विदिशा
उज्जयिनी
माहिष्मती
सुराष्ट्र
भरुकच्छ
शूर्पारक
भोजक
ताम्रलिप्ति
तोसली
मधुरा
जम्बुकोल
पाण्ड्य
अनुराधपुर
ताम्रपर्णी
० २०० ४०० ५००
साम्राज्य की अन्दाज़न सीमा
मण्डलों की राजधानियाँ

तब आधुनिक कर्णाटक के दक्खिनी छोर तक पहुँच गयी थी। केवल चोल, पांड्य, चेर (केरल) और ताम्रपर्णी अर्थात् तामिल प्रदेश, मलबार और सिंहल—दक्खिन तरफ़ उसके बाहर बचे रहे।

§३. अशोक—बिन्दुसार के बाद उसका बेटा अशोक गद्दी पर बैठा। वह बचपन ही से बड़े प्रखर स्वभाव का था। पिता के अधीन वह उज्जैन और तक्षशिला का शासक रह चुका था। कम्बोज से कर्णाटक तक समूचा भारत अब मौर्य साम्राज्य में समा चुका था, तो भी बंगाल, मगध और आन्ध्र के बीच तीन तरफ़ से घिरा कलिंग (उड़ीसा) राष्ट्र स्वतन्त्र ही था। वह बड़ा शक्ति-शाली था। उसकी हाथियों की सेना खूब सधी हुई थी।

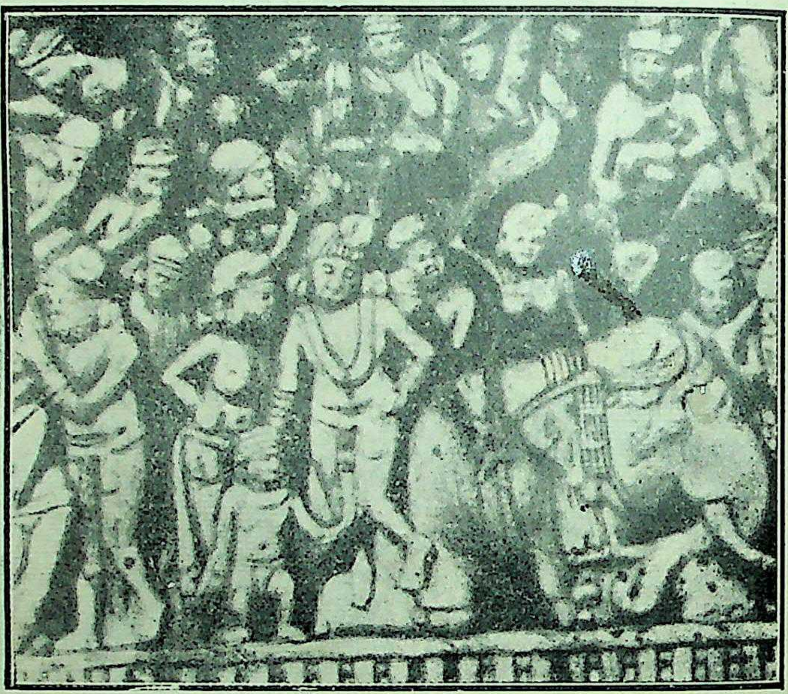

राजा अशोक जुलूस में

अशोक हाथी से उतर कर खड़े हैं; उनके आगे एक कुब्जक (बौना) और दोनों तरफ़ चँवरधारिणियाँ हैं। उनके बायें तरफ़ चँवरधारिणी के पीछे रानी दीख पड़ती हैं।

[साँची स्तूप के पूरबी तोरण की सबसे निचली बँडेरी पर बाहर की तरफ़ के मूर्त्त दृश्य में से।]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अपने राज्य के बारहवें बरस अशोक ने उसपर चढ़ाई की। कलिंग लोग बड़ी वीरता से लड़े। एक लाख मारे गये, डेढ़ लाख कैद हुए और कई गुने पीछे बीमारी आदि से मरे। कलिंग देश मौर्यों के अधीन हो गया, पर युद्ध की घटनाओं ने अशोक के हृदय को बदल दिया। अशोक ने तब दिग्विजय के बजाय धर्म-विजय की राह पकड़ी। उसका वर्णन आगे किया जायगा।

सीता (यारकन्द) नदी के काँठे में खोतन प्रदेश में अशोक के समय एक भारतीय बस्ती बसायी गयी। खोतन कम्बोज के ठीक पूरब था। उसके विषय में हम आगे बहुत कुछ सुनेंगे।

§४. मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध—मौर्य्य साम्राज्य का शासन-प्रबन्ध बहुत ही व्यवस्थित था। उसका हाल हमें मेगास्थेने के लिखे हुए वर्णन से, कौटल्य के लिखे अर्थशास्त्र नाम के ग्रन्थ से और अशोक के खुदवाये हुए लेखों से मिलता है।

मौर्य्य सम्राट् अपने को केवल 'राजा' कहते थे और अपने साम्राज्य को 'विजित'। राजा 'विजित' का शासन मन्त्रियों और परिषद् की सहायता से करता था। समूचा विजित इन पाँच मंडलों में बँटा था जो शायद 'चक्र' कहलाते थे—(१) मध्यदेश या मध्य-मंडल, (२) प्राची, (३) दक्षिणापथ, (४) अपर जनपद या पच्छिम-देश और (५) उत्तरापथ। आजकल हिन्दी भाषा का जो क्षेत्र है, करीब-करीब उसी को प्राचीन लोग मध्यदेश या मध्यमंडल कहते थे। उसके पूरब कलिंग, बंगाल आदि 'प्राची' अर्थात् पूरबी देश कहलाते थे। नर्मदा के दक्खिन 'दक्षिणापथ' था। मारवाड़, सिन्ध, गुजरात और कभी-कभी उनके साथ मालवा तथा कोंकण भी मिला कर 'अपर-जनपद' या 'पश्चिम देश' कहलाता था। पंजाब, कश्मीर, काबुल आदि 'उत्तरापथ' में गिने जाते थे।

मध्यदेश का शासन पटना से होता था, उत्तरापथ का तक्षशिला से और पच्छिमी चक्र का उज्जैन से। दक्षिणापथ की राजधानी सुवर्णगिरि थी। वह ठीक कहाँ थी सो अभी तक मालूम नहीं हो सका। कलिंग ही पूरब प्रान्त था; उसकी राजधानी तोसली थी, जिसकी जगह पर अब पुरी ज़िले का धौली कस्बा है। इन राजधानियों में राजा की तरफ़ से कुमार (राजकुमार), महामात्य (सचिव) या 'राजुक' शासन का निरीक्षण करते थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

प्रत्येक चक्र के निरीक्षण में कई-कई जनपद थे। जनपद वही थे जो पुराने चले आते थे। उन जनपदों की अपनी-अपनी राजधानियाँ थीं, जिनमें राजकीय महामात्य प्रजा की परिषद् की सहायता से शासन करते थे। उदाहरण के लिए पाटलिपुत्र-मंडल के निरीक्षण में कौशाम्बी एक जनपद की राजधानी थी। कई जनपदों का सीधा शासन राजा के अधीन था, अर्थात् उनके निरीक्षण के लिए राजकीय महामात्य नियुक्त थे, कई और अपने अन्दर के प्रबन्ध में सर्वथा स्वतन्त्र थे। आन्ध्र, विदर्भ और कम्बोज आदि साम्राज्यान्तर्गत स्वतन्त्र राष्ट्र थे।

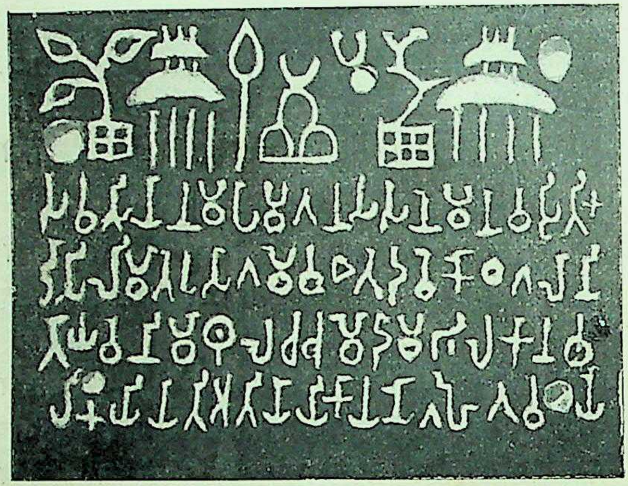

चन्द्रगुप्त मौर्य की जनपद शासन-शैली का नमूना—सहगौरा (जि० गोरखपुर) से पाये गये इस ताम्रपत्र पर यह लेख है, "श्रावस्ती के महामात्यों का मानवसीति शिविर से हुक्म—अमुक गाँवों के ये अनाज के कोष्ठागार केवल सूखा पड़ने पर किसानों को बाँटने के लिए हैं; अकाल के समय ये रोके न जायँ।" इस ताम्रपत्र के ऊपर वही चिन्ह हैं, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के सिक्कों पर पाये गये हैं। [भा० पु० वि०]

प्रत्येक जनपद का अपना-अपना 'धर्म' और 'व्यवहार' अर्थात् कानून था। ग्रामों, श्रेणियों, नगरों के निगमों तथा जनपदों की परिषदें जो नया कानून बनातीं, वह 'चरित्र' कहलाता था। विशेष दशा में राजा अपने 'शासन' से उन धर्मों, व्यवहारों और चरित्रों में रद्दोबदल कर सकता था। जनपदों के अपने-अपने "शील, वेश, भाषा और आचार" थे, तथा प्रत्येक जनपद का एक अपना देवता, अपने

उत्सव और अपने "समाज" (खेलों की प्रतियोगिताएँ या टूर्नामेन्ट) होते थे। प्रजा में अपने-अपने जनपद के लिए भक्ति और अभिमान का भाव उत्कट रूप से था।

जनपदों के अन्दर फिर दो तरह के इलाके थे। एक तो वे जिन का ठीक-ठीक बन्दोबस्त हो चुका था। वे आहारों यानी ज़िलों में बँटे थे। दूसरे जंगली इलाके थे, जो कोट्ट-विषय अर्थात् किलों के क्षेत्र कहलाते थे। एक-एक कोट या किले के चौगिर्द जो जंगली इलाका था उसका शासन उसी किले से चलता था।

ग्रामों और श्रेणियों के राजनीतिक अधिकारों को मौर्य साम्राज्य ने बहुत कुछ दबाने का जतन किया। पुराने बन्दोबस्त हुए जनपदों के गाँवों तक में कर की वसूली, रक्षा, न्याय आदि का काम राजकीय 'पुरुष' यानी अफ़सर करते थे। गाँवों के शासक 'गोप' कहलाते थे। कस्बों और शहरों में दो किस्म के सरकारी न्यायालय थे। एक कंटक-शोधन यानी फ़ौजदारी, दूसरे धर्मस्थ यानी दीवानी। प्रत्येक जनपद के शासन में और बहुत से महकमे भी थे। वसूली, न्याय आदि के सिवाय सिंचाई, जंगल, खानों आदि के महकमे प्रजा की भलाई और राज्य की आमदनी बढ़ाने को थे। कुछ सामाजिक महकमे भी थे, जैसे शराब-खानों की देख-रेख का महकमा।

सुराष्ट्र (काठियावाड़) में गिरनार के पास पहाड़ी नदियों को बाँधों से रोक कर चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए एक बड़ा ताल बनवाया था। पटना और भिन्न-भिन्न जनपदों के बीच सड़कों का एक जाल सा बिछा दिया गया था। मनुष्यों और पशुओं के लिए सरकारी चिकित्सालय थे। मनुष्य-गणना होती थी और वर्षा का माप रक्खा जाता था। हत्या आदि के मामलों में 'आशु-मृतक परीक्षा' यानी शव-परीक्षा करने की रीति जारी थी। ये बातें उस ज़माने में संसार का और कोई राज्य न जानता था। मौर्यों का गुप्तचर और सेना विभाग बहुत मज़बूत था। सेना के छः महकमे—पैदल, सवार, हाथी, रथ, जलसेना और रसद के—थे। वे एक-एक छोटे वर्ग के अधीन होते थे।

पाटलिपुत्र नगर के प्रबन्ध के लिए प्रजा स्वयम् ३० आदमियों की एक सभा नियुक्त करती थी। उस सभा के पाँच-पाँच आदमी बँट कर छः छोटे वर्ग बन जाते थे, जो एक-एक महकमे की देख-रेख करते थे। उनमें एक महकमा विदेशियों की और एक शिल्प की देख-रेख के लिए भी था। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसमें बहुत से विदेशी आ कर रहते थे। विजित की दूसरी नगरियों का प्रबन्ध भी उसी तरह चलता होगा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दंड-विधान कठोर था, पर मौर्यों ने अपने से पहले दंड-विधान को बहुत कुछ नरम करने का जतन किया था। कारीगर का हाथ या आँख बेकार कर देने वाले को फाँसी मिलती थी। सिंचाई के तालाब का बाँध तोड़ने वाले को वहीं डुबा दिया जाता था। मेगास्थेने लिखता है, 'भारतवर्

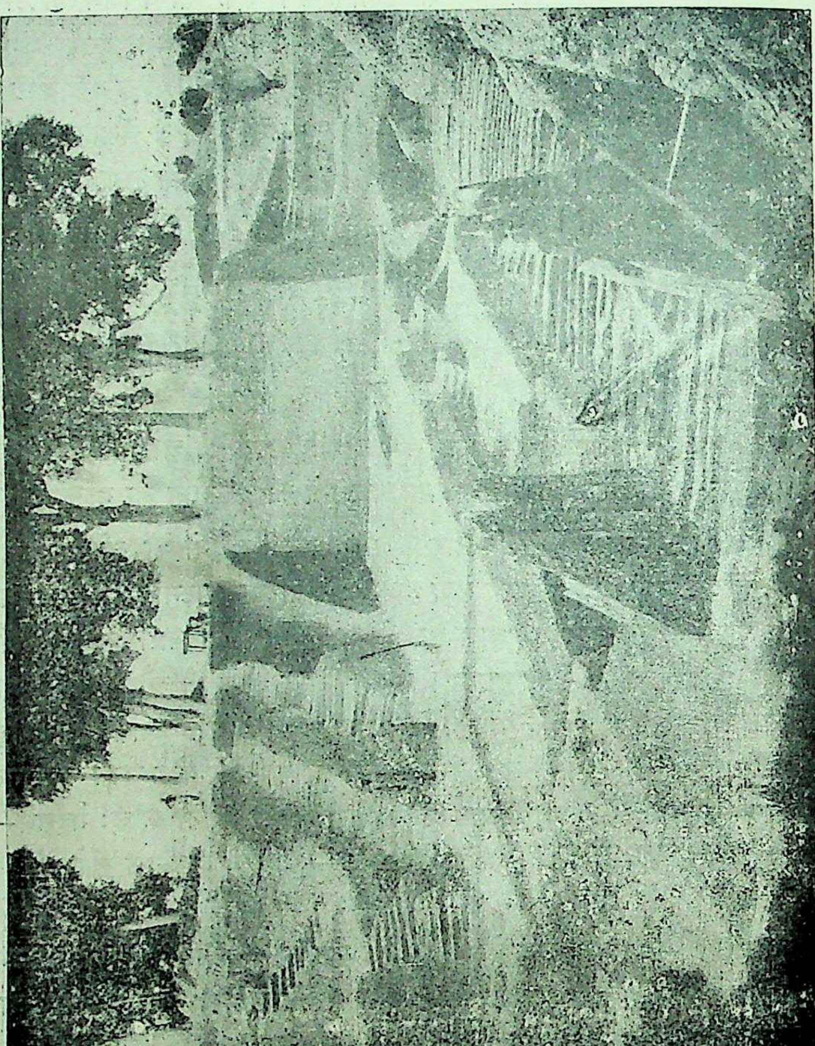

मौर्ययुगीन पाटलिपुत्र की लकड़ी की इमारतों के खंडहर [फ़ोटो पटना म्यूज़ियम]

के लोग कभी झूठ नहीं बोलते, मकानों में ताले नहीं लगाते और अदालतों में बहुत कम जाते हैं।'

यूनान आदि में दास-प्रथा इतनी अधिक थी कि खेती-बारी और मेहनत-मज़दूरी सब दासों से करायी जाती थी। एक-एक स्वतन्त्र गृहस्थ के पाँच-पाँच सौ तक दास होते थे, जिनके साथ पशुओं का सा बर्ताव होता था। पर भारत में यह बात न थी। इसी कारण मेगास्थेने लिखता है कि भारत में दासता न थी। कौटल्य भी लिखता है, "म्लेच्छों को अपनी सन्तान बेचने या धरोहर रखने से दोष नहीं लगता; पर आर्य कभी दास नहीं हो सकता।" घरेलू सेवा के लिए जो थोड़ी-बहुत दासता थी, उसे भी कौटल्य ने बिलकुल उठाने की चेष्टा की। उसने "आर्य-प्राण" शूद्रों की—अर्थात् उन शूद्रों की जिनमें आर्य रक्त मिला हुआ था—बिक्री आदि पर सख्त बन्धन लगा दिये, और ऐसे नियम बनाये कि दास लोग बहुत आसानी से "आर्य" यानी स्वतन्त्र भारतवासी बन सकें। प्रत्येक भारतवासी को स्वतन्त्र बनाने के कौटल्य के ये जतन ऐसे थे जिनके लिए आज भी हम आदर के साथ उसका नाम लेते हैं।

अध्याय ३

अशोक की धर्म-विजय और पिछले मौर्य-सम्राट्

(२६५-२११ ई० पू०)

§ १. **अशोक के सुधार**—कलिंग-विजय के बाद अशोक के मन में भारी 'अनुशोचन' हुआ। उसने अनुभव किया कि "जहाँ लोगों का इस प्रकार वध, मरण और देशनिकाला हो, वहाँ जीतना न जीतने के बराबर है।" उसने निश्चय किया कि अब वह ऐसी विजय न करेगा। अपने बेटों-पोतों के लिए भी उसने यह शिक्षा दर्ज की कि वे "नयी विजय न करें और जो विजय वाण खींच कर ही हो सके, उसमें भी क्षमा और लघुदंडता से काम लें। धर्म के द्वारा जो विजय हो उसी को असल विजय मानें।" दक्खिनी सीमा के राज्यों के विषय में उसने

अपने अधिकारियों को लिखा, "शायद आप लोग जानना चाहें कि सीमा पर के जो राज्य अभी तक जीते नहीं गये हैं, उनके विषय में राजा क्या चाहता है। मेरी⋯⋯यही इच्छा है कि वे मुझसे डरें नहीं, मुझपर भरोसा रक्खें⋯⋯वे यह मानें कि जहाँ तक क्षमा का बर्ताव हो सकेगा, राजा हमसे क्षमा का बर्ताव करेगा।"

अपने राज्य के अन्दर भी उसने बहुत सुधार किये। प्राचीन भारत में जानवर लड़ा कर तमाशा देखने का व्यसन बहुत प्रचलित था। उसे 'समाज' यानी इकट्ठा हाँकना कहते थे। अशोक ने अपने यहाँ वह बन्द कर दिया और प्रजा को भी वैसा करने का उपदेश दिया। जो पशु-पक्षी केवल विनोद के लिए मारे जाते थे, उनकी हत्या भी उसने रोक दी। राजा लोग विहार-यात्राएँ करते थे। अशोक ने उसके बजाय धर्म-यात्रा शुरू की, जिसमें वह प्रजा की भलाई के उपाय करता था। अपने राजपुरुषों पर उसने कड़ी निगरानी की कि वे प्रजा को पीड़ित न कर पावें। उसने उनसे ताकीद की कि एक भी निरपराध आदमी को उनकी बेपरवाही से कष्ट न हो। जगह-जगह मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाये और कुएँ खुदवाये। सड़कों पर पेड़ लगवाये। सब पन्थों के लोग आपस में सहिष्णुता और प्रेम से रहें, ऐसी शिक्षा देने के लिए उसने "धर्म-महामात्य" नियुक्त किये। उसने लिखा, "प्रियदर्शी राजा (अशोक) चाहता है कि सब पन्थ वाले सब जगह आबाद हों। वे सभी संयम और भाव-शुद्धि चाहते हैं।⋯सब पन्थों की सार-वृद्धि हो⋯इसका मूल वचोगुप्ति (वाणी का संयम) है जिसमें अपने पन्थ वालों का अति आदर और दूसरों की निन्दा न की जाय।"

§२. धर्म-विजय की नयी नीति—किन्तु अशोक ने विजय की नीति न छोड़ दी थी। दिग्विजय के बजाय उसने अब "धर्म-विजय" शुरू की। वह एक नयी और विचित्र नीति थी। उसने न केवल अपने विजित में, प्रत्युत चोल, चेर, पांड्य और सिंहल में, तथा दूसरी तरफ़ पड़ोस और दूर के सब यूनानी राज्यों में भी, चिकित्सालय बनवाये और रास्तों पर पेड़ लगवाये। इन यूनानी राज्यों के नाम अशोक ने अपने लेखों में दिये हैं। इनसे प्रतीत होता है कि समूचे मध्य और पच्छिमी एशिया, मिस्र, उत्तरी आफ्रिका और यूनान तक अशोक के ये धर्म-विजय के कार्य फैले हुए थे।

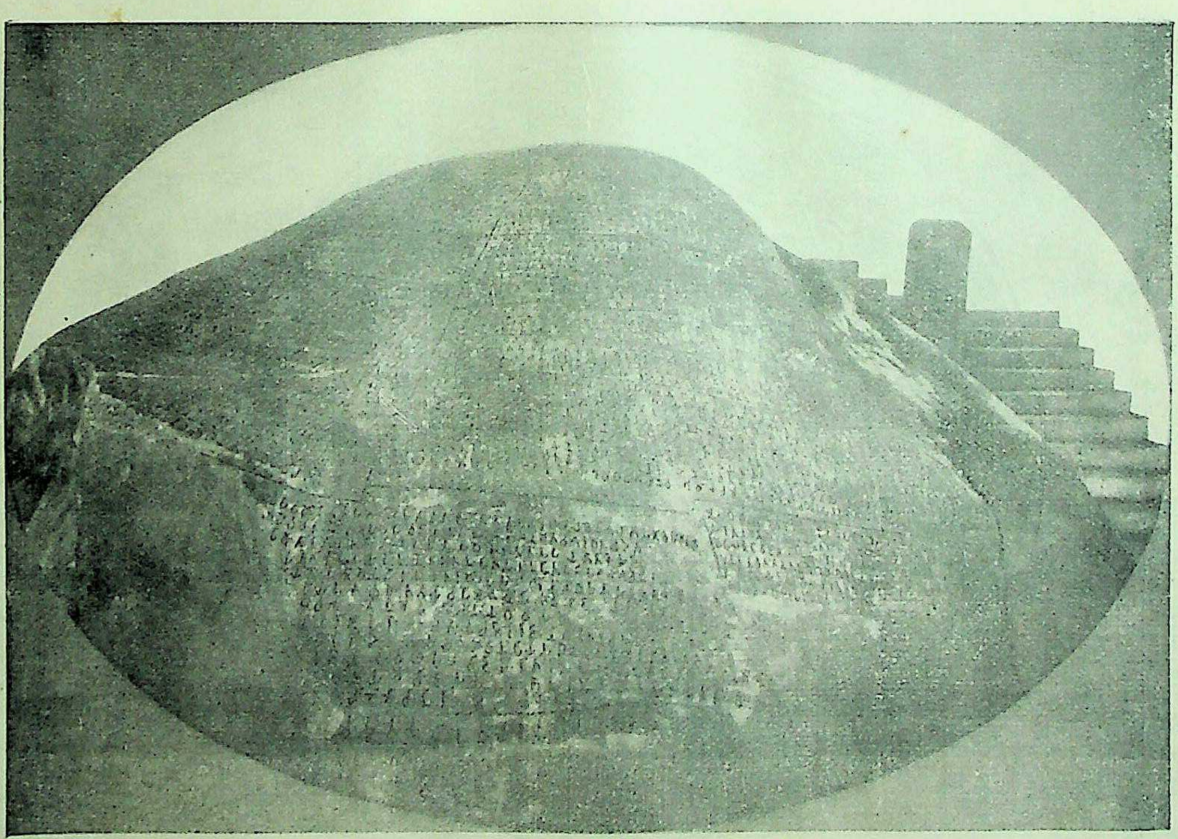

गिरनार की चट्टान पर अशोक के खुदवाये हुए लेख—सन् १८९० में म० म० पंडित गौरीशंकर हीराचन्द ओझा द्वारा लिया हुआ चित्र

इसके अलावा अशोक ने बौद्धों की तीसरी 'संगीति' बुलवायी। उसकी तरफ़ से उसने इन सब देशों में भिक्षु प्रचारक भेजवाये। उन प्रचारकों के कार्य-क्षेत्रों को चार हिस्सों में बाँटा जा सकता है—

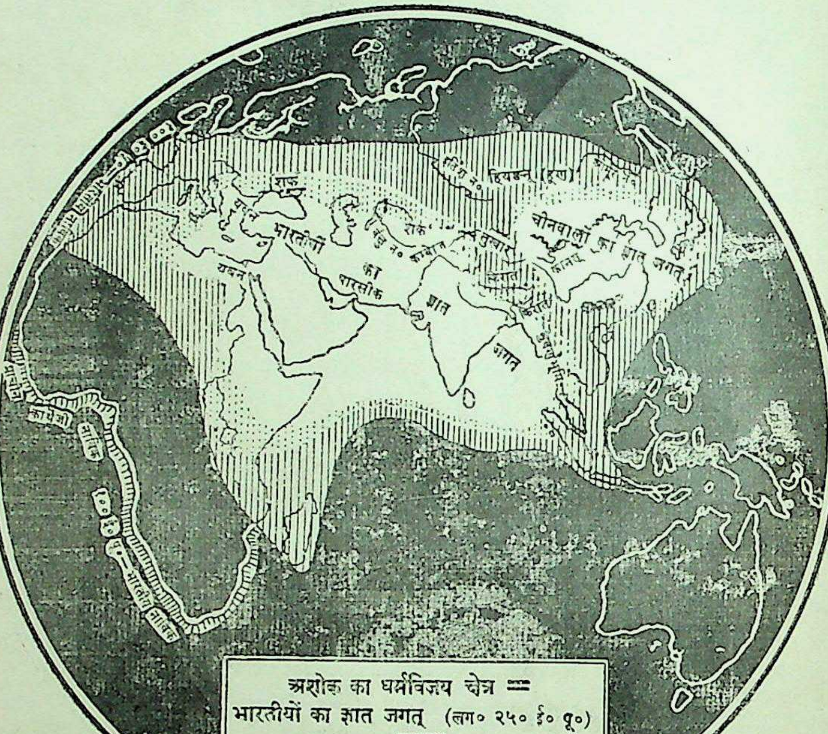
शक
यवन
भारतीयों
का
पारसीक
ज्ञात
जगत
ऋषिक
कम्बोज
तुखार
हियङ्नु (हूण)
चीनवालों का ज्ञात जगत
किरात
सुवर्णभूमि
अशोक का धर्मविजय क्षेत्र =
भारतीयों का ज्ञात जगत् (लग० २५० ई० पू०)
अज्ञात देश
अस्पष्ट ज्ञात देश

(१) सब से पहले दक्खिन भारत और सिंहल। सिंहल में अशोक का बेटा महेन्द्र और उसकी बहन संघमित्रा, जो भिक्षु और भिक्षुणी हो गये थे, गये। वहाँ उन्होंने विजय के वंशज राजा तिष्य को उसके साथियों सहित बौद्ध बनाया। उन लोगों ने बोधि-वृक्ष की एक शाखा सिंहल के लिए मँगवायी। अशोक ने उसे स्वयम् काट कर बंगाल के ताम्रलिप्ति (तामलूक) बन्दरगाह से जहाज़ में भेजा

और अनुराधपुर में वह शाखा लगायी गयी। महेन्द्र और संघमित्रा ने सिंहल में जो बौद्ध धर्म का पौधा लगाया, वह भी बोधि-वृक्ष की उस शाखा की तरह धीरे-धीरे एक विशाल वृक्ष बन गया।

(२) उत्तर तरफ़ गान्धार, कश्मीर, कम्बोज आदि देशों में भिक्षु भेजे गये।

(३) इसी प्रकार पूरबी हिमालय के किरात लोगों में और सुवर्णभूमि के असभ्य आग्नेय लोगों में भी धर्म-प्रचार के लिए भिक्षु गये।

(४) भिक्षुओं का एक दल पच्छिम के यवन राज्यों में गया। उन्होंने पच्छिम एशिया में बुद्ध का सन्देश पहुँचाया। अशोक के अढ़ाई सौ बरस पीछे उसी पच्छिम एशिया के फिलिस्तीन देश में महात्मा ईसा प्रकट हुए, जिनकी शिक्षाएँ भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं से बहुत मिलती-जुलती हैं। ईसा की मातृभूमि में बुद्ध की शिक्षाएँ अशोक ने ही पहुँचायी थीं।

यह समझ लेना चाहिए कि अशोक ने अपने ज़माने के सारे सभ्य संसार की 'धर्म-विजय' करने की चेष्टा की थी। उस समय संसार में यूनानी, भारतीय और चीनी—इन तीन ही सभ्य जातियों के राज्य थे। यूनान के पच्छिम रोम के लोग अभी सभ्यता सीखने ही लगे थे। अशोक ने चीन में अपने भिक्षु न भेजे, इसका कारण शायद यह था कि भारतवर्ष और पच्छिम के लोग उस समय तक चीन को न जानते

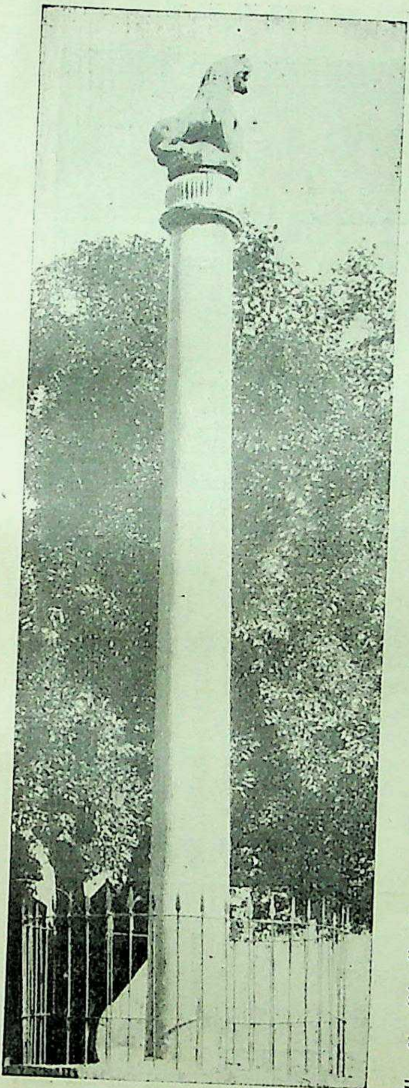

अशोक का एक स्तम्भ—लौड़िया नन्दनगढ़ (जि० चम्पारन) में [भा० पु० वि०]

थे। चीन और भारत के बीच सुवर्णभूमि (हिन्द-चीन प्रायद्वीप), तिब्बत और तारीम काँठे के विशाल देश हैं। वे तीनों उस समय तक इतने जंगली थे कि उनके आरपार लाँघ कर चीन और भारत का परस्पर सीधा परिचय न हुआ था। सुवर्णभूमि, पूरबी हिमालय और कम्बोज देश के लोग भारतवासियों की दृष्टि में सभ्य जगत् के अन्तिम छोरों पर रहते थे। इसलिए जितने संसार को भारतीय जानते थे, उसके अन्तिम किनारों तक अशोक ने अपने धर्म-विजय की चढ़ाइयाँ की थीं।

§३. अशोक की इमारतें— अशोक का नाम उसकी इमारतों और उसके लेखों के कारण भी प्रसिद्ध है। उसने पहाड़ी चट्टानों पर और पत्थर के खम्भों पर लेख खुदवाये जिनमें से बहुत से अब तक मौजूद हैं। चट्टानों पर के लेख पेशावर और हज़ारा ज़िले में, काठियावाड़ और उड़ीसा में और देहरादून से मैसूर और हैदराबाद तक मिले हैं। लेखों वाले मुख्य खम्भे छः हैं जो दिल्ली, प्रयाग और चम्पारन ज़िले में हैं। कुछ गौण खम्भे भी हैं जिनमें से एक लुम्बिनी में है। ये खम्भे कारीगरी के अनोखे नमूने हैं। प्रत्येक ४०-५० फुट ऊँचा और एक ही पत्थर में से कटा हुआ है। उनकी पालिश की चिकनाई और चमक भी ज्यों की त्यों बनी है। वे सब मिर्ज़ापुर-चुनार के पत्थर के हैं और वहीं से सब जगह भेजे गये थे। दिल्ली में फ़ीरोज़शाह के कोटले पर अशोक का जो खम्भा लगा है, उसे फ़ीरोज़शाह

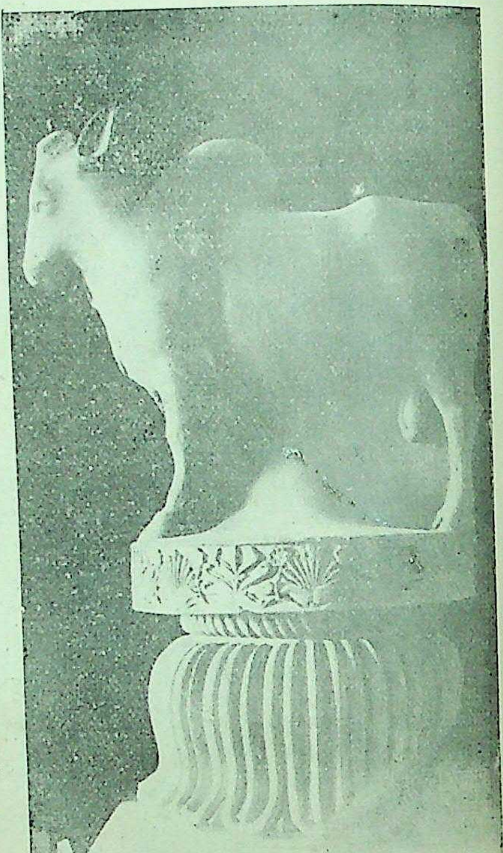

रामपुरवा (ज़ि० चम्पारन) के अशोक-स्तम्भ पर की वृष-मूर्त्ति [भा० पु० वि०]

तुग़लक़ अम्बाला के पास से वहाँ उठवा लाया था। उस एक खम्भे को रस्सों से खींचने के लिए ८,४०० आदमी लगे थे, और सिर्फ डेढ़ सौ मील ले जाने के लिए बड़ा इन्तजाम करना पड़ा था। अशोक के इञ्जीनियरों ने उन्हें चुनार से इतनी दूर कैसे भेज दिया सो कुछ कम अचरज की बात नहीं है। उन खम्भों के ऊपर जो सिंह आदि की मूर्तियाँ हैं, वे भी बहुत बढ़िया कारीगरी की हैं।

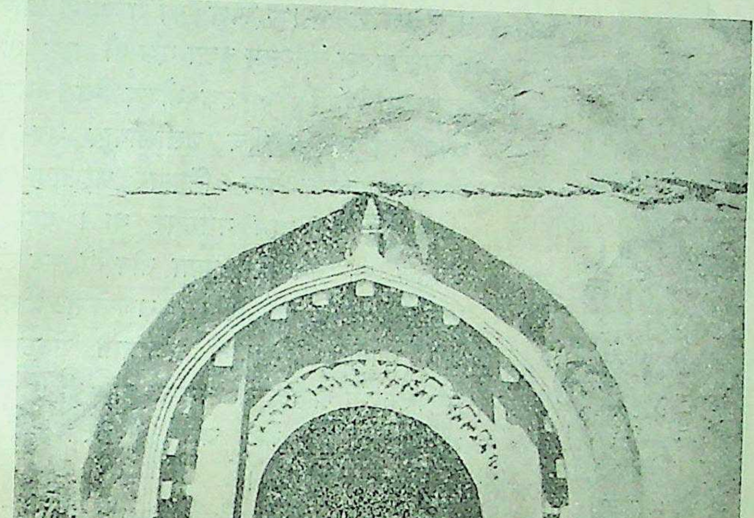

बराबर पहाड़ी (ज़ि० गया) की चट्टान में राजा दशरथ द्वारा कटवायी गयी गुहा, जो लोमश ऋषि की गुफ़ा के नाम से प्रसिद्ध है। [भा० पु० वि०]

अशोक ने कितने ही स्तूप बनवाये, और बुद्ध की धातुओं (फूलों) को आठ मूल स्तूपों में से निकलवा कर उन सब में बाँट दिया। आजकल के काफ़िरिस्तान का पुराना नाम कपिश है। कपिश की राजधानी कापिशी में अशोक का बनवाया हुआ एक सौ फुट ऊँचा स्तूप छठी शती ई० तक मौजूद था। काबुल और पेशावर के बीच जलालाबाद शहर है, जिसका इलाका अब निंग्रहार कहलाता है। उसका पुराना नाम नगरहार था। वहाँ भी अशोक का बनवाया हुआ तीन सौ फुट ऊँचा एक स्तूप था। कश्मीर की राजधानी श्रीनगरी और नेपाल की पुरानी राजधानी पाटन या मंजुपत्तन भी अशोक ने स्थापित की थीं। नेपाल में अशोक की बेटी चारुमती और उसका पति देवपाल जा बसे थे।

§४. पिछले मौर्य्य सम्राट्—अशोक के बाद उसके बेटे कुनाल ने राज्य किया, फिर क्रम से कुनाल के दो बेटों दशरथ और सम्प्रति ने। वे तीनों योग्य राजा थे। उनका शासन २५ बरस रहा और २११ ई० पू० में समाप्त हुआ। सम्प्रति ने जैन धर्म के लिए वही काम किया जो अशोक ने बौद्ध धर्म के लिए किया था।

§५. मौर्य्य भारत की सभ्यता—मौर्य्यों के समय में भारतवर्ष की समृद्धि और सभ्यता पहले मगध-साम्राज्य के समय से और आगे बढ़ गयी। शिल्प की उन्नति के कारण देश का धन खूब बढ़ा। पाटलिपुत्र उस समय संसार में सब से बड़ा नगर था। उसी समय क्या, सारे प्राचीन काल में उतना बड़ा कोई और नगर नहीं हुआ। उसका घेरा २१½ मील का था।

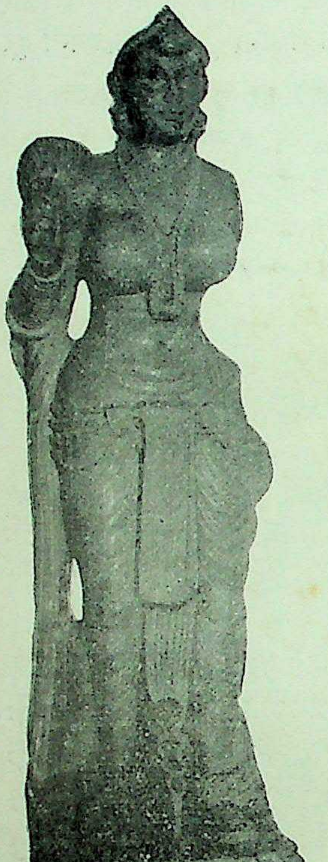

चँवर-धारिणी

पिछले मौर्य युग की कारीगरी का नमूना—दीदारगंज (ज़ि० पटना) से पायी गयी मूर्त्ति। [पटना म्यूज़ियम]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चारों तरफ लकड़ी का परकोटा था, जिसमें ६४ दरवाजे और ५७० गोपुर थे। दूर-दूर के देशों के लोग वहाँ आते थे।

मौर्य युग का साहित्य प्रायः पिछले युग की तरह था। सूत्र-शैली में ग्रन्थ लिखना जारी था। बौद्ध धर्म के प्रचार की कहानी हम कह चुके हैं। मेगास्थेने के लेख से जान पड़ता है कि शूरसेन (मथुरा) के लोग अब कृष्ण वासुदेव को देवता की तरह पूजने लगे थे। मौर्य्य युग का समाज भी पिछले हिन्दू समाज की अपेक्षा वैदिक समाज से अधिक मिलता-जुलता था। स्त्रियों को पूरी स्वतन्त्रता थी। आवश्यकता होने पर, धर्मस्थ की इजाज़त ले कर, वे विवाह का 'मोक्ष' (तलाक) करवा सकतीं थीं। उन्हें दायभाग भी मिलता था।

पृथिवी-माता ?

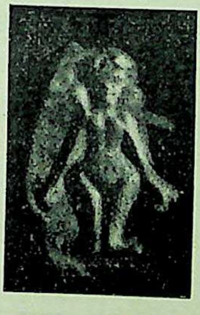

नन्दनगढ़ की खुदाई से पायी गयी सोने की पत्री पर अंकित मूर्त्ति; असल साइज़।
नन्द-युग की कारीगरी का नमूना।
[भा० पु० वि०]

पाँचवाँ प्रकरण

सातवाहन-युग

(लगभग २१० ई० पू० से १७६ ई०)

अध्याय १

यवन और शुंग राजा

(लगभग २१० — १०० ई० पू०)

§१. **दक्खिन और कलिंग में सातवाहन और चेदि-वंश**—सम्प्रति के बाद के मौर्य राजा निकम्मे और कर्त्तव्यविमुख निकले। उन्होंने अपनी कमज़ोरी को अशोक वाली क्षमानीति का ढोंग करके छिपाना चाहा। २१० ई० पू० से उनका साम्राज्य टूटने लगा, और भारतवर्ष के चार मंडलों—मध्यदेश, पूरब, दक्खिन और उत्तरापथ—में नये राज्य उठ खड़े हुए।

सबसे पहले दक्खिन और पूरब के मंडल स्वतन्त्र हुए। दक्खिन में सिमुक नाम के एक ब्राह्मण ने अपना राज्य स्थापित किया। उसके वंश का नाम सातवाहन* था। सातवाहनों का राज्य शुरू में महाराष्ट्र में था, पीछे आन्ध्र में भी हो गया। तब वह वंश आन्ध्र वंश भी कहलाने लगा। इस वंश का राज्य अनेक उतार-चढ़ावों के बीच करीब ४५० बरस तक बना रहा, और इस अरसे में प्रायः वह भारतवर्ष का प्रमुख राज्य रहा। इसी कारण हम इस युग को सातवाहन-युग कहते हैं।

कलिंग में भी चेदि वंश के एक क्षत्रिय ने, लगभग २१० ई० पू० में, स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया।

§२. **पार्थव और बाख्त्री राज्य**—उधर उत्तरापथ में एक नयी शक्ति खड़ी हो गयी। सेलेउक वंश का जो साम्राज्य पच्छिम एशिया से मध्य एशिया तक

---

* 'सातवाहन' का एक प्राकृत रूप 'सालवाहन' है, जिसका संस्कृत रूपान्तर फिर 'शालिवाहन' किया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

फैला हुआ था, वह अशोक के समय में ही टूटने लगा था। २४८ ई० पू० में ईरान उससे स्वतन्त्र हो गया। ईरान के उत्तरी पहाड़ी हिस्से को आजकल ख़ुरासान कहते हैं। वहाँ पार्थव नाम की एक ईरानी जाति रहती थी, जिससे उस प्रदेश का नाम भी तब पार्थव था। पार्थव जाति के मुखिया अरसक ने ईरान को स्वतन्त्र कर अपने वंश का राज्य स्थापित किया। सातवाहनों की तरह उसके वंशजों ने भी प्रायः ४५० बरस राज्य किया। पार्थवों की प्रधानता होने के कारण इस युग में सारे ईरान का नाम पार्थव (Parthia) ही रहा।

पार्थव देश के उत्तर-पूरब बाख्त्री (वाह्लीक या बलख) और सुग्द (आमू-सीर-दोआब) प्रदेश थे। आजकल हम उन्हें तुर्किस्तान* में गिनते हैं, पर हखामनी साम्राज्य के समय और उसके पहले से सुग्द में शक लोग रहते थे। उनकी एक शाखा अफ़ग़ानिस्तान के दक्खिन-पच्छिम आ बसी थी, जिससे उस प्रदेश का नाम शकस्थान हुआ, जो अब भी सीस्तान कहलाता है। अलक्सान्दर ने बाख्त्री और सुग्द दोनों को जीता था। २५० ई० पू० के करीब वहाँ का यूनानी शासक सेलेउकी साम्राज्य से स्वतन्त्र हो बैठा। प्रायः सौ बरस तक बाख्त्री (Bactria) में इन यूनानियों का स्वतन्त्र राज्य रहा। इनका भारतवर्ष से भी घनिष्ठ सम्बन्ध था। सेलेउकी साम्राज्य अब केवल पच्छिमी एशिया में, सीरिया के चौगिर्द, रह गया।

§३. डिमित, खारवेल, शातकर्णि (१म) और पुष्यमित्र—२०५ ई० पू० तक काबुल दून में राजा सुभागसेन राज्य करता था। वह मौर्यों का उत्तराधिकारी था। उसके मरने पर बाख्त्री के यूनानियों ने काबुल, हरउअती और गदरोसिया को जीत लिया। फिर उन्होंने पंजाब-सिन्ध पर भी चढ़ाई की। जब मध्यदेश में मौर्य साम्राज्य समाप्त हो रहा था उस समय बाख्त्री के राजा देमेत्रिय (Demetrius) ने उसपर चढ़ाई की। मथुरा और साकेत (अयोध्या) को ले कर उसने पाटलिपुत्र को भी घेर लिया।

उस समय दक्खिन में सिमुक का भतीजा शातकर्णि (१म) राज्य कर रहा था, और कलिंग में चेदि राजा खारवेल। खारवेल शातकर्णि को दो बार

---

* प्राचीन इतिहास में तुर्किस्तान शब्द से ख़ास तौर से परहेज़ करना चाहिए, क्योंकि उस देश में तब तुर्क थे ही नहीं; वे वहाँ बहुत पीछे आये हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हरा कर, उससे वेणगंगा-वर्धा का प्रदेश छीन कर, विदर्भ पर अपनी प्रभुता जमा चुका था। देमेत्रिय या डिमित के हमले की खबर पा कर खारवेल मगध की तरफ़ बढ़ा; परन्तु डिमित उसके आने की खबर सुन कर उलटे पाँव भाग गया। खारवेल ने उसके बाद "उत्तरापथ" पर भी चढ़ाई की। वह मगध के रास्ते लौटा। उधर सुदूर दक्खिन पर भी खारवेल ने चढ़ाई की। पांड्य देश के समुद्र में मोती निकाले जाते थे। उस व्यापार के कारण पांड्य बहुत धनी थे। अब मोतियों के जहाज़ कलिंग के राजा के पास भेंट में आने लगे। खारवेल जैन धर्म का अनुयायी था। उसके कारनामों का वृत्तान्त पुरी ज़िले में भुवनेश्वर के पास हातीगुम्फा नाम की एक गुफ़ा की चट्टान पर खुदा है।

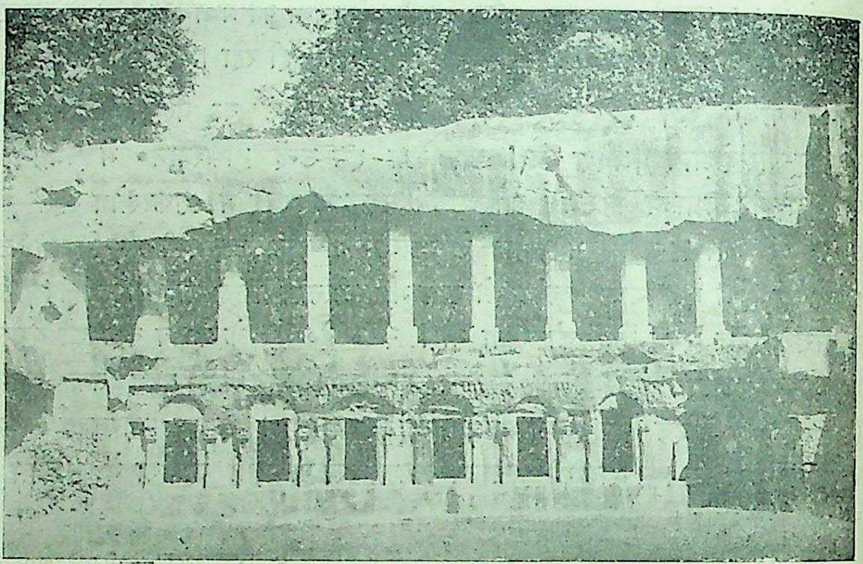

रानीगुम्फा

खंडगिरि (ज़ि० पुरी) की चट्टान में खारवेल की रानी का कटवाया हुआ गुहा-विहार

[भा० पु० वि०]

मौर्य राज्य की निष्क्रियता से ऊब कर प्रजा और सेना बिगड़ उठी। सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने समूची सेना के सामने राजा को मार कर शासन अपने हाथ में कर लिया। पुष्यमित्र ने समूचे मध्यदेश पर अधिकार करके यूनानियों से भी लड़ाइयाँ लड़ीं। मद्र देश की राजधानी शाकल (स्यालकोट) तक उसने विजय की। उसने बौद्धों का बहुत दमन किया। उसका बेटा अग्निमित्र और पोता वसुमित्र था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वसुमित्र के हाथ एक घोड़ा छोड़ बाद में उसने अश्वमेध भी किया। महाकवि

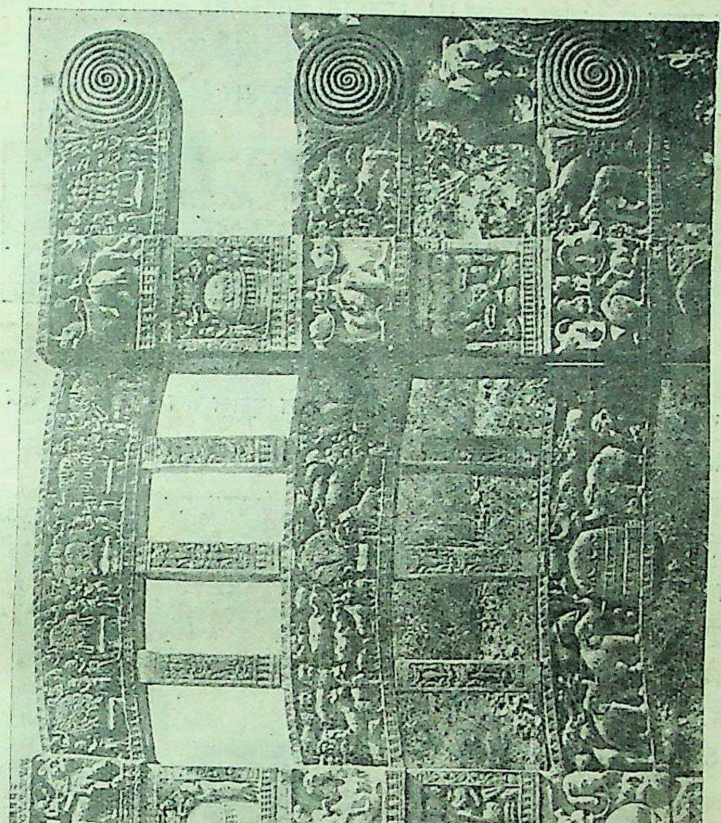

साँची स्तूप का जँगला, पूरबी तोरण की बँड़ेरियाँ

कालिदास ने वही वृत्तान्त मालविकाग्निमित्र नाटक में लिखा है।

पुष्यमित्र के पीछे शुंग वंश का आधिपत्य मथुरा तक ज़रूर बना रहा। शुंगों के सामन्त मथुरा में, उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्रा में, कौशाम्बी में तथा भारहुत (बघेलखंड की नागोद रियासत में, सतना के पास) में राज्य करते थे। शुंग राजा पाटलिपुत्र के बजाय अयोध्या में और कभी-कभी आकर-देश (पूरबी मालवा) की राजधानी विदिशा (भेलसा) में भी रहते थे। पुष्यमित्र असल में विदिशा का ही रहने वाला था। उसी विदिशा के पास सांची का प्रसिद्ध स्तूप है जिसके चारों तरफ़ पत्थर की सुन्दर वेदिका (जँगला) शुंगों के समय की या उनके कुछ पहले की बनी हुई है।

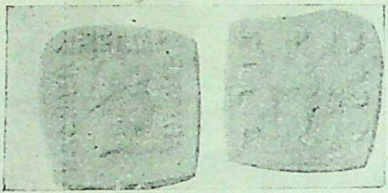

'काविसिए नगरदेवता'

चित, राजा एवुक्रतिद (Eucratides) का चेहरा ; पट, कापिशी की नगरदेवा।

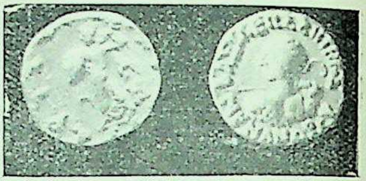

मेनन्द्र का सिक्का

चित, यूनानी लेख ; पट, प्राकृत लेख

[श्रीनाथ साह संग्रह]

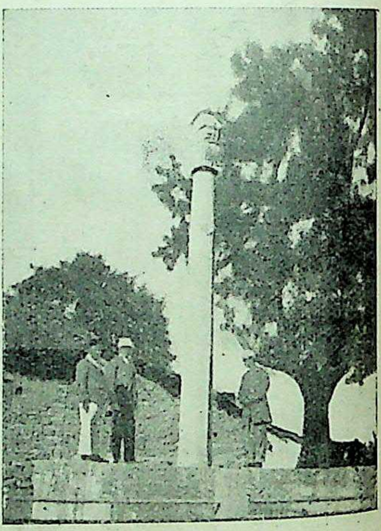

भेलसा में हेलिउदोर का गरुडध्वज, जो खाम-बाबा नाम से प्रसिद्ध है।

[फोटो, रा० साङ्कृत्यायन]

§४. यवन राज्य—उत्तर की तरफ़ भी अनेक उतार-चढ़ावों के बाद अफ़गानिस्तान और पच्छिमी पंजाब में चार छोटे-छोटे यूनानी राज्य स्थापित हो गये। एक कापिशी में, दूसरा पुष्करावती में, तीसरा तक्षशिला में और चौथा शाकल में था। इन सब राज्यों के बहुत से सिक्के अब तक मिलते हैं। उन सिक्कों के एक तरफ़ प्रायः यूनानी और दूसरी तरफ़ प्राकृत लेख होता है। कापिशी के कई सिक्कों पर "कापिशी की नगर-देवता" की मूर्त्ति रहती है और पुष्करावती के सिक्कों पर नन्दी और

"पुष्करावती देवी" की। तक्षशिला और शाकल के सिक्कों पर यूनानी और भारतीय देवताओं की मूर्तियाँ तथा बुद्ध के धर्म-चक्र आदि के निशान होते हैं। शाकल में मेनन्द्र (Menander) नाम का यूनानी राजा बड़ा विजेता हुआ। वह बौद्ध हो गया और उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए भी बहुत काम किया। तक्षशिला के एक यूनानी राजा अन्तलिखित का दूत शुंग राजा के पास विदिशा में गया था। वह यूनानी दूत हेलिउदोर वासुदेव (विष्णु) का उपासक था। वासुदेव की पूजा के लिए उसने वहाँ एक गरुडध्वज बनवाया, जो गरुड़ की मूर्ति के बिना अब तक मौजूद है।

मालव गण के सिक्के

इनपर लिखा है—मालवानां जय अर्थात् मालवों की जय। बाईं तरफ़ से दूसरे सिक्के पर जो दो अक्षर हैं वे ज और य हैं। तीसरे सिक्के का पट तरफ़ मंगल-घट और निचली पंक्ति के दोनों सिक्कों की पट तरफ़ नन्दी की मूर्ति है। [इं० म्यू०, कलकत्ता]

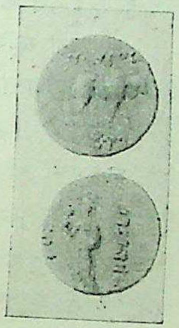

'पखलावदि देवदा'

चित, नन्दी की मूर्ति, लेख—उषभे (वृषभः); पट, पुष्करावती देवी।

§५. **गण-राज्यों का पुनरुत्थान**—यूनानी राज्यों और शुंग साम्राज्य के बीच पूरबी पंजाब, राजपूताना और सुराष्ट्र (काठियावाड़) में बहुत से संघ-राष्ट्र फिर उठ खड़े हुए। उनके सिक्के अब तक पाये जाते हैं। अब संघ के बजाय गण शब्द चल पड़ा था, क्योंकि संघ से अब बौद्ध संघ समझा जाने लगा था। सतलज के निचले काँठे पर यौधेय नाम का एक मजबूत गणराज्य था। यौधेयों के वंशज आज भी उसी इलाके में रहते और जोहिये कहलाते हैं। कुणिन्द नाम का एक शक्तिशाली गण-राज्य हिमालय की तराई में व्यास से जमना तक था। प्रसिद्ध मालव

गण यूनानियों के दबाव के कारण पंजाब छोड़ कर चम्बल के काँठे में आ बसा। दक्खिन में सातवाहन वंश का राज्य बना रहा।

मौर्यों के बाद भारतवर्ष के चार मंडलों में चार राज-शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं, पर पच्छिमी मंडल में ऐसी कोई शक्ति न उठी। इसी कारण उसकी राजधानी उज्जैन के लिए चारों तरफ़ की शक्तियाँ आपस में छीन-झपट करती रहीं। प्रत्येक विजेता की उसी पर निगाह थी। कई शताब्दियों तक भारतवर्ष के इतिहास की मुख्य रंग-स्थली उज्जैन बनी रही। १०० ई० पू० में वहाँ एक नयी शक्ति प्रकट हुई जिसका वृत्तान्त आगे दिया जाता है।

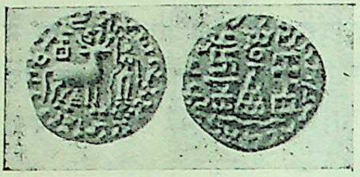

कुणिन्द गण का सिक्का

[पटना म्यूज़ियम]

अध्याय २

शक और सातवाहन

(लगभग १०० ई० पू०—७८ ई०)

§ १. मध्य एशिया में जातियों की उथलपुथल; कम्बोज वाह्लीक में 'युचि'-तुखारों का आना—हमारे देश में जिस समय अशोक राज कर रहा था, लगभग उसी समय चीन में एक बड़ा राजा हुआ, जिसने वहाँ की नौ छोटी-छोटी रियासतों को जीत कर सारे चीन* को एक कर दिया। चीन के उत्तर इर्तिश और आमूर नदियों के बीच हूण लोग रहते थे। वे प्रायः सभ्य चीनी राज्यों पर हमले करके उन्हें सताया करते थे। चीन के उस सम्राट् ने अपने देश की समूची उत्तरी सीमा पर एक मज़बूत दीवार बनवा दी जिससे हूण लोग चीन के अन्दर न घुस पायँ। तब हूणों ने पच्छिम तरफ़ रुख किया।

---

* हमारा मतलब ठेठ चीन से है, न कि आजकल के चीन-साम्राज्य से जिसमें तिब्बत, मंगोलिया और चीनी तुर्किस्तान भी शामिल हैं।

तिब्बत और मंगोलिया के बीच चीन का जो भाग गर्दन की तरह निकला हुआ है वह कानसू प्रान्त है। उसके पच्छिम अब चीनी तुर्किस्तान या सिमकियाङ शुरू होता है। तुर्क और हूण एक ही जाति के दो नाम हैं। कह चुके हैं कि उस समय तक उनका घर इर्तिश के पूरब था और मध्य एशिया में वे न पहुँच पाये थे। कानसू से ले कर यूनान की सीमा तक (मध्य एशिया से कास्पियन और काले सागर के उत्तर होते हुए) जो जातियाँ तब रहती थीं वे सब शक परिवार की थीं। शक लोग भी आर्य थे, किन्तु तब तक वे जंगली और खानाबदोश थे। कानसू की ठीक सीमा पर शकों से मिलती-जुलती एक जाति रहती थी, जिसे चीनी लोग "युचि" कहते थे। नयी खोज से मालूम हुआ है कि संस्कृत की पुस्तकों में उसी का नाम ऋषिक है। युचि या ऋषिकों के पड़ोस में, तारीम नदी के उत्तर तरफ़, तुखार लोग रहते थे।

हूणों ने पच्छिम हट कर ऋषिकों पर हमले किये (१७६, १६५ ई० पू०) और उन्हें मार भगाया। ऋषिक लोग तुखारों के देश में जा कर उनके राजा बन बैठे। फिर जब उन्हें वहाँ से भी भागना पड़ा, तब तुखारों को अपने साथ खदेड़ते हुए वे पच्छिम की ओर बढ़े, और थियानशान पर्वत को पार कर गये। वहाँ से उनकी एक शाखा दक्खिन झुक कर कम्बोज देश अर्थात् पामीर-बदख्शाँ की तरफ़ बढ़ी और दूसरी शाखा ने सुग्ध दोआब में शकों की खास बस्ती पर हमला किया। तब खानाबदोश जातियों का यह प्रवाह बाख्त्री के यूनानी राज्य पर टूट पड़ा, और वह राज्य समाप्त हो गया (लगभग १४० ई० पू०)। ऋषिकों की अपेक्षा तुखारों की संख्या अधिक होने से तुखारों का नाम इतिहास में अधिक प्रसिद्ध है। प्राचीन कम्बोज देश में ऋषिक-तुखारों के बस जाने से वह तुखारदेश या तुखारिस्तान कहलाने लगा। यह नाम प्रायः एक हज़ार बरस तक चलता रहा।

§२. शकों का भारत-प्रवास—सुग्ध से खदेड़े जा कर शकों ने हिन्दूकुश पार नहीं किया। वे हरात से घूम कर, रास्ते में लूट-मार करते हुए, शकस्थान की पुरानी बस्ती में अपने भाईबन्दों के पास जाने लगे। हरात और शकस्थान तब पार्थव राज्य में थे, इसलिए सब से पहले पार्थवों को उनसे वास्ता पड़ा। दो पार्थव राजा उनसे लड़ते हुए मारे गये (१२८ और १२३ ई० पू०)। किन्तु उसके बाद पार्थव राजा मिथ्रदात (२य) ने उनका बुरी तरह दमन किया (१२३—८८ ई० पू०)। उसके दमन से घबड़ा कर उन्होंने शकस्थान से भारत की तरफ़ मुँह फेरा, और

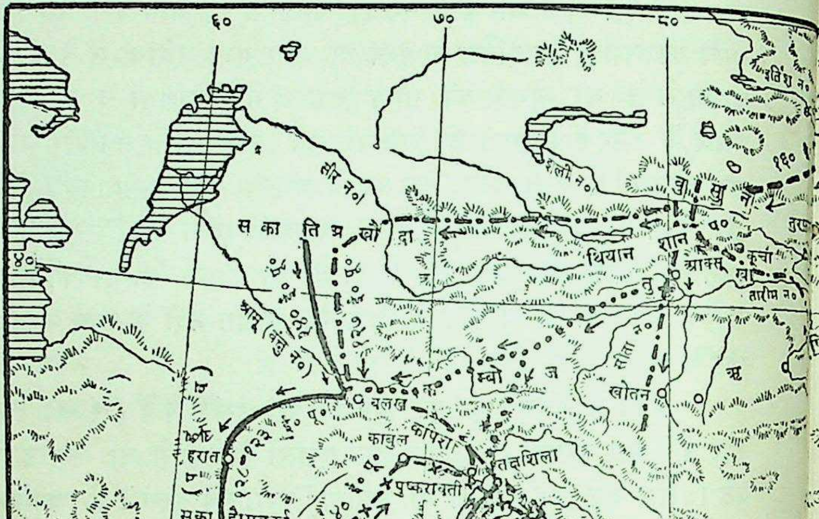
६०
७०
८०
४०
३०
सीर न०
इली न०
स का ति प्र खौ
दा
थियान
शान
ऊ सु
श्राक्स
कुचा
तारिम न०
तु
सीता न०
खोतन
म्बो
ज
बलख
कापिश
काबुल
तक्षशिला
पुष्करावती
हरात
सका हौमवर्का
हरैकैस्था न०
श्रलकसान्द्रिया
शाकल
मालव
यौधेय
मथुरा
अयोध्या
पुष्कर
कर्कोटनगर
आ क र
अवन्ति
विदिशा
उज्जयिनी
सुराष्ट्र
भरुकच्छ
प्रतिष्ठान
१०० ई० पू०
१६०
१७५ ई० पू०

लगभग १७५ ई० पू० से प्रायः १०० ई० तक (१) हूणों की चढ़ाइयाँ औ
का सम्मलित प्रवास, (४) शकों का प्रवास, (५

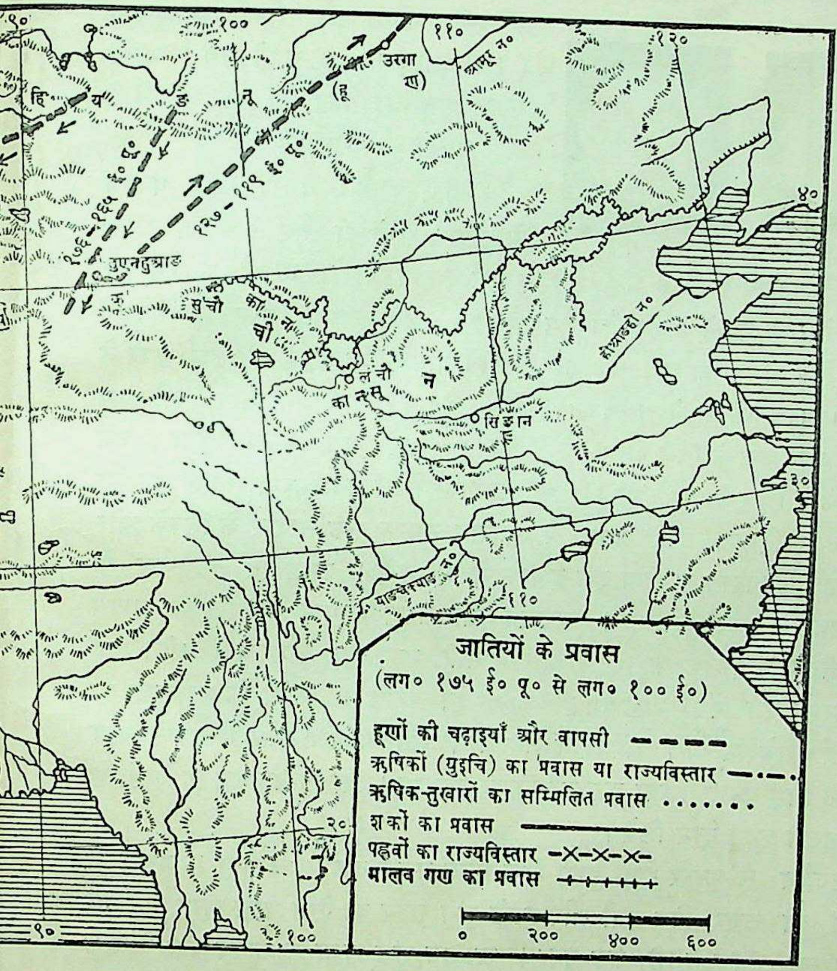
१००
११०
१२०
उरगा
(हू णा)
हि
य
नू
१७६-१६५ ई० पू०
१२९-११९ ई० पू०
तुएनहुआङ
सुची
का
चो
न
लनी
का न्सू
न
सिङान
होआङहो न०
याङ्चिक्याङ न०
४०
३०
२०
११०
९०
१००
जातियों के प्रवास
(लग० १७५ ई० पू० से लग० १०० ई०)
हूणों की चढ़ाइयाँ और वापसी ▬ ▬ ▬
ऋषिकों (युइचि) का प्रवास या राज्यविस्तार —·—·
ऋषिक-तुखारों का सम्मिलित प्रवास ·······
शकों का प्रवास ———
पह्लवों का राज्यविस्तार –×–×–×–
मालव गण का प्रवास +++++++
० २०० ४०० ६००

ा, (२) ऋषिकों (युइचि) का प्रवास या राज्य-विस्तार, (३) ऋषिक-तुखारों
का राज्य विस्तार और (६) मालव गण का प्रवास

हमारे सिन्ध प्रान्त पर अधिकार कर लिया (लगभग १२०–११५ ई० पू०)। सिन्ध में उनकी ऐसी सत्ता जम गयी कि वह हमारे देश में शकद्वीप* कहलाने लगा, और पच्छिमी लोग उसे हिन्दी शकस्थान (Indo-Skythia) कहने लगे। भारत में वह शकों का केन्द्र था, और वहीं से वे दूसरे प्रान्तों की तरफ़ बढ़े।

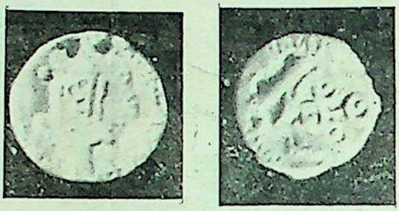

गौतमीपुत्र के सिक्के

नहपान-वंश से राज्य छीनने के बाद गौतमीपुत्र ने उसके सिक्कों को अपनी छाप लगा कर चलाया। इन सिक्कों पर चेहरा नहपान का है, उसके ऊपर के चिन्ह गौतमी-पुत्र के हैं। (दुर्गाप्रसाद संग्रह)

§३. उज्जैन, मथुरा और पंजाब में शक—शकों का सब से पहला धावा सुराष्ट्र (काठियावाड़) और उज्जैन पर हुआ। उस घटना के विषय में बहुत सी ख्यातें प्रसिद्ध हैं। इनके अनुसार शकों ने १०० ई० पू० में उज्जैन जीता, और ५८ ई० पू० तक वहाँ राज्य किया ; तब प्रतिष्ठान से राजा विक्रमादित्य ने आ कर उन्हें निकाल दिया। इसी समय के नहपान नामक शक सरदार के सिक्के और उसके दामाद उषवदात के लेख इस इलाके में मिलते हैं। उषवदात ने पुष्कर के पास मालव गण को हराया। दक्खिन की तरफ़ नहपान का अधिकार उत्तरी महाराष्ट्र और कोंकण तक था। उसकी राजधानी भरुकच्छ (भरुच) थी। वह सिक्कों पर अपने को "महाक्षत्रप" कहता है, क्योंकि वह सिन्ध के महाराजा का क्षत्रप अर्थात् सूबेदार था। उषवदात जैन था। नासिक और जुन्नर में उसने बौद्ध भिक्षुओं के लिए पहाड़ कटवा कर कई विहार बनवाये। वैदिक ब्राह्मणों के यज्ञों के लिए भी उसने बहुत दान किये।

उज्जैन से पुष्कर होता हुआ शक राज्य मथुरा तक पहुँच गया। मथुरा से तब शुंगों की सत्ता मिट गयी और इससे शुंग राज्य को ऐसा धक्का लगा कि कुछ समय बाद वह मगध से भी उठ गया। अन्तिम शुंग राजा से काण्व वंश के एक ब्राह्मण अमात्य ने राज्य छीन लिया (७३ ई० पू०)। काण्व वंश ने मगध में चार पीढ़ी राज्य किया। उधर सिन्ध से शक विजेता सीधे गान्धार की तरफ़

---

* द्वीप शब्द का अर्थ सदा टापू ही न होता था। प्रायः वह दोआब के अर्थ में और कभी कभी देश के अर्थ में भी आता था।

बढ़ते हुए स्वात की दून तक पहुँच गये (लगभग ६५ ई० पू०)। शकों के हमलों की इस बाढ़ में पंजाब के यवन राज्य बह गये। तो भी काबुल में एक छोटा सा यूनानी राज्य तुखारों और शकों के बीच घिरा हुआ कुछ समय के लिए बचा रहा।

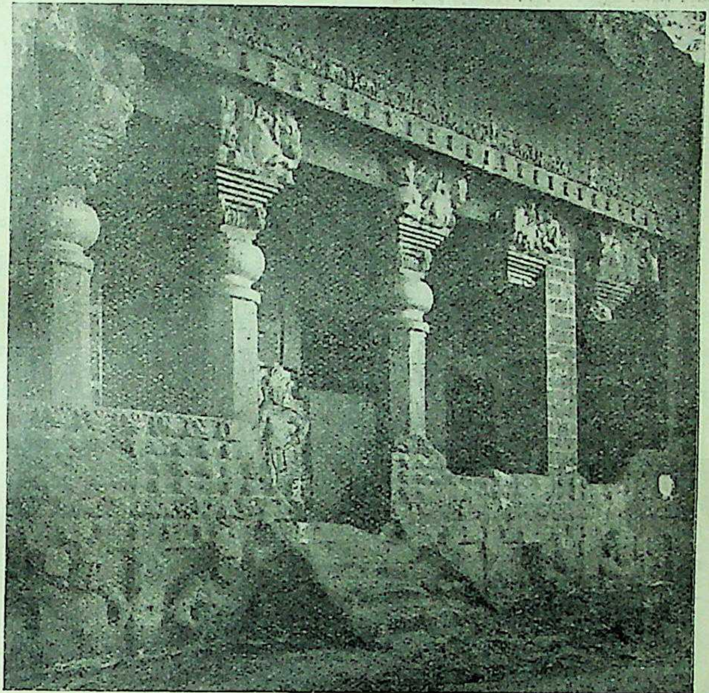

नासिक में राजा गौतमोपुत्र का कटवाया हुआ गुहा-विहार [भा० पु० वि०]

§४. राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि—पुष्करावती से पूना तक शकों का वह साम्राज्य बहुत थोड़े ही अरसे तक टिका। प्रसिद्ध है कि राजा विक्रमादित्य ने प्रतिष्ठान से आ कर उज्जैन जीता और शकों का संहार कर विक्रम-संवत् चलाया। विक्रमादित्य उस राजा का विरुद था। उसका असल नाम गौतमीपुत्र शातकर्णि था। उसकी माता गौतमी बालश्री के लेख अब तक मौजूद हैं। गौतमीपुत्र ने नहपान के वंश को "जड़ से उखाड़" कर सारे सातवाहन राज्य पर फिर अधिकार किया, और बहुत से नये प्रदेश भी जीत लिये। उज्जैन के साथ-साथ मथुरा से भी शकों की सफाई हो गयी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§५. मालव संवत् या विक्रम संवत्—राजा विक्रमादित्य ने संवत् चलाया यह बात पूरी तरह ठीक नहीं है। पुराने लेखों में उस संवत् को मालव गण का संवत् कहते हैं। उसका नाम विक्रम-संवत् बहुत पीछे पड़ा। ऐसा जान पड़ता है कि मालव गण और राजा गौतमीपुत्र शातकर्णि ने इकट्ठे मिल कर उज्जैन में शकों को हराया और तब से वह संवत् चला।

§६. कन्दहार के पह्लव— उधर मिथ्रदात (२य) के बाद पार्थव साम्राज्य के कमज़ोर हो जाने पर पूरबी ईरान या शकस्थान में एक छोटा पार्थव राज्य अलग हो गया। पार्थव जाति को पुरानी फारसी और संस्कृत में पह्लव कहते थे। इन पह्लवों ने अपना राज्य शकस्थान से हरउवती की तरफ बढ़ाया, वहाँ से बढ़ कर काबुल के यूनानी राज्य को जीता और गान्धार तथा सिन्ध को भी शकों से छीन लिया (लगभग ४५ ई० पू०)। तब शकों का राज्य कहीं भी न रह गया। हरउवती के पह्लवों ने लगभग ईसवी सन् के शुरू तक अफ़गानिस्तान, पंजाब और सिन्ध पर राज्य किया।

अय या अज का सिक्का—घोड़े पर सवार राजा की मूर्त्ति। [श्रीनाथ साह संग्रह]

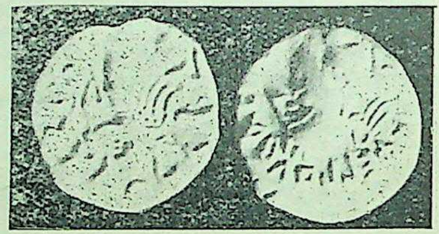

गुदफर का सिक्का; चित, राजा का चेहरा; पट, देवी के चौगिर्द प्राकृत लेख— 'महाराज-गुदफरनस त्रातारस'।

इन पह्लव राजाओं में श्पलिरिष, उसके बेटे अय या अज और अय के बेटे गुदफर का विस्तृत राज्य रहा। श्पलिरिष ने काबुल जीता। अज और गुदफर समूचे उत्तर-पच्छिमी भारत के राजा थे।

पह्लव राजा प्रायः बौद्ध थे। हिन्दूकुश के दक्खिन के यूनानी सिक्कों की तरह शकस्थान के इन राजाओं के हरउवती में चलने वाले सिक्कों पर भी प्राकृत ज़रूर लिखी रहती थी। इसका यह अर्थ है कि काबुल और कन्दहार के प्रदेश तब स्पष्ट रूप से भारत में गिने जाते थे।

§७. सातवाहनों की चरम उन्नति—दूसरी शती ई० पू० में भारत में चार बड़ी शक्तियाँ थीं। शक लोग पाँचवी शक्ति के रूप में पहलेपहल पच्छिम-मंडल में प्रकट हुए। कलिंग का राज्य शकों से पहले ही समाप्त हो गया था। मध्य-देश के शुंग राज्य और उत्तरापथ के यूनानी राज्यों को शकों ने मिटा दिया। तब केवल दो शक्तियाँ बचीं, एक शक, दूसरे सातवाहन। पहले सातवाहनों को कुछ दबना पड़ा, पर पीछे उन्होंने शकों को "जड़ से उखाड़ दिया।" उसके बाद ५७ ई० पू० से सातवाहनों की शक्ति बढ़ती ही गयी। गौतमीपुत्र का बेटा वासिष्ठी-पुत्र पुलुमावी भी बड़ा योग्य राजा था। उसने अन्दाजन ४४ से ८ ई० पू० तक राज किया। २८ ई० पू० में सातवाहनों ने काण्व राजा से मगध भी जीत लिया। प्रायः तभी रोम में भी साम्राज्य स्थापित हुआ। पुलुमावी ने रोम-सम्राट् के पास दूत भेजे। प्रायः सौ बरस तक सातवाहन भारत के सम्राट् रहे। उनकी दक्खिनी सीमा तामिल राष्ट्रों तक थी, और वे राष्ट्र भी उनके प्रभाव में रहते थे। सातवाहनों का दरबार विद्या का केन्द्र बन गया।

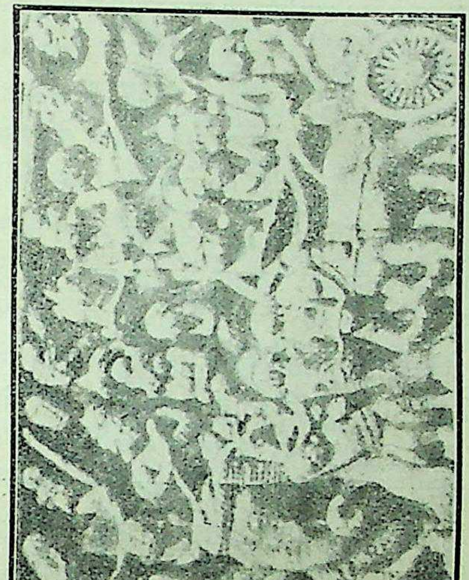

शुंग-सातवाहन युग—युद्ध का दृश्य; साँची स्तूप, पच्छिमी तोरण, पिछली तरफ, बिचली बँडेरी पर से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सातवाहन युग की समृद्धि अद्वितीय थी। भारतवर्ष के सुदूर कोनों में जो छोटे-मोटे राष्ट्र उनके साम्राज्य के बाहर बचे हुए थे, वे भी प्रत्येक बात में सातवाहन साम्राज्य का अनुकरण करते थे। इस युग के सातवाहनों में से राजा हाल का नाम बहुत प्रसिद्ध है।

अध्याय ३

पैठन और पेशावर के साम्राज्य

(७८ ई०—१७६ ई०)

§१. तारीम काँठे में चीन और भारत का मिलना—हम ऋषिक-तुखारों को पामीर, बदख्शाँ और बलख में छोड़ आये हैं। हूणों ने चीन का ठीक पच्छिमी दरवाज़ा घेर लिया, यह बात चीन के सम्राटों को गवारा न हुई। उन्होंने अपने पुराने पड़ोसी ऋषिकों से हूणों के विरुद्ध सहायता लेनी चाही, और इस विचार से चाङ-किएन नामक एक दूत को ऋषिकों के पास भेजा (१३८ ई० पू०)। रास्ते में दस बरस हूणों की कैद काटने के बाद १२७ ई० पू० में वह वंक्षु (आमू दरिया) के किनारे ऋषिक डेरे में पहुँचा। बलख के बाजार में उसने चीन का रेशम और बाँस बिकता देखा, और पूछा कि वह कहाँ से आया है। तब उसे मालूम हुआ कि हिन्दूकुश के दक्खिन तरफ़ 'शिन्तु' (सिन्धु, हिन्द) नाम का विशाल और सभ्य देश है, जिसके आरपार हो कर वह माल आता है। जंगली किरात लोग आसाम के रास्ते चीन और भारत की चीज़ों का विनिमय करते थे, पर दोनों देशों के शिक्षित लोग तब तक न जानते थे कि वे ठीक कहाँ से वह माल लाते हैं। इधर उत्तर की तरफ़ चीन के कानसू और भारत के कम्बोज देश के बीच केवल तारीम नदी का लम्बा काँठा था, जो ऋषिकों और तुखारों का मूल निवासस्थान था। चाङ-किएन उसके इस पार निकल आया था, जहाँ से आगे 'शिन्तु' और पार्थव देशों को रास्ते जाते थे। इस प्रकार सभ्य जगत् के पूरबी और पच्छिमी हिस्से, जो अढ़ाई हज़ार बरस से एक दूसरे के लिए अन्धेरे में पड़े थे, प्रकाश में आ गये।

चाङ-किएन के वापिस पहुँचने पर चीन के सम्राट् ने अपने इस पच्छिमी रास्ते को खुला और सुरक्षित रखने का पक्का निश्चय कर लिया। १२७ से ११६ ई० पू० तक चीनी सेनाओं ने हूणों को मंगोलिया के उत्तर तक मार भगाया। ऋषिक-तुखारों को अपना पुराना देश भी वापिस मिला। १०२ ई० पू० में एक चीनी सेना सीर की उपरली दून में फ़रग़ाना (खोकन्द) तक समूचे मध्य एशिया को जीतती, चली आयी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

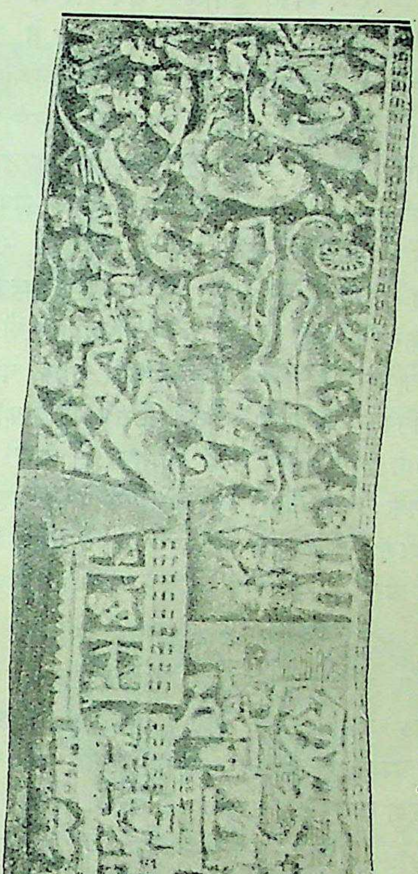

शुंग-सातवाहन-युग—किले पर चढ़ाई का दृश्य; साँची स्तूप, दक्खिनी तोरण, पिछली तरफ़ सब से निचली बँडेरी पर से

कानसू और कम्बोज के बीच के अँधियारे देश को, जहाँ एक तरफ़ से चीन वाले यों साफ़ कर रहे थे, वहाँ दूसरी तरफ़ से भारत के आर्य उसे रोशन करने में लगे थे। भारतीय बस्ती की नींव वहाँ अशोक के समय से—अर्थात् चीनियों के आने से पहले—पड़ चुकी थी। सीता (यारकन्द) नदी के भारतीय नाम को अपना कर चीनी लोग उसे अब तक सीतो कहते हैं। वहाँ के बाकी सब नाम भी उन्होंने प्रायः भारतवासियों से ही लिये। खोतन की पुरानी ख्यात है कि वहाँ एक राजा विजयसम्भव हुआ, जिसके समय में वहाँ के पशुपालकों को आर्य वैरोचन ने पहले-पहल लिखना सिखाया। यह बात अन्दाज़न १०० ई० पू० में हुई। इसके बाद से तारीम के काँठे में भारतवर्ष की जनता और सभ्यता इस प्रकार जम गयी कि विद्वान् लोग उसे प्राचीन इतिहास में 'चीन-हिन्द' (Ser-india) कहते हैं। 'चीन-हिन्द' या ऋषिक-तुखारों के देश में ऋषिकों के हूणों से भगाये जाने के बाद एक शती के अन्दर (१६०-६० ई० पू०) दो बड़ी बातें हो गयीं। एक तो यह कि ऋषिक-तुखार लोग इस अरसे में बहुत कुछ सभ्य हो गये, और दूसरे उनके द्वारा चीन और भारत का परस्पर सम्बन्ध स्थापित हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§२. राजा कुषाण—अब धीरे-धीरे ऋषिक लोग हिन्दूकुश के इस पार भी उतरने लगे। खास कर कम्बोज देश से पूरबी हिन्दूकुश के घाटों को पार कर स्वात और सिन्ध की दूनों में हो कर वे सीधे गान्धार की तरफ़ आ निकले। हिन्दूकुश के दक्खिन उनकी पाँच छोटी-छोटी रियासतें बन गयीं। कुछ समय बाद कुषाण* नाम का एक शक्तिशाली व्यक्ति उनमें से एक का सरदार हुआ। उसने बाकी चारों रियासतों को भी जीत कर अपने राज्य में मिला लिया। यह घटना उस समय की है जब हरउवती के पह्लव राजा काबुल को जीत रहे थे। कुषाण उस समय तो चुप रहा, किन्तु पह्लव राज्य के कमज़ोर होने पर उसने समूचे अफ़गानिस्तान, कपिश और पच्छिमी-पूरबी गान्धार (पुष्करावती, तक्षशिला) को जीत लिया। बलख और कम्बोज तथा चीन-हिन्द के कुछ हिस्से पर तो उसका अधिकार पहले ही से था। उसके राज्य की पच्छिमी सीमा अब पार्थव राज्य से लगने लगी। यह राज्य स्थापित हो जाने पर उसने अपने दूत चीन भेजे, और उनके हाथ बौद्ध धर्म की एक पोथी पहले-पहल चीन पहुँची (२ ई० पू०)। कुषाण को इतिहास में कुषाण कफ्स कहते हैं। दीर्घ शासन के बाद अस्सी बरस की आयु में उसकी मृत्यु हुई (अन्दाज़न ३० ई०)।

§३. युचि और सातवाहनों का युद्ध—कुषाण कफ्स का बेटा विम कफ्स था†। उसका राज्यकाल अन्दाज़न ३०--७७ ई० है। कुषाण बौद्ध था, पर विम शैव। उसने समूचा पंजाब, सिन्ध और मथुरा प्रान्त जीत लिये। उसके साम्राज्य की सीमाएँ दो तरफ़ पार्थव और चीन साम्राज्य से लगती थीं, अब तीसरी तरफ़ सातवाहन साम्राज्य से लगने लगी। उस की राजधानी बदख्शां में ही रही।

पंजाब में 'सिरकप' और शालिवाहन की लड़ाई की कहानी लोग अब तक सुनाते हैं। प्रसिद्ध है कि विक्रमादित्य के १३५ वर्ष पीछे शक और शालिवाहन राजाओं की मुलतान के पास करोड़ नामक जगह पर लड़ाई हुई, जिसमें शक

---

* पहले यह समझा जाता था कि कुषाण उसके वंश का नाम है। असल में उस राजा का वही नाम था। उसके वंशज कुषाण-वंशज कहला सकते हैं।

† पंजाब की कहानियों में उसका नाम 'सिरकप' प्रसिद्ध है। 'सिरकप' का अर्थ अब कहानी सुनाने वाले करते हैं—सिर काटने वाला, पर असल में वह 'सिरि कप' अर्थात् 'श्री कफ्स' है।

राजा मारा गया। भारतवर्ष में ऋषिक लोग शक ही कहलाते थे, क्योंकि वे शक परिवार के थे। और जब उन्होंने गान्धार से आगे बढ़ना शुरू किया तब सवा सौ बरस पुराना शकों और सातवाहनों का युद्ध फिर से छिड़ गया। सातवाहनों के साथ कुछ गणराज्य भी थे। करोड़ यौधेयों के राज्य में पड़ता था। करोड़ की लड़ाई के बाद भी वह लम्बी कश-मकश बन्द न हुई।

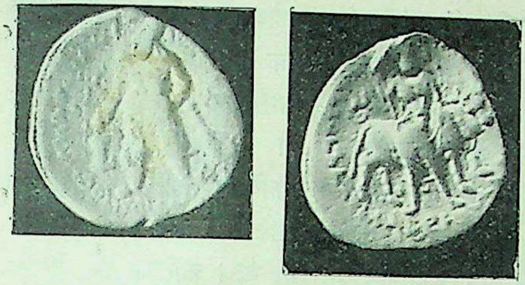

विम कफ्स का सिक्का

चित, राजा विम अग्नि में आहुति देते हुए; पट, नन्दी के सहारे खड़े शिव। [श्री० सा० सं०]

§४. देवपुत्र कनिष्क—विम कफ्स का उत्तराधिकारी सुप्रसिद्ध राजा कनिष्क हुआ। उसने खोतन के राजा विजयकीर्ति के साथ मिल कर फिर मध्यदेश पर चढ़ाई की। विजयकीर्ति विजयसम्भव के वंश का था। उन्होंने साकेत (अयोध्या) को घेर लिया, और उसके बाद पाटलिपुत्र को भी जीता। वहाँ से कनिष्क प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् अश्वघोष को अपने साथ ले गया। मध्यदेश और मगध पूरी तरह कनिष्क के हाथ में आ गये और वहाँ उसके क्षत्रप राज करने लगे। प्रसिद्ध शक सम्वत् जो ७८ ई० में शुरू होता है, कनिष्क का चलाया माना जाता है*।

यौधेय गण का सिक्का [पटना म्यूज़ियम]

कनिष्क ने प्रायः बीस बरस राज्य किया। इसी समय (७३--१०२ ई०) चीन के एक सेनापति ने सारे मध्य एशिया को जीत कर कास्पियन सागर तक चीन का आधिपत्य पहुँचा दिया। कनिष्क को भी चीन-हिन्द में उस सेनापति

---

* कुछ विद्वानों के मत में कनिष्क १२८ ई० में राज करने लगा। इस तथा अन्य कई कारणों से कनिष्क के वंशजों और पूर्वजों का, हरउवती के पह्लवों तथा नहपान आदि पहले शकों और उनके समकालीन सातवाहनों का समय निर्विवाद नहीं है। इन तिथियों में २० से ५० वर्ष तक फेरफार की गुंजाइश है।

से हारना पड़ा। उसने पुष्करावती से कुछ हट कर पुरुषपुर (पेशावर) बसाया और बदख़्शाँ से अपनी राजधानी वहीं उठा लाया। पेशावर और अन्य स्थानों में उसने अनेक स्तूप और विहार आदि बनवाये। अपनी राजधानी को उसने सातवाहनों की तरह विद्या का केन्द्र बनाया। महाकवि अश्वघोष के अतिरिक्त आयुर्वेद का प्रसिद्ध आचार्य चरक भी उसकी सभा में था। कनिष्क की प्रेरणा से बौद्धों की चौथी संगीति कश्मीर में श्रीनगर के पास हुई। अशोक की तरह कनिष्क ने भी दूर-दूर तक बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया। इस कारण उसका नाम आज तिब्बत, खोतन और मंगोलिया तक बड़े आदर से याद किया जाता है। उसके सिक्कों पर उसका नाम 'कनिष्क शाहानुशाह' अर्थात् 'शाहों का शाह' लिखा होता है। शकों के सरदार शाहि कहलाते थे। 'शाह' उसी 'शाहि' का रूपान्तर है। चीनी सम्राटों की नकल कर कनिष्क अपने को 'देवपुत्र' भी कहता था।

मथुरा के पास माट गाँव से पायी गयी
कनिष्क की खंडित मूर्त्ति
[मथुरा म्यू०, भा० पु० वि०]

६५. कनिष्क के वंशज, शक रुद्रदामा और पिछले सातवाहन— कनिष्क के बाद उसके वंश में सम्राट् हुविष्क (लगभग १०६--१४० ई०) और वासुदेव (लगभग १४१--१७६ ई०) प्रसिद्ध दुए। चीन-हिन्द में चीन की शक्ति १०२ ई० के बाद कुछ न रही, तब हुविष्क ने वहाँ फिर अपना अधिकार जमा लिया। चीन-हिन्द की राजकाज की भाषा इस समय से भारतवर्ष की एक प्राकृत रही। इधर मध्यदेश और मगध इन ऋषिक राजाओं के हाथ आ जाने के बाद जब पैठन का सातवाहन साम्राज्य दक्खिन तक ही सीमित रह गया, तब फिर उसी उज्जैन प्रदेश के लिए पेशावर और पैठन के साम्राज्यों में छीन-झपट शुरू हो गयी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

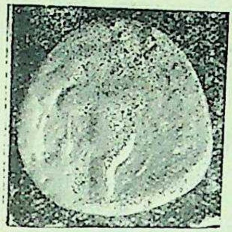

हुविष्क का सिक्का

[श्रीनाथ साह संग्रह]

लगभग ११० ई० में ऋषिक सम्राट् की तरफ से चष्टन नाम का एक शक महाक्षत्रप उज्जैन में स्थापित हो गया। किन्तु पीछे उसका प्रायः सारा राज्य सातवाहन राजा ने छीन लिया।

चष्टन

एक सिक्के पर से बड़ा किया हुआ चित्र

चष्टन के बेटे ने राज्य नहीं किया। उसके पोते रुद्रदामा को अपनी बेटी सातवाहन राजकुमार को व्याह में देनी पड़ी। परन्तु पीछे रुद्रदामा ने अपने समधी को दो बार हराया, और सन् १५० ई० तक उसने सारे सिन्ध, मारवाड़, कच्छ, सुराष्ट्र, गुजरात, मालवा और उत्तरी महाराष्ट्र पर अधिकार कर लिया। सिन्ध-मारवाड़ की उत्तरी सीमा पर यौधेय गण था। रुद्रदामा गर्व से लिखता है कि "सब क्षत्रियों में वीर प्रसिद्ध हो जाने से जिनका दिमाग फिर गया था, और जो किसी के अधीन न होते थे, उन यौधेयों को" उसने "ज़बरदस्ती उखाड़ डाला।" यूनानियों, शकों और पह्लवों की चढ़ाइयों के बीच अब तक यौधेयों ने अपनी स्वतन्त्रता बराबर बनाये रखी थी। अपने सिक्कों पर वे युद्ध के देवता स्कन्द की मूर्त्ति बनाते थे।

रुद्रदामा

सिक्के पर से बढ़ाया हुआ चित्र

रुद्रदामा के पीछे शक क्षत्रपों से सातवाहनों ने फिर कई प्रदेश ले लिये। दूसरी शती ई० के पिछले भाग में यज्ञश्री शातकर्णि नामक सातवाहन राजा बड़ा शक्तिशाली हुआ।

§६. तामिल और सिंहल राष्ट्र—जब उत्तरी और पच्छिमी भारत में पेशावर और पैठन साम्राज्यों की यह कशमकश जारी थी, तब सातवाहन साम्राज्य के दक्खिन

छोर पर तामिल और सिंहल राष्ट्रों में भी एक दूसरे से बढ़ने के लिए स्पर्धा चल रही थी। अन्दाज़न ७०-१००ई० में प्रसिद्ध चोल राजा करिकाल हुआ, जिसने सब तामिल राष्ट्रों और सिंहल पर भी अपनी प्रभुता जमायी। उसकी राजधानी कावेरी नदी पर उरगपुर या उरैपुर (आधुनिक त्रिचनापल्ली) थी। कावेरी के मुहाने पर उसने एक बड़ा बन्दरगाह कावेरीपट्टनम् बसाया। उस पट्टन में एक मन्दिर सातवाहन का भी था, जिसमें सातवाहन की पूजा होती थी ! इससे प्रतीत होता है कि सातवाहन राजाओं का भारतवर्ष के सुदूर कोनों तक भी कितना प्रभाव था।

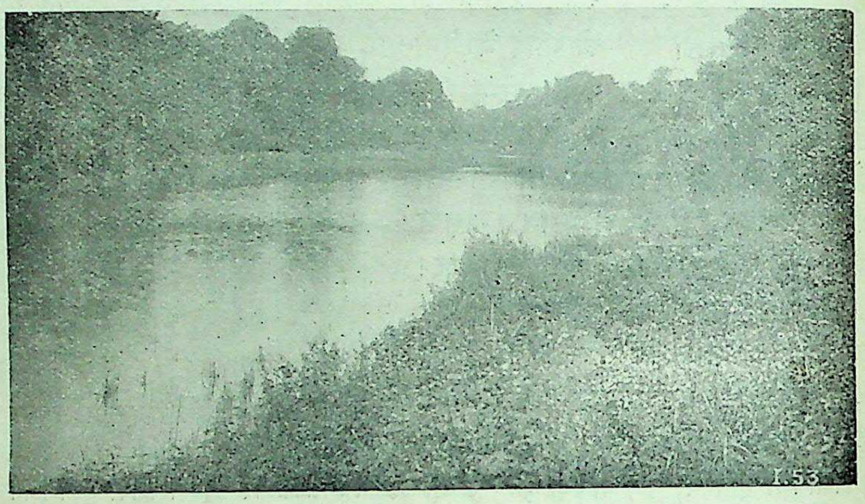

एक आणीकट — वेलमुंडि, ज़िला कोयम्बटूर, से [भा० पु० वि०]

करिकाल के बाद कुछ समय तक चेर राज्य सब तामिल राष्ट्रों में प्रमुख रहा। फिर लगातार पांड्यों की प्रधानता रही। किन्तु चोल देश का उत्तरी आधा हिस्सा जिसकी राजधानी काञ्ची (काञ्जीवरम्) थी, सातवाहनों के अधीन रहा। यज्ञश्री के काञ्ची वाले सिक्कों पर दो मस्तूलों का जहाज़ बना रहता है, जो उसकी समुद्री शक्ति को सूचित करता है। इन सब तामिल और सातवाहन राजाओं ने समुद्री डाकुओं का दमन कर विदेशी व्यापार को खूब बढ़ाया। नदी के मुहाने में आणीकट-बाँध बनवा कर सिंचाई के लिए पानी काटने का तरीका इन्हीं तामिल राजाओं ने चलाया, जो इन्हीं से संसार के सब देशों ने सीखा।

अध्याय ४

बृहत्तर भारत

§ १. चीन-हिन्द, सुवर्णभूमि और सुवर्णद्वीप—ऋषिक-तुखारों का देश किस तरह चीन-हिन्द बन गया, और उसके द्वारा चीन और भारत का सम्बन्ध कैसे हो गया सो हमने देखा। उसी प्रकार इस युग में एक और हिन्द पैदा हो गया था, जिसे पच्छिमी लोग तब 'गंगा पार का हिन्द' (Trans Gangetic India) कहते थे और अब भी परला हिन्द (Further India) कहते हैं। बहुत पुराने समय से वहाँ आग्नेय वंश की जातियाँ रहती थीं, जो अशोक के समय तक पत्थर के हथियार काम में लाती थीं। महाजनपदों के ज़माने से भारत के सामुद्रिक व्यापारी उधर जाने लगे, और उन्हें वहाँ सोने की खानें मिलीं, इसलिए उन्होंने उस देश का नाम सुवर्णभूमि रक्खा। धीरे-धीरे वहाँ भारतीय बस्तियाँ बसीं और भारतीयों ने आग्नेय लोगों को भी सभ्य बनाया। सातवाहनों के चरम उत्कर्ष के ज़माने में वहाँ भारतीय बस्तियाँ खूब बढ़ीं, और कई भारतीय राज्य स्थापित हो गये (५८ ई० पू०–७८ ई०)। ईसवी सन् के शुरू में आजकल के फ़्रान्सीसी हिन्दचीन में कौठार और पांडुरंग नाम के दो छोटे-छोटे भारतीय राज्य स्थापित हो चुके थे। मेकाङ नदी के तट पर एक तीसरे बड़े राज्य की राजधानी थी, जिसे चीन वाले फ़ूनान कहते थे। उसका असली नाम अभी तक नहीं जाना जा सका। उस राज्य की सीमा बरमा तक थी। उसकी स्थापना एक कौण्डिन्य ब्राह्मण ने की थी। कौण्डिन्य ने वहाँ जा कर सोमा नाम की "नागी" (अर्थात् नागों को पूजने वाली किसी आग्नेय जाति की लड़की) से ब्याह किया था, जिससे उसके वंशज सोमवंश के कहलाये।

मलक्का प्रायद्वीप और सुमात्रा का उत्तरी हिस्सा सुवर्णद्वीप और बाकी सुमात्रा जावा मिला कर यवद्वीप कहलाता था। यवद्वीप में शिशिर पर्वत था, और उसके पूरबी हिस्से में सरयू नदी अब तक है। इन बस्तियों और राज्यों के हिन्दू संस्थापक प्रायः शैव थे। सन् ईसवी की पहली शती में मदगास्कर द्वीप में भी भारतीय बस्तियाँ स्थापित हुईं।

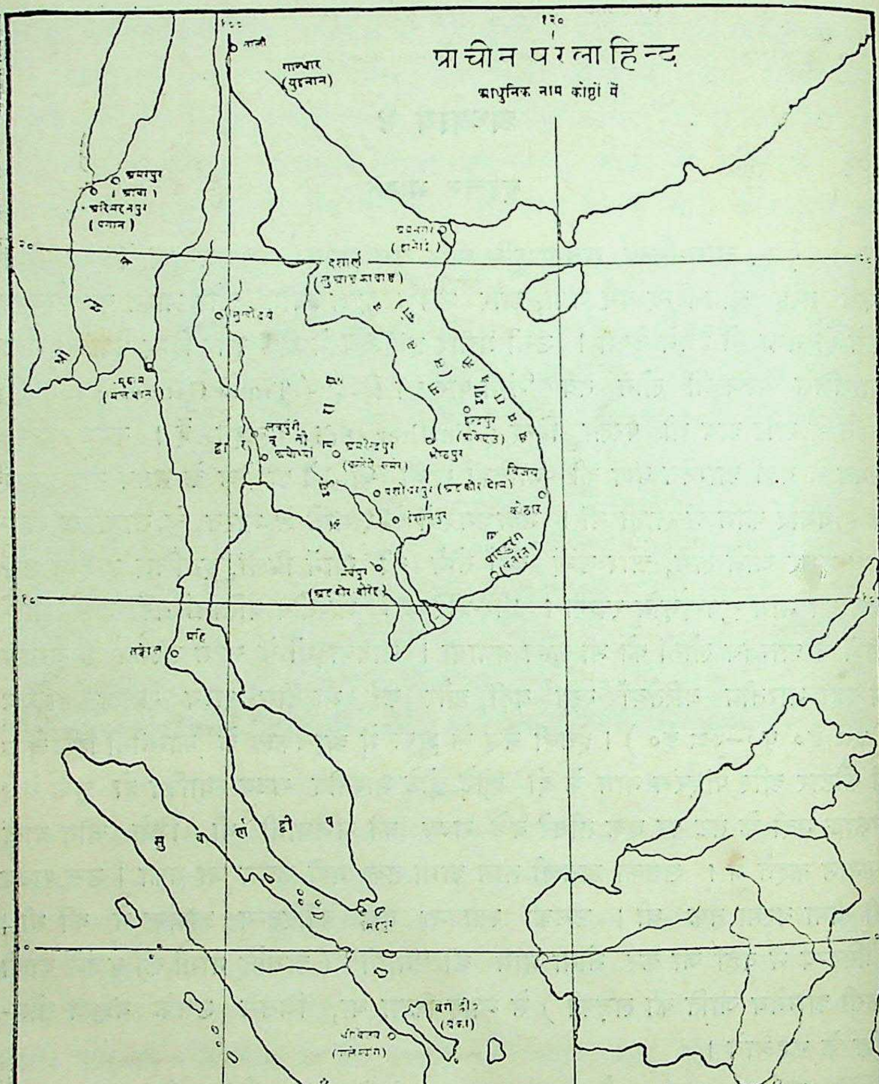
प्राचीन परला हिन्द
आधुनिक नाम कोष्ठों में
१२०
गान्धार
(युन्नान)
सु व र्ण द्वी प
विजय
कौठार
मदुरा द्वी० (मदुरा)
बाली द्वी०
१००
१२०

पहली शती ई० पू० से तेरहवीं शती ई० तक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सुवर्णभूमि के साथ सबसे अधिक और पुराना सम्बन्ध चम्पा (भागलपुर) के लोगों का था। १९२ ई० में उन्होंने सुवर्णभूमि के पूरबी छोर पर एक चम्पा राज्य स्थापित किया, जिसने कौठार और पांडुरंग तथा और पड़ोसी प्रदेशों को जीत लिया। तब से १२०० बरस तक चम्पा की बड़ी शक्ति और समृद्धि बनी रही। उसके बाद भी गिरते पड़ते आज से एक शती पहले तक चम्पा राज्य किसी न किसी प्रकार बना रहा।

भारत-लक्ष्मी

भारत के रोमन व्यापार का स्मारक एक तश्तरी पर का चित्र जो रोम-साम्राज्य में अंकित किया गया था। यह तश्तरी अब इस्ताम्बूल म्यूज़ियम में है।

§ २. **चीन और रोम से सम्बन्ध**—चीन-हिन्द और सुवर्णभूमि में सभ्य राज्य स्थापित हो जाने से चीन के साथ भारत का सम्बन्ध स्थल और जल दोनों रास्तों से हो गया। दोनों देशों में व्यापार तो बढ़ा ही, साथ-साथ एक दूसरे की सभ्यता भी वे सीखने लगे। ६८ ई० में गान्धार, अफ़गानिस्तान या खोतन से धर्मरत्न और कश्यपमातङ्ग नाम के दो भिक्षु पहले-पहल चीन में बौद्ध धर्म का प्रचार करने पहुँचे। उसके बाद वह सिलसिला लगातार जारी रहा। चीन वालों का पच्छिमी रास्ता खुल जाने से चीन का [illegible] लगा।

पच्छिमी एशिया और मिस्र जब तक यूनानी राज्य रहे उनके साथ भारत का अच्छा व्यापार रहा। जब बलख के यूनानी राज्य को तुखारों ने मिटाया, प्रायः उसी समय रोम वालों ने पच्छिम के सारे यूनानी राज्यों को जीत लिया। रोम का साम्राज्य "भूमध्य-सागर" के चौगिर्द था। वह सागर असल में रोम की भूमि के ही मध्य में था। भारतीय नाविक व्यापारी रोम-साम्राज्य के सब देशों में पहुँचते थे। प्राचीन काल में लाल सागर को नील नदी से मिलाने वाली एक नहर थी, जिसके द्वारा पूरबी देशों के जहाज़ अलक्सान्दरिया हो कर रोम सागर (भूमध्य-सागर) तक जा निकले थे। लगभग १०० ई० पू० में एक बार कुछ भारतवासी अपने जहाज़ के साथ दिशामूढ हो कर जर्मनी के तट पर जा भटके और वहाँ से रोम पहुँचाये गये थे।

भारतीय माल रोम-साम्राज्य में खूब पहुँचता और बदले में सोना आता था। यहाँ से हाथीदाँत का सामान, सुगन्धि-द्रव्य, मसाले, मोती और कपड़े आदि जाते थे। कनिष्क के समय के करीब एक रोमन लेखक ने शिकायत की है कि भारतवर्ष रोम से हर साल साढ़े पाँच करोड़ का सोना खींच लेता है, और "यह कीमत हमें अपनी ऐयाशी और अपनी स्त्रियों की खातिर देनी पड़ती है।" एक दूसरे रोमन लेखक ने रोमन स्त्रियों की शिकायत करते हुए लिखा है कि वे भारतवर्ष से आने वाले "बुनी हुई हवा के जाले" (मलमल) पहन कर अपना सौन्दर्य दिखाती थीं! एक तरफ़ रोम और पार्थव तथा दूसरी तरफ चीन और सुवर्णभूमि के ठीक बीच होने से भारतवर्ष इस समय सारे सभ्य जगत् का मध्यस्थ था।

अध्याय ५

सातवाहन युग की समृद्धि और सभ्यता

§१. पौराणिक धर्म और महायान—भगवान् बुद्ध ने निरर्थक कर्मकांड का स्थान आचारप्रधान-धर्म को दे कर आर्यावर्त्त में एक नया जीवन फूँक दिया था। साढ़े तीन सौ बरस बाद उस नवजीवन की लहर में कुछ मन्दता आने लगी। अन्तिम मौर्यों ने जब उस धर्म की आड़ में अपनी कायरता को छिपाना चाहा, तब उसके विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई। पुराने वैदिक धर्म को फिर से जगाने की पुकार उठी। सिमुक और पुष्यमित्र दोनों ब्राह्मण थे, जिन्होंने निर्बल मौर्यों के विरुद्ध विद्रोह किया। बौद्धों ने यज्ञों की हिंसा का विरोध किया था, पर पुष्यमित्र ने और सिमुक

के भतीजे शातकर्णि ने पुराना अश्वमेध यज्ञ, जिसका रिवाज सदियों से उठ चुका था, दो-दो बार किया।

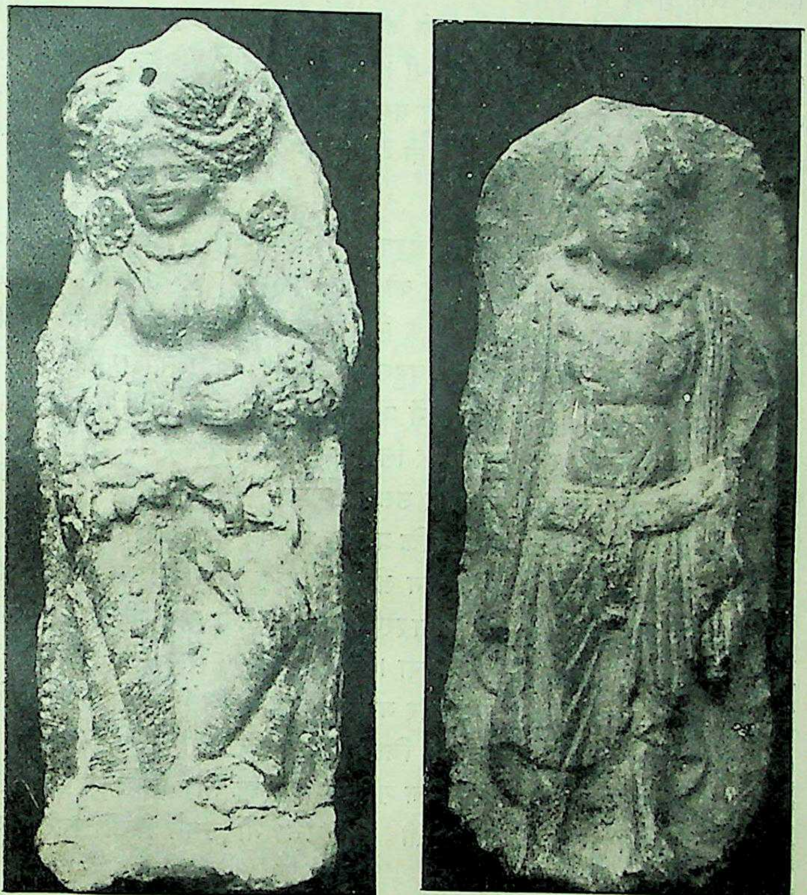

भद्र महिला — शुंग-युग की वेषभूषा भद्र पुरुष — पिछले सातवाहन युग की वेषभूषा

कौशाम्बी से पाये गये मिट्टी के खिलौने [प्रयाग म्यू०]

किन्तु वैदिक धर्म वैदिक समाज के साथ था और इस युग का समाज अब बहुत आगे बढ़ चुका था। न वैदिक समाज वापिस आ सकता था, और न वैदिक

धर्म अपने पुराने रूप में लौट सकता था। बौद्ध धर्म ने जनता के विचारों में जो परिवर्तन कर दिया था, उसे मिटाया न जा सकता था। वैदिक कर्मकांड, दार्शनिक विवाद और कृच्छ्र तप का पुराना धर्म जब केवल ऊँचे लोगों की चीज़ बन गया था, उस समय बुद्ध ने जनसाधारण को जगाया और उठाया था। जनता की उस जागृति की उपेक्षा न की जा सकती थी। इसलिए वैदिक धर्म को फिर से जगाने की जो लहर उठी, वह बौद्ध सुधार की सब मुख्य प्रवृत्तियों को अपनाये हुए थी। बौद्ध धर्म यदि जनता के लिए था, तो वैदिक धर्म का यह नया रूप उससे बढ़ कर जनता को जगाने वाला था।

बौद्ध धर्म आचार-प्रधान था; ईश्वर और देवताओं की पूजा के लिए उसमें जगह न थी। जनसाधारण ने बुद्ध की शिक्षा को सुना, पर देवताओं की पूजा के बिना उनका काम न चला। आर्यों के निचले दर्जों और अनार्य जातियों में अनेक किस्म की जड़-पूजाएँ प्रचलित थीं। बहुत से स्थानीय देवताओं की गद्दियाँ जगह-जगह स्थापित थीं। कई स्थानों में जनता के ऊँचे दर्जों में भी अपने पुरखों के सम्मान ने ही पूजा का रूप धारण कर लिया था। कह चुके हैं कि शूरसेन देश में वासुदेव कृष्ण की पूजा होती थी और उसके सम्बन्ध में उत्सव होते थे। राजा वसु के समय में जो अहिंसा और भक्ति-प्रधान धर्म की लहर उठी थी, कृष्ण ने उसे अपनाया और पुष्ट किया था। शूरसेन लोगों ने कृष्ण को पहले उस धर्म के प्रवक्ता और अपने महान् पूर्वज के रूप में आदरपूर्वक याद करना शुरू किया, और उसी ने धीरे-धीरे पूजा का रूप धारण कर लिया। वैदिक धर्म को फिर से जगाने की लहर ने प्रत्येक प्रचलित जड़-देवता और मनुष्य-देवता में किसी न किसी वैदिक देवता की प्राण-प्रतिष्ठा कर दी। भारत में जितने देवता पूजे जाते थे, उन्हें उसने शिव, विष्णु, सूर्य, स्कन्द आदि की भिन्न-भिन्न शक्तियों के सूचक भिन्न-भिन्न रूप मान लिया। जहाँ किसी पुराने पुरखा की पूजा होती थी, उसे भी उसने किसी अवतार रूप में भगवान् की पूजा बना दिया।

यह लहर चली तो वैदिक धर्म को जगाने का नाम ले कर, पर इससे एक नया धर्म पैदा हो गया, जिसे हम पौराणिक धर्म कहते हैं। देवता वैदिक धर्म में भी थे, और इसमें भी रहे। पर पहले उनकी पूजा यज्ञों द्वारा होती थी और अब उनके मन्दिर और मूर्त्तियाँ बनने लगीं। वे मन्दिर और मूर्त्तियाँ और उनकी पूजा अभी तक बहुत सादी थी। मूर्त्तियाँ देवताओं की शक्तियों का केवल "प्रतीक" अर्थात्

संकेत थीं। दिव्य शक्तियों के आवाहन से जड़-पूजाओं में जान पड़ गयी, और उन सरल पूजाओं के धर्म ने जनता में एक नया जीवन फूँक दिया।

वैदिक देवताओं में इन्द्र मुख्य था; अब विष्णु और शिव की प्रधानता हो गयी। ऐतिहासिक पूर्वज कृष्ण की पूजा में अब वैदिक प्रकृति-देवता विष्णु की पूजा मिल गयी। कृष्ण विष्णु का अवतार माने गये। यही सातवाहन-युग का भागवत धर्म था। किन्तु आजकल के पौराणिक धर्म की बहुत सी बातें उस शुरू के पौराणिक धर्म में न थीं। भागवत धर्म में उस समय तक कृष्ण की गोपी-लीलाओं की कहानियाँ न मिल पायी थीं। विष्णु के अतिरिक्त शिव और स्कन्द की पूजा उस समय के पौराणिक धर्म में बहुत प्रचलित थी। स्कन्द युद्ध का देवता था। शिवलिंग की पूजा आर्यों में पहले-पहल सातवाहन युग के अन्तिम हिस्से में आ कर सुनी जाती है। हम देख चुके हैं कि भागवत और शैव धर्म को तब अनेक विदेशी भी अपना लेते थे। पौराणिक धर्म तब सब के लिए खुला था। पुराने यूनानी भी वैदिक देवताओं से मिलते-जुलते प्रकृति-देवताओं को पूजते थे। उस पुरानी पूजा के आडम्बरमय और निर्जीव हो जाने पर भारतवर्ष के इस नये भक्तिप्रधान धर्म ने उन्हें आकर्षित किया। अन्दाज़न कनिष्क के समय में ईरान के मग ("शाकद्वीपी") ब्राह्मणों ने भारत में आ कर सूर्य की एक विशेष पूजा चलायी। सूर्य की पूजा यहाँ वैदिक काल से थी, पर उसकी मूर्त्ति और मन्दिर बनाने की चाल ईरानी मगों ने चलायी। पंजाब, सिन्ध, राजपूताना, सुराष्ट्र, मगध आदि में उन्होंने बहुत से मन्दिर स्थापित किये, जिनमें से मूलस्थानपुर (मुलतान) का मन्दिर सबसे पुराना और प्रसिद्ध था। वह ईरानी सूर्य-पूजा भी पौराणिक धर्म में मिल गयी।

पौराणिक धर्म का प्रभाव फिर बौद्ध और जैन धर्मों पर पड़ा। उनमें बुद्ध और महावीर अब ऐतिहासिक महापुरुष के बजाय प्रमुख देवता बन गये। बौद्धों का कहना है कि बुद्ध पिछले कई जन्मों से साधना कर रहे थे, और तब वे बोधिसत्त्व थे। इसी प्रकार जैन लोग मानते हैं कि महावीर से पहले कई तीर्थंकर हुए थे। इन सब ने गौण देवताओं और अवतारों का स्थान ले लिया। बौद्ध धर्म का यह नया रूप महायान अर्थात् बड़ा पन्थ कहलाने लगा। इसके मुकाबले में पुराना बौद्ध धर्म (थेरवाद) हीन-यान (छोटा पन्थ) कहलाने लगा। नागार्जुन (लगभग १५० ई०) महायान के प्रमुख आचार्य थे। थेरवाद की पुस्तकें पाली में हैं और महायान की संस्कृत में। थेरवाद अब सिंहल, स्याम और बरमा में है; महायान चीन, जापान और कोरिया में।

९२. नवीन संस्कृत, प्राकृत और तामिल साहित्य—पौराणिक धर्म की तरह नये संस्कृत साहित्य का विकास पहले-पहल शुंग-सातवाहन-युग में हुआ। वह पुराने वैदिक साहित्य से भिन्न और स्वतन्त्र है। पुष्यमित्र शुंग के समय पतंजलि मुनि थे, जिन्होंने अष्टाध्यायी पर महाभाष्य लिखा। शुंगों के ही समय (अन्दाज़न १५० ई० पू०) में मनुस्मृति लिखी गयी। इसी कारण उसमें बौद्ध-विरोधी भाव बहुत हैं। उसका लेखक एक भृगुवंशी ब्राह्मण था, पर उसने मनु के नाम से अपनी शिक्षाओं को चलाया। उसके प्रायः अढ़ाई तीन शती पीछे याज्ञवल्क्य-स्मृति लिखी गयी। महाभारत के कोई-कोई अंश ५०० ई० पू० तक के हैं। किन्तु उसका अधिकांश २०० ई० पू० से २०० ई० के बीच लिखा गया। सुप्रसिद्ध भास कवि, जिसके नाटकों के नमूने पर बाद में कालिदास ने नाटक लिखे, इसी युग का है। अश्वघोष न केवल एक बौद्ध दार्शनिक, प्रत्युत कवि और नाटककार भी था। नागार्जुन अश्वघोष का प्रशिष्य था। वह दर्शन के साथ-साथ विज्ञान का भी बड़ा पंडित था। उसने एक 'लोहशास्त्र' लिखा और पारे के योग बनाने की विधि निकाल कर रसायन के ज्ञान को आगे बढ़ाया। उसने सुश्रुत के ग्रन्थ का सम्पादन भी किया।

भारतवर्ष के प्रसिद्ध वैद्य चरक और सुश्रुत दोनों इसी युग में हुए। मीमांसा-दर्शन के प्रवर्त्तक जैमिनि, वैशेषिक-दर्शनकार कणाद, न्याय-दर्शन के संस्थापक अक्षपाद गौतम तथा वेदान्त के प्रवर्त्तक बादरायण भी इसी युग में हुए। प्रसिद्ध अमरकोश भी इसी युग में लिखा गया। उसका लेखक अमरसिंह बौद्ध था। पिछले शुंगों के समय से बौद्धों के सब ग्रन्थ संस्कृत में ही लिखे जाने लगे थे। महायान के उदय का जो कारण था, वही बौद्ध ग्रन्थों के संस्कृत में लिखे जाने का भी कारण हुआ। दूर-दूर के जनपदों में जब उस धर्म का प्रचार किया गया, तब जैसे उसे अपना आन्तरिक रूप बदलना पड़ा, वैसे ही अपनी भाषा भी बदलनी पड़ी, क्योंकि अब प्रान्तीय प्राकृत पाली से उसका काम न चल सकता था।

संस्कृत के साथ-साथ कई प्राकृतों में उत्तम रचनाएँ हुईं। राजा हाल स्वयम् प्राकृत का कवि था। एक सातवाहन राजा के दरबार में गुणाढ्य नाम का प्रसिद्ध कश्मीरी लेखक था। कश्मीर के उत्तर-पच्छिम, कृष्णगंगा की दून से पामीर की जड़ तक दरदिस्तान का इलाका है; वहाँ की पुरानी प्राकृत में गुणाढ्य ने बृहत्कथा नाम का कहानियों का एक बहुत सुन्दर ग्रन्थ लिखा। वह ग्रन्थ अब नहीं मिलता, पर उसके तीन अनुवाद संस्कृत में हैं और एक तामिल में। तामिल भाषा का साहित्य

भी पहले-पहल पहली शती ई० से ही प्रकट होने लगा। तामिल राज्यों में इस समय "संघम्" नाम की एक साहित्य-परिषद् थी।

§३. सातवाहन शिल्प-कला—साहित्य की तरह शिल्प और कला भी सातवाहन-युग में खूब फूली-फली। इस युग की तीन प्रकार की इमारतें और शिल्प बहुत प्रसिद्ध हैं। उनमें से पहले हैं पहाड़ों में काटे हुए गुहामन्दिर जो महाराष्ट्र और उड़ीसा में पाये जाते हैं। वे खारवेल और शातकर्णि (१म) के समय शुरू हुए, और फिर शकों और पिछले सातवाहनों के समय तक बनते रहे। महाराष्ट्र में उन्हें 'लेण' कहते हैं और उड़ीसा में 'गुम्फा'। महाराष्ट्र की लेणें सब बौद्ध चैत्य हैं, और उड़ीसा की गुम्फाएँ जैन मन्दिर। एक-एक मन्दिर केवल एक-एक चट्टान को काट कर बना है। उनकी कारीगरी अद्भुत है।

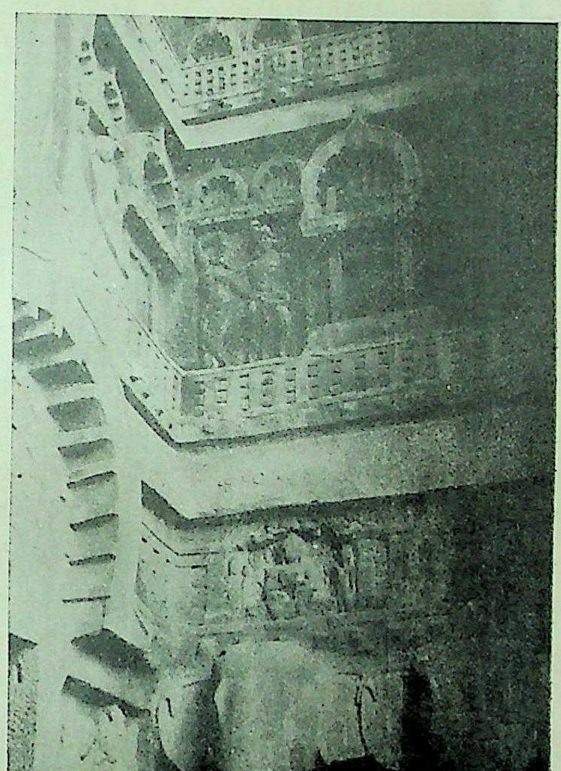

कार्ले लेण का सिंहद्वार, एक किनारे का दृश्य [फ़ोटो पटना म्यू०]

दूसरा शिल्प, जिसके कारण इस युग की प्रसिद्धि है, भारहुत और साँची के स्तूपों और उनके चारों तरफ़ की पत्थर की वेदिकाओं (जँगलों) और तोरणों का है। स्तूप तो पुराने हैं, पर पत्थर का काम सब इस युग का है। वेदिकाओं और तोरणों के प्रत्येक खम्भे में और खम्भों के बीच की प्रत्येक बँडेरी में सुन्दर मूर्त्तियाँ तराशी गयी हैं, या कहानियों और घटनाओं के पूरे दृश्य काटे गये हैं। इन दोनों शिल्पों की एक विशेषता यह है कि ये हैं तो

पत्थर के, किन्तु ठीक काठ के नमूने पर बनाये गये हैं। काठ के शिल्प की बारीक नक्काशी और छुँटाई पत्थर में की गयी है।

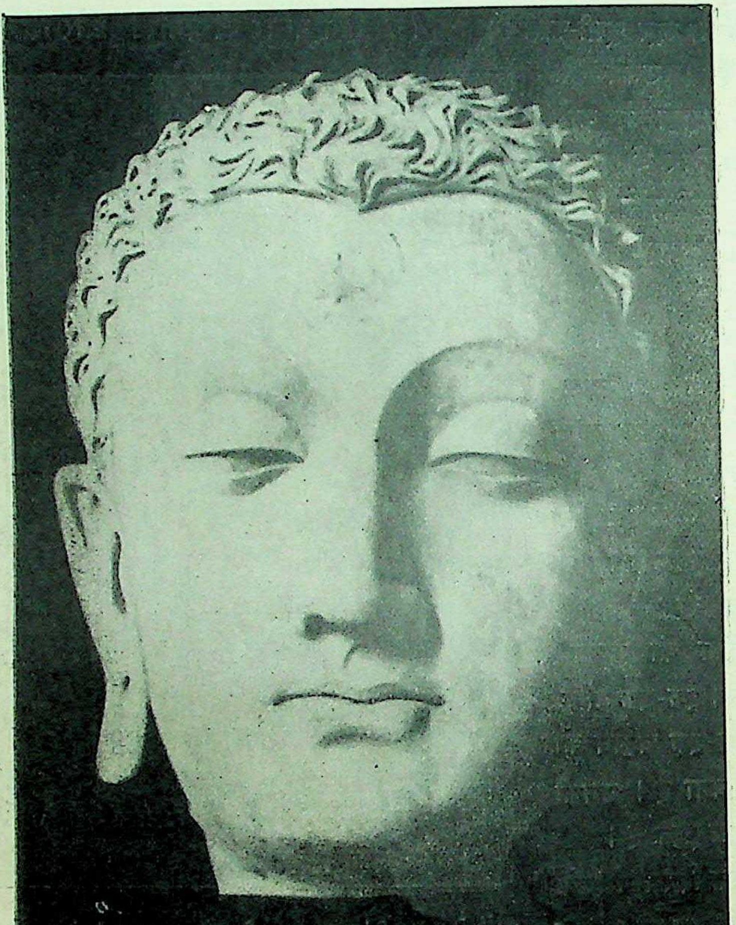

गान्धारी शैली की बुद्ध-मूर्त्ति – हद्दा, अफ़गानिस्तान से [काबुल म्यूज़ियम]

लगभग कनिष्क के समय से गान्धार देश की इमारतों और मूर्त्ति-कला में एक और शैली का विकास हुआ, जिसे अब हम गान्धारी शैली कहते हैं। वह शैली यूनानी और भारतीय शैली के समागम से पैदा हुई। अब तक बुद्ध की सबसे पुरानी मूर्त्तियाँ उसी शैली की पायी गयी हैं।

§४. **आर्थिक जीवन**—साहित्य, सिक्कों और पत्थर में खुदे हुए लेखों आदि से इस युग के आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक जीवन का भी पता मिलता है। इस युग में शिल्प और व्यापार की बड़ी उन्नति हुई। कारीगरों की श्रेणियाँ अब ऐसे काम भी करने लगीं जो आजकल के बड़े-बड़े बैंक करते हैं। सेनापति उषवदात ने नासिक के बौद्ध भिक्षुओं के संघ के लिए कई हज़ार का दान किया; उस रक़म को उसने कोरियों (जुलाहों) की दो श्रेणियों के पास "अक्षयनीवी" (कभी न लौटने वाली धरोहर) के रूप में रख दिया कि उसके सूद से उन भिक्षुओं को हर साल चीवर (कपड़े) मिलते रहें। एक राजा अपना दान जुलाहों की श्रेणि के पास हमेशा के लिए जमा करा दे, इससे उस श्रेणि की हैसियत का अन्दाज़ होता है। इस तरह के और अनेक उदाहरण हैं। जहाज़ों के किराये और विदेशी व्यापार तथा व्यापारी दस्तावेज़ों के नियम भी इस युग की स्मृतियों में विस्तार से दिये गये हैं।

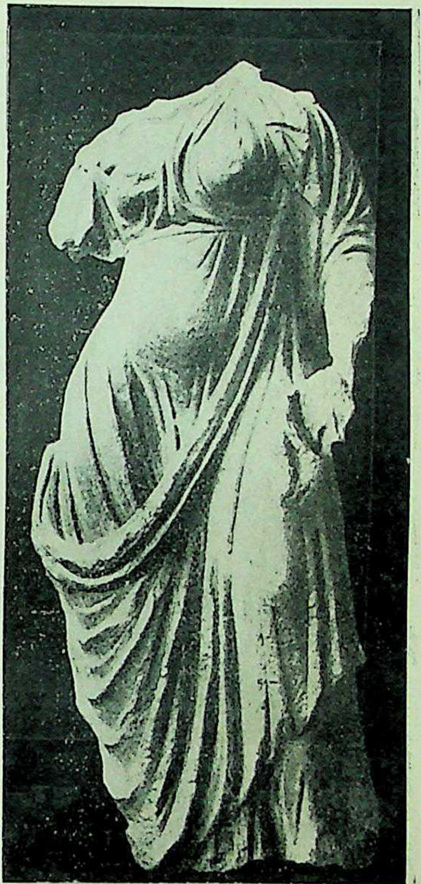

गान्धारी शैली की खंडित स्त्री-मूर्त्ति, शहर-ए-बहलोल (ज़ि० पेशावर) की खुदाई से प्राप्त [भा० पु० वि०]

§५. **राज्य-संस्था**—राज-काज में ग्रामों, श्रेणियों और नगर-संस्थाओं की बड़ी हैसियत थी। नगर-संस्था को अब 'पूग' या 'पौर' भी कहते थे। सेनापति उषवदात ने अपने उक्त दान के सम्बन्ध में लिखा है कि यह " 'निगमसभा' में सुनाया गया, और 'फलकवार' (रिकार्ड आफिस, लेखा दफ़्तर) में 'चरित्र' के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुसार 'निवद्ध' (रजिस्टरी) किया गया।"* इससे प्रकट है कि इस युग में राजा भी अपने दस्तावेज़ों को नगर-परिषदों के दफ़्तरों में उन परिषदों के कानून के अनुसार रजिस्टरी कराते थे।

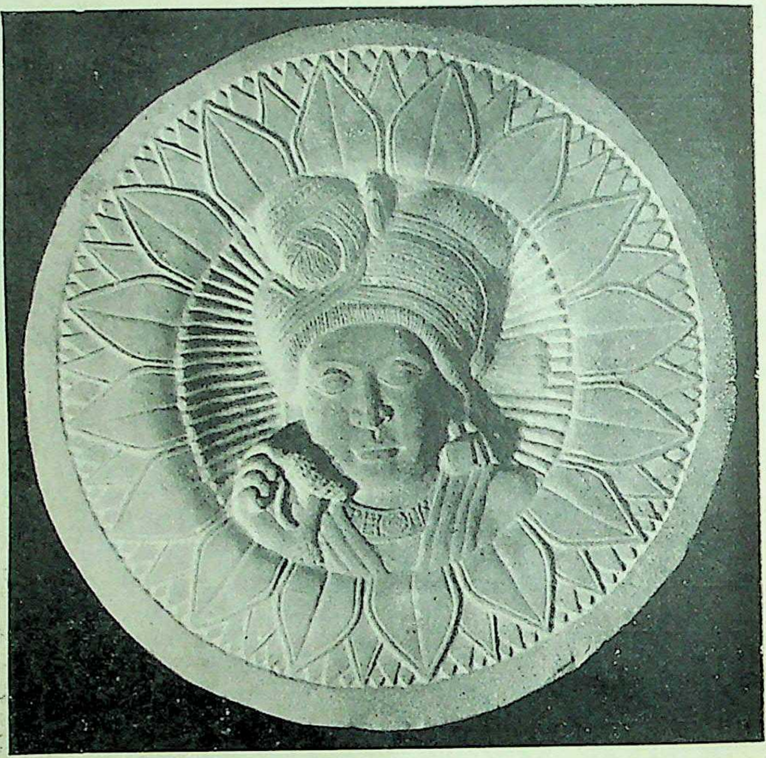

एक सेट्ठी अर्थात् निगम-सभा का प्रमुख—शुंग-युग की वेषभूषा, भारहुत स्तूप की वेदिका से [इं० म्यू० कलकत्ता]

जनपदों की परिषदें तो देश की मुख्य शासक-शक्ति थीं। जब कोई जनपद एक राजा के हाथ से दूसरे राजा के हाथ में जाता, तब इस बात

---

* निगम-सभा का अर्थ नगर की परिषद् और चरित्र का अर्थ परिषदों का बनाया हुआ कानून होता था सो पीछे कह चुके हैं। फलक माने अलमारी, और फलकवार का अर्थ हुआ अलमारियों वाली जगह यानी लेखा रखने का दफ़्तर।

का बड़ा आग्रह रहता कि नये जीते हुए जनपद में राजा वहीं के "धर्म, व्यवहार और चरित्र" के अनुसार चले। राजा परिषद् की सहायता से राज्य करते थे।

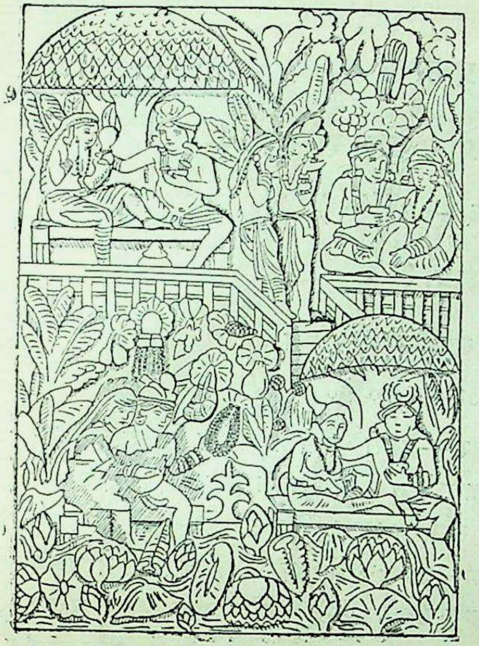

उद्यान-क्रीड़ा—साँची स्तूप की वेदिका पर खुदा एक दृश्य [श्री हरिहरलाल मेढ़ कृत प्रतिलिपि, डा० मोतीचन्द के सौजन्य से]

§६. सामाजिक जीवन—सामाजिक जीवन में भी यह युग वैदिक युग से दूर हट रहा था। स्मृतिकारों की यह कोशिश रही कि समाज चार वर्णों या 'जातियों' में बँटा रहे, जिनमें से प्रत्येक अपना खास धन्धा करे और अपने अन्दर ही विवाह करे; पर बर्ताव में यह बात न चली। ऐसे बहुत से समूह थे, जिन्हें वे किसी 'जाति' में न गिन पाते थे। उन्हें उन्होंने "संकर जाति" मान लिया। भिन्न-भिन्न जातियों का खानपान अलग करने की बात तो स्मृतिकार भी नहीं कहते। विवाह-बन्धन की शिथिलता को हटाने तथा तलाक और पुनर्विवाह की रोकथाम करने की मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति ने कोशिश की। तो भी उनके समय तक वे बातें जारी थीं। बौद्धों का विरोधी होते हुए भी मनुस्मृति-कार ने "व्यर्थ हत्या" की निन्दा की। जुआ और 'समाह्वय' (जानवरों के मुकाबले पर बाज़ी लगाना) इस युग में भी जारी ही रहे, पर पिछले "उद्यान-क्रीड़ाएँ", गोष्ठियाँ और नाटक आदि विनोद उनसे अधिक चल पड़े।

सातवाहन-युग की नारी-शिरोभूषा। कौशाम्बी से प्राप्त मिट्टी का खिलौना [प्रयाग म्यू०]

छठा प्रकरण

नाग, वाकाटक और गुप्त साम्राज्य

(लगभग १७६—५४० ई०)

अध्याय १

भारशिव और वाकाटक साम्राज्य

(लगभग १७६—३४० ई०)

§१. सातवाहनों के उत्तराधिकारी—दूसरी शती के अन्त में सातवाहन-साम्राज्य टूटने लगा। उसके उत्तराधिकारियों में तीन राज्य प्रमुख हुए। दक्खिन-पूरबी गुजरात में आभीरों का गणराज्य स्थापित हुआ, जिसने चष्टन-वंशी राजाओं से उनके पूरबी प्रदेश छीन लिये। १८८-१९० ई० में ईश्वरसेन आभीर ने समूचे शक राज्य पर दखल कर लिया; किन्तु उसके पीछे काठियावाड़ और उत्तरी गुजरात में वह राज्य फिर उठ खड़ा हुआ। महाराष्ट्र और कर्णाटक में सातवाहन वंश की एक शाखा चुटु-सातवाहनों ने प्रायः एक शती तक राज्य किया। उनकी राजधानी वैजयन्ती (उत्तर कनाडा ज़िले में आधुनिक बनवासी) थी। आन्ध्र देश में प्रायः उसी समय इक्ष्वाकु क्षत्रियों के एक वंश ने राज्य किया। उनकी राजधानी श्रीपर्वत (कृष्णा के दक्खिन नालमलै पर्वत, गुन्टूर ज़िले में) थी।

§२. भारशिव-नागों का उदय, तुखार-साम्राज्य का अन्त—दूसरी शती ई० पू० के अन्त में शुंग-साम्राज्य के पतन पर विदिशा (भेलसा) में नाग क्षत्रियों का राज्य था। नहपान शक ने जब विदिशा जीती, तब वे लोग सिन्ध और पार्वती के संगम पर पद्मावती (आधुनिक पदमपवायाँ) में चले गये। ७८ ई० के बाद उत्तर भारत में ऋषिक-तुखारों का साम्राज्य स्थापित होने पर वे अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए नर्मदा के दक्खिन जंगलों में जा बसे। इन्हीं नाग क्षत्रियों के नाम से नागपुर का नाम पड़ा। वहाँ दूसरी शती के मध्य (लगभग १४०-१७० ई०) में राजा नव नाग हुआ। उसने अपने उस जंगल के आसरे से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आधुनिक बघेलखंड के रास्ते गंगा-काँठे की तरफ़ बढ़ कर तुखार-साम्राज्य के पूरबी छोर पर चोट की, कौशाम्बी को जीत लिया, और कान्तिपुरी (मिर्ज़ापुर के पास आधुनिक कन्तित) में अपना नया राज्य स्थापित किया। कान्तिपुरी के नाग राजा शिव के उपासक थे; उन्होंने अपने वंश का नाम भारशिव रक्खा। नव नाग

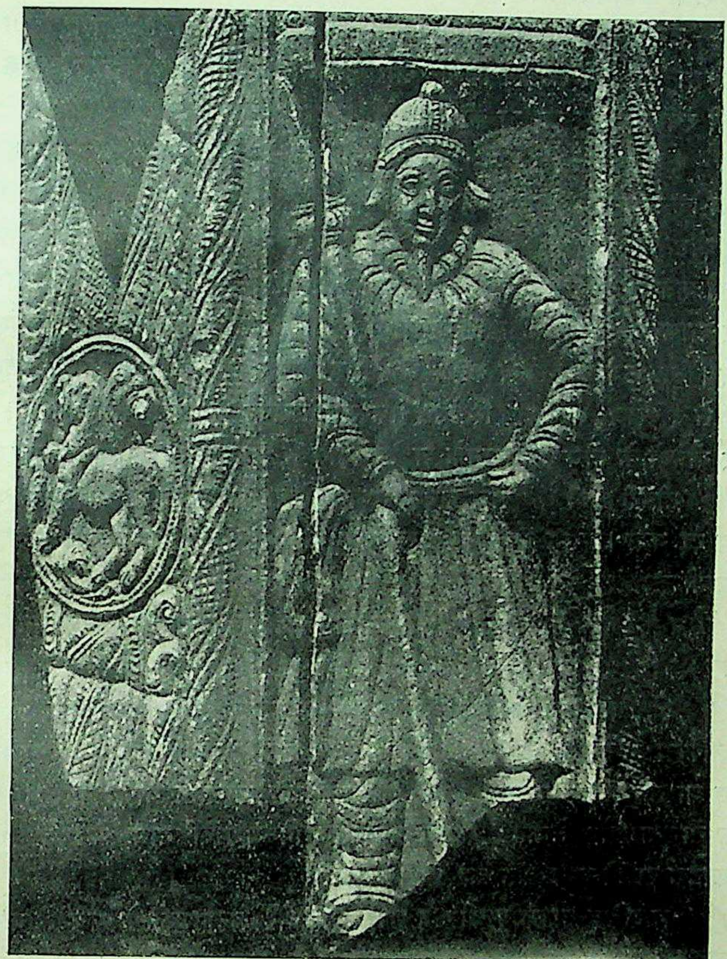

एक शक द्वारपाल

इक्ष्वाकु राजाओं के समय की नागार्जुनीकोंडा स्तूप की वेदिका में से [भा० पु० वि०]

के उत्तराधिकारी वीरसेन (लगभग १७०--२१० ई०) ने मथुरा से भी तुखार सत्ता उठा दी। पद्मावती और मथुरा में नाग राजवंश की शाखाएँ स्थापित हो गयीं।

उनकी मुख्य राजधानी कान्तिपुरी ही रही। भारशिवों ने गंगा और यमुना के प्रदेशों को फिर स्वतन्त्र किया और उन नदियों की मूर्त्तियाँ अपने सिक्कों और अपनी रचनाओं पर अंकित कीं। उन्होंने दस बार अश्वमेध किया।

§३. मालव और यौधेय-गण—भारशिवों द्वारा तुखार साम्राज्य तोड़ा जाने पर अनेक गणराज्य भी स्वतन्त्र हो गये। मालव-गण की राजधानी चम्बल के काँठे में कर्कोटनगर थी, जिसके खँडहर अब जयपुर राज्य के उणियारा ठिकाने में हैं। तीसरी शती के उत्तरार्द्ध में उनका राज्य और फैल गया। धीरे-धीरे पुराना अवन्ति और आकर-देश भी मालवा बन गया। यौधेयों का गण-राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। सतलज के निचले काँठे से होशियारपुर तक, वहाँ से सहारनपुर तक, और वहाँ से दक्खिन भरतपुर रियासत तक उनके राज्य के चिन्ह पाये गये हैं। मालवों और यौधेयों के बीच तथा उनके अड़ोस-पड़ोस में अन्य कई छोटे-छोटे गण-राज्य थे।

तीसरी शती में तुखार राज्य मध्य एशिया, काबुल और पच्छिमी पंजाब में बचा रह गया। ईरान का पार्थव राजवंश भी तभी समाप्त हुआ, और उसका स्थान सासानी राजवंश ने ले लिया (२२४ ई०)। सासानी राजाओं की यह चेष्टा रही कि ईरान के गौरव को फिर वैसा ही स्थापित कर दें जैसा वह हखामनी वंश के समय था।

§४. वाकाटक और पल्लव वंश—आजकल के पन्ना शहर के पास किलकिला नामक छोटी सी नदी है, जो आगे केन में जा मिलती है। उसके नाम से पन्ना का समूचा पठार तीसरी शती में किलकिला कहलाता था। वहाँ भारशिवों का एक सामन्त और सेनापति रहता था, जो 'विन्ध्यशक्ति' नाम से प्रसिद्ध था। वह वाकाटक या विन्ध्यक वंश का था।

भारशिव साम्राज्य की सब शक्ति धीरे-धीरे वाकाटकों के हाथ में चली गयी। विन्ध्यशक्ति ने २४८ ई० से अन्दाज़न २८४ ई० तक राज किया। उसके शासन के आरम्भ से वाकाटक वंश के राज्य का और एक नये सम्वत् का आरम्भ माना गया। वह सम्वत् चेदि देश में प्रचलित रहने के कारण बाद में चेदि-सम्वत् कहलाया।

भारशिव साम्राज्य तब गंगा-काँठे से नागपुर-बस्तर तक फैला हुआ था। विन्ध्यमेखला में उसके तीन खंड-राज्य थे—(१) माहिष्मती अर्थात् मालवा का

प्रान्त, जिसके अन्दर पुष्यमित्र नामक एक गणराज्य भी सम्मिलित था, (२) मेकला, जिसमें बघेलखंड से बस्तर तक के प्रदेश थे, तथा (३) कोशला अर्थात् दक्खिन कोशल या छत्तीसगढ़। वाकाटकों के नेतृत्व में अब दक्खिन के प्रान्त भी जीते गये। इस प्रकार महाराष्ट्र और कर्णाटक में चुटु-सातवाहन और आन्ध्र में इक्ष्वाकु राजवंश का अन्त हुआ। वीरकूर्च्च उर्फ़ कुमारविष्णु नामक एक सरदार ने, जो नाग सम्राट् का दामाद था, इस समय आन्ध्र-देश जीता और तामिल देश पर चढ़ाई कर कांची को भी अधीन किया (लगभग २५५-६५ ई०)। वीरकूर्च का वंश पल्लव वंश कहलाया। वाकाटक वंश और पल्लव वंश में घनिष्ठ सम्बन्ध दिखायी पड़ता है।

सहजाति के भीटे से पायी गयी गौतमीपुत्र वाकाटक की मुहर [भा० पु० वि०]

§५. सम्राट् प्रवरसेन (लगभग २८४-३४४ ई०)—विन्ध्यशक्ति के बेटे प्रवरसेन के ६० बरस के शासन में वाकाटक साम्राज्य उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। भारशिव सम्राट् भव नाग ने अपनी इकलौती बेटी प्रवरसेन के बेटे गौतमीपुत्र वाकाटक को ब्याह दी, और अपने दोहते को अपना उत्तराधिकारी माना। इस प्रकार भारशिव और वाकाटक वंश मिल कर एक हो गये। प्रवरसेन ने चारों दिशाओं की विजय कर चार अश्वमेध किये और 'सम्राट्' पद धारण किया। इतिहासलेखकों ने उसे "प्रवीर" कहा।

तीसरी शती के अन्त के करीब (२९५ ई०) गुजरात-काठियावाड़ के चष्टन-वंशी राजाओं को अपना महाक्षत्रप पद छोड़ना पड़ा। अब से वे अपने को केवल क्षत्रप कहने लगे, अर्थात् उन्होंने भारतवर्ष के सम्राट् की अधीनता मान ली। उत्तर-पच्छिम की तरफ़ प्रवरसेन ने तुखारों को और आगे ढकेला। अब केकय देश की राजधानी सिंहपुर (आजकल के कटासराज) में यादव क्षत्रियों का एक वंश राज करने लगा, और मद्रदेश में मद्रक गण स्वतन्त्र हो गया। तुखार राज्य केवल काबुल और मध्य-एशिया में रह गया। काबुल के कुषाण-वंशी राजा ने सासानी राजा होर्मिज़्द (२य) (३०२-३०९ ई०) की शरण ली और उसे अपनी बेटी ब्याह दी। परस्पर मैत्री प्रकट करने के लिए काबुल के

राजा ने अपने सिक्कों पर ईरानी चिह्न छपवाये और होर्मिज़्द ने कुषाण-वंशियों की तरह शिव और नन्दी की छाप वाले सिक्के निकाले ।

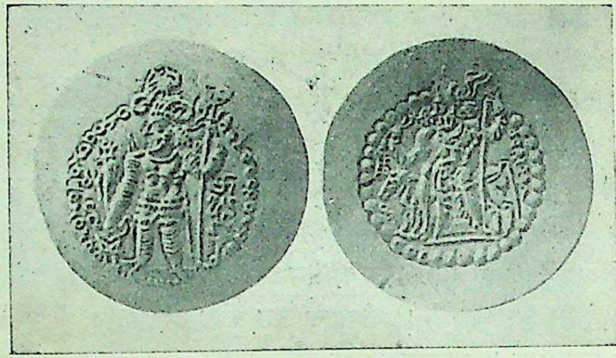

होर्मिज्द के वंशज वरहरान (५ म) (४२२–४४० ई०) का शैव सिक्का
चित, राजा आहुति देते हुए; पट, शिव और नन्दी ।
विम कफस के सिक्के (पृष्ठ १११) से तुलना कीजिये ।

उधर वीरकूर्च के बेटे शिवस्कन्दवर्मा ने कांची पर अपना अधिकार दृढ़ रक्खा (लगभग २८०-२९५ ई०)। तो भी तालिम राज्यों से पल्लवों का मुकाबला जारी रहा । शिवस्कन्दवर्मा के पोते विजयस्कन्दवर्मा (लगभग २९७-३३२ ई०) को कांची फिर से जीतनी पड़ी। दक्खिन-पूरबी कर्णाटक में इस समय काण्व ब्राह्मणों का एक राजवंश पल्लवों के सामन्त रूप में गंग वंश नाम से स्थापित हुआ ।

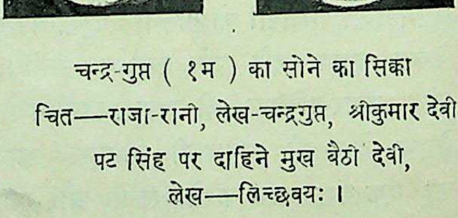

चन्द्र-गुप्त (१म) का सोने का सिक्का
चित—राजा-रानी, लेख-चन्द्रगुप्त, श्रीकुमार देवी;
पट सिंह पर दाहिने मुख बैठी देवी,
लेख—लिच्छवयः ।
[श्रीनाथ साह संग्रह]

§९. कादम्ब और गुप्त राज्यों का उदय—खास कर्णाटक में मयूर शर्मा नामक व्यक्ति ने पल्लवों और वाकाटकों से स्वतन्त्र हो कर अपना राज्य स्थापित किया (लगभग ३२५ ई०)। मयूरशर्मा कादम्ब वंश का था, और अपने को चुटु-सात-वाहनों का

उत्तराधिकारी मानता था। उसने अपरान्त (कोंकण) तक जीतना चाहा, पर वाकाटकों ने महाराष्ट्र और अपरान्त पर अपना अधिकार दृढ़ रक्खा और कादम्ब राज्य कर्णाटक या कुन्तल में ही सीमित रहा।

कर्णाटक के साथ-साथ मगध में भी एक नयी शक्ति उठ खड़ी हुई। २७५ ई० के करीब साकेत-प्रयाग प्रदेश में गुप्त नामक एक राजा था। गुप्त का बेटा घटोत्कच हुआ, और उसके बेटे चन्द्र ने अपने को चन्द्र-गुप्त कहा। चन्द्र-गुप्त ने ३१९-२० ई० में राज पाया। उसके वंशजों ने तब से गुप्त सम्वत् का आरम्भ माना। चन्द्र-गुप्त ने वैशाली के लिच्छवि सरदारों की एक कन्या कुमारदेवी से विवाह किया, और लिच्छवियों की मदद से पाटलिपुत्र पर चढ़ाई कर उसे जीत लिया। किन्तु कुछ समय बाद उसे मगध से निकलना पड़ा। उसका बेटा समुद्र-गुप्त उसका उत्तराधिकारी हुआ (लगभग ३४० ई०)

अध्याय २

गुप्त साम्राज्य का उदय और उत्कर्ष

(लगभग ३४०--४५५ ई०)

§१ **दिग्विजयी समुद्र-गुप्त** (लगभग ३४४--३८० ई०)—सम्राट् प्रवरसेन के मरते ही समुद्र-गुप्त ने वाकाटक साम्राज्य पर हमला किया। उसका रणकौशल अद्वितीय था। तीन या चार युद्धों में वाकाटक साम्राज्य को जीत कर तथा एक चढ़ाई में गुजरात-काठियावाड़ के राज्य का दमन कर वह समूचे भारत का 'महाराजाधिराज' बन गया। उसकी विजयों का वृत्तान्त अशोक की कौशाम्बी वाली लाट पर, जो अब इलाहाबाद के किले में है, खुदा है। उससे तथा काठियावाड़ के सिक्कों से उसका इतिहास इस प्रकार प्रकट हुआ है—

समुद्र-गुप्त ने पहले मगध पर चढ़ाई कर पाटलिपुत्र को घेर लिया। पद्मावती और गंगा-यमुना-काँठे के नाग सरदार पाटलिपुत्र को बचाने दौड़े; समुद्र-गुप्त ने उन्हें रास्ते में—सम्भवतः कौशाम्बी पर—रोक कर हराया और "जड़ से उखाड़ डाला।" उधर उसकी सेना ने पटना ले कर वहाँ के राजा को कैद कर लिया। इस प्रकार एक ही युद्ध में मगध और अन्तर्वेद समुद्र-गुप्त के हाथ आ गये।

तब उसने वाकाटक साम्राज्य के दक्खिन-पूरबी पहलू पर चढ़ाई की। मगध और झाड़खंड से कोशल (छत्तीसगढ़) और महाकान्तार (बस्तर) जीतता हुआ वह आन्ध्र देश की तरफ़ बढ़ा। कुराल (कोल्लेरू) झील पर कलिंग और आन्ध्र के सरदारों ने तथा कांची के पल्लव राजा सिंहवर्मा के छोटे भाई विष्णुगोप ने, उसका मुकाबला किया। युद्ध में ये सब राजा कैदी हुए और अधीनता मानने पर छोड़े गये।

इस प्रकार वाकाटक साम्राज्य के दो पहलू तोड़ कर समुद्र-गुप्त ने उसके केन्द्र पर चढ़ाई की। बीना नदी के तट पर अरिकिण (एरन) नाम की प्राचीन बस्ती पर लड़ाई हुई, जिसमें प्रवरसेन का बेटा रुद्रसेन या रुद्रदेव अपने सरदारों सहित मारा गया।

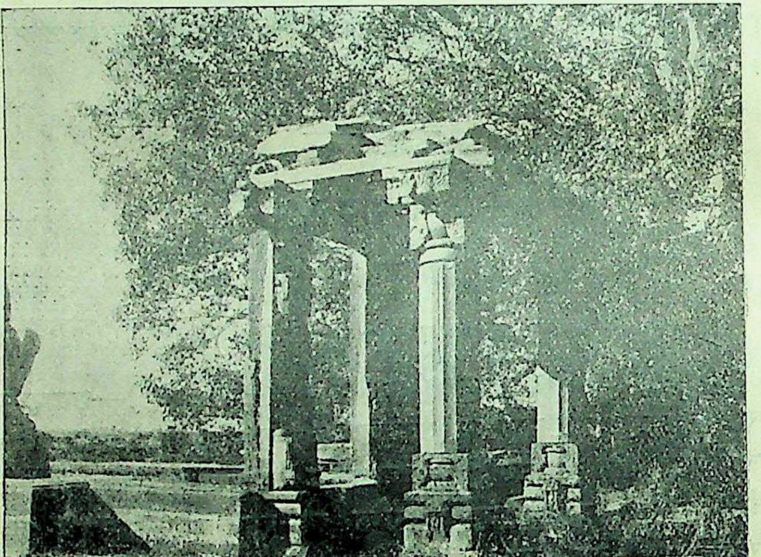

एरण (ज़ि० सागर) में समुद्र-गुप्त की रानी के स्थापित किये विष्णु-मन्दिर के अवशेष [भा० पु० वि०]

इन एकबारगी विजयों से समुद्र-गुप्त की धाक जम गयी। सब "प्रत्यन्तों" अर्थात् सीमान्तों के राज्यों ने आप से आप उसे कर देना और पूरी तरह उसकी आज्ञा में रहना मान लिया। इन "प्रत्यन्त" राज्यों में (१) समतट (गंगा का मुहाना), (२) डवाक (चटगाँव-त्रिपुरा), (३) कामरूप, (४) नेपाल तथा

(५) कर्तृपुर (कुमाऊँ) के राज्य और (६) मालव, (७) आर्जुनायन, (८) यौधेय, (९) माद्रक, (१०) आभीर और (११) मालवा के अनेक छोटे-छोटे गणराज्य शामिल थे। नेपाल में तो गुप्तों के सम्बन्धी लिच्छवियों का ही राज्य था।

सन् ३४५ ई० के करीब जब प्रवरसेन की मृत्यु के पीछे समुद्र-गुप्त ने पाटलिपुत्र पर एकाएक चढ़ाई की तो गुजरात-काठियावाड़ के राजा स्वामी रुद्रदामा (२य) ने मौका देख कर महाक्षत्रप-पद धारण कर लिया। किन्तु वाकाटक साम्राज्य से छुट्टी पाते ही समुद्रगुप्त गुजरात पर बिजली की तरह टूट पड़ा (३५१ ई०)। स्वामी रुद्रदामा के बेटे रुद्रसेन (३य) के समूचे राज्य में एकाएक क्रान्ति हो गयी, और उस राज्य का अन्त हो गया। १३ वर्ष पीछे रुद्रसेन सामन्त रूप से फिर अपना सिक्का चला सका। समुद्र-गुप्त ने इस प्रकार "अनेक गिराये हुए राज्यों की फिर से स्थापना की।" भारतवर्ष में उसका साम्राज्य स्थापित होने पर "देवपुत्र शाहि शाहानुशाहि" अर्थात् काबुल और तुखारिस्तान के कुषाणवंशी राजा ने और सिंहल आदि सब भारतीय द्वीपों के राजाओं ने उसे अपना अधिपति स्वीकार किया।

समुद्र-गुप्त का अश्वमेध-स्मारक दीनार (सोने का सिक्का) चित, घोड़े के चौगिर्द लेख—राजाधिराजः

पृथिवीं विजित्य दिवं जयत्यप्रतिवार्यवीर्यः।

पट, देवी, लेख— अश्वमेधपराक्रमः।

[श्रीनाथ साह संग्रह]

रुद्रसेन वाकाटक से उसका साम्राज्य छीन लेने के बाद उसके बेटे पृथिवीषेण (लगभग ३४८--३७५ ई०) के पास समुद्र-गुप्त ने दक्खिनी चेदि और महाराष्ट्र का राज्य रहने दिया। कादम्ब मयूरशर्मा के बेटे कंग ने पल्लवों के समुद्र-गुप्त से हारने पर दक्खिन में अपना राज्य फैलाना चाहा, पर पृथिवीषेण ने उसे कुन्तल अर्थात् कर्णाटक की सीमाओं से आगे न बढ़ने दिया।

भारतवर्ष की दिग्विजय कर समुद्र-गुप्त ने अश्वमेध किया। वह जैसा अद्वितीय विजेता था, वैसा ही आदर्श राजा और सुशासक भी था। वह स्वयम् विद्वान् था तथा काव्य और संगीत में विशेष निपुण था। वह और उसके वंशज विष्णु के उपासक थे। भगवान् विष्णु की तरह दुष्टों का दलन कर, प्रजा का पालन और मंगल करना तथा राष्ट्र को सब प्रकार समृद्ध बनाना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा।

§२. चन्द्र गुप्त विक्रमादित्य—समुद्र-गुप्त ने अपने छोटे बेटे चन्द्र-गुप्त को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहा था, पर मन्त्रियों ने जेठे बेटे राम-गुप्त को राज्य दिया। उसके राज पाते ही कुषाण-वंशी राजा ने गुप्त साम्राज्य पर चढ़ाई की। व्यास नदी के किनारे हिमालय की बाहरी श्रृंखला में विष्णुपद नाम के पहाड़ी गढ़ में राम-गुप्त घिर गया, और अपनी रानी ध्रुवस्वामिनी को सौंप देने की शर्त पर उसने शत्रु से छुटकारा पाने की सन्धि की। नौजवान चन्द्रगुप्त से यह अपमान न सहा गया। उसने अपने भाई के सामने एक योजना रक्खी। स्वयम् ध्रुवस्वामिनी का और अपने बहुत से नौजवान साथियों से उसकी सहेलियों का भेस बनवा वह शत्रु की छावनी में घुसा, और ज्यों ही उसने कुषाण-वंशी राजा का तथा उसके सरदारों का काम तमाम कर शंख बजाया, त्यों ही गढ़ के भीतर वाली सेना ने शत्रु की सेना पर टूट कर उसे तहस-नहस कर दिया। चन्द्र-गुप्त ने इसके बाद "सिन्धु की सातों धाराएँ" (पंजाब और काबुल की नदियाँ) "युद्ध में पार कर" बलख पर चढ़ाई की और कुषाण-वंशजों को उनके ही गढ़ में परास्त किया।

समुद्रगुप्त के सोने के सिक्के

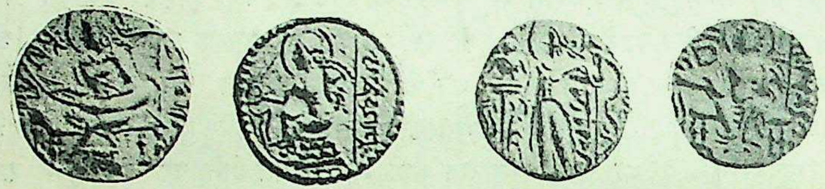

वीणावादक नमूना

धनुर्धर नमूना

[पटना म्यू०]

इसके बाद कायर राम-गुप्त का शीघ्र ही अन्त हो गया और भारतवर्ष का साम्राज्य चन्द्र-गुप्त को मिला। देवी ध्रुवस्वामिनी ने अपने उस उद्धारक को अपना पति वरण किया। भेलसा के पास उदयगिरि में चन्द्रगुप्त के बनवाये हुए गुहा-मन्दिरों के बाहर, पृथिवी का उद्धार करती हुई वराह की एक विशाल मूर्ति बनी है, जिसमें ध्रुवस्वामिनी के उद्धारक चन्द्र-गुप्त के तेज और वीर्य की स्पष्ट झलक दिखायी देती है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बलख की लड़ाई से पहले कुमार चन्द्र-गुप्त बंगाल में कई सम्मिलित शत्रुओं के एक दल को हरा चुका था। राम-गुप्त के समय की साम्राज्य की कमजोरी से लाभ उठा कर, पच्छिमी क्षत्रपों ने फिर स्वतन्त्र महाक्षत्रप पद धारण कर लिया (३८२ ई०)। उत्तरापथ से लौट कर चन्द्र-गुप्त ने दक्खिन पर चढ़ाई की और उनके राजवंश को सदा के लिए मिटा दिया (३९० ई०)। विष्णुपद पहाड़ पर उसकी इन विजयों की याद में एक लोहे का स्तम्भ खड़ा किया गया जिसे ११वीं

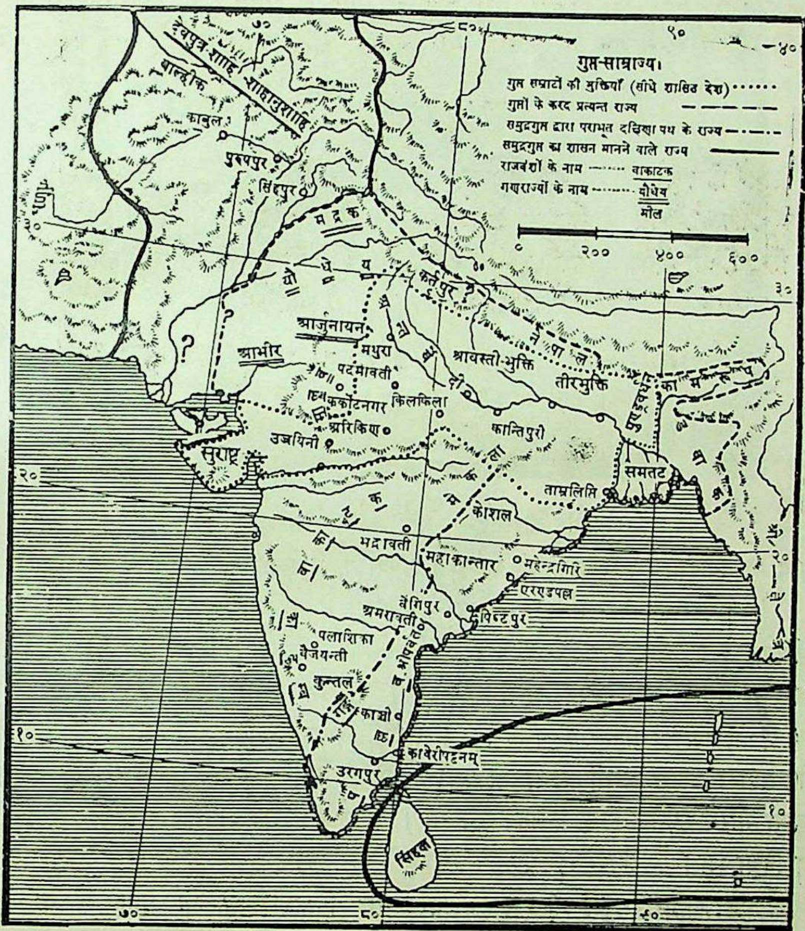
गुप्त-साम्राज्य।
गुप्त सम्राटों की भुक्तियाँ (सीधे शासित देश) ······
गुप्तों के करद प्रत्यन्त राज्य — — — —
समुद्रगुप्त द्वारा पराभूत दक्खिन पथ के राज्य —·—·—
समुद्रगुप्त का शासन मानने वाले राज्य ————
राजवंशों के नाम ······ वाकाटक
गणराज्यों के नाम ······ यौधेय
मील
० २०० ४०० ६००
देवपुत्र-शाहि
शाहानुशाहि
बाल्हीक
काबुल
पुरुषपुर
सिंहपुर
मद्रक
यौधेय
कर्तृपुर
आर्जुनायन
आभीर
मथुरा
पद्मावती
श्रावस्ती-भुक्ति
नेपाल
तीरभुक्ति
कामरूप
ककोटनगर
किलकिला
अरिकिण
उज्जयिनी
कान्तिपुरी
सुराष्ट्र
समतट
ताम्रलिप्ति
वाकाटक
कोशल
भद्रावती
महाकान्तार
महेन्द्रगिरि
एरण्डपल्ल
वेंगिपुर
पिष्टपुर
अमरावती
पलाशिका
वैजयन्ती
कुन्तल
काञ्ची
कावेरीपट्टनम्
उरगपुर
सिंहल
७०
८०
९०
४०
३०
२०
१०

शती में राजा अनंगपाल दिल्ली उठवा ले गया। वहाँ महरौली में उस "लोहे की कीली" पर उसकी कीर्ति अब तक खुदी है। अपनी विजयों के कारण चन्द्र-गुप्त ने विक्रमादित्य पद धारण किया।

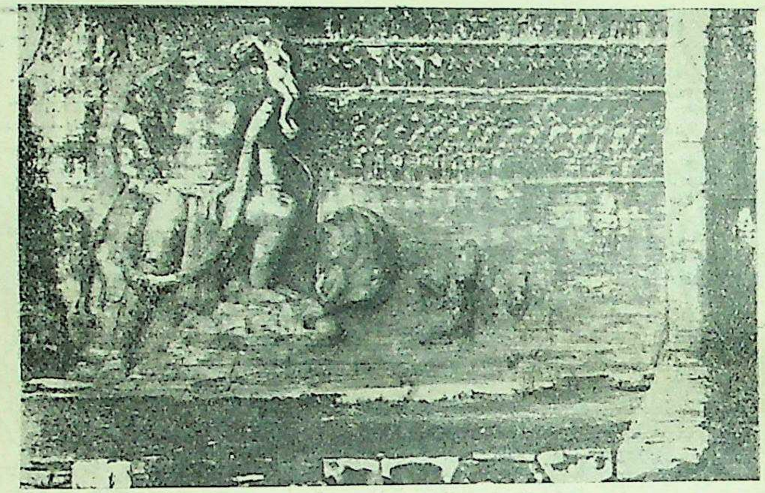

उदयगिरि की चन्द्र-गुप्त गुहा के बाहर वराह मूर्त्ति

वराह की दन्तकोटि पर लटकती हुई स्त्री-मूर्त्ति पृथिवी या ध्रुवस्वामिनी [ग्वालियर पु० वि०]

§३. रानी प्रभावती—सम्राट् चन्द्र-गुप्त ने अपनी बेटी प्रभावती का राजा पृथ्वीषेण के बेटे रुद्रसेन (२य) से विवाह किया। रुद्रसेन की मृत्यु के बाद अपने नाबालिग बेटों के नाम पर प्रभावती स्वयम् शासन करती रही (लगभग ३९५-४१५ ई०)। इस प्रकार जब उत्तर भारत मे चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का राज्य था तभी महाराष्ट्र में रानी प्रभावती राज करती थी। वह भारतवर्ष के लिए अत्यन्त गौरव और समृद्धि का युग था। चन्द्र-गुप्त ने अपने राज्य से मृत्युदंड उठा दिया था।

§४. कुमार-गुप्त (१म)—चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के बाद उसके बेटे कुमार-गुप्त ने ४० वर्ष (४१५--४५५ ई०) शान्ति-पूर्वक राज्य किया। वाकाटक राज्य में यही समय, प्रभावती के बेटे प्रवरसेन (लगभग ४१५--३५ ई०) और उसके बेटे नरेन्द्रसेन (लग० ४३५-७०ई०) के शासन में बीता। राजगृह और पाटलिपुत्र के बीच नालन्दा नामी स्थान में कुमार-गुप्त ने एक महाविहार की स्थापना

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की। आगे चल कर वह एक महान् विद्यापीठ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। कुमार-गुप्त का शासन-काल भारतवर्ष में अद्वितीय शान्ति और समृद्धि का युग था। किन्तु उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर तब एक नयी आँधी आने की सूचना मिल रही थी।

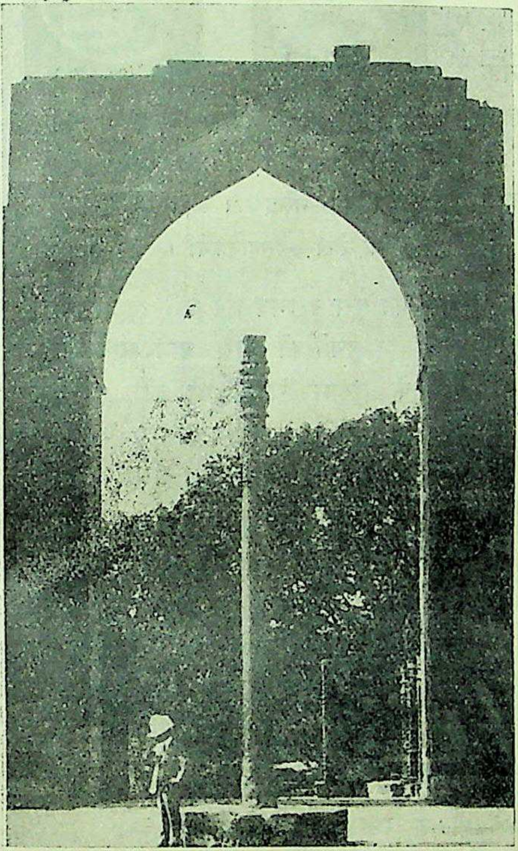

महरौली में राजा चन्द्र की लोहे की कीली, जिस पर उसके बंगाल, बलख और दक्खिन की विजयों का वृत्तान्त खुदा है। पड़ोस की टूटी मसजिद अनंगपाल के मन्दिर का रूपान्तर है। [भा० पु० वि०]

§५. मध्य-एशिया में हूण और गान्धार में किदार-वंश—प्रायः पाँच सौ बरस चुप रहने के बाद चौथी शती ई० के अन्त में हूण लोग फिर अपने घरों से निकले, और टिड्डी-दल की तरह संसार के सब सभ्य देशों पर छा गये। जहाँ कहीं वे पहुँचते, गाँव और बस्तियाँ जलाते और मारकाट मचाते जाते। उनकी जंगली आदतों के अतिरिक्त उनकी चिपटी नाक, गड़ी हुई छोटी आँखें और कर्कश आवाज़ उन्हें और भी भयंकर बना देती थीं। उनकी एक बाढ़ वोल्गा नदी को लाँघ कर युरोप को चली गयी और रोम-साम्राज्य पर मँडराने लगी। जैसे प्राचीन ईरान और आर्यावर्त के उत्तरी सीमान्त पर शक लोग रहते थे, वैसे ही रोम-साम्राज्य के उत्तर-पूरब राईन और दान्यूब नदियों के उस तरफ़ गत

(Goth),* स्लाव (Slav), त्यूतन (Teuton) आदि असभ्य जातियाँ रहती थीं। हूणों ने उनके देशों में खलबली मचा दी, जिससे वे रोम-साम्राज्य पर जा टूटीं और उसे तहस-नहस करने लगीं। स्वयम् हूण मध्य-युरोप तक जा पहुँचे, जहाँ उनके नाम से एक देश हुंगरी कहलाने लगा, तथा उनके भाईबन्दों के नाम से एक देश बुलगारिया। अतिला नामक हूण सरदार ने रोम का पूरा पराभव कर उसे लूट लिया।

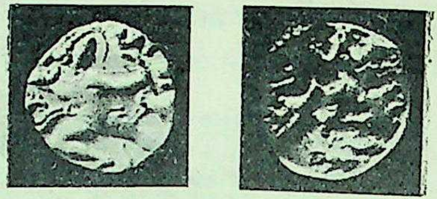
चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य का सोने का सिक्का
चित, राजा शेर का शिकार करते हुए,
लेख—नरेन्द्र···। पट, सिंहवाहिनी
देवी, लेख—सिंहविक्रमः। [श्री० सा० सं०]

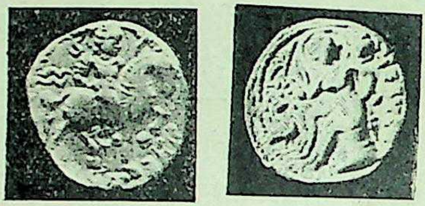
कुमार-गुप्त (१म) का सोने का सिक्का
चित, राजा घोड़े पर सवार, लेख—गुप्तकुल-व्योमशशी जयत्यजेयो जितमरेन्द्रः।
पट, देवी मोर को खिलाते हुए।
[श्री० सा० सं०]

हूणों की दूसरी बाढ़ मध्य-एशिया के तुखार राज्यों पर टूटी (लगभग ४२५ ई०)। मध्य-एशिया का किदार नामक एक ऋषिक (युचि) सरदार भाग कर भारत आया, और उसने तक्षशिला में अपने राजवंश की स्थापना की। मध्य-एशिया की शान्ति, समृद्धि और सभ्यता का हूणों ने अन्त कर दिया। सुग्ध दोआब के तुखार राज्य को जीत कर उन्होंने ईरान के सासानी राज्य पर हमले करना शुरू किया। सासानियों से उनकी लड़ाइयाँ प्रायः सवा सौ बरस तक जारी रहीं।

---

* भारतीय अभिलेखों में गौथ के लिए गत शब्द आया है। महाराष्ट्र के जुन्नर नामक स्थान में सातवाहन-युग के दो लेख हैं, जिनमें दो गत-यवनों द्वारा बौद्ध संघ को दान दिये जाने की बात दर्ज है। यवन शब्द वहाँ युरोपियन के अर्थ में है।

अध्याय ३

गुप्त साम्राज्य, हूण और यशोधर्मा

(लगभग ४५५—५४० ई०)

§१. सम्राट् स्कन्द-गुप्त (४५५-४६७ ई०)—४५४ ई० में सासानी राजा यज़्दगुर्द (२य) को हरा कर हूणों का एक दल अफ़गानिस्तान लाँघता हुआ पंजाब तक बढ़ आया। कुमार-गुप्त की मृत्यु कैसे हुई, सो स्पष्ट नहीं है। तो भी इतना निश्चित है कि उसकी मृत्यु के समय "गुप्तों की राज्य-लक्ष्मी डगमगा गयी थी", और उसका बेटा स्कन्द-गुप्त बहादुरी से शत्रुओं का मुकाबला कर रहा था। वे शत्रु एक तो हूण थे, दूसरे मालवा का पुष्यमित्र नामक गण था, जिसने अब विद्रोह किया था। तीन महीने के अन्दर सब शत्रुओं को परास्त कर, विजय का समाचार लिये स्कन्द-गुप्त अपनी माँ के पास उसी तरह पहुँचा, जैसे "कृष्ण देवकी के पास गये थे।" माँ ने डबडबाई आँखों से उसका स्वागत किया। हूणों को उसने ऐसी करारी हार दी कि अगले तीस बरस तक उन्होंने भारतवर्ष की ओर मुँह न फेरा, और प्रायः ५५ बरस तक गुप्त-साम्राज्य को फिर छेड़ने की हिम्मत न की। उस विजय का स्मारक एक स्तम्भ खड़ा किया गया, जो गाज़ीपुर ज़िले के सैदपुर-भितरी गाँव में अब भी मौजूद है। स्कन्द-गुप्त के बारह बरस (४५५-४६७ ई०) के शासन में गुप्त-साम्राज्य का गौरव ज्यों का त्यों बना रहा।

§२. बुध-गुप्त और भानु-गुप्त—स्कन्द-गुप्त के बाद दस बरस में तीन सम्राटों ने राज किया, और फिर बीस बरस तक (४७७-९६ ई०) बुध-गुप्त ने। बुधगुप्त के बाद उल्लेखयोग्य राजा भानु-गुप्त हुआ। वही शायद बालादित्य (२य) था। इन सम्राटों का वंशवृक्ष और राज्यकाल इस प्रकार है—

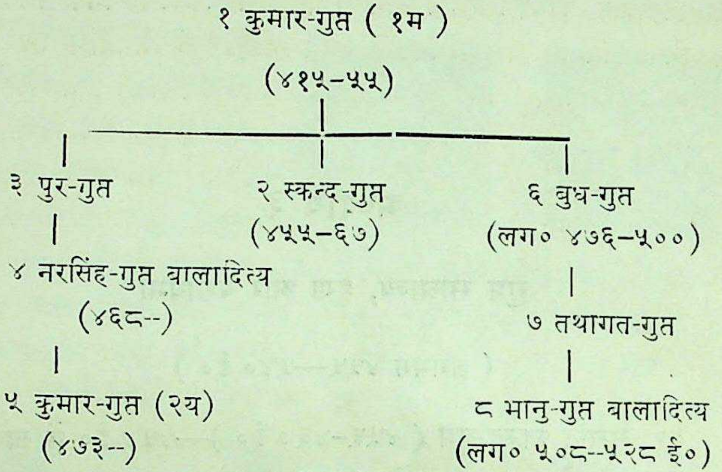
१ कुमार-गुप्त (१म)
(४१५–५५)
३ पुर-गुप्त
२ स्कन्द-गुप्त
(४५५–६७)
६ बुध-गुप्त
(लग० ४७६–५००)
४ नरसिंह-गुप्त बालादित्य
(४६८--)
७ तथागत-गुप्त
५ कुमार-गुप्त (२य)
(४७३--)
८ भानु-गुप्त बालादित्य
(लग० ५०८--५२८ ई०)

§३. गान्धार में हूण; तोरमाण और मिहिरकुल—उधर ईरान के सासानी शाहों और काबुल के तुखारों का मध्य एशिया में हूणों के साथ घोर मुकाबला जारी रहा। ४८४ ई० में ईरान का शाह फ़ीरोज़ उनसे लड़ता हुआ मारा गया। तब उन्होंने अफ़गानिस्तान को भी पैरों तले रौंद डाला, और उसकी अनेक सुन्दर सभ्य बस्तियों को मटियामेट कर डाला। गान्धार पहुँच कर उन्होंने किदार के वंशजों को वहाँ से भगा दिया; किदारों ने उरशा (हज़ारा) और कश्मीर में शरण ली।

५०० ई० के बाद गान्धार का हूण राजा तोरमाण "प्राही जऊव्ल" था। उसने गुप्त साम्राज्य को कमजोर पा कर पंजाब से मालवा तक अधिकार कर लिया। भानु-गुप्त अपने सामन्तों के साथ एरण में हूणों के खिलाफ़ बहादुरी से लड़ा (५१० ई०)। लेकिन बाद में उसे तोरमाण के बेटे मिहिरगुल या मिहिरकुल को अपना अधिपति मानना पड़ा।

मिहिरकुल ने शाकल (स्यालकोट) को अपनी राजधानी बनाया। वह अपने को पशुपति (शिव) का उपासक कहता था। गान्धार की प्रजा पर, विशेष कर बौद्धों पर, उसने घोर अत्याचार किये; जिससे गान्धार में बौद्ध शासन का अन्त हो गया। भानु-गुप्त बालादित्य ने तब उसका आधिपत्य मानने से इनकार किया। मिहिरकुल ने उसपर चढ़ाई की। बालादित्य उसके सामने भागने के बहाने कर उसे कहीं गंगा के कछार में भटका ले गया, और तब एकाएक हमला कर उसे कैद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर लिया (लग० ५२७ ई०)। बालादित्य ने उसे सूली पर चढ़ाना तय किया, लेकिन उसकी माता ने मिहिरकुल की जान बख्श दी। मिहिरकुल पंजाब लौटा, पर उसके भाई ने पीछे उसकी गद्दी सँभाल ली थी। इसलिए मिहिरकुल ने भाग कर कश्मीर के राजा के यहाँ शरण ली और कुछ समय बाद अपने आश्रयदाता का राज्य छीन लिया! तब फिर उसने गान्धार पर चढ़ाई की, और वहाँ बड़े अत्याचार किये। हूणों के दो तीन आक्रमणों से तक्षशिला सदा के लिए मटियामेट हो गयी।

§४. **यशोधर्मा**—उत्तर भारत की जब यह हालत हो रही थी, तब वाकाटक राजा हरिषेण अवन्ति से कुन्तल और कलिंग की सीमाओं तक अपना राज्य बनाये हुए था (लग० ४६०–५२० ई०), और कर्णाटक का कादम्ब राज्य भी अच्छी उन्नति पर था।

पंजाब, थानेसर और मालवा के गुप्त सम्राट् हूणों से न बचा सके, तब वहाँ की सारी प्रजा हूणों के खिलाफ़ उठ खड़ी हुई। उसका अगुआ "जनता का नेता" यशोधर्मा का एक व्यक्ति था। उसने वह कर दिखाया जो गुप्त सम्राटों के वंशज न कर सके थे। हिन्दुस्तान से उसने हूणों की जड़ उखाड़ डाल

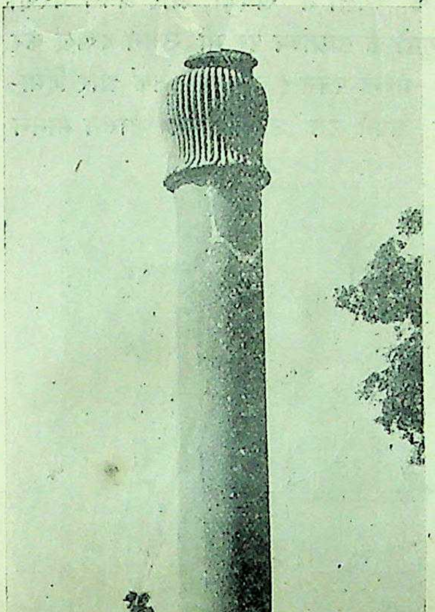

हूण-विजय का स्मारक स्तम्भ, सैदपुर-भितरी (ज़ि० गाजीपुर) [भा० पु० वि०]

देश का शासन अपने हाथ में ले लिया। जिस मिहिरकुल से बालादित्य डरता फिरता था, उसे यशोधर्मा ने "हिमालय के जंगलों में खदेड़ा, और अपने चरणों पर झुकने को बाधित किया।" कमज़ोर गुप्तों के साम्राज्य पर भी उसने दखल कर लिया। "लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) के काँठे से महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा) तक और हिमालय से पच्छिमी समुद्र तक" समूचा देश अपने उस उद्धारक का शासन मानने

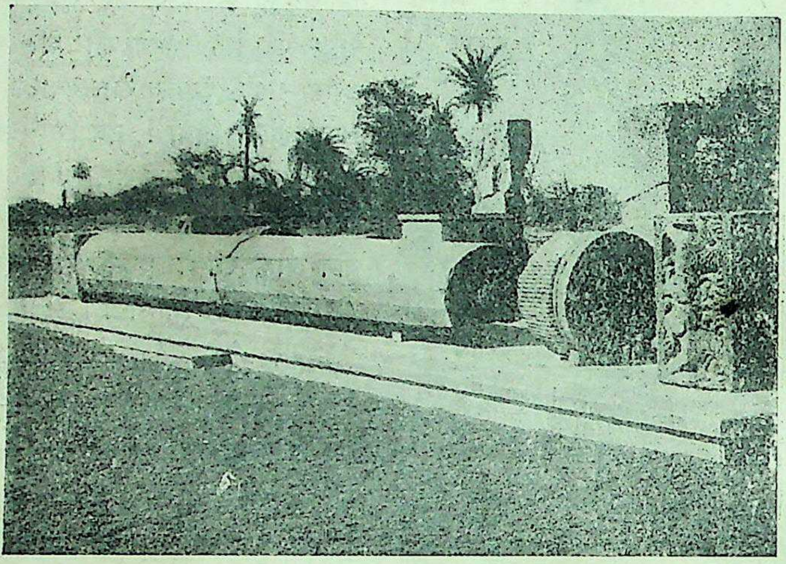

दासोर में पड़े हुए यशोधर्मा के विजय स्तम्भ [ग्वालियर पु० वि०]

लगा। "जिनपर गुप्तों का अधिकार कभी न हुआ था, और जिनमें हूणों की आज्ञा कभी न पहुँची थी" ऐसे कई देश भी उसके अधीन हो गये। वाकाटकों का राज्य भी सम्भवतः उसी के साम्राज्य में मिल गया। दासोर (मन्दसोर) में यशोधर्मा के विजय-स्तम्भ, जिनमें से एक पर ५३२ ई० का लेख है, अब तक पड़े हैं। यशोधर्मा के पचीस-तीस बरस पीछे (५५७–५६७ ई०) ईरान के प्रसिद्ध बादशाह नौशीरवाँ ने मध्य-एशिया में भी हूणों की शक्ति तोड़ दी।

यशोधर्मा के शान्ति-युग के साथ हमारे इतिहास का प्राचीन काल समाप्त होता है। इसके बाद के करीब एक हज़ार बरस को हम मध्य काल कहते हैं।

अध्याय ४

वाकाटक-गुप्त-युग का भारतवर्ष

§ १. गुप्त सुशासन और समृद्धि—गुप्त सम्राटों के शासन-काल में भारतवर्ष ने जैसी शान्ति और समृद्धि देखी, वैसी न तो शायद पहले कभी देखी थी, और न पीछे कभी देख पायी। भारतवर्ष तब अपनी सभ्यता के उच्चतम शिखर पर पहुँच गया था। समूचा गुप्त साम्राज्य बहुत से 'देशों' और 'भुक्तियों' में बँटा हुआ था, जैसे अन्तर्वेदी (ठेठ हिन्दुस्तान), श्रावस्ती-भुक्ति (अवध), तीर-भुक्ति (तिरहुत), 'यमुना-नर्मदा का मध्य', इत्यादि। प्रत्येक देश या भुक्ति पर एक 'गोप्ता' या 'उपरिक महाराज' शासन करता था जो या तो सम्राट् का नियुक्त किया हुआ या उसका सामन्त राजा होता था। देश या भुक्ति फिर कई छोटे "विषयों" अर्थात् ज़िलों में बँटी होती थी। प्रत्येक देश या भुक्ति के शासन के लिए कई महकमे थे।

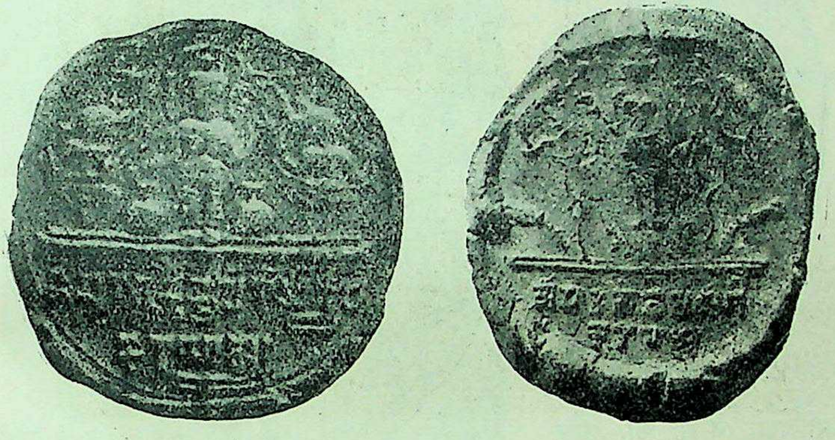

नालन्दा और सहजाति की खुदाई में पायी गुप्तों की सरकारी मुहरें — असल परिमाण

"नगर भुक्तौ कुमारामात्याधिकरणस्य"
(नगर का शासन करने वाले कुमार-अमात्य के दफ्तर की मुहर)

"सामाहर्स-विषयाधिकरणस्य"
('सामाहर्स ज़िले के दफ्तर की')
[भा० पु० वि]

प्रत्येक महकमे का अलग-अलग दफ़्तर (अधिकरण) होता था। तीरभुक्ति की राजधानी वैशाली के खँडहरों में से वहाँ के बहुत से अधिकरणों की मोहरें पायी गयी हैं। गुप्त सम्राटों की सफलता का सब से बड़ा कारण उनका सुशासन और सुव्यवस्था थी। उनकी शासन-पद्धति की नकल भारतवर्ष के दूसरे सब राजाओं ने भी की, और उनके बाद के ज़माने में भी लगातार उसी की नकल होती रही।

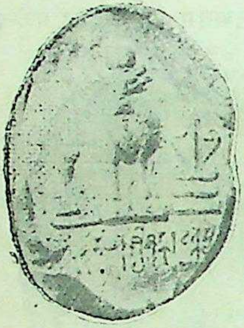

"दंडनायकश्रीशंकरदत्तस्य"

('पुलिस-नायक श्रीशंकरदत्त का')

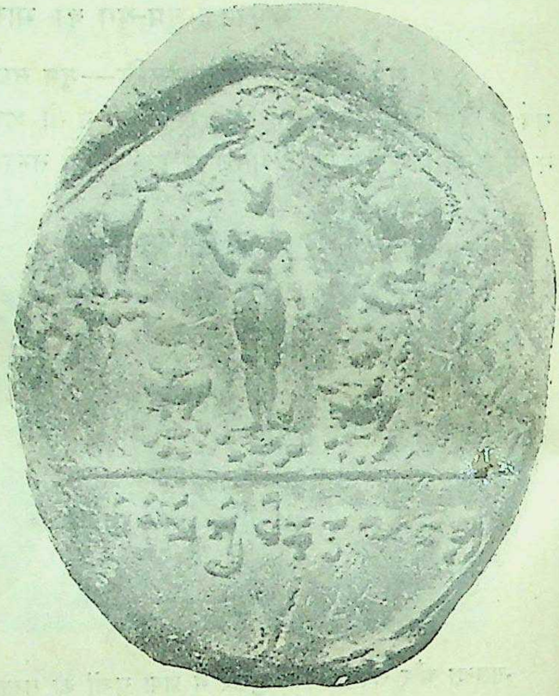

"कुमारामात्याधिकरणस्य" (कुमार-अमात्य के दफ्तर का')

§ २. **ग्रामों और जनपदों के संघ, शिल्पियों की श्रेणियाँ, व्यापारियों के निगम**—वैशाली के खँडहरों में पायी गयी गुप्त-युग की मुहरों में एक ग्राम की मुहर भी है, जिससे प्रतीत होता है कि राजकीय शासन के नीचे ग्रामों, नगरों आदि की पंचायतें पहले की तरह अपना प्रबन्ध स्वतन्त्रता से करती आती थीं। नालन्दा के खँडहरों में से सरकारी अधिकरणों (दफ़्तरों) और ग्रामों की मुहरों के अतिरिक्त कई 'जानपदों'—अर्थात् जनपद या देश के संघों—की भी मुहरें मिली हैं। उनसे सिद्ध होता है कि जनपदों की संगठित राष्ट्रसभाएँ इस युग में भी मौजूद थीं।

वैशाली में व्यापारियों के निगमों और कारीगरों की श्रेणियों की मुहरें भी पायी गयी हैं। श्रेणियों के लेख और भी कई जगहों से मिले हैं। उनसे यह जाना गया है कि व्यापारियों और शिल्पियों के संगठन भी पहले से अधिक समृद्ध दशा में थे।

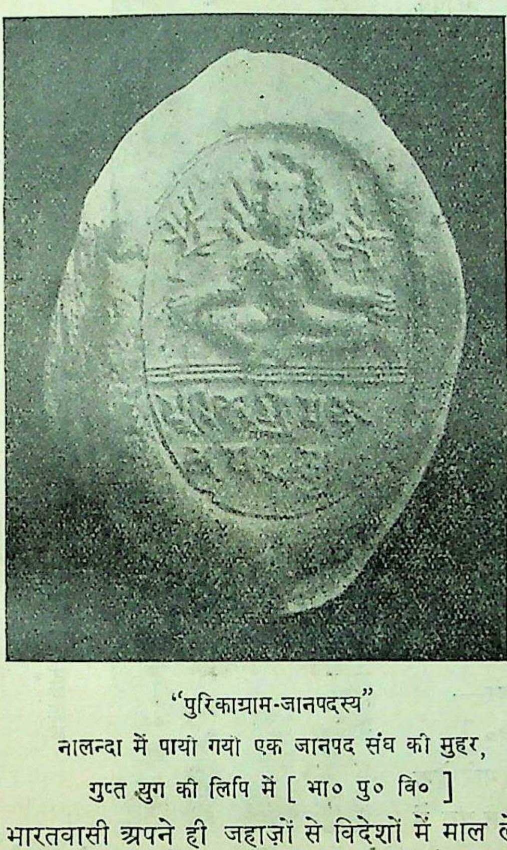

“पुरिकाग्राम-जानपदस्य”

नालन्दा में पायी गयी एक जानपद संघ की मुहर,

गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]

वाकाटकों और गुप्तों के समय में देश की समृद्धि और उसका व्यवसाय सातवाहन-युग से भी कहीं अधिक बढ़े हुए थे। विदेशी व्यापार खूब होता था। कुषाण-वंशजों के शासन में कश्मीर में तीसरी शती तक वहाँ के जगत्-प्रसिद्ध शालों का व्यवसाय स्थापित हो चुका था। २७४ ई० में सासानी राजा ने रोम-सम्राट् को एक कश्मीरी शाल भेंट किया, जिसकी नफ़ासत देख कर रोम के लोग दंग रह गये थे। होर्मिज़्द (२य) (३०१–३०६ ई०) के साथ काबुल की जिस राजकुमारी का विवाह हुआ, उसका सब दहेज भी कश्मीरी जुलाहों ने तैयार किया था। भारतवासी अपने ही जहाज़ों से विदेशों में माल ले जाते थे। इस ज़माने में नारद-स्मृति बनी। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति की अपेक्षा उसमें व्यापारिक कानून कहीं अधिक हैं।

§३. वाकाटक-गुप्त-युग का बृहत्तर भारत—वाकाटक और गुप्त युगों में भारतवर्ष कहने से उपनिवेशों-सहित भारतवर्ष ही समझा जाता था। वाकाटक और पल्लव राज्यों का सामुद्रिक उपनिवेशों से घनिष्ठ सम्बन्ध था। यह सम्बन्ध ठेठ

भारतवर्ष तथा उन उपनिवेशों की लिपियों तक का मिलान करने से देखा जा सकता है। वाकाटक युग में तत्कालीन बरमा-निवासी प्यू नामक किरात जाति की भाषा भारतीय अक्षरों में लिखी जाने लगी।

चीन-हिन्द में तुखार और ऋषिक लोग जो बोलियाँ बोलते थे, वे भी गुप्त ज़माने में लिखी जाने लगीं और सभ्य भाषाएँ बन गयीं। उनमें साहित्य पैदा हो गया, और अच्छे-अच्छे ग्रन्थ भी लिखे जाने लगे। पर वे लिखी गयीं हमारे देश की ही उस लिपि में जो यहाँ गुप्त-युग में चलती थी। उसका साहित्य भी प्रायः संस्कृत से अनुवादित था, या उसके नमूने पर बना था। उन भाषाओं को तुखारी और खोतनदेशी कहते हैं। तुखारी तारीम नदी के उत्तर तुरफ़ान, कूचा आदि बस्तियों की भाषा थी; खोतन-देशी उसके दक्खिन खोतन इलाके की।

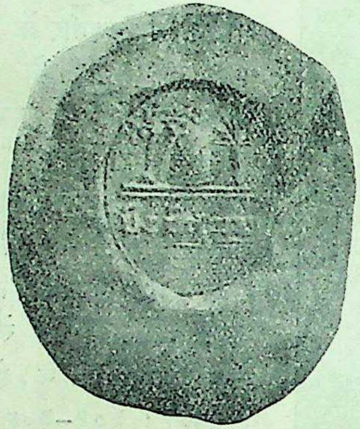

“पादयाग्-ग्रामस्य”

नालन्दा में पायी गयीं एक ग्राम की मुहर—
गुप्त युग की लिपि में [भा० पु० वि०]

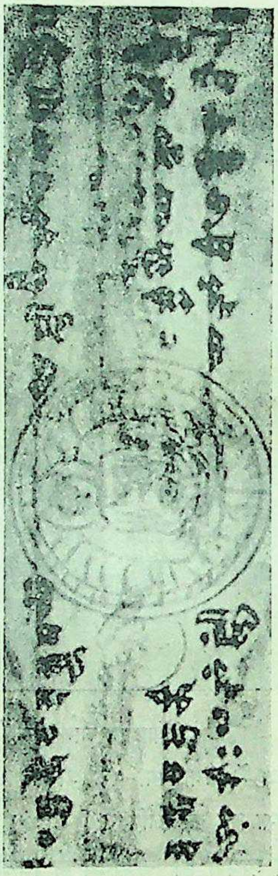

अश्वघोष-कृत वज्रच्छेदिका के खोतनदेशी अनुवाद की भोजपत्र पर लिखी पोथी का एक पृष्ठ। यह पोथी तुर्किस्तान से मिली है।

उधर परले हिन्द और हिन्दी द्वीपावली में भारतीय राज्य बोर्नियो द्वीप के पूरबी छोर तक पहुँच गये। पूरबी बोर्नियो में चौथी शती में राजा मूलवर्मा का

राज्य था, जिसके बनवाये हुए यज्ञों के यूप (खम्भे) और संस्कृत के लेख अब भी मौजूद हैं। जावा में उसी समय का राजा पूर्णवर्मा का लेख पाया गया है। चम्पा में ४०० ई० के करीब राजा भद्रवर्मा (१म) था; उसका बेटा गंगा की तीर्थ-यात्रा करने आया। अपने देश में लौटने पर वह गंग-राज कहलाया, और उसका वंश भी तब से गंगराज-वंश कहलाने लगा। 'फूनान' के साम्राज्य में चौथी शती के

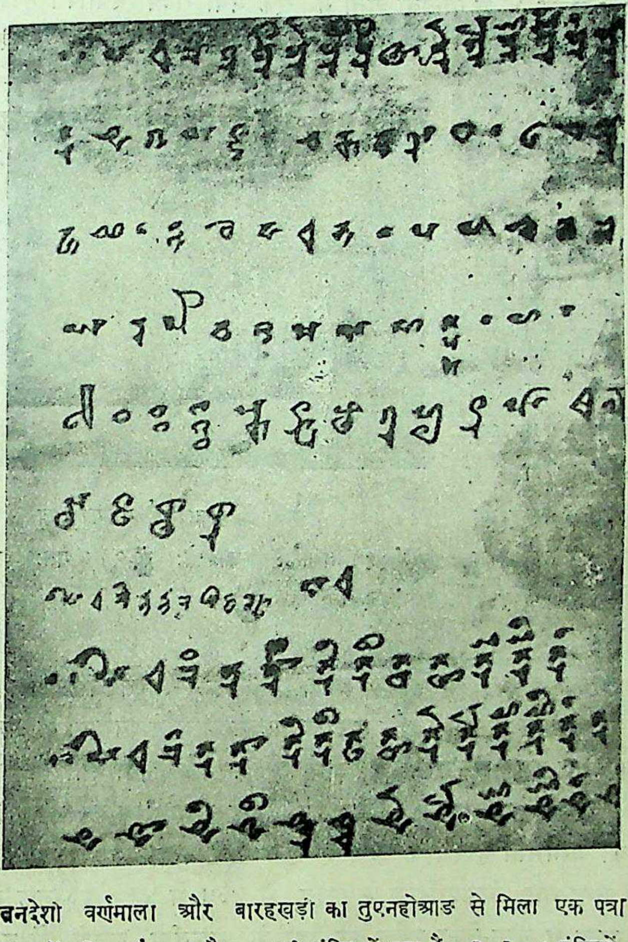

खोतनदेशी वर्णमाला और बारहखड़ी का तुएनहोआङ से मिला एक पत्रा। शुरू में 'सिद्धम्' शब्द है। पहली पंक्ति में स्वर हैं; २-३-४ पंक्तियों में व्यञ्जन, ५-६ में अंक, ८-९-१० में क की बारहखड़ी।

अन्त में दक्खिन भारतवर्ष से एक दूसरा कौंडिन्य गया, जिसने वहाँ भारत के नमूने पर धर्म और समाज-विषयक अनेक सुधार किये। सुवर्णद्वीप अथवा यवभूमि (=सुमात्रा-जावा) में पाँचवीं शती में एक नया राज्य स्थापित हुआ, जो शीघ्र एक साम्राज्य बन गया। उसकी राजधानी श्रीविजय (सुमात्रा में आजकल का पालेम्बांग) थी।

फ़न-ये नामक एक चीनी लेखक ने पाँचवीं शती के शुरू में लिखा है कि काबुल से शुरू कर दक्खिन-पच्छिम समुद्र-तट तक और वहाँ से पूरब तरफ़ आनाम तक सब देश शिन्-तु (सिन्धु=हिन्द) में शामिल हैं। शिन्-तु को चीनी लोग थियेन-चु (देवताओं का देश) भी कहते थे।

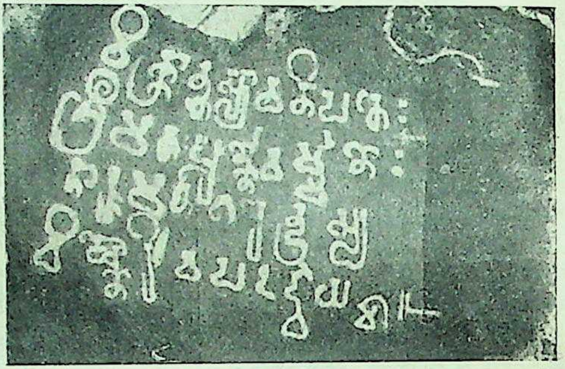

जावा के राजा पूर्णवर्मा का लेख

(पं० १) विक्रान्तस्यावनिपतेः (पं० २) श्रीमतः पूर्णवर्म्मणः (पं० ३) तारुमनगरेन्द्रस्य (पं० ४) विष्णोरिव पदद्वयम्।

§४. **फ़ा-हियेन, कुमारजीव और गुणवर्मा**—भारतवर्ष और बृहत्तर भारत की हालत उस समय कैसी थी और उनका आपस में और विदेशों से सम्बन्ध कैसा था, इसका पता हमें इस समय के तीन प्रसिद्ध विद्वान् यात्रियों के वृत्तान्तों से मिलता है। इनमें से एक फ़ा-हियेन था। वह बौद्ध धर्म की ऊँची शिक्षा पाने और बुद्ध की जन्मभूमि देखने के लिए ३९९ ई० में चीन से भारत के लिए रवाना हुआ और चन्द्र-गुप्त विक्रमादित्य के राज्य में ४०५ से ४११ ई० तक रहा। चीन के कानसू प्रान्त से चीन-हिन्द पहुँच कर वहाँ के भारतीय राज्यों में घूमता हुआ गान्धार हो कर वह मध्यदेश पहुँचा। वह लिखता है कि भारतवर्ष दुनिया भर से बढ़ कर सभ्य देश है; यहाँ पूरा रामराज्य है। प्रजा सभ्य, सम्पन्न और सदाचारी है। लोग नशा नहीं करते, अपराध बहुत कम होते हैं, अपराधों के दंड बहुत हलके हैं और मृत्यु-दंड किसी को नहीं दिया जाता। अपनी लम्बी यात्रा में

फ़ा-हियेन को कहीं चोर-डाकुओं से वास्ता नहीं पड़ा। एक बात और ध्यान देने की यह है कि फ़ा-हियेन के समय तक हिमालय की तराई की बस्तियाँ—कपिलवास्तु, कुशिनगर आदि—जिनमें बुद्ध के समय बड़ी चहल-पहल थी, सब जंगल हो चुकी थीं। वैसे बौद्ध धर्म और पौराणिक धर्म दोनों देश में बराबर-बराबर चल रहे थे। फ़ा-हियेन मगध से चम्पा (भागलपुर) हो कर ताम्रलिप्ति (तामलूक) पहुँचा। वहाँ जहाज़ में बैठ १४ दिन में सिंहल पहुँचा, फिर वहाँ से ९० दिन में यवद्वीप।

वेंगिपुर (कृष्णा के मुहाने) का चौथी शती ई० का एक लेख

(पूर्णवर्मा के लेख से लिपि की तुलना करने के लिए)

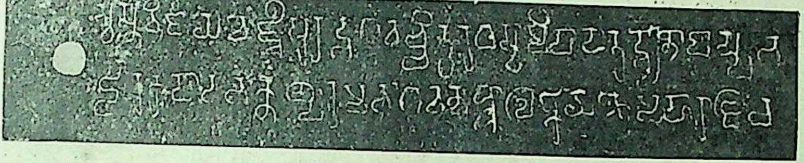

(पहला पत्रा; पं० १) स्वस्ति विजयवेङ्गीपुराद्भगवच्चित्ररथस्वामिपादानुद्ध्यातो भ-

(पं० २) ट्टारकपादभक्तः परमभागवतश्शालङ्कायनो महाराजा च-

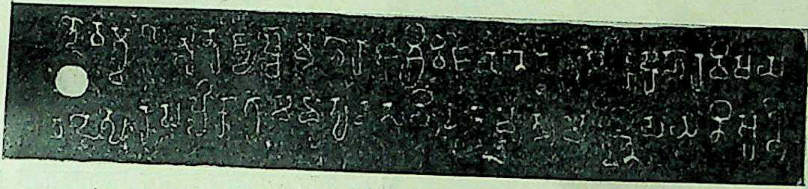

(दूसरा पत्रा, पं० १) एडवर्म्मणस्सूनुर्ज्येष्ठो महाराजश्री······इत्यादि।

यवद्वीप में तब तक बौद्ध धर्म का प्रचार न था। वहाँ से वह एक जहाज़ में, जिसमें २०० भारतीय व्यापारी भी थे, चीन वापिस गया।

फ़ा-हियेन जब भारत में बौद्ध शिक्षा पाने आया, तभी एक भारतीय विद्वान् चीन में वही शिक्षा देने गया था। उसका नाम था कुमारजीव। उसका पिता कुमारायण किसी भारतीय राज्य के एक अमात्य का बेटा था। घर छोड़ कर वह चीन-हिन्द में कूचा के राज्य में चला गया। वहाँ की राजकुमारी से उसका प्रेम और विवाह हो गया; वहीं कुमारजीव पैदा हुआ। बच्चे को पढ़ाने के लिए उसकी माँ उसे कश्मीर ले आयी, और जब वह पढ़ चुका तो वापिस ले गयी। वह मध्य एशिया की सब भाषाएँ सीख गया। ४०१ ई० में वह चीन पहुँचा और

४१३ ई० तक वहाँ उसने अश्वघोष, नागार्जुन आदि के अनेक ग्रन्थों का चीनी अनुवाद कर महायान का प्रचार किया। उसके ग्रन्थ आज तक चीन में उसी तरह पढ़े जाते हैं जैसे यहाँ कालिदास के।

तीसरे विद्वान् का नाम है गुणवर्मा। वह कश्मीर का युवराज था, पर बौद्ध भिक्षु बन गया था। पहले वह सिंहल गया, और वहाँ से ४२३ ई० में यवद्वीप पहुँचा। फ़ा-हियेन के जाने के १० बरस पीछे वहाँ उसने पहले-पहल बौद्ध धर्म का प्रचार किया। यवद्वीप से वह नन्दी नामक एक भारतीय के जहाज़ में चीन गया।

समुद्र-गुप्त के समय कोरिया में बौद्ध धर्म स्थापित हो गया (३५२ ई०)। उस देश की भाषा भी तब भारत की ब्राह्मी लिपि में लिखी गयी, और तब से आज तक वह समय के साथ बदलती हुई उसी लिपि में लिखी जा रही है। यशोधर्मा के समय निपन (जापान) देश भी बौद्ध हो गया (५३८ ई०); तब वहाँ होरिउजी और नारा के बौद्ध विहार स्थापित हुए, जिनमें तत्कालीन संस्कृत ग्रन्थ आज तक रक्खे हैं, और जिनकी भीतों पर लिखे चित्रों में स्पष्ट भारतीय प्रभाव झलकता है।

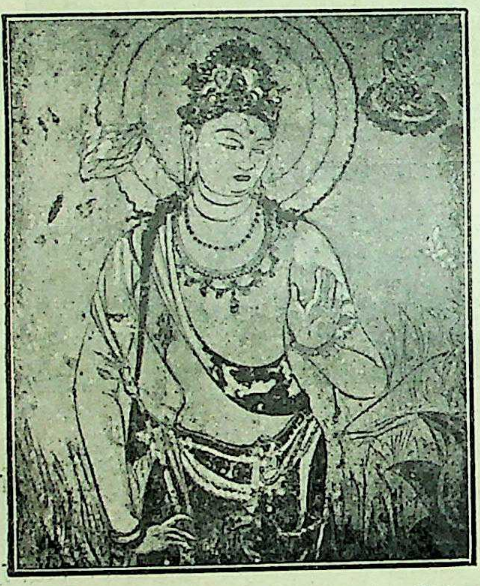

होरिउजी मठ की भीत पर एक बोधिसत्त्व-चित्र

[राहुल जी के सौजन्य से]

§५. नाग-वाकाटक-गुप्त-युग का धर्म, कला, साहित्य, ज्ञान और संस्कृति—चौथी शती ई० के अन्त में पेशावर में आसंग और वसुबन्धु नाम के दो भाई दार्शनिक हुए। वे दोनों महायान के आचार्य थे। पाँचवीं शती ई० के शुरू में मगध में बुद्धघोष ब्राह्मण हुआ, जिसने सिंहल जा कर पाली में त्रिपिटक की 'अत्थकथाएँ' (अर्थकथाएँ = भाष्य) लिखीं। कहते हैं वहाँ से वह परले हिन्द गया और वहीं उसका देहान्त हुआ। ४५३ ई० में काठियावाड़ की वलभी नगरी में जैन विद्वानों का एक संघ

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बैठा। उसमें जैनों के सब धर्म-ग्रन्थों का सम्पादन हुआ। उसी रूप में आज वे ग्रन्थ हमें मिलते हैं।

बौद्ध और जैन धर्म के साथ-साथ पौराणिक धर्म भी पूरे यौवन पर था। वह अब पूर्ण हो चुका था। विष्णु, स्कन्द, शिव, सूर्य और देवी की पूजा चल चुकी थी। विदेश-यात्रा, असवर्ण विवाह और मांस-भोजन का परित्याग अब तक न हुआ था। आजकल के हिन्दू धर्म की बाकी बहुत सी बातें चल पड़ी थीं।

"माँ"—मथुरा से पायी गयी एक मूर्त्ति, अन्दाज़न तीसरी शती ई० पूर्वार्ध (भारशिव-युग) की [मथुरा म्यू०, भा० पु० वि०]

सातवाहन जमाने में पहली शती ई० पू० के बाद का कोई पौराणिक मन्दिर नहीं पाया गया। पर इस ज़माने में मन्दिर खूब बनने लगे। ऊँचे नुकीले शिखर वाले वैष्णव मन्दिर बनाने की शैली इसी युग में अधिक चली। भारशिव युग में वैसे मन्दिर बहुत बनने लगे। उन मन्दिरों के शिखरों पर कमल का संकेत उदय होते सूर्य को अर्थात् नयी ज्योति और नये जीवन को सूचित करता है। वह नया जीवन नाग-वाकाटक-गुप्त-युग के भारत में चारों तरफ़ दिखायी देता था। आन्ध्र-देश में इक्ष्वाकु राजाओं के समय अमरावती स्तूप को और भूषित किया गया तथा नागार्जुनीकोंडा स्तूप की मूर्त्त चित्रों से अलंकृत वेदिका (जंगला) बनी। महाराष्ट्र की रमणीक अजन्ता पहाड़ी में, जिसमें पिछले मौर्यों और सातवाहनों के समय के दो-एक गुहामन्दिर थे, वाकाटक

राजाओं के समय वैसे अनेक नये और विशाल मन्दिर काटे गये। तभी काबुल के कुषाण-वंशी राज्य में बामियाँ के पहाड़ में बौद्ध गुफ़ाएँ बनीं।

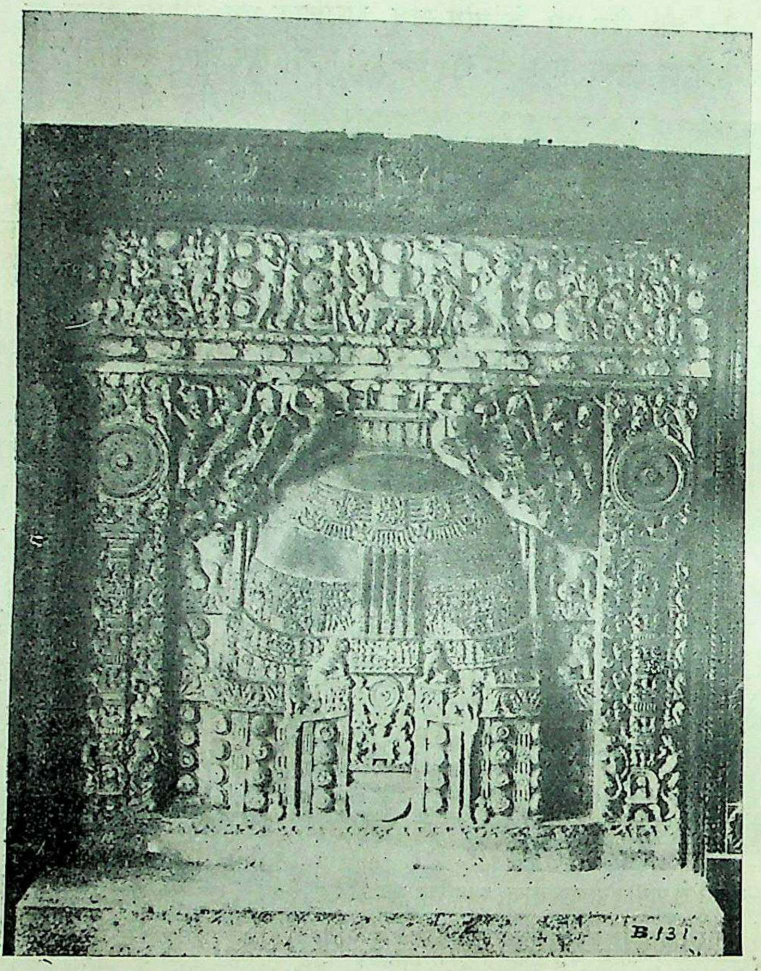

अमरावती-स्तूप पर चुनी गयी एक चोप पर का मूर्त्त दृश्य—सम्भवतः समूचा स्तूप इस में चित्रित है। [मद्रास म्यू०, भा० पु० वि०]

अजन्ता-गुहाओं की दीवारों पर गुप्त-युग में और बाद में चित्र भी लिखे गये, जिनमें से कुछ अब तक मौजूद हैं। अजन्ता-"लेणों" के ये चित्र प्राचीन जगत् की चित्रकला के सर्वोत्तम उदाहरणों में से हैं। इस युग की मूर्त्तिकला में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शृंगारहीन सीधापन है, और उसके साथ कमाल की सजीवता है। उदयगिरि की वराह-मूर्त्ति और भेलसा से पायी गयी गंगा-मूर्त्ति को देखते ही बनता है। उनके अंग-अंग से मानो बल, तेज और सौन्दर्य टपकता है।

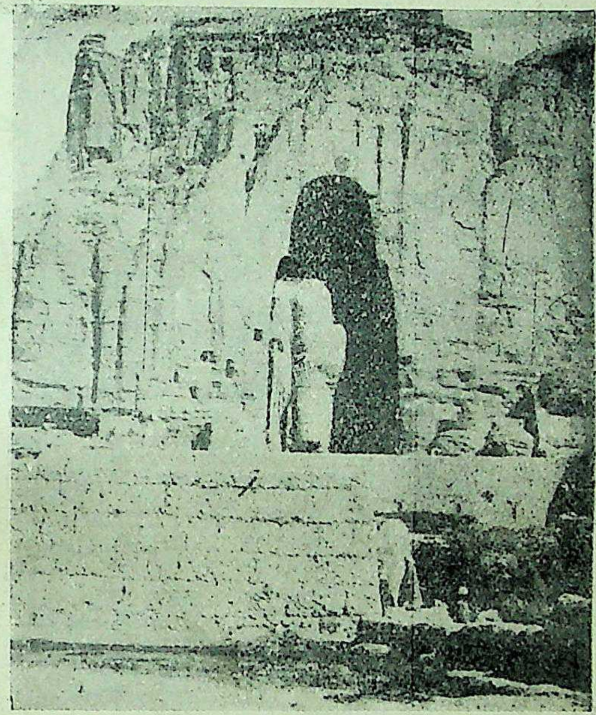

बामिया (अफ़गानिस्तान) की एक गुहा में ५३ मीटर ऊँची खंडित बुद्ध-मूर्त्ति
[फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

साहित्य और ज्ञान में इस युग में भारतवर्ष अपनी उन्नति की चरम सीमा तक पहुँच गया। दार्शनिक वसुबन्धु का उल्लेख हो चुका है। बाद के प्रसिद्ध दार्शनिक शंकराचार्य की विचार-पद्धति वसुबन्धु के दर्शन पर ही निर्भर है। पातंजल योगसूत्र का भाष्यकार व्यास और सांख्यतत्वकौमुदी का लेखक ईश्वरकृष्ण चौथी-पाँचवी शती ई० में हुए। बौद्ध तार्किक दिङ्नाग गुप्त-युग के अन्त में हुआ। सम्राट् कुमार-गुप्त ने राजगृह के पास नालन्दा महाविहार की नींव डाली। वह एक भारी विद्यापीठ बन गया, जहाँ बाद में देश-विदेश के अनेक विद्वान् शिक्षा पाने आते रहे।

प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट ४७६ ई० में पैदा हुआ। उसे यह मालूम था कि पृथिवी गोल है। गुरुताकर्षण और सूर्य के चौगिर्द पृथिवी के घूमने के सिद्धान्त उसने स्थापित किये। और अनेक बातों में भी भारतवर्ष का गणित और ज्योतिष गुप्त ज़माने में जिस सीमा तक पहुँच गया था, उस सीमा को आजकल के विद्वान् पिछली शती में ही लाँघ सके हैं।

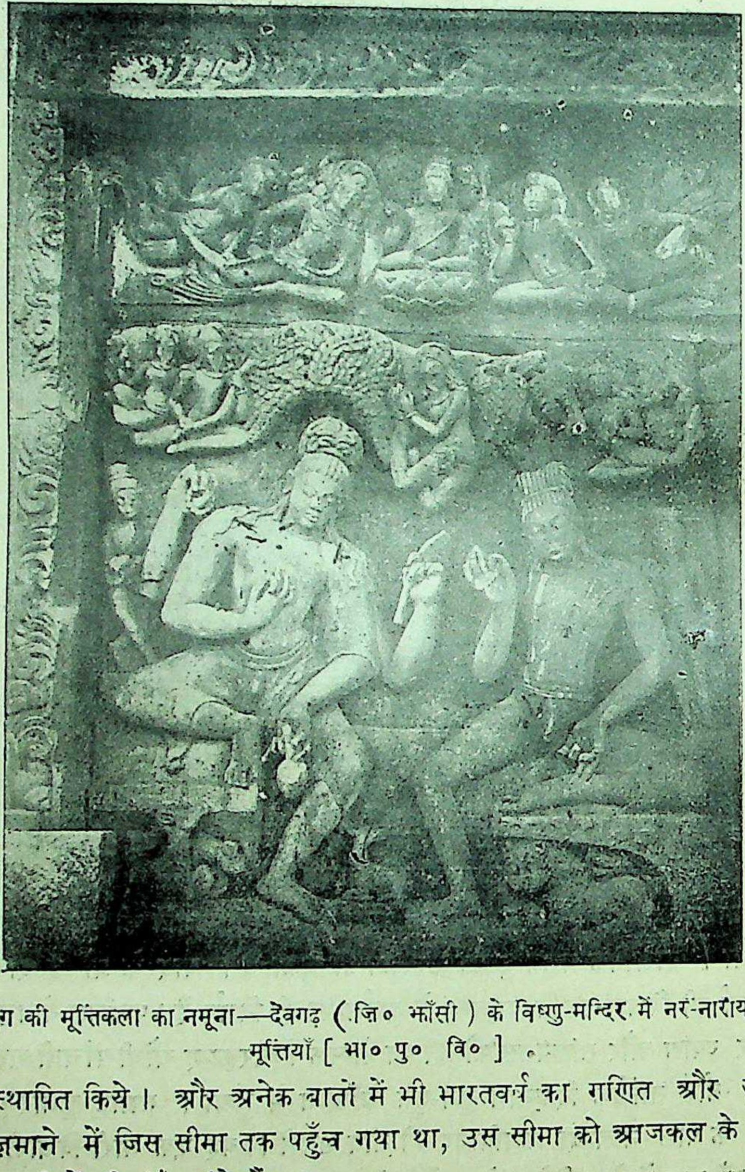

गुप्त-युग की मूर्त्तिकला का नमूना—देवगढ़ (ज़ि० झाँसी) के विष्णु-मन्दिर में नर-नारायण की मूर्त्तियाँ [भा० पु० वि०]

ज्ञान और सचाई को कहीं से भी ले लेने में उस युग के भारतवासी उत्सुक रहते थे। ज्योतिषी वराहमिहिर ने, जो छठी शती में हुआ, लिखा है, "यवन (यूनानी) लोग म्लेच्छ हैं, पर उनमें इस शास्त्र का ज्ञान है। इस कारण वे ऋषियों की तरह पूजे जाते हैं।" गुप्त युग में भारतीय ज्योतिष में रोम और अलक्सान्दरिया के सिद्धान्त भी शामिल कर लिये गये थे। दशगुणोत्तर गिनती पहले-पहल चौथी शती ई० में भारतीयों ने ही निकाली, फिर यहाँ से उसे दुनिया के सब देशों ने सीखा। गिनती पहले भी थी, परन्तु जिस प्रकार नौ इकाइयों के निशान हैं, उसी तरह दस, बीस, तीस आदि दहाइयों के अलग निशान होते थे, फिर सैकड़ों के अलग, इत्यादि। इकाई के आगे शून्य लगा कर दहाई बना ली जाय, यह आविष्कार पहले-पहल चौथी शती में यहीं हुआ। युरोप वालों ने यह तरीका १३वीं-१४ वीं शती में जा कर सीखा।

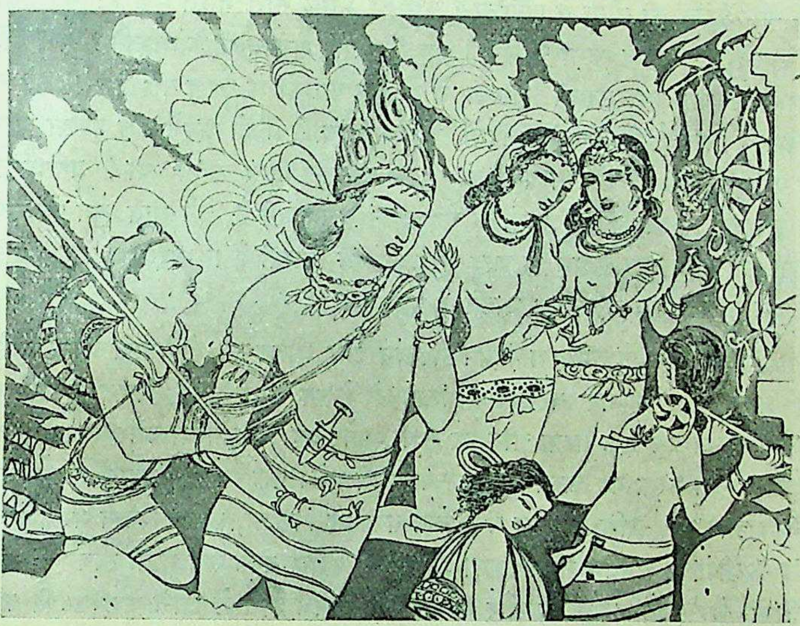

दिव्य गायक—किन्नर-किन्नरी

अजन्ता लेण नं० १७ का चित्र;—इस लेण के चित्र लगभग ५०० ई० के हैं।

इस युग के काव्य-साहित्य में विष्णुशर्मा का पंचतन्त्र एक अमर रत्न है, जिसका संसार की बीसियों भाषाओं में अनुवाद हुआ है। गुप्त युग का सबसे प्रसिद्ध पुरुष महाकवि कालिदास है। कालिदास के काव्यों तथा नाटकों में भारत की आत्मा जिस तरह प्रकट हुई है, वैसी आज तक और किसी रचना में शायद नहीं हुई। रघु के दिग्विजय की कहानी द्वारा उसने बतलाया कि कम्बोज से कन्या कुमारी तक और ईरान की सीमा से लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक सारा भारत एक है; वह एक ही राज-छत्र के नीचे रहना चाहिए। दुष्यन्त और शकुन्तला के प्राकृतिक प्रेम की कहानी लिख कर उसकी लेखनी ने प्राचीन आर्यों के सरल साहसी और रसमय जीवन के आदर्श को अमर कर दिया, और भारतवासियों को अपने उस पुरखा भरत की याद दिलायी जो बचपन के खेलों में शेर के दाँत गिना करता था! प्रातःकाल की उषा की सूचना जैसे चिड़ियों के चहचहाने से मिलती है, वैसे गुप्त युग की नयी ज्योति की सूचना कालिदास के जादू-भरे छन्दों से मिलती है। भारतवर्ष की संस्कृति का पूरा निचोड़ हम उसकी रचनाओं में पाते हैं।

कालिदास के समय भारतवर्ष में ज्ञान और जीवन की जो ज्योति प्रकट हुई, वह प्रायः एक हजार बरस तक संसार को रोशन करती रही। भारतवर्ष की इस जागृति का प्रभाव एक तरफ़ चीन पर हुआ, और वहाँ से कोरिया और जापान तक पहुँचा; दूसरी तरफ़ वह अरब के रास्ते पच्छिमी युरोप तक गया। उत्तर तरफ़ वह तिब्बत और मध्य-एशिया द्वारा मंगोलिया तक जा निकला, और दक्खिन तरफ़ परले हिन्द के द्वीपों की अन्तिम सीमा तक। प्रायः एक हज़ार बरस तक न तो स्वयम् भारतवासियों ने (सिवा वैद्यक और गणित के) अपने ज्ञान में आगे कुछ उन्नति की, और न बाकी दुनिया का ज्ञान—दो-चार बातों को छोड़ कर—उससे कुछ आगे बढ़ा। इस लम्बे अरसे में वही संसार भर का ज्ञान रहा और जिस देश में वह पहुँचा वहीं नव जागृति की लहर उठ खड़ी हुई।

वाकाटक-गुप्त-युग के भारतीयों का साधारण जीवन भी पहले से परिष्कृत हो गया। गोहत्या को इसी युग से पाप माना जाने लगा। उस युग के संसार में चार ही सभ्य साम्राज्य और जातियाँ थीं—चीनी, भारतीय, ईरानी और रोमन। उपनिवेश-सहित गुप्त युग का भारतवर्ष बाकी तीनों जातियों के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत और समृद्ध था, और उस युग में भारतवासी वस्तुतः सभ्य संसार के नेता थे। अपने इस गौरव को तब वे अवश्य अनुभव करते होंगे।

सातवाँ प्रकरण

कन्नौज और कर्णाटक के साम्राज्य

(५४०-११९० ई०)

अध्याय १

पिछले गुप्त, मौखरि, वैस और चालुक्य राज्य

(लगभग ५४०-६९६ ई०)

§१ पिछले गुप्त और मौखरि (लगभग ५४०-५९२ ई०)—यशोधर्मा ने अपना कोई राजवंश स्थापित न किया था। उसके बाद गुप्त साम्राज्य पुनर्जीवित हुआ। सन् ५४४ में ही पुण्ड्रवर्धनभुक्ति (उत्तरी बंगाल) के एक लेख में 'महाराजाधिराज······गुप्त' का उल्लेख है। महाराजाधिराज का नाम उस लेख से मिट गया है। सम्भवतः भानु-गुप्त बालादित्य का बेटा प्रकटादित्य अब से प्रायः आधी शती तक उत्तर भारत का सम्राट् रहा। लेकिन वह नाम का सम्राट् था, क्योंकि अब विभिन्न प्रान्तों में अनेक नयी शक्तियाँ उठ खड़ी हुईं।

छठी शती के शुरू में गुप्त सम्राटों के वंश से एक शाखा निकली, जिसके राजाओं ने अगली दो शतियों के इतिहास में विशेष भाग लिया। प्रकटादित्य के समय भी वास्तविक शासक इसी शाखा के राजा थे। इन राजाओं को 'पिछले गुप्त' कहते हैं। इनका दावा समूचे गुप्त साम्राज्य पर था, लेकिन इनका वास्तविक अधिकार केवल मगध-बंगाल पर या कुछ समय के लिए मालवे पर रहा। इन गुप्तों के मुकाबले में अन्तर्वेद के ठीक बीच दक्खिन पञ्चाल की राजधानी कन्नौज में मौखरि नाम का एक नया राजवंश उठ खड़ा हुआ। मौखरि लोग पहले-पहल हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुए। सम्भवतः वे यशोधर्मा की सेना की हरावल में रहे थे। पञ्चाल की तरह कुरु देश का वैस वंश भी हूणों के युद्धों में प्रसिद्ध हुआ, और अब राजवंश बन गया। इसकी राजधानी थानेसर थी।

छठी शती में उत्तर भारत में गुर्जर जाति एकाएक प्रबल हो उठी। पंजाब में गुजरात और गुजरांवाला ज़िले उसके राज्य की याद दिलाते हैं। दक्खिनी मार-

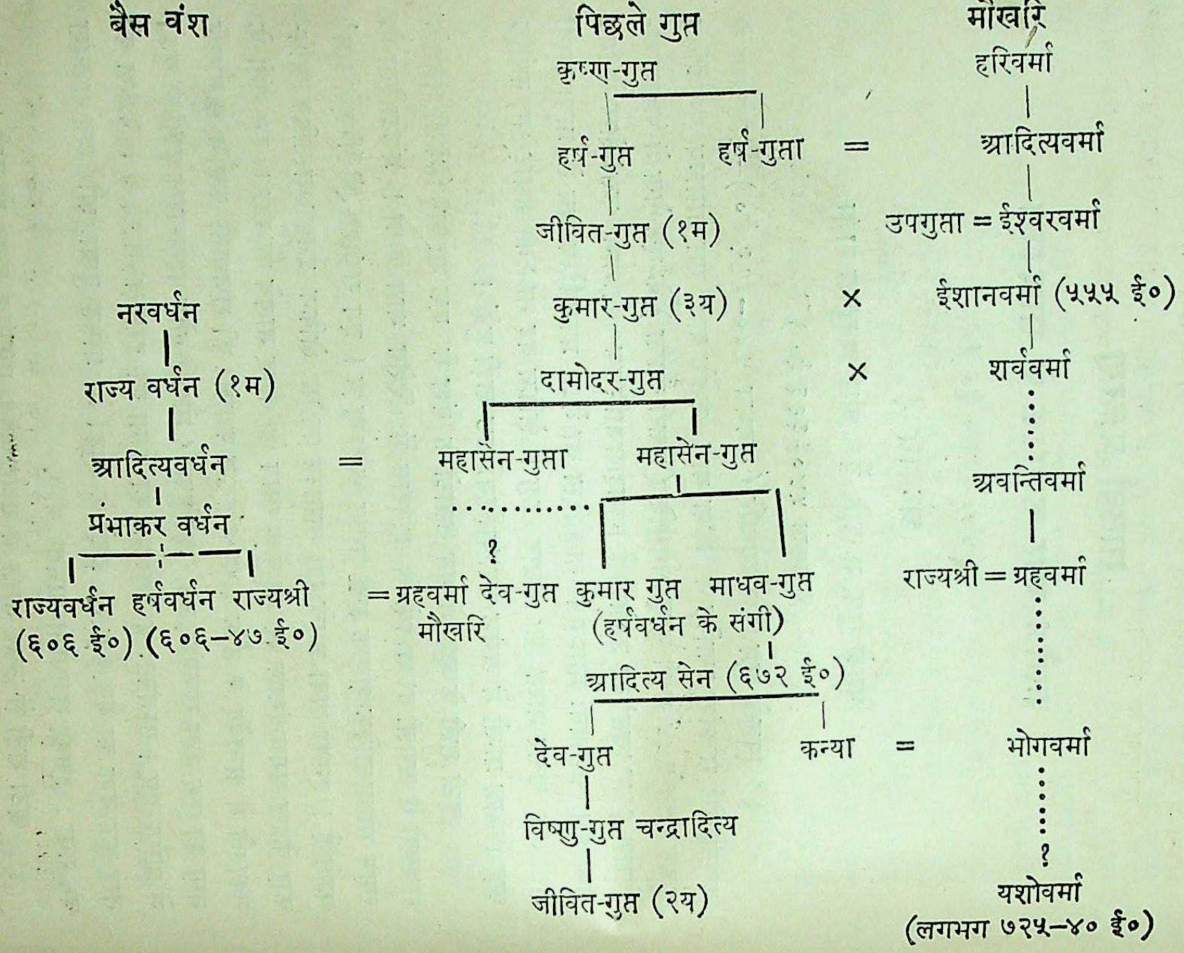
बैस वंश
नरवर्धन
राज्य वर्धन (१म)
आदित्यवर्धन
प्रभाकर वर्धन
राज्यवर्धन
(६०६ ई०)
हर्षवर्धन
(६०६–४७ ई०)
राज्यश्री
=ग्रहवर्मा मौखरि
पिछले गुप्त
कृष्ण-गुप्त
हर्ष-गुप्त
हर्ष-गुप्ता
जीवित-गुप्त (१म)
कुमार-गुप्त (३य)
दामोदर-गुप्त
महासेन-गुप्ता
महासेन-गुप्त
?
देव-गुप्त
कुमार गुप्त
माधव-गुप्त
(हर्षवर्धन के संगी)
आदित्य सेन (६७२ ई०)
देव-गुप्त
कन्या
विष्णु-गुप्त चन्द्रादित्य
जीवित-गुप्त (२य)
मौखरि
हरिवर्मा
आदित्यवर्मा
उपगुप्ता = ईश्वरवर्मा
ईशानवर्मा (५५५ ई०)
शर्ववर्मा
अवन्तिवर्मा
राज्यश्री = ग्रहवर्मा
भोगवर्मा
?
यशोवर्मा
(लगभग ७२५–४० ई०)
=
×
×
=
=

चाड़ में उनकी एक बड़ी राजधानी भिन्नमाल थी। उनका एक और छोटा सा राज्य भरुच में भी था। उनके नाम से इस देश का नाम भी गुर्जरत्रा (गुजरात) पड़ गया। गुर्जरत्रा में तब मारवाड़ की भी गिनती थी। सुभीते के लिए, हम पिछले इतिहास में भी इसे गुजरात कहते रहे हैं। असल में वह नाम इसी युग से शुरू हुआ।

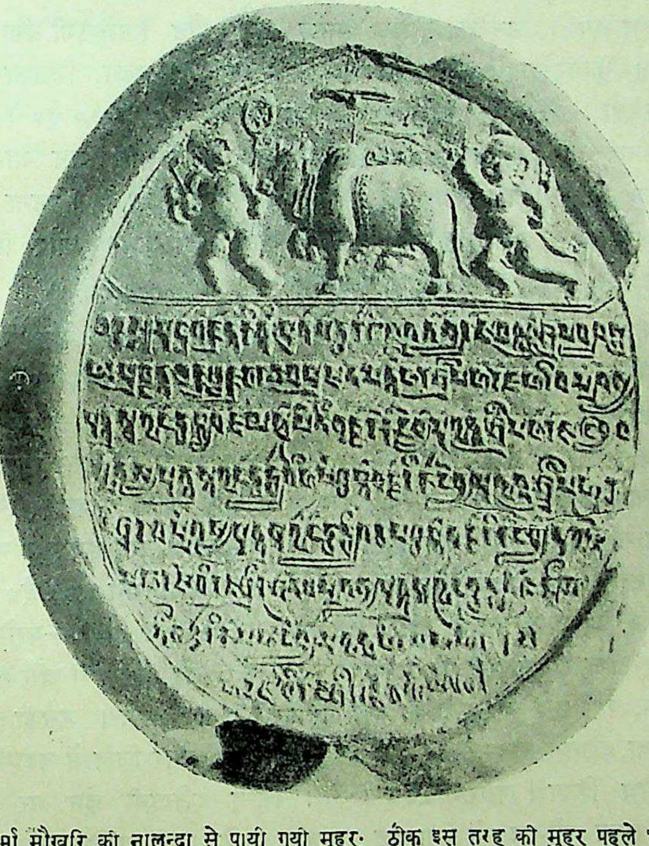

शर्ववर्मा मौखरि की नालन्दा से पायी गयी मुहर; ठीक इस तरह की मुहर पहले असीरगढ़ (खानदेश) से भी पायी गयी थी। [भा० पु० वि०]

सुराष्ट्र (काठियावाड़) में छठी शती के आरम्भ में मैत्रक वंश का भटार्क नामक एक सेनापति था। उसके बेटे द्रोणसिंह का 'समूची पृथ्वी के एक स्वामी'

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अर्थात् गुप्त सम्राट् ने स्वयम् राज्याभिषेक किया। मैत्रकों का राजवंश तब से वलभी नगरी (भावनगर के पास) में स्थापित हो गया।

पूरबी सीमा पर कामरूप का राज्य समुद्रगुप्त के समय से गुप्त साम्राज्य के अधीन था। उससे भी हमें इस युग के इतिहास में वास्ता पड़ेगा। इन राज्यों के वंश-वृक्ष सामने रखने से इनका इतिहास समझना सुगम होगा।

ईश्वरवर्मा और ईशानवर्मा के समय भारत का साम्राज्य मौखरि वंश के हाथ में चला गया। उन्होंने सुराष्ट्र, आन्ध्र और गौड (पच्छिमी बंगाल) तक विजय की। कुमार-गुप्त (३य) के साथ ईशान का युद्ध हुआ, जिसका परिणाम अनिश्चित रहा। ईशान के बेटे शर्व के समय (लगभग ५५६–७० ई०) में मौखरियों का प्रताप और भी बढ़ा। शर्व से लड़ता हुआ दामोदर-गुप्त मारा गया। मौखरियों के प्रताप से अब कन्नौज की वही हैसियत हो गयी जो पहले पटना की थी। अगले छः सौ बरस तक वह उत्तर भारत का केन्द्र माना और हिन्दुस्तान कहने से कन्नौज का ही साम्राज्य समझा जाता था।

मगध में भी मौखरि वंश की एक शाखा स्थापित हो गयी; गुप्त "महाराजाधिराज" का अधिकार तब केवल बंगाल में ही रह गया होगा। उसके पड़ोसी कामरूप के राजा सुस्थितवर्मा ने भी 'महाराजाधिराज' पद धारण कर स्वतन्त्र होना चाहा। तब महासेन-गुप्त ने लौहित्य (ब्रह्मपुत्र) तक चढ़ाई कर उसे हराया। शर्ववर्मा के उत्तराधिकारी अवन्तिवर्मा के समय में मौखरि साम्राज्य शायद किसी तरह कमज़ोर हो गया, और ऐसा जान पड़ता है कि उससे लाभ उठा कर गुप्त महाराजाधिराज ने महासेन-गुप्त को मालवे का राज्य सौंप दिया (लगभग ५८५ ई०)।

§ २. चालुक्य और पल्लव (लगभग ५५०–६०८ ई०)—यशोधर्मा के बाद दक्खिन का राजनीतिक नक्शा भी पलट गया। जहाँ कादम्बों और वाकाटकों के राज्य थे, वहाँ अब चालुक्यों का एक राज्य उठ खड़ा हुआ। उसका संस्थापक पुलकेशी था, जिसने कादम्बों से वातापी नगरी (बीजापुर ज़िले में बदामी) छीन कर अश्वमेध किया (लगभग ५५० ई०)। किन्तु दक्खिनी छोर पर काञ्ची के पल्लवों का राज्य ज्यों का त्यों बना रहा, प्रत्युत पहले से भी अधिक चमक उठा। पल्लव राजा सिंहविष्णु ने सिंहल को भी जीता (लगभग ५९० ई०)।

§ ३. कुरुक्षेत्र का प्रभाकरवर्धन (लगभग ५९०–६०५ ई०)—थानेसर का प्रभाकरवर्धन शायद महासेन-गुप्त का भानजा था। उसने उत्तरापथ की तरफ़

अपनी शक्ति बढ़ायी। पहले उसने कश्मीर या तुखारिस्तान से हूणों को खदेड़ा; फिर सिन्ध, गुर्जर (पंजाब, मारवाड़) और गान्धार के राजाओं पर काबू किया। तब वह दक्खिन की ओर झुका और लाट देश (दक्खिनी गुजरात=भरुच-सूरत) पर चढ़ाई कर मालवा के राज्य को जीता। मालवा के राजा (महासेन-गुप्त ?) ने अपने दो बेटे कुमार-गुप्त और माधव-गुप्त उसे सौंपे।

प्रभाकरवर्धन की तीन सन्तानें हुईं—राज्यवर्धन, हर्षवर्धन तथा राज्यश्री। कुमारगुप्त और माधवगुप्त बचपन से राज्यवर्धन और हर्षवर्धन के अनुचर रहे थे। जवान होने पर राज्यश्री मौखरि राजा अवन्तिवर्मा के बेटे ग्रहवर्मा को ब्याही गयी। प्रभाकरवर्धन ने राज्यवर्धन को "हूणों को मारने के लिए उत्तरापथ में भेजा।" हर्ष भी उसके पीछे-पीछे जंगल में शिकार के लिए गया। वहाँ कश्मीर के पहाड़ों की तराई में उसे पिता की बीमारी की खबर मिली। उसके लौट आने पर प्रभाकर ने प्राण छोड़ दिये (६०५ ई०)। राज्यवर्धन भी यह खबर पा कर वापिस आया।

§४. रानी राज्यश्री—इधर प्रभाकर को मरा सुन मालवे के राजा (महासेन के बेटे देवगुप्त ?) ने कन्नौज पर चढ़ाई की, और ग्रहवर्मा को मार कर राज्यश्री को कन्नौज के कैदखाने में डाल दिया। पूरबी भारत में इस समय शशांक नाम का एक नया राजा था। वह शायद महासेन-गुप्त के मालवा चले आने और सम्राट् प्रकटादित्य की मृत्यु के बाद बंगाल-बिहार-उड़ीसा का राजा बन खड़ा हुआ था। मालवे का राजा उसे साथ ले थानेसर पर चढ़ाई की तैयारी करने लगा। खबर पाते ही दस हज़ार सवारों के साथ राज्यवर्धन उसके मुकाबले को बढ़ा। 'मालवे की सेना को खेल ही खेल में जीत कर' वह शशांक की तरफ़ मुड़ा। गौड के राजा ने उससे मैत्री प्रकट की और उसे छल से कतल कर डाला। शशांक अपने एक और कारनामे के लिए भी प्रसिद्ध है। उसने बौद्धों पर बहुत अत्याचार किये, और बोधिवृक्ष को उखड़वा कर जलवा दिया।

नौजवान हर्ष अपने इस शत्रु के मुकाबले को तेज़ी से बढ़ा। एक ही पड़ाव आगे पहुँचने पर प्राग्ज्योतिष (आसाम) के राजा भास्करवर्मा के दूत उसे मैत्री का सन्देश लिये मिले। कन्नौज के करीब पहुँचने पर हर्ष को मालवे के कैदियों को लिये हुए सेनापति भण्डि मिला। वहीं उसने यह सुना कि पिछली गड़बड़ में राज्यश्री कैद से छुट कर निराश दशा में विन्ध्य के जंगल में कहीं चली गयी है। भण्डि को गौड की तरफ़ रवाना कर, हर्ष बहन की खोज में निकला। विन्ध्याचल के जंगलों में

शबर जवानों की सहायता से खोजते हुए उसने उसे ठीक उस समय पाया जब वह सती होने की तैयारी कर रही थी। भाई के मिलने पर उसने वह इरादा छोड़ दिया, पर फिर भी भिक्षुणी होना चाहा। अन्त में उसने स्वीकार किया कि जब तक हर्ष अपने शत्रुओं से बदला न चुका ले, तब तक वे दोनों अपनी राजकीय ज़िम्मेदारी निबाहेंगे।

यह वृत्तान्त हमें बिहारी कवि बाण भट्ट के हर्षचरित नामक ग्रन्थ से मिलता है। बाण कवि हर्ष की सभा में था।

§५. हर्षवर्धन—६३० ई० में युवान च्वाङ नाम का एक चीनी यात्री चीन-हिन्द और अफ़गानिस्तान के रास्ते हो कर भारत आया, और ६४३ ई० में उसी रास्ते से वापिस गया। वह हर्ष के साथ भी कुछ समय रहा। यहाँ वह देश के एक छोर से दूसरे छोर तक घूमा और उसने अपने भ्रमण का वृत्तान्त भी लिखा। उस वृत्तान्त से भी हर्ष के समय की बहुत सी बातें मालूम होती हैं।

राज्यश्री ने वापिस आ कर कन्नौज का राज्य सँभाला, और हर्ष अपनी बहन का प्रतिनिधि हो कर राजा शीलादित्य नाम से उसकी देख-रेख करने लगा। इस प्रकार अब कुरु और पंचाल दोनों राज्यों की शक्ति हर्ष के हाथ में आ गयी। उन दोनों की सेनाएँ तैयार कर वह भारत-दिग्विजय को निकला। छः बरस तक वह पूरब से पच्छिम तक सब प्रदेशों को जीतता रहा। उसके हाथियों के हौदे और सिपाहियों की वर्दियाँ बराबर कसी रहीं। कामरूप के "भास्करवर्मा का उसने स्वयम् अभिषेक कराया, सिन्धुराज को कुचल कर उसका राज्य छीन लिया और तुखार पहाड़ों के दुर्गों से कर वसूल किया।" शशांक ने शायद उसके आगे झुक कर अपने को बचा लिया। वलभी का राजा ध्रुवसेन हर्ष से हार कर भरुच के गुर्जर राजा के पास भाग गया। पीछे हर्ष ने उसे अपना सामन्त बना कर अपनी इकलौती बेटी ब्याह दी। किन्तु महाराष्ट्र के राजा पुलकेशी (२य) पर जब हर्ष ने चढ़ाई की तो वह नर्मदा के घाटों पर अपनी सेना को इस प्रकार से सजग और तैनात रक्खे हुए था कि अपने साम्राज्य की सारी शक्ति लगा कर भी हर्ष उसे न लाँघ सका। गंगा और गोदावरी के काँठों के वे सम्राट् एक दूसरे के ठीक मुकाबले के थे और दोनों ने नर्मदा नदी को तब से अपनी सीमा मान लिया। हर्ष की अन्तिम चढ़ाई ६४३ ई० में उड़ीसा तट के दक्खिन गंजाम प्रदेश पर हुई।

हर्ष जैसा विजेता था वैसा ही योग्य और न्यायी शासक भी था। बरसात के सिवाय वह सदा अपने राज्य में दौरे करता, और फूस के खेमों में ही पड़ाव

किया करता था। राज्य-कार्य के पीछे वह अपनी भूख और नींद को भूल जाता था। उसका नाम शीलादित्य भी सार्थक था, क्योंकि वह शील और सच्चरित्रता की मूर्त्ति था। उसने एक-पत्नीव्रत धारण किया और आजन्म उसे निबाहा। प्रजा उसके राज्य में सुखी थी। तो भी अब गुप्तों के समय की सी पूरी शान्ति न थी और दंड भी तब से कुछ अधिक कठोर थे। ६०६ ई० में हर्ष ने अपने अभिषेक का सम्वत् चलाया। ६४७ ई० में उसकी मृत्यु हुई।

हर्ष के राज्यकाल में भिन्नमाल और पंजाब के गुर्जर राज्यों का अन्त हुआ। मध्य पंजाब में तब टक्क (टांक) जाति का राज्य स्थापित हुआ, जिसके कारण सातवीं शती में वह टक्कदेश कहलाने लगा। शाकल उसकी राजधानी थी और मुलतान भी उसके अधीन था। उसके दक्खिन, सिन्ध में एक अलग स्वतन्त्र राज्य था, जिसका मकरान तक अधिकार था। भरुच का छोटा गुर्जर राज्य आठवीं शती के शुरू तक बना रहा।

§६. **पुलकेशी और विक्रमादित्य चालुक्य; पल्लव महेन्द्रवर्मा और नरसिंहवर्मा**—हर्ष का समकालीन सत्याश्रय पुलकेशी (लगभग ६०८-६४२ ई०) भी उसी की तरह प्रसिद्ध है। उसने गुजरात, कोशल (छत्तीसगढ़) और आन्ध्र को जीत कर पच्छिमी से पूरबी समुद्र तक अपना राज्य फैलाया। आन्ध्र-देश का राज्य उसने अपने भाई कुब्ज विष्णुवर्धन को दिया, जिसके वंशज पीछे पूरबी चालुक्य कहलाये। गोदावरी और कृष्णा के मुहानों के बीच वेंगि राजधानी में उन्होंने लगातार ४½ शतियों तक राज्य किया। पुलकेशी ने पल्लव सिंहविष्णु के बेटे

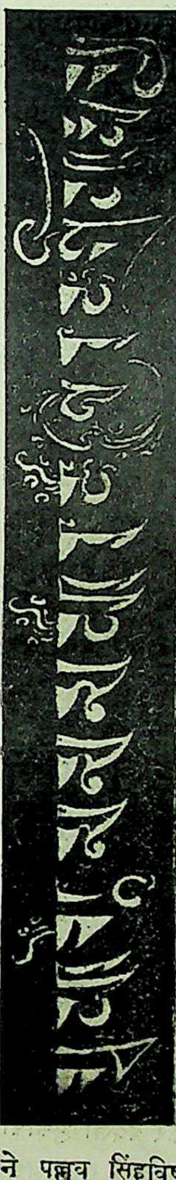

'स्वहस्तो मम महाराजाधिराजश्रीहर्षस्य"—हर्षवर्धन के हस्ताक्षर बांसखेड़ा ताम्रपत्र पर से (लखनऊ म्यू०)

महेन्द्रवर्मा को हरा कर कावेरी पर अपनी धाक जमायी। वह सामुद्रिक शक्ति में भी प्रबल था। ईरान के राजा ख़ुसरो (२य) ने ६२५-२६ ई० में उसके दरबार में अपनी एलची भेजे। बदले में महाराष्ट्र राजा के दूत भी ईरान गये।

पुलकेशी के अन्तिम समय महेन्द्रवर्मा के बेटे नरसिंहवर्मा पल्लव ने वातापी पर चढ़ाई की, और उसे हरा कर अपने बाप की हार का बदला चुकाया (अन्दाज़न ६४२ ई०)।

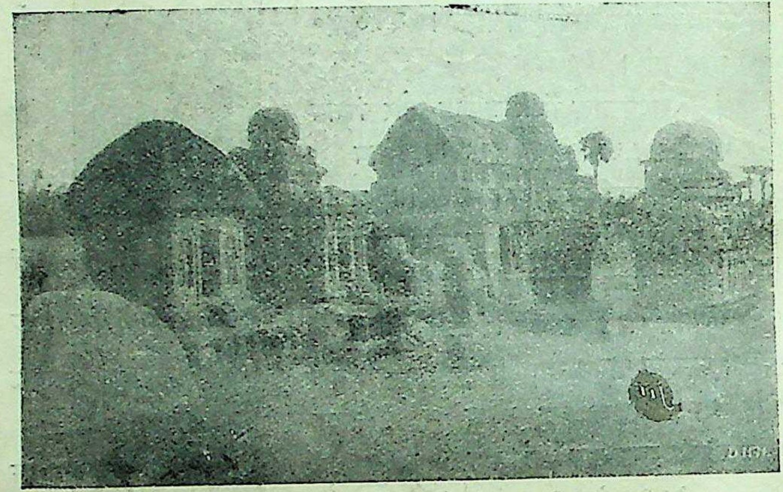

पञ्च-पाण्डव रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

महेन्द्रवर्मा (१म) (६१८ ई०) और नरसिंहवर्मा (६४६ ई०) दोनों शक्तिशाली राजा थे। पुद्दुकोटै राज्य में सित्तनवासल नामक स्थान की गुफाएँ जिनकी दीवारों पर अजन्ता की गुफाओं की तरह सुन्दर चित्र अंकित हैं, इन्हीं राजाओं की कटवायी हुई हैं। कांची के सामने समुद्रतट पर मामल्लपुरम् के एक-एक चट्टान में से काटे हुए विशाल मन्दिर भी, जिन्हें 'रथ' कहते हैं, और जो संसार की अद्भुत चीज़ों में गिने जाते हैं, इन्हीं राजाओं के बनवाये हुए हैं। पुलकेशी के बेटे विक्रमादित्य (१म) ने नरसिंहवर्मा के पोते के समय कांची को फिर जीत कर बदला चुकाया। चालुक्यों और पल्लवों की यह उठापटक अगले सौ बरस तक इसी तरह चलती रही।

§७. आदित्यसेन और विनयादित्य (लगभग ६७०-६९६ ई०)—हर्षवर्धन के कोई पुत्र न था। उसके पीछे माधव-गुप्त के बेटे आदित्यसेन ने मगध में स्थापित हो फिर अपने को समूचे उत्तर भारत का सम्राट् बना लिया। उसने दक्खिन पर भी चढ़ाई की, और पूरबी तट के साथ-साथ वह चोल देश तक पहुँच गया। किन्तु यह पुनर्जीवित गुप्त साम्राज्य चिरस्थायी न हुआ। विक्रमादित्य (१म) चालुक्य के बेटे विनयादित्य (६८०-६९६ ई०) ने एक तरफ़ सिंहल तक जीता और दूसरी तरफ़ "समूचे उत्तर भारत के स्वामी" को हरा कर उससे उसका साम्राज्य-चिन्ह—गंगा-यमुना के चित्रों से अंकित झंडा—

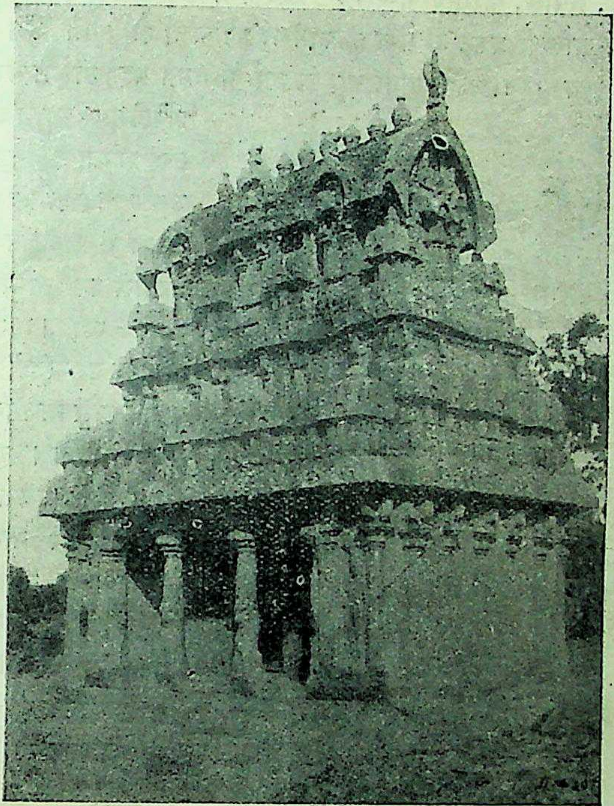

गणेश रथ, मामल्लपुरम् [भा० पु० वि०]

छीन लिया। यह 'समूचे उत्तर भारत का स्वामी' सम्भवतः आदित्यसेन का बेटा देवगुप्त था।

§८. नेपाल, कश्मीर के राज्य—उत्तरी सीमान्तों पर भी छठी शती के मध्य से कई नयी शक्तियाँ प्रकट हो गयीं। कामरूप की चर्चा हो चुकी है। नेपाल में लिच्छवियों का राज चला आता था, पर हर्ष के समय वहाँ ठाकुरी वंश का राजा अंशुवर्मा हुआ, जिसने हर्ष की तरह अपना सम्वत् भी चलाया। उसके बाद अनेक शतियों तक नेपाल में लिच्छवि और ठाकुरी सरदारों का सम्मिलित द्विराज जारी रहा। उत्तरपच्छिमी सीमान्त पर हूणों की सत्ता को कन्नौज और थानेसर के राजाओं ने मिटा दिया। युआन-च्वाङ जब उधर से गुजरा तब काबुल और पच्छिमी गान्धार में एक क्षत्रिय राजा राज्य करता था, और कश्मीर में दुर्लभवर्धन ने कर्कोट राजवंश की स्थापना की थी, जिसकी राज्य-सीमा नमक-पहाड़ियों तक थी।

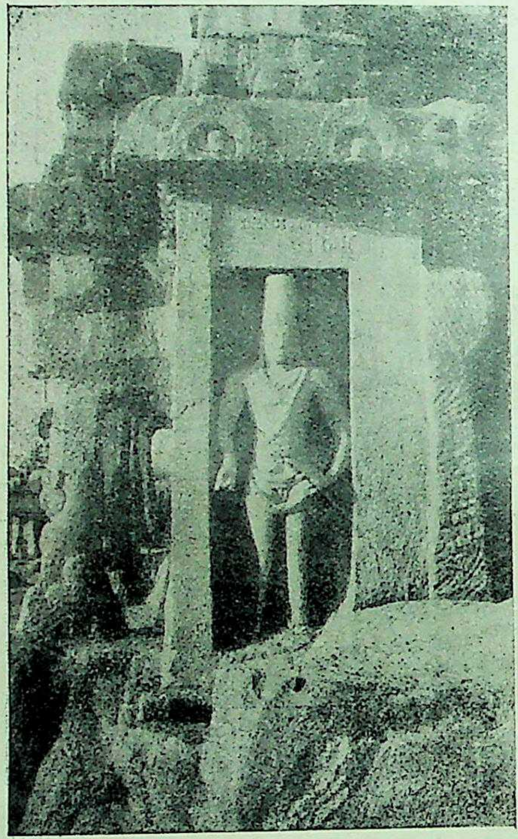

नरसिंहवर्मा की समकालीन मूर्त्ति—धर्मराज रथ, मामल्लपुरम्

[फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

§९. मध्य एशिया में तुर्कों का प्रवेश और दमन—मध्य एशिया में हूणों की शक्ति ५६५ ई० में नौशीरवाँ ने तोड़ दी थी, सो कह चुके हैं। किन्तु नौशीरवाँ ने वह काम अकेले न किया; उसमें 'पच्छिमी तुर्क' उसके सहायक थे। तुर्क असल में हूणों की एक शाखा ही थे, जिसका असल नाम असेना था। असेना लोग पाँचवीं शती में कान्सू प्रान्त में एक पहाड़ के पास रहते थे। उस

पहाड़ की शक्ल एक खौद या मिगफार (फ़ौजी टोपी) की सी थी, जिसे हूण भाषा में 'तुर्कु' कहते हैं। इसी से वे लोग तुर्कु या तुर्क कहलाने लगे। ५४५ ई० से वे प्रबल हुए। नौशीरवाँ ने उनकी मदद से हूणों को हराया—अर्थात् हूणों के एक फ़िरके की मदद से दूसरों को हराया।

मध्य एशिया पर नौशीरवाँ का प्रभाव नाममात्र को रहा। ५६५ ई० से ६३१ ई० तक वहाँ तुर्कों की ही प्रधानता रही। तुरफ़ान से मर्व तक मध्य एशिया में जो तुर्क थे, वे पच्छिमी तुर्क और जो अभी अपने मूल घरों में थे वे उत्तरी तुर्क कहलाते थे, यह पच्छिम उत्तर का हिसाब चीन की दृष्टि से था। युआन-च्वाङ को ६३० ई० में भारत आते समय तुरफ़ान से कपिश की सीमा तक के लिए पच्छिमी तुर्कों के 'कज़ान' अर्थात् राजा ने ही राहदानी दी थी। तुर्कों में तब धीरे-धीरे बौद्ध धर्म का प्रवेश हो रहा था। तुर्की भाषा में संस्कृत से कई ग्रन्थों के अनुवाद किये गये।

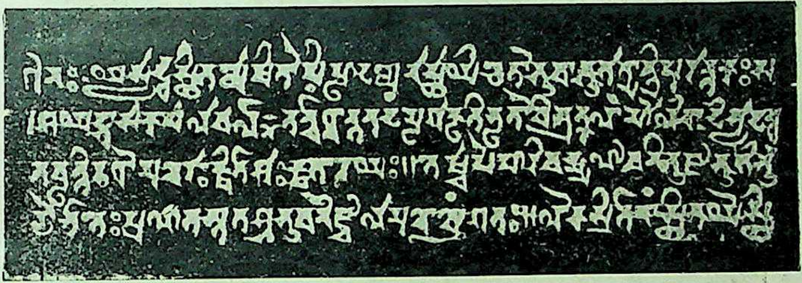

छठी शती की भारतीय लिपि, जिसमें तिब्बती भाषा पहले-पहल लिखी गयी—
हड़हा (ज़ि० रायबरेली) से प्राप्त ईशानवर्मा मौखरि के सं० ६११
वि० के लेख में से [लखनऊ म्यू०]

६३० ई० से ही तुर्कों की शक्ति टूटने भी लगी। उस साल चीन ने उत्तरी तुर्कों का देश जीत लिया। खोतन के भारतीय राज्य को ४४५ ई० से हूण और तुर्क लोग सता रहे थे। ६३० ई० में वहाँ के राजा विजयसंग्राम ने तुर्कों के देश पर चढ़ाई कर उनका संहार किया। उससे कुछ बरस पहले या पीछे ही तो राज्यवर्धन और हर्षवर्धन ने भी तुखार पहाड़ों पर चढ़ाइयाँ की थीं। यों पंजाब और खोतन के भारतीय राज्यों के दोतरफ़ा दबाव से कश्मीर और तुखारिस्तान में हूण-तुर्कों का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अन्त हुआ। ६४०-४८ ई० के बीच तुरफ़ान और कूचा से भी वे निकाले गये; और ६५६ ई० तक चीन ने पच्छिमी तुर्कों का भी समूचा देश जीत कर काबुल और कश्मीर के भारतीय राज्यों पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया।

§१०. **तिब्बत का उत्थान**—किन्तु चीन और कश्मीर तथा खोतन और नेपाल के बीच एक नया राज्य भी इसी युग में उठ खड़ा हुआ। वह तिब्बत का राज्य था। इससे पहले तिब्बती लोग निरे जंगली थे और छोटे-छोटे गिरोहों में रहते थे। तीन तरफ़ के भारतीय देशों से और चौथी तरफ़ चीन से उनमें धीरे-धीरे सभ्यता का प्रकाश पहुँचा। खोतन और कूचा में जो भारतीय लिपि प्रचलित थी, वह सातवीं शती के शुरू में तिब्बत में भी पहुँच गयी। तिब्बती भाषा तब से आज तक हमारी ही वर्णमाला में लिखी जाती है। ६३० ई० में पहले-पहल एक सम्राट् सारे तिब्बत को अपने शासन में ले आया; उसने ६५० ई० तक राज्य किया। ल्हासा की स्थापना उसी ने की। उस सम्राट् का नाम स्रोङ्चन-गम्बो था। उसने

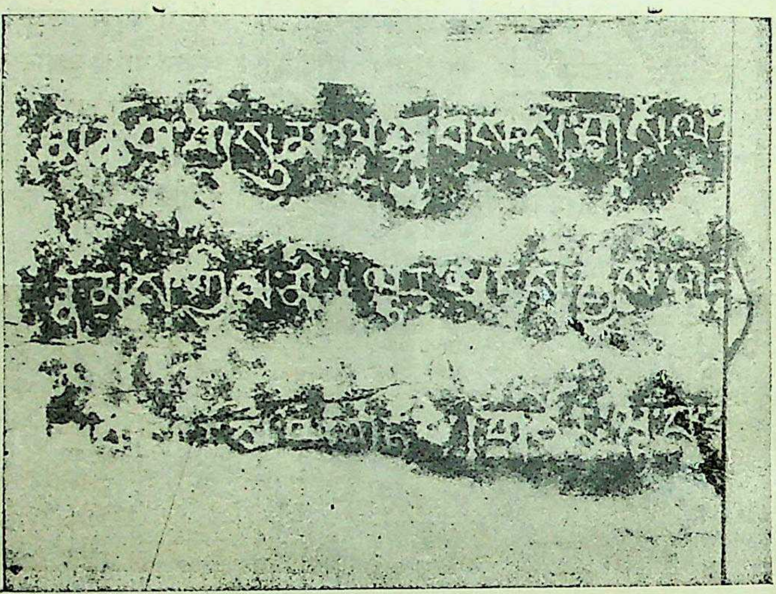

आरम्भिक तिब्बती लिपि—ल्हासा के पास ग्यल्खङ् विहार के एक शिलालेख में से। हड़हा लेख की लिपि से इसकी तुलना कीजिये।

[राहुलजी के सौजन्य से]

नेपाल के अंशुवर्मा की बेटी भृकुटि से और चीन-सम्राट् की एक कन्या से विवाह किया। वे दोनों देवियाँ बौद्ध थीं। उन्होंने तिब्बतियों के रहन-सहन में अनेक सुधार करवाये। ६४१ ई० में हर्षवर्धन ने अपने दूत चीन भेजे। दो बरस बाद चीन के दूत तिब्बत के रास्ते कन्नौज आये। इस प्रकार अब पहले-पहल चीन और भारत के बीच तिब्बत के रास्ते आना-जाना शुरू हुआ। बाद के तिब्बती राजाओं ने भी नेपाल, मगध और कन्नौज से लगातार सम्पर्क जारी रक्खा।

§ ११. **कम्बुज राष्ट्र और शैलेन्द्र साम्राज्य**—गुप्त युग के उपनिवेशों में चम्पा, 'फूनान' और श्रीविजय मुख्य थे। युवान्-च्वाङ जब भारत से लौटा तब दक्खिनी बरमा श्रीक्षेत्र कहलाता था। प्रायः उसी समय 'फूनान' राज्य को उसके एक सामन्त चित्रसेन ने समाप्त कर उसके स्थान में कम्बुज-राष्ट्र की नींव डाली। परले हिन्द के उस हिस्से का नाम अब तक वही चला आता है। उसका वह नाम भारतीय प्रवासियों ने रक्खा था। वहाँ के असल निवासी ख्मेर लोग हैं, जो हमारे संथाल लोगों से मिलते-जुलते और 'आग्नेय' जाति के हैं। आर्यों के कम्बुज उपनिवेश में होने के कारण वे कम्बुज कहलाने लगे; पर उनका कहना है कि वे महर्षि कम्बु और मेरा अप्सरा की सन्तान हैं! चित्रसेन भी कम्बु और मेरा की उसी सन्तान में से था। कम्बुज के राजा अपने को सूर्यवंशी मानते थे।

सुमात्रा के श्रीविजय साम्राज्य में सातवीं शती में शैलेन्द्र राजवंश स्थापित हुआ। शैलेन्द्रों की अधीनता में उस साम्राज्य में बहुत जल्दी अड़ोस-पड़ोस के सब द्वीप और मलक्का प्रायद्वीप भी समा गये। श्रीविजय के जहाज़ पूरब तरफ़ चीन तक और पच्छिम तरफ़ मदगास्कर और अलक्सान्दरिया (मिश्र के बन्दरगाह) तक जाते थे।

अध्याय २

इस्लाम का उदय और भारतवर्ष में प्रवेश

(लगभग ६२०--७६० ई०)

§१. हज़रत मुहम्मद--जब भारतवर्ष में हर्ष और पुलकेशी राज्य करते थे, उसी समय अरब में इस्लाम धर्म का उदय हुआ। इस धर्म के प्रवर्तक हज़रत मुहम्मद नाम के महात्मा ५७१ ई० में अरब की कुरैश जाति में पैदा हुए। अरब लोग उसी सेमेटिक (Semitic) नस्ल से हैं, जिससे पुराने बाबुली लोग थे या यहूदी लोग हैं। हज़रत मुहम्मद से पहले अरब वाले अनेक जड़-जन्तुओं को पूजते और छोटे-छोटे फ़िरक़ों में बँटे हुए थे। मुहम्मद साहब ने उन्हें तौहीद अर्थात् परमेश्वर के एक होने की शिक्षा दी। उन्होंने अनुभव किया कि उनका वह तौहीद का विचार स्वयम् परमेश्वर या अल्लाह की प्रेरणा है। इसलिए उन्होंने अपने को अल्लाह का 'रसूल' अर्थात् भेजा हुआ कहा। फिर उनकी यह शिक्षा थी कि अल्लाह और उसके रसूल को मानने वाले सब मुसलमान हैं, और उसकी दृष्टि में बराबर हैं। उनमें कोई ऊँच-नीच या छोटाई-बड़ाई नहीं है। अल्लाह और रसूल को न मानना कुफ़्र अर्थात् नास्तिकता है, और कुफ़्र करने वाला काफ़िर है।

इन शिक्षाओं के प्रचार से अरब वालों में एक अनुपम एकता और शक्ति प्रकट होने लगी। पहले तो उन्होंने इस शिक्षा का विरोध किया। यहाँ तक कि रसूल को अपने विरोधियों से सताये जाने पर अपनी जन्मभूमि मक्का को छोड़ कर मदीना भागना पड़ा। (इसे 'हिजरत करना' कहा गया और उसी समय—६२२ ई०—से हिजरी सन् जारी हुआ)। किन्तु पीछे उन्हें पूरी सफलता हुई और सारा अरब उनकी छत्रच्छाया में आ गया। ६३२ ई० में उनका देहान्त हुआ।

§२. ख़िलाफ़त का विस्तार—उनके पीछे अरबों के जो नेता बने वे ख़लीफ़ा कहलाये। पहले चार ख़लीफ़ा बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस क्रम से राज्य किया—(१) अबू बक्र, ६३२-३४ ई०, (२) उमर, ६३४-४३ ई०, (३) उस्मान, ६४३-५५ ई०, और (४) अली, ६५५-६१ ई०।

अरब के पड़ोस में एक तरफ़ ईरान और दूसरी तरफ़ रोम का साम्राज्य था। वे दोनों बोदे और खोखले हो चुके थे। रसूल की मृत्यु के बाद पाँचवें ही बरस

(६३६--३७ ई०) अरबों ने सासानी राजा यज़्दगुर्द को हरा कर ईरान पर दखल कर लिया। ईरान के लोग मुसलमान बनाये गये, और उनमें से कुछ बच कर समुद्र के रास्ते भारत भाग आये। उन भागने वालों के वंशज, जो अब गुजरात में आबाद हैं, पारसी नाम से प्रसिद्ध हैं। अगले पन्द्रह बरस के भीतर (६५२ ई० तक) ख़लीफ़ाओं ने रोम-साम्राज्य से शाम (सीरिया), फ़िलिस्तीन और मिस्र ले लिये। उसके बाद ख़िलाफ़त अर्थात् खलीफ़ा-साम्राज्य का केन्द्र अरब के रेगिस्तान के छोर से उठ कर दमिश्क (सीरिया की राजधानी) में चला आया (६७० ई०)। ७६६ ई० में वह दमिश्क से बग़दाद आया।

पांड्य, सिंहल, श्रीविजय (सुमात्रा) आदि जिन भारतीय राष्ट्रों का सामुद्रिक व्यापार बहुत था, वे पच्छिमी समुद्र की इस नयी शक्ति की उपेक्षा न कर सकते थे। अतः उसके साथ मैत्री रखना उनके लिए आवश्यक था। अरब लोग भी भारतीय समुद्र में व्यापार और मल्लाहगीरी करते थे। किन्तु पहले जहाँ वे कोरे व्यापारी और माँझी थे, वहाँ अब उनमें से प्रत्येक एक नयी उमंग लिये हुए अपने दीन (धर्म) का उग्र प्रचारक बन गया। जहाँ कहीं भी व्यापार या मल्लाहगीरी के कारण उनकी छोटी-मोटी बस्ती रही, वहाँ मस्जिदें खड़ी होने लगीं, इस्लाम का प्रचार होने लगा, और वहाँ से लोग हज (अरब के तीर्थों की यात्रा) के लिए जाने और खलीफ़ा के पास ज़कात (अपनी बचत का ४०वाँ अंश) भेजने लगे। इस नये जोश और जीवन में अरबों की सामुद्रिक शक्ति भी बढ़ने लगी और इन मुस्लिम केन्द्रों से भारत के तट-प्रदेशों का परिचय पा कर खलीफ़ाओं की जल-सेना उनपर हमले भी करने लगी।

§३. भारत के सीमान्त पर हमले (६४३--७००)—खलीफ़ा उमर के समय में पहले-पहल भारत के पच्छिमी तट पर अरबों के सामुद्रिक हमले हुए। एक हमला कोंकण के ठाना ज़िले पर हुआ, जिसमें पुलकेशी के हाथों अरबों की बुरी तरह हार हुई। दूसरे सामुद्रिक हमले भी उसी प्रकार विफल हुए।

६४३ ई० में ईरान के पूरबी प्रान्त किरमान और सिजिस्तान (प्राचीन शकस्थान) जीत लिये गये। सिजिस्तान लेने से अरब लोग हेलमन्द नदी पर पहुँच गये, जो उस समय भी भारत की सीमा मानी जाती थी। उसका काँठा सिन्ध और अफ़गानिस्तान के बीच एक पच्चर की तरह घुसा हुआ है। ६४४ ई० में सिन्ध के राजा "सिहर्सराय" (श्रीहर्षराज) से अरबों ने मकरान छीन लिया।

सिहर्सराय लड़ाई में मारा गया। उसके बेटे साहसी ने लड़ाई जारी रक्खी, पर दो बरस पीछे वह भी मारा गया। तब सिन्ध का राज्य ब्राह्मण मन्त्री चच के हाथ आया। उधर ६५० ई० में हरात भी अरबों के कब्ज़े में चला गया, जिससे अफ़गानिस्तान का पच्छिमी छोर भी उन्होंने घेर लिया। पच्छिम की तरफ़ सीरिया, फ़िलिस्तीन और मिस्र भी प्रायः उसी समय तक अरब साम्राज्य में शामिल हो चुके थे।

६६३ ई० में अरबों ने काबुल पर पहली चढ़ाई की। साल भर काबुल घिरा रहा और लोग बस्तियाँ छोड़ भाग गये। पर ज्यों ही अरब सेनाओं ने मुँह फेरा कि काबुली फिर स्वतन्त्र हो गये। ६६७ और ७०० ई० में काबुल पर फिर वैसी ही विफल चढ़ाइयाँ हुईं।

अरब विजेता हरात से मध्य एशिया की तरफ़ भी बढ़े। काबुल की पहली चढ़ाई से चार ही बरस पहले तो चीन ने मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान पर प्रभाव जमाया था। अब अरबों और चीनियों का मुकाबला आ पड़ा। किन्तु चीनियों को जहाँ सामने से अरबों का मुकाबला करना पड़ता था, वहाँ उनके बायीं तरफ़ अब उनका नया शत्रु तिब्बत खड़ा हो गया था। तिब्बती लोग उत्तर तरफ़ बढ़ कर चीनी सेनाओं का रास्ता काट देते और कई बार अरबों के साथ सन्धि कर लेते थे। चीनियों की कोशिश रहती कि वे एक दूसरे से नहीं मिल पाँय। इस कोशिश में वे प्रायः सफल हुए, तो भी ६७४ ई० में तिब्बतियों ने खोतन के राजा विजयकीर्त्ति को हरा दिया, और १६ बरस तक वहाँ अधिकार बनाये रहे। कश्मीर के उत्तर बोलौर प्रदेश पर भी उन्होंने दखल कर लिया।

§४. सिन्ध-विजय—मकरान लेने के बाद खलीफ़ाओं की दृष्टि सिन्ध पर पड़ी और उस पर चढ़ाई के लिए कारण भी उपस्थित हो गया। सिंहल के राजा ने खलीफ़ा के पास कई भेंट के जहाज़ भेजे। सिन्ध नदी के पच्छिमी तट के देवल बन्दर पर वे लुट गये। तब चच का बेटा दाहिर सिन्ध का राजा था। मुलतान भी तब टक्क (पंजाब) के बजाय सिन्ध-राज्य में शामिल था। दाहिर ने जब खलीफ़ा के कहने पर भी जहाज़ लुटने का कोई प्रतिकार न किया, तब मकरान के तट तथा समुद्र से देवल पर चढ़ाई की गयी (७१०-११ ई०)। उस चढ़ाई का नेता एक नौजवान मुहम्मद-इब्न-क़ासिम था। देवल पर अरब सेना का विशेष मुकाबला न करके दाहिर सिन्ध नदी के पच्छिम के सारे इलाके को छोड़ पूरब की तरफ़ हट गया। मुहम्मद ने पहले उसी भाग पर कब्ज़ा किया। उसके उत्तरी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

छोर पर सिविस्तान में दाहिर के एक भाई ने सख्त मुकाबला किया; परन्तु जनता का एक बड़ा अंश बौद्ध श्रमण थे, और वे तमाशबीन बने रहे। अन्त में मुहम्मद-इब्न-क़ासिम की जीत हुई।

तब वह नीचे आ कर सिन्ध नदी लाँघने का उपाय करने लगा। सामने दाहिर की सेना थी, और उसका बेटा जयसिंह नदी का घाट रोके हुए था। किन्तु नदी के बीच में एक टापू था। उसका "मुखी" मुहम्मद-इब्न-क़ासिम के साथ मिल गया और जैसे सिकन्दर को आम्भि ने सिन्ध नदी के पार उतार दिया था, वैसे ही उसने मुहम्मद-इब्न-क़ासिम को उतार दिया। उस पार दाहिर वैसी ही वीरता से लड़ा जैसे पुरु सिकन्दर से लड़ा था। किन्तु सिन्ध के इन अन्तिम हिन्दू राजाओं ने अपनी जाट और मेड़ प्रजा पर बड़े ज़ुल्म किये थे, इसलिए बहुत से जाटों ने अरबों का साथ दिया। दाहिर युद्ध में मारा गया। उसकी रानी ने पड़ोस के एक किले में कुछ सेना ले कर, जब तक बना, मुकाबला किया। अन्त में उसने बची हुई स्त्रियों के साथ "जौहर" कर लिया। भारत में जौहर की यह पहली घटना थी। उत्तर की तरफ़ बढ़ कर मुहम्मद-इब्न-क़ासिम ने छः महीने के घेरे के बाद सिन्ध का मुख्य नगर ब्राह्मनाबाद जीत लिया। तब उसने सिन्ध की राजधानी अलोर (रोरी के पास) पर भी कब्ज़ा किया। अलोर के बाद मुलतान भी अरबों के हाथ में चला गया।

§ ५. सिन्ध का अरब राज्य—जाटों और मेडों से काम निकल जाने के बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम ने भी उनपर पहले सी सख्ती की। परन्तु व्यापारी और कृषक प्रजा को विशेष नहीं सताया; उनसे जज़िया ले कर उन्हें अपना धर्म बनाये रखने और अपने मन्दिरों में पूजा-पाठ करने दिया। राज्य का शासन, वसूली आदि का काम ब्राह्मणों और पुराने सरदारों के हाथ सौंपा। मुलतान के प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर को तोड़ने के बजाय उसके चढ़ावे की आमदनी में से हिस्सा लेना अरब विजेताओं को अच्छा जँचा। कुछ समय बाद मुहम्मद-इब्न-क़ासिम खलीफ़ा-दरबार की दलबन्दी के कारण वापिस बुलाया गया और यातनाएँ दे कर मार डाला गया।

अरबों ने सिन्ध से और आगे बढ़ने के भी अनेक जतन किये, पर वे सब विफल हुए। ७३९ ई० में उनकी सेना कच्छ, सुराष्ट्र आदि जीत कर सूरत ज़िले की नवसारी नगरी तक पहुँच गयी, पर वहाँ चालुक्यों ने उसे तहस-नहस कर दिया।

भिन्नमाल राज्य के साथ तो उनकी प्रायः लगातार मुठभेड़ होती रही। ७६६ ई० में उन्होंने सुराष्ट्र पर चढ़ाई कर वलभी नगरी को लूटा। तब मैत्रक वंश का राज्य समाप्त हुआ। खलीफ़ाओं की शक्ति शिथिल होने पर भी सिन्ध में अनेक अरब सरदार बने रहे।

§६. कन्नौज का राजा यशोवर्मा; गुप्त राज-वंश का अन्त (लगभग ७२०-७४० ई०)—सिन्ध में अरब राज्य स्थापित होने के कुछ ही बरस बाद मगध और गौड में गुप्त राजवंश का अन्त हुआ। कन्नौज का राजा इस समय यशोवर्मा था। उसने मगध और गौड पर चढ़ाई कर वहाँ के गुप्त राजा को मार डाला और पूरबी समुद्र तक अपना साम्राज्य फैला लिया। इसके थोड़े ही अरसे बाद यशोवर्मा को एक प्रबल शत्रु से हारना पड़ा, जिसका उल्लेख हम अभी करेंगे। गुप्त राजवंश ने तब फिर उठने की चेष्टा की, पर वह विफल हुई। मगध, मिथिला और बंगाल में कुछ बरसों तक अराजकता फैली रही।

§७. मध्य एशिया में तिब्बत, अरब और चीन की कशमकश; राजा ललितादित्य—मुहम्मद-इब्न-क़ासिम जब सिन्ध को जीत रहा था उसी समय दो और नौजवान ख़िलाफ़त-साम्राज्य को दूसरे दो कोनों पर बढ़ा रहे थे। एक तरफ़ तारिक आफ्रिका के अन्तिम छोर से स्पेन में घुस कर रोम-साम्राज्य की उत्तराधिकारिणी पच्छिमी युरोप की त्यूतन ज़ातियों से लड़ रहा था। स्पेन का प्रसिद्ध बन्दरगाह उसी के नाम से जब्रुल्-तारिक (जिब्राल्तर) कहलाने लगा। दूसरी तरफ़ कौतैबा मध्य एशिया में चीनी सेनाओं से लड़ रहा था (७०५-१४ ई०)। पहले तो तिब्बतियों और अरबों ने वहाँ से चीन के पैर उखाड़ दिये; किन्तु ७१५ ई० के बाद चीन की शक्ति फिर जाग उठी, और ग़ज़नी और बलख़ तक के राज्यों को उसने अरबों के विरुद्ध खड़ा किया। अगले तीस बरस में चीन-सम्राट् ने कास्पियन सागर के दक्खिन तक के शासकों पर अपना प्रभाव जमा लिया। कश्मीर की गद्दी पर लगभग ७३३ से ७६६ ई० तक दुर्लभवर्धन का पोता राजा मुक्तापीड ललितादित्य था। उसने बोलौर और चीन-हिन्द से तिब्बतियों को मार भगाया और तुखारिस्तान को भी जाता।

ललितादित्य ने इधर कन्नौज-सम्राट् यशोवर्मा से भी लोहा लिया। यशोवर्मा के साम्राज्य में हिमालय के पहाड़ी प्रदेश भी थे, और उसके साम्राज्य की सीमा तिब्बत से लगती थी। यशोवर्मा को हरा कर उसने पच्छिमी हिमालय के सब प्रदेश

उससे छीन लिये और काली नदी, जो अब नेपाल को कुमाऊँ से अलग करती है, उनके राज्यों के बीच की सीमा बनी। ललितादित्य और यशोवर्मा दोनों ने चीन-सम्राट् के पास दूत भेजे। ललितादित्य ने सम्राट् से तिब्बतियों को उत्तर से दबाने का अनुरोध करते हुए लिखा कि मैंने अन्तर्वेद के सम्राट् यशोवर्मा के साथ मिल कर उनके सब दक्खिनी रास्ते रोक दिये हैं।

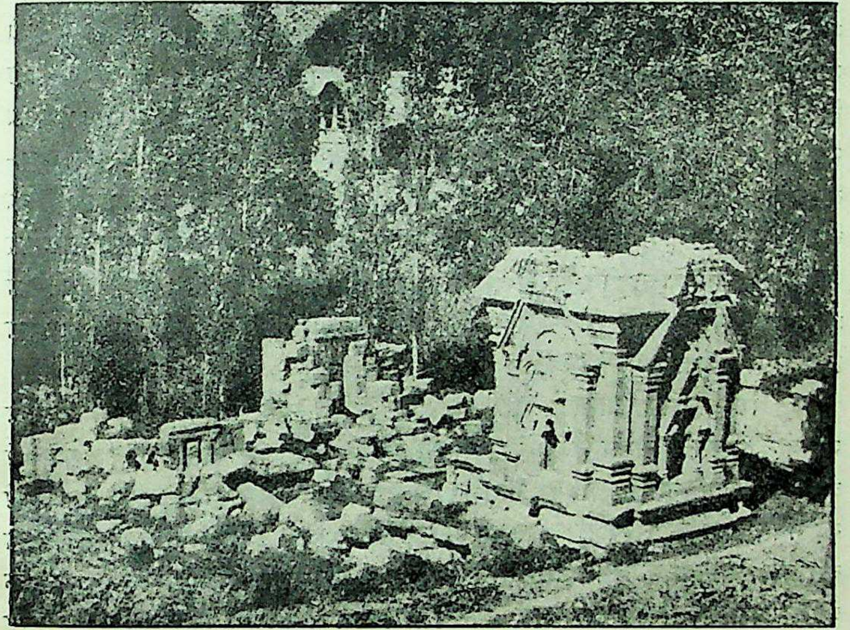

मटन तीर्थ (कश्मीर) में ललितादित्य के बनवाये मार्त्तण्ड मन्दिर के खँडहर

आठवीं शती के मध्य तक चीन ने तिब्बत और अरब की प्रगति को रोके रक्खा; किन्तु ७५१ ई० में अरबों ने तुर्कों के साथ मिल कर समरकन्द में चीनियों को बुरी तरह हराया। उसी युद्ध के चीनी कैदियों से पहले-पहल अरबों ने कागज़ बनाना सीखा, और फिर उनसे समूचे पच्छिमी जगत् ने। ७८० ई० में तिब्बतियों ने खोतन के विजय-वंश के राज्य को सदा के लिए मिटा दिया। ७८६ ई० में खलीफ़ा हारूँनुल-रशीद के समय काबुल पर अरबों ने फिर चढ़ाई की और नगर के

बाहर एक बहुत बड़े विहार को लूटा। वहाँ तो उनके पैर न जमे, पर ग़ज़नी कुछ समय बाद अरब शासन में चला गया।

§८. ख़िलाफ़त की सभ्यता—अरब लोग शुरू में तो क्रूर और संहारकारी थे, पर ईरान और भारत के संसर्ग से जल्दी सभ्य हो गये। आठवीं शती के शुरू में सिन्ध और बलख के अरब-साम्राज्य में सम्मिलित होने पर भारतवर्ष का प्रभाव ख़िलाफ़त के देशों पर पड़ने लगा। ख़लीफ़ा हारूँनुल-रशीद के समय (७८६–८०६ ई०) तो हिन्दू संस्कृति के प्रवाह से बगदाद का दरबार मानो आप्लावित हो उठा। बरमक नाम के वज़ीर ख़ानदान की वहाँ बड़ी ताक़त थी; वे लोग बलख़ के थे। उनके पुरखा बलख़ के नव-विहार में पदाधिकारी रह चुके थे। वे नाम को मुसलमान हुए थे। पुराने रिश्ते-नातों के कारण वे भारत से हिन्दू विद्वानों को बग़दाद बुलाते और उन्हें वहाँ वैद्य आदि के पदों पर रखते थे। अरब विद्यार्थियों को वे पढ़ने को भारत भेजते। संस्कृत के दर्शन, वैद्यक, ज्योतिष, इतिहास, काव्य आदि के अनेक ग्रन्थों के उन्होंने अरबी अनुवाद करवाये। भारतवर्ष से गणित आदि का ज्ञान अरब लोग ही युरोप ले गये। पंचतन्त्र आदि की कहानियाँ भी उन्हीं के द्वारा विदेशों में पहुँचीं।

किन्तु उनका साम्राज्य और वैभव जैसे जल्दी बढ़ा था, वैसे ही उनका पतन भी जल्दी हुआ। वैभव ने उन्हें विलासी बना दिया। नवीं शती के उत्तरार्द्ध में अरब साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो गया। ख़िलाफ़त एक छोटी सी रियासत के रूप में रह गयी, और जो राज्य उसके स्थान में उठ खड़े हुए, उनमें अधिकांश मुसलमान बने हुए ईरानियों के थे। उनमें से एक बुख़ारा और ख़ुरासान (उत्तरी ईरान) के अमीरों का था, जिससे हमें आगे वास्ता पड़ेगा। बुख़ारा हमारे ही 'विहार' शब्द का तुर्की-मंगोली उच्चारण है। वह सुग्ध दोआब में है। वहाँ के अमीर ईरानी मुसलमान थे।

अध्याय ३

पाल, प्रतिहार, राष्ट्रकूट

(लगभग ७५०–६६५ ई०)

§ १. **कन्नौज साम्राज्य की अवनति** (लगभग ७४०–८२०)—ललितादित्य से हारने के बाद कन्नौज साम्राज्य की शीघ्र ही अवनति हुई। यशोवर्मा किस वंश का था, सो मालूम नहीं हुआ, उसका नाम और सिक्के मौखरियों की शैली के हैं। उसके बाद के राजा "भण्डि-कुल" के थे। हर्षवर्धन के मामा का लड़का और सेनापति भण्डि था। जान पड़ता है कि यशोवर्मा के बाद कन्नौज का साम्राज्य उस सेनापति के वंश के हाथ में चला गया। किन्तु ललितादित्य के उत्तराधिकारी जयापीड ने कन्नौज के नये सम्राट् वज्रायुध को भी हरा कर पहाड़ों में नेपाल तक अपना राज्य बढ़ाया। पहला कन्नौज-साम्राज्य जब यों कश्मीरियों के हमलों से जीर्ण हो रहा था, तब उसके पूरब, दक्खिन और पच्छिम में नयी शक्तियाँ उठ रहीं थीं।

§ २. **पाल, गंग, राष्ट्रकूट और प्रतिहार राज्यों का उदय** (लगभग ७४३–७६० ई०)—मगध और बंगाल में अराजकता फैली थी, जिससे लोग ऊब गये थे। उस "मछलियों की सी दशा* को बदलने के लिए प्रजा ने श्रीगोपाल के हाथ में राज्य-लक्ष्मी सौंप दी"—अर्थात् उसे अपना राजा चुन लिया (लग० ७४३ ई०)। गोपाल योग्य राजा था, उसने समूचे मगध, मिथिला और बंगाल को शीघ्र एक सुसंगठित राज्य बना दिया।

कलिंग अर्थात् उड़ीसा में इस समय तक गंग वंश का राज्य स्थापित हो चुका था। गंग राजा पहले कादम्बों के सामन्त रूप में पूरबी मैसूर में राज्य करते थे। उस प्रदेश का नाम इसी कारण गंगवाडी पड़ा; वहाँ कोलाहलपुर (कोल्हार) गंगों की राजधानी थी। वहीं से वे लोग कलिंग आये, और यहाँ आठवीं से पन्द्रहवीं शती तक बराबर राज करते रहे।

---

* अराजकता को संस्कृत में "मछलियों को दशा" कहते हैं। बड़ी मछली छोटी को खा जाती है, और उसे भी अपने से बड़ों का डर रहता है। अराजकता में भी यही हाल होता है।

७५३ ई० में महाराष्ट्र-कर्णाटक के अन्तिम चालुक्य राजा से उसके सामन्त दन्तिदुर्ग राष्ट्रकूट ने उसका राज्य छीन लिया। 'राष्ट्रकूट' का असल अर्थ "प्रान्त का शासक" था। वही शब्द इस वंश का नाम हो गया। पीछे उसी का रूप 'राठोड' हुआ। दन्तिदुर्ग के उत्तराधिकारी, उसके चाचा, कृष्ण (लगभग ७६०–७७५ ई०) के समय राष्ट्रकूट सत्ता समूचे महाराष्ट्र और कर्णाटक पर स्थापित हो गयी। कृष्ण ने वेरूल* में एक चट्टान में से कटवा कर कैलाश नाम का मन्दिर बनवाया। वह भारतवर्ष की लेणियों या गुहामन्दिरों में सब से अनोखी रचना है।

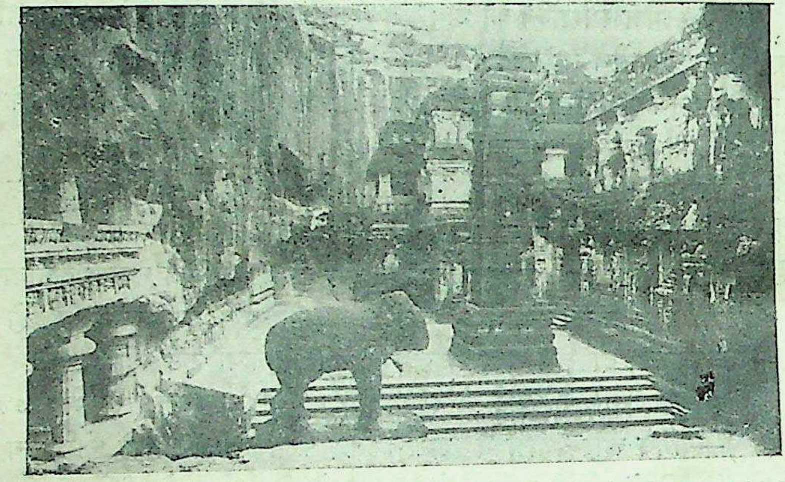

कैलाश-मन्दिर वेरूल [निज़ाम-हैदराबाद पुरातत्व विभाग]

महाराष्ट्र में जब राष्ट्रकूट राज्य स्थापित हुआ तभी गुर्जरदेश के राजा नागभट ने सिन्ध के मुसलमान शासकों को हरा कर ख्याति पायी। नागभट की राजधानी भिन्नमाल थी और मारवाड़ से भरुच तक उसका राज्य था। उसके पुरखा किसी राजा के प्रतिहार अर्थात् द्वारपाल थे। वही प्रतिहार शब्द उनके वंशजों का उपनाम हो गया।

इन नये राज्यों के मुकाबले में कन्नौज का साम्राज्य थोड़ा था। मगध और गौड राज्य में गोपाल का उत्तराधिकारी उसका सुयोग्य बेटा धर्मपाल हुआ

---

* 'वेरूल' का बिगड़ा हुआ अँगरेज़ी रूप 'एलोरा' है।

(लगभग ७७०--८०६ ई०)। उसने उत्तर भारत का सम्राट् बनना चाहा। कन्नौज का सम्राट् तब इन्द्रायुध था। ७८३ ई० के बाद धर्मपाल ने उसे गद्दी से उतार कर उसकी जगह चक्रायुध को बैठाया। चक्रायुध के अभिषेक के समय कन्नौज-साम्राज्य के सब सामन्तों ने उसे सम्राट् स्वीकार किया। इनमें पंजाब के मद्र, गान्धार और कीर (कांगड़ा) तक के राज्यों की गिनती थी। इस प्रकार कन्नौज का साम्राज्य यद्यपि अब निःशक्त था, तो भी उसका शासन दूर-दूर तक माना जाता था।

नागभट के भाई के पोते प्रतिहार राजा वत्सराज ने धर्मपाल को चुनौती दी और उसपर चढ़ाई कर उसे हराया; किन्तु उन दोनों पर राष्ट्रकूट कृष्ण के बेटे ध्रुव धारावर्ष (७८३-९३ ई०) ने चढ़ाई की। लाट और मालवा प्रान्तों के लिए राष्ट्रकूटों और प्रतिहारों के बीच लड़ाई रहती थी। ध्रुव धारावर्ष ने कांची से कोशल (छत्तीसगढ़) और लाट तक अपना आधिपत्य स्थापित किया। अब उसने वत्सराज को हराया, और गंगा-जमुना के बीच भागते हुए गौड राजा (धर्मपाल) का छत्र छीन लिया।

§३. धर्मपाल, नागभट (२य) और गोविन्द (लगभग ७९०--८१५ ई०)—ध्रुव के दो बेटों—स्तम्भ और गोविन्द (३य)—में घरेलू युद्ध हुआ। उस अवसर से लाभ उठा कर वत्सराज के बेटे नागभट (२य) ने, जो राजस्थान की ख्यातों में नाहड़देव नाम से प्रसिद्ध है, चक्रायुध और धर्मपाल दोनों को हरा कर कन्नौज पर अधिकार कर लिया (लगभग ७९२-९४ ई०)। किन्तु गोविन्द (७९४-८१४ ई०) ने अपने राज्य में स्थापित होने के बाद उत्तर भारत पर चढ़ाई की और नागभट को हराया; धर्मपाल और चक्रायुध को भी उसके सामने झुकना पड़ा। इस चढ़ाई में उसने मालव, कोशल, कलिंग, ओड्र (उड़ीसा का पहाड़ी भाग) और डहाला (जबलपुर प्रदेश) पर अधिकार कर लिया। उधर उसने कांची और रामेश्वरम् तक जीता था। इस प्रकार वह अपने समय का भारत का सम्राट् था।

धर्मपाल का उत्तराधिकारी उसका बेटा देवपाल (लगभग ८१०--८५१ ई०) भी उसी की तरह योग्य हुआ। पाल राजा सब बौद्ध थे। धर्मपाल ने भागलपुर के पास विक्रमशिला नाम का एक महाविहार स्थापित किया, जो नालन्दा की तरह बाहर के बौद्ध देशों में भी शीघ्र प्रसिद्ध हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§४. अमोघवर्ष और कृष्ण; मिहिर भोज और महेन्द्रपाल (८१५-९११ ई०)—गोविन्द के बेटे शर्व अमोघवर्ष (८१५–७७ ई०) और उसके बेटे कृष्ण अकालवर्ष (८७७–९११ ई०) के एक शती के शासन में दक्खिन भारत ने अद्वितीय शान्ति और समृद्धि प्राप्त की। अमोघवर्ष ने मान्यखेट (निज़ाम राज्य की मालखेड) नगरी को अपनी राजधानी बनाया।

उधर राजा देवपाल ने मगध के राज्य को पूरबी भारत का साम्राज्य बना दिया। उसके सेनापति ने उत्कल (उड़ीसा) और प्राग्ज्योतिष (आसाम) को जीत लिया। शायद ललितादित्य और जयापीड की पूरबी विजयों के सिलसिले में पूरबी हिमालय में कश्मीरियों और कम्बोजों की एक बस्ती बस गयी थी। हिमालय में देवपाल ने उन्हें हराया। दूसरी तरफ़ उसने विन्ध्य में अमोघवर्ष से टक्कर ली। नागभट की मृत्यु के बाद उसके बेटे रामभद्र के मुकाबले में भी देवपाल का पलड़ा भारी रहा।

किन्तु लगभग ८३६ ई० में रामभद्र के बेटे भोज या मिहिर भोज के अधिकार पाने पर अवस्था पलट गयी। भोज ने राज पाते ही कन्नौज को जीता और भिन्नमाल के बदले उसे अपनी राजधानी बना लिया। कश्मीर की सीमा तक हिमालय के प्रदेशों पर उसने फिर से कन्नौज का आधिपत्य स्थापित किया। उसने प्रतिहार साम्राज्य की पच्छिमी सीमा उन पहाड़ों से मुलतान-सिन्ध की सीमा तक और सुराष्ट्र के समुद्र तक पहुँचा दी। पूरब तरफ़ उसने देवपाल के बेटे नारायणपाल (लगभग ८५४-९०८ ई०) से न केवल मगध-तिरहुत प्रत्युत पुण्ड्रवर्धन (उत्तरी बंगाल) भी छीन लिया (लगभग ८७१ ई०)। पालों का राज्य तब केवल राढ देश (पच्छिमी बंगाल) और समतट में रह गया। पूरबी बंगाल में भी एक स्थानीय चन्द्र-वंश खड़ा हो गया, जिसकी राजधानी विक्रमपुर (ढाका के पास) थी।

भोज के पचपन बरस (लगभग ८३६-९० ई०) और उसके बेटे महेन्द्रपाल के सत्रह बरस (८९१-९०७ ई०) के शासन में कन्नौज फिर भारत के सब से प्रतापी सम्राटों की राजधानी बना रहा। उनके डर से दक्खिन के राष्ट्रकूटों और सिन्ध के अरबों ने परस्पर मैत्री कर ली। अरब लोग मान्यखेट के राजा को बल्हारा (वल्लभ-राजा) नाम से जानते और उसे भारत में सबसे बड़ा राजा मानते थे।

§५. चोल, कश्मीर और ओहिन्द के नये राज्य (लगभग ८५०–९०० ई०)—नवीं शती के उत्तरार्द्ध में भारतवर्ष के सीमान्त राज्यों में रद्दोबदल हुआ।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कांची, कश्मीर और काबुल के सीमान्त राज्य कर्णाटक, कन्नौज और बोखारा साम्राज्यों के हमलों से जीर्ण हो गये थे, इसलिए उनमें आन्तरिक परिवर्तन ज़रूरी हो गया। कांची के पल्लव राज्य को समाप्त कर एक चोल राजा तामिल देश में उठा (लगभग ८८० ई०), जिसके वंशज आगे चल कर बड़े प्रतापी हुए।

कश्मीर में तभी कर्कोट वंश का राज्य समाप्त हो कर उत्पल वंश का शुरू हुआ। पहला उत्पल राजा अवन्तिवर्मा (८५५-८८३ ई०) अत्यन्त न्यायी और सुशासक था। उसके सुय्य नाम के एक मन्त्री ने कश्मीर की नदियों में बाँध बँधवाये, नहरें खोदवायीं और दलदलों को सुखा कर सैकड़ों नये गाँव बसा दिये। कश्मीर की उपज तब इतनी बढ़ी कि धान की कीमत एकाएक ५१⁄६ वाँ हिस्सा रह गयी। सुय्य को लोगों ने अन्नपति की पदवी दी।

अवन्तिवर्मा का बेटा शंकरवर्मा (८८३–९०२ ई०) भी बड़ा विजेता था। उसने पूरब ओर मिहिर भोज का मुकाबला किया और पच्छिम की तरफ़ उरशा (हज़ारा) और काबुल राज्य जीते। ८७० ई० में बोखारा के एक सेनापति याक़ूब-ए-लैस ने काबुल का किला ले लिया। काबुल शहर और इलाका हिन्दू राजाओं के पास रहा, किन्तु वे अपनी राजधानी सिन्ध नदी के पुराने घाट उदभांडपुर ले गये। उदभांडपुर अटक के १६ मील उत्तर है और अब ओहिन्द कहलाता है। वहाँ ८८३ ई० में अन्तिम राजा से उसके ब्राह्मण मन्त्री लल्लिय ने राज्य छीन लिया। लल्लिय के वंशज ब्राह्मण शाहि कहलाये। शंकरवर्मा ने लल्लिय को जीत कर अपना सामन्त बनाया। अरसे तक शाहियों का राज्य कश्मीरियों की अधीनता में रहा। मिहिरभोज से शंकरवर्मा की लड़ाई कांगड़े के इलाके में हुई होगी।

§६. दूसरे कन्नौज साम्राज्य की अवनति (९१६ ई० से)—जब महेन्द्रपाल का बेटा महीपाल कन्नौज की गद्दी पर बैठा, तब भी उसका शासन कलिंग से काठियावाड़ और काठियावाड़ से कुल्लू तक माना जाता था। उधर कर्णाटक में कृष्ण अकालवर्ष का उत्तराधिकारी उसका पोता इन्द्र नित्यवर्ष हुआ। ९१६ ई० में मध्यदेश और महाराष्ट्र के सम्राटों में फिर लड़ाई हुई। इस बार इन्द्रराज ने कन्नौज नगरी को ले कर उजाड़ा और उसके एक सामन्त ने प्रयाग तक महीपाल का पीछा किया। तब से कन्नौज-साम्राज्य की घटती कला शुरू हुई। बंगाल के पालवंशी राजाओं ने ९५० ई० तक मगध फिर वापिस ले लिया। तो भी उत्तरी बंगाल को वे न ले सके और वहाँ एक कम्बोज वंश स्थापित हो गया।

§७. चेदि. जझौती, मालवा, गुजरात, राजपूताना, पंजाब और महाराष्ट्र के नये राज्य (लगभग ९२५--९९५ ई०)—अन्तर्वेद का साम्राज्य कमज़ोर होने से विन्ध्यमेखला के सामन्त राज्य स्वतन्त्र हो गये। जमना के दक्खिन से विदर्भ और कलिंग की सीमा तक पुराना चेदि देश था। इस युग में चेदि नाम उसके दक्खिनी अंश का रहा; उत्तरी अंश जेजाकभुक्ति या जझौती कहलाता था। चेदि के कलचुरि-वंश की राजधानी त्रिपुरी (जबलपुर के पास आधुनिक तेवर) थी। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ भी उसके अधीन रहा। उसकी पच्छिमी सीमा वर्धा नदी तक थी।

जझौती में चन्देल राजवंश था। उनकी राजधानी पहले महोबा और फिर खजुराहो में रही। कालंजर का प्रसिद्ध किला ले लेने से वे कालंजर के राजा भी कहलाये। यशोवर्मा चन्देल (लगभग ९२०–५० ई०) ने डहाला से मगध, मिथिला और गौड तक चढ़ाई की, और पूरबी हिमालय तक जा कर वहाँ की कश्मीरी या कम्बोज बस्ती को हराया। उसके बेटे धंग ने (लगभग ९५०--९५ ई०) अंग और राढ देश पर चन्देलों का आधिपत्य जारी रक्खा। दसवीं शती के अन्तिम भाग में पालवंशी राजा महीपाल (लगभग ९७५-१०२६ ई०) ने फिर धीरे-धीरे अपने

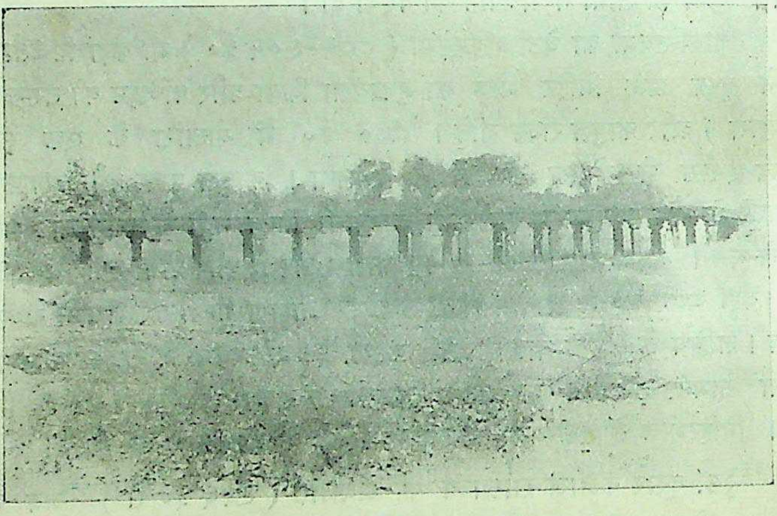

भद्रावती (भांदक, जि० चाँदा) में एक पुराने पुल के खँडहर। भद्रावती य्वान-च्वाङ के समय महाकोशल की राजधानी थी।

[भा० पु० वि०]

पुरखों के राज्य का पुनरुद्धार किया। पहले उसने कम्बोज वंश का अन्त कर उत्तरी बंगाल लिया (लगभग ९८४ ई०) और फिर मगध। अपने राज्यकाल के प्रायः अन्त में उसने मिथिला को भी ले लिया (लगभग १०२३ई०)।

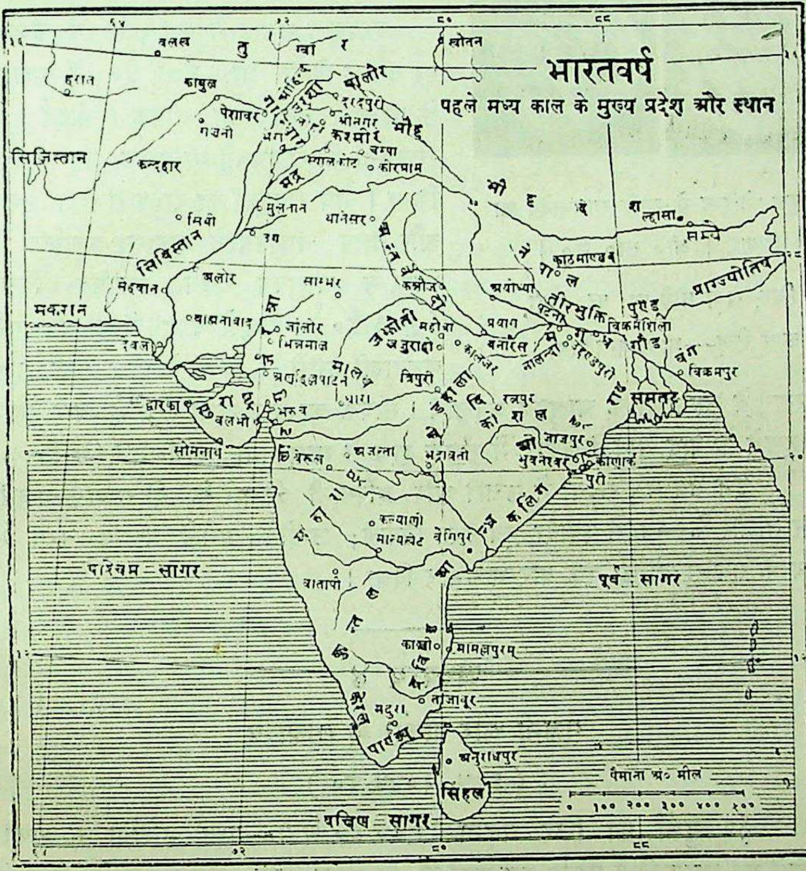
भारतवर्ष
पहले मध्य काल के मुख्य प्रदेश और स्थान
बलख
तुखार
खोतन
हरात
काबुल
पेशावर
गज़नी
दरदपुर
श्रीनगर
कश्मीर
भोट्ट
चम्पा
कोरग्राम
सिजिस्तान
कन्दहार
मुलतान
थानेसर
भोट देश
ल्हासा
मिवी
सिविस्तान
काठमाण्डव
नेपाल
प्राग्ज्योतिष
अलोर
साम्भर
कन्नौज
अयोध्या
तीरभुक्ति
पुण्ड्र
महरान
मकरान
बाह्मनाबाद
जालोर
भिन्नमाल
जझौती
महोबा
खजुराहो
प्रयाग
पटना
विक्रमशिला
गौड
बनारस
मगध
नालन्दा
कालंजर
वंग
विक्रमपुर
देवल
अणहिल्लपाटन
मालवा
त्रिपुरी
धारा
राढ
समतट
द्वारका
सुराष्ट्र
वलभी
भरुच
रत्नपुर
कोशल
जाजपुर
सोमनाथ
अजन्ता
भद्रावती
भुवनेश्वर
कोणार्क
पुरी
कलिंग
कल्याणी
मान्यखेट
वेंगिपुर
पच्छिम सागर
वातापी
पूर्व सागर
कांची
मामल्लपुरम्
तंजावूर
मदुरा
पाण्ड्य
अनुराधपुर
सिंहल
पैमाना मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
दक्खिन सागर

चेदि और जझौती के पच्छिम मालवे में परमार राजपूतों का एक राज्य स्थापित हुआ, जिसकी राजधानी धारा थी। मालवे के पच्छिम गुजरात में मूलराज सोलंकी (चालुक्य) ने ९६० ई० में एक राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानी अणहिल्लपाटन (अणहिलवाड़ा) थी। दक्खिनी राजपूताने पर प्रायः गुजरात और

मालवे का अधिकार रहा। उत्तरी राजपूताने में चौहानों का एक स्वतन्त्र राज्य उठ खड़ा हुआ, जिसकी राजधानी साँभर थी। उधर ओहिन्द के शाहियों ने अपना राज्य पंजाब तक फैला लिया। इन राज्यों के बीच कन्नौज का प्रतिहार राज्य भी बना रहा।

काबुल-ओहिन्द के शाहि सामन्तदेव का सिक्का [श्री० सा० सं०]

चित, राजा घोड़े पर; पट, नन्दी, ऊपर लेख—श्री सामन्तदे (व)।

इन्द्रराज राठोड ने ९१६ ई० में कन्नौज पर दखल किया था, ९७२ ई० में मालवा के पहले स्वतन्त्र राजा सीयक (श्रीहर्ष) ने राष्ट्रकूटों की राजधानी मान्यखेट पर दखल किया। तब राष्ट्रकूटों का राज्य समाप्त हुआ और तैलप चालुक्य ने महाराष्ट्र-कर्णाटक में फिर से चालुक्य राज्य स्थापित किया (९७३ ई०)। पिछले चालुक्यों की राजधानी कल्याणी नगरी (बिदर के पास) थी, इस कारण वे कल्याणी के चालुक्य कहलाये। सीयक का बेटा राजा मुंज छः बार तैलप को हराने के बाद सातवीं लड़ाई में उसके हाथ से मारा गया (लगभग ९९४ ई०)।

इन सब नये राज्यों में उत्तरी और दक्खिनी किनारे के दो राज्य—ग़ज़नी और तांजोर के—सबसे ज़्यादा ज़बरदस्त निकले; उन्होंने अगले पचास बरस में बीच के सब राज्यों को एक बार झकझोर दिया।

अध्याय ४

ग़ज़नी और तांजोर के साम्राज्य

(९८५--१०४५ ई०)

§१. तुर्कों का फिर बढ़ना (९५० ई० से)—मध्य एशिया में शकों-तुखारों का स्थान किस प्रकार हूण-तुर्कों ने ले लिया और उनपर पहले चीनियों तथा पीछे अरबों ने कैसे अपना आधिपत्य जमाया, सो कह चुके हैं। ६५९ ई० में ये चीन के शासन में चले गये थे, और ७५१ ई० में चीन का स्थान अरबों ने लिया था। खिलाफ़त-साम्राज्य टूटने पर कई अरब और ईरानी राजवंश सारे पच्छिम और मध्य एशिया पर शासन करते रहे। तुर्क लोग प्रायः तीन सौ बरस तक गौण

रहे। इस बीच मध्य एशिया में बौद्ध धर्म का स्थान इस्लाम ले रहा था। तुर्कों की पच्छिमी जातियाँ पहले मुसलमान हुईं। यारकन्द और काशगर के पूरबी तुर्क दसवीं शती के अन्त में मुसलमान हुए। ९५० ई० के करीब से अरबों और ईरानियों के अधीन जो तुर्क सरदार थे वे सिर उठाने लगे। कुछ ही समय में तुर्क सत्ता उन सब देशों पर छा गयी जो पहले ख़िलाफ़त के अधीन थे। इसी समय अलप्-तगीन नामक तुर्क ने, जो पहले बुखारा के अमीर के यहाँ हाजीब अर्थात् प्रतिहार (द्वारपाल) था, गज़नी में एक छोटी सी तुर्क जागीर की नींव डाली। गज़नी को बुखारा के अमीरों ने कुछ ही समय पहले छीना था और अब भी उसके पड़ोस में सब तरफ़ हिन्दू ही थे।

§२. सुबुक्-तगीन (९७७--९७ ई०)—अलप्-तगीन के पीछे उसका दामाद सुबुक्-तगीन जो उसी की तरह पहले बुखारा में प्रतिहार रहा था, गज़नी का मालिक बना (९७७ ई०)। जिस अन्तिम ईरानी राजा यज़्दगुर्द से अरबों ने राज्य छीना था, उसकी एक लड़की एक तुर्क सरदार को ब्याही थी। कहते हैं सुबुक्-तगीन उसी का वंशज था। यह बात सच हो या झूट, इसमें सन्देह नहीं कि तुर्क लोग अब पुराने हूण न रहे थे। मध्य एशिया में आ कर शकों-तुखारों और ईरानियों का आर्य खून उनमें पूरी तरह मिल चुका था।

सुबुक्-तगीन ने अपना राज्य बढ़ाना शुरू किया, और पूरब और उत्तर तरफ़ कई किले छीने, जो कि ओहिन्द के शाहि जयपाल के थे (लगभग ९८६ ई०)। जयपाल ने उसके इलाके पर चढ़ाई की। कई दिन की घोर लड़ाई के बाद, हिन्दू सेना जिस चश्मे का पानी पीती थी उसे शराब से गन्दा कर तुर्कों ने उन्हें सन्धि करने पर विवश किया। जयपाल ने कुछ किले देना स्वीकार कर लिया, पर लौट कर उसने वे किले न दिये। तब सुबुक्-तगीन उसके इलाकों को लूटने और उजाड़ने लगा। निंग्रहार के उत्तर-पच्छिम पहाड़ों की उस तराई का, जिसमें अलीशांग नदी काबुल में मिलती है, संस्कृत नाम लम्पाक था, और अब लमग़ान है। सुबुक्-तगीन ने उसी को अपना लक्ष्य बनाया। जयपाल कन्नौज के राजा राज्यपाल और जझौती के राजा धंग की सहायता मँगा कर एक बड़ी सेना के साथ फिर गज़नी की तरफ़ बढ़ा। कुर्रम नदी की दून में लड़ाई हुई। सुबुक्-तगीन ने सामने लड़ने के बजाय ५--५ सौ सवारों की टुकड़ियों से शत्रु सेना पर झपट्टे मारने की नीति पकड़ी, जिसमें वह सफल हुआ। लमग़ान उसके अधीन हो गया।

§३. महमूद गज़नवी (९९७–१०२९ ई०)—सुबुक्‌तगीन की जागीर उसके पीछे ९९७ ई० में उसके बेटे महमूद को मिली। कुछ ही समय बाद बुखारा-खुरासान का राज्य तुर्क सरदारों के उपद्रवों से तथा पामीर पार के काशगर के बौद्ध तुर्कों के हमलों के कारण समाप्त हो गया। आमू-सीर-दोआब काशगर के राज्य में चला गया, और खुरासान का बाकी सब राज्य, जिसमें ईरान के अतिरिक्त आमू और कास्पियन के बीच का प्रदेश--ख्वारिज़्म--था, महमूद को मिला। महमूद ने सुलतान बन कर नये राज्य पर अपना अधिकार दृढ़ किया। वह सीस्तान पर काबू करने में लगा था, जब उसे खबर मिली कि जयपाल फिर लड़ाई की तैयारी कर रहा है। इससे पहले कि जयपाल को समय मिले उसने एकदम पेशावर पर हमला कर दिया (१००१ ई०)। जयपाल अपने बेटे आनन्दपाल और अनेक सरदारों सहित कैद हुआ। पेशावर और ओहिन्द अर्थात् अटक नदी तक का कुल इलाका विजेता के हाथ में चला गया! आनन्दपाल को ओल रख उसने जयपाल को जाने दिया; पर जयपाल को अपनी हारों से इतनी ग्लानि हुई कि वह आग में जल मरा। तब महमूद ने आनन्दपाल को छोड़ दिया। आनन्दपाल ने नमक की पहाड़ियों में भेरा को अपनी राजधानी बनाया और वहीं रहने लगा। यह महमूद की पहली चढ़ाई थी। कहते हैं उसने भारतवर्ष पर कुल १७ चढ़ाइयाँ कीं।

ओहिन्द के बाद “भाटिया” और मुलतान ये दो और राज्य महमूद के पड़ोसी थे। “भाटिया” दक्खिन पंजाब में भाटी राजपूतों की बस्ती थी। पंजनद के पास उच्च नाम का स्थान उसकी राजधानी थी। महमूद ने पहले “भाटिया” पर चढ़ाई की। किले के बाहर तीन दिन के घोर युद्ध के बाद राजा विजयराय मारा गया। विशेष लूट विजेता के हाथ नहीं लगी। लौटते समय उसकी सेना बुरी तरह सतायी गयी और स्वयम् सुलतान की “कीमती जान” बड़ी मुश्किल से बची।

मुलतान के शासक मुसलमान थे। महमूद ने उनपर चढ़ाई करने के लिए आनन्दपाल से उसके राज्य में से लाँघने की इजाज़त माँगी। आनन्दपाल ने इजाज़त न दी। तब महमूद ने उसके प्रदेश में घुस कर उसे उजाड़ना शुरू किया, और कई मुठभेड़ों में आनन्दपाल को हरा कर कश्मीर की ओर भगा दिया। मुलतान का शासक यह समाचार पा कर भाग गया। महमूद ने मुलतान पर अधिकार कर प्रजा से भारी जुरमाना वसूल किया।

आनन्दपाल ने फिर एक बार कन्नौज, जझौती आदि के राजाओं से सहायता मँगा कर अटक के पूरब एक बड़े युद्ध की तैयारी की (१००९ ई०)। उस इलाके के वीर गक्खड़ भी उसकी सेना में शामिल थे। महमूद भी एक बड़ी फौज के साथ आया। ४० दिन तक दोनों सेनाएँ अटक के पास छछ के मैदान में एक दूसरे की ताक में पड़ी रहीं। अन्त में गक्खड़ों ने तुर्कों पर हमले शुरू किये। लड़ाई में तुर्कों के पैर उखड़ गये और महमूद पीछे हटने की सोचने लगा। उसी समय आनन्दपाल का हाथी बिगड़ कर भागा और उसकी सेना उसे राजा के हारने का संकेत समझ भाग खड़ी हुई। इस हार ने हिन्दू राज्यों की हिम्मत तोड़ दी; उन-पर महमूद का आतंक जम गया। शाहियों के राज्य के पूरब लगा हुआ कीर देश (कांगड़ा) का राज्य था। छछ की विजय के बाद महमूद सीधा उसपर जा टूटा, और वहाँ के नगरकोट के मन्दिर को लूटा।

इतने हमलों के बावजूद भी पंजाब का शाहि-राज्य टूटा न था। महमूद की एक और चढ़ाई में आनन्दपाल मारा गया। उसके बेटे त्रिलोचनपाल ने वार्षिक कर देना स्वीकार किया, और अपने दो हज़ार सैनिक सुलतान की सेवा में रख दिये। महमूद का राज्य पच्छिम तरफ़ भी कास्पियन तक फैला हुआ था। उधर उसने कास्पियन के पच्छिम गर्जिस्तान (ज्यौर्जिया) तक के प्रदेश जीते। आमू पार के बौद्ध तुर्कों का उसे कई बार मुकाबला करना पड़ता था। गज़नी के पड़ोस के ग़ोर आदि इलाकों के पठानों को काबू में रखने के लिए भी उसे सदा सजग रहना पड़ता था। वे पठान तब तक हिन्दू थे। चार बरस तक महमूद और त्रिलोचनपाल के बीच शान्ति रही ; किन्तु १०१४ ई० में महमूद ने फिर चढ़ाई की। अटक और जेहलम के बीच पहाड़ी इलाके में तौसी नदी के किनारे लड़ाई हुई। कश्मीर के राजा संग्रामराज ने अपने सेनापति तुंग को त्रिलोचन शाहि की मदद को भेजा। महमूद ने कुछ सेना तौसी पार भेजी, जिसे तुंग ने मार भगाया। शाहियों को अब तक तुर्कों के "छल-युद्ध" का तजरबा हो चुका था। त्रिलोचनपाल ने तुंग को समझाया कि एकाएक आगे न बढ़े; किन्तु तुंग अपनी उस जीत के मद में नदी पार कर गया और अन्त में महमूद की बड़ी सेना से हार गया। त्रिलोचन कश्मीर भाग गया और पंजाब पर महमूद ने दखल कर लिया। कश्मीरी इतिहासलेखकों ने तुंग की उस मूर्खता को ही पंजाब के पतन का कारण माना है।

मुलतान और पंजाब पर दखल करने के बाद महमूद ने और आगे बढ़ना शुरू किया। उसने थानेसर पर धावा बोला। फिर १०१८ ई० में एक लाख सेना के साथ उसने अन्तर्वेद पर चढ़ाई कर मथुरा और कन्नौज को लूटा। राजा राज्यपाल गंगा पार भाग गया। एक और चढ़ाई के बाद उसने कर देना स्वीकार किया। कालंजर के युवराज विद्याधर और उसके ग्वालियर के सामन्त ने इस कायरता के कारण राज्यपाल को मार डाला। तब महमूद ने एक चढ़ाई ग्वालियर और कालंजर पर भी की।

महमूद के पड़ोसी उत्तर भारत के हिन्दू राज्यों में से अब एक मात्र कश्मीर ऐसा बचा था जिसने उससे नीचा न देखा था। १०२१ ई० में महमूद ने कश्मीर पर भी चढ़ाई की, किन्तु लोहर नाम के पहाड़ी किले से हार कर उसे लौटना पड़ा।

महमूद की अन्तिम प्रसिद्ध चढ़ाई १०२३ ई० में सुराष्ट्र के सोमनाथ मन्दिर पर हुई। मुलतान से तीस हज़ार ऊँटों पर रसद-पानी ले कर वह जालोर के रास्ते अणहिलवाड़ा की तरफ़ बढ़ा। राजा भीम सोलंकी भाग कर कच्छ चला गया। समुद्र के किनारे सोमनाथ पर पहुँच कर महमूद ने नगर और मन्दिर को लूटा, और उसका शिव-लिंग* तोड़ डाला। वह मन्दिर काठ का था और धारा के राजा मुञ्ज परमार के भतीजे राजा भोज ने उसे कुछ ही पहले बनवाया था। जब महमूद लौटने को था तो उसे खबर मिली कि मालवे का परमारदेव अर्थात् राजा भोज लौटते हुए उसका रास्ता काट कर हमला करेगा। इसलिए महमूद राजपूताने के बजाय कच्छ और सिन्ध के रास्ते लौटा। सिन्ध नदी के नाविक जाटों ने उसकी सेना को बहुत सताया और बहुत सी लूट रास्ते में छीन ली। उन्हें दंड देने के लिए महमूद ने एक और चढ़ाई की।

§४. महमूद का चरित्र—१०२६ ई० में महमूद का देहान्त हुआ। वह अपने ज़माने का अद्वितीय सेनापति था। मुस्लिम इतिहासलेखकों का एक अरसे तक यह विश्वास रहा कि काफ़िरों को लूटना धर्म है। इस कारण उन्होंने महमूद का हाल इस ढंग से लिखा कि उसकी भारतीय चढ़ाइयों का एकमात्र प्रयोजन लूट ही प्रतीत होता है। असल में वह बात न थी। उसकी अधिकांश चढ़ाइयाँ पंजाब पर हुईं—पंजाब ने उसका अन्त तक मुकाबला किया। उन चढ़ाइयों का उद्देश धीरे-धीरे अपने राज्य को बढ़ाना और संगठित करना ही था। शत्रु को तंग

---

* वह लिंग ठोस था; उसके खोखले पेट में रत्न भरे होने की बात पीछे की गप्प है।

करने और डराने के लिए वह लूट-मार और क्रूरता अवश्य करता था। किन्तु वह सफल सेनापति था, इसका यह अर्थ है कि उसकी सेना में पूरा नियमपालन होता था। उसके शहर लूटने, योद्धाओं को कैद और कतल करने आदि के वृत्तान्त में कहीं स्त्रियों, बच्चों को सताने की बात नहीं सुनी जाती। वह स्वयम् सच्चरित्र था, और उसके अपने राज्य में प्रजा सुरक्षित थी तथा शासन व्यवस्थित और सुसंगठित था। अपने धर्म पर उसे अटल विश्वास था, और उसके जीवन के सामने एक बड़ा लक्ष्य था। तो भी उसे कोरा धर्मान्ध नहीं कह सकते। उसके दरबार में फ़ारसी का महाकवि फ़िरदौसी था, जिससे उसने ईरान के पुराने अग्निपूजक राजाओं की कीर्ति शाहनामा नामक ग्रन्थ में लिखवा कर अपने को उनका वंशज बताया। अल्बेरूनी नाम का एक और विद्वान् उसके यहाँ था, जिसने पेशावर और मुलतान के पंडितों से संस्कृत पढ़ी और भारतवर्ष के विषय में एक बड़ा ग्रन्थ लिखा। महमूद ने अफ़गानिस्तान के हिन्दुओं को ज़बरदस्ती मुसलमान ज़रूर बनाया, परन्तु वैसा किये बिना उसका राज्य दृढ़ न हो सकता था। क्योंकि वह हिन्दू अफ़गानों के देश में बिलकुल विदेशी था, और अपनी प्रजा से किसी बात में एकता पैदा करना उसके लिए ज़रूरी था। उसकी सेना में बहुत से हिन्दू सैनिक और सरदार भी थे, जो पच्छिम की लड़ाइयों में बड़ी वीरता दिखाते रहे। उसने हिन्दू मन्दिरों को ज़रूर लूटा; किन्तु उस युग में मन्दिरों में उचित से इतनी अधिक सम्पत्ति लगायी जाने लगी थी कि किसी न किसी राजपरिवर्तन में वे लुटे बिना न रह सकते थे। मथुरा के मन्दिरों की कारीगरी देख कर महमूद चकित हो गया, और भारत से कारीगर ले जा कर उसने गज़नी में अत्यन्त शानदार मसजिदें और महल बनवाये। जझौती की कृत्रिम पहाड़ी झीलों के नमूने पर उसने अफ़गानिस्तान में झीलें बनवायीं। उसके चाँदी के सिक्कों पर यह संस्कृत लेख पाया जाता है—

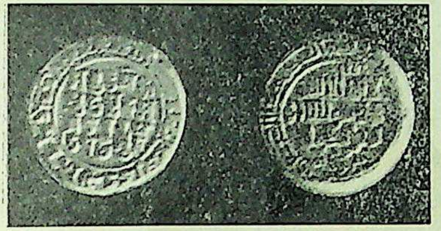

कलमे के संस्कृत अनुवाद सहित महमूद का टंका

[लाहौर म्यू०]

अव्यक्तमेकं मुहम्मद अवतार नृपति महमूद अयं टंको महमूदपुरे घटे हतो जिनायन संवत् ·•••·· ।

ताजिकीयें

अर्थात—"एक अव्यक्त (ला इलाह इल्लिल्लाह), मुहम्मद अवतार (मुहम्मद रसूल इल्लाह); राजा महमूद। यह टंका महमूदपुर (लाहौर) की टकसाल में पीटा गया, जिन (हज़रत) के अयन (भागने) का संवत्...।"

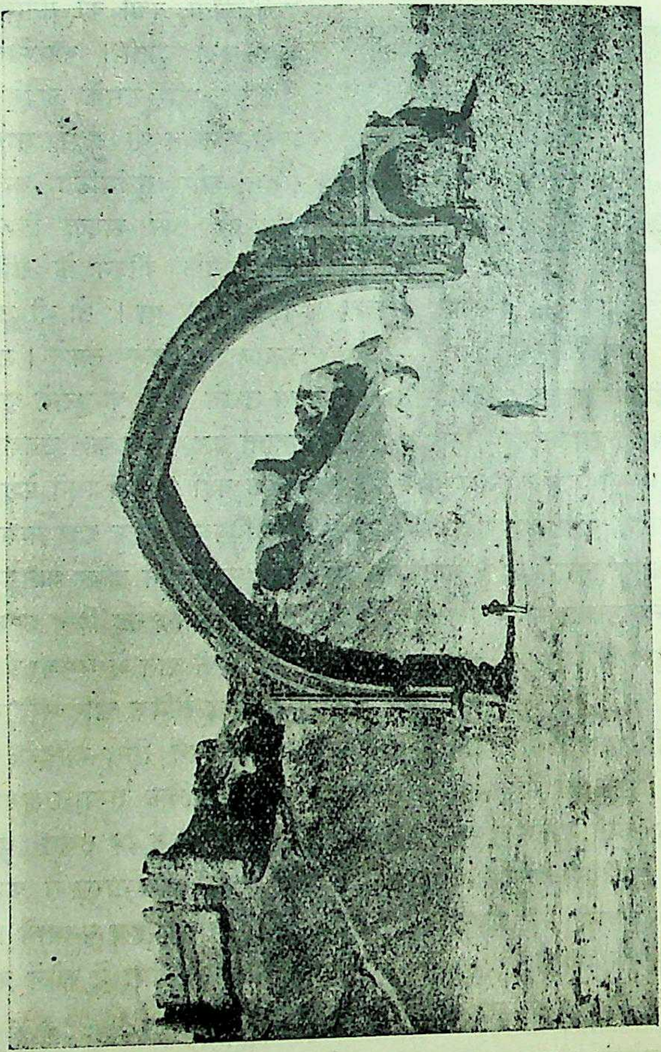

कला-ए-बुस्त, अफ़ग़ानिस्तान, में महमूद के समय की मेहराब [फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

§५. गजराज और राजेन्द्र चोल (९८५-१०४४ ई०)—महमूद की तुर्क सेना जब गज़नी से सोमनाथ की ओर बढ़ रही थी, उसी समय राजेन्द्र चोल का

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तामिल दल तांजोर से बंगाल पर टूट रहा था। उत्तर और पच्छिम भारत की जो दशा गज़नी के तुर्क राजा ने की, दक्खिन और पूरब की वही दशा तांजोर के

गज़नी में महमूद के बनवाये एक ताल की पाल;—बाँये तरफ़ की नयी पाल अमीर हबीबुर्रहमान की बनवायी हुई है।

[फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

चोल राजाओं ने की। राजराज चोल ९८५ ई० में तांजोर की गद्दी पर बैठा।

पांड्य और केरल को उसने पूरी तरह वश में किया, वेंगि के चालुक्यों और कलिंग पर आधिपत्य जमाया, कर्णाटक पर चढ़ाई कर तैलप के बेटे सत्याश्रय को चार बरस की लड़ाई के बाद बुरी तरह हराया। स्थल और जल सेना से उसने सिंहल को भी जीत लिया, और लकदिव और मालदिव को अपने राज्य में मिला लिया। तांजोर में उसका बनवाया विशाल मन्दिर अब तक मौजूद है। उसके राज्य का शासन बहुत ही बाक़ायदा था। प्रत्येक ग्राम की अपनी पंचायत थी, और उन पंचायतों के प्रतिनिधि तांजोर के मन्दिर में इकट्ठे होते थे।

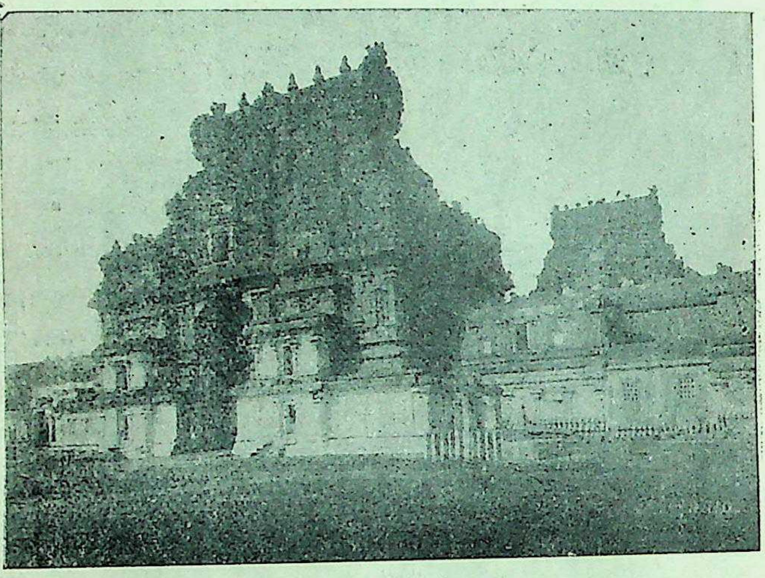

राजराज का बनवाया बृहदीश्वर मन्दिर, तांजोर—भीतरी गोपुर का दृश्य [भा० पु० वि०]

राजराज के बाद राजेन्द्र चोल राजा बना (१०१२ ई०)। उसने अपने जंगी बेड़े से श्रीविजय ("मलाया" प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा) के शैलेन्द्र* राजा संग्राम-विजयोत्तुंगवर्मा पर हमला कर उसे जीता और बृहत्तर भारत का बड़ा अंश अपने अधीन किया। कलिंग के रास्ते उसने गौड़ (पच्छिमी बंगाल) के राजा महीपाल पर चढ़ाई कर उसे युद्ध में भगा दिया। गंगा तक विजय करने के कारण वह "गंगैकोंड" कहलाया। महमूद के प्रायः पन्द्रह बरस पीछे उसका देहान्त हुआ।

---

* देखिये ऊपर पृ० १५०, १७१।

अध्याय ५

पहले मध्य काल के अन्तिम राज्य

(लगभग १०१०-११६० ई०)

§१. महमूद के वंशज—महमूद के समय में ही गुज़्ज़ नाम की नयी तुर्क जातियाँ आमू के इस पार आयीं। उनके एक राजवंश का नाम सेल्जुक था। सेल्जुकों ने महमूद के पीछे सारे ईरान और पच्छिमी एशिया पर अधिकार कर लिया। अफ़गानिस्तान, पंजाब और सिन्ध में महमूद के वंशजों का अधिकार बचा रहा। महमूद के बेटे मसऊद (१०३०--४० ई०) के समय तिलक नाम का हिन्दू-अफ़गान पंजाब का शासक रहा। पंजाब से तुर्कों के कई हमले कन्नौज साम्राज्य और राजपूताने पर होते रहे।

§२. राजा भोज, गांगेयदेव और कर्ण (१०१०-१०७३ ई०)—भारतवर्ष के ठीक मध्य के केवल दो राज्य ऐसे थे जो तुर्कों और तामिलों के हमलों से बच गये थे। एक था मालवा और दूसरा चेदि। महमूद और राजेन्द्र के बाद ये दोनों भारत में मुख्य हो गये। मालवे के राजा भोज ने लगभग १००६ से १०५४ ई० तक राज्य किया। उसका नाम भारत का बचा-बचा जानता है। उसी समय चेदि का राजा गांगेयदेव (लगभग १०१५--४१ ई०) और उसका बेटा कर्ण (लगभग १०४१--७३ ई०) हुआ। कन्नौज और जभौती के निःशक्त हो जाने के कारण गांगेय ने प्रयाग और काशी पर उस समय अधिकार कर लिया था जब वे राज्य महमूद के साथ जीने-मरने की कशमकश में फँसे थे। फिर कर्ण ने राज पाते ही मगध पर चढ़ाई की। राजा महीपाल के बेटे नयपाल (१०२६--४१ ई०) और कर्ण के बीच में पड़ कर दीपंकर श्रीज्ञान नाम के बौद्ध आचार्य ने शान्ति करा दी। कर्ण अपने समय के भारत में सब से प्रतापी राजा था। हिमालय में कीर (नगरकोट) राज्य तक, जो तब महमूद के वंशजों के अधीन था, उसने चढ़ाइयाँ कीं और विजय पायीं। भोज ने और उसने तुर्कों से उत्तर हिन्दुस्तान को बहुत कुछ उबारा। थानेसर, हाँसी और नगरकोट के प्रदेश १०४४ ई० तक स्वतन्त्र हो गये। त्रिपुरी के अतिरिक्त काशी को भी कर्ण ने अपनी राजधानी बनाया। लगभग १०५४ ई० में उसने गुजरात के राजा भीम सोलंकी से मिल कर धारा नगरी पर चढ़ाई की। तभी भोज की मृत्यु हुई।

§३. कीर्तिवर्मा चन्देल और चन्द्र गाहड्वाल (१०४९--११०० ई०)—कुछ बरस बाद कीर्तिवर्मा चन्देल (लगभग १०५४--१०९९ ई०) ने चेदि के इस सर्व-विजयी कर्ण को परास्त किया। तब भोज के वंशज उदयादित्य ने भी मालवा राज्य का पुनरुद्धार किया (लगभग १०७५ ई०)। १०८० ई० में चन्द्रदेव गाहड्वाल (गहरवार) ने कन्नौज में एक नया मज़बूत राज्य स्थापित कर अन्तर्वेद को तुर्क हमलों से सुरक्षित किया। उसने कर्ण कलचुरि के उत्तराधिकारी से प्रयाग और बनारस भी वापिस ले लिये।

§४. राजेन्द्र चोल के वंशज (१०४५--११४२ ई०)—उधर राजेन्द्र चोल का बेटा राजाधिराज चोल तुंगभद्रा के किनारे कोप्पम् की लड़ाई में सोमेश्वर (१म) चालुक्य के हाथ मारा गया (१०५२ ई०)। उसी रणभूमि में उसके भाई राजेन्द्र परकेसरी ने मुकुट पहना और सोमेश्वर को हरा दिया। १०६८ ई० से चोल राजाओं ने श्रीविजय पर आधिपत्य छोड़ दिया। १०७४ ई० में चोल वंश में कोई पुरुष न रहा; तब राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता, जो वेंगि का राजकुमार था, तांजोर की गद्दी पर कुलोत्तुंग चोल नाम से बैठा, जिससे वेंगि का चालुक्य और तांजोर का चोल राज्य मिल कर एक हो गये। कुलोत्तुंग के समय उड़ीसा में भी राजेन्द्र गंगैकोंड का एक दोहता अनन्तवर्मा राज करता था। वह गंग वंश का था, पर चोल माता का बेटा होने से चोडगंग कहलाने लगा। उसने ७१ वर्ष (१०७६-११४७ ई०) तक उड़ीसा का सुशासन किया। पुरी का प्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर उसी के समय बना।

§५. कर्णाटक की प्रधानता; सेन और कर्णाट वंश (१०७५--११५६ ई०)—चोल राजाओं से पिटने के बावजूद भी कर्णाटक के नये राज्य में काफ़ी ज़ान थी। ११वीं शती के मध्य से वह फिर चमक उठा। सोमेश्वर का बेटा विक्रमांक चालुक्य अपने पिता से भी अधिक प्रतापी निकला (१०७६-११२५ ई०)। इन राजाओं के समय कर्णाटक की तूती फिर सारे भारत में बोलने लगी। १०वीं शती से ही कनाडे सिपाही भारत भर में प्रसिद्ध थे। १०८० ई० के करीब विजयसेन और नान्यदेव नामक दो कनाडे सैनिकों ने पाल राजाओं से बंगाल और तिरहुत छीन कर दो नये राज्य स्थापित किये। कर्णाटक का तब इतना प्रभाव था कि सुदूर कश्मीर में विक्रम चालुक्य का समकालीन राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई०) अपने दरबार में कर्णाटक की ही चाल-ढाल की नकल करता था। विजयसेन ने पाल राजा

से मगध भी लेना चाहा, और तिरहुत पर भी आधिपत्य जमाना चाहा, पर उन दोनों राज्यों ने चन्द्र गाहड़वाल से रक्षा पायी।

§६. **गुजरात के सोलंकी और अजमेर के चौहान** (१०९०--११९२ ई०)—११वीं शती के अन्त में अणहिलवाड़ा का चालुक्य राज्य भी फिर सँभल गया। वहाँ सिद्धराज जयसिंह (१०९३-११४२ ई०) और कुमारपाल (११४२-७३ ई०) नाम के दो प्रतापी और योग्य राजा हुए। बारह बरस लड़ कर सिद्धराज ने मालवा का राज्य जीत लिया। सोमनाथ के मन्दिर को इन राजाओं ने अब पत्थर का बनवा दिया।

इनके पड़ोसी और समकालीन चौहान अजयराज और आना थे। अजयराज ने अजमेर बसा कर साँभर के बजाय उसे राजधानी बनाया। उसके बेटे आना को पहले तो सिद्धराज ने हराया, पर पीछे अपनी लड़की कांचनदेवी ब्याह दी। आना की पहली रानी से विग्रहराज उर्फ़ बीसलदेव पैदा हुआ, और कांचनदेवी से सोमेश्वर। इसी बीसलदेव ने ११५० ई० के करीब हाँसी और दिल्ली को जीत कर अजमेर राज्य में मिलाया। दिल्ली नगरी की स्थापना उससे करीब १०० साल पहले अनंगपाल नामक एक तोमर सरदार ने की थी। बीसलदेव ने पंजाब के तुर्कों को पीछे ढकेला। समूचा राजपूताना उसके अधीन था। ११६३ ई० में दिल्ली की अशोक वाली प्रसिद्ध लाट पर, जो तब अम्बाला के उत्तर थी, उसने एक लेख खुदवाया जिसका अभिप्राय यह है कि "विन्ध्याचल से हिमालय तक राजा बीसल ने विजय की, म्लेच्छों (विदेशियों) को उखाड़ कर आर्यावर्त्त को फिर से यथार्थ आर्यावर्त्त बनाया। चौहान राजा विग्रहराज अब अपनी सन्तान से कहता है कि इतना तो हमने किया, बाकी जो रहा उसे पूरा करने का उद्योग तुम मत छोड़ना।"

बीसलदेव के पीछे सोमेश्वर अजमेर की गद्दी पर बैठा। उसका विवाह चेदि की एक राजकुमारी कर्पूरदेवी से हुआ था। उनका पुत्र प्रसिद्ध पृथ्वीराज चौहान हुआ (११७९–९२ ई०)। पृथ्वीराज वीर राजा था, पर उसमें वह राजनीतिक दूरदर्शिता न थी जो उसके चचा बीसलदेव में थी। बजाय इसके कि वह बीसलदेव की वसीयत पर ध्यान दे कर पंजाब की तरफ़ अपनी वीरता आजमाता, उसने पूरब की तरफ़ उसका दुरुपयोग किया। महमूद के समय जझौती का राज्य कन्नौज से भी अधिक मज़बूत था। जमना के दक्खिन ग्वालियर तक के प्रदेश जझौती के अधीन थे। फिर जझौती के राजा कीर्त्तिवर्मा ने ही भारत-विजयी कर्ण को हराया था।

पृथ्वीराज ने उसके वंशज परमर्दी चन्देल पर चढ़ाई कर धसान नदी तक के प्रदेश उससे छीन लिये (११८२ ई०)। किन्तु उसी समय पृथ्वीराज का एक प्रबल शत्रु पंजाब में पैर जमा रहा था।

§७. गाहड्वाल वंश, ११००-११९४ ई०—उधर कन्नौज में चन्द्र गाहड्वाल का पोता गोविन्दचन्द्र (१११४–५४ ई०), उसका पुत्र विजयचन्द्र, और विजयचन्द्र का पुत्र जयच्चन्द्र भी प्रबल और योग्य राजा हुए। कन्नौज के गौरव को उन्होंने फिर से स्थापित किया। वे काशी के राजा भी कहलाते थे। गोविन्दचन्द्र के समय चेदि के राजा ने बंगाल के राजा विजयसेन के पोते लक्ष्मणसेन (१११९–११७० ई०) से मिल कर बनारस वापिस लेने की कोशिश की। पर गोविन्दचन्द्र ने उन दोनों को परास्त किया और लक्ष्मणसेन को हरा कर मगध भी ले लिया। पीछे, जब बीसलदेव चौहान दिल्ली और हाँसी को जीत रहा था, लगभग तभी गोविन्दचन्द्र ने मुंगेर तक अपना अधिकार कर लिया (११४५ ई०)। उसके बाद १२वीं शती के अन्त तक मगध और अंग गाहड्वालों के अधीन रहे।

§८. धोरसमुद्र और ओरंगल राज्य (११११ ई० से)—कल्याणी का विक्रमांक चालुक्य यद्यपि प्रबल राजा प्रसिद्ध था, तो भी उसके पिछले समय में उसकी सीमाओं के दो सामन्त सिर उठाने लगे। ११११ ई० में मैसूर अर्थात् दक्खिनी कर्णाटक में यादवों का एक वंश प्रबल हो उठा। उस वंश की छेड़ (चिढ़ाने) का नाम होयशल था, और उसकी राजधानी धोरसमुद्र। १११७ ई० में चालुक्य राज्य की पूरबी सीमा पर उत्तरी तेलंगाना में काकतीय वंश के सामन्तों ने सिर उठाया। उनकी राजधानी ओरंगल थी। चालुक्य राज्य को ओरंगल ने उड़ीसा से और धोरसमुद्र ने चोल राज्य से अलग कर दिया।

§९. देवगिरि के यादव (११८९ ई० से)—फिर ११५६ ई० के बाद कल्याणी का राज्य बिलकुल ढीला पड़ने लगा। उसके किनारों के प्रदेश धोरसमुद्र के यादवों और ओरंगल के काकतीयों ने दबा लिये थे। बाकी ठेठ महाराष्ट्र बचा, उसे भी ११८९ ई० में उत्तरी महाराष्ट्र के भिल्लम नामक एक यादव सरदार ने छीन लिया, और देवगिरि में अपनी राजधानी स्थापित की।

अध्याय ६

पहले मध्य काल की सभ्यता

§ १. **बौद्ध धर्म की अवनति, वज्रयान**—हर्षवर्धन-युग का जीवन पहले-पहल गुप्त-युग के जीवन सा लगता है, पर उसमें कई नयी प्रवृत्तियाँ शुरू हो गयी थीं। हर्ष के समय बौद्ध धर्म उन्नति पर था, तो भी उसमें अवनति का बीज पड़ चुका था। कम से कम सिन्धु के प्रान्त में वह अवनति स्पष्ट दिखायी देती थी। युवानच्वाङ का कहना है कि वहाँ के भिक्खु-भिक्खुनी निठल्ले, कर्तव्य-विमुख और पतित थे। सिन्ध पर जब अरब आक्रमण हुआ तब वहाँ भी श्रमणों का निकम्मापन स्पष्ट प्रकट हुआ। दूसरे प्रान्तों की हालत अच्छी थी, पर वहाँ भी यह बुरी प्रवृत्ति शुरू हो चुकी थी। महायान में से एक नया पन्थ वज्रयान निकल आया। वह बौद्ध वाममार्ग छठी शती ई० में आन्ध्र देश के श्रीपर्वत में पहले-पहल प्रकट हुआ। महायान बुद्ध को संसार के उद्धारक रूप में देखता था। वज्रयान ने उसे "वज्रगुरु" बना दिया। वज्रगुरु वे उस आदर्श पुरुष को कहते थे, जिसे अलौकिक "सिद्धियाँ" प्राप्त हों। उन सिद्धियों को पाने के लिए अनेक गुह्य साधनाएँ करनी पड़ती थीं। आठवीं से ग्यारहवीं शती तक वज्रयान के ८४ सिद्ध हुए। प्रसिद्ध गोरखनाथ उन्हीं ८४ में से एक था। ७४७ ई० में नालन्दा महाविहार के शान्तरक्षित नामक आचार्य निमन्त्रण पा कर तिब्बत गये। उन्होंने वहाँ पद्मसम्भव नामक सिद्ध को भी बुलवाया। पद्मसम्भव को तिब्बती अब भी अपना गुरु मानते हैं। फिर १०४०–४२ ई० में विक्रमशिला विहार से जो आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान उर्फ़ अतिशा तिब्बत गया, वह तो स्वयम् वज्रयानी था।

§ २. **शंकराचार्य**—बौद्ध धर्म की अवनति का मुख्य कारण उसके अन्दर की ये नयी प्रवृत्तियाँ थीं। वैदिक और पौराणिक धर्म का मुकाबला भी उसके साथ जारी था। सातवीं शती में कुमारिल नामक विद्वान् ने फिर से वैदिक यज्ञों को चलाना चाहा। फिर ७८८ ई० में केरल देश में शंकराचार्य उत्पन्न हुए। कहा जाता है कि शंकर ने बौद्ध मत को भारत से उखाड़ दिया। सच बात यह है कि शंकर के विचारों पर बौद्ध दार्शनिक वसुबन्धु की पूरी छाप है। इसी कारण वे

प्रच्छन्न बौद्ध (छिपे बौद्ध) कहलाते हैं। और चूँकि उन्होंने अपने दर्शन में बौद्धों की मुख्य बातें अपना लीं, इसलिए बौद्ध दर्शन अनावश्यक सा हो गया। शंकर ने घूम-घूम कर सारे भारत में अपने मत का प्रचार किया। एक बार मंडन मिश्र नाम के विद्वान् से उनका शास्त्रार्थ हुआ, जिसमें मंडन की विदुषी स्त्री मध्यस्थ बनायी गयी, और उसने अपने पति के विरुद्ध फैसला दिया! शंकर ने भारत के चार कोनों में अपने चार मठ स्थापित किये—एक केरल में शृंगेरी मठ, दूसरा गढ़वाल में बदरिकाश्रम, तीसरा पुरी में और चौथा द्वारिका में। भारतवर्ष के समूचे विचार पर शंकर का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

दो-तीन शताब्दियों तक तो उनके विचारों के आगे दूसरी कोई विचार-पद्धति टिकने न पायी। किन्तु वे प्रच्छन्न बौद्ध थे। आस्तिक लोग धीरे-धीरे अनुभव करने लगे कि उनकी पद्धति में भक्ति को कोई स्थान नहीं है। इसी कारण पीछे ग्यारहवीं शती से आस्तिक विद्वान् उसके विरोध में आवाज़ उठाने लगे। उस विरोध के पहले नेता रामानुज थे जो तामिल देश में १०१६ ई० में पैदा हुए।

§३. पौराणिक धर्म की अवनति, मूर्त्तिपूजा और भक्ति मार्ग—किन्तु इन आचार्यों के ऊँचे-ऊँचे विचार साधारण जनता के लिए नहीं थे। वह अपने देवताओं को ही पूजती रही। परन्तु जनता की वह सरल भक्तिमयी पौराणिक पूजा भी, जिसने सातवाहन और गुप्त युगों में एक नया जीवन जगाया था, अब आडम्बर से घिर गयी। देवताओं के सुनहले मन्दिर बनने लगे; उनका साज-शृंगार होने लगा और उनकी पूजा एक भारी प्रपंच हो गयी। जीवित देवता मानों जड़ हो गये। महायान से जैसे मन्त्रयान और वज्रयान पैदा हुए, वैसे ही शैव मत में पाशुपत और कापालिक, वैष्णव मत में गोपी-लीला, और शाक्त सम्प्रदाय में आनन्दभैरवी की पूजा आदि घोर और अश्लील पन्थ चल पड़े। "सिद्धि" पाना अब सभी पन्थों में जीवन का मुख्य ध्येय बन गया। ये "अतिमार्ग" या "वाममार्ग" पहले मध्य काल के पिछले अंश में विशेष रूप से बढ़े।

शंकर और रामानुज जैसे आचार्यों के अतिरिक्त अनेक भक्त और सुधारक भी इस युग में पैदा हुए। तामिल देश में तो वैष्णव और शैव भक्तों का एक सिलसिला ही जारी रहा। वैष्णव भक्त वहाँ आलवार और शैव भक्त नायन्मार कहलाते थे। उनकी तामिल रचनाओं का वेद और उपनिषद् की तरह आदर किया जाता है। अवन्तिवर्मा के समय (८५४ ई०) कश्मीर में शैव धर्म में सुधार की एक लहर

चली। ११वीं शती के अन्त में कर्णाटक में लिंगायत या वीरशैव नाम का एक और सुधार-पन्थ चला। अपने अच्छे अंश के कारण ही पौराणिक धर्म में अब तक इतनी शक्ति बची रही कि वह सातवीं से बारहवीं शती तक इस्लाम का प्रायः सफलता से बराबर मुकाबला करता रहा।

परन्तु उसमें अन्ध विश्वास भी काफ़ी था। कन्नौज के प्रतिहार सम्राटों के लिए कई ऐसे मौके आये जब वे मुलतान को आसानी से जीत सकते थे। किन्तु जब वैसा अवसर आता तभी मुलतान के मुस्लिम शासक सूर्य मन्दिर को तोड़ने की धमकी देते, और कन्नौज की सेना लौट जाती। दो-एक दृष्टान्त इससे उल्टे भी मिलते हैं। कश्मीर के राजा शंकरवर्मा (८८३-९०२ ई०) ने अपनी आय बढ़ाने के लिए जो उपाय किये, उनमें मन्दिरों की जायदाद जब्त करना भी एक था। और ग्यारहवीं शती के अन्त में—क़ीर्तिवर्मा चन्देल, विक्रम चालुक्य, चन्द्र गाहड्वाल और सिद्धराज जयसिंह के ज़माने में—कश्मीर के राजा हर्ष (१०८९-११०१ ई०)

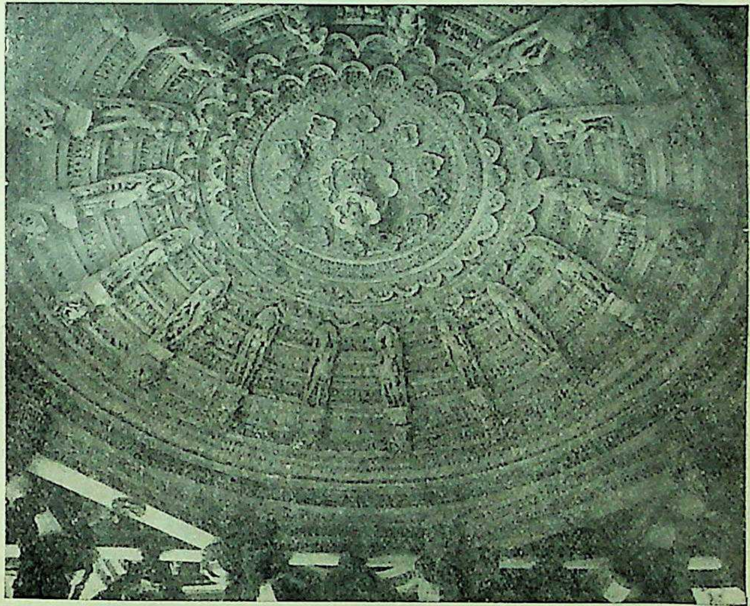

विमलवसही (विमलशाह का बनवाया मन्दिर, १०३१ ई०), देलवाड़ा, आबू, की छत का दृश्य [भा० पु० वि०]

ने एक "देवोत्पाटन-नायक" अर्थात् मन्दिर उखाड़ने वाला अफ़सर रक्खा, जिसका काम था देवमन्दिरों को चुपके-चुपके बिगड़वा देना, और जब लोग उन्हें पूजना छोड़ दें तब ज़ब्त कर लेना। अन्ध विश्वास में मुसलमान भी हिन्दुओं से बहुत पीछे न थे। महमूद के बेटे मसऊद के राज्य पर सेलजुकों का हमला होने पर उसने

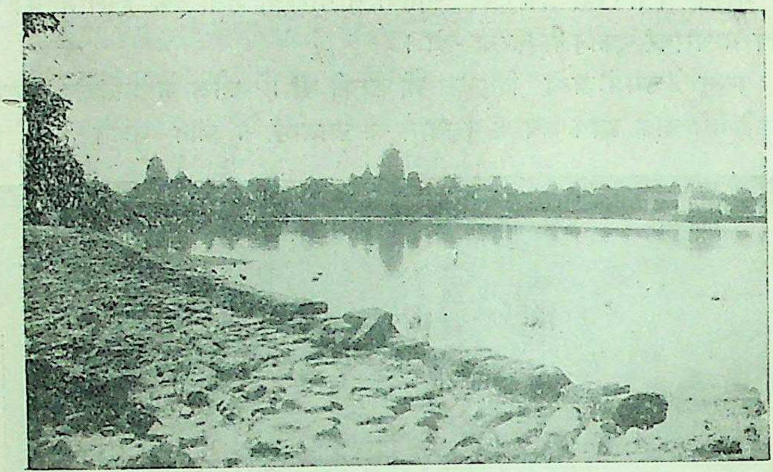

बिन्दु-सरोवर के किनारे लिंगराज और अन्य मन्दिर, भुवनेश्वर, ज़ि० पुरी [भा० पु० वि०]

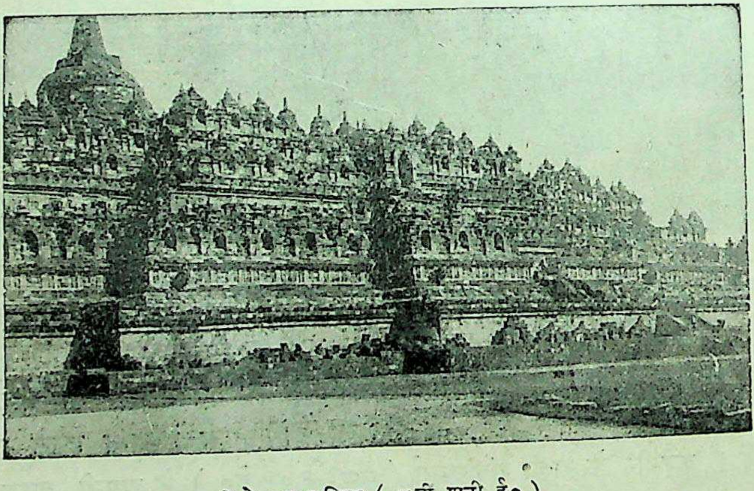

बोरोबुदुर मन्दिर (८वीं शती ई०)

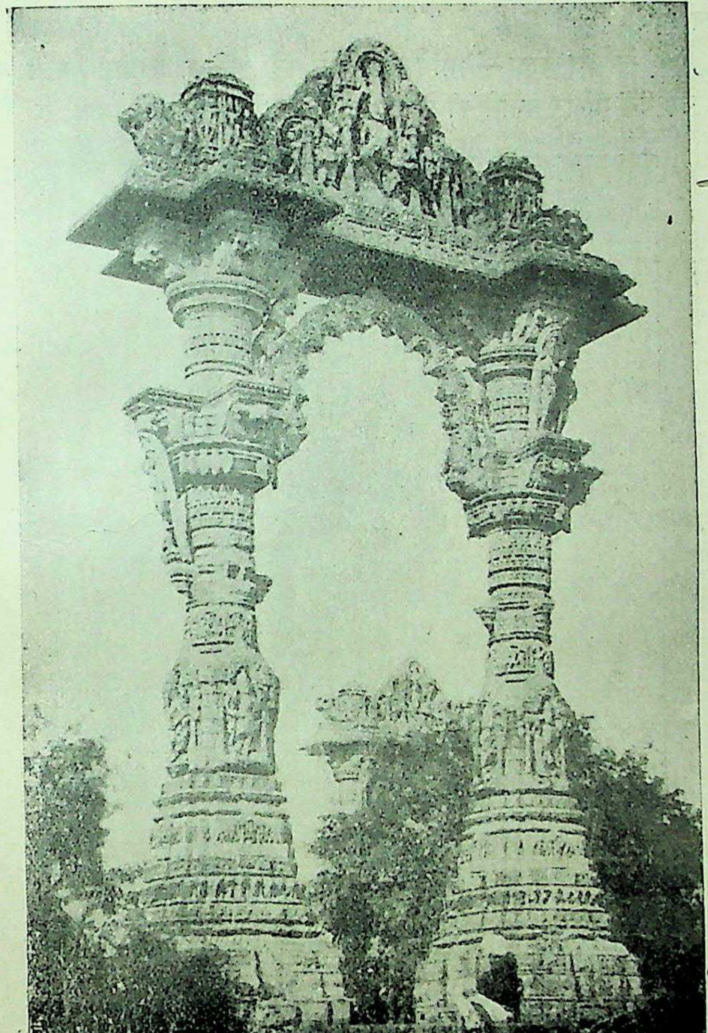

वडनगर (गुजरात) के एक मन्दिर का तोरण—सोलंकी राज्यकाल का ।

[राय कृष्णदास के सौजन्य से]

शुरू में उनका मुकाबिला इसलिए नहीं किया कि पच्छिमी तारा उसके प्रतिकूल था !

§४. **ललित कला**— धार्मिक श्रद्धा से कहीं अधिक ललित कला की रुचि थी जो बड़े-बड़े मन्दिर बनाने की प्रेरणा देती थी। पिछले कई युगों से देश में पूंजी जमा हो रही थी। वह फालतू पूंजी अब सुन्दर और विशाल मन्दिर बनानें और अन्य कारीगरी के कामों में खर्च हुई। यही कारण था कि महमूद के अनेक मन्दिर ढहाने और लूटने से भी हिन्दुओं की वह प्रवृत्ति दबने न पायी।

उदयपुर (ग्वालियर राज्य) में उदयादित्य का उदयेश्वर मन्दिर [ग्वालियर पु० वि०]

गुजरात के चालुक्य राज्य के दक्खिनी छोर पर महमूद जब सोमनाथ को ढहा रहा था, उसी समय उसी राज्य के उत्तरी छोर पर आबू के पास देलवाड़ा का वह विशाल मन्दिर खड़ा हो रहा था, जो संगमरमर की बारीक नक्काशी के काम में भारत भर में एक अनूठी रचना है! और स्वयम् महमूद ने क्या अपनी लूट के बड़े अंश को गज़नी के भव्य महलों और मसिजदों पर खर्च न कर दिया? और पीछे के विजेताओं ने क्या उनकी वही गति न की जो महमूद ने सोमनाथ की की थी?

काफ़िरकोट का मन्दिर [भा० पु० वि०]

ललित कला की उन्नति में इस युग के भारतवासियों ने सचमुच कमाल किया। अजन्ता और सित्तनवासल की लेणियों के चित्रों, मामल्लपुरम् के रथों, वेरूल के कैलाश-मन्दिर और तांजोर के राजराजेश्वर मन्दिर आदि का उल्लेख हो चुका है। मालवे में बाघ के गुहामन्दिरों में, सिंहल के सीगिरिय (श्रीगिरि) नामक स्थान में और चीन-हिन्द में दन्दान-ऊलिक, मीरान आदि के अवशेषों में सातवीं शती की भारतीय चित्रकला के सुन्दर नमूने पाये गये हैं। भारतीय स्थापत्य और मूर्त्तिकला भी मध्य युग में अपने सबसे मनोरम रूप में प्रकट हुई—गुप्त-युग का सा ओज उनमें नहीं रहा, पर लालित्य अवश्य बढ़ गया। उड़ीसा में भुवनेश्वर के मन्दिर, खजुराहो में चन्देल राजाओं के बनवाये मन्दिर, डेराइस्माइलखाँ ज़िले में काफ़िरकोट का मन्दिर और मालवे में उदयादित्य का मन्दिर आदि उसके कुछ नमूने हैं। भारत और बृहत्तर भारत के किसी भी प्रान्त से इस युग की पत्थर या धात की जो मूर्त्तियाँ मिलती हैं, उनमें एक अनोखा सौन्दर्य दिखायी देता है। दक्खिन भारत में नटराज की प्रसिद्ध कांस्य-मूर्त्तियाँ इसी युग के अन्त में बनने लगीं। इसी युग में श्रीविजय के

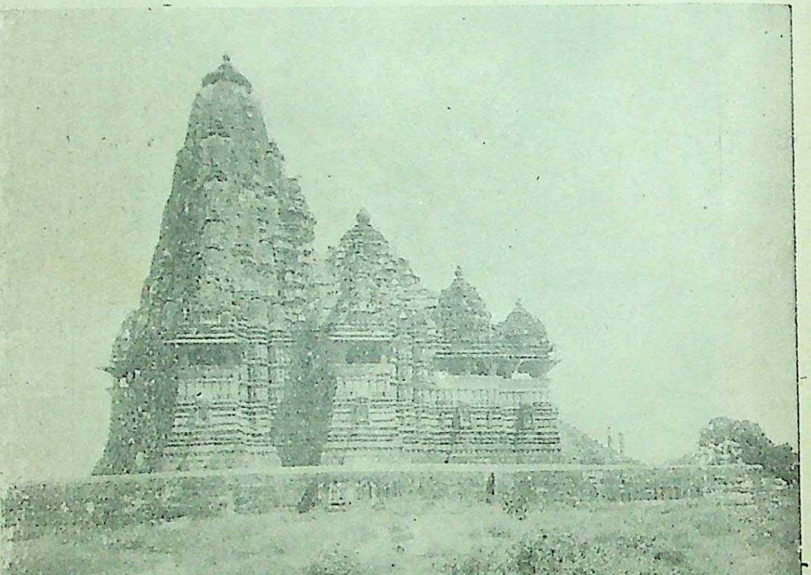

कंडरिया महादेव, खजुराहो [भा० पु० वि०]

बौद्ध शैलेन्द्र राजाओं ने जावा के बोरोबुदुर स्थान में वे अनोखे मन्दिर बनवाये जिनको "पत्थर में तराशे हुए महाकाव्य" कहा जाता है। नौवीं शती के अन्त में जावा श्रीविजय से अलग हो गया और तब वहाँ स्वतन्त्र शैव राजा दक्ष ने प्राम्बनन के मन्दिर बनवाये, जिनपर रामायण की सारी कहानी मूर्तियों में चित्रित है।

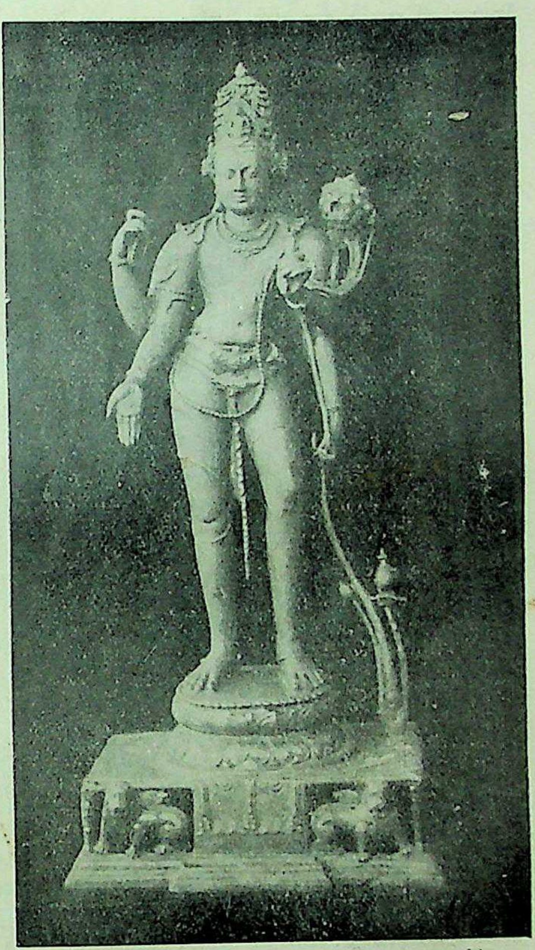

कुर्किहार, जि० गया, से पायी गयी एक कांस्य बोधिसत्व मूर्त्ति—पाल-युग में मगध की मूर्त्तिकला का नमूना [पटना म्यू०]

§५. विद्या और साहित्य—विद्या और साहित्य की उन्नति का सिलसिला गुप्त युग के एक दो शती बाद भी जारी रहा। छठी शती में ज्योतिषी वराहमिहिर हुआ, और सातवीं में ब्रह्मगुप्त। भवभूति कवि, जिसे यशोवर्मा की सभा से ललितादित्य कश्मीर ले गया था, अपनी रचनाओं में कालिदास से टक्कर लेता है। दर्शन में धर्मकीर्त्ति, शान्तरक्षित और शंकर के ग्रन्थ भारतीय विचार की ऊँची उड़ान को सूचित करते हैं।

इनके बाद भी अनेक कवि, दार्शनिक, लेखक और विचारक होते रहे, किन्तु उनकी रचनाओं में वह मौलिकता और ताज़गी नहीं है जो

पहले की रचनाओं में होती थी। कविता में सहज सुन्दरता का स्थान अलंकारों की भूषा ने ले लिया; दर्शन में नये विचार के बजाय बाल की खाल उधेड़ना शुरू हो गया; विज्ञान की प्रगति रुक गयी, और कानून के लेखक अपना काम केवल पुराने शास्त्रों की व्याख्या करना समझने लगे। भारतीय विचार आगे बढ़ना छोड़ कर जहाँ तक पहुँच चुका था उतने में ही चक्कर काटने लगा। लगभग ८०० ई० का कश्मीरी

सुहानिया (ग्वालियर राज्य) से पाया गया सरस्वती-मूर्त्ति—आरम्भिक मध्य युग की।

[ग्वालियर पु० वि०]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दार्शनिक जयन्त भट्ट सीधे शब्दों में कहता है कि "हममें नयी वस्तु की कल्पना करने की शक्ति कहाँ है ?"

परन्तु विचार की प्रगति बन्द हो जाने पर भी इस युग में विद्या और शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक रहा। मगध के विहार बौद्ध शिक्षा के बड़े केन्द्र थे; उन में सुदूर देशों से विद्यार्थी आते थे। सन् ६७५ से ६८५ ई० तक इ-चिङ नामक चीनी विद्वान् नालन्दा में रह कर वहाँ पढ़ा; उस समय वहाँ पर ३५०० से ५००० छात्र पढ़ते थे। राजा देवपाल ने श्रीविजय के राजा बलपुत्रदेववर्मा की प्रेरणा से वहीं एक और विहार बनवाया, और नगरहार (जलालाबाद, अफ़गानिस्तान) के अफ़गान विद्वान् वीरदेव को उसका मुख्य आचार्य नियत किया। तिब्बत को सभ्यता सिखाने वाले आचार्य शान्तरक्षित नालन्दा के और अतिशा विक्रमशिला विहार के थे। शान्तरक्षित ने नालन्दा विहार के ही नमूने पर तिब्बत में सम्ये विहार स्थापित कराया। नालन्दा के ही नमूने पर जापान में नारा विहार बना। जापानी लोग इसी युग में बौद्ध शिक्षा पा कर सभ्य बने। श्रीविजय उन दिनों संस्कृत

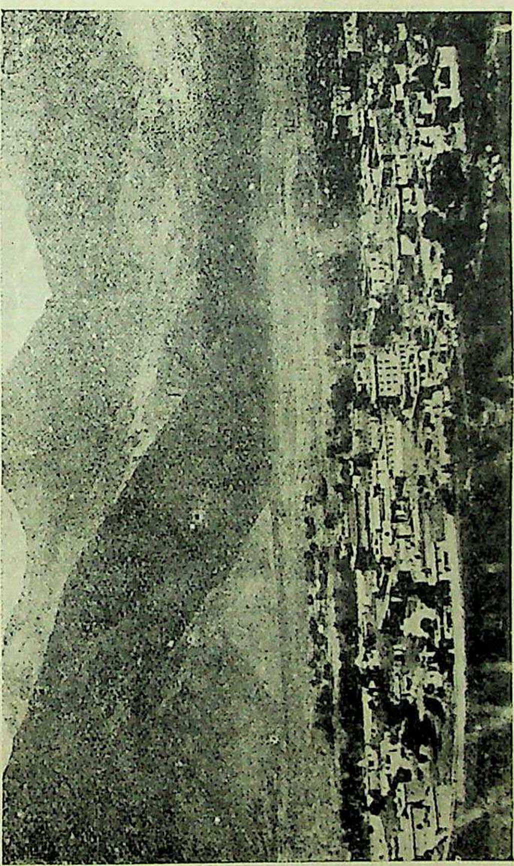

सम्ये विहार [राहुल जी के सौजन्य से]

विद्या का बड़ा केन्द्र था। स्वयम् अतिशा तिब्बत जाने से पहले श्रीविजय के आचार्य धर्मकीर्ति के पास गया था।

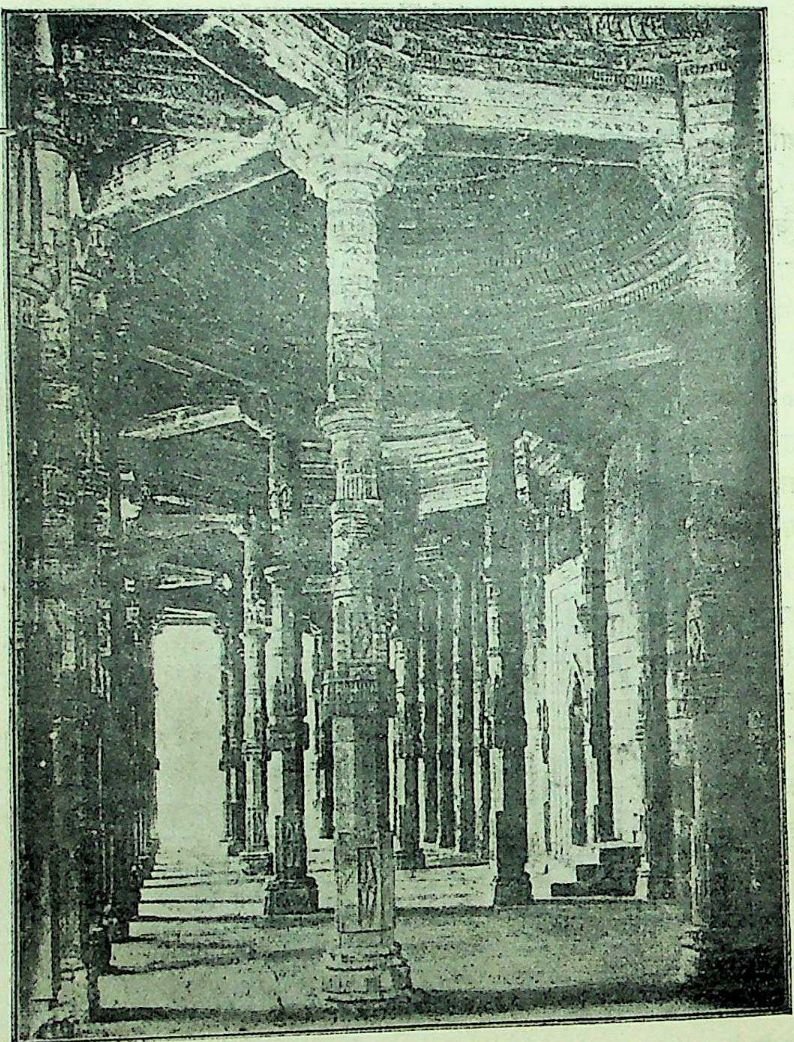

'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा', अजमेर [भा० पु० वि०]

मगध और श्रीविजय जैसे बौद्ध शिक्षा के केन्द्र थे, वैसे ही कन्नौज वैदिक और पौराणिक का। कन्नौज के ब्राह्मणों ने इस युग में दूसरे प्रान्तों में जा-जा कर भी

वैदिक और पौराणिक रीतियों को स्थापित किया। प्रतिहार राजा महेन्द्रपाल का गुरु प्रसिद्ध कवि राजशेखर था जिसकी रचनाओं में काफ़ी ताज़गी पायी जाती है। किन्तु कन्नौज के राजा जयचन्द्र के दरबारी कवि श्रीहर्ष की रचना में हमें पिछली अलंकारों से लदी कविता का ठीक नमूना मिलता है।

दूसरे सब राष्ट्रों में भी विद्या की काफ़ी उन्नति हुई, पर कवियों और विद्वानों की खान के रूप में कश्मीर जैसी प्रसिद्धि शायद ही किसी ने पायी हो। वहाँ के कल्हण पंडित ने ११४६ ई० में राजतरंगिणी नामक कश्मीर का इतिहास लिखा, जो भारतीय साहित्य का एक रत्न है।

"नालन्दामहाविहारीयार्यभिक्षुसंघस्य"—नालन्दा की खुदाई में पायी गयी नालन्दा विद्यापीठ की मुहर, असल परिमाण।

[भा० पु० वि०]

अन्तिम हिन्दू राजाओं में भोज का नाम विद्या-प्रचार के लिए आज तक प्रसिद्ध है। भोज ने सब प्राचीन विद्याओं का फिर से सम्पादन और संकलन करने की एक भारी योजना चलायी। उसने धारा में एक बड़ा विद्यालय बनवाया, जिसकी इमारत अब नहीं बची। दिल्ली के विजेता बीसलदेव चौहान ने भी अजमेर में वैसा ही एक विद्यालय बनवाया; उसकी इमारत अब अढ़ाई दिन का झोंपड़ा कहलाती है। विक्रमांक चालुक्य की सभा में विज्ञानेश्वर नामक पंडित था, जिसने याज्ञवल्क्य-स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखी। उस तरह की कानूनी टीकाएँ इस युग में और भी लिखी गयीं, पर मिताक्षरा ने बड़ा नाम पाया, और आज तक भारत के बड़े अंश में हिन्दुओं का सामाजिक और पारिवारिक कानून उसी के अनुसार माना जाता है।

§ ६. देशी भाषाएँ—संस्कृत और प्राकृतों में तो पढ़ना-लिखना चलता ही था, पर इस युग से हमारी 'देशी भाषाएँ' भी शुरू हो गयीं। हेमचन्द्र नामक जैन आचार्य सिद्धराज जयसिंह के गुरु के समान था; उसने प्राकृतों का वैसा ही व्याकरण लिखा जैसा पाणिनि ने संस्कृत का लिखा था। ८४ सिद्धों के गीतों और दोहों में हिन्दी कविता का सबसे पहला नमूना है। उन सिद्धों की वाणियों के तिब्बती अनुवाद भी हैं।

तामिल साहित्य सातवाहन युग से शुरू हुआ था। अब उसमें वैष्णव और शैव भक्तों ने अनेक रचनाएँ कीं। तेलगु साहित्य भी पूरबी चालुक्यों के प्रोत्साहन से दसवीं शती में शुरू हुआ। गुप्त-युग में जैसे तुखारी और खोतनदेशी भाषाओं में साहित्य शुरू हुआ था, वैसे ही आठवीं शती से जावा की देशी भाषा में संस्कृत के प्रभाव से ग्रन्थ लिखे जाने लगे। उस भाषा को 'कवि' कहते हैं।

§७. सामुद्रिक जीवन और परला हिन्द—गुप्त-युग की तरह इस युग में भी भारतवर्ष में बृहत्तर भारत सम्मिलित गिना जाता था, और भारतवासियों का सामुद्रिक जीवन उन्नत दशा में था। श्रीक्षेत्र, कम्बुजराष्ट्र, चम्पा और श्रीविजय से भारतीय राज्यों का घनिष्ठ सम्बन्ध बना हुआ था और वहाँ भारतीय सभ्यता उन्नत दशा में थी। नौवीं शती के अन्त में कम्बुज के राजा यशोवर्मा (८८९-९०९ ई०) ने नयी राजधानी यशोधरपुर की स्थापना की, जो अब अंकोर-थोम कहलाती है। १२-वीं शती के प्रारम्भ में वहाँ एक वैष्णव मन्दिर बना, जिसकी कारीगरी देख कर आज भी सभ्य ज़गत् के लोग चकित होते हैं। वह मन्दिर अब अंकोर-वाट अर्थात् नगर का मन्दिर कहलाता है। उसमें भी प्राम्बनन के मन्दिरों की तरह रामायण की समूची कहानी मूर्त्त दृश्यों में अंकित है।

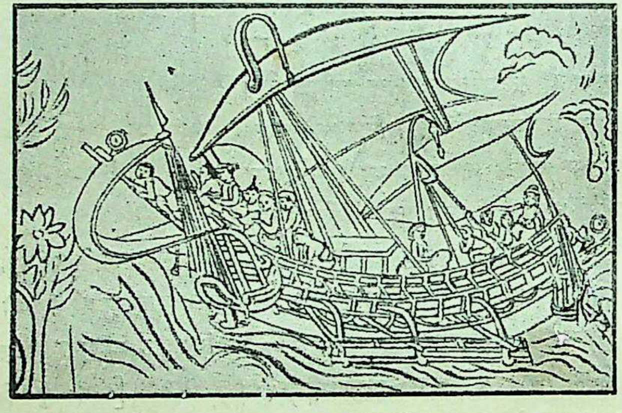

भारतीय उपनिवेश में मातृभूमि से एक जहाज़ का पहुँचना

बोरोबुदुर मन्दिर का एक मूर्त्त दृश्य।

आठवीं शती से भारतीय समुद्र में अरब लोगों की नावें भी चलने लगीं। जब पौराणिक धर्म जनता के निचले दर्जों की उपेक्षा करने और उन्हें घृणित मानने लगा, तब इन दूरगामी मल्लाहों को इस्लाम ने आकर्षित किया। इस काल के अन्त में शिक्षित भारतवासी सामुद्रिक जीवन की तरफ़ से उदासीन होने लगे।

मामल्लपुरम्-समुद्रतट पर नाविकों को रास्ता दिखाने के लिए पल्लव राजाओं का बनुवाया ज्योतिःस्तम्भ [भा० पु० वि०]

§८. राजनीतिक और आर्थिक जीवन—मध्य काल के भारतवासी अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों और अधिकारों के लिए वैसे सजग नहीं रहे, जैसे उनके पुरखा होते थे। राजकीय मामलों की तरफ़ प्रजा की उपेक्षा इसी काल से होने लगी। मध्य

काल में किसी गण-राष्ट्र का नाम भी नहीं सुना जाता। तो भी गाँवों की पंचायतें ग्यारहवीं-बारहवीं शती तक खूब सुसंगठित रहीं। चोलों के अधीन प्रत्येक गाँव में एक बड़ी सभा होती थी; उसके अलग-अलग महकमों के लिए पाँच-पाँच आदमियों की कमिटियाँ होती थीं। उन सभाओं और कमिटियों के चुनाव के नियम बड़ी बारीकी से निश्चित किये गये थे। गाँव की खेती, सिंचाई, मन्दिरों की देख-रेख, कर की वसूली, अपराधियों को पकड़ना सब पंचायत का काम था। मन्दिर उन पंचायतों के सभा-भवन का काम देते थे। साथ ही वे शिक्षा और पूजा के भी केन्द्र थे। चोल राज्य की शासन-पद्धति इन सब ग्राम-पंचायतों पर निर्भर थी। दूसरे सब राज्यों का शासन भी नियमित और उदार था, और बहुत कुछ गुप्त शासन के ढाँचे पर चला आता था।

इस युग तक भी राजा देश की भूमि का मालिक न होता था। कश्मीर के इतिहास की एक मनोरंजक घटना इस प्रश्न पर प्रकाश डालती है। राजा मुक्तापीड ललितादित्य का बड़ा भाई चन्द्रापीड वज्रादित्य जब वहाँ का राजा था तो उसने एक मन्दिर बनवाने की आज्ञा दी। कुछ समय बाद राज्याधिकारियों ने उसे सूचना दी कि मन्दिर की नींव पड़ चुकी है, पर एक चमार की कुटिया बीच में पड़ती है और वह उस ज़मीन को नहीं देता। राजा उन अधिकारियों से बहुत नाराज़ हुआ कि उन्होंने चमार से पूछे बिना नींव क्यों डाली और कहा कि अब दूसरी जगह इमारत शुरू करो। मन्त्रि-परिषद् ने कोशिश करके चमार को राजा के सामने बुलवाया। तब राजा ने उससे पूछा, "क्यों हमारे पुण्यकार्य में विघ्न डालते हो? अपनी कुटिया के बदले में उससे कीमती ज़मीन या घर क्यों नहीं ले लेते?" चमार ने कहा, "राजन् आपके लिए जैसे आपका महल है, वैसे मेरे लिए वह कुटिया है जिसकी दीवार में फूटे घड़ों के मुँह लगा कर झरोखे बनाये गये हैं। वह मेरी माँ के समान जन्म से मेरे सुख-दुःख की साक्षी है; उसका तोड़ा जाना मैं देख नहीं सकता। हाँ, यदि मेरे घर आ कर आप मुझसे उसे माँगें तो मैं सदाचार के अनुरोध से उसे दे दूँगा।" राजा चन्द्रपीड ने तब उस चमार के झोपड़े पर जा कर भिक्षा माँगी और उस चमार ने दान का पुण्य पाया!

§ ९. सामाजिक जीवन, जात-पाँत—विचारों की प्रगति और प्रवाह बन्द होने का प्रभाव भारतवासियों के सामाजिक जीवन पर भी पड़ा और उससे जात-पाँत की सृष्टि हुई। जात-पाँत का आरम्भ वस्तुतः इसी काल में हुआ।

अपने बराबर वालों में ही ब्याह-शादी की जाय, ऐसा रुझान लोगों में सदा से रहा है। ११वीं शती के भारत में भी यही चलन था। किन्तु उस समय से एक नयी बात होने लगी। जीवन में संकीर्णता आ जाने के कारण लोगों को दूर के और अपरिचित लोगों से शंका और डर प्रतीत होने लगा कि कहीं उनसे मिल कर हमारा कुल बिगड़ न जाय। सामाजिक ऊँच-नीच के जितने दरजे थे वे पथरा कर जात-पाँत बनने लगे। नदी का प्रवाह बन्द हो जाने से जैसे छोटे-छोटे जोहड़ बन जाते हैं, वैसे ही भारतीय समाज में ये जातें बन गयीं। तो भी हम देखेंगे कि कम से कम १२वीं-१३वीं शती तक इन जातों में भी बाहर के आदमियों के आ मिलने की गुंजाइश बनी रही।

स्त्रियों को समाज में अब भी पूरी स्वतन्त्रता थी। उनमें परदा नहीं था, और विवाह सयानी होने पर होता था। शिक्षा का प्रचार बहुत था। राजघरानों तक की कन्याएँ गाना-नाचना सीखती थीं।

आठवाँ प्रकरण

दिल्ली की पहली सल्तनत

(११९४--१५०६ ई०)

अध्याय १

दिल्ली और लखनौती में तुर्क राज्य की स्थापना

(११७५--१२०६ ई०)

§१. शहाबुद्दीन ग़ोरी के आरम्भिक प्रयत्न—महमूद के बाद गज़नी की सल्तनत धीरे-धीरे क्षीण होती गयी। गज़नी से हरात के रास्ते में फ़रारूद नदी की दून में ग़ोर नामक प्रदेश है। वहाँ के पठान सरदार अलाउद्दीन ने महमूद के वंशज बहराम (१११८--५१ ई०) को हरा कर गज़नी से भगा दिया; फिर उसके बेटे खुसरो (११५२--६० ई०) के समय में गज़नी को सात दिन तक लूटा और जला कर ख़ाक कर दिया! अलाउद्दीन का भतीजा शहाबुद्दीन-बिन-साम या मुहम्मद-बिन-साम (साम का बेटा मुहम्मद) था, जो इतिहास में शहाबुद्दीन ग़ोरी के नाम से प्रसिद्ध है।

शहाबुद्दीन ने हिन्दुस्तान जीतने का संकल्प किया। यद्यपि वह महमूद की तरह असाधारण आदमी नहीं था, तो भी बुलन्दहिम्मत और दृढ़व्रती था। गज़नी लेने के बाद उसने उच्च के राजा की रानी को अपनी तरफ़ मिला कर वह राज्य जीत लिया, और तब मुल्तान और सिन्ध पर भी अधिकार कर लिया। ११७८ ई० में उसने गुजरात पर चढ़ाई की। वहाँ का राजा मूलराज सोलंकी (२य) अभी छोटा था। उसकी माँ ने आबू के नीचे कायद्राँ गाँव पर शत्रु का मुकाबला किया। ग़ोरी बुरी तरह हार कर भाग गया और उसकी फ़ौज का बड़ा अंश कैद हो गया। कैदियों को हिन्दू बना कर गुजरातियों ने अपनी जातों में मिला लिया।

§२. **अजमेर और दिल्ली का पतन**—गुजरात की तरफ़ दाल न गलती देख कर शहाबुद्दीन ने ठेठ हिन्दुस्तान की ओर मुँह फेरा। गज़नी छिन जाने पर खुसरो लाहौर भाग आया था, मगर ग़ोरी ने उसके बेटे से पंजाब भी छीन लिया (११८५-८६ ई०)। फिर दिल्ली प्रदेश की सीमा पर सरहिन्द का क़िला ले लिया। यह प्रदेश तीस-चालीस बरस से अजमेर के राजाओं के अधीन था। राजा पृथ्वीराज, जो अब तक जझौती में अपनी शक्ति नष्ट कर रहा था, अब शहाबुद्दीन के मुक़ाबले के लिए आगे बढ़ा। पानीपत के पास तरावड़ी के युद्ध में शहाबुद्दीन घायल होकर भाग गया (११६१ ई०)। पृथ्वीराज ने सरहिन्द भी ले लिया, किन्तु शहाबुद्दीन ने हिम्मत न हारी। दूसरे बरस वह फिर फ़ौज लेकर चढ़ आया और तरावड़ी पर ही फिर युद्ध हुआ, जिसमें पृथ्वीराज क़ैद होकर मारा गया। जीत के बाद ग़ोरी सीधा अजमेर पर टूट पड़ा और वहाँ पृथ्वीराज के बेटे गोविन्दराज को अपना सामन्त बनाया। दिल्ली के इलाके पर दखल करने के लिए अपने तुर्क दास कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़ कर वह गज़नी लौट गया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर अधिकार कर उसे अपनी राजधानी बनाया। इस तरह गुजरात और कन्नौज के राज्य तुर्कों के पड़ोसी हो गये।

गोरी का नन्दो-छाप टंका

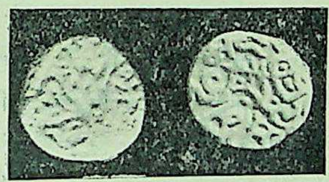

चित,—घुड़सवार; नागरी में लेख—
स्री हमीर। पट,—नन्दो बैठे हुए;
चारों तरफ़ नागरी लेख—
स्री महमद साम [श्री०सा०सं०]

११६४ ई० में शहाबुद्दीन कन्नौज पर चढ़ाई करने को फिर एक बड़ी फ़ौज ले कर आया। राजा जयचन्द्र इटावा के पास चन्दावर पर लड़ता हुआ मारा गया। उसके बेटे हरिचन्द्र ने अपने राज्य के पूरबी छोर अवध में हट कर लड़ाई जारी रक्खी। वह जब तक ज़िन्दा रहा उसने कन्नौज का क़िला भी अपने हाथ से जाने न दिया।

पृथ्वीराज के भाई हरिराज ने चम्बल के किनारे रणथम्भोर में चौहानों की नयी राजधानी स्थापित की (११६५ ई०)। अजमेर के साथ उत्तरी मारवाड़—नागोर—का इलाक़ा भी मुसलमानों के हाथ में चला गया,

किन्तु दक्खिनी मारवाड़—जालोर—में चौहानों की एक शाखा का राज्य बना रहा*।

§. ३ बिहार-बंगाल में तुर्क सल्तनत—अजमेर और कन्नौज राज्यों के जिन अंशों पर मुसलमान विजेता काबू कर सके, वे मुस्लिम अमीरों में बाँट दिये गये। कन्नौज के क़िले को छोड़ कर गंगा-जमुना के समूचे दोआब में, गंगा पार सम्भल और बदाऊँ के इलाके में और दक्खिनी अवध में, जगह-जगह उनके केन्द्र स्थापित हो गये। ११९७ ई० के बाद मुसलमानों ने चुनार का इलाका कन्नौज के सामन्तों से ले लिया, और वह मुहम्मद-बिन-बख्तयार खिलजी नामक तुर्क सरदार को सौंप दिया गया। चुनार से मुहम्मद ने मगध के इलाकों पर हमले करना शुरू किया। मगध में पिछली शती भर कोई स्थिर राज्य न रहा था; वहाँ राजा गोविन्दपाल की हैसियत एक मामूली सरदार की सी रह गयी थी। उद्दंडपुर आदि नगर उसके अधिकार में थे। ११९९ ई० में मुहम्मद ने २०० सवारों के साथ उद्दंडपुर पर हमला किया और पहाड़ी पर बौद्ध भिक्खुओं के विहार को क़िला समझ कर घेर लिया। कोई चारा न देख भिक्खुओं ने भी शस्त्र उठाये और युद्ध किया; किन्तु उनमें से एक भी ज़िन्दा न बचा। विजेताओं को जब यह मालूम हुआ कि वह स्थान क़िला नहीं विहार था, और उस विहार की पुस्तकों को पढ़ कर सुना सकने वाला भी कोई आदमी जीवित नहीं बचा, तो उन्होंने शताब्दियों से जमा हुए पुस्तकों के उस संग्रह को आग की भेंट कर दिया। उस विहार के नाम से उस शहर को भी वे विहार कहने लगे, और इस प्रकार समूचे मगध प्रान्त का भी वही नाम पड़ गया।†

गोरी की लक्ष्मी-छाप टंका

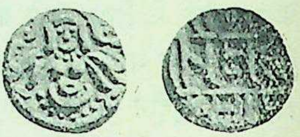

चित,—लक्ष्मी की भद्दी मूर्त्ति।

पट,—नागरी लेख—श्रीमद् मीर महमद साम।

[दिल्ली म्यू०; भा० पु० वि०]

---

*पृथ्वीराज और जयचन्द्र के विषय में बहुत सी निर्मूल कहानियाँ प्रचलित हैं, जो चन्दबरदाई के पृथ्वीराजरासो पर निर्भर हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि चन्द बरदाई १६वीं शती से पहले का नहीं है। जयचन्द्र की बेटी संयोगिता सर्वथा कल्पित व्यक्ति है। पृथ्वीराज और जयचन्द्र में द्वेष होने की बात भी निरी काव्य-कल्पना है।

† १५वीं शती में बिहार से केवल मगध ही समझा जाता था। अर्थात् वह प्रदेश जो सोन नदी के पूरब, गंगा के दक्खिन, गया की पहाड़ियों के उत्तर और राजमहल की पहाड़ियों के पच्छिम में हैं।

बिहार जीत लेने के बाद मुहम्मद-बिन-बख्तियार ने सेन राजाओं के गौड़ देश पर चढ़ाई की और उनकी राजधानी लखनौती ले कर उसने वहीं अपनी राजधानी स्थापित की।* बंगाल में उसका राज्य तब लखनौती के चौगिर्द प्रायः ४०-४० कोस तक था। लक्ष्मणसेन के बेटे केशवसेन और विश्वरूपसेन उससे बराबर लड़ते रहे। वे अपनी राजधानी ढाका के पास सुवर्णग्राम (सोनारगाँव) में ले गये और दक्खिनी और पूरबी बंगाल अगले सवा सौ बरस तक सेन राजाओं के अधिकार में बना रहा।

§४. विन्ध्य और हिमालय की तरफ़ बढ़ने की विफल चेष्टाएँ—गंगा-जमना का दोआब कुतुबुद्दीन के हाथ आ जाने से जझौती का चन्देल राज्य उसका पड़ोसी बन गया। १२०२ ई० में उसने उसपर चढ़ाई कर राजा परमर्दी चन्देल से कालंजर का गढ़ छीन लिया; परन्तु उसके मुँह फेरते ही हिन्दुओं ने कालंजर फिर वापिस ले लिया; तो भी जझौती का उत्तरी मैदान—अर्थात् कालपी का प्रदेश—तुर्कों के हाथ में रहा।

इधर मुहम्मद-बिन-बख्तयार ने एक और साहस का काम किया। गौड़ और हिमालय के बीच मेच, कोच और थारू जातियाँ रहती थीं। एक मेच सरदार को पकड़ कर मुहम्मद ने उसे मुसलमान बना लिया और उसी अली मेच की पथप्रदर्शकता में ११-१२ हज़ार सवारों के साथ वह हिमालय के एक हिन्दू राज्य को लूटने के लिए आगे बढा। कामरूप के पच्छिम हिमालय की तराई के उस राजा ने तुर्कों को अपने राज्य में बढ़ जाने दिया, पर पीछे से उन्हें घेर कर लौटते समय करतोया नदी में समूचे दल को नष्ट कर दिया। मुहम्मद-बिन-बख्तियार इनेगिने साथियों के साथ बच कर देवकोट पहुँचा और वहाँ अपने सिपाहियों की विधवाओं के अभिशापों के डर से उसे घर से बाहर निकलना दूभर हो गया। उसी दशा में उसकी मृत्यु हुई (१२०५-६ ई०)।

---

* यह कहानी प्रसिद्ध है कि सिर्फ़ १८ सवारों के साथ, जिन्हें लोग घोड़े बेचने वाले समझते रहे, बख्तियार के बेटे ने नदिया के राजमहल के रक्षकों पर एकाएक हमला कर दिया, और राजा लक्ष्मणसेन महल के दूसरी तरफ़ से भाग निकला। परन्तु नदिया कभी सेनों की राजधानी न थी और राजा लक्ष्मणसेन ११७० ई० से पहले ही मर चुका था। तीसरे लखनौती जीतने के ५५ बरस पीछे १२५५ ई० में नदिया पहले-पहल मुसलमानों के क़ब्जे में आया।

उधर उसी समय जेहलम नदी पर रहने वाली खोकर नाम की जाति ने अपने राजा रायसाल के नेतृत्व में, जो एक बार मुसलमान बन कर फिर हिन्दू हो गया था, विद्रोह करके लाहौर ले लिया। शहाबुद्दीन ग़ज़नी से और कुतुबुद्दीन दिल्ली से खोकरों के खिलाफ़ बढ़े। उनका दमन करने के बाद शहाबुद्दीन जब ग़ज़नी लौट रहा था, तो एक खोकर ने सिन्ध के किनारे उसे मार डाला (१२०६ ई०)। इसके बाद पन्द्रहवीं शती के अन्त तक दिल्ली के सुल्तान खोकरों को अधीन न रख सके। ग़ज़नी से दिल्ली आने वाला रास्ता तब दूर तक सिन्ध के दाहिने किनारे जा कर उच के सामने उसे लाँघता था और उच से मुलतान और भटिंडा हो कर दिल्ली पहुँचता था।

अध्याय २

दिल्ली की पहली सल्तनत—गुलाम वंश

(१२०६–१२९० ई०)

§१. **कुतुबुद्दीन ऐबक**—शहाबुद्दीन के मरने पर उसके उत्तराधिकारी ने दिल्ली का राज्य दास कुतुबुद्दीन को सौंप दिया। उसके बाद भी दिल्ली की गद्दी पर कई गुलाम बादशाह बैठे; इसी कारण वह गुलाम वंश कहलाता है। शहाबुद्दीन पठान था, पर कुतुबुद्दीन और दूसरे गुलाम तुर्क थे। इस प्रकार दिल्ली की यह सल्तनत असल में तुर्कों की थी। चार बरस के दृढ़ न्यायपूर्ण शासन के बाद कुतुबुद्दीन लाहौर में मर गया (१२१० ई०)। दिल्ली की कुतुब मीनार उसकी बनवायी हुई कही जाती है।

इल्तुतमिश की कन्नौज-विजय का स्मारक टंका
[दिल्ली म्यू०; भा० पु० वि०]

§२. **इल्तुतमिश**—कुतुबुद्दीन का गुलाम और दामाद इल्तुतमिश उसके बेटे आरामशाह को हटा कर खुद सुल्तान बन बैठा। इस समय तक भारत में तुर्कों के जीते हुए प्रदेश एक सुसंगठित राज्य के अन्तर्गत न थे। लखनौती का राज्य शुरू से ही दिल्ली से अलग था। ग़ोरी की

मृत्यु के बाद से गज़नी भी एक अलग सल्तनत थी। यह सल्तनत ताजुद्दीन एलदोज़ नाम के एक तुर्क सरदार को सौंपी गयी थी। सिन्ध का सूबा नासिरुद्दीन कुबाचा को मिला था। इल्तुतमिश के गद्दी पर बैठते ही एलदोज़ ने लाहौर ले लिया। कुबाचा के दाँत भी लाहौर पर गड़े थे। इल्तुतमिश ने एलदोज़ को कैद कर लाहौर पर अधिकार किया। पीछे उसने कुबाचा का भी उसी तरह दमन किया।

दूसरी तरफ़ उसे अन्तर्वेद में राजपूतों का भी मुकाबला करना पड़ा। कन्नौज का किला अब तक फ़तह न हुआ था। अवध की सीमा पर लगातार युद्ध जारी था, जहाँ 'वर्त्तु' नामक हिन्दू सरदार से लड़ते हुए एक लाख से अधिक तुर्क मारे जा चुके थे। इल्तुतमिश के समय में 'वर्त्तु' मारा गया और कन्नौज का किला भी जीत लिया गया। इसकी खुशी में उसने नये सिक्के चलाये।

§३. **मंगोलों का आतंक**—इसी समय उत्तर-पूरबी एशिया में एक भारी लहर उठी जिसने समूची दुनिया का नक्शा बदल दिया। जैसे पाँचवीं-छठी शती में हूण-तुर्क और सातवीं में अरब दुनिया को जीतने निकले थे, वैसे ही अब मंगोलों ने अपनी विजय-यात्रा शुरू की। उनका नेता चिङ-हिर हान (चंगेज़ खान*) था। मंगोलों ने तुर्किस्तान के तमाम मुस्लिम राज्यों को उखाड़ फेंका (१२१६ ई०), मुसलमान बस्तियों में खून की नदियाँ बहा दीं, और महल और मस्जिदें फूँक दीं। अफ़गानिस्तान को भी चंगेज़ ने तुर्कों से छीन लिया। इसके बाद पौने दो शताब्दियों तक अफ़गानिस्तान मंगोलों के अधिकार में बना रहा और वे दिल्ली के तुर्कों के लिए सदा आतंक का कारण रहे।

पहले-पहल वह आतंक १२२१ ई० में इस तरह उपस्थित हुआ। ख्वारिज़्म (खीवा-प्रदेश) के तुर्क शाह जलालुद्दीन का पीछा करता हुआ चंगेज़ सिन्ध नदी के किनारे तक आ पहुँचा। जलालुद्दीन सिन्ध में भाग आया था। पंजाब और सिन्ध में इससे खलबली मच गयी। चंगेज़ के लौट जाने पर ही इल्तुतमिश उन प्रान्तों पर पूरी तरह काबू कर सका।

मुहम्मद-बिन-बख्तियार की मृत्यु हो जाने पर लखनौती में ५-६ बरस की मार-काट के बाद खिलजी अमीरों ने ग़यासुद्दीन उवज़ को गद्दी पर बैठाया। उसके

---

*हान या ख़ान मंगोली में एक सम्मानसूचक शब्द था। दूसरी जातियों ने उसे उन्हीं से लिया है।

समय में (१२११-२६ ई०) गौड सल्तनत की सीमा गंगा के पूरब तरफ़ देवकोट तक और दक्खिन-पच्छिम तरफ़ लखनोर तक पहुँच गयी। पंजाब और सिन्ध के दमन के बाद इल्तुतमिश ने बिहार और गौड की मुस्लिम सल्तनत को भी जीत लिया। तब से १२८८ ई० तक गौड प्रायः दिल्ली के अधीन रहा।

इल्तुतमिश के बंगाल-विजय का स्मारक टंका
[बर्लिन म्यु०; नेल्सन राइट के ग्रन्थ से]

§४. जझौती और मालवा पर चढ़ाइयाँ—गाहड्वालों को परास्त करने और उत्तर भारत के सब तुर्क प्रान्तों को एक शासन में लाने के बाद इल्तुतमिश ने पड़ोसी राजपूत राज्यों की तरफ़ ध्यान दिया। उसने रणथम्भोर और ग्वालियर पर अधिकार किया और परमर्दी चन्देल के बेटे त्रैलोक्यवर्मा पर चढ़ाई कर जझौती को लूट लिया (१२३३-३४ ई०)। तब मालवा के परमार राज्य पर चढ़ाई कर उज्जैन और भेलसा लूटे, और उज्जैन के महाकाल-मन्दिर को तोड़ डाला (१२३४ ई०)। मालवा से वह गुजरात की तरफ़ बढ़ा। रास्ते में उसने मेवाड़ की राजधानी नागदा को, जो आधुनिक एकलिंग की जगह पर थी, उजाड़ डाला। पर राजा जैत्रसिंह से हार कर उसे लौटना पड़ा। मेवाड़ का नाम बाद के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध हुआ। सुराष्ट्र के मैत्रक वंश में भटार्क का पोता राजा गुहसेन या गुहिल हुआ था। मेवाड़ के राजा उसी के वंशज थे। वे पहले गुजरात के चालुक्यों के सामन्त थे। १२वीं सदी के अन्त में गुजरात के कमज़ोर होने पर वे स्वतन्त्र हो गये और इस स्वतन्त्र हैसियत में उन्होंने अनेक बार दिल्ली के तुर्कों का मुकाबला किया। इल्तुतमिश के नागदा को उजाड़ने के बाद चित्तौड़ मेवाड़ की राजधानी हो गयी।

§५. सुल्ताना रज़िया—मालवा-मेवाड़ की चढ़ाइयों से लौटने पर इल्तुतमिश मर गया (१२३६ ई०)। वह कह गया था कि उसकी बेटी रज़िया उसकी उत्तराधिकारिणी हो। लेकिन तुर्क सरदारों ने उसके एक बेटे को गद्दी दी। छः मास बाद वह उनके हाथ मारा गया। तब कुमारी रज़िया गद्दी पर बैठी। वह कुशल और वीर स्त्री थी। मरदाने कपड़े पहन कर वह खुले मुँह दरबार में बैठती और युद्ध में सेना का [illegible] करती थी। किन्तु एक स्त्री का शासन उस समय के तुर्क

कहाँ सह सकते थे ? उन्होंने फिर बग़ावत की, जिसे दबाते हुए रज़िया मारी गयी (१२४० ई०) । उसके बाद उसका एक भाई सुलतान बना । डेढ़ बरस बाद वह भी मारा गया और उसके एक भतीजे को राज मिला । चार बरस बाद उसकी भी वही गति हुई।

इस बीच दिल्ली की सल्तनत की बड़ी दुर्दशा रही । चौहान राजा वाग्भट ने रणथम्भोर वापिस ले लिया । बंगाल, मुलतान और सिन्ध के प्रान्त अलग हो गये थे । बिहार के हिन्दू स्वतन्त्र हो गये थे । पंजाब के बड़े भाग पर खोकरों ने अधिकार कर लिया था । गंगा-जमना दोआब में अनेक हिन्दू सरदारों ने दिल्ली के विरुद्ध सिर उठाया । दिल्ली से बिलकुल लगे हुए अलवर के इलाके (प्राचीन मत्स्य देश) में मेव लोग रहते हैं और वह इसी कारण मेवात कहलाता है । मेवों या मेवातियों ने दिल्ली के मुसलमानों को लूटना-मारना ही अपना धन्धा बना लिया था । उत्तर-पच्छिम से मंगोलों के हमले जारी थे । अफ़ग़ानिस्तान और गज़नी पर उनका अधिकार था; गज़नी से मुलतान के रास्ते पंजाब और सिन्ध पर वे झपट्टा मारते थे । १२४१ ई० में उन्होंने लाहौर पर चढ़ाई कर वहाँ के मुसलमानों की बड़ी मार-काट की ।

उधर पूरबी सीमान्त पर भी ऐसी ही विपत्ति उपस्थित थी । उड़ीसा के गंग-वंशी राजा नरसिंहदेव १म ने गौड पर चढ़ाई की । केवल ५० उड़िया सवारों और २०० पैदल सिपाहियों के एकाएक हमला करने पर तुर्क सेना सीमान्त का एक किला छोड़ कर भाग गयी । नरसिंहदेव के सेनापति सामन्तराज ने लखनोर के तुर्कों से वह किला छीन लिया । गंगा के उत्तर भी तुर्कों की जहाँ-तहाँ हार हुई और सामन्तराज ने लखनौती पर घेरा डाल दिया । अन्त में अवध से मुस्लिम सेना आने पर उसे लौटना पड़ा (१२४४ ई०) । मेदिनीपुर, हावड़ा और हुगली ज़िले नरसिंहदेव के अधीन रहे । यह नरसिंह (१२३८--६४ ई०) अनन्तवर्मा चोडगंग के पोते का पोता था । कोणार्क का प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर इसी ने बनवाया था ।

§६. **नासिरुद्दीन और बलबन**—१२४५ ई० में फिर मंगोलों के एक दल ने उच्च के किले को घेर लिंया । तब गयासुद्दीन बलबन, जो इल्तुतमिश का दामाद था, सेना ले कर उनके विरुद्ध बढ़ा और उन्हें मार भगाया । दिल्ली की गद्दी पर सरदारों ने अब रज़िया के छोटे भाई नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया । उसने बलबन

को अपना मन्त्री नियुक्त कर राजकाज उसके हाथ सौंप दिया। तब से दिल्ली के शासन में फिर जान पड़ गयी। बलबन ने तुर्क सरदारों को दृढ़ता से दबाया और सेना और किलों को ठीक किया।

सन् १२४७ में उसने सुलतान के साथ खोकरों पर चढ़ाई की। नासिरुद्दीन को चनाब पर छोड़ कर बलबन खोकरों के देश में घुसा, और सिन्ध के किनारे उसने उनके राजा जसपाल सेहरा को हराया। लेकिन खोकरों ने सिन्ध और जेहलम के बीच तमाम बस्ती और खेती उजाड़ दी थी, इससे बलबन को शीघ्र लौटना पड़ा।

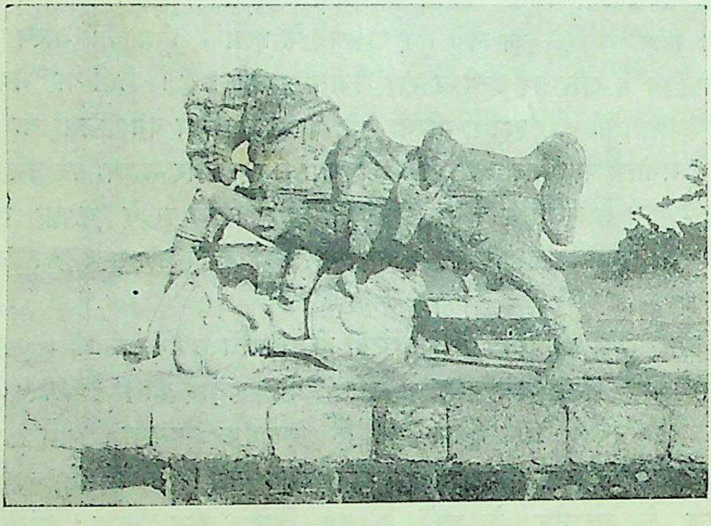

कोणार्क के सूर्य-मन्दिर में एक घोड़े की मूर्त्ति
नरसिंहदेव की विजयों का सुन्दर स्मारक। [भा० पु० वि०]

वहाँ से लौट कर उसने दोआब और मेवात पर चढ़ाइयाँ कीं, और रणथम्भोर को वापिस लेने की विफल चेष्टा की।

नासिरुद्दीन ने मालवा तथा जझौती की सीमा पर के नरवर, चन्देरी, तथा कालंजर प्रदेशों पर भी विफल चढ़ाइयाँ कीं। वह इन पर अधिकार न कर सका, तो भी काफ़ी लूट उसके हाथ लगी।

१२५७ ई० में मंगोलों का एक दल मुलतान ले कर सतलज तक आ पहुँचा और बड़ी मुश्किल से वापिस किया गया। बलबन ने सीमान्त के किलों को ठीक कर योग्य सैनिक तैनात किये।

इसी समय लखनौती के हाकिम उज़बक ने गंगा के दक्खिन नदिया तक और उत्तर की ओर वर्धनकोट (ज़ि० बगुड़ा) तक तुर्क राज्य की सीमा पहुँचा दी (१२५५ ई०)। उसने कामरूप पर भी चढ़ाई की, पर वहाँ उसकी वही गति बनायी गयी जो मुहम्मद-इब्न-बख्तयार की बनी थी और वह कामरूप के राजा की कैद में मरा।

दोआब और मेवात के हिन्दुओं की उच्छृंखलता अभी जारी थी। इसलिए १२५९-६० में बलबन ने उन पर फिर चढ़ाइयाँ कीं, और १,२०,००० मेवों को मार डाला। १२६४ में उसे कटहर (आधुनिक रुहेलखंड) के हिन्दुओं पर चढ़ाई करनी पड़ी।

१२६६ ई० में नासिरुद्दीन की मृत्यु होने पर बलबन स्वयम् सुलतान बना। मेवात, दोआब और कटहर के हिन्दुओं ने पिछली सज़ाओं से कुछ सबक न सीखा था। मेव तो अब हिमालय की तराई तक और दिल्ली शहर के भीतर तक धावे मारने लगे थे। उनके कारण दिल्ली की पनिहारिनों का कुओं पर जाना दूभर हो गया था और शहर के पच्छिमी दरवाज़े सन्ध्या से पहले ही बन्द कर देने पड़ते थे। बलबन ने अब दिल्ली के पड़ोस के वे सब जंगल साफ़ कर दिये जिनमें मेव शरण पाते थे। उसने दोआब और कटहर पर भी फिर चढ़ाइयाँ कीं। इल्तुतमिश की तरह उसने भी मालवा की तरफ़ से गुजरात पर चढ़ाई करने का जतन किया; पर रास्ते में चित्तौड़ के राजा समरसिंह (१२७३-१३०२ई०) से हार कर लौट आया।

अपने बेटे मुहम्मद को उसने मंगोलों पर निगाह रखने को मुलतान का हाकिम बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि इस युग में अफ़गानिस्तान और दिल्ली के बीच का रास्ता मुलतान होकर जाता था। उत्तर-पच्छिम पंजाब की गक्खड़, खोकर आदि जातियाँ कभी दिल्ली के अधीन नहीं हुईं। इसी कारण दिल्ली सल्तनत का मुलतान-उच्च वाला इलाका एक तरफ़ को बढ़ा हुआ था और मंगोलों को अधिक आकर्षित करता था। ब्यास नदी तब सतलज में मिलने के बजाय मुलतान के नीचे चिनाब में मिलती थी*, जिससे रावी और सतलज के बीच आज जो 'बार' (बाँगर, सूखी ऊँची बियाबान भूमि) है, वह हरा भरा प्रदेश था। इन कारणों से सीमान्त का रास्ता तब गज़नी से उच्च, मुलतान और दीपालपुर होकर दिल्ली

---

* ब्यास के उस पुराने पाट के चिन्ह अब भी मौजूद हैं। उन्हीं के अनुसार इस प्रकरण के नकशों में ब्यास नदी अंकित की गयी है।

पहुँचता था। दीपालपुर तब ब्यास के किनारे दिल्ली सल्तनत का बड़ा सीमान्त नाका था! सीमान्त का रास्ता उधर से होने के कारण नागोर और अजमेर भी तब सरहद के नज़दीक पड़ते थे।

लखनौती में भी बलबन ने अपने एक विश्वासपात्र को नियुक्त किया था। उसने कामरूप और उड़ीसा पर चढ़ाइयाँ कीं, जिनमें उसे बड़ी लूट मिली। इससे उसका दिमाग़ फिर गया और बलबन को पच्छिमी सीमान्त पर व्यस्त देखकर वह मुगीसुद्दीन तोग़रल नाम से स्वतन्त्र बन बैठा। उसके खिलाफ़ दो बार सेना भेजने के बाद बलबन ने स्वयम् उस पर चढ़ाई की। तोग़रल तब लखनौती से भाग निकला। बलबन ने सोनारगाँव की तरफ़ बढ़ कर राजा दनुजराय से, जो पूरबी और दक्खिनी बंगाल का स्वामी था, वचन लिया कि वह उधर के किसी जल-मार्ग से तोग़रल को भागने न देगा। फिर उसने तोग़रल का पीछा कर उड़ीसा की सीमा पर उसे जा पकड़ा, और लखनौती के बाज़ार में खुली फाँसियाँ टाँग कर विद्रोहियों को लटकवा दिया (१२८२ई०)। इसके बाद अपने बेटे नासिरुद्दीन महमूद उर्फ़ बुगरा को गौड का हाकिम बनाकर वह दिल्ली लौट आया।

१२८५ ई० में मंगोलों ने पंजाब पर फिर चढ़ाई की। युवराज मुहम्मद उनसे लड़ता हुआ मारा गया। फ़ारसी और हिन्दी का प्रसिद्ध कवि मलिक खुसरो, जो मुहम्मद का साथी था, उसी युद्ध में कैद हुआ। दूसरे बरस बलबन भी चल बसा। मरने से पहले उसने बुगराखाँ को दिल्ली की सल्तनत सौंपनी चाही थी, पर बुगरा ने उस काँटों के ताज से गौड की सूबेदारी अधिक आराम की समझी। बुगरा का बेटा कैकोबाद चार बरस ही उस गद्दी को कलंकित कर पाया था जब एक खिलजी सेनापति ने उसका काम तमाम कर उसकी लाश जमना में फेंकवा दी। इस तरह दिल्ली में गुलाम वंश का अन्त हुआ (१२९० ई०)।

§७. तेरहवीं शती के हिन्दू राज्य—हम देख चुके हैं कि बारहवीं शती के शुरू में समूचा दक्खिन भारत चालुक्य और चोल राज्यों में बँटा था; पर उस शती के अन्त तक चालुक्य राज्य के बजाय महाराष्ट्र (देवगिरि), आन्ध्र (ओरंगल) और कर्णाटक (धोरसमुद्र) के अलग-अलग राज्य हो गये थे। चोल राज्य के पास तब तामिल और केरल प्रान्त बचे थे। १३वीं शती की मुख्य घटना है चोल राज्य का टूटना और उसके स्थान पर पांड्य राज्य का स्थापित होना।

राजराज ३य के शासन-काल (१२१६--४५ ई०) में १२२५ ई० से पहले उसके मदुरा के सामन्त मारवर्मा सुन्दर पांड्य ने ठेठ चोल देश अर्थात् कावेरीकाँठे पर चढ़ाई कर उरैपुर (त्रिचनापल्ली) और तांजोर को ले लिया, कोंगुदेश (कोयम्बतूर) पर अपना प्रभाव स्थापित किया और चिदम्बरम् तक चढ़ाई की। तब चोल राजा को भागना पड़ा। उस दशा में कुड्डुलूर के उसके पल्लव सामन्त ने उसे कैद कर लिया। राजराज चोल ने तब अपने सम्बन्धी होयसल राजा वीर-नरसिंह २य (१२१८--३५ ई०) से मदद ली। १२४४ ई० में राजराज और उसके भाई राजेन्द्र ३य में युद्ध छिड़ा। तब फिर राजराज ने वीर-नरसिंह के बेटे वीर-सोमेश्वर से मदद ली। राजराज मारा गया और राजेन्द्र ने गद्दी पायी। लेकिन होयसल राजा ने अब श्रीरंगम् के ५ मील उत्तर खंडनपुर (कण्णनूर) में छावनी डाल दी और कर्णाटक पठार के साथ लगे हुए तामिल प्रदेश पर दखल कर लिया। तभी काकतीय राजा गणपति (१२००–१२६० ई०) ने नेल्लूर से कांची तक उत्तरी तामिल प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया।

राजेन्द्र ने गणपति से अपना इलाक़ा वापिस लिया, और सोमेश्वर की भी कुछ रोक-थाम करके २१ बरस राज किया (१२४४-६७ ई०)। परन्तु इस बीच मारवर्मा का दूसरा उत्तराधिकारी जटावर्मा सुन्दर पांड्य (१२५१–७४ ई०) अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। उसने पहले केरल को अधीन किया; फिर कावेरीकाँठे पर चढ़ाई कर राजेन्द्र चोल को करद बनाया। उसने सोमेश्वर को कण्णनूर से भगा दिया और कोंगुदेश को जीत लिया। उधर उसके भाई वीर पांड्य ने इस समय तक सिंहल को जीत लिया था। उत्तर तरफ़ बढ़ कर जटावर्मा ने कांची जीत ली और नेल्लूर तक समूचे तामिल प्रदेश पर दखल किया। उत्तरी पैण्णार को पार कर उसने तैलंग गणपति को उसी के देश में हराया और कृष्णा पार भगा दिया। इस समय गणपति की मृत्यु हो गयी और उसकी बेटी रुद्रम्मा आन्ध्र देश की गद्दी पर बैठी। जटावर्मा ने उससे लड़ाई नहीं की।

लौटते हुए उसकी सोमेश्वर से फिर लड़ाई हुई, जिसमें सोमेश्वर खेत रहा (१२६२ ई०)। तब जटावर्मा ने श्रीरंगम् के मन्दिर में प्रवेश कर उसे १८ लाख सुवर्ण मुद्रा का दान दिया। श्रीरंगम् त्रिचनापल्ली का उपनगर है, जो कावेरी के बीच एक टापू पर बसा है। समूचा शहर रंगनाथ के विशाल मन्दिर के सात परकोटों के बीच आबाद है और उस मन्दिर का एक अंश जान पड़ता है।

जटावर्मा और उसकी रानी चेरकुलवल्ली की सादी मूर्त्तियाँ उस मन्दिर में अब भी मौजूद हैं।

रानी रुद्रम्मा ने आन्ध्रदेश पर ३१ बरस राज किया (१२६०-६१ ई०)। उसके बाद अपने पोते प्रतापरुद्र को राज दे स्वयम् अलग हो गयी। मार्को पोलो नामक इटालियन यात्री १३वीं शती के अन्त में स्थल के रास्ते इटली से चीन तक गया था। रुद्रम्मा के बारे में वह लिखता है कि वह बड़ी विवेकशील और न्याय-परायण स्त्री थी, "और उसकी प्रजा उसे ऐसा चाहती थी जैसा पहले किसी राजा या रानी को नहीं।...और इस राज्य में बढ़िया नफ़ीस कपड़े बनते हैं, जो सचमुच मकड़ी के जाले से लगते हैं। दुनिया का कोई राजा या रानी ऐसा नहीं है जो उन्हें पहन कर खुश न हो।" रुद्रम्मा के राज्य में हीरे की खानें थीं। उन हीरों के विषय में मार्को पोलो ने अनेक कहानियाँ लिखी हैं।

जटावर्मा के उत्तराधिकारी मारवर्मा कुलशेखर ने १३११ ई० तक राज्य किया। वह तामिल देश का अत्यन्त समृद्धि का युग था। अरब लोग, जो उस समय युरोप और चीन के बीच मुख्य व्यापारी थे, तामिलनाड को संसार का सबसे समृद्ध देश मानते थे। खम्भात से कनारा तक का भारत का पच्छिमी तट उन्हें पसन्द न था, क्योंकि वहाँ समुद्री डाकुओं के अनेक अड्डे थे, और उसके अलावा वहाँ यह कायदा था कि यदि कोई जहाज़ विप्रणष्ट होकर किसी बन्दर पर आ लगे तो वह वहाँ के राजा का हो जाता था। इसके विपरीत केरल, तामिल और आन्ध्र तटों पर विदेशी व्यापारियों को अनेक सुविधाएँ थीं। राजा गणपति के वे शासन-पत्र अभी तक मौजूद हैं जिनमें उसने विदेशी व्यापारियों को आश्वासन दिलाया है कि उसके राज्य में उनसे 'कूपशुल्क' (ज़कात) के सिवाय और कोई चुंगी न ली जायगी। वैसी ही सुविधा तामिलदेश में भी थी; इसी से "कूलम (कोल्लम) से निलावर (नेल्लूर) तक" के प्रदेश को अर्थात् केरल और तामिलनाड को अरब लोग "मअबर" यानी रास्ता कहते थे—वह उनके लिए चीन जाने का खुला रास्ता था। इस मअबर में तीन बड़े बन्दरगाह तब प्रसिद्ध थे—रामेश्वरम् का पट्टण, देवीपट्टणम् तथा ताम्रपर्णी के मुहाने में कायलपट्टणम्। "चीन और महाचीन की अद्भुत कला की वस्तुएँ और हिन्द और सिन्ध की सब उपज लादे हुए जंक कहलाने वाले जहाज़, जो पानी पर हवा के पंख फैलाये हुए पहाड़ से लगते थे", सदा इन पट्टणों को घेरे रहते थे। ओरमुज़, ईरान और अरब से वहाँ बड़ी तादाद

में घोड़े आते थे। राजा कुलशेखर हर साल १० हज़ार घोड़े ईरान और अरब में खरीदता था, जिसके लिए ईरान की खाड़ी में कैस टापू के सरदार मलिक जमालुद्दीन को ठेका दिया गया था। जो घोड़े राह में मर जाते उनके दाम भी कुलशेखर चुका देता था। जमालुद्दीन की एक कोठी कायलपट्टणम् में थी, जहाँ उसका भाई रहता था। उसे इन पट्टणों की ज़कात का ठेका भी दिया गया था। अरब लोगों की दृष्टि में "ईरान की खाड़ी के द्वीपों और इराक़ से रोम और युरोप तक सब देशों की समृद्धि मअबर पर निर्भर थी।" राजा "खलेस देवर" (कुलशेखर देव) के न्याय-शासन की उन्होंने बड़ी प्रशंसा की है।

आन्ध्र और महाराष्ट्र के उत्तर तरफ़ उड़ीसा के गंगों और गुजरात के चालुक्यों का सम्बन्ध उत्तर और दक्खिन दोनों से था। जब इल्तुतमिश गुजरात पर चढ़ाई करना चाहता था उसी समय देवगिरि का राजा सिंघण भी उस पर घात लगाये था। भोला भीम के मन्त्री वीरधवल ने दोनों से गुजरात को बचाया, परन्तु उसके उत्तराधिकारी से १२४३ ई० में वीरधवल के बेटे ने राज्य छीन लिया। वीरधवल भी गुजरात के सोलंकियों की एक दूसरी शाखा में से था। उस शाखा के पास व्याघ्रपल्ली या बघेल गाँव की जागीर थी। इस कारण ये बघेल-सोलंकी कहलाते हैं।

महाराष्ट्र और उड़ीसा के बीच त्रिपुरी का चेदि राज्य था, जिसकी स्वाभाविक सीमा वर्धा नदी से मगध के दक्खिन-पच्छिम तक थी। उस राज्य पर कोई मुस्लिम हमला नहीं हुआ, तो भी १२वीं सदी के अन्त में वह भी आप से आप छिन्न-भिन्न हो गया, और उसके इलाक़ों में जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदार खड़े हो गये। उत्तर-पूरबी चेदि में गुजरात के बघेल सोलंकियों की एक शाखा जा बसी, जिससे वह प्रदेश बघेलखंड कहलाने लगा। इन बघेलों ने जझौती के चन्देलों से कालंजर ले लिया। महाकोशल अर्थात् छत्तीसगढ़ में चेदि राजवंश की एक छोटी शाखा राज्य करती थी। उनकी राजधानी रत्नपुर थी। मालवा के परमारों की शक्ति भी इस शताब्दी में अत्यन्त क्षीण रह पृथ्वीराज ने जब धसान नदी तक का प्रदेश उनसे ले लिया, तभी से उनका सम्बन्ध उत्तर के मैदान से टूट गया था। उनके और दिल्ली-सल्तनत के बीच रणथम्भोर का चौहान राज्य बना रहा। जझौती के चन्देलों से कालपी का मैदान और कालंजर छिन गया, तो भी वे निःशक्त न हुए। गुलाम वंश के समय उनके केवल दो राजाओं त्रैलोक्यवर्मा (१२१२–६१ ई०) और वीरवर्मा (१२६१–८६ ई०) ने राज्य किया।

उड़ीसा के गंग राजा इस शती में बड़े प्रबल थे। आन्ध्र और छत्तीसगढ़ की सीमा से हुगली ज़िले के मन्दारण किले तक उनका इलाक़ा था। उनकी राजधानी जाजपुर थी। उसके नाम से मुसलमान लेखक उन्हें जाजनगर के राजा कहते थे। सुवर्णग्राम के सेन राजा इस शती भर दुर्बल रहे। गौड के तुर्कों के अलावा अराकान् के मग भी उनपर अनेक हमले करते रहे। १२३८ ई० में कामरूप राज्य से, जैसा हम अभी देखेंगे, पूरबी आसाम छिन चुका था, और बंगाल में भी वह राज्य अन्तिम सांस ले रहा था। तिरहुत में नान्यदेव के वंशज कर्णाट राजा दिल्ली और लखनौती के बीच सवा सौ बरस तक अपनी स्वतन्त्रता बनाये रहे।

कश्मीर से नेपाल तक सब पहाड़ी प्रदेशों में हिन्दू राज्य अभी बने हुए थे।

अध्याय ३

मंगोलों का विश्व-साम्राज्य

(१२१६—१३७० ई०)

§१. मंगोल साम्राज्य का विस्तार—मंगोलों के सम्राट् चंगेज़खाँ का जिक्र हो चुका है। वह सन् १२०३ में मंगोलों का ख़ान बना, और १२१६ ई० तक उसने उत्तरी और मध्य एशिया से पच्छिमी एशिया तक सब तुर्क राज्यों को उखाड़ फेंका। १२२७ ई० में उसकी मृत्यु के समय मंगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से रूस, बुलगारिया और हुंगरी के अन्दर तक पहुँच चुका था। चीन और तिब्बत उसके अन्तर्गत थे। इस तरह मंगोल साम्राज्य की दक्खिनी सीमा भारत को छूती थी। अफ़गानिस्तान लेने के बाद चंगेज़खाँ ने भारत हो कर कामरूप के रास्ते वापिस जाने का इरादा किया पर हमारे देश की गरमी वह न सह सका और लौट गया। अफ़गानिस्तान में अब जो हज़ारा नाम की जाति है वह चंगेज़ के मंगोलों की ही वंशज है।

चंगेज़ के वंशज़ उसी की तरह प्रतापी हुए। उनके समय में मंगोल साम्राज्य प्रशान्त महासागर से बाल्टिक सागर और दक्खिनी चीन सागर तक फैला हुआ था। इस साम्राज्य की राजधानी मंगोलिया में ही रही। चंगेज़ के बाद उसके बेटे ओगोताई ने राज्य किया (१२२७-४१ ई०), फिर ओगोताई के भतीजे मानकू खान ने (१२४१-५६ ई०), और उसके पीछे मानकू के भाई कुबलैखान ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

(१२५६-६४ ई०)। पूरबी तुर्किस्तान, आमू-सीर का दोआब, बलख और गज़नी के सूबे चंगेज़ के बेटे चग़ताई को दिये गये, जिससे उस इलाके का नाम ही बाद में चग़ताई पड़ गया, और वहाँ के तुर्क चग़ताई-तुर्क कहलाने लगे। ओगोताई और मानकू के समय सारा चीन जीत लिया गया। मानकू के भाई हलाकू खान की राजधानी तबरेज़ (ईरान) में थी। उसने १२५८ ई० बग़दाद के खलीफ़ा मोतसिमबिल्ला का वध कर खिलाफ़त की जड़ उखाड़ डाली। कुबलै ने अपना बेड़ा सुमात्रा-जावा को जीतने भी भेजा (१२९३ ई०)। वे द्वीप उसके साम्राज्य में शामिल तो न हुए, पर उसकी चढ़ाई से वहाँ के पुराने राज्य समाप्त हो गये। १२८६ ई० में "मअबर" के राजा मारवर्मा कुलशेखर ने कुब्लै के पास दूत भेजा।

§२. परले हिन्द और आसाम में चीन-किरात जातियों का आना—मंगोलों की इस प्रगति से चीन और तिब्बत की कई जातियों में भी खलबली मच गयी, और वे दक्खिन की ओर बढ़ीं। आजकल हम जिस प्रायद्वीप को हिन्द-चीन कहते हैं उसमें चीनी-तिब्बती जातियों की प्रधानता तभी से हुई। उससे पहले वहाँ आग्नेय लोग रहते थे, जिनमें भारतीय प्रवासी खूब घुल-मिल चुके थे। कम्बुज राष्ट्र में उस समय सुखोदय नाम का एक प्रान्त था। अब चीनी जाति शान या साम के आ बसने से उसका नाम स्याम हो गया। हिन्द-चीन के इन नये विजेताओं ने पुराने हिन्दू राज्य तो दबा या मिटा दिये, पर स्वयम् उनके धर्म, सभ्यता और लिपि की दीक्षा ले ली। उसी शान जाति की एक शाखा अहोम ने कामरूप का पूरबी भाग जीत लिया, जिससे वह प्रान्त आसाम कहलाने लगा। अगली एक शताब्दी में कामरूप का पच्छिमी अंश भी जीता गया, पर अहोम लोग स्वयम् धीरे-धीरे हिन्दुओं में घुल-मिल गये। आसाम के हिन्दुओं में अब भी फूकन, बरुआ आदि जो उपनाम हैं, वे अहोमों के ही हैं। जावा से कुब्लै की सेना चली जाने पर वहाँ जयवर्धन नामक व्यक्ति ने एक राज्य खड़ा किया (१२९४ ई०), जिसकी राजधानी बिल्वतिक्त या मजपहित नगरी थी। आगे चल कर वह एक बड़ा समुद्री साम्राज्य बन गया।

§३. संसार की सभ्यता को मंगोलों की देन—मध्य-युग के संसार की अन्य जातियाँ जब अपने-अपने तंग दायरों में कूपमंडूकों की तरह सीमित और सन्तुष्ट थीं, तब मंगोलों ने एक विश्व-साम्राज्य खड़ा किया। भूमंडल की किसी भी रुकवाट की उन्होंने परवा न की। अनेक प्रकार की सभ्यताओं, विचारों और धर्मों के सम्पर्क में आने के कारण उनकी दृष्टि भी बड़ी उदार हो गयी थी।

मुहम्मद-बिन-बख्तयार ने जब बिहार जीता तब विक्रमशिला महाविहार का आचार्य श्रीभद्र नामी एक कश्मीरी था। वह भाग कर नेपाल पहुँचा, और वहाँ से तिब्बत के साक्य विहार में बुलाया गया। उसका तिब्बती शिष्य कुङ्ग्येंछन पीछे साक्य विहार का महन्त बना। चंगेज़ ने जब अफ़गानिस्तान जीता उसी समय कुङ्ग्येंछन मंगोलिया का धर्म-विजय करने लगा (१२२२ ई०)। सम्राट् ओगोताई उसका चेला बन गया। सम्राट् नानकू खान ने अपनी राजधानी में एक सभा बुला

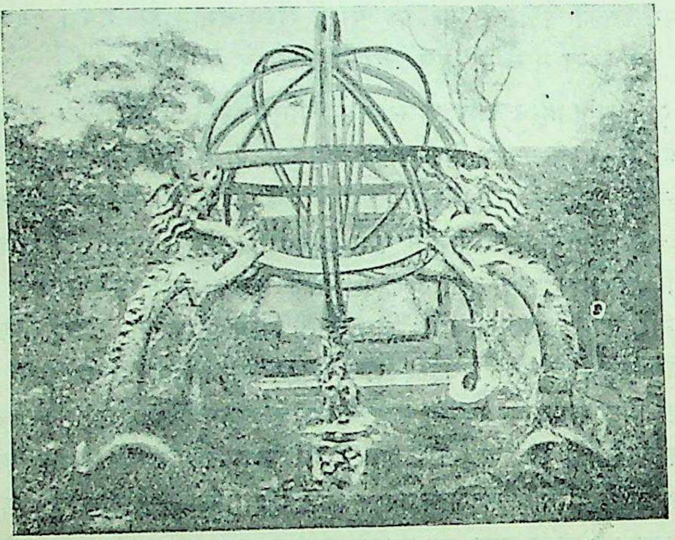

उत्तरी चीन की राजधानी पेपिङ में कुब्लै ख़ान की बनवायी वेधशाला के खँडहरों में काँसे का गोल यन्त्र (अन्तरिक्ष में राशियों की आपेक्षिक स्थिति देखने का यन्त्र)— मंगोलों के विज्ञान-प्रेम का प्रमाण।

कर यह तय करना चाहा कि संसार का कौन सा मत सब से अच्छा है। पहले उस सभा में ईसाई और इस्लाम मतों की जीत होती दिखायी दी, पर अन्त में कुङ्ग्येंछन के भतीजे फग्पा का भाषण सुनकर मानकू ने कहा, "हाथ की हथेली से जैसे पांचो अँगुलियाँ निकली हैं, वैसे ही बौद्ध मत से सब मत निकले हैं।" कुब्लै ने फग्पा को अपना राज-गुरु बनाया। तिब्बत से बौद्ध ग्रन्थों के मंगोल भाषा में अनुवाद कराये गये, और फग्पा ने तिब्बत वाली भारतीय लिपि में मंगोल भाषा लिखने की

रीति भी निकाली। मंगोल सम्राटों ने अपने इन गुरुओं को तिब्बत में जागीरें दीं, जिससे वहाँ लामा-शासन की नींव पड़ी।

मंगोलों द्वारा चीन से बारूद का ज्ञान युरोप पहुँचा, जिससे अगले युग में संसार की काया पलट गयी। मध्य युग के पूरबी और पच्छिमी संसार की सभ्यताएँ जब बिल्कुल निश्चेष्ट और मन्द हो चुकीं थीं तब मंगोलों ने उन्हें मानों मथ कर उनमें गति और जीवन पैदा किया।

अध्याय ४

दिल्ली साम्राज्य का चरम उत्कर्ष

(१२९०—१३२५ ई०)

§१. **जलालुद्दीन खिलजी—मालवा की विजय**—जलालुद्दीन जब दिल्ली की गद्दी पर बैठा, तब वह ७० बरस का था। वह स्वभाव का नरम था, और प्रायः अपराधियों को भी क्षमा कर देता था। सन् १२९१ में उसने रणथम्भौर पर चढ़ाई की। वहाँ सफलता की आशा न देख कर वह उज्जैन की तरफ़ चला गया, और उसे लूटने में सफल हुआ। दो बरस बाद उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने मालवे पर फिर चढ़ाई करके भेलसा अर्थात् पूरबी मालवा पर अधिकार कर लिया। उसी समय से मालवा दिल्ली का एक सूबा बन गया। इधर १२९२ ई० में मंगोल सतलज पार कर सूनम (पटियाला के पास) तक बढ़ आये, किन्तु वहाँ उनकी हार हुई, और उनमें से तीन हज़ार ने मुसलमान बन कर सुल्तान की सेवा स्वीकार की।

मालवे का मुख्य अंश फ़तह हो जाने से गुजरात और दक्खिन का सीधा रास्ता तुर्कों के हाथ आ गया। आजकल के इलाहाबाद ज़िले का मुख्य स्थान तब कड़ामानिकपुर था। अलाउद्दीन वहीं का हाकिम था। वह बड़ा महत्वाकांक्षी था। पहले उसने बंगाल जीतने का इरादा किया, पर पीछे उसे दक्खिन जीतना उपयुक्त मालूम हुआ। मालवे की पूरबी सीमा पर चन्देरी प्रदेश जीतने को बाकी था। आठ हज़ार सेना के साथ चढ़ाई करने के बहाने अलाउद्दीन दक्खिन की ओर बढ़ा और चन्देरी से इलिचपुर होते हुए एकाएक देवगिरि को जा घेरा (१२९४ ई०)। राजा रामदेव ने हार कर इलिचपुर का इलाका (उत्तरी बराड़) और बहुत अधिक धन उसे

दिया । अपनी उस लूट को लिये वह कड़ा वापिस आया । वहाँ उसने सुल्तान को वह लूट भेंट करने के बहाने बुलाया । बूढ़ा चचा जब उसे छाती से लगा रहा था तब उसे क़त्ल करा दिया और ख़ुद दिल्ली का सुल्तान बन बैठा (१२९५ ई०) ।

§२. अलाउद्दीन खिलजी—गुजरात, राजपूताना और दक्खिन की विजय—राज संभालते ही अलाउद्दीन को मंगोलों का सामना करना पड़ा । १२९६ ई० में एक लाख मंगोल मुल्तान, पंजाब और सिन्ध जीतने को चढ़ आये । सेनापति ज़फ़रखाँ ने जालन्धर के पास उन्हें हरा दिया और वे लौट गये ।

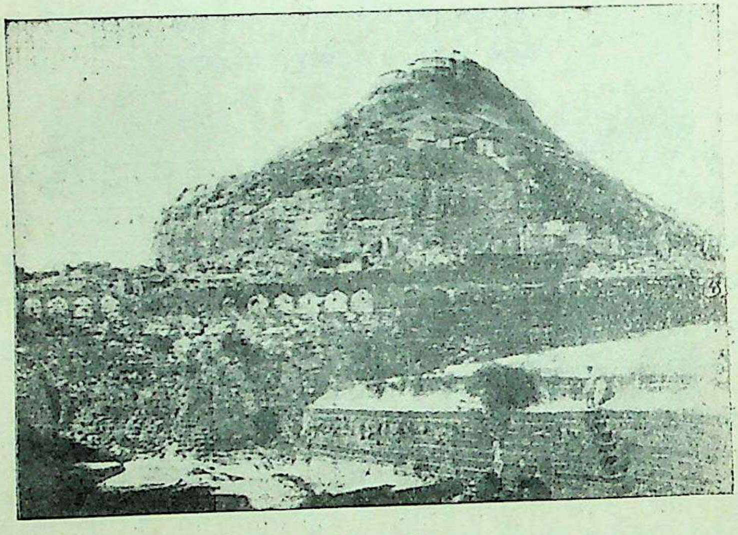

देवगिरि का किला

१२९७ ई० में अलाउद्दीन ने अपने भाई उलूगखाँ और सेनापति नसरतखाँ को गुजरात पर चढ़ाई करने भेजा । मालवे से उन्होंने मेवाड़ के रास्ते बढ़ना चाहा, किन्तु राजा समरसिंह ने उन्हें मार भगाया । तब मेवाड़ के दक्खिन घूम कर वे आसावल जा पहुँचे । यह वह स्थान है जहाँ अब अहमदाबाद बसा है । वहाँ से उन्होंने अणहिलपाटन पर चढ़ाई कर उसे ले लिया । राजा कर्ण, जिसे गुजरात में करण घेलो (पगला कर्ण) कहते हैं, भाग कर देवगिरि चला गया । तुर्कों ने खम्भात का प्रदेश खूब लूटा और उजाड़ा । वहाँ से जो दास पकड़ कर लाये गये उनमें से एक, आगे चल कर, मलिक काफ़ूर के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

गुजरात की चढ़ाई से लौटते हुए नौमुस्लिम मंगोलों ने विद्रोह किया। वे बड़ी संख्या में मारे गये और बहुत से जहाँ-तहाँ भाग गये। अलाउद्दीन ने दिल्ली में उनकी स्त्रियां और बच्चों से बदला चुकाया। १२९९ ई० में दो लाख मंगोल सेना कुतलग नामक सरदार के नेतृत्व में दिल्ली तक आ पहुँची। इस बार उन्होंने रास्ते में लूट-मार कहीं न की क्योंकि दिल्ली को जीत लेना ही उनका उद्देश था। घोर युद्ध के बाद उनकी हार हुई। इस युद्ध में सेनापति ज़फ़रखाँ काम आया।

मालवा और गुजरात के दिल्ली साम्राज्य में शामिल हो जाने से राजपूताने के राज्य तीन तरफ़ से घिर गये। अलाउद्दीन ने एक तरफ़ इन राज्यों को जीतना तथा दूसरी तरफ़ ताप्ती के आगे दक्खिन की ओर बढ़ना अपना उद्देश बना लिया। राजपूताने में रणथम्भौर का चौहान राज्य उसका सबसे पहला पड़ोसी था। वहाँ के राजा हम्मीर ने इसी समय एक भागे हुए मंगोल सरदार को शरण दी, और अलाउद्दीन के माँगने पर उसे लौटाने से इनकार कर दिया। अलाउद्दीन ने उसपर चढ़ाई की। एक बरस के सख़्त युद्ध के बाद हम्मीर के मारे जाने पर क़िला सुल्तान के हाथ लगा। सेनापति नसरतख़ाँ भी इस युद्ध में काम आया (१३०१ ई०)। रणथम्भौर की जीत से दिल्ली सल्तनत की सीमा मेवाड़ से जा लगी। समरसिंह के बेटे रत्नसिंह को मेवाड़ की गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने ही बीते थे कि अलाउद्दीन ने चित्तोड़ को घेर लिया (१३०२ ई०)। ६ महीने घिरे रहने के बाद जब रसद और पानी चुक गये तो किला अलाउद्दीन के हाथ आया। रत्नसिंह मारा गया और उसकी रानी पद्मिनी ने बहुत सी स्त्रियों के साथ जौहर कर लिया। अलाउद्दीन ने चित्तोड़ का राज्य अपने बेटे खिज़रखाँ को दे कर उसका नाम खिज़राबाद रक्खा।

अलाउद्दीन चित्तोड़ को मुश्किल से ले ही पाया था कि दिल्ली से मंगोलों के नये हमले की खबर आयी। तरग़ी नामक मंगोल सरदार ने एक बड़ी सेना के साथ जमना किनारे डेरा आ डाला और दिल्ली को घेर लिया। अलाउद्दीन के आने पर वह हट गया। मंगोलों को क़िलों को सर करने का अभ्यास न था, इसी से वे दिल्ली के घेरे से ऊब गये थे। १३०४ ई० में फिर एक मंगोल हमला हुआ। तब अलाउद्दीन ने गाज़ी तुग़लक नामक सेनापति को मंगोलों को रोकने के लिए दीपालपुर के सरहद्दी थाने पर नियुक्त किया। उसके बाद भी दो बार मंगोल फिर सिन्ध पार कर आये, पर गाज़ी तुग़लक ने उनका दृढ़ता से मुकाबला किया, और फिर तो उसने कई बार काबुल और लमग़ान तक उनका पीछा किया। सन्

१३०५ ई० से १३०८ ई० तक अलाउद्दीन ने मारवाड़ पर सेनाएँ भेज जालोर और सिवाना के राज्य जीत लिये।

राजा रामदेव ने इलिचपुर का कर भेजना बन्द कर दिया था, इसलिए १३०६-७ ई० में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में उधर रवाना की। मालवा और गुजरात होते हुए काफ़ूर ने बागलान के साल्हेरगढ़ में कर्ण सोलंकी को जा घेरा और उसे हराया। देवगिरि का यादव राजा रामदेव और उसका बेटा शंकर भी क़ैद हो कर दिल्ली पहुँचे, और अधीनता मानने पर अपने देश को वापिस भेजे गये। इलिचपुर प्रान्त पर काफ़ूर ने दखल कर लिया।

दूसरे बरस काफ़ूर को ओरंगल की चढ़ाई पर भेजा गया (१३०८ ई०)। एक बरस क़िले में घिरे रहने के बाद राजा प्रतापरुद्र ने बहुत सा ख़ज़ाना और वार्षिक कर का वचन दे कर छुटकारा पाया। एक हज़ार ऊँटों पर उस लूट को लादे हुए काफ़ूर दिल्ली वापिस पहुँचा। १३१० ई० के अन्त में वह फिर रवाना हुआ और इस बार धोरसमुद्र के राजा वीर बल्लाल को हरा कर उससे भारी रक़म वसूल की और अधीनता का वचन लिया।

तामिल देश के राजा कुलशेखर ने अपने छोटे बेटे वीर पांड्य को अधिक योग्य जान कर उत्तराधिकारी बनाया था। इसपर बड़े बेटे सुन्दर पांड्य ने पिता को मार डाला (१३११ ई०), और जब वीर पांड्य ने उसपर हमला किया तो वह मलिक काफ़ूर की मदद लेने पहुँचा। इस दशा में काफ़ूर ने 'मअबर' पर चढ़ाई की। घाट पार कर वह कावेरी-काँठे में उतरा और कण्णनूर पर छावनी डाली। वहाँ से श्रीरंगम्, चिदम्बरम् आदि की बस्तियों और मन्दिरों को लूटते हुए उसने त्रिचनापल्ली से मदुरा पर चढ़ाई की, और मदुरा से पट्टणम् अर्थात् रामेश्वर-पट्टण के सामने तक जा पहुँचा, जहाँ उसने एक मस्जिद बनवायी। वीर पांड्य इस बीच जंगलों में भाग गया था। मदुरा में कुछ सेना छोड़ कर बहुत बड़ी लूट के साथ १३११ ई० के अन्त में काफ़ूर दिल्ली पहुँचा। उसके लौटते ही त्रावंकोर के राजा रविवर्मा कुलशेखर ने समूचे तामिल देश पर अधिकार कर लिया। मदुरा में दिल्ली की जो सेना थी, वह उस शहर में घिर गयी। वीर पांड्य कोंकण भाग गया।

देवगिरि के राजा शंकर ने ख़िराज देना बन्द कर दिया और पिछली चढ़ाई में मदद भी न की थी। इस कारण १३१३ ई० में चौथी बार दक्खिन पर चढ़ाई कर काफ़ूर ने उसे हराया और समूचे महाराष्ट्र को लूटा।

§३. अलाउद्दीन का शासन--अलाउद्दीन कठोर शासक था। तुर्क सरदारों की उच्छृंखलता दबाने के लिए उसने उनके पारस्परिक प्रीतिभोजों तक को बन्द कर दिया। उसने स्वयम् शराब पीना छोड़ा और राज्य में उसकी सख्त मनाही कर दी। उसने सब मुफ़्तखोरों की वक्फ़, जागीरें आदि ज़ब्त कर लीं। पिछले सुल्तान शरीअत अर्थात् इस्लामी क़ानून के अनुसार शासन करते थे; उसने अपने राजकीय अधिकार को उससे भी ऊँचा माना और स्वतन्त्रता से नियम बनाये। वह अपने जासूसों द्वारा अपने हाकिमों के कार्यों का पूरा-पूरा पता रखता था—सेना तो सुसंगठित थी ही।

दोआब के हिन्दू ज़मीन्दारों को उसने बुरी तरह दबाया, और उनपर ५० फ़ी सदी तक कर लगा दिया। कहते हैं उनकी यह हालत हो गयी कि वे न घोड़े पर चढ़ सकते और न अच्छे कपड़े पहन सकते थे। व्यापार और बाज़ारों का उसने पूरा नियन्त्रण किया, यहाँ तक कि चीजों के भाव तक तय कर दिये। वैसा करने का प्रयोजन शायद यह था कि ज़मीन्दार और बिचवानिये ग़रीब प्रजा को न लूट पावें। कहते हैं कि इस प्रबन्ध से राज्य में सुभिक्ष हो गया।

§४. लखनौती-सल्तनत का विस्तार—बलबन के मरने पर जब कैकोबाद दिल्ली की गद्दी पर बैठा, तब उसका बाप नासिरुद्दीन महमूद लखनौती में स्वतन्त्र हो गया था। दिल्ली राज्य के विस्तार के साथ-साथ लखनौती-राज्य का भी विस्तार हुआ। बिहार भी लखनौती के सुल्तानों के अधीन रहा। कड़ा-मानिकपुर तब दिल्ली-सल्तनत का सबसे पूरबी इलाका था। लखनौती के इन सुल्तानों के राज्य-काल यों है—

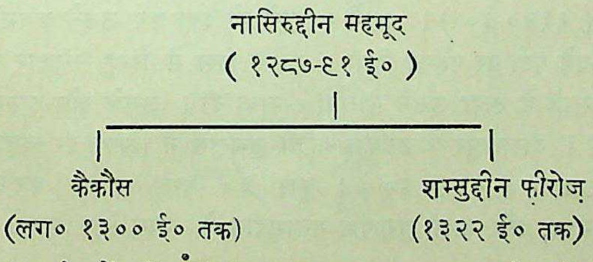

१२९८ ई० में दक्खिनी बंगाल का मुख्य नगर सातगाँव जीता गया। फिर शम्सुद्दीन फ़ीरोज़ के शासन-काल में उसके बाग़ी बेटे गयासुद्दीन बहादुर ने सोनारगाँव छीन कर सेन राजवंश का अन्त कर दिया। इस प्रकार बंगाल का मुख्य भाग

लखनौती के अधीन हुआ। पूरब में सिलहट और त्रिपुरा, और दक्खिन में यशोहर-खुलना आदि समुद्रतट के इलाक़ों में छोटे-छोटे हिन्दू राज्य बने रहे। उत्तर बंगाल में कामरूप राज्य तो अहोमों के हाथों ख़तम हो गया, पर कामतापुर में एक हिन्दू राज्य बना रहा।

§५. ख़िलजी वंश का अन्त—अलाउद्दीन के बूढ़े होते-होते दिल्ली राज्य का संगठन ढीला पड़ने लगा। उसकी मृत्यु (१३१६ ई०) के बाद मलिक काफ़ूर ने उसके दो बेटों की आँखें निकलवा दीं, पर तीसरा मुबारक बच निकला। काफ़ूर को मार कर वह गद्दी पर बैठा। दिल्ली के इस राजविप्लव के समय दक्खिन के राज्य स्वतन्त्र हो गये। वीर बल्लाल ने धोरसमुद्र को फिर से बसाया (१३१६ ई०), और देवगिरि तथा ओरंगल ने भी कर देना छोड़ दिया। मुबारक ने देवगिरि के राजा हरपालदेव पर, जो रामदेव का दामाद था, चढ़ाई की, और उसे पकड़ कर उसकी खाल उधड़वा दी। तब उसने महाराष्ट्र के उस राज्य को मिटा कर देवगिरि को दिल्ली का सूबा बना दिया और वहाँ अपने हाकिम नियत किये (१३१८ ई०)। उसने सेनापति खुसरो को ओरंगल पर भेजा। राजा प्रतापरुद्र ने फिर कर देना स्वीकार किया और राज्य के पाँच परगने सौंप दिये। ओरंगल से देवगिरि लौट कर खुसरो ने मअबर पर चढ़ाई की, जहाँ बरसात के कारण उसे छावनी में बन्द पड़ा रहना पड़ा।

खुसरो भी हिन्दू से मुसलमान बना था। पहले वह एक 'नीच जाति' का गुजराती था। दिल्ली लौट कर उसने मुबारकशाह को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। पीछे उसका काम तमाम कर खुसरो नासिरुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा (१३२० ई०)। पुराने सरदारों को दबा कर उसने अपनी जाति के लोगों को बड़े-बड़े पदों पर पहुँचा दिया। उसके दिल में हिन्दू संस्कार बाक़ी थे। मस्जिदों में क़ुरानों के ऊपर उसने मूर्त्तियाँ रखवा दीं। उसके ज़ोर-ज़ुल्म से तुर्क तंग आ गये। दीपालपुर के हाकिम गाज़ी तुग़लक ने दिल्ली पर चढ़ाई की और खुसरो को मार डाला (१३२० ई०)। कुल ३० बरस शासन करके ख़िलजी राजवंश मिट गया, और गाज़ी तुग़लक गयासुद्दीन के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा।

§६. गयासुद्दीन तुग़लक—गयासुद्दीन तुग़लक एक ग़रीब तुर्क का बेटा था। उसकी माँ पंजाब की एक जट्टी (जाटनी) थी। उसने दिल्ली के राज्य को फिर से

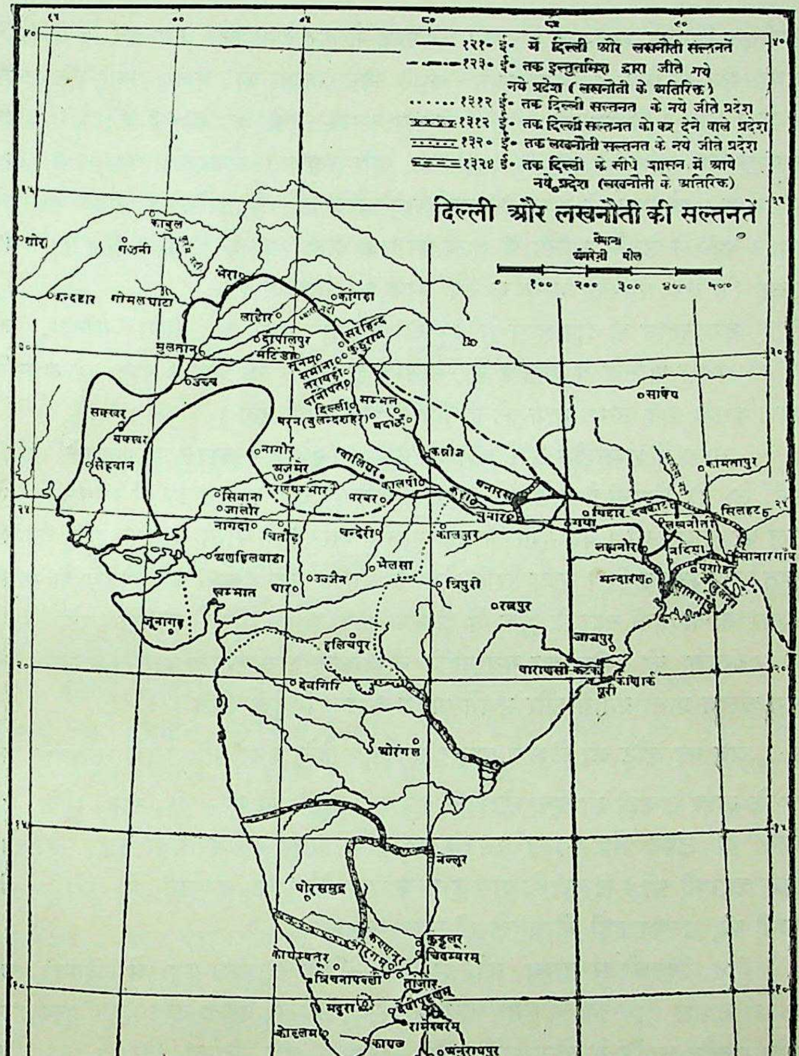

दिल्ली और लखनौती की सल्तनतें

१२१० ई० में दिल्ली और लखनौती सल्तनतें
१२३० ई० तक इल्तुतमिश द्वारा जीते गये नये प्रदेश (लखनौती के अतिरिक्त)
१३१२ ई० तक दिल्ली सल्तनत के नये जीते प्रदेश
१३१२ ई० तक दिल्ली सल्तनत को कर देने वाले प्रदेश
१३२० ई० तक लखनौती सल्तनत के नये जीते प्रदेश
१३२४ ई० तक दिल्ली के सीधे शासन में आये नये प्रदेश (लखनौती के अतिरिक्त)
पैमाना
अंगरेज़ी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
गोर
काबुल
गज़नी
कन्दहार
गोमल घाटी
मुलतान
उच्छ
सक्खर
भक्खर
सेहवान
लाहौर
दीपालपुर
भटिंडा
कांगड़ा
सरहिन्द
कुहराम
सुनाम
समाना
तरायन
पानीपत
दिल्ली
सम्भल
बदाऊँ
बरन (बुलन्दशहर)
नागौर
अजमेर
ग्वालियर
रणथम्भौर
कालपी
नरवर
कन्नौज
बनारस
चुनार
सियाना
जालौर
नागदा
चित्तौड़
चन्देरी
कालंजर
अणहिलवाड़ा
उज्जैन
भेलसा
त्रिपुरी
रतनपुर
खम्भात
धार
जूनागढ़
हरिचंपुर
देवगिरि
जाजपुर
वाराणसी-कटक
पुरी
कोणार्क
वारंगल
सांपा
कामतापुर
बिहार
गया
सिलहट
लखनौती
लखनौर
नदिया
मन्दारण
सोनारगाँव
नेल्लूर
दोरसमुद्र
कुड्डलूर
चिदम्बरम
कन्नानूर
कोपम्बतूर
त्रिचनापल्ली
तंजौर
मदुरा
देवीपट्टनम
रामेश्वरम
कोइलम
कायल
अनुराधपुर
पुलस्तम

व्यवस्थित किया। ओरंगल के राजा प्रतापरुद्र ने कर देना फिर बन्द कर दिया था। उसके दमन के लिए ग़यासुद्दीन ने अपने बेटे जूना को भेजा, जो एक बार (१३२१ ई०) विफल लौट कर दूसरी बार सफल हुआ (१३२३ ई०)। राजा प्रतापरुद्र कैदी बना कर दिल्ली भेजा गया, और तेलंगण को दिल्ली का सूबा बना दिया गया। ओरंगल से जूना ने राजमहेन्द्री पर चढ़ाई की, और उस शहर को ले लिया। वहाँ से उसने उड़ीसा के राज्य पर एक धावा किया। उड़ीसा में इस समय नरसिंह १म का पड़पोता भानुदेव २य राज कर रहा था।

ग़यासुद्दीन के दीपालपुर से दिल्ली जाते ही सिन्ध के समरा सरदार, जो वहाँ के असल शासक थे, विद्रोह कर स्वतन्त्र हो गये। ग़यासुद्दीन उधर ध्यान न दे सका। इसके बाद सिन्ध नाम को ही दिल्ली के अधीन रहा।

बंगाल में शम्सुद्दीन फ़ीरोज़ के मरने पर उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। उनमें से दो दिल्ली के सुलतान से मदद लेने पहुँचे। १३२४ ई० में ग़यासुद्दीन ने बंगाल पर चढ़ाई की। वह गंगा के उत्तर-उत्तर तिरहुत के रास्ते बढ़ा। इस कारण तिरहुत के कर्णाट-वंशी राजा हरसिंहदेव से उसका युद्ध हुआ। हरसिंहदेव के मन्त्री चंडेश्वर ने चौदहवीं सदी के शुरू में ही नेपाल को जीता था। हरसिंह वहीं भाग गया। बंगाल को जीत कर ग़यासुद्दीन ने लखनौती, सातगाँव और सोनारगाँव के अलग-अलग प्रान्त बनाये और उनमें अपने हाकिम नियुक्त किये।

जब वह लौट कर दिल्ली आया तो उसके बेटे जूना ने उसके स्वागत को शहर के बाहर लकड़ी का एक तोरण (कुश्क) खड़ा किया, जो ठीक मौके पर सुल्तान के ऊपर गिर पड़ा (१३२५ ई०)। ग़यासुद्दीन एक सीधा सादा कर्तव्य-परायण आदमी था। दिल्ली के पास तुग़लक़ाबाद क़िले की इमारत में, जो उसने बनवायी थी, उसका वही गौरवयुक्त सीधापन झलकता है।

§७. दिल्ली साम्राज्य की सीमाएँ—दिल्ली-सल्तनत-युग में दिल्ली का साम्राज्य ग़यास तुग़लक के समय अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। मुलतान, दीपालपुर और लाहौर से सोनारगाँव और सातगाँव तक केवल तिरहुत का एक प्रान्त बाक़ी था, जो उसके अधीन न हुआ था। पर तिरहुत का भी पराभव हो चुका था। राजपूताना, मालवा और गुजरात (कच्छ-काठियावाड़ के बिना) उसमें सम्मिलित थे। मालवे के ठीक पूरब लगा हुआ चन्देरी का सूबा (=सागर-दमोह ज़िले) भी, जो पुराने चेदि राज्य में था, ग़यासुद्दीन के अधीन था। ठेठ

दक्खिन में महाराष्ट्र और तेलगंण दिल्ली साम्राज्य के अन्तर्गत थे और कर्णाटक (धोरसमुद्र) का राजा उसे कर देता था। सुदूर दक्खिन में 'मअबर' का भी पराभव हो चुका था और उसपर दिल्ली-साम्राज्य का दावा था। भारतवर्ष का मुख्य भाग जो दिल्ली के अधीन न हुआ था, वह बंगाल, ओरंगल, मालवा, चन्देरी और कड़ा-मानिकपुर के बीच का था, जिसमें जभौती, चेदि, छत्तीसगढ़ (महाकोशल), उड़ीसा और झाड़खंड (छोटा नागपुर) के प्रान्त शामिल थे। सिन्ध भी इस समय वस्तुतः स्वतन्त्र था।

अध्याय ५

दिल्ली साम्राज्य का ह्रास और प्रादेशिक राज्यों का उदय

(१३२५--१३९८ ई०)

§ १. **मुहम्मद तुग़लक**—ग़यासुद्दीन की मृत्यु के बाद जूना मुहम्मद तुग़लक के नाम से गद्दी पर बैठा (१३२५ ई०)। वह पढ़ा-लिखा और विद्वान् होने के साथ-साथ सनकी, क्रूर और मूर्ख भी था।

कृष्णा के काँठे में सगर के इलाके का हाकिम बहाउद्दीन गुर्शास्प था। उसने मुहम्मद को सुलतान मानने से इनकार किया और देवगिरि पर चढ़ाई की। मुहम्मद ने तब दक्खिन पर चढ़ाई की (१३२७ ई०), और बहाउद्दीन, जो धोरसमुद्र के राजा के पास भाग गया था, पकड़ा और मारा गया। इसी प्रसंग में मुहम्मद ने धोरसमुद्र राज्य पर भी दखल करना चाहा और मअबर को एक नयी फ़ौज भेजी। उसने दिल्ली के बजाय देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया और उसका नाम दौलताबाद रक्खा। बहाउद्दीन की खाल में भुस भरवा कर उसे प्रान्तों में घुमा दिया कि फिर कोई विद्रोह करने की न सोचे। उसका उलटा फल हुआ। मुलतान के नाज़िम ने, जिसे ग़यासुद्दीन तुग़लक अपने भाई की तरह मानता था, उस लाश को दफ़नवा दिया और स्वयम् विद्रोह किया (१३२८ ई०)। तब मुहम्मद को अपनी दक्खिन की योजनाएँ छोड़ कर पंजाब जाना पड़ा। मुलतान का प्रबन्ध करके वह लौटता ही था कि मंगोलों की एक सेना पंजाब लाँघ कर जमना तक चढ़ आयी। उन्हें हरा कर उसने कलानौर (जि० गुरदासपुर) तक उनका पीछा किया। उसके दिल्ली वापिस आने पर दिल्ली की प्रजा ने शिकायत की कि राजधानी बदल देने से

उनका सब कारोबार चौपट हो गया है। इसपर खीझ कर उसने हुक्म दिया कि दिल्ली के तमाम निवासी दौलताबाद जाँय, एक भी आदमी दिल्ली में न रहने दिया जाय।

इसी समय सुलतान के दिमाग में कई बड़ी योजानाएँ समायीं थीं, जिनके लिए रुपये की ज़रूरत थी। इसलिए उसने दोआब के किसानों पर एकदम दूना-तिगुना कर बढ़ा दिया। दूसरे, उसने ताँबे का सिक्का चलाया और उसे सोने-चाँदी के बराबर ठहराया। यदि शाही टकसालों में सिक्के ढल सकते थे तो लोगों के घरों में भी ढल सकते थे। इसलिए ताँबे के सिक्के इतने बन गये कि उनका मूल्य ताँबे के ही बराबर रहा। तब सुलतान ने उनका चलन बन्द किया, और उन्हें खज़ाने में लौटाने का हुक्म दिया। लोग उन्हें लौटा-लौटा कर चाँदी-सोने के सिक्के ले गये, जिससे खज़ाने को भारी नुक़सान हुआ। ये नये प्रबन्ध करके सन् १३३० में मुहम्मद अपनी राजधानी (दौलताबाद) पहुँचा। तब उसे सोनारगाँव के हाकिम के विद्रोह की खबर मिली। विद्रोही पकड़ कर मार डाला गया। उसी प्रसंग में तिरहुत का प्रान्त भी जीत कर वहाँ एक तुगलकपुर की स्थापना की गयी। इसी बीच में किसानों के प्रति सुलतान की नयी नीति फल लाने लगी। किसानों ने जब देखा कि वे बढ़ा हुआ कर किसी तरह अदा नहीं कर सकते तब वे खेत छोड़ कर भागने लगे। उन्हें दंड देने को मुहम्मद फिर दिल्ली आया और दोआब पर चढ़ाई की। बरन (बुलन्दशहर), दलमऊ, कन्नौज आदि के इलाके उसने ऐसे उजाड़े मानो किसी शत्रु के देश पर चढ़ाई कर रहा हो! और किसानों को जंगलों में घेर-घेर कर ऐसे मारा मानों जंगली जानवरों का शिकार करता हो!

दिल्ली लौटने पर उसे ख़बर मिली कि मअबर में जिस सेनापति जलालुद्दीन को भेजा गया था वह वहाँ स्वतन्त्र सुलतान बन बैठा है (१३३५ ई०)। वह फिर दक्खिन चला, पर ओरंगल पहुँचने पर उसकी सेना में बीमारी फैल गयी और वह खुद भी बीमार पड़ गया और उसे देवगिरि लौटना पड़ा।

अब से उसने सूबों की मालगुज़ारी नीलाम करना शुरू किया, अर्थात् सूबों का शासन वह ऐसे व्यक्तियों को देने लगा जो अधिक से अधिक मालगुज़ारी उगाहने का वचन दें। इसी समय उसके दिमाग में खुरासान जीतने की सनक समायी। उसके लिए एक बड़ी फ़ौज खड़ी की गयी, पर एक साल बाद जब तनखाह देने को खज़ाने में रुपया न रहा तब वह तितरबितर हो गयी। वह खुरासान

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जीतने के सपने देख रहा था कि इधर हुलागू नामक एक मंगोल सरदार और कुलचन्द्र खोकर ने मिल कर लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया और वे वहाँ के राजा और मन्त्री बन बैठे। मुहम्मद फिर दिल्ली के लिए रवाना हुआ। अब उसने दिल्ली की निर्वासित प्रजा को भी वापिस लौटने की इजाज़त दे दी। हुलागू और कुलचन्द्र को इस बीच सुल्तान के वज़ीर ने हरा दिया था।

मुहम्मद जब दिल्ली पहुँचा (१३३६ ई०) तब दिल्ली और दोआब के प्रदेशों में घोर दुर्भिक्ष शुरू हो चुका था, जो सात साल तक जारी रहा। बहुत अंश तक यह उसकी ही करतूतों का फल था। अवध के सूबे में तब सुभिक्ष था, इसलिए एक साल तक वह अपनी राजधानी फ़र्रुखाबाद ज़िले में गंगा के किनारे ले गया। इस दशा में भी उसपर चीन जीतने की सनक सवार हुई! और एक लाख सवार उसने हिमालय की तरफ़ भेजे, जिनमें से साल भर बाद १० वापिस आये! दिल्ली के चौगिर्द के इलाकों में प्रजा ने कृषि छोड़ कर लुटेरे जत्थे बना लिये थे। सुलतान की एक लाख सेना नष्ट हो जाने से दूर के प्रान्तों से उसका डर उठ गया। मालगुज़ारी की नीलामी से प्रान्तों के शासक भी अयोग्य रह गये थे। यों अब सारा साम्राज्य टूटने लगा था।

§२. मेवाड़, कर्णाटक और तेलंगण का स्वतन्त्र होना—मेवाड़ १३२६ ई० में ही स्वतन्त्र हो चुका था। वहाँ का राजा हम्मीर, जो गुहिलोत वंश की एक छोटी शाखा का कुमार था, मुहम्मद के गद्दी पर बैठते ही स्वतन्त्र हो गया था उस शाखा के पास तब तक सीसोदा गाँव की जागीर होने से हम्मीर के वंशज सीसोदिया कहलाये।

होयसल राजा वीर बल्लाल ३य ने १३२७ ई० में जब यह देखा कि दिल्ली का सुल्तान उससे कर ले कर ही सन्तुष्ट होने वाला नहीं है, प्रत्युत उसके राज्य पर दख़ल करना चाहता है, तब वह अपने राज्य की रक्षा के उपाय करने लगा। उत्तरी सीमा पर उसने हाम्पी की किलाबन्दी शुरू की; वह स्थान आगे चल कर विजयनगर कहलाया। पांच यादव (वोड़ेयार) भाई उसकी सेवा में थे, जिनमें से बड़े तीन—हरिहर, कम्पन और बुक्क--के नाम प्रसिद्ध हैं। गोवा से नेल्लूर तक की उत्तरी दुर्ग-पंक्ति इन्हें सौंपी गयी थी। तामिल मैदान में बल्लाल ने तिरुवण्णामलै की किलाबन्दी की—दिल्ली से मअबर के रास्ते पर वह बहुत अच्छा नाका था। जब १३३५ ई० में जलालुद्दीन अहसानशाह मअबर में स्वतन्त्र

हो गया तो बल्लाल उसे चारों तरफ़ से घेरने लगा। कुछ समय बाद मत्रबर के सुलतानों के हाथ में केवल कंणनूर और मदुरा शहर रह गये। मदुरा में चौथे सुलतान के राज्य-काल में बल्लाल ने कंणनूर को भी घेर लिया; तब मदुरा के सुलतान ने उसपर हमला किया। अस्सी बरस का बूढ़ा बल्लाल उस युद्ध में मारा गया (१३४३ ई०)। उसके बेटे विरूपाक्ष बल्लाल ने मुकाबला जारी रक्खा। तीन बरस बाद वह भी मारा गया। बुक्क के बेटे कुमार कम्पन ने तब अपने राजा की मृत्यु का बदला चुकाया, और समूचे तामिल तट पर अधिकार कर लिया। केवल मदुरा शहर में सल्तनत बची रह गयी।

होयसल राजवंश के समाप्त हो जाने से वोडेयार हरिहर और बुक्क क्रम से कर्णाटक-तामिलनाड के राजा हुए। पाँचों वोडेयार भाई अपने देश को स्वतन्त्र रखने का व्रत लिये हुए थे। विद्यारण्य और सायण नामक दो विद्वान भाई उनके परामर्शदाता थे।

इनकी देखादेखी प्रतापरुद्र के बेटे कृष्णय्या नायक ने भी १३४५ ई० में ओरंगल राज्य की पुनःस्थापना की।

§३. बंगाल, कश्मीर और महाराष्ट्र की नयी सल्तनतें—१३३९ ई० में बंगाल भी स्वतन्त्र हो गया। सोनारगाँव-सातगाँव में फ़खरुद्दीन नामक एक व्यक्ति सुल्तान बन बैठा। लखनौती की गद्दी सन् १३४६ ई० में शम्सुद्दीन इलियास ने छीन ली। उसने तिरहुत पर भी अधिकार कर लिया, और नेपाल की राजधानी काठमांडू पर चढ़ाई कर उसे लूटा और उजाड़ा (दिसम्बर १३४६ ई०)। उसके बाद उसने बिहार-बनारस तक क़ब्जा करना चाहा।

इसी समय कश्मीर में तुर्क सल्तनत स्थापित हुई (१३४६ ई०)। वहाँ अब तक हिन्दू राज्य बना हुआ था। किन्तु राजाओं की सेना में तुर्क सैनिक काफ़ी थे। अब उनके नेता शाह मीर ने हिन्दू राजा की विधवा कोटा को गद्दी से हटा कर राज्य ले लिया।

गुजरात और महाराष्ट्र में भी बहुत से मुस्लिम सरदारों ने विद्रोह किया। मुहम्मद उन्हें दबाने के लिए १३४५ ई० में दिल्ली से निकला और छः बरस बाद उसी कोशिश में मर गया। गुजरात का विद्रोह दबा कर वह देवगिरि पहुँचा। तब देवगिरि के विद्रोही कुलबर्गा भाग गये। इसी समय गुजरात में फिर विद्रोह हुआ। मुहम्मद के उधर जाने पर दक्खिनी विद्रोहियों के नेता हसन गंगू या काँगू ने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

महाराष्ट्र में एक नये राज्य की नींव डाली। कांगू अपने को ईरान के प्राचीन सम्राट् बहमन का वंशज मानता था, इस कारण इस वंश का नाम बहमनी पड़ा। बहमनी राज्य की राजधानी पहले कुलबर्गा (कलबर्ग) और फिर बिदर (बदरकोट) में रही।

गुजरात का दूसरा विद्रोह दबा कर मुहम्मद ने सुराष्ट्र या सोरठ (काठियावाड़) को जीतने की चेष्टाएँ कीं, पर चूड़ासमा वंश के राजा मंडलीक ने उसका बहादुरी से मुकाबला किया। गुजरात का विद्रोही सरदार सिन्ध भाग गया था। मुहम्मद ने तब सिन्ध पर चढ़ाई की और वहीं उसका देहान्त हुआ (१३५१ ई०)।

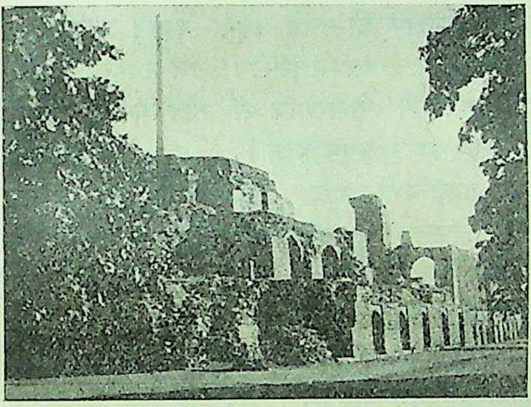

दिल्ली में फ़ीरोज़शाह का कोटला

हिमालय की तराई से अशोक की एक लाट को फ़ीरोज़ उठवा लाया था। वह इसके ऊपर खड़ी है।

§४. फ़ीरोज़ तुग़लक़—मुहम्मद तुग़लक के पीछे उसका चचेरा भाई फ़ीरोज़ सन् १३५१ से १३८८ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर रहा। वह मुहम्मद की तरह पागल नहीं था। उसने दूर के प्रान्तों में दखल देने के बजाय अपने उपस्थित राज्य को संगठित करने की ओर ध्यान दिया। दिल्ली साम्राज्य में जौनपुर, मालवा और गुजरात ही दूर के प्रान्त बचे थे; इनमें फ़ीरोज़ ने योग्य शासक नियुक्त किये। थानेसर के एक टांक वंश के सैनिक को ज़फ़रखाँ नाम से मुसलमान बना कर उसके हाथ गुजरात का शासन सौंपा। आगे चल कर इन्हीं हाकिमों के वंशजों ने उन प्रान्तों में स्वतन्त्र राज्य स्थापित किये। फ़ीरोज़ तुग़लक़ में सैनिक क्षमता न थी, पर वह सच्चरित्र और योग्य शासक था। उसने प्रजा की भलाई के लिए बहुत से काम किये। दिल्ली के आस-पास सैकड़ों बगीचे लगवाये, और सतलज और जमना से पाँच नहरें निकलवायीं, जिनमें से एक-आध अब तक बची हैं। उसके सुशासन का बहुत कुछ श्रेय उसके सुयोग्य

मन्त्री ख़ाने-जहान मक़बूल को है। ख़ाने-जहान जन्म से तेलंगण का हिन्दू था। फ़ीरोज़ ने हिन्दुओं को मुसलमान बनाने के लिए पहले के सब सुल्तानों से अधिक जतन किये। अलाउद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ न्याय और शासन में मुल्लों और मौलवियों की कुछ न सुनते थे, पर फ़ीरोज़ पूरी तरह उनके हाथ में था।

§५. इलियासशाह और गणेश्वर—इलियासशाह बंगाली की काठमांडू की चढ़ाई का उल्लेख हो चुका है। १३५२ ई० में उड़ीसा के राजा नरसिंह ३य की मृत्यु हुई, और उसका बेटा भानुदेव ३य राजा बना। इलियासशाह ने तब एकाएक उड़ीसा पर धावा किया और उसे लूटा। उसके बाद जब उसने बिहार और तिरहुत भी ले लिये तब फ़ीरोज़ तुग़लक को उससे लड़ना पड़ा। फ़ीरोज़ के आने पर इलियास तिरहुत से हट गया, पर बंगाल में फ़ीरोज़ उसे न हरा सका। १३५४ ई० में जब वह लौटा तो इलियास ने सोनारगाँव भी जीत लिया। तब से इलियासशाह बंगाल के तीनों हिस्सों का सुलतान हुआ। १३५७ ई० में उसकी मृत्यु हुई और उसका बेटा सिकन्दर तख्त-नशीन हुआ। फ़ीरोज़ तुग़लक़ ने तब फिर बंगाल पर चढ़ाई की; पर फिर विफल रहा। इलियास तथा उसके वंशजों के शासन में बंगाल में सुख-समृद्धि बनी रही। १३६० ई० से १५३८ ई० तक दिल्ली के किसी सुल्तान ने बंगाल पर चढ़ाई नहीं की।

बंगाल की इन चढ़ाइयों में फ़ीरोज़ गोरखपुर और तिरहुत हो कर गया था। गोरखपुर तब दिल्ली का सीमान्त गिना जाता था। इस इलाके में फ़ीरोज़ ने जौनपुर बसाया, और पहले-पहल तिरहुत में दिल्ली के कर्मचारी कर वसूल करने के लिए रक्खे। दूसरी चढ़ाई से जौनपुर लौट कर १३६० ई० में उसने कड़ा से गढ़कंटका (या गढ़ा) के रास्ते उड़ीसा पर चढ़ाई की। गढ़कंटका पुराने चेदि राज्य की राजधानी त्रिपुरी के पास है। फ़ीरोज़ के आने पर उड़ीसा का राजा भानुदेव (३य) तेलंगण भाग गया। फ़ीरोज़ ने वाराणसी-कटक (=कटक) को लूटा और पुरी से जगन्नाथ की मूर्त्ति उठा लाया।

उसके दिल्ली वापिस पहुँचने पर तिरहुत उसके हाथ से निकल गया। वह सूबा कुल ३०-३५ बरस ही दिल्ली के अधीन रहा था। कर्णाट* राज्य के पतन के समय कामेश्वर नाम के एक ब्राह्मण ने मिथिला में एक नया राज्य दिल्ली की अधीनता

---

* तिरहुत का नान्यदेव वाला वंश कर्णाट कहलाता है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में खड़ा कर लिया था। कामेश्वर का बेटा भोगीश्वर फ़ीरोज़ का मित्र था। उसने या उसके पुत्र गणेश्वर ने मिथिला में फिर से स्वतन्त्र राज्य स्थापित किया। १३७० ई० में गणेश्वर दिल्ली या बंगाल की सेना से लड़ता हुआ मारा गया, पर उसके पुत्र कीर्त्तिसिंह ने "पिता के वैरियों से अपनी राजलक्ष्मी की रक्षा की"। मैथिल कवि विद्यापति ने कीर्त्तिलता नामक काव्य में उसकी कीर्त्ति गायी है। तिरहुत के स्वतन्त्र हो जाने पर भी बिहार (मगध) फ़ीरोज़ और उसके वंशजों के अधिकार में बना रहा।

§६. सिन्ध के जाम—सिन्ध के विद्रोही समरों का दमन करते हुए मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु हुई थी। फ़ीरोज़ ने उन्हें शान्त किया। लेकिन उसी समय सम्मा सरदारों ने विद्रोह कर दक्खिनी और उत्तरी सिन्ध की राजधानियों—सेहवान और बक्खर—पर काबू कर लिया (१३५१ ई०)। सिन्ध के सम्मा और सोरठ के चूड़ासमा एक ही वंश के थे। सिन्ध में वे मुसलमान हो गये और उनके मुखिया 'जाम' कहलाते थे।

१३६२ ई० में फ़ीरोज़ ने सिन्ध पर चढ़ाई की। उसकी सेना के साथ सिन्ध नदी में एक बेड़ा भी था। जाम माली और उसका भतीजा बाबनिया वीरता से लड़े। उन्होंने फ़ीरोज़ का बेड़ा छीन लिया और उसे हरा कर ठट्ठा से रन के रास्ते गुजरात भगा दिया। एक बरस की तैयारी के बाद फ़ीरोज़ ने गुजरात से फिर ठट्ठा पर चढ़ाई की। इस बार उसकी जीत हुई। जाम माली और बाबनिया को वह दिल्ली ले गया, और अधीनता मानने पर छोड़ा। किन्तु १३७२ ई० में सम्मों ने सिन्ध से फ़ीरोज़ की सब सेना को भगा दिया और वहाँ जामों का वंश स्वतन्त्र हो कर राज्य करने लगा।

§७. दक्खिनी रियासतें (१३५८–९७ ई०)—१३५८ ई० में हसन बहमनशाह की मृत्यु हुई और उसका बेटा मुहम्मद १म उत्तराधिकारी हुआ। उसने अपनी रियासत का सोने का सिक्का चलाना चाहा, पर दक्खिन के सुनार उस सिक्के को पाते ही गला देते थे और विजयनगर और ओरंगल राज्यों के सिक्के को ही चलाते थे। मुहम्मद ने राज्य भर के सुनारों को मरवा दिया और उत्तर भारत के खत्रियों को उनकी जगह स्थापित किया। कृष्णय्या नायक और बुक्कराय को भी धमकी दी। फलस्वरूप कृष्णय्या से उसका दो साल तक युद्ध हुआ, जिसके अन्त में गोलकुंडा का प्रदेश उसके हाथ आया। १३६५-६७ ई० में उसने कृष्णा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पार कर विजयनगर पर चढ़ाई की। बुक्कराय की हार हुई, और लाखों की संख्या में जनता क़त्ल हुई। अन्त में सन्धि हुई और यह तय हुआ कि आगे से युद्धों में असैनिक जनता को न मारा जाय।

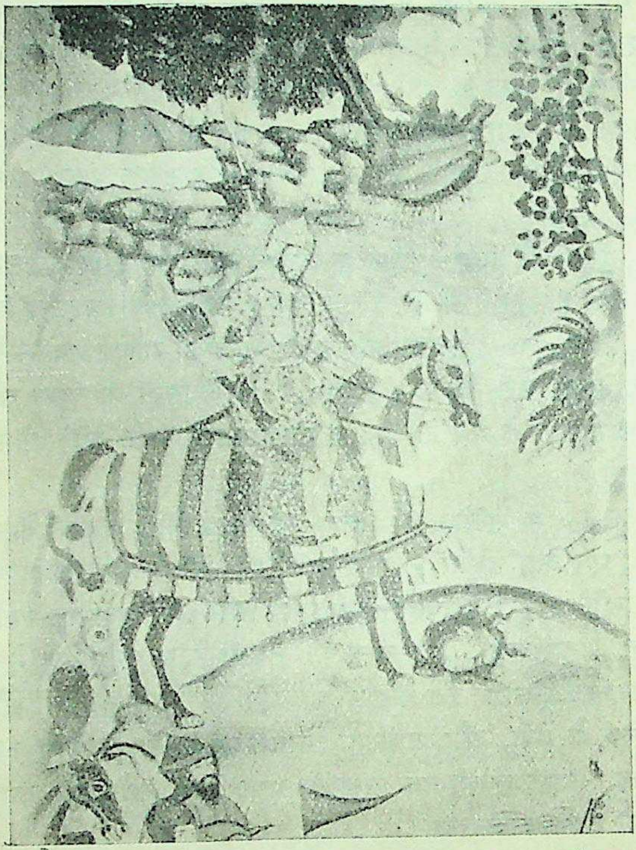

तैमूर

अकबर के समय लिखी गयी सचित्र तारीखे-खानदाने-तैमूरिया की अप्रकाशित हस्तलिखित प्रति में से। खुदाबख़्श पुस्तकालय पटना के ट्रस्टियों के सौजन्य से।

[कापीराइट, खु० पु०]

१३७७ ई० में मुहम्मद १म की मृत्यु हुई; उसके उत्तराधिकारी मुजाहिद ने घटप्रभा से तुंगभद्रा तक का इलाका बुक्कराय से तलब किया और विजयनगर

पर चढ़ाई की। लेकिन उसे निष्फल लौटना पड़ा और लौटते समय उसकी बुरी दशा हुई।

मदुरा की सल्तनत ने १३५६ ई० के बाद फिर सिर उठाना चाहा, लेकिन १३७७ ई० तक बुक्कराय ने उसको बिलकुल मिटा दिया। अगले वर्ष बुक्क की मृत्यु हुई और हरिहर २य उसका उत्तराधिकारी हुआ। मुजाहिद भी तभी मारा गया। १३७८ से १३९७ ई० तक मुहम्मद २य ने शान्तिपूर्वक राज किया। उस ज़माने में खानदेश बहमनी सल्तनत से निकल गया और वहाँ एक स्वतन्त्र रियासत स्थापित हुई (१३८२ ई०)।

§८. **तैमूर की चढ़ाई**—फ़ीरोज़ के वंशज बिलकुल ही निकम्मे निकले। उनके समय राज्य की यह हालत हो गयी कि पुरानी दिल्ली और फ़ीरोज़ की नयी बसायी हुई दिल्ली में दो अलग-अलग सुलतान थे। वे शतरंज के बादशाह जब दिल्ली के तख्त के लिए झगड़ते थे, तभी मध्य एशिया में एक महान् विजेता प्रकट हो चुका था। उसका नाम तैमूर था, और वह चग़ताई प्रदेश का तुर्क था। मध्य एशिया में चंगेज़खाँ के वंशजों के दो राज्य चले आते थे। उनकी उसने सफ़ाई कर दी (१३७० ई०)। एक तरफ़ उसने रूस की वोल्गा नदी तक के देश जीते; दूसरी तरफ़ ईरान पार करते हुए काकेशस पर्वत और पच्छिमी एशिया तक के देशों पर अधिकार किया। उसके विशाल साम्राज्य की राजधानी समरकन्द थी। इधर दिल्ली राज्य की दुर्दशा सुन कर उसने भारत पर चढ़ाई की (१३९८ ई०)। उसका पोता पीर मुहम्मद एक साल पहले आ कर उच्च और मुलतान ले चुका था। अफ़गानिस्तान पहुँच कर तैमूर ने सिकन्दर की तरह पहले काबुल नदी के उत्तर का काफ़िरिस्तान* इलाका जीता। फिर सिन्ध, जेहलम और रावी पार कर मुलतान के नज़दीक तुलम्बा की बस्ती पर आ टूटा। उसे लूट कर पाकपट्टन और भटनेर के रास्ते वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। जहाँ-जहाँ से उसकी फ़ौज गुज़री, लूटना, मारना, फूँकना, उजाड़ना उसके साथ-साथ चलता गया। अन्त में दिल्ली से मेरठ होते हुए वह हरद्वार के पास आ निकला, और शिवालक के साथ-साथ काँगड़ा होते हुए जम्मू पहुँचा। वहीं कश्मीर के सुलतान सिकन्दर

---

*काफ़िरिस्तान का नाम कापिशी नगरी से है। अरबी लिपि में पहले काफ़िसिस्तान लिखा गया था, जो गलती से काफ़िरिस्तान बन गया।

का दूत अधीनता का सन्देश लाया। लाहौर पर इस समय शेखा खोकर का कब्ज़ा था। तैमूर ने उसे पकड़ मँगवाया और मरवा डाला। उसके भाई जसरथ ने तैमूर का सामान लूटना चाहा, तब तैमूर उसे कैद कर अपने साथ ले गया। सिन्ध पार कर बन्नू होते हुए वह समरकन्द लौट गया।

दिल्ली साम्राज्य की शक्ति तैमूर के आने से पहले ही प्रान्तीय शासकों के हाथों में जा चुकी थी। जो प्रान्तीय शासक अब तक नाम को दिल्ली के अधीन थे, वे भी अब स्पष्ट रूप से स्वतन्त्र हो गये। दिल्ली साम्राज्य यों मटियामेट हो गया।

§९. प्रादेशिक राज्यों का युग—अलाउद्दीन खिलजी और ग़यासुद्दीन तुग़लक के समय दिल्ली की सल्तनत ने जिन दूर के प्रान्तों को पहले-पहल जीता उनमें उसका शासन २५-३० बरस भी न टिक पाया। तो भी उनकी विजयों से एक राजनीतिक युग-परिवर्तन हो गया। उन्होंने मालवा, गुजरात, राजपूताना, दक्खिन और पूरब के पुराने जीर्ण राज्यों को तोड़-फोड़ कर नये राज्यों के उदय के लिए मैदान साफ़ कर दिया। यदि उनके उत्तराधिकारी अधिक योग्य होते तो भी उनका खड़ा किया हुआ साम्राज्य अधिक टिकाऊ न हो पाता। इसका कारण यह था कि चौदहवीं-पन्द्रहवीं शती की अवस्थाएँ एक विशाल साम्राज्य के बजाय प्रादेशिक राज्यों के अधिक अनुकूल थीं। हिन्दुओं में तब यदि इतना जीवट न था कि वे भारत में अपना एक साम्राज्य खड़ा कर सकते तो वे इतने मुर्दा भी न थे कि दूर के प्रान्तों में भी अपनी स्वतन्त्रता बनाये न रख सकते। दूसरी तरफ़ तुर्क सरदारों में भी अब दिल्ली का शासन मानने की प्रवृत्ति अधिक न थी। उन्होंने जब पहले-पहल भारत को जीता तब वे एक नये और अपरिचित विशाल देश में एक छोटे से दल की तरह थे। अपनी रक्षा के लिए ही तब यह जरूरी था कि वे आपस में मिल कर और एक शासन में संगठित हो कर रहते। किन्तु डेढ़ शताब्दी में वे भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्तों से परिचित हो चुके और भारत के बन चुके थे। प्रत्येक प्रान्त में कुछ लोग मुसलमान बन चुके थे और बाहर से आये हुए तुर्क उनमें घुल मिल गये थे। अब जब अपने-अपने प्रदेश में वे निःशंकता के साथ राज्य खड़े कर सकते और चला सकते थे, तब उन्हें किसी सम्राट् की आज्ञा मानने की ज़रूरत न थी।

अध्याय ६

पिछले मध्य युग के प्रादेशिक राज्य

(१३९८-१५०९ ई०)

§१. **मेवाड़ १३८२-१४३३ ई०**—मेवाड़ में राणा लक्षसिंह या लाखा का राज्यकाल (१३८२-१४१९ ई०) अलाउद्दीन के समय की क्षतिपूर्त्ति और जीर्णोद्धार करने में बीता। उसी समय राज्य में एक चाँदी और सीसे की खान निकल आने से उसे बड़ी मदद मिली। लाखा के बेटे मोकल (१४१९-३३ ई०) ने साम्भर और अजमेर तक के इलाक़ों पर अधिकार कर लिया।

§२. **राजा गणेश ओर शिवसिंह्**—तिरहुत में कामेश्वर के वंशजों का राज्य जारी था। बंगाल में इलियासशाह के पोते ग़यासुद्दीन आज़मशाह (१३८९-९६ ई०) के समय गणेश नाम का एक प्रबल ज़मींदार सल्तनत का कर्ता-धर्ता बन गया। उसने अन्त में आज़मशाह को मरवा डाला और फिर आज़मशाह का बेटा और पोता उसके हाथ की कठपुतली बने रहे। १४०९ ई० में आज़मशाह के पोते को मरवा कर गणेश स्वयम् बंगाल का राजा बना। वह तिरहुत के राजा शिवसिंह का समकालीन और पड़ोसी था। वह उदार शासक था और प्रजा उससे सन्तुष्ट थी, तो भी पीरों और फ़क़ीरों ने मुस्लिम सरदारों को हिन्दू राजा के विरुद्ध भड़काना शुरू किया। गणेश ने उनका दमन किया। उसके समय में बंगाल में संस्कृत पढ़ने-लिखने की फिर से उन्नति हुई। गणेश ने सात बरस (१४०९-१५ ई०) शासन किया। उसका बेटा यदु मुसलमान हो गया। गणेश ने उसे प्रायश्चित्त करा के हिन्दू बनाया, पर पीछे वह फिर मुसलमान हो गया और उसका नाम जलालुद्दीन हुआ। वह एक बरस ही राज्य कर पाया था कि दनुजमर्दन नाम के एक सरदार ने उससे गौड़ छीन लिया, और दक्खिनी और पूरबी बंगाल को भी अधीन कर लिया (१४१७ ई०)। इस प्रकार दनुजमर्दन सारे बंगाल का राजा बन गया। उसने अपने नाम के सिक्के भी चलाये, पर वह दूसरे ही बरस मर गया। उसके बेटे महेन्द्र से जलालुद्दीन ने फिर राज्य छीन लिया। जलालुद्दीन तिरहुत के शिवसिंह से लड़ कर हारा। १४३० ई० से पहले उसने चटगाँव जीत लिया। उसका अत्याचारी बेटा १४४२ ई० में क़त्ल किया गया, और बंगाल का राज्य फिर इलियासशाह के एक वंशज के अधिकार में आया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§३. इब्राहीम शर्क़ी—दिल्ली साम्राज्य के टूटने पर जो नयी रियासतें उठ खड़ी हुईं उनमें से तीन—जौनपुर, मालवा और गुजरात—बहुत शक्ति-शाली और प्रसिद्ध हुईं। पिछले तुग़लकों के समय से जौनपुर में एक हाकिम रहता था, जो मलिक्-उस्-शर्क अर्थात् पूरब का स्वामी कहलाता था। कन्नौज के पूरब बंगाल की सीमा तक साम्राज्य का सब इलाका उसके अधीन था। तैमूर की चढ़ाई के बाद, उस हाकिम का बेटा मुबारकशाह के नाम से स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा। मुबारक का भाई इब्राहीमशाह शर्क़ी (१४००-१४३६ ई०) जौनपुर का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। बिहार और बनारस के इलाक़ों पर उसका शुरू ही से क़ब्ज़ा था। उसने जौनपुर के ठीक पूरब तिरहुत की तरफ़ आगे बढ़ना चाहा, पर राजा शिवसिंह से उसे हारना पड़ा। किन्तु पच्छिम का रास्ता शर्क़ी के लिए खुला था। कालपी और कन्नौज जीत कर वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। दोआब में बुलन्दशहर और गंगा के उत्तर सम्भल को भी उसने ले लिया। यह तब उस प्रदेश की राजधानी थी जो आजकल रुहेलखंड कहलाता है। दिल्ली के परकोटे तक शर्क़ी का अधिकार पहुँच गया, तब मालवे के नये सुल्तान ने कालपी छीन कर उसे पीछे हटने को बाधित किया। अपने ज़माने में इब्राहीम शर्क़ी उत्तर भारत का एक-मात्र प्रबल सुल्तान था। उसका दरबार

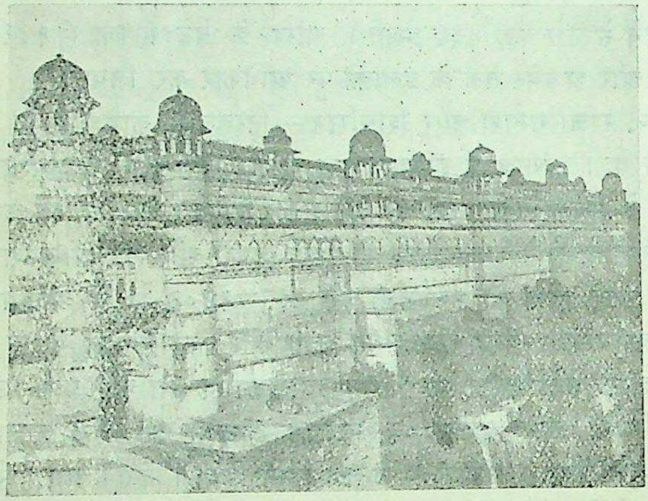

ग्वालियर में मानसिंह तोमर का महल

१५वीं सदी के भारतीय शिल्प का नमूना [ग्वालियर पु० वि०]

विद्या और संस्कृति का केन्द्र था। जौनपुर की प्रसिद्ध अटाला-देवी मस्जिद उसी के समय बनी।

§४. हुशंग ग़ोरी और अहमदशाह गुजराती—मालवे का हाकिम दिलावरखाँ ग़ोरी १४०१ ई० में स्वतन्त्र होगया। उसका बेटा हुशंग ग़ोरी (१४०५-३४ई०) मालवे का पहला प्रसिद्ध सुल्तान हुआ। मालवा के साथ चेदि देश का पच्छिमी अंश यानी चन्देरी का प्रदेश (सागर और दमोह ज़िले) भी इन सुल्तानों के अधिकार में था। हुशंग ने उत्तर की तरफ़ कालपी और ग्वालियर तक अपना राज्य पहुँचा दिया।

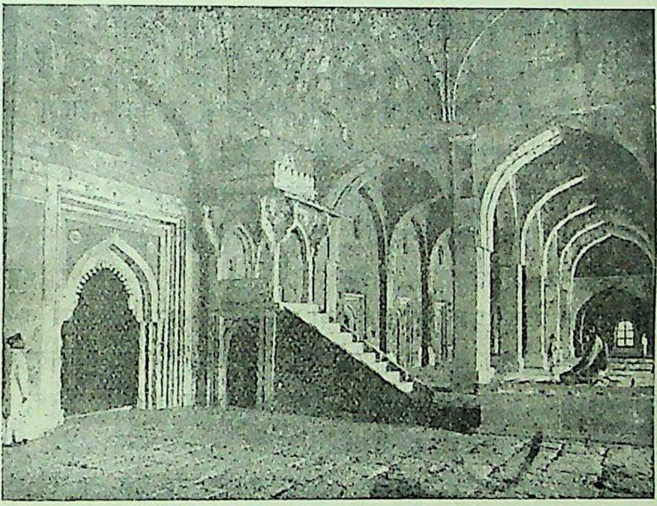

मांडू में हुशंग गोरी की बनवायी जामा मसजिद [भा० पु० वि०]

ग्वालियर के इलाके पर तैमूर के जाने के बाद हरसिंह तोमर ने अधिकार कर लिया था, १५१८ ई० तक उसके वंश में वह राज्य बना रहा।

गुजरात के सुल्तान अहमदशाह (१४११-४१ ई०) के मुकाबले में हुशंग को दबना पड़ा। गुजरात का हाकिम ज़फ़रखाँ दिलावरखाँ ग़ोरी के साथ-साथ स्वतन्त्र हो कर मुज़फ़्फ़रशाह बन गया था। पच्छिम तरफ़ गिरनार, पूरब तरफ़ चाँपानेर, उत्तर-पूरब ईडर और उत्तर जालोर और सिरोही के राज्यों तक गुजरात सल्तनत की सीमाएँ थी। इसके अलावा इस तरफ़ दिल्ली सल्तनत के जितने इलाके थे उनपर गुजरात के सुल्तान अपना अधिकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मानते थे, इसीलिए मुज़फ़्फ़रशाह ने सुदूर नागोर में भी अपना एक सामन्त नियुक्त किया था। मुज़फ़्फ़र का पोता अहमदशाह प्रबल विजेता और न्यायी शासक था। वह गुजरात की राजधानी अणहिलपाटन से उठा कर आसावल (आशापल्ली) नामक प्राचीन बस्ती में ले आया, जिसका नाम उसने अहमदाबाद रक्खा। उसे उसने सुन्दर भव्य इमारतों से भूषित किया। हुशंग ग़ोरी से उसकी बरसों खटपट चलती रही, और १४२१ ई० में उसने मालवे की राजधानी मांडू को जा घेरा।

§५. उत्तरपच्छिमी प्रान्त १३९८–१४५० ई०—जसरथ खोकर और ज़ैनुलआबिदीन—सिन्ध पर तैमूर की चढ़ाई का कुछ प्रभाव नहीं पड़ा, और वहाँ जामों का राज्य शान्तिपूर्वक क़ायम रहा। काबुल तैमूर के वंशजों के हाथ में रहा।

मुलतान का प्रान्त तैमूर एक सैयद ख़िज़्रख़ाँ को दे गया था। तैमूर की मृत्यु (१४०५ ई०) के बाद जसरथ खोकर भी समरकन्द से भाग आया और उत्तरी पंजाब में उसने फिर अपना राज्य स्थापित किया। कश्मीर के जिस सिकन्दर ने तैमूर के पास दूत भेजा था, उसके शासन-काल (१३९४–१४१६ ई०) में बाल्तिस्तान या बोलौर का प्रान्त भी जीता गया। यह सिकन्दर बुतशिकन नाम से प्रसिद्ध है। उससे पहले के कश्मीर के पाँच सुल्तानों में कोई भी धर्मान्ध न हुआ था; पर सिकन्दर ने अपनी हिन्दू प्रजा को जबर्दस्ती मुसलमान बनाने में कोई कसर उठा न रक्खी। उसके बाद उसके बेटों में लड़ाई हुई; उसके दूसरे बेटे ज़ैनुलआबिदीन ने जसरथ खोकर की मदद से राज्य पाया। ज़ैनुलआबिदीन सचरित्र, योग्य, शक्तिशाली तथा न्यायी शासक था; उसकी शासन-नीति अपने पिता से ठीक उलटी थी। उसने देश की सिंचाई के लिए नहरें निकलवायीं तथा रास्ते और पुल बनवाये। निर्वासित हिन्दुओं को वापिस आने दिया; जो दिल से मुसलमान न बने थे उन्हें फिर हिन्दू हो जाने दिया; उनके टूटे मन्दिरों का स्वयम् जीर्णोद्धार करवाया और जज़िया कर उठा दिया। उसने और भी बहुत से कर उठा दिये, और खानों की उपज से राज्य की आमदनी बढ़ायी। अधिकांश क़ैदियों को छोड़ कर उसने उन्हें खानों, सड़कों आदि पर काम में लगाया। ज़ैनुलआबिदीन फ़ारसी और संस्कृत का अच्छा विद्वान् था, उसे संगीत और साहित्य से तथा विद्वानों की संगति से भी खूब प्रेम था। उसने आजन्म एकपत्नीव्रत निबाहा। व्यक्तिगत जीवन में वह मुसलमान था, तो भी अपनी हिन्दू प्रजा की तीर्थयात्राओं और त्योहारों में भाग लेता था। उसके ५० बर्ष (१४२०–७० ई०) के रामराज्य की याद कश्मीर में आज भी बनी है।

खास दिल्ली में फ़ीरोज़ तुग़लक़ का एक वंशज १४१३ ई० तक जैसे-तैसे राज करता रहा। खिज़्रखाँ सैयद ने उससे रोहतक, नारनौल तक का प्रान्त छीन लिया था। १४१४ ई० में उसकी मृत्यु होने पर खिज़्रखाँ ने दिल्ली भी ले ली। खिज़्रखाँ के वंशज मुलतान पर अधिकार न रख सके और १४४० ई० में वहाँ सिवी के एक पठान ने अपना राज्य स्थापित किया।

§६. **बुन्देलखंड बघेलखंड छत्तीसगढ़ और गोंडवाना**—मालवा, जौनपुर, बिहार, बंगाल, तेलंगण और बहमनी रियासत के बीच प्राचीन चेदि और उड़ीसा के विशाल प्रदेश थे। चेदि का उत्तरी और पच्छिमी किनारा—कालपी और चन्देरी—अब मालवे में शामिल था। बाकी उत्तरपच्छिमी अंश—जझौती—पहले चन्देलों के अधीन था। पन्द्रहवीं सदी के शुरू से चन्देलों का पता नहीं मिलता। अब वहाँ अनेक बुन्देले सरदार राज्य करने लगे थे, जिससे वह बुन्देलखंड कहलाने लगा। बुन्देले गाहड्वालों के वंशज थे, जो विन्ध्य में रहने के कारण बुन्देले कहलाये। चेदि का पूरबी भाग बघेलखंड बन चुका था। दक्खिन-पूरब में महाकोशल या छत्तीसगढ़ का राज्य बना हुआ था। तीनों के बीच गढ़ा (जबलपुर) में एक गोंड राज्य स्थापित होने से इस इलाके को इसके पड़ोसी गोंडवाना कहने लगे। इस राज्य की स्थापना एक गोंड ने की थी, पर पीछे यह राज्य उसके क्षत्रिय दामाद के वंश में रहा। उड़ीसा का गंग राज्य १३२७ ई० से बराबर दुर्बल रहा।

§७. **फ़ीरोज़ और अहमद बहमनी**—१३९७ से १४२२ ई० तक बहमनी रियासत में सुल्तान फ़ीरोज़ ने राज्य किया, और १४२२ से १४३५ ई० तक उसके भाई अहमद ने। फ़ीरोज़ के समय विजयनगर से तीन युद्ध हुए। १३९८ ई० में ही हरिहर २य ने कृष्णा काँठे पर चढ़ाई की; तभी कृष्णा के उत्तरी किनारे के कोलियों ने तथा बराड के एक हिन्दू सरदार ने विद्रोह किया। विजयनगर की सेना विशृंखल रूप में कृष्णा के दक्खिन तट पर पड़ी थी; उनकी बड़ी संख्या के कारण फ़ीरोज़ कृष्णा पार करने से डरता था। उस समय एक क़ाज़ी ने साहस का काम किया। वह गाने-नाचने में निपुण था। भेस बदल कर एक नाच-मंडली बना कर वह हरिहर की छावनी में घुसा, और धीरे-धीरे प्रसिद्धि पा कर हरिहर के बेटे के पास पहुँच गया। तलवार का नाच दिखाते हुए वह एकाएक युवराज पर टूट पड़ा और उसका काम तमाम कर दिया। हरिहर अपने बेटे की लाश ले कर विजयनगर लौटा और उसकी भागती हुई सेना को फ़ीरोज़ ने पूरी तरह हरा दिया।

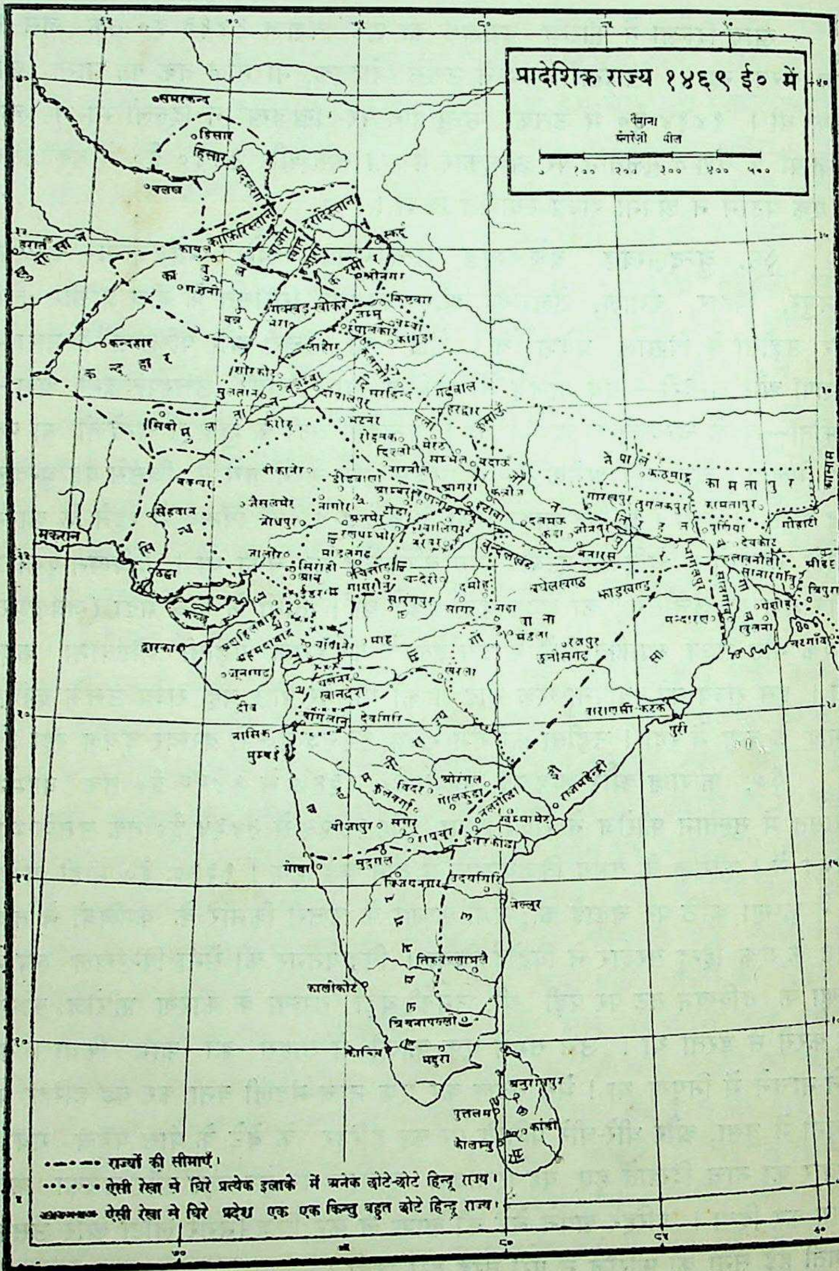

प्रादेशिक राज्य १४६९ ई० में

पैमाना
अंग्रेजी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
समरकन्द
हिसार
बलख
काफिरिस्तान
दरदिस्तान
काबुल
गजनी
कन्दहार
मुलतान
सिबी
बकर
सिहवान
मकरान
ठट्ठा
कच्छ
द्वारका
जूनागढ़
दीव
अहमदाबाद
जैसलमेर
जोधपुर
नागोर
मारवाड़
जालोर
सिरोही
आबू
ईडर
चित्तौड़
मांडू
चन्देरी
खानदेश
बुरहानपुर
देवगिरि
नासिक
मुम्बई
बीदर
गुलबर्गा
गोलकुंडा
ओरंगल
राजमहेन्द्री
बीजापुर
गोआ
मुदगल
रायचूर
उदयगिरि
चन्द्रगिरि
नेल्लूर
विजयनगर
कालीकोट
त्रिचनापल्ली
कोचिन
मदुरा
अनुराधपुर
पुत्तलम
कांडी
कोलम्बो
कश्मीर
श्रीनगर
जम्मू
कांगड़ा
सरहिन्द
हरद्वार
दिल्ली
मेरठ
बदाऊं
आगरा
कन्नौज
ग्वालियर
इटावा
जौनपुर
बनारस
बुन्देलखण्ड
बघेलखण्ड
गढ़ा
झाड़खण्ड
रतनपुर
गोंडवाना
नेपाल
काठमाण्डू
कामतापुर
गोहाटी
आसाम
त्रिपुरा
लखनौती
सोनारगांव
देवकोट
उड़ीसा
कटक
पुरी
मन्दारन

- - - - राज्यों की सीमाएँ।
• • • • • ऐसी रेखा से घिरे प्रत्येक इलाके में अनेक छोटे-छोटे हिन्दू राज्य।
ऐसी रेखा से घिरे प्रदेश एक एक किन्तु बहुत छोटे हिन्दू राज्य।

इसके बाद गुजरात, मालवा और खानदेश के सुल्तानों ने विजयनगर के राजा को बहमनी सुल्तान के खिलाफ़ मदद करने का वचन दिया । १४०६ ई० में हरिहर २य की मृत्यु हुई और उसका पुत्र देवराय १म राजा बना । उसी बरस उसकी सेना ने मुद्गल पर चढ़ाई की । उन्हें हराकर फ़ीरोज़ ने विजयनगर पर चढ़ाई की जिसमें वह घायल हुआ । देवराय ने आठ बार उस पर हमला किया; पर मालवा आदि से कोई मदद न मिली । फ़ीरोज़ की फिर जीत हुई और तुङ्गभद्रा नदी दोनों राज्यों की सीमा बनी ।

१४१८ ई० में देवराय के बेटे वीरविजय (१४१३–१४२५ ई०) के समय तेलङ्गण और विजयनगर के राजाओं ने मिल कर फिर फ़ीरोज़ से युद्ध किया । इस बार फ़ीरोज़ की पूरी हार हुई और विजेताओं ने पुरानी हत्याओं का पूरा बदला लिया ।

उस हार का बदला लेने के लिए अहमदशाह बहमनी ने १४२३ ई० में चढ़ाई की । यह युद्ध पिछले पाँचों युद्धों से भयंकर हुआ । युद्ध के समय असैनिकों को न मारने का वचन विजयनगर वालों ने तोड़ दिया था, इसलिए अहमदशाह ने इस बार दिल खोल कर क़त्लेआम किये । वीरविजय कर देने को बाधित हुआ । इस युद्ध के क़ैदियों में दो ब्राह्मण थे, जिनके वंशजों ने बाद में अहमदनगर और बराड की रियासतें स्थापित कीं ।

१४२४ ई० में अहमद बहमनी ने ओरंगल पर दखल करके उस राज्य को मिटा दिया, और पूरबी समुद्र तक अपनी सीमा पहुँचा दी । ओरंगल के सब इलाकों पर वह कब्ज़ा न कर सका, क्योंकि कृष्णा के दक्खिन कोंडवीडु क़िले (गुन्टूर के पास) और उसके इलाके पर देवराय २य (१४२५–४६ ई०।) ने अधिकार कर लिया था । इसके बाद अहमद बहमनी की मालवे और गुजरात से लड़ाइयाँ हुईं । अहमदशाह गुजराती से उसकी हार हुई (१४३० ई०), जिससे मुम्बई का द्वीप गुजरात के अधिकार में रहा ।

§८. कुम्भा और महमूद खिलजी—राणा मोकल के बेटे कुम्भा के समय (१४३३--६८ ई०) पच्छिमी भारत की राजनीति में एक नया अध्याय शुरू हुआ । मालवे में हुशंग ग़ोरी के बेटे को मार कर उसका वज़ीर महमूद खिलजी गद्दी पर बैठा । वह कुम्भा का समकालीन था (१४३६--६६ ई०) । १४३७ ई० से कुम्भा ने अपनी अग्रसर नीति शुरू की । उसी बरस उसने सिरोही के राजा से

आबू छीन लिया, और मालवा में सारंगपुर तक पहुँच कर महमूद खिलजी को हराया। आबू ले कर उसने गुजराती सुल्तान का पच्छिमी राजस्थान की तरफ़ रास्ता काट दिया, और महमूद का पराभव कर पूरबी राजस्थान में अपना रास्ता सुगम कर लिया। फिर दो बरस में उसने मारवाड़ में आबू से नागोर तक, मध्य राजस्थान में अजमेर तक, उत्तर-पूरब आम्बेर तक, और दक्खिन-पूरब माँडलगढ़ से गागरौन तक अर्थात् बनास से काली सिन्ध तक अपना अधिकार फैला लिया। कुम्भा को रोकने के लिए महमूद खिलजी ने सन् १४४३,४६ तथा ५४ में तीन युद्ध किये। पहली बार वह चित्तौड़ तक जा पहुँचा, पर फिर कभी माँडलगढ़ से आगे न बढ़ सका। किन्तु दूसरे युद्ध में भरतपुर के पास बयाना के क़िले पर अधिकार कर वह कुम्भा का दिल्ली आगरा की तरफ वाला रास्ता काट देने में सफल हुआ। इसी बीच राणा ने रणथम्भोर, आम्बेर, टोडा और डीडवाणा तक अधिकार करलिया।

नागोर पर कुम्भा ने आधिपत्य कर ही लिया था। १४५६ ई० में उसने गुजराती सुल्तान की विडम्बना करते हुए वह "गढ़ तोड़ दिया, खाई भरवा दी और नागोर को जो तुर्की शक्ति की जड़ था, उजाड़ कर फूँक डाला, और उसका क़िस्सा खतम कर दिया।" तब गुजरात के सुल्तान कुतुबशाह (१४५१–५९ ई०) ने मेवाड़ पर चढ़ाई की, पर वह आबू भी न ले सका। दूसरे बरस गुजरात और मालवे के सुल्तानों ने एक साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। पर न कुतुबशाह सिरोही से आगे बढ़ पाया, और न महमूद ही मेवाड़ के अन्दर घुस सका। कुम्भा ने दोनों को एक साथ परास्त कर दिया

राणा कुम्भा अपनी बनवायी हुई इमारतों के लिए भी प्रसिद्ध है। चित्तौड़-गढ़ के बुर्ज, दरवाज़े, रथमार्ग, (चौड़ा रास्ता) तथा कीर्तिस्तम्भ उसी के बनवाये हुए हैं। साहित्य, संगीत, नाट्यशास्त्र, वास्तुशास्त्र इत्यादि पर कुम्भा ने अनेक ग्रन्थ लिखे और लिखवाये। बुढ़ापे में उसे उन्माद-रोग हो गया, और उसके बेटे उदयसिंह ने उसे मार डाला। पितृघातक उदयसिंह को भगा कर सरदारों ने उसके भाई रायमल को गद्दी दी। रायमल ने मालवे के मुकाबले में मेवाड़ का गौरव बनाये रक्खा (१४७३–१५०९ ई०)।

§९. कपिलेन्द्र और पुरुषोत्तम—पूरबी और दक्खिनी भारत १४३५–१५०९ ई०—उड़ीसा का गंग राजवंश जीर्ण हो चुका था। १४३५ ई० में गंग राजा को हटा कर उसके सूर्यवंशी मन्त्री कपिलेन्द्र ने राज्य ले लिया। उसी साल

बिदर में अहमदशाह बहमनी का बेटा अलाउद्दीन तख्तनशीन हुआ। अलाउद्दीन ने पच्छिमी और पूरबी घाटों के छोटे-छोटे स्वतन्त्र हिन्दू सरदारों को वश में करने को फ़ौजें भेजीं। कोंकण में तो उसे सफलता हुई (१४३७ ई०), पर तेलंगण में कपिलेन्द्र ने उसे रोक दिया।

विजयनगर के देवराय ने एक परिषद् इस बात पर विचार करने को बुलायी कि बहमनी बार-बार युद्ध में क्यों जीत जाते हैं। विचार का परिणाम यह निकला कि उनके पास अच्छे घोड़े हैं तथा उनकी सेना में ऐसे सवार हैं जो घोड़े पर चढ़े-चढ़े निशाने पर तीर मार सकते हैं। उत्तर और पच्छिम के देशों में अच्छे घोड़े की नस्लें पैदा होती हैं, और उनसे बहमनियों का सम्पर्क था। तब से घोड़ों के व्यापार को उत्साहित करना और जिस तरह बने, अच्छे घोड़े उपलब्ध करना विजयनगर राज्य की नीति हो गयी। ईरान से बहमनी रियासत में घोड़े लाने वाली नावों को लूटने पर इनाम दिया जाने लगा। देवराय ने अपने राज्य में निशानची मुसलमानों को जागीरें देकर बसाना भी शुरू किया। सवार तीरन्दाजों की अपनी नयी सेना तैयार कर उसने बहमनी रियासत पर चढ़ाई की और कृष्णा नदी तक के प्रदेश पर दख़ल कर लिया (१४४३ ई०)। लेकिन अलाउद्दीन ने बदला लेने और जनता को क़त्ल करने की धमकी दी, जिससे वह डर गया और उसके कैदियों को छोड़ दिया।

१४४६ ई० में देवराय की मृत्यु हुई और उसका बेटा मल्लिकार्जुन उत्तराधिकारी हुआ। १४५८ ई० में अलाउद्दीन मरा और उसका बेटा हुमायूँ तख्तनशीन हुआ। कपिलेन्द्र इस समय तक गोदावरी-कृष्णा दोआब को जीत चुका था। अब उसने कावेरी तक समूचा तट और कावेरी पार त्रिचनापल्ली तक जीत लिया। हुमायूँ ने देवरकोंडा के तेलुगु सरदार पर चढ़ाई की; उसने कपिलेन्द्र से मदद माँगी। कपिलेन्द्र के तुरन्त पहुँच जाने से हुमायूँ को भागना पड़ा (१४५६ ई०)। यह हुमायूँ दक्खिन में अब तक हुमायूँ ज़ालिम के नाम से याद किया जाता है। १४६१ ई० में वह मारा गया। तब कपिलेन्द्र बिदर के पास आ पहुँचा और बड़ी रकम ले कर लौटा। आन्ध्रदेश के पहाड़ी जिलों—खम्मामेट और नलगोंडा—पर भी उसने दख़ल कर लिया। उत्तर की ओर उसने दामोदर से गंगा तक का पहाड़ी प्रदेश लेकर भागलपुर के पास जौनपुर रियासत से अपनी सीमा मिला दी। हुसेनशाह शर्की ने तब तीन लाख फ़ौज के साथ उसपर चढ़ाई की (१४६५ ई०)। इस युद्ध में दोनों पक्ष अपनी जीत हुई बताते हैं—परिणाम अनिश्चित रहा।

१४७० ई० में कपिलेन्द्र की मृत्यु हुई और उसका बेटा पुरुषोत्तम उत्तराधिकारी हुआ। हुमायूँ शाह के बेटे मुहम्मद ३ य ने तब अपने सेनापति हसन बहरी को भेजकर राजमहेन्द्री ले ली। विजयनगर के राजा का एक सामन्त सालुव नरसिंह, जो चन्द्रगिरि का सरदार था, नेल्लूर और उदयगिरि को लेते हुए कृष्णा के तट तक आ पहुँचा। उसने बहमनी सेना को कृष्णा के दक्खिन आगे न जाने दिया। गोदावारी-कृष्णा-दो आब के लिए पुरुषोत्तम और बहमनी सुलतान में छीनझपट जारी रही। बहमनी रियासत में दक्खिनी और विदेशी अमीरों में सदा से लड़ाई चली आती थी। मुहम्मद ३ य का मंत्री महमूद गवाँ नामक एक चतुर विदेशी अमीर था। हसन बहरी ने उसके नाम से जाली चिट्ठियाँ बना कर मुहम्मदशाह के मन में यह बैठा दिया कि वह पुरुषोत्तम से मिल गया है। इसपर मुहम्मद ने उसे मरवा डाला (१४८१ ई०)। इधर मल्लिकार्जुन के बाद उसका भाई विरूपाक्ष विजयनगर का राजा हुआ। उसके कुशासन से राज्य की बुरी दशा थी। इस दशा में पुरुषोत्तम ने राजमहेन्द्री से नेल्लूर तक का तट तथा खम्मामेट और नलगोंडा जिले फिर जीत लिये।

मुहम्मद ३य के बाद बहमनी सुलतान सर्वथा निःशक्त हो गये। १४८७ ई० से बरीद नामक वंश के सरदार बिदर में सल्तनत के कर्ता-धर्ता होने लगे, और बहमनी सुलतान उनके हाथ में कैदी की भाँति रह गये। उसी बरस सालुव नरसिंह ने विरूपाक्ष को पदच्युत कर विजयनगर का राज्य ले लिया।

बंगाल में इस समय इलियासशाही वंश का राज्य जारी था। १४५४ ई० से १४८२ ई० तक दक्खिनी बंगाल के यशोहर, खुलना आदि ज़िले जीते गये, और राजा गौरगोविन्द से सिलहट छीन लिया गया। किन्तु कामतापुर (उत्तरी बंगाल) के राजा से इलियासी सेनापति की दीनाजपुर ज़िले में हार हुई। १४८७ ई० में इलियास-वंश का राज्य समाप्त हुआ और बंगाल में अराजकता उमड़ पड़ी।

१४९० ई० में हसन बहरी के बेटे अहमद ने, जो अहमदनगर का संस्थापक तथा उत्तरी महाराष्ट्र का हाकिम था, बीजापुर और बराड के हाकिमों को लिखा कि हम तीनों स्वतन्त्र सुलतान बन जाँय। यों अब एक बहमनी रियासत के बजाय चार रियासतें हो गयीं।

पुरुषोत्तम का बेटा प्रतापरुद्र उड़ीसा का राजा हुआ (१४९७ ई०), तो उसका राज्य हुगली से नेल्लूर तक था। पुरुषोत्तम बंगाली सन्त चैतन्य का शिष्य बन गया

और उसकी देखादेखी उसके सरदार भी वैष्णव हो गये। राज-काज के बजाय भजन-कीर्तन इनका मुख्य काम बन गया। तब से उड़ीसा राज्य की शीघ्र अवनति हुई।

सालुव नरसिंह का सेनापति तुलुव वंश का नरस नायक था। १५०५ ई० में उसकी मृत्यु होने पर उसके बेटे वीर-नरसिंह ने सालुव नरसिंह के बेटे को पदच्युत कर स्वयम् राज्य ले लिया। यों विजयनगर का तीसरा राजवंश शुरू हुआ।

§१०. बहलोल लोदी और दिल्ली की नयी सल्तनत (१४५१—८९ ई०)—१४५१ ई० में बहलोल लोदी नाम के पठान ने, जो सरहिन्द का शासक था और जिसने ज़सरथ खोकर से मैत्री कर ली थी, दिल्ली ले कर वहाँ पहले पठान राजवंश की स्थापना की। बहलोल दिल्ली को एक साम्राज्य न बना सका, तो भी वह उसे एक मज़बूत राज्य बनाने में सफल हुआ। दिल्ली के इलाके सब से अधिक शर्की सुल्तानों ने दबा रक्खे थे। भागलपुर-मुंगेर से कन्नौज और अवध तक तो उनका राज्य निर्विवाद था। बहलोल ने हुसेनशाह शर्की को अनेक लड़ाइयों में हरा कर जौनपुर जीत लिया (१४७९ ई०)। हुसेनशाह तब बिहार भाग गया।

§११. महमूद बेगड़ा—गुजरात के महमूद बेगड़ा (१४५९-१५११ ई०) को १५वीं शती के उत्तरार्ध में भारत का प्रमुख सुल्तान कहना चाहिए। महमूद ने गुजरात के पच्छिम और पूरब के दो दुर्जेय गढ़, जूनागढ़ और चाँपानेर, हिन्दू राजाओं से जीते। राणा कुम्भा के दामाद जूनागढ़ के राव मंडलीक को हराने और उसे मुसलमान बनाने के बाद उसने द्वारिका और कच्छ पर भी काबू कर लिया। इस प्रकार बेगड़ा के समय में समूचा गुजरात उसकी सल्तनत के अन्तर्गत हो गया। महमूद की मूँछें बड़ी-बड़ी थीं जिन्हें वह बैल के सींगों की तरह ऊपर की ओर घुमा कर उठा देता था। जिस बैल के सींग बड़े-बड़े और ऊपर को घूमे हुए हों उसे गुजराती में बेगड़ो कहते हैं। महमूद का छेड़ का नाम बेगड़ा पड़ गया और इतिहास में वह उसका उपनाम बन गया।

§१२. हुसेनशाह बंगाली और सिकन्दर लोदी—बंगाल की अराजकता का अन्त अलाउद्दीन हुसेनशाह ने किया (१४९३ ई०)। गौड़ पर अधिकार पाते ही उसने अपनी सेना को लूटने से रोका। पर उच्छृंखल सेना जब न मानी, तब उसने १२ हज़ार सैनिकों को फाँसी दे दी। पुरन्दरखाँ वसु हुसेन का वज़ीर था। सनातन उसका दबीरे-खास (निजी मन्त्री) था। सनातन के दो भाई रूप और अनूप भी ऊँचे पदों पर थे।

बंगाल की गद्दी पाते ही हुसेन ने शर्की सुल्तान से भागलपुर और मुंगेर जीत लिये। दिल्ली की गद्दी पर बहलोल के बाद सिकन्दर लोदी बैठा (१४८८--१५१७ ई०)। उसने हुसेनशाह शर्की से बिहार भी छीन लिया (१४९४ ई०)। हुसेन शर्की तब हुसेन बंगाली की शरण में चला आया। तब सिकन्दर ने उस पर भी चढ़ाई की। सन्धि होने पर पटना के ३७ मील पूरब बाढ़ नाम के क़स्बे पर बंगाल और दिल्ली सल्तनतों की सीमा मानी गयी।

शर्की शक्ति का यों अन्त होने पर सिकन्दर जमना के दक्खिन दिल्ली के पुराने इलाक़ों को ग्वालियर राज्य से वापिस लेने में लग गया। सिकन्दर लोदी धर्मान्ध मुसलमान था। उसके राज्य में हिन्दू धर्म को भरसक दबाया गया। दिल्ली के साथ-साथ आगरा को भी उसने अपनी राजधानी बनाया।

उधर हुसेनशाह ने अपने पड़ोस के राज्यों से लोहा लिया। कामतापुर के राज्य का अन्त करके उसने अपनी सीमा आसाम से मिला दी। तब से बंगाल आसाम का जल-स्थल-युद्ध जारी हुआ, जो ३५ बरस तक चलता रहा। उधर मिथिला के राजा से उसने सारन ज़िले तक का इलाक़ा छीन लिया; वह राज्य तब उत्तर की तराई भर में रह गया। हुसेन के एक सेनापति ने उड़ीसा पर चढ़ाई कर पुरी को लूटा (१५०९ ई०)। प्रतापरुद्र ने दक्खिन से लौट कर उसका पीछा किया और उसे गंगा पर हराया। तो भी मन्दारण का क़िला प्रताप के हाथ से निकल गया। त्रिपुरा के राजा धन्यमाणिक्य से तीन बार हारने के बाद चौथी बार हुसेन ने उसका कुछ इलाक़ा जीत लिया।

§१३. **हिन्द महासागर पर पुर्तगालियों का अधिकार होना**—महमूद बेगड़ा के समय में विश्व के इतिहास की एक भारी घटना घट रही थी। बीच में तेरहवीं-चौदहवीं शती छोड़ कर सातवीं से पन्द्रहवीं शती तक संसार पर इस्लाम का आतंक छाया हुआ था। आठवीं शती में जब अरबों ने सिन्ध से स्पेन तक जीत लिया, तब से दक्खिनी स्पेन में इस्लाम के पैर जम गये थे। १५वीं शती के शुरू में तुर्कों का बल फिर प्रकट हुआ और १४५३ ई० में जब उन्होंने कुस्तुन्तुनिया को और बालकन प्रायद्वीप के रोम-साम्राज्य के बचे-खुचे अंश को भी ले लिया, तब युरोप अपने दोनों दक्खिनी पहलुओं पर इस्लाम का दबाव अनुभव करने लगा। रोम और भारत के बीच में मुस्लिम राज्यों के उठ खड़े होने से भारत और युरोप का सीधा व्यापार-सम्बन्ध टूट गया था। मध्य युग में 'मूर'

अर्थात् अरब और अन्य मुसलमान भारत और लाल सागर के बीच व्यापार करते थे, और इटली के वेनिस आदि नगरों के व्यापारी आगे मिस्र से युरोप तक माल लाते और ले जाते थे।

पन्द्रहवीं शती में पच्छिमी युरोप की जातियों में एक गहरी जागृति हुई। प्राचीन यूनानी विद्याओं की तरफ़ लोगों की रुचि फिरी और उनके ज्ञानचक्षु खुलने लगे। लोगों में नये-नये और साहसपूर्ण विचार प्रकट होने लगे। स्पेन-पुर्तगाल वालों की मुसलमानों से विशेष शत्रुता थी। आफ़्रिका के पच्छिमी तट पर वे कुछ दूर तक जाते थे। उन्हें तब यह मालूम न था कि आफ़्रिका कितना बड़ा महाद्वीप है। उनमें यह एक विश्वास भी प्रचलित था कि आफ़्रिका के पूरबी छोर पर हब्शदेश (अबीसीनिया) में प्रेस्तर जौन नाम का एक ईसाई राजा है। उनके दिलों में यह उमंग उठी कि यदि वे आफ़्रिका के दक्खिन छोर से घूम सकें तो एक तो उनका मुस्लिम शत्रु दोनों तरफ़ से घिर जाय, जिससे वह पीठ पीछे से ज़ोर की चोट लगा सकें—इस काम में शायद उन्हें प्रेस्तर जौन की भी मदद मिल जाय—, और दूसरे भारतवर्ष के व्यापार में उन्हें अपने शत्रुओं पर निर्भर न रहना पड़े।

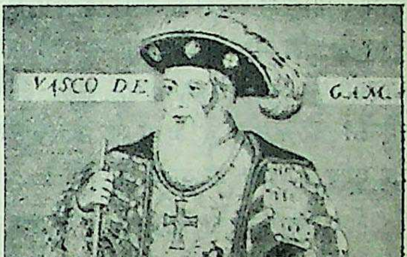

वास्को द-गामा

यह उमंग उन्हें आफ़्रिका के पच्छिमी तट पर आगे-आगे ढकेलने लगी। उस महाद्वीप के पहले पूरबी घुमाव पर पहुँच कर (१४४२ ई०) उन्होंने जाना कि अब रास्ता पा लिया। किन्तु जब आगे स्थल का किनारा दक्खिन की तरफ़ बढ़ा हुआ निकला और वह आगे-आगे बढ़ता ही गया, तब वे निराश होने लगे। अन्त में दियाज़

नामक नाविक जब उसकी नोक पर पहुँच गया (१४८७ ई०), तो फिर से उनकी आस बँधी। इसीलिए उस नोक का नाम "आशा-अन्तरीप" रक्खा गया। इसी समय कोलम्बस नामक नाविक को एक नयी बात सूझी। प्राचीन यूनानियों का विचार था कि ज़मीन गोल है। कोलम्बस ने सोचा यदि ऐसा है तो पच्छिम की तरफ़ बढ़ते-बढ़ते भारत पहुँच जाना सम्भव है। स्पेन की राज्ञी इसाबेलाने उसे जहाज़ दिये, जिनके द्वारा उसने अतलान्तक पार किया, और पच्छिमी अमेरिका के द्वीपों पर पहुँच कर समझा कि भारत मिल गया (१४९२ ई०)। छः बरस पीछे वास्को द-गामा नामक एक पुर्तगाली नाविक आशा अन्तरीप का चक्कर लगा कर कालीकट आ पहुँचा (१४९८ ई०)। तब यह समझा गया कि कोलम्बस भारत के एक छोर पर पहुँचा है और वास्को द-गामा ने उसी का दूसरा छोर पाया है। रोम का पोप ईसाइयों का सबसे बड़ा महन्त था। पोप ने अतलान्तक के बीच एक रेखा निश्चित कर फ़तवा दे दिया कि उसके पच्छिम के सब नये ग़ैर-ईसाई देश स्पेन के और पूरब के पुर्तगाल वालों के होंगे।

मलबार-तट के सरदारों ने अपना व्यापार बढ़ाने की ग़रज़ से इन आगन्तुकों को अपने यहाँ कोठियाँ बनाने दीं। पुर्तगालियों के भारतीय समुद्र में पहुँचने पर "मूर" अर्थात् मुस्लिम सामुद्रिक उनका विरोध करने लगे। अपने बचाव के लिए पुर्तगाली लोग तट पर, जहाँ जैसे दाव लगा, किलाबन्दी करने लगे। सबसे पहले १५०३ ई० में उन्होंने कोचि (कोचीन) में अपनी कोठी की किलाबन्दी की। फिर आफ्रिका के तट पर कई किले बनाये। गुजरात प्रान्त भारत के पच्छिमी व्यापार में सदा से प्रमुख रहा है। गुजराती सुल्तान महमूद बेगड़ा ने इन नये आगन्तुकों को भारतीय समुद्र से निकालना अपना कर्त्तव्य समझा। १५०७ ई० में मिश्र के सुल्तान ने इस कार्य में उसकी मदद के लिए मीर हुसेन की नायकता में १२ जंगी जहाज़ों में पन्द्रह हज़ार सैनिक भेजे। पहले युद्ध में पुर्तगाली बेड़ा डुबाया गया, किन्तु आलमीदा और आलबुकर्क नामक पुर्तगाली सेनापतियों ने फिर तैयारी करके १५०९ ई० के दूसरे युद्ध में दीव के सामने मिस्री-गुजराती बेड़े को जला कर लूट लिया। फिर उन्होंने हिन्द महासागर में जहाँ तहाँ "मूरों" के जहाज़ों का संहार कर उस समुद्र पर एकाधिकार कर लिया। १५१० ई० में आलबुकर्क ने बीजापुर से गोवा छीन कर उसे पुर्तगालियों के सामुद्रिक साम्राज्य की राजधानी बनाया,

तथा १५११ और १५१५ ई० में मलक्का और ओर्मुज़ ले कर हिन्द महासागर की दो मुख्य खाड़ियाँ काबू में कर लीं।

मसाले पैदा करने वाले पूरबी द्वीपों के लिए स्पेन वाले भी तरसते थे। पोप की सीमान्त-रेखा से पच्छिम जाते हुए उन द्वीपों तक पहुँचने का उन्हें विचार हुआ। मैगलान नामक नाविक इस दृष्टि से पृथ्वी की परिक्रमा करने को तैयार हुआ। इसाबेला के पोते चार्ल्स ने उसे पाँच जहाज़ दिये, जिनमें २०० आदमी रवाना हुए (१५१९ ई०)। मैगलान ने कोलम्बस से कहीं अधिक हिम्मत और बहादुरी का काम किया। अमेरिका के दक्खिनी छोर से वह पहले-पहल प्रशान्त महासागर में घुसा। दो बरस पीछे उसे एक द्वीपावली मिली, जिसका नाम उसने चार्ल्स के बेटे फ़िलिप के नाम पर फ़िलिपाइन रक्खा। वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके १८ बचे हुए साथी एक जहाज़ ले कर दूसरे बरस स्पेन पहुँचे (१५२२ ई०)। तब लोगों ने जाना कि अमेरिका और भारत अलग-अलग देश हैं।

अध्याय ७

पिछले मध्य काल का भारतीय जीवन

§१. हिन्दुओं का राजनीतिक पतन और उसके कारण—पिछला मध्य युग हिन्दू सभ्यता की सड़ाँद और अधोगति का युग था। हिन्दुओं की राजशक्ति इस युग में विशृंखल हो गयी। हिन्दू इस युग में प्रायः सदा ही क्यों हारते रहे, इस प्रश्न के बहुत से उत्तर प्रचलित हैं। यह कहा जाता है कि (१) ठंडे देशों के निवासी और माँसाहारी होने के कारण मुसलमान हिन्दुओं से अधिक हृष्ट-पुष्ट होते थे, (२) युद्ध में हिन्दू अपने लस्टमपस्टम हाथियों पर भरोसा रखते थे, जो फुर्तीले घुड़सवारों के मुकाबले में निकम्मे निकलते थे; और (३) हिन्दुओं में एकता न थी। हर्षवर्धन के बाद से भारत में कोई सम्राट् पैदा नहीं हुआ और अराजकता छायी रही; छोटे-छोटे राज्य सदा आपस में लड़ कर कमज़ोर होते रहे।

इनमें से कोई भी व्याख्या परीक्षा करने पर सन्तोषजनक नहीं ठहरती। भारतवर्ष के गरम मैदानों में पैदा होने वाली नस्लें ठंडे देशों के लोगों से कभी कमज़ोर नहीं रही हैं। भारतीय योद्धा तुर्कों से शारीरिक बल में कम न थे। अब भी

भारत के गरम प्रदेशों के निवासी राजपूत, जाट, सिक्ख और भोजपुरी संसार की सब से बलिष्ठ सैनिक जातियों से टक्कर लेते हैं। यदि गरम और टंडे देश में पैदा होने से ही यह भेद होता तो अफ़ग़ान जब हिन्दू थे, तब वे महमूद से क्यों हारते रहे? और कश्मीर से नेपाल तक के टंडे प्रदेशों के हिन्दू राज्य इस युग में क्यों मुर्दा पड़े रहे? मलिक काफूर किसी ठंडे देश में पैदा न हुआ था। हिन्दू रहते हुए उसी काफूर ने वह योग्यता क्यों न दिखलायी? माँसाहार की बात भी वैसी ही है। दाक्षिणात्य और गौड़ ब्राह्मणों, बनियों और जैनों को छोड़ कर आज भी प्रायः सब हिन्दू माँसाहारी हैं। हाथियों वाली बात भी ग़लत है। स्वयम् महमूद गज़नवी ने अपने विरोधी तुर्कों के मुकाबले में भारतीय हाथियों का प्रयोग किया था। उसका वृत्तान्त मनोरंजक है। उसके हाथी शत्रु के सवारों को अपनी सूँड़ों से पकड़ कर काठियों में से खींच लेते और नीचे पटक कर पैरों तले रौंद देते थे।

तीसरी बात भी अज्ञानमूलक है। गुर्जर-प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के साम्राज्य हर्ष और पुलकेशी के साम्राज्यों के प्रायः बराबर थे। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी में जितने बड़े राज्य भारतवर्ष में रहे, उतने बड़े राज्यों का परस्पर लड़ना यदि अराजकता कहलाये तो संसार के सब देशों में सदा ही अराजकता रही है। समय-समय पर उनके परस्पर लड़ने से तो उलटा उनका पौरुष बना रहा। भारत जैसे बड़े देश में यदि तीन सदियों तक कोई लड़ाई न होती तो लोग शायद युद्ध करना ही भूल जाते। तुर्क क़ौमें भी आपस की लड़ाइयों में हिन्दुओं से क्या कुछ कम थीं? महमूद आमू पार के तुर्कों से लगातार लड़ता रहा। यदि महमूद ने हिन्दू राज्यों की लड़ाइयों से लाभ उठाया तो क्यों नहीं किसी हिन्दू राजा ने तुर्कों की आपस की लड़ाइयों से लाभ उठाने की चेष्टा की? सच बात यह है कि यदि हिन्दुओं का राजनीतिक जीवन मन्द न हो गया होता तो एक-एक हिन्दू राज्य अकेले-अकेले भी शत्रु का मुकाबला कर सकता और यदि महमूद जैसा कोई असाधारण सेनापति उसे पछाड़ भी देता, तो भी अवसर पाते ही वह फिर उठ खड़ा होता।

इस प्रसंग में हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इस युग में हिन्दुओं ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, वे प्रायः सब अपनी रक्षा के लिए थीं। कभी उन्हें आगे बढ़ कर शत्रु पर चढ़ाई करने की न सूझी, और सूझी भी तो बहुत दूर की नहीं। शहाबुद्दीन गोरी यदि कई हमलों में हारा भी तो उन हारों से उसे अपने राज्य का कोई हिस्सा न देना पड़ा। और हिन्दू राजा यदि उसके मुक़ाबले में जीते

भी तो अधिक से अधिक अपना घर बचाने में ही सफल हुए। राजपूतों की जिस वीरता की बड़ी प्रशंसा की जाती है, वह वीरता सदा रक्षापरक युद्धों में ही प्रकट हुई। वह अपना अन्त निकट देख निराश हो कर मरने मारने पर तुले हुए आदमियों की वीरता होती थी। उसमें महत्त्वाकाँक्षा की वह प्रेरणा, विशाल दृष्टि का वह स्वप्न, वह ऊँची साध कभी न होती थी जो मनुष्यों को नयी भूमियाँ खोजने और जीतने के खतरे उठाने के लिए आगे बढ़ाती है। बेशक, कायर बन कर अधीनता मानने की अपेक्षा वैसी वीरता की मौत मरना भी अच्छा था। किन्तु वह बहादुरी का मरना ही था, बहादुरी का जीना नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुओं की हार का एक यह कारण भी कहा जाता है कि उनमें अनेक देशद्रोही पैदा होते रहे। देशद्रोह की बहुत सी बातें तो कल्पित हैं, जैसे पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र की। अनेक सच भी हैं, जैसे मुहम्मद गोरी के समय उच्च की रानी की या अलाउद्दीन के गुजरात पर चढ़ाई करने के समय कर्ण के उस मन्त्री की जिसका कर्ण ने मूर्खतावश अपमान किया था। इन उदाहरणों के विषय में यह सोचना चाहिए कि हिन्दू राज्यों के नेता इतने जागरूक क्यों न रहते थे कि देशद्रोह के अंकुर को ही कुचल देते। प्रजा का कोई आदमी ज्योंही देशद्रोह करने लगता, राजा उसे पकड़ कर दंड क्यों नहीं देता था? और यदि राजा ही देश बेचने लगता तो प्रजा उसके विरुद्ध क्यों नहीं उठ खड़ी होती थी? इस प्रकार देशद्रोह के इन दृष्टान्तों से वास्तव में राजनीतिक जीवन की मन्दता ही सूचित होती है।

§२. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना— इस युग के तुर्क सरदार और सैनिक निःसन्देह बहुत उच्छृंखल और उपद्रवी थे। सन् ११९३ से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर कुल ५ वंशों के ३५ बादशाह बैठे। उसी अन्तर में मेवाड़ में १३ राजाओं ने राज्य किया। दिल्ली के उन बादशाहों में से १६ तथा मेवाड़ के राजाओं में से ३ स्वाभाविक मृत्यु के बिना मारे गये। सन् ११९९ से १५३८ ई० तक गौड़ में कुल ४३ शासकों ने शासन किया। उसी अरसे में उसके पड़ोसी उड़ीसा में केवल १४ राजाओं का शासन रहा।

इन अंकों से तुर्क शासन की कमज़ोरी प्रकट होती है। किन्तु यदि कोई हिन्दू राजा इस कमज़ोरी से लाभ उठा कर दिल्ली पर चढ़ाई करता तो क्या होता?

भारत के गरम प्रदेशों के निवासी राजपूत, जाट, सिक्ख और भोजपुरी संसार की सब से बलिष्ठ सैनिक जातियों से टक्कर लेते हैं। यदि गरम और ठंडे देश में पैदा होने से ही यह भेद होता तो अफ़ग़ान जब हिन्दू थे, तब वे महमूद से क्यों हारते रहे ? और कश्मीर से नेपाल तक के ठंडे प्रदेशों के हिन्दू राज्य इस युग में क्यों मुर्दा पड़े रहे ? मलिक काफ़ूर किसी ठंडे देश में पैदा न हुआ था। हिन्दू रहते हुए उसी काफ़ूर ने वह योग्यता क्यों न दिखलायी ? माँसाहार की बात भी वैसी ही है। दाक्षिणात्य और गौड़ ब्राह्मणों, बनियों और जैनों को छोड़ कर आज भी प्रायः सब हिन्दू माँसाहारी हैं। हाथियों वाली बात भी ग़लत है। स्वयम् महमूद गज़नवी ने अपने विरोधी तुर्कों के मुकाबले में भारतीय हाथियों का प्रयोग किया था। उसका वृत्तान्त मनोरंजक है। उसके हाथी शत्रु के सवारों को अपनी सूँड़ों से पकड़ कर काठियों में से खींच लेते और नीचे पटक कर पैरों तले रौंद देते थे।

तीसरी बात भी अज्ञानमूलक है। गुर्जर-प्रतिहारों और राष्ट्रकूटों के साम्राज्य हर्ष और पुलकेशी के साम्राज्यों के प्रायः बराबर थे। आठवीं, नवीं और दसवीं सदी में जितने बड़े राज्य भारतवर्ष में रहे, उतने बड़े राज्यों का परस्पर लड़ना यदि अराजकता कहलाये तो संसार के सब देशों में सदा ही अराजकता रही है। समय-समय पर उनके परस्पर लड़ने से तो उलटा उनका पौरुष बना रहा। भारत जैसे बड़े देश में यदि तीन सदियों तक कोई लड़ाई न होती तो लोग शायद युद्ध करना ही भूल जाते। तुर्क क़ौमें भी आपस की लड़ाइयों में हिन्दुओं से क्या कुछ कम थीं ? महमूद आमू पार के तुर्कों से लगातार लड़ता रहा। यदि महमूद ने हिन्दू राज्यों की लड़ाइयों से लाभ उठाया तो क्यों नहीं किसी हिन्दू राजा ने तुर्कों की आपस की लड़ाइयों से लाभ उठाने की चेष्टा की ? सच बात यह है कि यदि हिन्दुओं का राजनीतिक जीवन मन्द न हो गया होता तो एक-एक हिन्दू राज्य अकेले-अकेले भी शत्रु का मुकाबला कर सकता और यदि महमूद जैसा कोई असाधारण सेनापति उसे पछाड़ भी देता, तो भी अवसर पाते ही वह फिर उठ खड़ा होता।

इस प्रसंग में हमें इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि इस युग में हिन्दुओं ने जितनी लड़ाइयाँ लड़ीं, वे प्रायः सब अपनी रक्षा के लिए थीं। कभी उन्हें आगे बढ़ कर शत्रु पर चढ़ाई करने की न सूझी, और सूझी भी तो बहुत दूर की नहीं। शहाबुद्दीन गोरी यदि कई हमलों में हारा भी तो उन हारों से उसे अपने राज्य का कोई हिस्सा न देना पड़ा। और हिन्दू राजा यदि उसके मुक़ाबले में जीते

भी तो अधिक से अधिक अपना घर बचाने में ही सफल हुए। राजपूतों की जिस वीरता की बड़ी प्रशंसा की जाती है, वह वीरता सदा रक्षापरक युद्धों में ही प्रकट हुई। वह अपना अन्त निकट देख निराश हो कर मरने मारने पर तुले हुए आदमियों की वीरता होती थी। उसमें महत्त्वाकाँक्षा की वह प्रेरणा, विशाल दृष्टि का वह स्वप्न, वह ऊँची साध कभी न होती थी जो मनुष्यों को नयी भूमियाँ खोजने और जीतने के खतरे उठाने के लिए आगे बढ़ाती है। बेशक, कायर बन कर अधीनता मानने की अपेक्षा वैसी वीरता की मौत मरना भी अच्छा था। किन्तु वह बहादुरी का मरना ही था, बहादुरी का जीना नहीं कहा जा सकता।

हिन्दुओं की हार का एक यह कारण भी कहा जाता है कि उनमें अनेक देशद्रोही पैदा होते रहे। देशद्रोह की बहुत सी बातें तो कल्पित हैं, जैसे पृथ्वीराज के विरुद्ध जयचन्द्र की। अनेक सच भी हैं, जैसे मुहम्मद गोरी के समय उच्च की रानी की या अलाउद्दीन के गुजरात पर चढ़ाई करने के समय कर्ण के उस मन्त्री की जिसका कर्ण ने मूर्खतावश अपमान किया था। इन उदाहरणों के विषय में यह सोचना चाहिए कि हिन्दू राज्यों के नेता इतने जागरूक क्यों न रहते थे कि देशद्रोह के अंकुर को ही कुचल देते। प्रजा का कोई आदमी ज्योंही देशद्रोह करने लगता, राजा उसे पकड़ कर दंड क्यों नहीं देता था? और यदि राजा ही देश बेचने लगता तो प्रजा उसके विरुद्ध क्यों नहीं उठ खड़ी होती थी? इस प्रकार देशद्रोह के इन दृष्टान्तों से वास्तव में राजनीतिक जीवन की मन्दता ही सूचित होती है।

§२. तुर्कों और हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन और शासन की तुलना— इस युग के तुर्क सरदार और सैनिक निःसन्देह बहुत उच्छृंखल और उपद्रवी थे। सन् ११९३ से १५२६ ई० तक दिल्ली की गद्दी पर कुल ५ वंशों के ३५ बादशाह बैठे। उसी अन्तर में मेवाड़ में १३ राजाओं ने राज्य किया। दिल्ली के उन बादशाहों में से १६ तथा मेवाड़ के राजाओं में से ३ स्वाभाविक मृत्यु के बिना मारे गये। सन् ११९९ से १५३८ ई० तक गौड़ में कुल ४३ शासकों ने शासन किया। उसी अरसे में उसके पड़ोसी उड़ीसा में केवल १४ राजाओं का शासन रहा।

इन अंकों से तुर्क शासन की कमज़ोरी प्रकट होती है। किन्तु यदि कोई हिन्दू राजा इस कमज़ोरी से लाभ उठा कर दिल्ली पर चढ़ाई करता तो क्या होता?

तुर्कों में कोई न कोई ग़यास तुगलक उठ खड़ा होता, और सब तुर्क अपने उपद्रव छोड़ कर उसके झंडे के नीचे जमा हो जाते। हमें यह समझना चाहिए कि तुर्क सल्तनत में वास्तविक शासन तुर्कों के सैनिक दल के हाथ में था। उस दल के नेता कब खिलजी रहे, कब तुगलक, आदि, सो गौण बात है। वह दल एक जाति के लोगों का था, जिनका जीवन, रहन-सहन, भाषा और मज़हब एक था। उस तरुण जाति में नये-नये देश जीतने की उमंग सहज ही मौजूद थी। इस्लाम ने उनमें यह विश्वास पैदा कर दिया था कि उनकी वह उमंग और लूटमार की प्रवृत्ति भी एक ईश्वरीय प्रेरणा है।

यों वे उमंगें उनके लिए एक ऊँचा आदर्श बन गयीं। यह आदर्श उन्हें सदा आगे बढ़ने को प्रेरित करता रहा। उनके दल में छोटे-बड़े सब बराबर थे, योग्यता से कोई भी आगे बढ़ सकता रहा। वे लोग काफ़ी उत्पाती और उच्छृंखल थे, तो भी इस्लाम की शरीअत ने उनके समाज में कुछ नियम बाँध दिये थे, और चूँकि वे नियम उनकी दृष्टि में ईश्वरी कानून थे, इसलिए उनका उल्लंघन करने की एक आन्तरिक रुकावट उनके लिए उपस्थित रहती थी। यदि उनका शासन उपद्रवमय था तो इसका समूचा दोष भी उन्हें नहीं दिया जा सकता। इसके लिए मुख्य दोषी शासित प्रजा थी जो निश्चेष्ट हो कर सब कुछ सहने को तैयार थी, और अपने राजनीतिक कर्त्तव्यों के प्रति बिलकुल बेहोश हो गयी थी। यदि हिन्दू सभ्यता में पहले सा जीवन होता तो वह शकों की तरह तुर्कों को भी पालतू बना लेती; इस्लाम ने तुर्कों के दल में जो व्यवस्था पैदा की वह उससे भी अधिक अच्छी व्यवस्था पैदा कर देती।

खिलजियों के पतन-काल में यदि कोई हिन्दू सरदार दिल्ली पर अधिकार कर भी लेता तो जहाँ उसे तुर्कों के उस जीवित दल का मुकाबला करना पड़ता, वहाँ उसके अपने पक्ष में कौन सी शक्तियाँ उपस्थित होतीं? यदि वह 'नीच' जात का होता— जैसा कि खुसरो था ही—तो उसे कहीं से भी सहयोग न मिलता। और यदि वह कुलीन होता तो भी उसकी दशा प्रायः वही होती जो बंगाल में राजा गणेश की हुई। गणेश के बेटे के मुसलमान होने के विषय में कई कहानियाँ प्रसिद्ध हैं, पर असलियत यह मालूम होती है कि उसके अधीन हिन्दू सरदार निश्चेष्ट थे जिनके सहयोग पाने की उसे कोई आशा न थी, और सचेष्ट मुस्लिम सरदारों और पीरों-फ़कीरों का अकेले मुकाबला करने लायक दृढ़ता, जो उसके बाप में थी, उसमें न थी।

चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में उत्तर भारत के मैदान, मालवा, गुजरात और बहमनी रियासत के सिवाय समूचे भारत में हिन्दू राज्य थे। यदि उनमें राजनीतिक सचेष्टता और जागरूकता होती तो वे एक बड़ी शक्ति संगठित कर सकते थे। किन्तु उनकी दृष्टि संकीर्ण और शून्य थी। पुरानी लकीर पर चलने के अतिरिक्त कोई दूर का या ऊँचा लक्ष्य उनके सामने आता ही न था।

जिन राज्यों के संचालक अपने चारों तरफ़ की परिस्थिति को देखने और समझने में इतने बेसुध और जागरूकताहीन थे, उनके अन्दर का शासन भी कैसा रहा होगा? हमने दिल्ली और लखनौती के तुर्क शासन की एक अंश में मेवाड़ और उड़ीसा के मुक़ाबले में कमज़ोरी देखी है। हिन्दू शासन में एक दूसरी कमज़ोरी थी। जहाँ राज्य के नेता ऊँघने वाले और उपेक्षाशील होते हैं, वहाँ उसका संगठन बाहर के किसी हमले के बिना ही ढीला हो जाता है और चारों तरफ़ उपद्रव होने लगते हैं। चेदि देश का इतिहास इसका उदाहरण है। सल्तनत युग में उसका बड़ा अंश प्रायः स्वतन्त्र रहा; किन्तु बारहवीं सदी के अन्त में वह राज्य आप से आप ही टूट गया। इसके बाद उसके स्थान में कोई सुसंगठित राज्य पैदा न हुआ; जहाँ-तहाँ छोटे-मोटे सरदारों की रियासतें खड़ी हो गयीं, जिनकी सीमाओं पर हमेशा ही अशान्ति रहती होगी। यदि भारत में तुर्क न आते तो प्रायः समूचे भारत की वही दशा हो जाती। इस प्रकार यदि तुर्कों के राज्य में शासक दल की असंयत सचेष्टता के कारण उत्पात और उपद्रव होते रहते थे, तो हिन्दुओं के राज्य में शासकों की निश्चेष्टता के कारण वैसे ही उपद्रव जारी थे। प्रजा में राजनीतिक चेतनता न रहने के कारण उस युग में देश की वैसी दुर्दशा होना अवश्यम्भावी था।

§३. भारतीय उपनिवेशों का अन्त—इस दशा में भारत का अपने बाहरी उपनिवेशों से सम्बन्ध टूट जाना स्वाभाविक ही था। तेरहवीं सदी से परले हिन्द में तिब्बत और चीन से गयी जातियों की प्रधानता हो गयी थी। किन्तु उन विजेताओं पर भी विजितों के धर्म, सभ्यता, भाषा आदि का बहुत प्रभाव पड़ा। कम्बुज, स्याम और बरमा की जनताएँ अब भी बौद्ध हैं; वे भारतीय लिपियों में अपनी भाषाएँ लिखती हैं; उनकी भाषाओं में पाली और संस्कृत के शब्द भरपूर हैं।

भारतीय द्वीपों के राज्य भी कुबलेख़ान के हमले से टूट गये (१२६३ ई०), पर उसके ठीक बाद ही जावा में बिल्वतिक्त का राज्य खड़ा हो गया। उसका संस्थापक कृतरजस जयवर्धन था। उसकी लड़की त्रिभुवनोत्तुंगदेवी जयविष्णुवर्द्धनी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भी बड़ी योग्य स्त्री थी। अपने निकम्मे भाई के बाद वह बिल्वतिक्त की रानी बनी। उसकी बहन राजदेवी और माँ गायत्री भी उसके साथ शासन करती थीं। उसका पति राज्य का मुख्य न्यायाधीश था। उसके मन्त्री गजमद ने एक बार सभा में प्रण किया कि वह पहांग, सिंहपुर (सिंगापुर) और श्रीविजय (सुमात्रा) से लेकर बकुलपुर (दक्खिनी बोर्नियो) तक सब राज्यों को जीत कर छोड़ेगा। सब लोगों ने उसकी हँसी की; लेकिन रानी ने हँसी करने वालों को निकाल कर गजमद के हाथ में पूरी शक्ति दे दी। गजमद ने जो कहा था उससे अधिक कर दिखाया। क्रा की स्थलग्रीवा और सुमात्रा से आजकल न्यूगिनी कहलाने वाले द्वीप तक के सब प्रदेश बिल्वतिक्त के साम्राज्य में सम्मिलित हो गये। उनमें से बहुतों को जयविष्णुवर्धनी के 'जलधिमन्त्री' (जल-सेनापति) नल ने जीता था। आनाम, चम्पा, कम्बुज, अयोध्या और राजपुरी* तथा मरुतम (मर्त्तबान, बरमा के तट पर) के राज्य बिल्वतिक्त की मैत्री चाहने लगे।

बिल्वतिक्त के साम्राज्य में भी बौद्ध और शैव मत के तान्त्रिक रूप ज़ोरों पर थे। १३८९ ई० में जयविष्णुवर्धनी के बेटे रजसनगर की मृत्यु के बाद से अवनति होने लगी। पन्द्रहवीं सदी के पूर्वार्द्ध में राजा कृतविजय हुआ, जिसने चम्पा की एक राजकुमारी से विवाह किया। वह इस्लाम की पक्षपातिनी थी। इससे जावा में इस्लाम के पैर जम गये। १४४८ ई० में वह मरी, और १४७८ ई० में बिल्वतिक्त का साम्राज्य भी समाप्त हो गया। हिन्दुओं के अन्य राज्यों की तरह वह भी अपने अन्दर की जीर्णता से ही खण्डित हुआ।

§४. सामन्त शासनप्रणाली और जागीर-पद्धति—हिन्दू जनता की राजनीतिक निश्चेष्टता तथा तुर्कों की विजयों से मध्य युग में शासन और भूस्वत्व की एक नयी पद्धति चल पड़ी थी। पहले किसान अपनी ज़मीन का ख़ुद मालिक होता था। अब तुर्क और दूसरे विजेता विजय के बाद ज़मीन आपस में बाँट लेते थे। किन्तु वे पहले किसानों को हटा कर उनके स्थान में ख़ुद खेती करने के बजाय उन्हीं को खेती-बाड़ी करने देते और ख़ुद उनके ऊपर मालिक बन बैठते थे। वास्तव में वे अपने इलाके के मालिक होते थे या शासक, सो कहना कठिन है। जनता के अपने स्वत्वों के प्रति उदासीन हो जाने के कारण इन दोनों बातों में विशेष अन्तर न रह गया था। जहाँ नये विजेता न पहुँचे, वहाँ भी पुराने कर

---

* अयोध्या और राजपुरी दोनों स्याम में हैं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वसूल करने वाले और अन्य राजकीय अधिकारी उसी तरह किसानों के ऊपर ज़मीन के मालिक से बन बैठे। जहाँ पहले किसान ज़मीन के मालिक थे, वहाँ अब राजा सब भूमि का स्वामी माना जाने लगा। वह अपने बड़े सरदारों या सामन्तों को मानो ज़मीन ठेके पर देता—या जागीर देता—था और वे अपने छोटे सरदारों और सैनिकों को देते थे। इस ठेके की परम्परा में प्रत्येक ठेके की यह शर्त होती थी कि सैनिक या सरदार अपने 'स्वामी' को बदले में सैनिक-सेवा देंगे। इसी को हम सामन्त-शासनपद्धति या जागीर-पद्धति कहते हैं।

§५. सामाजिक जीवन—जातपाँत, परदा, और बालविवाह—अब न केवल हिन्दुओं के राजनीतिक जीवन में, प्रत्युत उनकी सभ्यता के सब पहलुओं में जीर्णता आ गयी थी। उस सभ्यता में प्रगति और प्रवाह बन्द हो गये थे। किन्तु जीर्ण होने पर भी हिन्दू सभ्यता ने अपने को बचाये रखने की अनुपम शक्ति दिखलायी। पहले मध्य युग में जात-पाँत का विकास हो चुका था और ब्याह-शादी, खान-पान पर कड़े बन्धन लग चुके थे। वे बन्धन अब और भी कड़े हो गये, जिससे हिन्दू समाज के अन्दर के जीवन पर बाहर से कोई प्रभाव पड़ना बहुत कठिन हो गया। हिन्दुओं ने अपने विजेताओं को अपने से ऊँचा मानने के बजाय उलटा नीच बताया। तो भी इस युग तक वे अपनी जातों में बाहर के आदमियों को मिला लेते थे। इसका एक उदाहरण, शहाबुद्दीन गोरी के हारे हुए कैदियों का गुजराती हिन्दुओं में मिलाये जाने का, दिया जा चुका है। दूसरा बड़ा उदाहरण अहोम लोगों के हिन्दुओं में मिलने का है। तेरहवीं सदी में जब वे आसाम में आये तो वे अपनी बोली बोलते थे और गो-मांस खाते थे। धीरे-धीरे उन्होंने एक आर्य भाषा अपना ली, और पूरे हिन्दू बन गये। परदा और बालविवाह की प्रथाएँ भी इसी युग में परिपक्व हुईं।

§६. धार्मिक जीवन (अ) तौहीद और मूर्तिपूजा—इस्लाम के धार्मिक विचारों में शिक्षित हिन्दुओं के लिए कोई नयी बात न थी। एक ब्रह्म का विचार उपनिषदों के समय से स्पष्ट रूप में मौजूद था। शिक्षित समाज की दृष्टि में ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि केवल उसकी विभिन्न शक्तियों के सूचक थे। उनकी मूर्त्तियाँ केवल संकेत थीं, जिनकी रचना में कला को अपना कौशल दिखाने का अवसर मिलता था। राणा कुम्भा के प्रसिद्ध कीर्ति-स्तम्भ में हिन्दुओं के सब देवी-देवताओं की मूर्त्तियाँ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव से शुरू कर ऋतुओं और मासों तक को मूर्त्त

किया गया है। स्पष्ट है कि वे सब मूर्त्तियाँ पूजा के लिए न थीं। वहाँ प्रतिमा का अर्थ केवल भाव का मूर्त्त रूप है। वह पत्थर में तराशी गयी कविता है। धार्मिक विचारों में हिन्दू कितने उदार थे, इसका उदाहरण भी उसी कीर्त्ति-स्तम्भ में मौजूद है। ब्रह्मा, विष्णु, शिव की मूर्त्तियों के साथ-साथ अरबी अक्षरों में अल्लाह का नाम भी वहाँ लिखा है। वह निराकार ब्रह्म का अरबी नाम है। इस प्रकार इस युग में इस्लाम के बुनियादी विचार को हिन्दुओं ने खुशी-खुशी स्वीकार कर लिया था।

(इ) जड़पूजा, वाम मार्ग और अन्धविश्वास—किन्तु जनसाधारण में मूर्त्तिपूजा जड़-पूजा के रूप में प्रचलित थी। इसके अलावा, पहले मध्य युग तक हिन्दुओं के प्रायः सभी पन्थों में कोई न कोई विषयी या घोर रूप चल चुके थे। तीसरे, अलौकिक और असाधारण सिद्धियाँ ऊँचे जीवन का मुख्य चिन्ह मानी जाने लगी थीं। चौथे, पौराणिक धर्म में अर्थहीन क्रियाकलाप बहुत बढ़ गया था, और उस रूप में उसे निभाना फुरसत वाले निठल्ले लोगों के लिए ही शक्य था। देवगिरि के अन्तिम यादव राजा के मन्त्री हेमाद्रि (हेमाड पन्त) ने हिन्दू धर्म-कर्म का एक ग्रन्थ लिखा जिसमें बरस भर में करने के लिए प्रायः २,००० व्रतों और अनुष्ठानों का विधान है। उसी तरह के ग्रन्थ काशी और मिथिला में शूलपाणि उपाध्याय, कमलाकर भट्ट, नीलकंठ आदि ने लिखे, जिनमें हिन्दू धर्म का वही जटिल रूप दिखायी देता है।

(उ) सन्त और सूफ़ी सुधारक सम्प्रदाय—इस प्रवृत्ति के खिलाफ़ बाद में सुधार की एक लहर चली। वह लहर मुख्यतः सन्त लोगों ने चलायी जो सब वैष्णव भक्त थे। उन्होंने जनता का ध्यान मूर्त्तियों के जड़ रूप से हटा कर उनके भाव और आदर्श की तरफ़ खींचा, विषयासक्त पूजाओं की उपेक्षा कर शुद्ध पूजाओं को उज्ज्वल और आकर्षक रूप में उपस्थित किया, तथा पूजा की विधि और क्रिया-कलाप के बजाय भाव और भक्ति पर ज़ोर दिया। मध्य एशिया में वैष्णव धर्म के सम्पर्क से इस्लाम में भी एक रहस्यवाद चला। उसके प्रवक्ता सूफ़ी कहलाये। उनकी धार्मिक दृष्टि बहुत उदार थी।

इस युग के सब से पहले बड़े सुधारक प्रयाग के रामानन्द तथा पंढरपुर (महाराष्ट्र) के विसोबा खेचर थे, जो दोनों चौदहवीं शती में हुए। रामानन्द ने गोपियों से घिरे कृष्ण की बजाय राम को भगवान् माना, संस्कृत के बजाय देशी

भाषा में उपदेश दिया और नीच कहलाने वाली जातियों के लोगों, स्त्रियों तथा मुसलमानों को भी शिष्य बनाया। भक्ति छोटे-बड़े सब को पवित्र बना सकती है, इसलिए भक्त सन्तों ने 'नीच' जातों को भी सहज ही ऊँचा उठा दिया। विसोबा खेचर ने खुले शब्दों में मूर्त्ति-पूजा को धिक्कारा—"पत्थर का देवता नहीं बोलता… वह चोट से टूट जाता है।…पत्थर के देवताओं के पुजारी मूर्खतावश सब खो बैठते हैं।"

चौदहवीं सदी में ही ईरान में हाफ़िज़ नामी प्रसिद्ध सूफ़ी कवि हुआ। उसे बहमनी रियासत के मुहम्मदशाह २य तथा बंगाल के ग़यास आज़मशाह दोनों ने अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दिया था। इससे जान पड़ता है कि भारतीय मुसलमानों पर हाफ़िज़ का बड़ा प्रभाव पड़ा था।

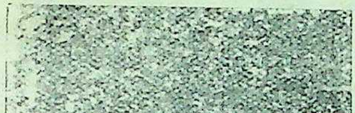

कबीरदास

[ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खे एक पुराने चित्र की प्रतिलिपि, भारत कलाभवन्]

विसोबा के शिष्य नामदेव तथा रामानन्द के शिष्य कबीर कहे जाते हैं। नामदेव ने तीर्थ, व्रत, उपवास आदि धर्म के सब बाह्य साधनों को व्यर्थ कह कर मन की शुद्धि और हरि के ध्यान को असल मार्ग बतलाया। कबीर एक मुस्लिम जुलाहा था। हिन्दू और मुसलमान दोनों में उसके अनुयायी हैं, और दोनों को उसने खरी-खरी सुनायीं। वह भी राम का उपासक था। हिन्दुओं से उसने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलैं,
तो मैं पुजौं पहार!
तातैं ये चाकी भली
पीस खाय संसार!

और मुसलमानों से—

कांकर पाथर जोरि कै
मसजिद लई चुनाय,
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे,
क्या बहरा हुआ खुदाय!

कबीर के बाद सब से अधिक उल्लेख-योग्य नाम पंजाब के गुरु नानकदेव (१४६८–१५३८ ई०) का है। वे सन्त होते हुए भी गृहस्थ थे। संसार के कर्त्तव्यों

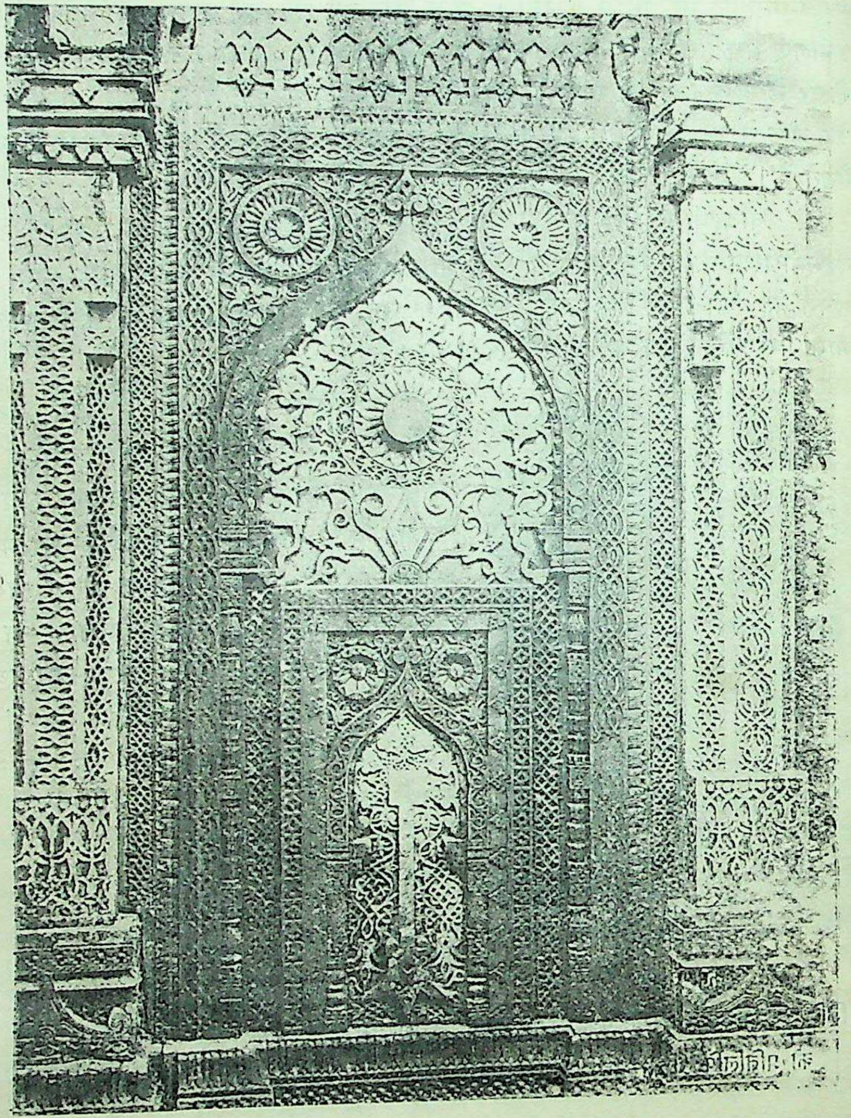

चन्देरी के एक मक़बरे की मेहराब—मालवे की १५वीं सदी की कारीगरी। [ग्वालियर पु० वि०]

को करते हुए भी सदाचरण और भक्ति से मनुष्य धर्मात्मा हो सकता है, यह उनकी शिक्षा थी।

नानक और हुसैनशाह का समकालीन बंगाली सन्त चैतन्य था (१४८५–१५३३ ई०)। राजा गणेश के प्रधान मन्त्री का पोता अद्वैताचार्य चैतन्य का साथी था। इन दोनों ने बंगाल को वज्रयान और शाक्त वाममार्ग से उबारा। इनके वैष्णव धर्म में जटिल दार्शनिकता न थी, भाव-प्रधान भक्ति ही उसका सार था। इन्होंने जाति-भेद को दूर किया और मुसलमानों को भी अपना शिष्य बनाया। बंगाल में बौद्ध भिक्खु-भिक्खुनियों का एक बड़ा दल था, जो हिन्दू समाज से अलग हो गया था। वे नेड़ा-नेड़ी कहलाते थे। अद्वैताचार्य ने उन सब को वैष्णव दीक्षा दे हिन्दुओं में मिला लिया। आसाम के अहोमों को हिन्दू बनाने का श्रेय भी वैष्णव भक्तों को है। किन्तु इन भक्तों के द्वारा भजन-कीर्त्तन को ही जीवन का मुख्य धन्धा बना देने का प्रभाव अच्छा न हुआ।

मारवाड़ की प्रसिद्ध मीराबाई, जो राणा साँगा की पतोहू थी, चैतन्य से १३ बरस पीछे हुई (१४९८–१५४६ ई०)। उसने अपने दादा और पिता की परम्परा से वैष्णव भक्ति पायी थी।

(ऋ) **भारतीय इस्लाम**—चौदहवीं सदी से—प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों की स्थापना के साथ-साथ—इस्लाम भी भारतवर्ष में विदेशी न रहा। तुर्क लोग तब तक भारतीय हो गये थे और बहुत से भारतीय भी मुसलमान बन चुके थे। लोदी और अन्य पठान भी भारतीय मुसलमान—अर्थात् हिन्दू से बने हुए मुसलमान—थे। भारतवर्ष में इस्लाम का वास्तविक प्रचार प्रादेशिक मुस्लिम राज्यों द्वारा ही हुआ। उन राज्यों के शासकों में से कई इस्लाम के उग्र प्रचारक थे और उन हिन्दी मुसलमानों ने तुर्कों से बढ़ कर इस्लाम को फैलाया। फ़ीरोज़ तुगलक, सिकन्दर बुतशिकन, अहमदशाह गुजराती, महमूद बेगड़ा तथा सिकन्दर लोदी उस प्रकार के इस्लाम-प्रचारक थे। दूसरी तरफ़ ज़ैनुलआबिदीन जैसे सुशासक थे जिन्होंने अपने चरित्र के उदाहरण से इस्लाम का गौरव बढ़ाया।

§७. **शिल्प-कला**—१४वीं-१५वीं सदी के सभी प्रादेशिक शासकों ने भारतीय सभ्यता, साहित्य और कला को अपनाया और पुष्ट किया। भारतीय कला के बहुत से पुराने चिन्ह तुर्कों ने मिटा दिये थे, तो भी भारतीय कारीगरों का कौशल मिट न गया था, और वह कौशल अब नयी मुस्लिम इमारतों में प्रकट हुआ। इनमें

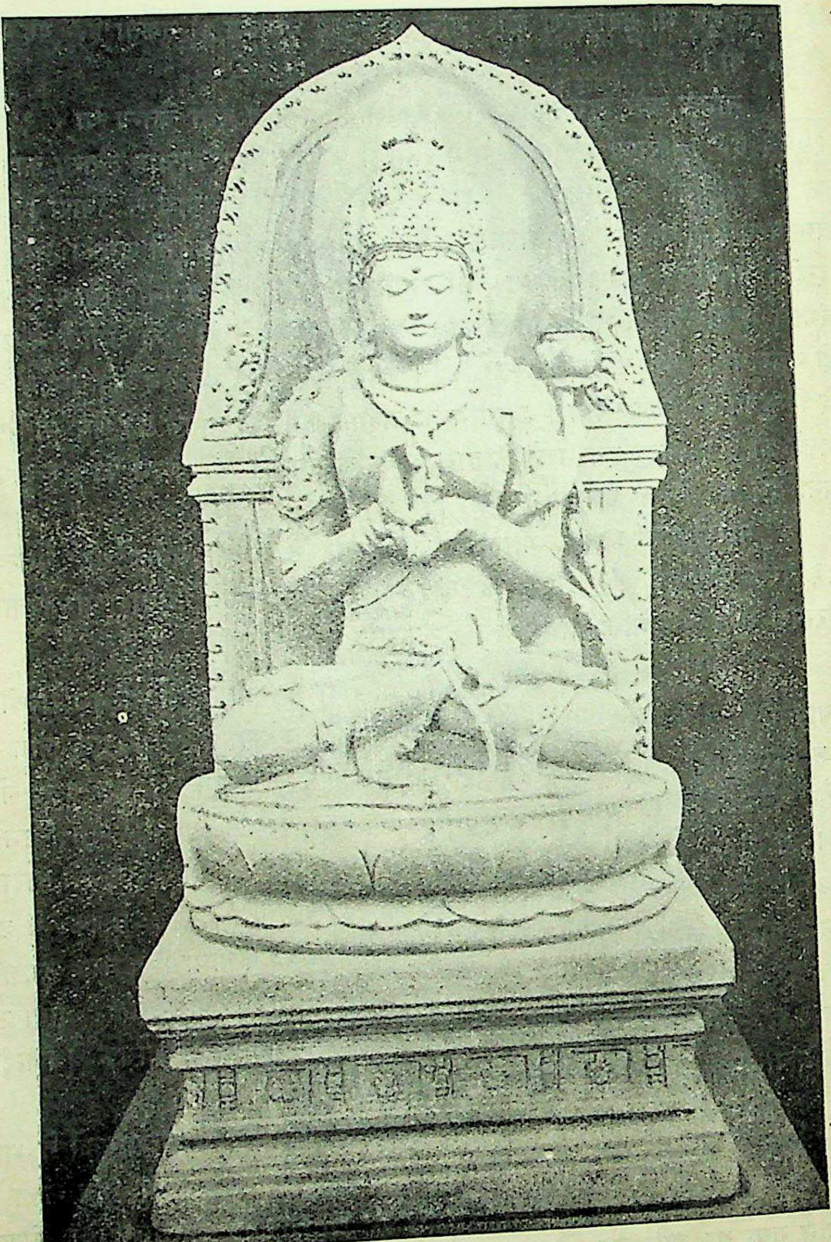

प्रज्ञापारमिता (जावा, १३वीं सदी)

से बहुत सी तो पुरानी हिन्दू इमारतों का केवल रूपान्तर थीं। बंगाल में इलियास के बेटे सिकन्दरशाह की बनवायी पाण्डुआ (ज़ि० मालदा) की अदीना मसजिद, जो एक बौद्ध स्तूप की सामग्री से बनी, तथा जिसके बराबर बड़ी मसजिद भारत में कभी कोई नहीं बन पायी, जौनपुर की अटला देवी मसजिद तथा मालवा, गुजरात और दक्खिन की इस युग की इमारतें भारतीय वास्तु-कला के बढ़िया नमूनों में से हैं। उनमें से प्रत्येक पर अपने-अपने प्रान्त की पुरानी शैली की छाप है।

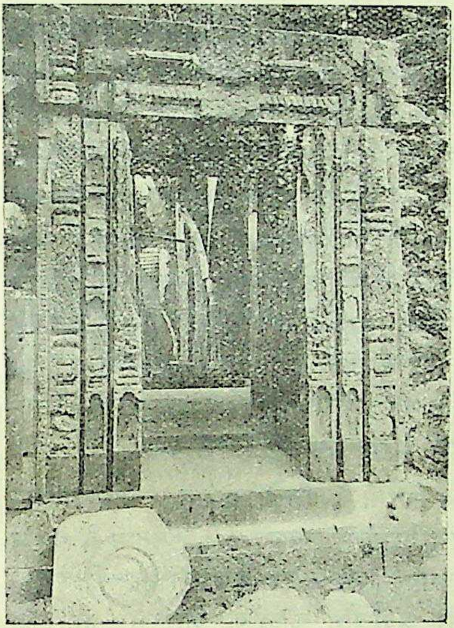

अदीना मस्जिद का एक दरवाज़ा [भा० पु० वि०]

हिन्दू राज्यों में पुराना शिल्प बदस्तूर मौजूद रहा। मूर्ति-कला के लिए मुस्लिम दरबारों में कोई स्थान न था, और हिन्दू राज्यों में भी वह अवनति पर थी। चित्तौड़ के कीर्ति-स्तम्भ की मूर्त्तियाँ भद्दी हैं; किन्तु दक्खिन की नटराज की मूर्त्तियाँ अत्यन्त सुन्दर और सजीव हैं। इस युग की मूर्त्ति-कला का बहुत बढ़िया नमूना जावा से पायी गयी राजा रजससंग अमुर्वभूमि (१२२०–२७ ई०) के समय की प्रज्ञापारमिता की प्रतिमा है, जो उस राजा की सुन्दरी रानी देदेस की प्रतिकृति मानी जाती है। पारमिता का अर्थ है बड़प्पन

नटराज (ताण्डव करते हुए शिव) दक्खिन भारत १५वीं सदी का कांस्य। [म्युज़े गुइमे, पेरिस]

या परम उत्कर्ष। बौद्ध कला में भिन्न-भिन्न पारमिताओं को भी मूर्त्त रूप दिया गया है।

§८. **साहित्य**—चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में देशी भाषाओं के साहित्यों को एक तरफ़ तो प्रादेशिक राज्यों से प्रोत्साहन मिला, दूसरी तरफ़ उन्हें सन्त-सुधारकों ने अपना कर पुष्ट किया। देशी भाषाओं को उत्साहित करने का श्रेय मुसलमानों को अधिक है, क्योंकि हिन्दू विद्वान् तब तक प्रायः संस्कृत में ही लिखते थे। मलिक खुसरो (१२५३–१३२५ ई०) ने खड़ी बोली में सबसे पहले कविता की। बंगला साहित्य का उदय राजा गणेश के समय से हुआ। चण्डीदास के पद उसमें सब से पहली प्रसिद्ध रचना हैं। उसी प्रकार के पद विद्यापति ने मैथिली में लिखे। हुसेन-शाह, उसके पुत्र और सरदारों ने बंगला में भागवत और महाभारत के अनुवाद करवाये। बंगाली कवियों ने भी 'श्रीयुत हसन जगतभूषण' के नाम को अपने गीतों में चिरस्थायी किया। द्राविड भाषाओं में से तामिल और कन्नड में पहले भी साहित्य था। तेलुगु में राजा गणपति और उसके सामन्तों तथा मध्य काल के भक्तों के प्रोत्साहन और प्रयत्न से शुरू हुआ। १३वीं सदी के तामिल कवि कम्बन् की रामायण तथा कवयित्री आण्डाल के गीत भारतीय साहित्य के उज्ज्वल रत्न हैं। कम्ब-रामायण के नमूने पर पीछे दूसरी भाषाओं में भी रामायणें लिखी गयीं।

सब मुस्लिम दरबारों के इतिहास फ़ारसी में लिखे जाते थे। भारतीय तुर्कों की साहित्यिक भाषा फ़ारसी थी। वे इतिहास महत्त्वपूर्ण हैं। आसाम के अहोम राजाओं के वृत्तान्त असमिया भाषा में बराबर लिखे गये। वे बुरंजी कहलाते हैं।

§९. **मध्य काल का ज्ञान, और अर्वाचीन काल का आरम्भ**—हम कह चुके हैं कि गुप्त युग में भारतवर्ष का ज्ञान और सभ्यता जहाँ तक पहुँच गये थे, उसके आगे प्रायः एक हज़ार बरस तक संसार ने विशेष उन्नति न की। इस बीच में पहले अरबों और फिर मंगोलों द्वारा भारत और चीन का ज्ञान पच्छिमी युरोप की जातियों तक पहुँचता रहा। दशगुणोत्तर गणना अरब लोगों ने भारत से सीखी, इसी कारण उन्होंने हमारे अंकों को हिन्दसे कहा। युरोप वालों ने वह गणना अरबवालों से सीखी। लकड़ी के ठप्पों (ब्लाकों) से कागज़ पर छापने की विद्या चीनवालों से सीख कर अरबों ने युरोप तक पहुँचायी। मंगोलों ने युरोप में बारूद पहुँचाया। इसी प्रकार और अनेक बातों का ज्ञान युरोप में पूरब से गया। रोम के पतन के समय से जब युरोप की जातियों ने ईसाई मत को अपनाया, तब से वे

अज्ञान की निद्रा में रहीं। अब धीरे-धीरे यह ज्ञान पा कर उनमें एक गहरी जागृति पैदा हुई। प्राचीन यूनान की विद्याओं के लिए वे तरसने लगीं। १४५३ ई० में तुर्कों के कुस्तुन्तुनिया जीत लेने पर प्राचीन यूनानी विद्याओं के अनेक विद्वान् भाग कर युरोप के देशों में पहुँचे।

पूरब और यूनान के ज्ञान से युरोप में एक नयी जागृति पैदा हो गयी। वहाँ की तरुण आर्य जातियों के विचार जहाँ एक बार उस ज्ञान से जाग उठे कि उन्होंने स्वयम् नयी-नयी खोजें करना शुरू कर दिया। नये देशों की खोज की बात पीछे कही जा चुकी है। गुट्टनबर्ग नामक एक जर्मन ने इसी समय सीसे के चल टाइप से छापने की कला निकाली (१४५४–५६ ई०), जिससे नयी पुस्तकें छापने में बड़ी सुविधा हो गयी। इस प्रकार दुनियाँ में एक नया युग उपस्थित हुआ। उस नये युग को लाने में तीन वस्तुओं के ज्ञान का विशेष प्रभाव हुआ। एक नाविकों के दिग्दर्शक यन्त्र का, दूसरे बारूद का, और तीसरे पुस्तक छापने की कला का। ज्ञान के क्षेत्र में भारतवासी अब भी वैसे ही सोये रहे जैसे गुप्त युग के बाद से सोये थे। लेकिन पच्छिमी लोगों के जाग जाने का प्रभाव हमारे देश पर भी हुए बिना न रह सकता था। नयी जागृति के जोश में स्पेन वालों ने अपने दक्खिनी और रूसियों ने अपने पूरबी प्रान्त से मूरों और मंगोलों को निकाल दिया।

नवाँ प्रकरण

मुगल साम्राज्य

(१५०९—१७२० ई०)

अध्याय १

साम्राज्य के लिए पहली जद्दोजहद

(१५०९—१५३० ई०)

§१. **राणा साँगा—पच्छिमी मण्डल की राजनीतिक जद्दोजहद १५०९–२० ई०**—उसी साल जब दीव का युद्ध हुआ, मेवाड़ में रायमल का बेटा साँगा और विजयनगर में वीर-नरसिंह का भाई कृष्णदेवराय गद्दी पर बैठे। दोनों योग्य और शक्तिशाली राजा थे। साँगा ने अपने दादा की नीति को पुनरु-

थी। आमू-सीर प्रदेश में तीन छोटे-छोटे राज्य थे। एक समरकन्द का, दूसरा हिसार-बदख्शाँ का जिसकी राजधानी हिसार (आधुनिक स्तालिनाबाद के १२ मील दक्खिन-पच्छिम) थी, तथा तीसरा फ़रगाना का, जिसकी राजधानी अन्दिजान थी। फ़रगाना के शासक उमरशेख के १४८३ ई० में एक बेटा हुआ जो इतिहास में बाबर के नाम से प्रसिद्ध हुआ। राणा साँगा इससे एक साल पहले पैदा हुआ था। तैमूर के पीछे मध्य एशिया में मंगोल सरदारों ने फिर जहाँ-तहाँ सिर उठा लिया था। फ़रगाना के नीचे सीर के काँठे में ताशकन्द तब चंगेज़खाँ के वंशजों की राजधानी थी। बाबर की माँ वहाँ के राजा की बेटी थी। इसी कारण न केवल बाबर और उसके वंशज, प्रत्युत उनके सरदार भी भारत में मुगल अर्थात् मंगोल कहलाते रहे। अगली तीन सदियों में भारत के जो मुगल बादशाह हुए, वे असल में तूरानी (तुर्क) थे। मध्य एशिया के मंगोल भी इस समय तक मुसलमान हो चुके और तुर्कों तथा तुर्किस्तान के पुराने आर्य निवासी ताजिकों में घुल-मिल चुके थे। उनकी शकलें-सूरतें भी बदल कर ताजिकों की सी हो चुकी थीं। पर १४६५ ई० में खालिस मंगोलों की एक नयी शाखा सीर के निचले काँठे में आ गयी। वह अब तैमूरी राज्यों के दिगन्त पर काले बादलों की तरह मंडरा रही थी। इतिहास में वह उज़्बग नाम से प्रसिद्ध है।

जब ११ बरस का कुमार बाबर फ़रगाना की गद्दी पर बैठा, तो तैमूर के वंशज इस उज़्बग आतंक के बावजूद आपस के तुच्छ झगड़ों में उलझे हुए थे। १५०३ ई० तक उज़्बगों के नेता मुहम्मद शैबानी ने समरकन्द और फ़रगाना से तैमूरियों की सत्ता मिटा दी। बाबर को उसने समरकन्द के पास ज़रफ़शाँ नदी के पुल पर ऐसा हराया कि शैबानी का नाम सुन कर बाबर काँप उठता था। उसे अपना देश छोड़ भागना पड़ा। हरात या काबुल जाने के इरादे से वह बदख्शाँ से गुज़र रहा था कि खबरें आने लगीं कि शैबानी उधर भी चढ़ाई करेगा। बदख्शाँ में खलबली मच गयी। वहाँ के अनेक भगोड़े भी बाबर के साथ हो गये। रास्ते के 'ईल-ओ-उलूज़' (पहाड़ी जंगली लोगों) की उस सेना के साथ वह काबुल की ओर बढ़ा।

(इ) **काबुल**—इधर काबुल का शासक बाबर का चाचा मर चुका था (१५०१ ई०)। कन्दहार में तब भी चंगेज़खाँ के वंशजों का राज था। उन मंगोलों ने काबुल ले लिया। हिन्दूकुश को पार कर बाबर काबुल की दून में उतरा, और बात की बात में मंगोल शासक से काबुल छीन लिया (१५०४ ई०)।

(उ) उज़्बग—इसके १० बरस बाद तक भी बाबर का ध्यान पीछे (फ़रगाना) की तरफ़ रहा। इस बीच शैबानी आमू के निचले काँठे—ख्वारिज़्म—को जीत चुका और अराल और बदख़्शाँ के बीच सीर और आमू के सब प्रदेशों को अधीन करने के बाद खुरासान भी ले चुका था (१५०७ ई०)। यों सोलहवीं सदी के शुरू में मध्य एशिया से तैमूरी राजवंश का नाम निशान मिट गया; केवल काबुल की गद्दी पर बाबर के रूप में उसका एक दीपक टिमटिमा रहा था। उसी बरस शैबानी कन्दहार पहुँचा। बाबर उसके आने की खबर सुनते ही काबुल से भाग खड़ा हुआ और जलालाबाद पहुँचा। शैबानी के लौटने की खबर पा वह वहाँ से लौटा और काबुल पहुँचने के बाद उसने बदख़्शां को भी अधीन कर लिया। ये सब घटनाएँ १५०६ ई० से पहले की हैं। उस बरस से ईरान और मध्य एशिया के इतिहास में भी एक नया प्रकरण शुरू हुआ। १५१० ई० में बाबर को खबर मिली कि ईरान के सफ़ावी राजवंश के संस्थापक शाह इस्माइल से हार कर उज़्बग आमू का मैदान छोड़ कुन्दूज़-दून तक हट गये हैं। इसी बीच मर्व के युद्ध में मरते हुए उज़्बग योद्धाओं और उनके घोड़ों के बीच शैबानी कुचल कर मर गया। बाबर शाह के सामन्त रूप में समरकन्द की गद्दी पर बैठा, पर १५१२ ई० में उज़्बगों ने उसे फिर हरा कर बदख़्शाँ की पच्छिमी सीमा (कुन्दूज़ नदी) तक अधिकार कर लिया। अपने देश से अन्तिम विदाई ले १५१३ या १४ ई० में वह फिर काबुल आया और तब से उसने अपना मुँह भारत की तरफ़ फेरा।

(ऋ) बाबर की पंजाब पर चढ़ाइयाँ—अगले पाँच बरस में बाबर ने काबुल के राज्य को सुसंगठित किया। १५१६ ई० में उसने भारत पर पहली चढ़ाई की। प्राचीन कपिश देश का नाम अब काफ़िरिस्तान पड़ चुका था। उसकी पूरबी सीमा कुनार नदी है। कुनार के पूरब बाजौर के लोग भी बाबर के समय तक 'इस्लाम के विद्रोही' (हिन्दू) थे। बाबर ने उनपर चढ़ाई की (१५१६ ई०)। बाजौरियों ने कभी बन्दूक न देखी थी। बाबर के पास बन्दूक के साथ तोपें भी थीं। परिणाम निश्चित था। बाजौर के बाद स्वात पार कर बाबर ने बुनेर जीता, और सिन्ध पार कर नमक की पहाड़ियाँ लाँघते हुए भेरा पर, जो तब जेहलम के दाहिने तट पर था, अधिकार कर लिया।

इस रास्ते में उसकी गक्खड़ सरदारों से अनेक मुठभेड़ें हुईं। तीर-कमान के मुकाबले में बन्दूकों की जीत होनी ही थी। बाबर के मुँह फेरते ही गक्खड़ों ने

विद्रोह किया। उनके दमन के लिए उसने पंजाब पर दो और चढ़ाइयाँ कीं। इन चढ़ाइयों में वह स्यालकोट तक पहुँच गया। उधर उसने कन्दहार भी जीत लिया। तब कन्दहार के मंगोल शासकों ने, जो अरगून कहलाते थे, सिन्ध आ कर सम्मों से वह प्रान्त जीत लिया (१५२१ ई०)। सात बरस बाद उन्होंने पठानों से मुलतान भी ले लिया।

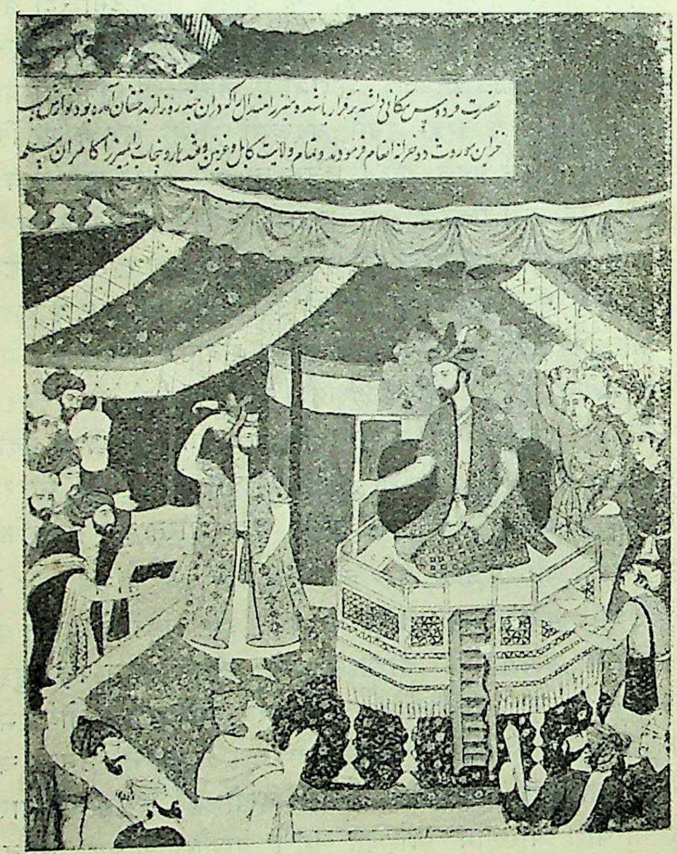

बाबर हिन्दुस्तान की गद्दी पर—सामने हुमायूँ

"तारीखे-खानदाने-तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से। [खुदाब० पु०]

§४. दिल्ली और पूरब की राजनीति १५१७-२५ ई०—इस बीच दिल्ली के पठान राज्य की बड़ी दुर्दशा रही। दुरभिमानी इब्राहीम लोदी ने अपने

अनेक सरदारों को बिगाड़ लिया। पूरब में लोहानी अफ़गानों ने विद्रोह कर बिहार में एक स्वतन्त्र राज्य की नींव डाली (१५२१ ई०)। इसी सीमान्त राज्य में फ़रीद उर्फ़ शेरख़ाँ सूर नाम के एक प्रतिभाशाली पठान को बहारख़ाँ लोहानी के मन्त्री की हैसियत से अपनी शासन-नीति परखने का अवसर मिला। उसी समय हुसेनशाह बंगाली के बेटे नसरतशाह (१५१६-३२ ई०) की सेनाओं ने मिथिला के हिन्दू राज्य की अन्तिम सफ़ाई कर हाजीपुर में छावनी डाली।

§५. **उत्तर भारत का सम्राट् बाबर** (१५२६-३० ई०) (अ) **पंजाब और पानीपत**—उधर पंजाब के हाकिम दौलतख़ाँ लोदी ने भी विद्रोह कर बाबर को बुला भेजा। तभी इब्राहीम लोदी का चचा अलाउद्दीन बाबर के पास पहुँचा और दिल्ली की गद्दी पाने के लिये उससे मदद माँगी। राणा साँगा के दूतों ने भी काबुल पहुँच कर यह प्रस्ताव किया कि दिल्ली राज्य पर बाबर और साँगा एक साथ हमला करें; बाबर दिल्ली तक ले ले और साँगा आगरे तक। इस दशा में बाबर ने पंजाब पर फिर चढ़ाई कर लाहौर और दीपालपुर तक जीत लिया। दूसरे बरस वह जमना तक चढ़ आया। इब्राहीम ने पानीपत पर उसका सामना किया। बाबर के पास ७०० युरोपी तोपें थीं, जिनकी गाड़ियों की पाँतों को चमड़े के रस्सों से बाँध दिया गया था। प्रत्येक जोड़ी के बीच तूरे अर्थात् बड़ी ढालें थीं, जिनके पीछे बन्दूकची तैनात थे। उन तोपों की पंक्तियाँ सेना के आगे-आगे बीच में थीं तोपों को यों बाँधने का तरीका १५१४ ई० में कुस्तुन्तुनियाँ के उस्मानली तुर्कों ने ईरानियों के विरुद्ध युद्ध में बरता था, और बाबर ने यह उन्हीं से सीखा था। पहले-पहल युरोप में बोहीमिया के लोगों ने जर्मन रिसालों का हमला तोड़ने को यह तरीका निकाला था, और उनकी नकल उस्मानली तुर्कों ने की थी। बाबर का सेना-संचालन और साधनों के सामने अफ़गानों की वीरता किसी काम न आयी। चार-पाँच घंटों की लड़ाई में दिल्ली की फ़ौज तहस-नहस हो गयी (२१-४-१५२६)।

(इ) **हिन्दुस्तान**—पानीपत की हार का समाचार पा बहारख़ाँ लोहानी ने अपना नाम सुल्तान मुहम्मदख़ाँ रक्खा, और उसकी नायकता में पूरबी अफ़ग़ान, तुर्कों की बाढ़ रोकने के लिए कन्नौज तक चढ़ आये। पच्छिमी अफ़गानों का नेता हसनख़ाँ मेवाती था; उसने इब्राहीम के भाई महमूद लोदी को दिल्ली का सुल्तान बना कर खड़ा किया। गरमी के मौसम में तुर्कों को आगे बढ़ता न देख

मुहम्मदखाँ बिहार लौट गया। उसके बाद पठानों में अपने घर की फूट प्रकट होने लगी। बाबर के दिल्ली-आगरा दखल कर लेने पर दोआब, अवध और जौनपुर के बहुत से अफ़गान सरदारों ने भी उसे अपनी-अपनी सेवाएँ सौंप दीं। उनकी मदद के भरोसे उसने अपने बेटे हुमायूँ को उसी चौमासे में पूरब की चढ़ाई पर भेजा। हुमायूँ ने पाँच महीने में अवध, जौनपुर और गाज़ीपुर तक जीत लिया।

(उ) **खानवा का युद्ध**—हसनखाँ मेवाती और महमूद लोदी राणा साँगा से जा मिले। बाबर ने जमना के दक्खिन ज्योंही कदम रक्खा कि साँगा से उसकी लड़ाई ठन गयी। वह प्रदेश साँगा का वह उत्तरी सीमान्त था जिसे वह दिल्ली के सुल्तान से छीन चुका था। तो भी वहाँ के किलों के किलेदार सब पुराने ही थे। बाबर ने उनसे मिल कर बयाना, धौलपुर और ग्वालियर के किले ले लिये और बदले में उन्हें दोआब में बड़ी-बड़ी जागीरें दे दीं। साँगा ने तेज़ी से बढ़ कर बाबर की फ़ौज से बयाना छीन लिया। साँगा को इस प्रकार बढ़ता देख बाबर भी आगरा से बढ़ा और सीकरी पर डेरा डाल दिया (११-२-१५२७ ई०)। एक मुगल सेनापति सीकरी से खानवा की ओर बढ़ा, और राजपूतों से बुरी तरह हारा। बयाना की लड़ाई और इस मुठभेड़ के तजरबे से मुगल सेना में त्रास फैल गया। इस विपत्ति ने बाबर की अन्तरात्मा को जड़ तक हिला दिया। उसने शराब छोड़ने का प्रण किया और अपनी सेना के धर्मभावों को उत्तेजित किया। उधर उसने साँगा से सन्धि की बातचीत भी शुरू की। साँगा ने पहली जीत के बाद एकाएक हमला न कर सुलह की बातों में बाबर को महीना भर तैयारी का मौक़ा दे दिया। बाबर ने इस बीच पानीपत की तरह खाई-खन्दकें खुदवा लीं और तोपों को गाड़ियों को रस्सों से बँधवा लिया।

१७ मार्च १५२७ ई० को खानवा के तंग मैदान में लड़ाई हुई। बाबर ने एक अच्छी खासी रक्षित सेना अपने व्यूह के पीछे दोनों किनारों पर अलग रख ली थी। राजपूत सवारों के दल बाबर की आग बरसाने वाली दीवार पर टूटते और कई बार उसके पासों को पीछे ठेल ले जाते थे। इसी समय सिर में एक तीर खा कर राणा मूर्च्छित हो गया, और उसी बेहोशी में उसे पालकी पर पीछे ले जाया गया। उसका स्थान झाला अजा ने ले लिया, और लड़ाई वैसे ही जारी रही। जब सारी राजपूत सेना पूरी तरह लड़ाई में जुट गयी तो बाबर की रक्षित सेना ने तेज़ी से घूम कर चन्दावल (पिछले हिस्से) को घेर कर पीछे से हमला किया। यह मंगोलों

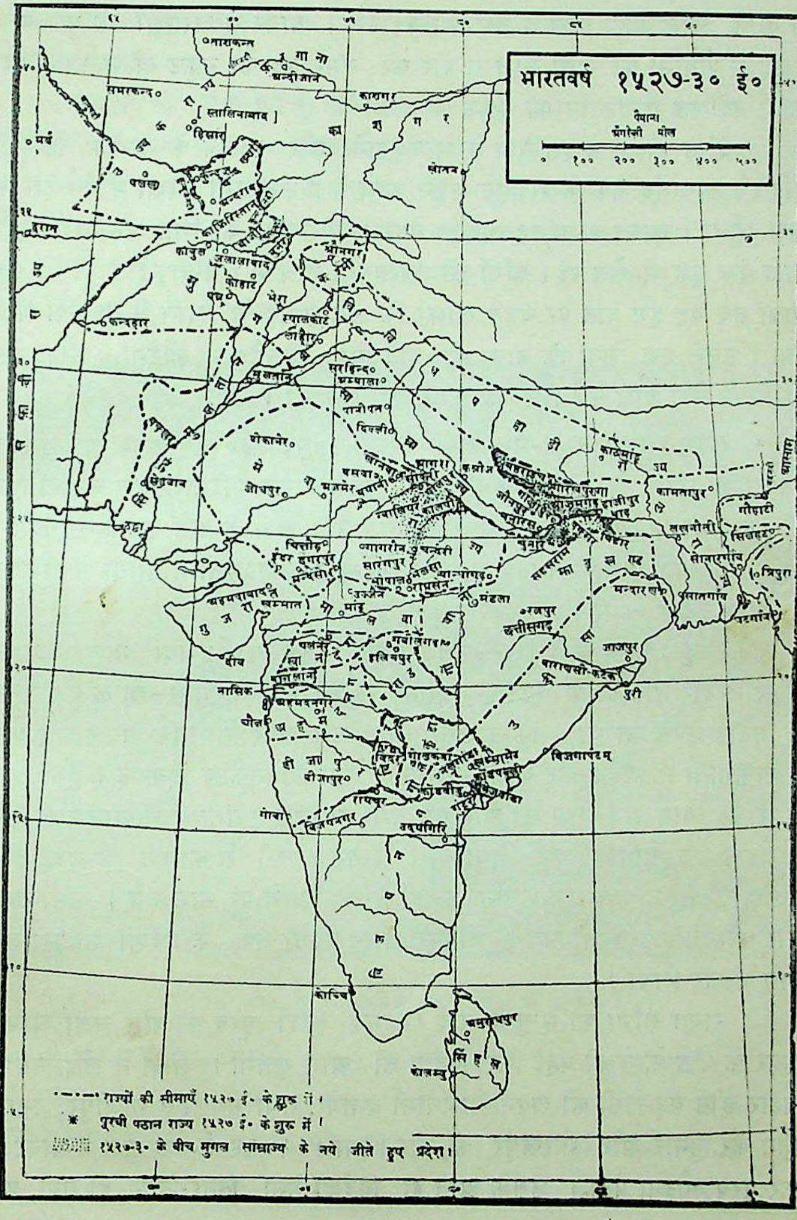
भारतवर्ष १५२७-३० ई०
पैमाना
अँग्रेज़ी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
राज्यों की सीमाएँ १५२७ ई० के शुरू में।
पुरबी पठान राज्य १५२७ ई० के शुरू में।
१५२७-३० के बीच मुगल साम्राज्य के नये जीते हुए प्रदेश।
समरकन्द
फ़रगाना
अन्दीजान
काशगर
खोतन
काबुल
जलालाबाद
कोहाट
कन्धार
स्यालकोट
लाहौर
मुलतान
सरहिन्द
अम्बाला
पानीपत
दिल्ली
बीकानेर
जोधपुर
अजमेर
आगरा
कन्नौज
ग्वालियर
कालपी
जौनपुर
बनारस
हाजीपुर
चुनार
बिहार
चित्तौड़
मन्दसौर
अहमदाबाद
खम्भात
उज्जैन
माँडू
भोपाल
मंडला
रतनपुर
छत्तीसगढ़
जाजपुर
कटक
पुरी
मन्दारण
सातगाँव
सोनारगाँव
त्रिपुरा
गौहाटी
कामतापुर
लखनौती
नासिक
अहमदनगर
चौल
बीजापुर
बिदर
गोलकुंडा
रायचूर
गोआ
विजयनगर
उदयगिरि
विजगापटम्
कोचिन
अनुराधपुर
कोलम्बु
सिंहल
गुजरात
मेवाड़
मालवा
बरार
उड़ीसा
बंगाल
आसाम

की खास चाल थी, जिसे वे तुलुगमा कहते थे। बाबर ने ज़रफ़शाँ के पुल वाली लड़ाई में शैबानी की इसी चाल से हार कर समरकन्द का मुकुट खोया था। अब इसकी बदौलत हिन्दुस्तान का मुकुट मिला।

सांगा की तरफ़ इस युद्ध में राजपूताने और मालवे के प्रत्येक हिस्से के अतिरिक्त अन्तर्वेद तक के राजपूत लड़ने आये थे। उन सभी प्रदेशों में इस हार का धक्का पहुँचा। झाला अज्जा, हसनखाँ मेवाती, मीराबाई का पिता रत्नसिंह राठौर आदि इस युद्ध में खेत रहे। साँगा को जब बसवा गाँव में (बाँदीकुई के पास) होश आया तब वह इस बात पर बहुत खीझा कि उसे लड़ाई के मैदान से दूर क्यों लाया गया। उसने प्रण किया कि बाबर को जीते बिना चित्तौड़ न लौटूँगा, और रणथम्भोर में डेरा डाल कर फिर युद्ध की तैयारी शुरू की।

(ऋ) **राजपूताना-मालवा**—जनवरी १५२८ ई० में बाबर मालवा-राजपूताना की चढ़ाई के लिए निकला और सबसे पहले मेदिनीराय के चन्देरी किले की तरफ़ चला। साँगा भी उसी तरफ़ बढ़ा, पर कालपी के पास उसके साथियों ने, जो युद्ध के विरोधी थे, उसे विष दे दिया। चन्देरी के राजपूतों ने वीरता से लड़ कर अपना बलिदान किया।

(ऌ) **पूरब के प्रदेश**—उसके आगे बाबर का इरादा मालवे के दूसरे प्रमुख सरदार सलहदी के किलों–रायसेन, भेलसा और सारंगपुर–को ले कर मेवाड़ पर चढ़ाई करने का था। किन्तु उसी समय उसे खबर मिली कि अवध और पूरब के अफ़गानों ने विद्रोह कर कन्नौज से मुगल सेना को निकाल दिया है। दूसरे, जब बाबर का ध्यान राजस्थान की ओर था, तभी नसरतशाह बंगाली ने आज़मगढ़ और बहराइच तक अधिकार कर लिया था। बाबर चन्देरी से कालपी के रास्ते सीधा कन्नौज की तरफ़ बढ़ा। अफ़गान विद्रोही उसके आने पर भाग गये। उसी गरमी और चौमासे के शुरू में उसने जौनपुर और बक्सर तक के प्रदेशों को पूरी तरह काबू में कर लिया।

राणा साँगा की मृत्यु के बाद महमूद लोदी पूरब की ओर चला आया। बाबर के पीठ फेरते ही वहाँ फिर विद्रोह की आग सुलगी। लोदी ने लोहानियों से बिहार छीन कर उसी को अपनी राजधानी बनाया, तथा मुगलों से गाज़ीपुर, बनारस छीन कर चुनार और गोरखपुर को घेर लिया। १५२९ ई० के शुरू में बाबर को फिर पूरब लौटना पड़ा। उसके आते ही विद्रोही सेना तितर-बितर हो गयी, और

लोहानी नेता जलाल ने उसे एक करोड़ कर दे कर बिहार की गद्दी पर बैठने की स्वीकृति पायी।

मुगलों की इस तीसरी पूरबी चढ़ाई के समय बंगाली सेना गंडक के चौबीस घाटों को रोके खड़ी थी, और घाघरा-गंडक-दोआब के लिए भी लड़ने को तैयार थी। बाबर जौनपुर से घाघरा की ओर बढ़ा। शत्रु चुस्त बन्दूकची थे, इसलिए उसने सावधानी से तैयारी की। घाघरा पार कर पानीपत और खानवा की तरह उसने बंगालियों को भी पीछे से घेर कर पूरी तरह हरा दिया। एक मास के बाद बाबर और नसरतशाह ने सन्धि कर ली।

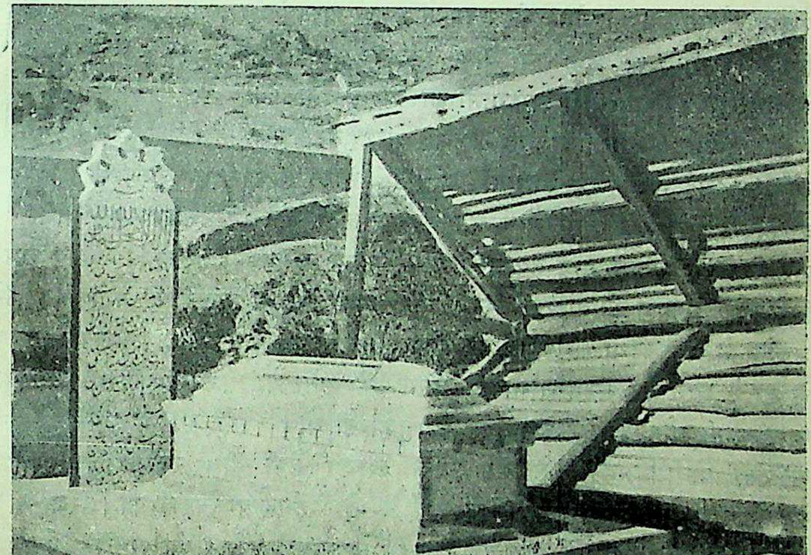

काबुल में बाबर का मक़बरा [फ़ादर हेरस के सौजन्य से]

पानीपत, खानवा और घाघरा की विजयों से बाबर उत्तर भारत का सम्राट् बन गया, और उसका साम्राज्य बदख्शाँ से बिहार तक फैल गया। १५३० ई० में उसका आगरा में देहान्त हुआ और शरीर काबुल ले जा कर दफ़नाया गया।

अध्याय २

साम्राज्य के लिए दूसरी जद्दोजहद और सूर साम्राज्य

(१५३०—१५५४ ई०)

§ १. **बादशाह हुमायूँ—पहली परिस्थिति**—हुमायूँ को जब हिन्दुस्तान की गद्दी मिली, तो उसे अपने भाई कामरान को बदख्शाँ, काबुल, कन्दहार और पंजाब सौंपना पड़ा। यों उसके राज्य में केवल अन्तर्वेद बचा। उसका पिता उसके लिए दो काम अधूरे छोड़ गया था—एक पच्छिम की तरफ़ राजपूताना-मालवा को जीतना और दूसरे पूरब में अफ़गानों का विद्रोह दबाना।

मेवाड़ में साँगा के पीछे उसका छोटा बेटा रत्नसिंह राणा हुआ। रत्नसिंह का बड़ा भाई भोजराज—मीराबाई का पति—साँगा से पहले मर चुका था। खानवा की हार से मेवाड़ के गौरव को भारी धक्का लगा, तो भी उसकी सीमा आगरा के पास से केवल बसवा गाँव तक हटी थी। मालवे के महमूद खिलजी ने अब अपने छिने हुए इलाकों को वापिस लेना चाहा। रत्नसिंह ने मालवे पर चढ़ाई कर उसे उज्जैन से भगा दिया। गुजरात के मुज़फ़्फ़रशाह २य का बेटा बहादुर अपने भाइयों के डर से भाग कर राणा साँगा की शरण में रहता था। साँगा की माँ उसे बहुत प्यार करती और 'बहादुर बेटा' कह कर पुकारती थी। १५२६ ई० में उसने गुजरात की गद्दी पायी। रत्नसिंह से भी उसकी अच्छी मैत्री रही। रत्नसिंह जब उज्जैन से लौट रहा था, उसी समय बहादुरशाह ने भी महमूद पर चढ़ाई की। रत्नसिंह ने सलहदी आदि सरदारों के साथ अपनी बहुत सी सेना उसके साथ कर दी। बहादुरशाह ने महमूद को कैद कर दक्खिनी मालवा (उज्जैन और मांडू) भी उससे छीन लिया (१५३० ई०)।

बाबर के मरने से पहले इधर तो पच्छिम में बहादुरशाह का सितारा चमक उठा, उधर पूरब में उससे भी योग्य एक व्यक्ति प्रकट हुआ। १५२६ ई० में जलालखाँ लोहानी को जब बिहार की सल्तनत वापिस मिली, तो उसने अपने बाप के भूतपूर्व मन्त्री और अपने शिक्षक शेरखाँ सूर को फिर अपना मन्त्री बनाया। बाबर की अन्तिम बीमारी के समय शेरखाँ ने चुनार का क़िला ले लिया।

§२. **बहादुरशाह गुजराती**—१५३१ ई० में राणा रत्नसिंह को उसके एक सरदार ने मार डाला; और १५३२ में नसरतशाह बंगाली भी चल बसा। तब बहादुरशाह और शेरख़ाँ को अपने-अपने मंडल में प्रमुख शक्ति बनने का अवसर मिल गया। उसी समय मालदेव मारवाड़ की गद्दी पर बैठा। मालदेव के पुरखा बदायूँ के राठौड़ थे, जो १३वीं सदी के अन्त में मारवाड़ में आ बसे थे। अब वे राजपूताना में एक राजशक्ति बनने लगे। गुजरात का पुर्तगालियों से सीधा सम्पर्क होने के कारण बहादुरशाह को तोपें और तोपची पाने की मुगलों से भी अधिक सुविधा थी। उसके पड़ोसी राज्य अब सब पस्त पड़े थे। रत्नसिंह के बाद उसका भाई विक्रमाजीत १४ बरस की उम्र में मेवाड़ का राणा बना। उसके छिछोरे स्वाभाव से उकता कर मेवाड़ और मालवे के अधिकांश सरदारों ने उसका साथ छोड़ दिया। उनमें से बहुतों ने अपनी सेवाएँ बहादुरशाह को सौंप दीं। बहादुर ने पूरबी और उत्तरी मालवा (रायसेन, भेलसा, रणथम्भोर आदि) मेवाड़ से ले लिये। मालदेव ने भी उसी समय मेवाड़ के पच्छिमोत्तर के इलाके—अजमेर, नागोर आदि—ले लिये। अन्त में बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर उसे भी लूटा। अलाउद्दीन के बाद यह चित्तौड़ का दूसरा "साका" हुआ। उत्तरी मालवे के जिन प्रदेशों को खानवा-युद्ध के बाद से मुगल अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, उन्हें हुमायूँ के देखते-देखते बहादुरशाह ने ले लिया। इसलिए दोनों में युद्ध ठन गया।

§३. **हुमायूँ का मालवा गुजरात जीतना**—बहादुरशाह चित्तौड़ घेरे हुए था जब हुमायूँ कालपी, चन्देरी, रायसेन होता हुआ उज्जैन पहुँचा (फ़रवरी १५३५ ई०)। चित्तौड़ लेकर बहादुरशाह उसकी तरफ़ बढ़ा। मन्दसोर पर दोनों का सामना हुआ। दो महीने अपनी मोर्चाबन्दी में घिरे रहने के बाद एक रात गुजराती सुल्तान अपनी सेना को किस्मत के हवाले छोड़ कुछ साथियों के साथ भाग निकला। इस तरह गुजरात और मालवा हुमायूँ के हाथ आये, किन्तु अपने भाई अस्करी के विद्रोह के कारण उसे जल्द उत्तर को लौटना पड़ा। उसका पीठ फेरना था कि बहादुरशाह और उसके साथियों ने गुजरात, मालवा और खानदेश को फिर वापिस ले लिया (१५३६ ई०)।

§४. **पुर्तगालियों का तट-राज्य**—बहादुरशाह ने पुर्तगालियों की मदद के बदले उन्हें मुम्बई, साष्टी† और बसई के द्वीप दिये। किन्तु उन्हें किलाबन्दी करते

---

†साष्टी का बिगड़ कर अँगरेजी में साल्सेट बन गया है।

देख कर उसने उन्हें निकालना चाहा और अहमदनगर और बीजापुर के शाहों को भी वैसा करने को लिखा। वे चिट्ठियाँ पुर्तगालियों के हाथ पड़ गयीं। उनका मुखिया नूनो-दा-कुन्हा एक बार दीव आकर बीमार पड़ा था तो बहादुरशाह उसे देखने उसके जहाज़ पर गया। बहादुरशाह जब लौट रहा था तो पुर्तगालियों ने उसकी नाव पर हमला कर उसे मार डाला (१५३७ ई०)। महमूद बेगड़ा पुर्तगालियों की समुद्र पर प्रभुता न रोक पाया था, अब उसका पोता उन्हें तट-प्रदेश से भी निकालने में विफल हुआ। करंजा से बुलसाड तक कोंकण के उपजाऊ तट को काबू कर पुर्तगालियों ने उसे अपना 'उत्तरी प्रान्त'* बनाया और उसकी राजधानी बसई में रक्खी। इसी समय स्पेनवालों ने मेक्सिको और दक्खिन अमेरिका में अपना साम्राज्य स्थापित किया (१५१६-३६ ई०)।

§५. **बिहार का बेताज बादशाह शेरखाँ**—नसरतशाह की मृत्यु पर उसका भाई महमूद उसके बेटे को मार कर बंगाल की गद्दी पर बैठा। नसरतशाह का दामाद मखदूम-ए-आलम उसकी तरफ़ से हाजीपुर का सर-ए-लश्कर था, उसने महमूद को बादशाह न माना। मखदूम ने शेरखाँ को अपना मित्र बना लिया था। महमूदशाह ने उन दोनों से लड़ाई छेड़ी। मखदूम मारा गया। बिहार के सब जागीरदार अब शेरखाँ के विरोधी हो गये थे, क्योंकि उसने उनकी ज़मीनें नाप कर उन्हें राज्य-कर का ठीक हिस्सा देने को मजबूर किया, उनके सब कोटले ढहा दिये, और उनके लिए प्रजा पर जुल्म करना असम्भव कर दिया था। फल यह हुआ कि प्रजा तो शेरखाँ के शासन को राम-राज्य मानने लगी, पर सरदार उसके जानी दुश्मन बन गये। बिहार में उसकी वही हालत हो गयी जो मेदिनीराय की मालवे में हुई थी। शेरखाँ के खिलाफ़ सरदारों ने सुल्तान जलाल लोहानी के कान भरने शुरू किये। जलाल लोहानी अपने मन्त्री के शिकंजे से बचने के लिए महमूदशाह बंगाली की शरण में भाग गया। वहाँ से बंगाली फ़ौज के साथ उसने शेरखाँ पर चढ़ाई की। बंगाल-बिहार के बीच के तंग पहाड़ी रास्ते के पच्छिमी मुँह पर किऊल नदी के किनारे सूरजगढ़ पर थोड़ी सी सवार सेना से शेरखाँ ने बंगाली फ़ौज को हरा दिया (१५३४ ई०)। उस जीत से वह बिहार का बेताज बादशाह हो गया। बादशाह बनने के प्रलोभन से बच कर वह हुमायूँ का खुतबा पढ़ता रहा। किसानों की खुशहाली के लिए सावधान रहने और सेना

---

* दक्खिनी प्रान्त गोवा का था।

को नियम से वेतन देने के विषय में उसकी दूर-दूर तक प्रसिद्धि हो गयी। उसकी सेना शुरू में अफ़गान सवारों की थी। अब उसने बिहार में किसानों की एक पैदल सेना तैयार करके उसे बन्दूकों से सुसज्जित किया। शेरख़ाँ के ये बक्सरिये बन्दूकची १८वीं सदी के अन्त तक प्रसिद्ध रहे, और फिर उन्हीं की भरती से अँगरेज़ों की वह सेना बनी जिसने उन्हें समूचा भारत जीत दिया।

§६. शेरख़ाँ का बंगाल जीतना—हुमायूँ की मालवा की चढ़ाई के समय शेरख़ाँ ने अपना राज बढ़ाने का अच्छा अवसर देखा। मुँगेर और भागलपुर ज़िलों पर धीरे-धीरे कब्ज़ा कर उसने गौड़ पर चढ़ाई की। महमूदशाह ने १३ लाख अशर्फ़ियाँ दे कर उसे विदा किया। इस रकम से वह नयी फ़ौज तैयार हुई जिससे दो बरस पीछे उसने महमूद को बंगाल से निकाल भगाया।

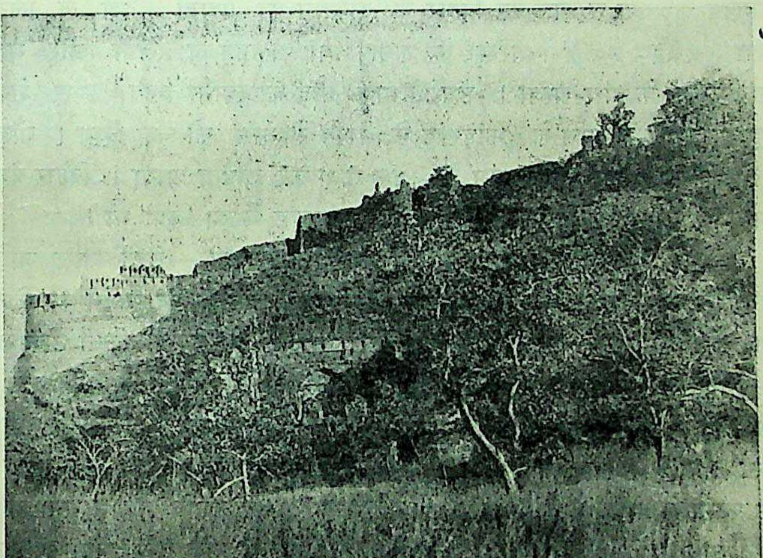

रोहतासगढ़—कथूटिया दरवाजा और बुर्ज [भा० पु० वि०]

§७. हुमायूँ की शेरख़ाँ पर चढ़ाई और बंगाल जीतना—हुमायूँ के मालवे से लौट आने पर शेरख़ाँ चुप बैठ गया। पर इसी बीच महमूद ने गोवा के पुर्तगाली गवर्नर से मदद माँगी। पुर्तगाली लोग पहले-पहल सन् १५३३ ई० में

चटगाँव में उतरे थे। शेरख़ाँ को अब यह ज़रूरी मालूम हुआ कि पुर्तगाली मदद आने से पहले वह अपने शत्रु से निपट ले। उसने गौड़ का किला घेर कर अपनी सेना की टुकड़ियों से बंगाल के प्रत्येक ज़िले पर दखल कर लिया।

इस दशा में हुमायूँ शेरख़ाँ के खिलाफ़ रवाना हुआ। शेरख़ाँ गौड़ पर विश्वस्त सेनापतियों को छोड़ झट चुनार आया और उस किले में खूब रसद-बारूद जमा करके उससे मुगलों को जब तक बने वहीं रोकने का प्रबन्ध किया। हुमायूँ शेरख़ाँ के फन्दे में फँस चुनार को सर करने में लग गया। उधर शेरख़ाँ अपने लिए एक नया आधार और नया रास्ता बनाने लगा। सहसराम से और ऊपर सोन के किनारे रोहतास का विकट पहाड़ी गढ़ था। शेरख़ाँ ने रोहतास के राजा से शरण माँगी, और शरण पाने पर धोखे से उस गढ़ को हथिया लिया। तब उसने झाड़खंड के राजा से लड़ कर बिहार के दक्खिन का पहाड़ी प्रदेश ले लिया। अप्रैल (१५३८ ई०) में शेरख़ाँ के सेनापतियों ने गौड़ ले लिया और मई में चुनार मुगलों के हाथ आया। उधर हुमायूँ गौड़ को रवाना हुआ, इधर शेरख़ाँ गौड़ की अतुल सम्पत्ति ले झाड़खंड के रास्ते रोहतास को चल दिया। गौड़ के महलों को वह हुमायूँ के आराम के लिए सजा कर छोड़ता आया। बिहार-बंगाल दोनों अब हुमायूँ के हाथ में थे, और शेर झाड़खंड में जा छिपा था।

§८. बंगाल और जौनपुर का बादशाह शेरशाह—उसी साल जाड़े में शेरख़ाँ ने झाड़खंड से निकल कर समूचे बिहार और जौनपुर पर कब्ज़ा कर लिया। प्रजा और किसानों को लूटने के बजाय उसने मालगुज़ारी की दो किस्तें ठीक समय पर उगाह लीं। दिल्ली-आगरे का बंगाल से सम्बन्ध टूट गया। हुमायूँ गौड़ से रवाना हुआ, तो शेरख़ाँ ने अपनी सेनाएँ रोहतास में समेट लीं। कर्मनाशा नदी पर चौसा गाँव के पास उसने हुमायूँ का रास्ता रोका। शेरख़ाँ का चरित्र उस समय की एक घटना से प्रकट होता है। एक दिन जब मुगल दूत उसके डेरे में गया तो वह अपने साधारण सिपाहियों के साथ फावड़ा लिये खन्दक खोदने में लगा था! उसी हालत में ज़मीन पर बैठ कर उसने दूत से बातचीत की। सन्धि की बातचीत विफल हुई। शेरख़ाँ ने एक रात चुपके से कर्मनाशा पार कर बड़े सवेरे, जब मुगल सेना सो रही थी, उसपर हमला कर दिया। हज़ारों मुगल अफ़गानों के हाथ मारे गये और गंगा की धार में डूब गये। हुमायूँ एक भिश्ती की मदद से मुश्किल से बच कर भागा। बंगाल, बिहार, जौनपुर और अवध पर शेरख़ाँ का पूरा अधिकार हो गया। अब वह

शेरशाह के नाम से गौड़ की गद्दी पर बैठा (१५३६ ई०)। हुमायूँ के पास सिर्फ़ दोआब, सम्भल तथा जमना का दाहिना काँठा बच गया।

§९. शेरशाह का हिन्दुस्तान और पंजाब जीतना—सन् १५३३ ई० में बाबर के मौसेरे भाई मिर्ज़ा हैदर ने काशगर के सुलतान के साथ उत्तर की तरफ़ से कश्मीर पर चढ़ाई की थी। उन दोनों को हार कर भागना पड़ा था। मिर्ज़ा हैदर अब हुमायूँ के पास आ गया। हुमायूँ ने अपने भाई कामरान से बड़ी मिन्नतें की कि वह भी उसे शेरशाह के खिलाफ़ मदद दे। लेकिन कामरान ने उसकी एक न सुनी। उन्हें आपस में झगड़ते देख शेरशाह ने तमाम मुगलों को भारतवर्ष से निकालने की ठानी। हुमायूँ उसके मुकाबले को एक भारी फ़ौज ले कर आया। कन्नौज पर दोनों दल आमने-सामने हुए। हुमायूँ ने गंगा पार कर पानीपत और खानवा की तरह अपनी सेना का व्यूह बनाया। जंजीरों से बँधी तोपगाड़ियों की विकट पाँत मिर्ज़ा हैदर के नेतृत्व में सामने बीचोंबीच थी। शेरशाह ने तोपों के जमने से पहले ही मुगल सेना के दोनों पासों पर ज़ोर का धावा बोल दिया। जैसे ही वे पासे टूटे कि उसके रिसाले ने उन्हें घेर कर मुगल चन्दावल के साथ उनके केन्द्र की तरफ़ ढकेला। यह भागती हुई भीड़ तोपखाने की जंजीरों पर ज़ा पड़ी और उनकी पंक्ति को तोड़ती-फोड़ती आगे निकल गयी। मुगलों की डरावनी तोपों को एक भी गोला फेंकने का अवसर न मिला। अफ़गानों के हमले के पहले वे जमने भी न पायी थीं, और अब उनके सामने अपनी ही सेना के भगोड़े थे! हुमायूँ जान बचा कर आगरे की तरफ़ भागा (१७-५-१५४० ई०)।

शेरशाह ने पंजाब तक मुगलों का पीछा किया। ग्वालियर के मुगल सेनापति ने वह किला न छोड़ा, इसलिए उसपर घेरा डाल दिया गया। पंजाब से कामरान ने काबुल की राह ली और हुमायूँ सिन्ध की तरफ़ भाग गया। मिर्ज़ा हैदर कश्मीर में घुसा, और इस बार वहाँ के एक दल के साथ मिल कर राज्य पर अधिकार कर लिया। कश्मीर और काबुल दोनों से पंजाब उतरने वाले रास्ते नमक-पहाड़ियों में मिलते हैं। इसलिए शेरशाह ने गक्खड़ों के इस देश को पूरी तरह काबू करने के विचार से उसके ठीक केन्द्र में रोहतास नाम का गढ़ बनवाना शुरू किया। वह काम उसने टोडरमल को सौंपा, जो लाहौर में उसकी सेवा में आया था।

§१०. राजस्थान में मालदेव का प्रबल होना—शेरशाह के विस्तृत साम्राज्य का दक्खिनी छोर—राजपूताना, मालवा और बुन्देलखण्ड की तरफ़—

बिल्कुल अरक्षित था। बहादुरशाह की मृत्यु के बाद से गुजरात-मालवा में कई छोटे-छोटे सुल्तान और राजा उठ खड़े हुए थे। मेवाड़ की हालत और भी खराब थी। वहाँ कई घरेलू लड़ाइयों के बाद राणा साँगा के छोटे बेटे उदयसिंह को गद्दी मिली थी। पच्छिमी भारत की प्रमुख शक्ति अब मालदेव के हाथ में थी। राज पाने के पाँच बरस के अन्दर उसने दक्खिन की तरफ़ आबू तक, उत्तर की तरफ़ आधुनिक बहावलपुर, नागोर, बीकानेर और झज्झर तक तथा पूरब की तरफ़ अजमेर को लेते हुए बनास नदी और कछवाड़ा (आम्बेर राज्य) के अन्दर तक अपना राज्य फैला लिया था। हुमायूँ जब बिहार-बंगाल में उलझा था, तब मालदेव ने टोंक से चम्बल के काँठे की तरफ़ बढ़ना शुरू किया। अब उसने हुमायूँ के पास सिन्ध में निमन्त्रण भेजा कि उससे मिल कर वह मालवे की तरफ़ से हिन्दुस्तान पर चढ़ाई करे। ग्वालियर के किले में तब तक कुछ मुगल फ़ौज थी ही। पर हुमायूँ के दिमाग में सिन्ध और गुजरात को जीत कर गुजरात से फिर हिन्दुस्तान जीतने की धुन समायी थी। चुनाँचे साल भर वह सिन्ध के किलों से टक्करें मारता रहा।

§ ११. **शेरशाह की साम्राज्य-वृद्धि (अ) मालवा**—इसी बीच ग्वालियर की मुगल सेना ने आत्म-समर्पण किया, और शेरशाह ने मालवे पर पूरा अधिकार कर लिया। उधर सिन्ध में विफल होने पर हुमायूँ को मालदेव के निमन्त्रण की याद आयी, और उत्तरी सिन्ध से वह फलोदी आ पहुँचा। खबर पाते ही शेरशाह फ़ौज ले कर मालदेव के राज्य में डीडवाणे तक घुस आया, और सन्देश भेजा कि या तो हमारे शत्रु को स्वयम् निकालो, नहीं तो हमें निकालने दो। मालदेव को अब हुमायूँ को खदेड़ना पड़ा और उसके उमरकोट को रवाना हो जाने पर शेरशाह वापिस हुआ।

(इ) **पूरबी मालवा और मुलतान-सक्खर**—किन्तु मालदेव की शक्ति अभी टूटी न थी। पूरबी मालवा में रायसेन का सरदार अब सलहदी का बेटा पूरणमल चौहान था। मालदेव और पूरणमल कभी साँगा और मेदिनीराय की तरह आपस में मिल सकते थे। शेरशाह ने रायसेन पर चढ़ाई की, और सात महीने के सख्त घेरे के बाद उसे ले लिया। उधर उसके सेनापतियों ने मुलतान और सक्खर भी जीत लिये। मालवा, मुलतान और सक्खर जीते जाने से मालदेव तीन तरफ़ से घिर गया। अब से शेरशाह का ध्येय यह रहा कि उसे जीत कर सिन्ध को मालवे से और फिर बुन्देलखंड जीत कर मालवे को रोहतास-झाड़खंड से मिला दिया जाय।

(उ) **राजपूताना**—इसी उद्देश से उसने पहले मालदेव पर चढ़ाई की (१५४४ ई०)। दिल्ली से सीधे जोधपुर जाने के लिए उसने मरुभूमि की राह पकड़ी। मेड़ताँ के नाके पर उसे रुकना पड़ा। मालदेव ने राणा साँगा की तरह शत्रु के तोपखाने पर अपने सवारों को झोंक नहीं दिया। वह इतना सावधान था कि शेरशाह कोई भी चाल न चल सका। लड़ाई में जीतने का कोई रास्ता शेरशाह को न दीखा, तो उसने मालदेव के सरदारों के नाम जाली चिट्ठियाँ लिख कर उसके वकील के खेमे में डलवा दीं, जिनसे उसे भ्रम हो कि उसके सरदार शत्रु से मिल रहे हैं। इस तुच्छ चाल से मालदेव बहक गया और अपनी परछाहीं से डर कर भाग निकला। उसके सरदारों ने बहुत मनाया, पर सब व्यर्थ। तब १२ हज़ार राजपूत केसरिया बाना पहन कर लड़ाई में उतरे और अपने खून से उस कलंक को धो डाला। उनकी वीरता देख कर शेरशाह के मुँह से अनायास निकला—"मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की बादशाहत खोने लगा था!" अजमेर, आबू, जोधपुर, जहाजपुर बिना युद्ध के शेरशाह के हाथ आये, और चित्तौड़ ने अधीनता मानी। राजपूताने में शेरशाह ने अपना बन्दोबस्त करने या स्थानीय सरदारों को उखाड़ने का जतन न किया; केवल अजमेर आदि नाकों को अपने काबू में रख कर राजपूत राज्यों को एक दूसरे से अलग कर दिया।

(ऋ) **बुन्देलखंड**—राजपूताने से छुट्टी पाकर उसने कालंजर पर चढ़ाई की और उस किले को घेर लिया। अपने एक सेनापति को वहाँ से पूरब रीवाँ के इलाके पर काबू करने के लिए भेजा। ७ महीने के घेरे के बाद एक दिन बारूद में आग लगने से शेरशाह की देह जल गयी। उसी साँझ को किला लिये जाने के बाद उसने अपने प्राण छोड़ दिये (१५४५ ई०)।

§१२. शेरशाह के समकालीन भारतीय राज्य—शेरशाह की मृत्यु के समय उसका साम्राज्य कन्दहार, काबुल और कश्मीर की सीमाओं से कूचबिहार की सीमा तक पहुँच गया था। पूरबी मालवे के जीत जाने पर सूर साम्राज्य की सीमा गढ़-कटंका राज्य से जा लगी थी। यदि पूरा उत्तरी बुन्देलखंड भी जीता जाता तो उस तरफ़ भी दोनों की सीमाएँ मिल जातीं। वहाँ संग्रामशाह के बाद उसका बेटा दलपतिशाह गद्दी पर बैठ चुका था (लगभग १५४१ ई०)। उसी समय उड़ीसा के राजा प्रतापरुद्रदेव की मृत्यु हुई और वहाँ सूर्य वंश का अन्त

हो कर एक नया वंश शुरू हुआ। विजयनगर में कृष्णदेवराय के बाद उसके भाई अच्युतदेव ने राज्य किया (१५३०-४२ ई०); उसके समय में भी विजयनगर की शक्ति और समृद्धि ज्यों की त्यों बनी रही। दक्खिनी रियासतें यथापूर्व थीं, पर गुजरात में अराजकता छायी हुई थी।

§१३. शेरशाह का शासन-व्यवस्था—अनेक शताब्दियों बाद शेरशाह के शासन में भारतवर्ष ने वह शान्ति देखी जो उसे राजा भोज के बाद से न मिली थी। शेरशाह की विजयिनी सेनाएँ जिस देश से लाँघ जातीं, वहीं छः महीने के अन्दर भूमि का माप-बन्दोबस्त हो जाता, सड़कें निकल जातीं, टकसालें खुल जातीं, और अमन-चैन स्थापित हो जाता। तुर्क विजेताओं ने जैसे हिन्दू मन्दिरों के शिखर तोड़ कर कुछ ऊपरी फेरफार कर अपनी मस्जिदें और इमारतें खड़ी की थीं, वैसे ही उन्होंने हिन्दू शासन के जीर्ण ढाँचे के ऊपर अपना आधिपत्य बैठा दिया था। वह ढाँचा उसके बोझ से दब कर बैठ रहा था। शेरशाह ने उसमें फिर जान फूँकी, और जड़ से एक नयी शासन-योजना खड़ी की। उस योजना की बुनियाद उसने परगनों को बनाया। परगने या प्रतिजागरणक मध्य युग की हिन्दू शासन-योजना के पुराने विभाग थे। शेरशाह ने अपने सारे साम्राज्य को परगनों में बाँट कर प्रत्येक परगने में एक शिकदार और एक आमिन नियुक्त किया। शिकदार का काम शान्ति रखना और आमिन का काम कर वसूल करना था। प्रत्येक परगने में अनेक गाँवों की पंचायतें थीं, जिनके अन्दर की स्वतन्त्रता में शेरशाह ने दखल नहीं दिया। अनेक परगनों को मिला कर एक सरकार बनती थी जो आजकल के ज़िले की तरह होती थी। प्रत्येक सरकार में एक हज़ार से पाँच हज़ार तक सेना के साथ एक शिकदार-ए-शिकदारान और एक मुन्सिफ़-ए-मुन्सिफ़ान रहता था। वह मुख्य मुन्सिफ़ दीवानी मामलों को देखता था; मालगुज़ारी के मामले में परगने के आमिन का सीधा सम्बन्ध बादशाह से रहता था। फ़ौजदारी मामलों का निपटारा शिकदार-ए-शिकदारान करता था। परगनों और सरकारों के हाकिमों की दूसरे बरस बदली हो जाती थी। बंगाल के सब सरकारों के ऊपर केवल निरीक्षक रूप से एक आमिन रक्खा गया था; किन्तु पंजाब, मालवा आदि सीमा पर के प्रान्तों में फ़ौजी हाकिम रक्खे गये थे।

शेरशाह का सब से बड़ा सुधार मालगुज़ारी-विषयक था। पहले सुल्तान अपने सेनानायकों को जागीरें बाँट देते थे और उन जागीरों से कर वसूल कर

अपने सैनिकों को पालने का ज़िम्मा उन पर छोड़ देते थे। कर प्रायः अनुमान से लिया जाता था। शेरशाह ने सैनिकों को सीधा नकद वेतन देना शुरू किया। उसके अमलें सब जगह ज़मीनों को नाप कर उनकी मालगुज़ारी निश्चित करते थे। यह नाप और बन्दोबस्त हर साल होता था। पैदावार का चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था। किसानों को अधिकार था कि कर जिन्स या रुपया किसी भी रूप में दें। किसानों के साथ सीधा बन्दोबस्त करने की यह पद्धति समूचे मुगल युग में 'टोडरमल के बन्दोबस्त' के नाम से जारी रही।

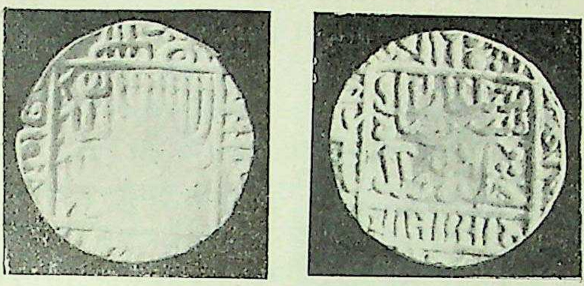

आगरा टकसाल का शेरशाह का रुपया। चित, क़लमा और टकसाल का नाम; पट, फ़ारसी में बादशाह का नाम, नीचे नागरी में स्री सीरसाह। [श्री० सा० सं०]

कर की वसूली नियमित करने के लिए देश की मुद्रा-प्रणाली को सुधारना भी ज़रूरी था। शेरशाह ने पेचीदा गणना के और मिश्रित धातुओं के अनेक सिक्कों को बन्द कर दिया, तथा सोने चाँदी और ताँबे के ठीक अनुपातों का निश्चय कर एक नयी सरल मुद्रा-प्रणाली शुरू की, और उसके प्रचार के लिए जगह-जगह टकसालें स्थापित कीं। इस तरह सिन्ध से बंगाल तक एक सा सिक्का चलने लगा। हमारा आजकल का रुपया शेरशाह के रुपये के नमूने पर बना है। उसके सिक्कों पर नागरी और फ़ारसी में उसका नाम खुदा रहता था। उसके कई सिक्के स्वस्तिका के चिह्न वाले भी पाये गये हैं। सिक्कों के इस सुधार से व्यापारियों को बड़ी सुविधा हो गयी। इसके अलावा देश के रास्तों और घाटों पर जगह-ब-जगह जो अनेक किस्म की चुंगियाँ उन्हें देनी पड़ती थीं, उन सब को शेरशाह ने उठा दिया। केवल सीमान्त तथा बिक्री के स्थान पर चुंगी बाकी रह गयी।

व्यापार की उन्नति को वैसा ही प्रोत्साहन शेरशाह की सड़कों और सरायों से मिला। उसकी बनवायी हुई सड़कें प्रसिद्ध हैं। उनमें सब से मुख्य—"सड़के आज़म"—वह थी जो सोनारगाँव से रोहतास हो कर अटक तक चली गयी थी।

दूसरी आगरे से मांडू हो कर बुरहानपुर तक पहुँचती थी—अर्थात् हिन्दुस्तान को दक्खिन से मिलाती थी। तीसरी आगरे को जोधपुर और चित्तौड़ से मिलाती तथा चौथी लाहौर से मुल्तान को जाती थी। सब सड़कों पर सरायें बनायी गयी थीं। प्रत्येक सराय में हिन्दू और मुस्लिम राहियों के लिए भोजन और पानी का इन्तज़ाम रक्खा जाता था। वे सरायें डाक-चौकियों का भी काम देती थीं। सड़कों और डाक के इस प्रबन्ध से साम्राज्य के कोने-कोने की खबरें लगातार शेरशाह को मिलती रहती थीं, और सेनाओं के आने-जाने में बड़ी सुविधा होती थी।

शेरशाह का स्वस्तिका छाप वाला रुपया [दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

शेरशाह का न्याय प्रसिद्ध था। एक साधारण स्त्री की फ़रियाद पर अपने बेटे को उसने कड़ा दंड दिया था। न्याय करने वाले हाकिमों की रहनुमाई के लिए उसने कई कानून और आईन भी बनाये थे। उसके बेटे इस्लामशाह के शासनकाल में राजकीय कानून और भी अधिक बने। इस प्रकार शेरशाह ने कानून और आईन को शरीयत के बन्धन से मुक्त कर दिया।

शेरशाह का सेना-संगठन भी अत्यन्त पूर्ण था। सेनानायकों को नकद वेतन नियमित रूप से मिलता था। साधारण सैनिकों की नियुक्ति भी बादशाह की तरफ़ से होती थी। सैनिकों को वेतन भी बादशाह के द्वारा ही मिलता था। अकबर ने शेरशाह की शासन-व्यवस्था की प्रायः सब बातों में नकल की, पर वह सेनानायकों (मनसबदारों) की नियुक्ति खुद करता था और सैनिकों की नियुक्ति उन पर छोड़ देता था। सैनिकों का वेतन भी अकबर के ज़माने में मनसबदार की मारफ़त दिया जाता था। यह प्रथा अकबर के बाद समूचे मुगल युग में जारी रही। इसमें यह दोष था कि सैनिक मनसबदार को अपना सब कुछ समझते थे और यदि कभी वह बलवा करे तो उसके साथ वे भी बलवे में शामिल हो जाते थे। शेरशाह की पद्धति में यह दोष न था। सेनाएँ छावनियों में रहती थीं। छावनियों के फ़ौजदारों का अपने इलाकों के शासन से कोई वास्ता न था; हाँ, कुछ सीमान्त

प्रदेशों के फ़ौजदारों को शिकदार का काम भी सौंपा गया था। शेरशाह की पैदल बन्दूकची सेना सब भोजपुरी (बक्सरिये) किसानों की थी। उसका एक तोपची दल भी था, और बहुत सी तोपें उसने स्वयम् ढलवायी थीं।

शेरशाह का अपनी फ़ौज पर कड़ा नियन्त्रण रहता था। झगड़ालू खूँख्वार पठानों को सुशृंखल सैनिक बनाना उसी का काम था। सेना के प्रयाण के समय क्या मजाल कि प्रजा को ज़रा भी कष्ट पहुँचे। ऐसी सख्ती होने पर भी शेरशाह के सैनिक उससे बड़ा स्नेह करते थे। इसका कारण यह था कि वह उनकी मेहनत और मुसीबत में उनका शरीक होता था, उनसे भाई का सा बर्त्ताव करता था और उनके गुणों को तुरन्त पहचान कर उन्हें उचित पुरस्कार देता था।

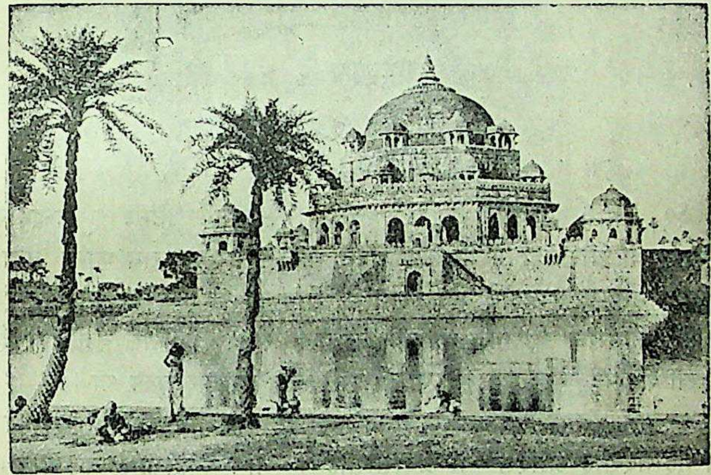

शेरशाह का मक़बरा, सहसराम

शेरशाह के चरित्र की छाप उसकी इमारतों पर भी है। सहसराम में उसका मक़बरा, जो उसके आदेशानुसार बना था, उसकी सुरुचि का सुन्दर नमूना है। शेरशाह ने कई नये शहर भी आबाद किये। उसने पटना का पुनरुद्धार किया और शेरगढ़ नाम से पाण्डवों के इन्दरपत गाँव में अपनी नयी दिल्ली बसायी। हिन्दी साहित्य को उसके राज्य में विशेष प्रोत्साहन मिला। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपना प्रसिद्ध काव्य पदुमावति 'सेरसाहि देहिली सुलतानू' के समय में लिखा। शेरशाह की गिनती भारतवर्ष के सच्चे राष्ट्र-निर्माताओं में है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§१४. इस्लामशाह सूर (१५४५-५४ ई०)—शेरशाह की मृत्यु पर **अफ़गान नेताओं ने** उसके दूसरे बेटे जलालखाँ को इस्लामशाह या सलीमशाह के नाम से गद्दी पर बैठाया। उसने अपने बड़े भाई को कैद करना चाहा। तब शेरशाह के समय के अनेक सरदार उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनके दमन के लिए इस्लामशाह को अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसी सिलसिले में उसने शिवालक और कुमाऊँ तराई के कई हिन्दू राजाओं को भी अधीन किया। इस्लामशाह के नौ बरस के शासन में शेरशाह की शासन-नीति जारी रही।

कश्मीर में मिर्ज़ा हैदर ने दस बरस राज किया। १५५१ ई० में प्रजा ने उसे और उसके मुगलों को निकाल भगाया, और फिर पुराने राजवंश को स्थापित किया।

अध्याय ३

साम्राज्य के लिए तीसरी जद्दोजहद

(१५५५-७६ ई०)

§१. हुमायूँ की वापिसी (१५५५ ई०)—हुमायूँ सिन्ध से कन्दहार की तरफ़ भागा था और वहाँ से भी उसे अपने भाई के डर से ईरान जाना पड़ा था। शेरशाह की मृत्यु के ४ महीने बाद ईरान के शाह की मदद से उसने कन्दहार जीत लिया, और कामरान से काबुल भी छीन लिया। १५५० ई० तक वह फिर दो बार काबुल खो कर पा चुका तथा बदख़शाँ पर भी अधिकार कर चुका था।

इस्लामशाह के बाद उसके नाबालिग बेटे को मार कर शेरशाह का एक भतीजा मुहम्मदशाह आदिल या अदालीशाह के नाम से सुल्तान बन बैठा। इस घटना से सूर साम्राज्य में खलबली मच गयी। बिहार-बंगाल के पठान शासकों ने स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। उसी जाड़े में हुमायूँ ने लाहौर जीत लिया। अदाली ने हेमचन्द्र नामक एक मेवाती को अपना मन्त्री बना कर उसकी मदद से विद्रोह दबाने की चेष्टा की। हेमू पूरबी विद्रोह को दबाने में लगा था जब दूसरे सूर-वंशजों ने दिल्ली-आगरा ले लिए। अदाली ने चुनार को अपनी राजधानी बनाया।

हुमायूँ ने दिल्ली पर दखल कर लिया, और अपने १३ बरस के बेटे **अकबर** को सेनापति बैरामखाँ की संरक्षकता में पंजाब का हाकिम नियुक्त किया। फिर से दिल्ली में ६ महीने शासन करने के बाद वह चल बसा।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§२. अकबर का राज पाना, सूर साम्राज्य का अन्त (१५५६–५८ ई०)—हुमायूँ की वसीयत के अनुसार पंजाब और दिल्ली अकबर को मिले, और काबुल उसके छोटे भाई मुहम्मद हकीम को। हुमायूँ के मरने की खबर पा अदाली ने हेमू को दिल्ली जीतने भेजा। ग्वालियर, आगरा और दिल्ली से मुगलों को भगा और स्वयम् अपना राजतिलक करवा हेमू पंजाब की तरफ़ बढ़ा। मुगल अब फिर भागने लगे, पर बैरामखाँ मुकाबले के लिए डट गया। पानीपत की भूमि पर युद्ध हुआ (५–११–१५५६ ई०)। हेमू ने मुगल सेना के दोनों पासे तोड़ दिये, पर सिर में तीर लगने से वह घायल हो कर कैद हो गया। दिल्ली और आगरा इस जीत से अकबर के हाथ आये। उधर अदाली सूर बिहार और बंगाल के अपने 'विद्रोही' सरदारों से लड़ता हुआ मारा गया। ग्वालियर और जौनपुर तक तब मुगलों ने फिर दखल कर लिया।

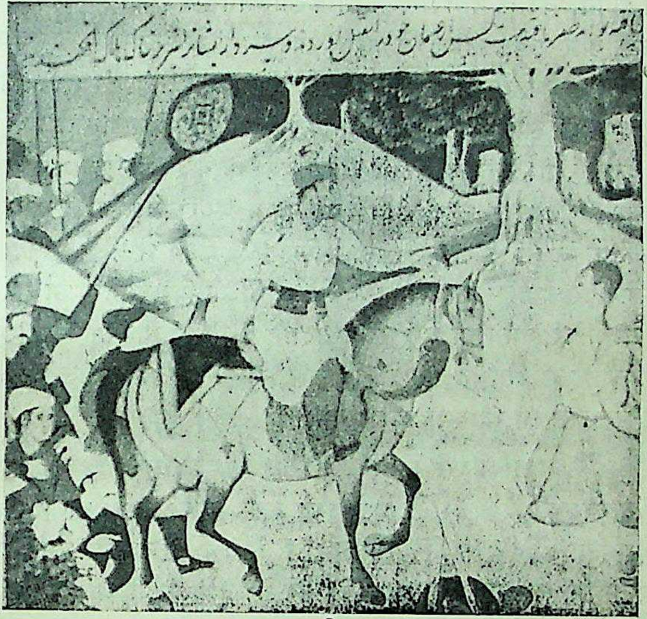

अकबर— समकालीन चित्र

"तारीख़ ख़ानदाने तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से [खुदा० पु०]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§३. अन्य भारतीय राज्य, १५४२-५८ ई०—बिहार-बंगाल और मालवे में सूर साम्राज्य के खण्ड अब भी बाकी थे। मालवे में शेरशाह के हाकिम शुजाअतखाँ का बेटा बाज़बहादुर स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा था (१५५५ ई०)। उसने रूपमती नाम की एक सुन्दरी से ब्याह किया। बाज़बहादुर और रूपमती युद्ध और शिकार में साथ-साथ यात्रा करते थे। उनके पड़ोस में, गोंडवाना के राज्य में, जिसकी राजधानी अब मंडला थी, दलपतिशाह मर चुका (१५४८ ई०) और उसकी विधवा रानी दुर्गावती अपने बेटे के नाम पर शासन करती थी। बाज़बहादुर ने उसपर अनेक हमले किये, और प्रत्येक लड़ाई में हारा। राजपूताने में उदयसिंह ने रणथम्भोर और अजमेर वापिस ले लिये, आमेर और आबू से फिर मेवाड़ का आधिपत्य मनवाया, और उदयपुर की स्थापना की। गुजरात का राज्य छिन्न-भिन्न ही रहा। बहमनी रियासतें भी दुर्बल रहीं। विजयनगर में अच्युतदेव के बाद उसका भतीजा सदाशिव राजा हुआ (१५४२ ई०)। उसने पहले अहमदनगर की मदद से बीजापुर को हरा कर उसका बहुत सा इलाका छीना, फिर १५५८ ई० में बीजापुर की सहायता से अहमदनगर पर चढ़ाई की। पिछली दो पुश्तों में जो विजयनगर का रोबदाब तमाम बहमनी राज्यों पर जम गया था, उससे सदाशिव का दिमाग फिर गया था। अहमदनगर की चढ़ाई में पराजित शत्रुओं का अपमान करते समय उसने अपने मित्र-पक्ष की सेना के भावों का भी ख्याल न रक्खा।

§४. मालवा, उत्तरी राजपूताना और गोंडवाना की विजय (१५६०–६४ ई०)—अकबर की विचार-शक्ति इस समय तक जाग चुकी थी। १५६० ई० में उसने बैरामखाँ को हज को भेज स्वयम् राज सँभाल लिया और उसी बरस उसने साम्राज्य-निर्माण की चेष्टा शुरू कर दी। सब से पहली लड़ाई मालवा पर की गयी। अकबर के सेनापतियों ने बाज़बहादुर को हरा कर भगा दिया, उसने चित्तौड़ जा कर शरण ली। रानी रूपमती ने विष खाकर प्राण दे दिये। १५६२ ई० में अकबर ने आमेर के राजा भारमल की बेटी से विवाह किया और उसके पोते मानसिंह को अपने दरबार में रखा। इस तरह आमेर का राज उदयसिंह के बजाय अकबर की अधीनता में आ गया। उसी बरस मेड़तां का किला जीता गया, जिससे उत्तरी मारवाड़ भी अकबर के अधीन हो गया।

मालवे के बाद बुन्देलखंड-गोंडवाने की बारी आयी। कड़ा-मानिकपुर के हाकिम आसफ़खाँ ने पन्ना के राजा को अधीन करने के बाद रानी दुर्गावती पर

चढ़ाई की। वह बहादुरी से लड़ती हुई मारी गयी (१५६४ ई०)। उसके पड़ोसी छत्तीसगढ़ के राजा कल्याणसिंह ने भी डर कर दिल्ली के दरबार में उपस्थित हो अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

§५. **अकबर के पहले सुधार**—एक ओर तो शस्त्रों द्वारा देश विजय किये जा रहे थे और दूसरी ओर एक नयी उदार नीति के द्वारा साम्राज्य की नींव पक्की की जा रही थी। १५६२ ई० में अकबर ने युद्ध के कैदियों को दास बनाने की प्रथा अपने फ़रमान द्वारा रोक दी। अगले बरस उसने हिन्दू तीर्थ-यात्रियों से जो कर लिया जाता था, वह भी उठा दिया। कहते हैं उस कर को छुड़वाने वाले, नानक के प्रशिष्य सिक्खों के तीसरे गुरु अमरदास थे। १५६४ ई० में अकबर ने हिन्दुस्तान पर से जज़िया कर भी उठा दिया।

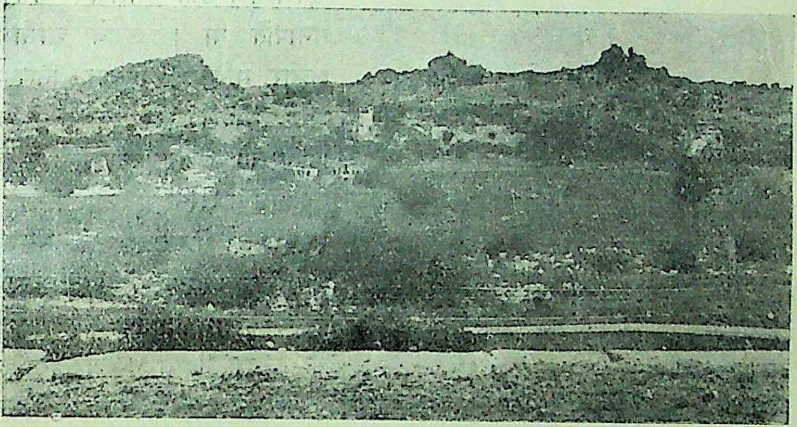

विजयनगर के खँडहर—विहंगम दृश्य, हाम्पी, जि० बेल्लारि [भा० पु० वि०]

§६. विजयनगर का पतन (१५६५ ई०)—इसी समय दक्खिन में भी एक भारी परिवर्तन हो गया। १५५८ ई० की लाञ्छना के बाद बीजापुर, बिदर, गोलकुंडा और अहमदनगर ने मिल कर विजयनगर का मुकाबला किया। १५६५ ई० में कृष्णा के उत्तर तालीकोट के पास युद्ध हुआ जिसमें सदाशिव अपनी १ लाख सेना के साथ मारा गया। इस हार का समाचार पा कर विजयनगर किले के भीतर की मुस्लिम सेना ने भी विद्रोह किया और विजेताओं ने राजधानी पर कब्जा कर उसे

उजाड़ दिया। सदाशिव के भाई वेङ्कटाद्रि ने तब विजयनगर के १२० मील दक्खिन पेनुकोंडा को अपनी राजधानी बनाया।

§७. मेवाड़ और उड़ीसा का पतन—१५६४ ई० में बिहार के पठान शासक सुलेमान कर्रानी ने बंगाल पर अधिकार कर लिया। इसी समय कूचबिहार का राज्य भी शक्तिशाली हो उठा। राजा नरनारायण का भाई शुक्लध्वज उर्फ़ चीलराय उसका सेनापति था। उसने आसाम, कछार, मणिपुर, त्रिपुरा, सिलहट और जयन्तिया को जीत कर कूचबिहार को उत्तर-पूरबी सीमान्त की एकमात्र शक्ति बना दिया। १५६५ ई० में अकबर के उज़्बक अमीरों ने जौनपुर में विद्रोह करके अवध के पच्छिम तक शाही फ़ौजों को खदेड़ दिया। अकबर को गुमान था कि उन्हें कहीं सुलेमान कर्रानी से मदद न मिलती हो, इसलिए उसने उड़ीसा के राजा से सन्धि कर मदद ली। राजा मुकुन्द हरिचन्दनदेव ने बंगाल पर हमला कर सातगाँव ले लिया। इस प्रकार सुलेमान का ध्यान उधर खिंच गया और अकबरने विद्रोह दबा दिया। किन्तु अकबर के भाई मुहम्मद हकीम ने पूरबी विद्रोह की बात सुन कर पंजाब पर चढ़ाई कर दी। उसे भगाने के बाद सन् १५६७ ई० में उड़ीसा से काबुल तक शान्ति हुई।

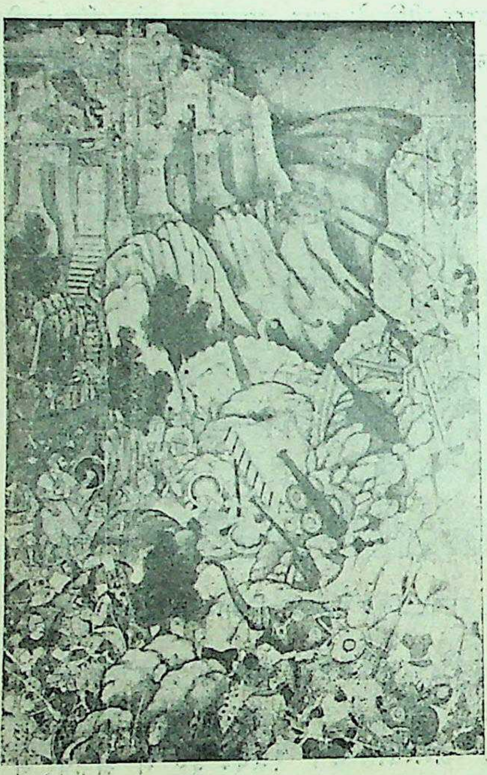

चित्तौड़ का घेरा, १५६७ ई०। "तारीख़-ए-ख़ानदान-ए-तैमूरिया" की हस्तलिखित प्रति से [खुदा० पु०]

इधर से निश्चिन्त हो जाने पर अकबर ने भारी तैयारी के साथ मेवाड़ पर चढ़ाई की। मेवाड़ के सरदार निश्चित हार देखते हुए भी आहुति दिये बिना

अपना देश देने को तैयार न हुए। उन्होंने राणा उदयसिंह को पहाड़ों में भेज दिया और उसकी भावज मीराबाई के चचेरे भाई जयमल राठोड़ को अपना मुखिया चुना। दूसरा दर्जा पत्ता सीसोदिया को दिया गया। अकबर ने चित्तौड़ घेर लिया। तोपों के तीन मोर्चे किले के सामने लगाये गये, जिनमें एक स्वयम् अकबर की और एक टोडरमल की देखरेख में था। साबातें और सुरंगें तैयार होने लगीं। साबात चमड़े के लम्बे छाजन होते थे जिनसे ढके हुए रास्तों से भाला लिए सवार मज़े में गुज़र सकते थे। उनकी रक्षा के बावजूद अकबर के कारीगरों की लाशें कई बार ईंटों की तरह चुनी गयीं। एक दिन किले की दीवार पर जयमल को मरम्मत का आदेश देते देख कर अकबर ने उसपर गोली चलायी। अकबर ने जाना कि वह मर गया पर असल में वह लँगड़ा हो गया था। किले की रसद चुक जाने पर जयमल ने जौहर की आज्ञा दी। लँगड़ा जयमल अपने एक कुटुम्बी के कन्धों पर चढ़ कर शत्रु दल को काटता हुआ बढ़ा। चित्तौड़गढ़ के सबसे नीचे के दरवाज़ों के बीच जहाँ वह मारा गया, वहाँ ईंटों की एक सीधी-सादी समाधि आज तक खड़ी है। पत्ता सूरजपोल (सूर्यद्वार) पर लड़ता हुआ काम आया। मेवाड़ के किसानों ने भी अकबर को इस युद्ध में खूब सताया था। अकबर ने उन्हें कठिन दंड दिया। जब मेवाड़ पर पूरा अधिकार हो गया तो उसने अपने वीर शत्रु जयमल और पत्ता की हाथियों पर चढ़ी मूर्तियाँ बनवा कर आगरे के किले

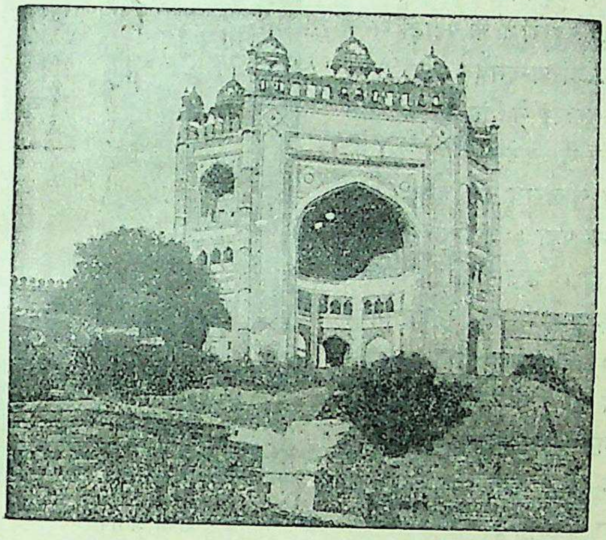

बुलन्द दरवाज़ा, फ़तहपुर सीकरी

के बाहर स्थापित करायीं। अकबर के चले जाने पर उदयसिंह ने कुम्भलगढ़ को अपनी राजधानी बनाया।

अकबर के चित्तौड़ में व्यस्त रहने पर सुलेमान करानी को उड़ीसा पर हमला करने का मौक़ा मिला। उसने मुकुन्द हरिचन्दनदेव को गंगा से दामोदर तक हटा दिया। पिछली तरफ़ से उसके सेनापति राजू कालापहाड़ ने दलभूम, मयूरभंज के पहाड़ी रास्ते से कटक पर चढ़ाई की। हरिचन्दनदेव शीघ्र उधर लौटा, पर उसके एक सरदार ने विद्रोह कर उसे मार डाला। कालापहाड़ ने कटक और पुरी को उजाड़ दिया। पीछे से चीलराय का हमला होने से कालापहाड़ को लौटना पड़ा। उड़ीसा में इसके बाद अव्यवस्था मची रही। उत्तरी और दक्खिनी उड़ीसा में दो राज्य खड़े हुए, जिनकी राजधानियाँ खर्दा और गंजाम थीं। लेकिन वे दोनों कमज़ोर थे। उत्तरी उड़ीसा में २४ वर्ष तक पठान और स्थानीय सरदार मारकाट करते रहे। गंजाम का राज्य १६ वीं सदी के अन्त तक गोलकुंडा का मुकाबला करता रहा।

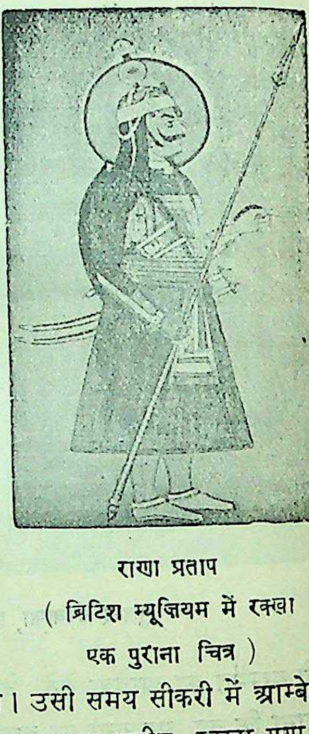

राणा प्रताप

(ब्रिटिश म्यूज़ियम में रक्खा एक पुराना चित्र)

उधर चित्तौड़ के बाद रणथम्भोर भी अकबर के हाथ आया, और तभी बघेलखंड (रीवाँ) के राजा का कालंजरगढ़ भी फ़तह हो गया। उसी समय सीकरी में आम्बेर की राजकुमारी से अकबर का बेटा पैदा हुआ, जिसका नाम सलीम रक्खा गया। तब से फ़तेहपुर सीकरी को अपनी राजधानी बना कर अकबर ने वहाँ अनेक महल तैयार कराये।

§८. गुजरात और बंगाल पर विजय (१५७२–७६ ई०)—१५७२-७३ ई० में अकबर ने गुजरात को, जो तब कई छोटे-छोटे राज्यों में बँटा था, जीत लिया। उसी समय मेवाड़ का राणा उदयसिंह और बिहार-बंगाल का प्रजाप्रिय शासक सुलेमान चल बसे। उदयसिंह का बेटा प्रताप उजड़े मेवाड़ का राणा हुआ और सुलेमान का बेटा दाऊद बिहार और बंगाल की गद्दी पर बैठा। १५७६ ई०

तक बंगाल भी अकबर ने जीत लिया। बंगाल जीतने के लिए कूचबिहार के राजा नरनारायण से मदद ली गयी। गुजरात और बंगाल की विजय से अकबर उत्तर भारत का एकच्छत्र सम्राट् हो गया। दक्खिन में इसी समय अहमदनगर के राज्य ने बराड़ को जीत लिया।

१५७६ ई० में अकबर के साम्राज्य के बराबर दुनियाँ में और कोई भी राज्य न था; तो भी मेवाड़ के अकिञ्चन राणा प्रताप ने उससे लोहा लेने की हिम्मत की। उसने कुम्भलगढ़ और गोघूंदा के पहाड़ी प्रदेश को अपना केन्द्र बना कर मालवा और गुजरात जाने-आने वाली मुगल सेनाओं, काफ़िलों, खजानों आदि पर आक्रमण करने शुरू किये। इस गुरिल्ला-युद्ध से तङ्ग आ कर अकबर ने मानसिंह को उसके खिलाफ़ भेजा। गोघूंदा के रास्ते में हल्दीघाटी पर दोनों की मुठभेड़ हुई (१५७६ ई०)। हकीम सूर नामक एक पठान सरदार भी प्रताप की तरफ़ था। लड़ाई का फल अनिश्चित रहा। प्रताप ने आगे बीस बरस तक स्वाधीनता की जद्दोजहद जारी रक्खी और मेवाड़ का बहुत सा हिस्सा वापिस ले लिया।

अध्याय ४

मुगल साम्राज्य का वैभव

(१५७६—१६६६ ई०)

§१. अकबर की शासन-व्यवस्था—अकबर की शासन-नीति एक उदार राष्ट्रीय राजा की थी। अपनी हिन्दू और मुस्लिम प्रजा को उसने एक ही दृष्टि से देखा। उससे पहले ज़ैनुल-आबिदीन, हुसेनशाह बङ्गाली और शेरशाह वैसी नीति के लिए रास्ता बना चुके थे।

अकबर ने सुशासन के लिए जो अनेक सुधार किये, उनमें मुख्य स्थान अर्थनीतिक सुधारों का है। उस अंश में उसने शेरशाह का अनुसरण किया। गुजरात जैसे प्रान्त जो शेरशाह के अधीन न हुए थे, उनमें भी अकबर ने माप-बन्दोबस्त करवाया। टोडरमल इस कार्य में उसका मुख्य सहायक था। माप के लिए लम्बाई और क्षेत्रफल की इकाइयों—गज़ और बीघा—का ठीक मान निश्चित किया गया। मालगुज़ारी-बन्दोबस्त से सम्बन्ध रखने वाले तीन सुधार और थे। पहला,

सरकारी कर्मचारियों को जागीर के बजाय नकद वेतन देना, और जागीरों की ज़मीनों को भरसक "खालसा" (राजकीय सम्पत्ति) बनाना। दूसरा, कुल कर्मचारियों की दर्जाबन्दी करना। यह दर्जाबन्दी बिलकुल सैनिक दृष्टि से की गयी थी, क्योंकि राज्य के सभी कर्मचारी सैनिक माने जाते थे। प्रत्येक कर्मचारी का पद और वेतन इस बात पर निर्भर होता था कि वह कितने सवारों का नायक है। सब कर्मचारी मनसबदार कहलाते थे और उनके मनसब १० से १० हज़ार तक के होते थे। ये संख्याएँ उनके वास्तविक सवारों की नहीं, केवल उनकी हैसियत की सूचक होती थीं। तीसरा सुधार घोड़ों को दागने का था। उसका प्रयोजन था मनसबदारों को धोखा देने से रोकना।

१५८० ई० में अकबर के साम्राज्य में दिल्ली, आगरा, इलाहाबाद, अवध, बिहार, बंगाल, अजमेर, गुजरात, मालवा, लाहौर, मुलतान और काबुल, कुल १२ सूबे थे। पीछे कश्मीर जीत लिये जाने पर लाहौर या काबुल में, सिन्ध मुल्तान में और उड़ीसा बंगाल में मिलाया गया। दक्खिन विजय होने पर तीन नये सूबे बराड़, खानदेश और अहमदनगर बने, जिससे कुल १५ सूबे हो गये। प्रत्येक सूबे का शासक सिपहसालार कहलाता था। बाद में वह सूबेदार कहलाने लगा। उसके साथ एक दीवान, एक बख्शी (वेतन बाँटने वाला), एक मीर आदिल (न्यायाधिकारी), एक सदर (धर्माधिकारी), एक मीर-बहर (मौर्य युग का नावध्यक्ष, यानी जहाज़ों, बन्दरगाहों, घाटों आदि का प्रबन्धक), एक वाक़यानवीस (मौर्य युग का प्रतिवेदक), और हर शहर में एक कोतवाल तथा हर सरकार में एक फ़ौजदार रहता था। केन्द्रीय शासन में सम्राट् के नीचे एक वकील अर्थात् प्रधानमन्त्री, एक वज़ीर या दीवान, एक मीर बख्शी और एक सदर-ए-सुदूर (मुख्य धर्माधिकारी), ये चार मुख्य तथा अनेक गौण अधिकारी रहते थे।

अकबर की सेना तीन तरह की थी। एक अधीन राजाओं की, दूसरी मनसबदारों की और तीसरी खास अपनी। मुख्य सेना मनसबदारों वाली थी। शेरशाह की तरह मुगल बादशाहों की स्थिर वैतनिक, सधी हुई सेना नहीं रही।

§८. **अकबर की धर्म-सम्बन्धी नीति**—अकबर स्वभाव से ही विचारशील था। उसके अन्दर सचाई की खोज की उत्कट चाह थी, जिसे ज़माने की लहर ने और पुष्ट कर दिया था। मुस्लिम बादशाह को इस्लाम की शरीयत के अनुसार चलना चाहिए; किन्तु इस्लाम में अनेक फ़िरके हैं, और इस कारण प्रश्न उठता

था कि कौन सा फ़िरका सच्चा है और किसके आदेश माने जाँय। इस जिज्ञासा से प्रेरित होकर अकबर ने फ़तहपुर-सीकरी में एक इबादतखाना (प्रार्थनागृह) बनवाया, जिसमें विभिन्न फ़िरकों के विद्वान् जमा हो कर विचार कर सकें। शुरू में उसमें केवल मुस्लिम विद्वान् बुलाये गये। उनके परस्पर विवाद के ढंग से बादशाह का चित्त इस्लाम की तरफ़ से फिरने लगा। गुजरात की विजययात्रा से अकबर को पहले-पहल ईसाई, पारसी और जैन मतों का परिचय मिला। उसके बाद उसके दरबार में शेख़ मुबारक नामक एक सूफ़ी तथा उसके दो बेटे अबुलफ़ज़ल और फ़ैज़ी उपस्थित हुए। अकबर पर उनका बड़ा प्रभाव पड़ा। तब इबादतखाने में इस्लाम के सिवा दूसरे मतों के विद्वान् भी बुलाये जाने लगे। जब एक बार विचार से सचाई का निर्णय करने की नीति मान ली गयी, तब यह बात होनी ही थी। दूसरे, जब दीन के मुखिया आपस में झगड़ते और बादशाह उनके बीच मध्यस्थ बनता, तब मज़हबी मामलों में भी बादशाह की स्थिति उन सब से ऊँची प्रकट होने लगी। १५७९ ई० में अकबर ने खुद साम्राज्य के प्रमुख इमाम की हैसियत से मसजिद के मिम्बर से खुतबा पढ़ा। तभी राज्य के प्रमुख उलमाओं के हस्ताक्षरों से यह घोषणा की गयी कि इमाम-ए-आदिल (प्रमुख इमाम) सब मुजतहिदों (मज़हब के व्याख्याकारों) से बड़ा है, और विवादग्रस्त मामलों में उसका फ़ैसला सबको मान्य होगा, जो न माने उसे दण्ड देना उचित होगा।

इस घोषणा से कट्टर मुसल्मान भड़क उठे। वे अकबर के उन शासन-सुधारों से चिढ़े हुए थे, जो उसने जागीरदारों की जागीरें ज़ब्त करने और घोड़ों पर दाग लगाने आदि के सम्बन्ध में जारी किये थे। उन्होंने बिहार और बङ्गाल में बलवा कर दिया, और अकबर के भाई मुहम्मद हकीम से मिल कर षड्यन्त्र रचा। जौनपुर के एक काज़ी ने फ़तवा दे दिया कि अकबर के खिलाफ़ बलवा करना जायज़ है। अकबर ने बलवा दबाने के लिए टोडरमल को भेजा। उधर मुहम्मद हकीम फ़ौज के साथ पञ्जाब पर चढ़ आया। रोहतास के किलेदार ने उसे वह किला न दिया, और लाहौर के शासक कुँवर मानसिंह ने शहर के दरवाज़े न खोले। मुहम्मद हकीम की इस आशा, पर कि सारी प्रजा उसका साथ देगी, पानी फिर गया और वह लस्टमपस्टम पीछे भागा। अकबर ने बड़ी तैयारी के साथ काबुल पर चढ़ाई की। टोडरमल को बङ्गाल में सफलता हुई और बलवा पूरी तरह कुचल दिया गया।

उसके बाद मज़हबी मामलों में अकबर को पूरी स्वतन्त्रता मिल गयी। अब इबादतख़ाने की ज़रूरत न रह गयी थी। अकबर दूसरे धर्मों की तरफ़ झुकने लगा और उसने घोषणा कर दी कि उसके बेटे चाहे जो मज़हब मानें। ज़रथुस्त्रियों की तरह वह अपने घर में पवित्र आग रखने और सूर्य को प्रणाम करने लगा और जैनों और हिन्दुओं के प्रभाव से उसने गो-हत्या की मुमानियत कर दी और विशेष अवसरों पर उसने कैदियों को छोड़ना शुरू किया। ईसाइयों का एकपत्नीव्रत भी उसे भाया। इस प्रकार सब धर्मों का सामञ्जस्य कर अकबर ने एक व्यापक धर्म बनाने की कोशिश की। उसने लिखा, "एक साम्राज्य में जिसका एक शासक हो, यह अच्छा नहीं है कि प्रजा एक दूसरे के विरोधी विभिन्न मतों में बँटी रहे, इसलिए हमें उन सब को मिला कर एक करना चाहिए; किन्तु इस प्रकार कि वे एक भी हो जायँ और अनेक भी बने रहें।"

अकबर ने अपने नये धर्म का नाम तौहीदे-इलाही रक्खा। उसका उद्देश्य अत्यन्त उदार और ऊँचा था, तो भी तौहीदे-इलाही सौ पन्थों को एक करने के बजाय एक नया पन्थ बन गया और अकबर के साथ ही समाप्त हो गया। १५६३ ई० में अकबर ने धार्मिक स्वतन्त्रता के लिए कई आज्ञाएँ निकालीं—(१) कोई ज़बरदस्ती मुसलमान बनाया गया हिन्दू अगर फिर हिन्दू बनना चाहे तो उसे कोई न रोके; (२) किसी व्यक्ति को बाध्य कर दूसरे मज़हब में न लाया जाय; (३) प्रत्येक व्यक्ति को अपना धर्म-मन्दिर बनाने की स्वतन्त्रता रहे; (४) अनिच्छुक हिन्दू विधवा को सती न किया जाय; इत्यादि। अकबर की यह नीति अनेक मुल्लाओं को न रुची। उनके कट्टरपन से खीझ कर पिछले जीवन में अकबर को इस्लाम का बहुत कुछ दमन भी करना पड़ा; परन्तु इस्लाम की सब से मुख्य बात तौहीद अकबर के पन्थ में मौजूद थी।

§३. अकबर के पिछले युद्ध और विजय—१५७६ ई० के बाद भी अकबर के दिल में दो तरफ़ साम्राज्य बढ़ाने की अभिलाषा बनी रही, और यह उसके वंशजों को भी विरासत में मिली। एक तो वह उत्तर-पच्छिम की तरफ़ बदख़शाँ और बलख़ के आगे आमू पार तूरान तक अपने पुरखों की भूमि लेना चाहता था; दूसरे दक्खिन की तरफ़ वह अपना साम्राज्य बढ़ाने का इच्छुक था। दक्खिन में "सीमान्त के शासकों की बेपरवाही से तट के अनेक शहर और बन्दरगाह फ़िरंगियों के हाथ में चले गये थे", उन्हें वापिस लेना भी अकबर का ध्येय था।

गुजरात के तट से पुर्त्तगालियों को निकाल देने के अनेक जतन उसने किये, पर सब व्यर्थ। उनकी विफलता का कारण था समुद्र-विषयक ज्ञान और शक्ति का न होना। उधर पुर्त्तगाल देश स्पेन-सम्राट् के अधीन हो गया था (१५८० ई०), जिसका साम्राज्य तब पच्छिम जगत् में सब से बड़ा था। अमेरिका से पाये हुए धन के ज़ोर से युरोप के कई देशों को भी स्पेन ने अधीन कर लिया था। स्पेन और पुर्त्तगाल के एक हो जाने से संसार के सब समुद्रों पर उनका अधिकार हो गया। उनकी शक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि अपने परवाने के बिना वे किसी मुस्लिम जहाज़ को मक्का भी न जाने देते थे। सन् १५९७ ई० में सिंहल द्वीप स्पेन-साम्राज्य में मिला लिया गया। उसका समूचा तट पुर्त्तगालियों ने जीत लिया। हिन्दू राज्य केवल अन्दर के पहाड़ों में रह गया।

अकबर ने काबुल तो जीत लिया, पर तूरान के उज़्बग शासक अब्दुल्लाखाँ ने, जो अकबर के साथ-साथ गद्दी पर बैठा था, बदख़शाँ को जीत लिया। अकबर को डर था कि कहीं वह भारत पर भी हमला न करे। इसलिए अकबर ने मानसिंह को काबुल भेजा और अब्दुल्ला उज़्बग की मृत्यु तक खुद भी लाहौर में ही रहा। सीमान्त के पठान तथा स्वात-बाजौर के लोग उसी समय विद्रोह कर उठे। स्वातियों से लड़ता हुआ अकबर का मित्र बीरबल मारा गया। राजा टोडरमल ने उस हार का बदला लिया, परन्तु पठानों के ठेठ इलाकों ने अकबर के वंशजों के समय तक मुगलों की अधीनता कभी न मानी। उन चढ़ाइयों के सिलसिले में कश्मीर जीता गया। ठट्ठा अर्थात् दक्खिनी सिन्ध जीतने के लिए मुलतान का शासन बैरामखाँ के बेटे अब्दुर्रहीम खानख़ाना को सौंपा गया। ख़ानख़ाना को इसमें सफलता मिली। पीछे सिबी, कन्दहार और मकरान भी अकबर के अधिकार में आ गये।

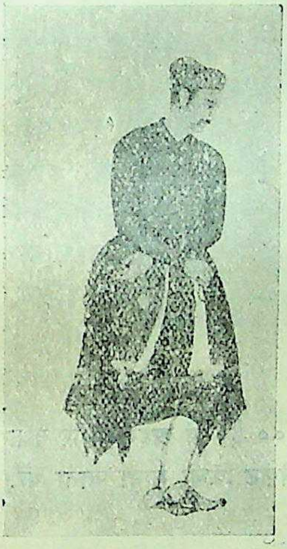

बीरबल

[भारत कलाभवन, काशी]

राजा भारमल के बेटे भगवानदास की और टोडरमल की मृत्यु के बाद मानसिंह को बिहार-बंगाल के सूबे सौंपे गये। उसने उत्तरी उड़ीसा को भी जीत

लिया। दक्खिनी राज्यों में से खानदेश ने सन्देश पा कर अधीनता मान ली। दूसरों पर फ़ौज भेजी गयी। अहमदनगर में उस फ़ौज का चाँदबीबी ने मुकाबला किया। वह अहमदनगर के सुल्तान की बुआ और बीजापुर के बालक सुल्तान की माँ थी। अन्त में अहमदनगर ने अधीनता मानी और बराड़ का प्रान्त सौंप दिया (१५९६ ई०)। सन् १५९७ में राणा प्रताप और १५९८ ई० में अब्दुल्ला उज़्बग

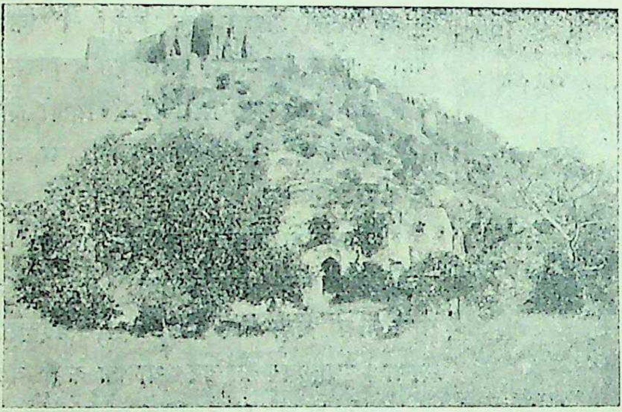

असीरगढ़ [भा० पु० वि०]

का देहान्त होने पर अकबर स्वयम् दक्खिन गया। १६०० ई० में अहमदनगर तथा खानदेश का असीरगढ़, जो तब भारत भर में सब से विकट किला माना जाता था, उसके हाथ आये।

उधर सलीम ने विद्रोह किया और इलाहाबाद में स्वतन्त्र हो बैठा। अकबर को अपनी विजय-योजनाएँ छोड़ कर आगरा लौटना पड़ा। अहमदनगर सल्तनत पूरी तरह मुगल साम्राज्य में न मिल पायी, तथा बीजापुर और गोलकुण्डा तो ज्यों के त्यों बने रहे। उन दोनों के दबाव से कर्णाटक के राजा वेंकटाद्रि के बेटे को पेनुकोंडा भी छोड़ना पड़ा और तब तामिल देश के उत्तरी छोर पर चन्द्रगिरि को उसने अपनी राजधानी बनाया (लगभग १६०० ई०)।

विद्रोह के सिलसिले में सलीम ने अकबर के मित्र अबुलफ़ज़्ल को ओरछा के राजा वीरसिंहदेव बुन्देले के हाथों मरवा डाला। पीछे बड़ी मुश्किल से उसने अपने पिता से समझौता किया। १६०५ ई० में अकबर बीमार हुआ। तब दरबारियों

का एक दल सलीम की बजाय उसके बेटे खुसरो को गद्दी पर बैठाने का जतन करने लगा; किन्तु अन्तिम समय अकबर ने सलीम को उत्तराधिकारी बनाया।

§४. अकबर-युग में साहित्य और कला।—अकबर ने हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों को मिला कर एक करना चाहा था। इस विचार से उसने वेद, रामायण और महाभारत के फ़ारसी अनुवाद करवाये। उसके समय में फ़ारसी में बहुत से इतिहास-ग्रन्थ भी लिखे गये। उनमें अबुलफ़ज़्ल के लिखे अकबर-नामे के अन्तर्गत आईने-अकबरी एक अनमोल ग्रन्थ है। संगीत और चित्रण-कला को भी अकबर ने प्रोत्साहन दिया। १६वीं सदी के शुरू में राजा मानसिंह तोमर ने ग्वालियर में एक संगीत-विद्यालय स्थापित किया था। वहाँ के गायक तानसेन को अकबर ने अपने दरबार में जगह दी। ईरान के शिया शाहों के आश्रय में तेरहवीं सदी से चित्रणकला का एक सम्प्रदाय चला आता था। अकबर ने दसवन्थ और बसावन आदि भारतीय चितेरों के साथ शीराज़ के चितेरे अब्दुस्समद को अपने दरबार में रक्खा। हिन्दी और ईरानी क़लमों के मिलने से एक नयी शैली चल पड़ी। अकबर की इमारतों में आगरा और इलाहाबाद के किले तथा फ़तहपुर-सीकरी के सुन्दर महल उल्लेखनीय हैं। उसके आश्रित हिन्दू राजाओं ने भी वृन्दावन में कई मन्दिर बनवाये।

दरबारी साहित्य से कहीं अधिक महत्त्व का सन्तों का साहित्य था। सूरदास, तुलसीदास और गुरु अर्जुनदेव तथा रामानन्द के अनुयायी दादू, मलूक, रयिदास आदि सन्त कवि अकबर के समय में हुए। अब्दुर्रहीम खानखाना ने रहीम नाम से हिन्दी में जो कविता की, उसपर भी स्पष्ट वैष्णव छाप है। तुलसीदास का रामचरितमानस तो हिन्दी-भाषी जनता का धर्म-ग्रन्थ बन गया।

दादू अहमदाबाद का धुना था और रयिदास चमार। पंजाब में गुरु नानक ने अपने 'उदासी' (विरक्त) बेटे के बजाय अपने एक शिष्य को अपना पद और गुरु अंगद का नाम दिया था। अंगद ने नानक की वाणी का संकलन किया। पंजाब में तब महाजनों के कारबार में काम आने वाले टूटे-फूटे अक्षरों के सिवाय कोई लिपि न थी। अंगददेव ने कश्मीर की शारदा लिपि को गुरमुखी नाम से अपना लिया। गुरुओं की वाणियाँ उसी में लिखी गयीं। तीसरे गुरु अमरदास ने अपने दामाद रामदास के वंश में गुरु-गद्दी स्थायी कर दी। रामदास ने अमृतसर की स्थापना की। पाँचवें गुरु अर्जुनदेव (१५८२–१६०६ ई०) ने गुरुओं की वाणियों तथा रामानन्द, नामदेव, कबीर, फ़रीद, रयिदास, सूरदास आदि भक्तों के

वचनों का संकलन कर एक 'ग्रन्थ' तैयार किया जो 'सिक्खों' का धर्म ग्रन्थ बना। अर्जुन ने अपने शिष्यों को तुर्किस्तान से घोड़ों का व्यापार करने को भी प्रेरित किया, जिससे उनका दूर देश जाने का डर जाता रहे तथा वे अच्छे सवार बन सकें।

§५. **जहाँगीर बादशाह**—अकबर के पीछे सलीम जहाँगीर के नाम से हिन्दुस्तान के तख्त पर बैठा। उसका बेटा ख़ुसरो बलवा कर आगरे से पंजाब की ओर बढ़ा। चनाब के किनारे वह पकड़ा गया। उसके साथी और सहायक, जिनमें गुरु अर्जुन भी था, क्रूरता से मारे गये (१६०६ ई०)। अर्जुन के बेटे हरगोविन्द ने बदला लेने का प्रण किया, और अपने 'सिक्खों' को शस्त्र धारण करने को कहा। इस जुर्म में उसे १२ बरस ग्वालियर के किले में कैद रक्खा गया।

दतिया में वीरसिंहदेव का महल

१७वीं सदी के वास्तु-शिल्प का नमूना [भा० पु० वि०]

मुगल साम्राज्य की सेवा में बंगाल में शेर अफ़गन नामक एक ईरानी मनसबदार था। उसकी स्त्री मेहरुन्निसा प्रसिद्ध सुन्दरी थी। जहाँगीर ने बंगाल की सूबेदारी कुतुबुद्दीन को दे कर उसे शेर अफ़गन को कैद करने का हुक्म दिया। कुतुबुद्दीन के शेर अफ़गन को पकड़ने की कोशिश में उन दोनों की जान गयी (१६०६ ई०)। मेहरुन्निसा सम्राट् के दरबार में भेजी गयी। चार बरस पीछे उसने जहाँगीर से शादी करना कबूल कर लिया, और उसे नूरजहाँ का खिताब मिला। वह चतुर स्त्री थी, जहाँगीर उसके काबू में था और सब राज-काज वही चलाती थी। उसका भाई आसफ़ख़ाँ सल्तनत का वज़ीर बना। आसफ़ख़ाँ की बेटी शाहज़ादा खुर्रम को ब्याही गयी और उसे मुमताज़-महल का खिताब दिया गया।

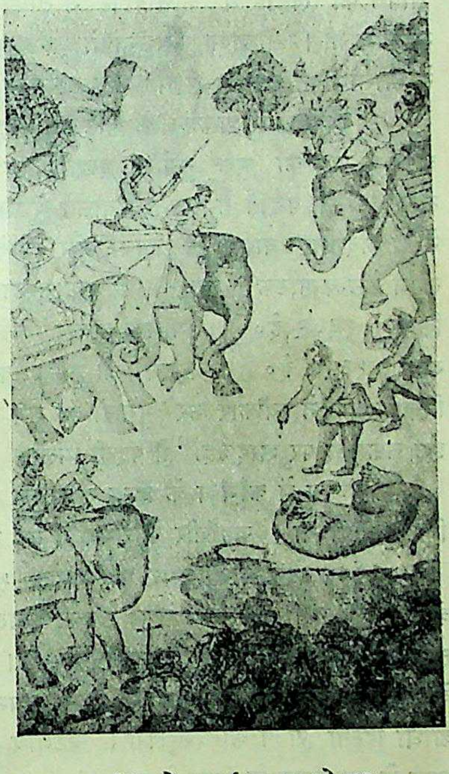

जहाँगीर शेर का शिकार करते हुए

[भा० क० भ०, काशी]

§६. मेवाड़, बुन्देलखड, कामरूप और काँगड़ा में साम्राज्य-वृद्धि; दक्खिन में पीछे हटना—जहाँगीर के गद्दी पर बैठते ही ईरानियों ने कन्दहार पर हमला किया जो निष्फल रहा।

मेवाड़ और दक्खिन की समस्याएँ अकबर के समय से चली आती थीं। जहाँगीर ने राणा प्रताप के बेटे अमरसिंह के खिलाफ़ पहले शाहज़ादा परवेज़ को, फिर महाबतख़ाँ को और अन्त में शाहज़ादा खुर्रम को भेजा। अमरसिंह को अन्त में हार माननी पड़ी (१६१४ ई०)। मेवाड़ ने इस शर्त पर अधीनता मानी कि महाराणाओं को स्वयम् मुगलों की सेवा में न जाना पड़े, तथा

'डोला' न देना पड़े। जहाँगीर ने अपने वीर शत्रु अमरसिंह और उसके बेटे करण की हाथियों पर चढ़ी हुई मूर्तियाँ आगरे में स्थापित कीं।

बुन्देलखंड का राजा वीरसिंहदेव जहाँगीर का विशेष कृपापात्र था। मंडला (गोंडवाना) राज्य का जो कुछ भाग बाकी था, वह उसे जीतने दिया गया।

कोचबिहार और कामरूप में विश्वसिंह कोच के दो वंशजों का राज था। आपस की लड़ाई में कोचबिहार ने ढाका में मुगल साम्राज्य के अधिकारियों से मदद माँगी। साम्राज्य की सेनाओं ने कामरूप जीत लिया (१६१२ ई०); तब से आसाम का आहोम राज्य मुगल साम्राज्य को छूने लगा।

दक्खिन से अकबर के लौटते ही वहाँ की अवस्था बदल गयी थी। मलिक अम्बर नाम का एक सुयोग्य हब्शी अब अहमदनगर का वज़ीर था। उसने टोडरमल की पद्धति से अपनी रियासत में पैमाइश और बन्दोबस्त कराया, मुगलों से अहमदनगर वापिस ले लिया और उन्हें बुरहानपुर तक खदेड़ दिया। इसी समय ठेठ कर्णाटक (मैसूर) में एक सरदार ने श्रीरंगपट्टम् का नया राज्य खड़ा किया (१६०६ ई०)। मलिक अम्बर के खिलाफ़ शाहज़ादा खुर्रम को भेजा गया (१६१७ ई०)। उसने जो सन्धि की शर्तें भेजीं, उन्हें अहमदनगर के निज़ामशाह ने स्वीकार कर मुगलों का सब इलाका वापिस कर दिया। खुर्रम को इस सफलता पर शाहजहाँ की पदवी मिली।

पंजाब में काँगड़ा के हिन्दू राज्य को अकबर ने जीतना चाहा था, पर वह विफल हुआ था। जहाँगीर के समय में वह जीत लिया गया (१६२० ई०)।

§७. अराकानी और पुर्तगाली—१६वीं सदी में अराकान के तट पर अनेक पुर्तगाली बस गये थे। उनकी दोगली सन्तान ने समुद्र और नदियों में लूट-मार करना अपना धन्धा बना लिया था। वे गोवा के शासन में न थे। अराकान के राजा ने अब उनका दमन कर उन्हें अपनी सेवा में ले लिया और वे लूट में आधा हिस्सा राजा को देने लगे। चटगाँव इन फिरंगियों का अड्डा था। इनकी मदद से अराकान के राजा ने बाकरगंज जीत लिया (१६२० ई०) और ढाका को लूटा (१६२५ ई०)। उसके बाद अराकानियों और फिरंगियों के धावे बंगाल पर बराबर होते रहे। उनकी नावों के 'हरमद' (Armada) को देखकर बंगाली नव्वारा (बेड़ा) भाग जाता। वे असहाय जनता को पकड़ ले जाते और उनके एक-एक हाथ में छेद कर एक रस्सी पिरो कर पशुओं की तरह अपनी नावों में भर

ले जाते थे। अराकानी उन्हें दास बना कर काम लेते थे। फिरंगी उन्हें दक्खिन के बन्दरगाहों पर या फ़िलिपाइन आदि द्वीपों में दूसरे फिरंगियों के हाथ बेच देते थे। प्रजा की लूटमार और विध्वंस का यह सिलसिला साल-ब-साल जहाँगीर और उसके बेटे शाहजहाँ के शासन-काल में जारी रहा।

§८. भारतीय समुद्र में ओलन्देज़, अँगरेज़ और फ्रांसीसी—नयी और पुरानी दुनिया में स्पेन का साम्राज्य कैसे फैल गया था, यह हम देख चुके हैं। स्पेन ने अपने अधीन छोटी जातियों को कुचलना चाहा, परन्तु १५७६ ई० में छोटे से हालैण्ड राष्ट्र ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया।

युरोप में मानसिक जागृति के बाद धार्मिक सुधार की लहर उठी। लूथर और काल्विन नामक सुधारकों ने १६वीं सदी के शुरू में पोप की महन्ती का प्रतिवाद किया। उनके अनुयायी 'प्रतिवादी' (प्रोटेस्टेंट) कहलाये और पोप के अनुयायी 'रोमन सनातनी' (रोमन कैथोलिक)। स्पेन-सम्राट् ने पोप का साथ दिया। युरोप के कई राज्यों में आधे से भी अधिक सम्पत्ति गिर्जों के हाथों में थी, और गिर्जों के पुजारी नियत करना पोप के हाथ में था। स्वाधीन-वृत्ति राष्ट्र अब प्रतिवादी बनने लगे। इंग्लैण्ड के राजा ने पोप से सम्बन्ध तोड़ कर अनेक गिर्जों की जागीरें ज़ब्त कर लीं। स्पेन ने इंग्लैण्ड को भी दबाना चाहा। जिस फ़िलिप (१५५६–६८ ई०) के नाम से फ़िलिपाइन द्वीपों का नाम पड़ा था, वह तथा इंग्लैण्ड की रानी एलिज़ाबेथ (१५५८–१६०३ ई०) अकबर के समकालीन थे। फ़िलिप ने इंग्लैण्ड पर जङ्गी बेड़ा भेजा, जिसे अंगरेज़ों ने हरा कर फूँक दिया (१५८८ ई०)। इससे पहले कई अंगरेज़ नाविक भी पृथ्वी-परिक्रमा कर आये थे। उधर ४० बरस की घोर कशमकश के बाद हालैण्ड ने भी स्पेन से स्वतन्त्रता पा ली।

ओलन्देज़ और अंगरेज़ सुदूर समुद्रों पर भी स्पेन-पुर्तगाल के एकाधिकार को तोड़ने लगे। ओलन्देज़ों ने पुर्तगालियों को चीन सागर से निकाल दिया। १६०० ई० के अन्तिम दिन इंग्लैण्ड में पूरबके व्यापार के लिए 'ईस्ट इंडिया कम्पनी' बनी, जिसे राज्य की तरफ़ से उस व्यापार का एकाधिकार मिला। ईसाई मत के प्रचार के लिए पुर्तगाली जो ज़ोर-जुल्म करते थे, उससे भारत के शासक परेशान थे। अंगरेज़ और ओलन्देज़ 'प्रतिवादी' होने के कारण वैसे कट्टर न थे। उन्हें केवल अपने व्यापार से मतलब रहता था। भारतवर्ष के शासकों ने पुर्तगालियों के मुकाबले में उनका स्वागत किया। अंगरेज़ों ने सूरत में व्यापारी कोठी खोली, और सूरत के

पास पुर्तगाली बेड़े को हराया। उनके राजा जेम्स १म का दूत सर टामस रो अजमेर में जहाँगीर से मिला। अंगरेज़ों को भारत में व्यापार करने की इजाज़त तो मिली ही, साथ ही अपनी बस्तियों में अपने कानून के अनुसार स्वयम् शासन करने का अधिकार भी उन्हें मिल गया। १६१६ ई० में ओलन्देज़ व्यापारी वान डर ब्रोक सूरत आया। तब ओलन्देज़ों को भी सूरत, बड़ोदा, अहमदाबाद और आगरे में कोठियाँ खोलने की आज्ञा मिल गयी। १६२० ई० में फ्रांसीसी व्यापारी भी सूरत आये।

§९. कन्दहार का पतन तथा शाहजहाँ और महाबतख़ाँ के विद्रोह—१६२२ ई० में ईरान के शाह अब्बास ने कन्दहार को फिर घेरा। शाहजहाँ के नेतृत्व में एक बड़ी फ़ौज उसके खिलाफ़ जाने वाली थी, पर शाहजहाँ उस समय विद्रोह कर बैठा। ईरानियों ने कन्दहार ले लिया। चार वर्ष बाद शाहजहाँ ने पिता से सुलह की। इसकी बगावत का मुख्य कारण नूरजहाँ की ईर्ष्या थी। इसी से महाबतखाँ भी बिगड़ उठा। बादशाह लाहौर से काबुल जाता था। जेहलम पर महाबतखाँ ने अपने ५००० राजपूतों द्वारा उसे कैद कर लिया। नूरजहाँ की कुशलता से वह कैद से छूटा। दूसरे बरस (१६२७ ई०) उसकी मृत्यु हो गयी।

§१०. शाहजहाँ बादशाह—जहाँगीर के बेटों में शाहजहाँ सब से योग्य था। जोधपुर की राजकुमारी उसकी माँ थी। अपने सब प्रतिद्वन्द्वियों का आसानी से अन्त कर वह हिन्द का बादशाह बना। जहाँगीर की मृत्यु के एक बरस आगे-पीछे ईरान के शाह अब्बास, ओरछा के राजा वीरसिंहदेव तथा मलिक अम्बर की भी मृत्यु हुई। शाहजहाँ के प्रायः साथ ही बीजापुर में मुहम्मद आदिलशाह, और गोलकुंडा में अब्दुल्ला कुतुबशाह गद्दी पर बैठे।

यद्यपि शाहजहाँ ने अपने को इस्लाम का पक्का अनुयायी प्रकट किया, और अपने दादा और पिता की उदार नीति को अंशतः बदल दिया, तो भी अपनी समूची प्रजा के प्रति उसका बर्ताव अच्छा रहा, और हिन्दुओं को उसपर विश्वास बना रहा।

§११. बुन्देलखंड, ब्रज और पंजाब में युद्ध और विद्रोह—वीरसिंहदेव का बेटा जुझारसिंह नये बादशाह का रुख़ अपने खिलाफ़ देख आगरे से बुन्देलखंड भाग गया। शाहजहाँ ने आगरा, कन्नौज और मालवा से उसके खिलाफ़ फ़ौजें भेजीं। बेतवा नदी के तट पर उसका किला इरिच ले लिया गया, तब जुझार ने

अधीनता मानी (१६२९ ई०)। पाँच बरस पीछे फिर युद्ध छिड़ गया। छिन्दवाड़ा के २४ मील दक्खिन देवगढ़ में गोंडों की एक राजधानी थी। जुझारसिंह ने नर्मदा के दक्खिन उस देवगढ़ राज्य का चौरागढ़ किला छीन लिया। शाहजहाँ ने जुझार से चौरागढ तलब किया। उसके न देने पर शाहज़ादा औरंगज़ेब तथा उसके मामा शाइस्ताख़ाँ को फिर बुन्देलखंड की चढ़ाई पर भेजा गया। ओरछा पर दख़ल कर वहाँ का राज्य बीरसिंहदेव के भतीजे देवीसिंह को दिया गया। मुगल सेनाएँ बुन्देलखंड के आर-पार चाँदा तक जा निकलीं। जुझार और उसका बेटा जगराज जंगलों में गोंडों के हाथ मारे गये। जुझार की रानी पार्वती घायल हो कर मरी। उनका बेटा उदयभान और मन्त्री श्यामदेव क़ैद हो कर मारे गये।

चम्पतराय नाम के सरदार ने जुझार के बेटे पृथ्वीराज को राजा घोषित कर फिर स्वाधीनता की लड़ाई छेड़ी। पृथ्वीराज को मुगलों ने कैद कर लिया, तब भी चम्पत जंगलों में भाग कर लड़ता रहा। जुझार के भाई पहाड़सिंह ने मुगलों की सेवा में जा कर चम्पत और उसके बन्धुओं को नष्ट करने का वचन दिया। उससे लड़ना उचित न जान कर चम्पत ने भी सन्धि की (१६४२ ई०)। उसके बाद भी पहाड़सिंह ने उसे विष दे कर मारना चाहा; पर चम्पत के एक मित्र ने उसका प्याला बदल कर स्वयम् पी लिया। तब चम्पतराय ने अपनी माँ की सलाह से शाहजहाँ के बड़े बेटे दाराशिकोह की सेवा स्वीकार कर ली।

पंजाब में गुरु हरगोविन्द ने, जो कैद से छूट चुका था, साम्राज्य से मुठभेड़ जारी रक्खी (१६२८–३४ ई०)। अन्त में उसे कीरतपुर के पहाड़ों में भागना पड़ा और वहीं उसकी मृत्यु हुई (१६४४ ई०)।

१६३७ ई० में मथुरा के जाटों ने विद्रोह किया, जो शीघ्र कुचल दिया गया।

§१२. दक्खिन (१६२८–४५ ई०)—शाहजहाँ ने तख़्त पर बैठते ही दक्खिन की रियासतों को दबाना शुरू किया। मलिक अम्बर के बेटे फ़तहखाँ ने अहमदनगर के निज़ामशाह को कैद कर मार डाला और दौलताबाद मुगल सम्राट को सौंप दिया; परन्तु शाहजी भोंसले नामक अहमदनगर के एक सरदार ने एक नये निज़ामशाह को खड़ा कर लड़ाई जारी रक्खी। १६३६ ई० में शाहजहाँ ने दक्खिन में चार सूबे—खानदेश, बराड, दौलताबाद और तेलंगाना—बनाये, तथा औरंगज़ेब को उनके शासन के लिए भेजा। स्वयम् शाहजहाँ भी भारी फ़ौज ले कर दौलताबाद आया। गोलकुंडा ने उससे डर कर सालाना ख़िराज देना स्वीकार

किया। बीजापुर पर साम्राज्य की सेनाओं ने चढ़ाई की, तब उसने भी नाम को आधिपत्य माना। भूतपूर्व अहमदनगर रियासत के ५० परगने उसे दिये गये। शाहजी ने अपने बादशाह को सौंप दिया और बीजापुर राज्य की सेवा स्वीकार की (१६३६ ई०)। १६४५ ई० तक औरंगज़ेब दक्खिन में रहा और वहाँ बहुत अच्छा बन्दोबस्त किया।

बीजापुर और गोलकुंडा उत्तर की तरफ़ रोके गये तो भूतपूर्व विजयनगर राज्य के इलाकों पर दखल करने लगे। बीजापुरी अपने सेनापति अफ़ज़लखाँ के नेतृत्व में बेदनोर, सेरा और बेंगलूर को विजय करते हुए कावेरी तक जा पहुँचे। गोलकुंडा वालों ने समुद्र-तट के साथ-साथ उत्तर तरफ़ शिकाकोल और चिलिका तक तथा कृष्णा के दक्खिन नल्लमलै के प्रदेशों तक अधिकार कर लिया।

§१३. कन्दहार बलख, बदख्शाँ (१६३७–५३ ई०)—शाहजहाँ ने बीजापुर और गोलकुंडा से अधीनता मनवाने के एक बरस पीछे कन्दहार के ईरानी हाकिम से साज़िश कर उसपर भी अधिकार कर लिया (१६३८ ई०)। हिन्दूकुश के उस पार बलख और बदख्शाँ के सूबे बुखारा के उज़बग सुलतान के अधीन थे। बुखारा सल्तनत की अव्यवस्था से लाभ उठा कर उन्हें भी हिन्दुस्तान की फ़ौजों ने जीत लिया, पर वहाँ उनका अधिकार केवल दो बरस (१६४६-४७ ई०) तक रह पाया। कन्दहार को भी शाह अब्बास २य ने वापिस ले लिया (१६४८ ई०), क्योंकि शाहजहाँ अपनी घिरी हुई फ़ौज के पास वक्त पर कुमुक न भेज सका। इसके बाद उसने तीन बार कन्दहार वापिस लेने का जतन किया, पर व्यर्थ। इस विफलता का मुख्य कारण था हिन्दुस्तानी तोपचियों का निकम्मापन। हिन्दुस्तानियों पर ईरानियों की धाक बैठ गयी, और आगे एक सदी तक ईरानी हौआ हिन्दुस्तानी शासकों के दिमाग पर मँडराता रहा।

§१४. शाहजहाँ के शासन-काल में पुर्तगाली, ओलन्देज़ और अँगरेज़—बंगाल में पुर्त्तगालियों की करतूतों का हाल कहा जा चुका है। १६३१ ई० में शाहजहाँ की फ़ौज ने उनके हुगली के किले पर चढ़ाई कर दस हज़ार आदमियों का संहार किया, और ४-५ हज़ार को कैद कर लिया। उनके युरोपियन शत्रु ओलन्देज़ों ने १६५८ ई० तक उनसे समूचा सिंहल और आशा अन्तरीप की बस्तियाँ भी छीन लीं। शाहजहाँ के शासन-काल में अंगरेज़ों ने पूरबी तट पर भी बसना शुरू किया। मसुलीपट्टम्, बालेश्वर और हुगली में कोठियाँ बनायीं, और

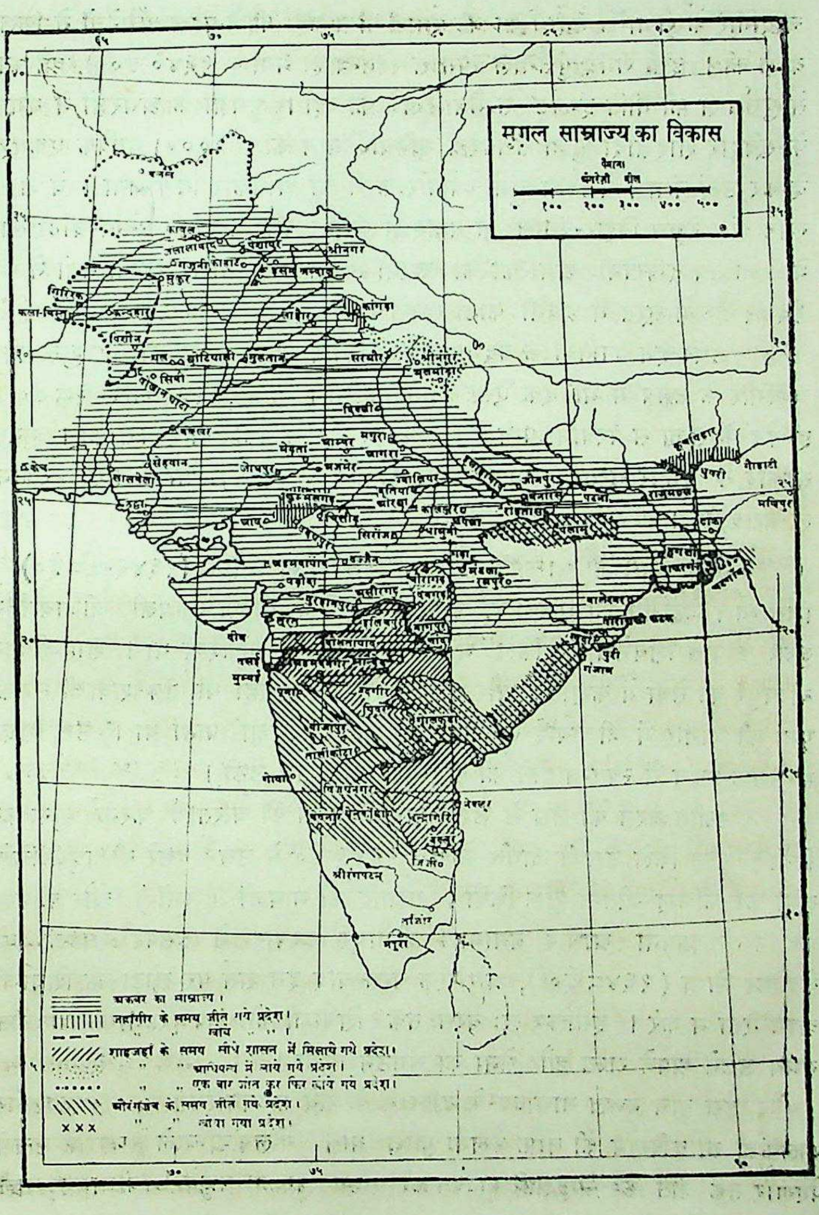
मुगल साम्राज्य का विकास
पैमाना
अंग्रेज़ी मील
० १०० २०० ३०० ४०० ५००
बल्ख
काबुल
जलालाबाद
पेशावर
श्रीनगर
गज़नी
मुकुर
गिरिश्क
कला-चिस्त
कन्दहार
सिबी
मुल्तान
लाहौर
कांगड़ा
सरहिन्द
दिल्ली
बक्खर
सेहवान
ठट्ठा
जोधपुर
अजमेर
मथुरा
आगरा
ग्वालियर
जौनपुर
बनारस
पटना
रोहतास
राजमहल
ढाका
कूचबिहार
गौहाटी
मणिपुर
चित्तौड़
आबू
सूरत
पटना
बालेश्वर
पुरी
गंजाम
दमन
नासिक
अहमदनगर
बीजापुर
गोलकुण्डा
गोवा
श्रीरंगपटन
तंजौर
मदुरा
अकबर का साम्राज्य।
जहाँगीर के समय जीते गये प्रदेश।
" " खोये " " ।
शाहजहाँ के समय सीधे शासन में मिलाये गये प्रदेश।
" " आधिपत्य में लाये गये प्रदेश।
" " एक बार जीत कर फिर खोये गये प्रदेश।
औरंगज़ेब के समय जीते गये प्रदेश।
" " खोया गया प्रदेश।
६५
७०
७५
८०
८५
९०
३५
३०
२५
२०
१५
१०
५

चन्द्रगिरि के राजा से मद्रास का वह स्थान पाया जहाँ पहले-पहल अँगरेज़ों ने किलाबन्दी की। इसी समय पुर्त्तगाल स्पेन से स्वतन्त्र हो गया (१६४० ई०), और तब से पुर्त्तगाल की नीति इंग्लैंड से मैत्री रखने की रही। हुगली के अंगरेज़ों ने बंगाल के सूबेदार शाहज़ादा शुजा से विशेष सुविधाएँ प्राप्त कीं। ३०००) वार्षिक एकमुश्त दे कर उन्हें बंगाल में बिना चुंगी व्यापार करने का अधिकार मिल गया। वे शोरा, खांड और रेशम बिहार-बंगाल से बाहर ले जाते, और बदले में सोना-चाँदी लाते थे, जो तब दक्खिनी अमेरिका की खानों से आ रहा था। फ़ान्सीसियों ने भी १६४२ ई० में सूरत में अपनी कोठी खोली।

उधर इन जातियों के बदमाशों ने भारतीय समुद्र में डकैती भी शुरू की। जहाँगीर के समय में भी एक ऐसी घटना हुई थी। सन् १६३५ और ३८ ई० में इंग्लैंड के राजा से परवाना पाये हुए जहाज़ों ने भी वैसी ही हरकतें कीं। मुगल सरकार ने इसपर सूरत के सब अँगरेज़ों को कैद कर लिया, और भारी हरजाना ले कर छोड़ा।

§१५. शिवाजी का उदय और दक्खिन की राजनीति, (१६४६-५८ ई०)—जिस साल जहाँगीर की मृत्यु हुई, उसी साल शाहजी भोंसले की पत्नी जीजाबाई ने जुन्नर के पास शिवनेरी के किले में शिवाजी को जन्म दिया था। शाहजी जब बीजापुर की सेवा में कर्णाटक और तामिलनाड में लड़ रहा था, तब शिवाजी उसकी पूना की जागीर में जीजाबाई से ऊँचे आदर्शों की शिक्षा पाता था। उस शिक्षा से उसके हृदय में स्वतन्त्र होने की अदम्य प्रेरणा जाग उठी।

उन्नीस बरस की उम्र से उसने अपनी उमंगों को चरितार्थ करना शुरू कर दिया। तीन किले उसकी जागीर में थे। १६४६ ई० से उसने दूसरे बीजापुरी किले छीन कर कोंकण जीतना शुरू किया। सह्याद्रि की मावलों (दूनों) और कोंकण को उसने अपना आधार बनाया। बीजापुर दरबार ने इसपर शाहजी को कैद कर लिया (१६४८ ई०), और एक बरस बाद इस शर्त पर छोड़ा कि शिवाजी आगे ऐसा न करे। इसलिए छः बरस तक शिवाजी को चुप रहना पड़ा। इस समय उसने अपने राज्य और सेना का संगठन किया।

इस बीच मुगल साम्राज्य के दक्खिन के सूबे अव्यवस्थित थे; बीजापुर और गोलकुंडा का दक्खिन की तरफ़ फैलना जारी था। गोलकुंडा वाले कृष्णा से उत्तरी पैरणार तक जीत कर चन्द्रगिरि राज्य की सीमा पर जा पहुँचे। बीजापुर वाले

कावेरी की दून से तामिल-तट में उतरे, और जिंजी का किला जीत कर दक्खिन से

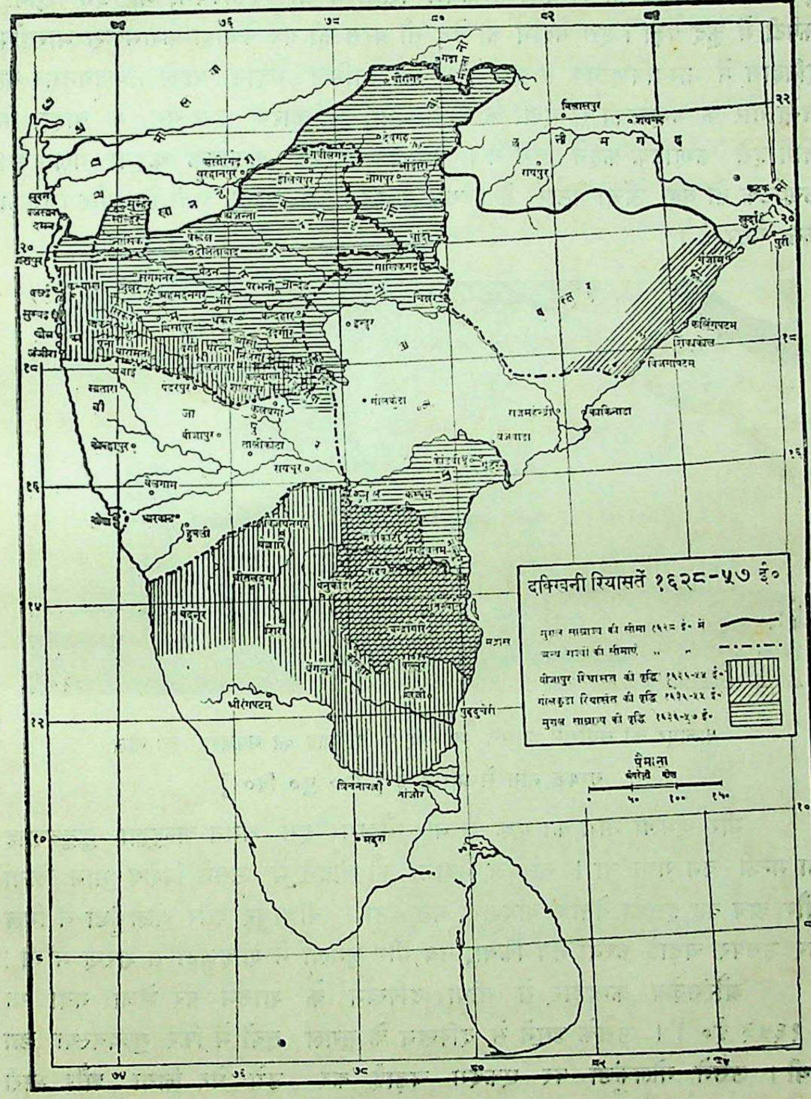
दक्खिनी रियासतें १६२८-५७ ई०
मुगल साम्राज्य की सीमा १६२८ ई० में
अन्य राज्यों की सीमाएं
बीजापुर रियासत की वृद्धि १६२८-५५ ई०
गोलकुंडा रियासत की वृद्धि १६३६-५५ ई०
मुगल साम्राज्य की वृद्धि १६२८-५७ ई०
पैमाना
अंग्रेज़ी मील
०
५०
१००
१५०
बिलासपुर
रायपुर
कटक
पुरी
कलिंगपटम
विजगापटम
राजमहेन्द्री
काकिनाडा
गोलकुंडा
रायचूर
बीजापुर
सतारा
बेलगाम
गोआ
हुबली
बंगलूर
श्रीरंगपटम
तंजौर
त्रिचनापली
मदुरा
मद्रास
पुदुचेरी
सूरत
दमन
बम्बई
जंजीरा
अहमदनगर
दौलताबाद
नासिक
बीदर
बरहानपुर
असीरगढ़

चन्द्रगिरि को दबाने लगे। तब चन्द्रगिरि के राजा ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस प्रकार चोलमंडल के उपजाऊ मैदान के लिए तीन शक्तियों में स्पर्द्धा पैदा हुई। बाद में तट की दो नयी शक्तियाँ, शिवाजी और युरोपियन, भी इस छीना-झपटी में कूद पड़ीं। इस मैदान की डेढ़ सौ बरस की यह पेचीदा कशमकश भारतीय इतिहास में भाग्यनिर्णायक सिद्ध हुई। यह तामिल मैदान पहले विजयनगर या चन्द्रगिरि के कर्णाटकी राजाओं के अधीन था, इस कारण इस युग में बाहर के लोग इसे कर्णाटक कहने लगे थे। असल में इसे कर्णाटक कहना गलत है। कर्णाटक तो वह ऊँचा पठार है जिसमें कन्नड भाषा बोली जाती है और जिसका केन्द्र मैसूर है।

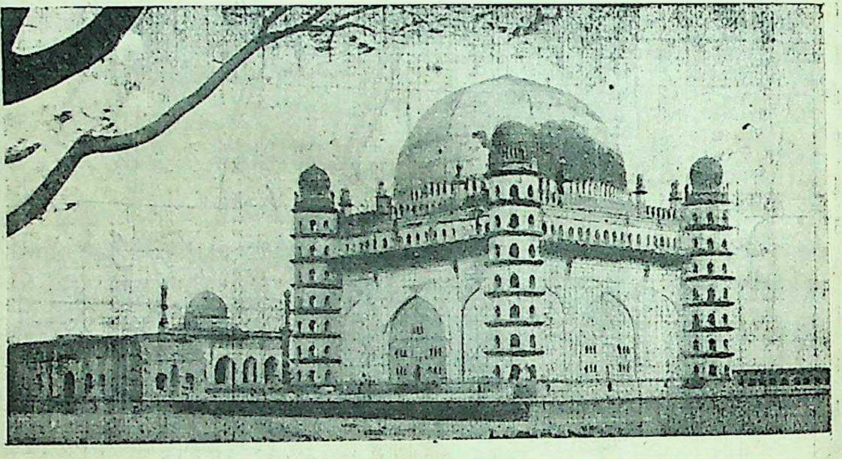

बीजापुर की सर्वोत्तम इमारत, मुहम्मद आदिलशाह का मकबरा, जो गोल गुम्बज़ नाम से प्रसिद्ध है [भा० पु० वि०]

मीर जुमला नाम का एक ईरानी सौदागर इस समय अब्दुल्ला कुतुबशाह का मन्त्री बन गया था। तामिल मैदान को जीतने में उसने विशेष भाग लिया और अब वह इसका बेताज बादशाह बन बैठा। बीजापुर और गोलकुंडा ने मिल कर उसपर चढ़ाई करना तय किया, तब मीर जुमला ने शाहजहाँ से शरण माँगी।

औरंगज़ेब कन्दहार से सीधा दक्खिन के शासन पर भेजा गया था (१६५३ ई०)। उसके आने से दक्खिन के मुगल सूबों में फिर सुव्यवस्था आ गयी। उसने गोलकुंडा पर एकदम चढ़ाई कर उसे घेर लिया और भारी हरजाना ले कर सन्धि की (१६५६ ई०)। मीर जुमला शाहजहाँ की सेवा में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आया, और उसकी तामिलनाड की जागीर भी मुगल साम्राज्य में शामिल हो गयी। उसी बरस मुहम्मद आदिलशाह की मृत्यु होने से बीजापुर में गोलमाल होने लगा। औरंगज़ेब जब गोलकुंडा घेरे हुए था, उस समय शिवाजी ने रत्नागिरि तक सब कोंकण जीत लिया। इधर औरंगज़ेब ने भी बीजापुर पर चढ़ाई की (१६५७ ई०)। तब शिवाजी ने बीजापुर से सहयोग किया और मुगलों के अधीन जुन्नर के किले में एकाएक घुस कर उसे लूट लिया, और अहमदनगर तक हमले करते हुए उत्तरी रास्ते बन्द कर दिये। औरंगज़ेब बीजापुर तक न बढ़ सका और सीमान्त के किले—बिदर, कल्याण, परेन्दा—ले कर उसने बीजापुर से सन्धि कर ली। मुगल-बीजापुर-सन्धि से उत्तरी कोंकण, जो शिवाजी की जागीर था, मुगल साम्राज्य के हिस्से में आ गया। इसी समय शाहजहाँ की बीमारी की खबर आयी और औरंगज़ेब उत्तर को बढ़ा। मीर जुमला को दक्खिन में छोड़ते हुए उसने उसे शिवाजी से सावधान रहने को लिखा।

§१६. **मुगल साम्राज्य का वैभव**—शाहजहाँ के शासन-काल में मुगल साम्राज्य का वैभव खूब चमका। उसे देख कर विदेशी चकित होते थे। शाहजहाँ ने तख्त-ताऊस और ताजमहल बनवाये। ताजमहल में उसने अपनी सुन्दरी और साध्वी स्त्री मुमताज़महल की स्मृति अमर की। उसकी अन्य रचनाओं में आगरा के किले की मोती-मसजिद तथा आधुनिक दिल्ली शहर उर्फ़ शाहजहाँनाबाद विशेष प्रसिद्ध हैं।

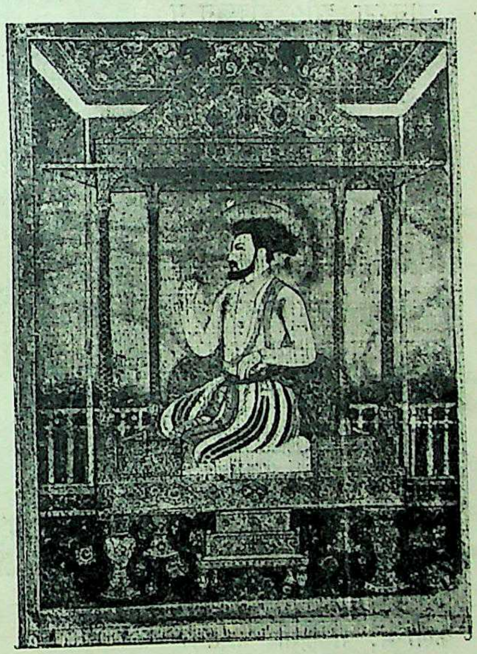

शाहजहाँ तख्ते-ताऊस पर—समकालीन चित्र
[रोथशील्ड-संग्रह, पैरिस; पर्सी ब्राउन के ग्रन्थ से]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुगल बादशाहत के जागीरदार, मनसबदार और रईस भी बड़े समृद्ध थे। मनसबदारों को बड़ी तनख्वाहें मिलती थीं, किन्तु उनकी मृत्यु के बाद उनकी सब सम्पत्ति का वारिस बादशाह होता था, इससे वे अपनी कमाई की खुले दिल से खर्च करते थे। बादशाह की और उनकी ऐयाशी के कारण प्रजा का रुपया फिर प्रजा के पास लौट आता था। देश के कारीगर उससे लाभ उठाते थे। बादशाह और प्रान्तीय सूबेदारों के अनेक कारखाने देश के कारीगरों का बड़ा सहारा थे। बादशाह को प्रजा के सुख-दुःख का ध्यान रहता था। १६३०–३१ ई० में गुजरात, खानदेश और दक्खिन में घोर दुर्भिक्ष पड़ा। शाहजहाँ ने उस समय उन प्रान्तों के लगान में बहुत सी छूट कर दी, और जनता में अनाज मुफ़्त बँटवाया।

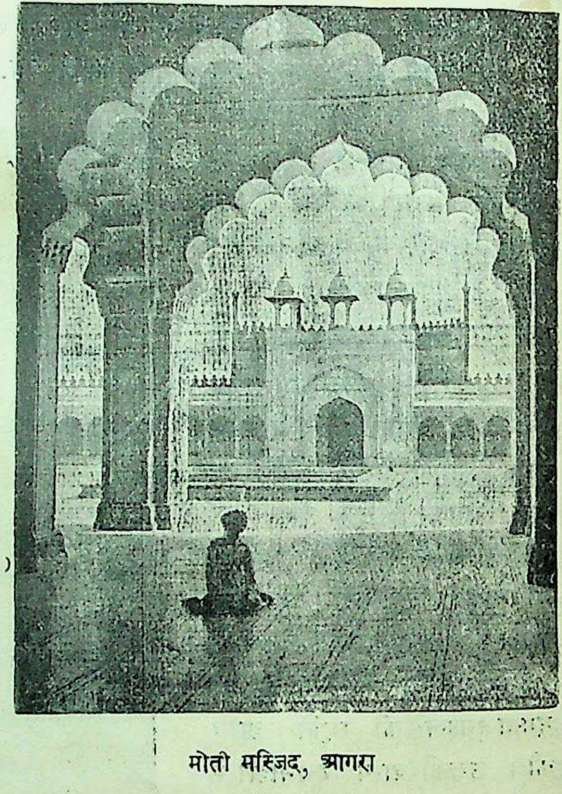

मोती मस्जिद, आगरा

देश की कारीगरी का उल्लेख करते समय यह याद रखना चाहिए कि भारतवासी पच्छिमी जातियों से इस समय ज्ञानक्षेत्र में पिछड़ गये थे। जहाज़रानी और सामुद्रिक व्यापार में, भूमंडल के ज्ञान में तथा तोपें बनाने और चलाने की कला में, पच्छिमी जातियाँ इमसे बहुत आगे बढ़ गयीं थीं। गोवा में पुर्त्तगाली पुस्तकें छापते थे; पर भारतवासियों को कभी उनसे वह कला सीखने की न सूझी। पच्छिम से कुछ नये व्यसन और रोग भी इस युग में आये। सन् १६०५ में बीजापुर में पहले-पहल पुर्त्तगाली तमाकू लाये, जिसको युरोप वालों ने अमेरिका में पाया। १६१६ ई०

में पंजाब में और १६१८–१९ ई० में दिल्ली-आगरा में ताऊन या प्लेग पच्छिम से आयी।

स्थापत्य, चित्रकला, संगीत और साहित्य के लिए यह समृद्धि का युग था; पर देशी भाषाओं के साहित्य में उस समय काव्य के अतिरिक्त और कुछ न था और काव्य भी भक्तों के उद्‌गारों के सिवाय सब कृत्रिम शैली के थे। हिन्दी कवि बिहारी (१६०२–६३ ई०) की 'सतसई' में मुगल-वैभव-युग की ऐयाशी का पूरा प्रतिबिम्ब है। आसाम की भाषा में बुरंजी नाम के इतिहास-ग्रन्थ लिखे जाते थे। भारतीय राज्यों के इतिहास सब फ़ारसी में ही लिखे जाते रहे। इस युग के भक्त कवियों में से सब से उज्ज्वल नाम महाराष्ट्र के तुकाराम (१६०७–४९ ई०) और समर्थ रामदास (१६०८–८१ ई०) के हैं। तुकाराम के कीर्त्तनों में शिवाजी शामिल होते थे और रामदास को तो शिवाजी का गुरु ही कहना चाहिए।

§१७. मुगलों का भ्रातृ-युद्ध (१६५८–६० ई०)—शाहजहाँ की बीमारी की खबर से चारों तरफ़ अव्यवस्था फैलने लगी। आसाम के आहोम राजा जयध्वज ने कामरूप और गौहाटी ले लिये। कोचबिहार के राजा प्राणनारायण ने उत्तरी बंगाल पर धावे किये। बंगाल में शुजा ने मुकुट धारण कर बनारस पर चढ़ाई की। गुजरात में उसके भाई मुराद ने भी बादशाह बन कर सूरत लूट लिया। औरंगज़ेब ने नर्मदा के घाट ऐसे रोके कि उसकी तैयारी की कोई खबर उस पार न जा सके। बादशाह ने सब राजकाज दाराशिकोह को सौंप रक्खा था। दारा ने शुजा के खिलाफ़ अपने बेटे सुलेमान को भेजा और मुराद के खिलाफ़ मारवाड़ के राजा जसवन्तसिंह को। औरंगज़ेब मुराद से मिल गया। जसवन्त के पास दोनों से लड़ने को शक्ति न थी। उज्जैन के पास धर्मट में वह हार कर भागा। सुलेमान शुजा को हरा कर मुँगेर भगा चुका था। तब उसने धर्मट की हार की खबर सुनी। इधर औरंगज़ेब ने चम्बल पार कर सामूगढ़ पर दारा को हराया और आगरा को घेर कर किले से जमना का रास्ता बन्द कर दिया। उसके बूढ़े बाप को पानी के लिए गिड़गिड़ाते हुए किला सौंप कर कैदी बनना पड़ा। दारा दिल्ली से पंजाब की ओर भागा और औरंगज़ेब ने उसका पीछा किया। मथुरा के पास औरंगज़ेब ने मुराद को शराब पिला कर कैद कर लिया और दिल्ली में अपने को बादशाह घोषित किया। दारा पंजाब से सिन्ध और सिन्ध से कच्छ भगा दिया गया।

शुजा अपने पिता को कैद से छुड़ाने को बढ़ा। दारा ने अपने मित्रों को उसकी मदद करने को लिखा। पंजाब से औरंगज़ेब उसके मुकाबले को लौटा और इलाहाबाद के पच्छिम खजवा पर दोनों का सामना हुआ। शुजा हार कर बंगाल की तरफ़ भागा। मीर जुमला को उसका पीछा करने भेजा गया। सुलेमान ने श्रीनगर (गढ़वाल) के राजा के यहाँ शरण ली। उधर गुजरात में औरंगज़ेब के ससुर शाहनवाज़ ने दारा को शरण दी और जसवन्तसिंह ने उसे अजमेर आने को कहा। खजवा से औरंगज़ेब उधर लौटा। अजमेर के पास दोराई में लड़ाई हुई, जहाँ शाहनवाज़ मारा गया और दारा फिर हार कर भागा। राजा जयसिंह उसके पीछे भेजा गया। दर्रा बोलान के पास एक पठान ने उसे पकड़ा दिया। सुलेमान की खातिर गढ़वाल के राजा पृथ्वीसिंह पर चढ़ाई की गयी, पर वह व्यर्थ हुई। तब जयसिंह ने उसके बेटे को रिशवत दे कर सुलेमान को पकड़वा लिया। शुजा को अराकान भागना पड़ा, जहाँ उसका अन्त हुआ। औरंगज़ेब का बेटा मुहम्मद सुलतान शुजा से मिल गया था; वह पकड़ा गया और अपने बाप की कैद में मरा। दारा, मुराद और सुलेमान भी मारे गये।

§१८. औरंगज़ेब बादशाह; आरम्भिक शान्ति-स्थापना (१६५९-६१ ई०)—औरंगज़ेब आलमगीर नाम से गद्दी पर बैठा और उसने उन प्रान्तों में शान्ति स्थापित की जिनमें भ्रातृ-युद्ध के समय अव्यवस्था मच गयी थी। मथुरा के पास जाटों के नेता नन्दराम ने लगान देना बन्द कर दिया था। उसे अब दबना पड़ा। चम्पतराय बुन्देला ने मालवे के रास्ते रोक लिये थे। उसके खिलाफ़ दतिया और ओरछा के बुन्देले राजा भेजे गये। वीरता से लड़ते हुए और अनेक विपत्तियाँ झेलते हुए चम्पत और उसकी स्त्री कालीकुमारी ने मालवे में प्राण दिये (१६६१ ई०)। उनका बेटा छत्रसाल बच कर भाग गया। सिक्ख गुरु हरगोविन्द के पोते हरराय ने दारा की मदद की थी। उसे सफ़ाई देने को बुलाया गया; उसने अपने बेटे रामराय को भेजा। रामराय ने दरबार में चापलूसी से काम लिया, तब हरराय ने अपनी मृत्यु से पहले छोटे बेटे को उत्तराधिकारी बनाया। वह बालक दिल्ली बुलाया गया, और वहीं चेचक की बीमारी से मर गया। तब उसका चचा तेगबहादुर सिक्खों का गुरु बना (१६६४ ई०)।

§१९. शिवाजी के खिलाफ़ अफ़ज़लख़ाँ और शाइस्ताख़ाँ; सूरत की लूट (१६५८–६४ ई०)—औरंगज़ेब के लौट जाने पर बीजापुर सरकार ने विद्रोही

शिवाजी को कुचलने का निश्चय किया। सेनापति अफ़ज़लखाँ बड़ी सेना के साथ पच्छिम भेजा गया। उसने शिवाजी को अपने पास हाज़िर होने का हुक्म भेजा। शिवाजी के मन्त्रियों ने अधीनता मानने की सलाह दी, पर जीजाबाई ने यह बात न मानी। प्रतापगढ़ के पहाड़ी किले के नीचे दोनों का मिलना तय हुआ। अफ़ज़ल ने शिवाजी को छाती लगाते हुए उसका गला घोंट कर छुरी मारनी चाही, तब शिवाजी ने अपने हाथ और आस्तीन में छिपाये बघनखे और बिछुए से उसका पेट फाड़ दिया (१६५९ ई०)। छिपे हुए मावलियों ने बीजापुरी फ़ौज को तहस-नहस कर दिया। तब शिवाजी ने दक्खिन कोंकण, कोल्हापुर ज़िला और पन्हाला का किला जीत लिये।

मीरजुमला के बाद शाइस्ताखाँ दक्खिन में मुगल सूबेदार बन कर आया था। अब उसने और बीजापुर के शाह ने मिल कर शिवाजी को दबाना चाहा। शाइस्ताखाँ और उसके सहायक राजा जसवन्तसिंह ने, जो अब औरंगज़ेब की सेवा में आ गया था, उत्तरी कोंकण के अतिरिक्त शिवाजी की असल जागीर पूना पर भी दखल कर लिया। उधर बीजापुर के अली आदिलशाह ने दक्खिनी इलाके छीन कर शिवाजी को पन्हाला के किले में घेरना चाहा (१६६० ई०)। शिवाजी पन्हाला से निकल गया। उसके विश्वस्त सरदार बाजी प्रभु ने अपनी जान दे कर बीजापुरी फ़ौज का रास्ता तब तक छेंके रक्खा, जब तक शिवाजी विशालगढ़ न पहुँच गया। बीजापुरी पन्हाला से आगे न बढ़े। अब शिवाजी के पास वही थोड़ा सा इलाका बच गया।

शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह ने पूना में छावनी डाल दी। शिवाजी एक रात अपने चुने साथियों के साथ छावनी में जा घुसा, और ठीक शाइस्ताखाँ के मकान में पहुँच कर मारकाट शुरू कर दी (१६६३ ई०)। शाइस्ताखाँ खिड़की से निकल भागा। इससे पहले कि मुगल फ़ौज सँभले, शिवाजी निकल गया। शाइस्ताखाँ पूने में जसवन्तसिंह को छोड़ स्वयम् औरंगाबाद चला गया। उधर बीजापुर के सुल्तान से शिवाजी ने दक्खिनी कोंकण (रत्नागिरि) और उत्तरी कनाडा तट जीत लिये।

उत्तरी कोंकण को वापिस लेकर दूसरे बरस शिवाजी ने सूरत पर चढ़ाई की (जनवरी १६६४ ई०)। वह मुगल साम्राज्य का सबसे समृद्ध बन्दरगाह था। मुगल फ़ौज किले में जा छिपी। चार दिन में एक करोड़ रुपया ले कर शिवाजी

लौट गया। फिर बरसात में उसने अहमदनगर और उसी जाड़े में कनाडा के समृद्ध शहर हुबली और कारवार को लूटा।

§२०. आसाम और चटगाँव की विजय (१६६०–६६ ई०)—शुजा को अराकान भगाने के बाद मीरजुमला ने कोचबिहार, कामरूप और आसाम पर चढ़ाइयाँ कीं। वहाँ से लौट कर उसकी शीघ्र मृत्यु हो गयी (१६६३ ई०)। तब शाइस्ताखाँ दक्खिन से बंगाल भेजा गया। बंगाल में उसने खूब नेकनामी कमायी। चटगाँव को जीत कर १६६६ ई० में उसने पुर्त्तगाली और अराकानी डकैतों का अड्डा तोड़ दिया। सारे बंगाल में इस पर खुशियाँ मनायी गयीं। आगे २१ बरस तक शाइस्ताखाँ के न्यायपूर्ण शासन में बंगाल ने मुगल साम्राज्य का पूरा वैभव देखा।

§२१. पुरन्दर की सन्धि; शिवाजी का कैद होना और भागना (१६६५-६६ ई०)—दक्खिन में शाइस्ताखाँ और जसवन्तसिंह की जगह शाहज़ादा मुअज़्ज़म और राजा जयसिंह कछवाहा को भेजा गया। जयसिंह ने शिवाजी के सब शत्रुओं को मिलाया और पूना के चारों तरफ़ उसके इलाके उजाड़ना शुरू किया। फिर उसने पुरन्दर के किले पर चढ़ाई की। शिवाजी कनाडा से लौट आया, पर पुरन्दर का घेरा न उठा सका। तब उसने जयसिंह से भेंट कर सन्धि की बात शुरू की, और अपने ३५ किलों में से २३ दे कर दक्खिन में बादशाह की सेवा करना स्वीकार किया।

अब शिवाजी और जयसिंह मिल कर बीजापुर की चढ़ाई पर चले; पर वहाँ से वे विफल लौटे। जयसिंह की सलाह से शिवाजी ने आगरे जाना तय किया। इस बहाने उसे मुगल बादशाहत तथा उत्तर भारत की हालत अपनी आँखों देखने का मौका मिला। जीजाबाई को शासन-सूत्र सौंप कर वह आगरा गया। जयसिंह के बेटे रामसिंह ने उसे औरंगज़ेब के दरबार में पेश किया (१२-५-१६६६ ई०); लेकिन दरबारियों का सा बरताव शिवाजी से न बन पड़ा। औरंगज़ेब ने उसे कैद में डाल दिया। तीन महीने पीछे मिठाई के टोकरे में अपने को छिपा कर वह उस कैद से निकल भागा, और भेस बदल कर मथुरा, प्रयाग, बुन्देलखंड, गोंडवाने के रास्ते महाराष्ट्र पहुँचा। दूसरे वर्ष दक्खिन से लौटते हुए बुरहानपुर में जयसिंह मर गया।

शिवाजी का भागना मुगल-वैभव-युग के अन्त का सूचक था। पानीपत के दूसरे युद्ध के बाद से सौ बरस तक मुगल बादशाहत का गौरव बढ़ता ही गया था।

मुगलों के शस्त्र तब अजेय समझे जाते थे और उनके साम्राज्य की सीमाएँ अनुल्लंघनीय। शिवाजी ने उस धाक को तोड़ दिया। औरंगज़ेब जैसे पराक्रमी प्रतिभाशाली कर्तव्यपरायण संयमी सजग सुशासक के गद्दी पर बैठने पर यह आशा की गयी थी कि साम्राज्य का वैभव और बढ़ेगा। बेशक साम्राज्य की सीमाएँ औरंगज़ेब ने बहुत बढ़ा दीं; पर उसकी आँखों के सामने ही वह साम्राज्य बोदा और दिवालिया हो गया। विरोधी शक्तियाँ अब इतनी जाग उठीं कि औरंगज़ेब की अनुपम-दृढ़ता भी उनसे लड़ते-लड़ते चूर हो गयी। एक अंश तक उसकी अपनी धर्मान्धता उन विरोधी शक्तियों को जगाने और भड़काने का कारण थी; किन्तु सच बात यह है कि शिवाजी की स्वाधीनता-चेष्टा औरंगज़ेब के राज्य से पहले प्रकट हो चुकी थी।

सन् १६६६ ई० में ही कैदी शाहजहाँ का देहान्त हुआ।

अध्याय ५

मुगल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार

(१६६७–१७२० ई०)

§१. सीमान्तों पर अशान्ति—मुगल साम्राज्य के इतिहास का यह नया पन्ना खुलते ही सीमान्तों की अशान्ति और औरंगज़ेब की हिन्दू-विरोधी नीति सामने आती है। शिवाजी दक्खिन पहुँच कर अपनी तैयारी में लग गया, इससे दक्खिनी सीमान्त पर फ़िलहाल शान्ति रही। किन्तु आहोम राजा चक्रध्वज ने धुबड़ी तक समूचा आसाम वापिस ले लिया (१६६७ ई०)। राजा रामसिंह कछवाहा को आसाम भेजा गया, जो आठ बरस के निरन्तर युद्धों के बाद अन्त में विफल लौटा। तब साम्राज्य के अधिकारियों ने रिशवत दे कर गौहाटी पर कब्जा कर लिया; पर राजा गदाधरसिंह ने उसे वापिस ले लिया और साथ ही कामरूप भी छीन लिया (१६८१ ई०)। यह स्थिति अन्त तक बनी रही।

उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर भी वही दशा थी। पुराने जमाने में काबुल नदी के काँठे और उसके उत्तर में पठान लोग न रहते थे। बाबर ने जब स्वात और बाजौर जीता, तब यूसुफ़ज़ई पठान पहले-पहल कन्दहार से स्वात के काँठे में आये थे। अब वे सिन्ध पार कर पखली (आजकल के हज़ारा ज़िले) पर दखल

करने लगे। इस प्रवास के सिलसिले में उन्होंने काबुल, पेशावर और अटक में लूट मचा दी। तीन बरस की चढ़ाइयों के बाद मुगल सरकार उन्हें सिन्ध के पूरब से निकाल सकी। उसी सिलसिले में राजा जसवन्तसिंह को जमरूद का थानेदार नियत किया गया।

किन्तु पठानों और मुगलों में बाबर के समय से अस्थिवैर चला आता था। सन् १६७२ में अकमल के नेतृत्व में अफ़रीदी उठ खड़े हुए। उन्होंने मीर जुमला के बेटे से, जो काबुल की सूबेदारी पर जाता था, दो करोड़ रुपया लूट लिया, और खैबर का रास्ता बन्द कर दिया। खटक अफ़गानों का नेता खुशालखाँ नामक कवि था। वह भी अकमल से जा मिला और कन्दहार से अटक तक सब पठान विद्रोह में शामिल हो गये। शाहज़ादा अकबर को कोहाट के रास्ते काबुल भेजा गया। आगरखाँ तुर्क और जसवन्तसिंह को कई घमासान लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। औरंगज़ेब खुद हसन-अब्दाल तक आया। पाँच वर्ष बाद पठानों को घूँस दे कर खैबर का रास्ता खुलवाया गया। तब अमीरखाँ को काबुल की सूबेदारी दी गयी। वह पठान फ़िरकों को एक दूसरे के खिलाफ उभाड़ने में सिद्धहस्त था। इस नीति से उसने २१ वर्ष तक शासन किया (१६७७–९८ ई०)। इस बीच में अकमल मर गया और खुशाल को उसके बेटे ही ने पकड़वा दिया (१६९० ई०)।

§२. शिवाजी की शासन-व्यवस्था—शिवाजी ने तीन वर्ष मुगलों से शान्ति रक्खी। इस बीच उसने एक बार पुर्त्तगालियों से गोवा छीनने की विफल चेष्टा की। शाहज़ादा मुअज़्ज़म अब दक्खिन का सूबेदार था। शिवाजी ने अपने बेटे सम्भाजी और सेनापति प्रतापराय गूजर को उसके दरबार में रक्खा। इस बीच शिवाजी का ध्यान अपने 'स्वराज्य' का सुप्रबन्ध करने में लगा था। उसकी शासन-व्यवस्था में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(१) लगान वसूल करने वाले ठेकेदारों को हटा कर उसने कृषकों के साथ राज्य का सीधा सम्बन्ध कर दिया।

(२) सैनिक और मुल्की कर्मचारियों का कार्य बहुत अंश तक अलग-अलग कर दिया, और कर की वसूली तथा देश-प्रबन्ध मुल्की कर्मचारियों को सौंप दिया।

(३) कर्मचारियों को जागीर के बजाय नकद वेतन देने का प्रबन्ध किया।

(४) 'अष्ट प्रधान' नाम की मन्त्रियों की एक समिति स्थापित की। इसकी कोई स्वतन्त्र शक्ति न थी तथा इसका मुख्य नेता पेशवा कहलाता था।

(५) सुनियन्त्रित सेना और किलों की सुश्रृंखल व्यवस्था की।

(६) अपने शासन में उदार धार्मिक नीति से काम लिया। लूट के समय भी शिवाजी की सेना को सख्त ताकीद थी कि बच्चों और स्त्रियों को कभी न पकड़ें, और मन्दिरों-मसजिदों तथा धर्मपुस्तकों को कभी न बिगाड़ें।

(७) अपने "स्वराज्य" के बाहर "मुगलाई" के इलाकों से "चौथ" और "सरदेशमुखी" तलब की। चौथ अर्थात् मालगुज़ारी का चौथाई माँगने में उसकी दलील यह होती थी कि "तुम्हारे बादशाह ने मुझे अपने राष्ट्र की रक्षा के लिए फ़ौज रखने को बाधित किया है। उसका खर्चा तुम्हें देना होगा।" चौथ न देने वालों को लूटा जाता था; देने वालों की रक्षा का भार लिया जाता था। वह एक किस्म का खिराज था। ज़मीन के ज़मींदार, देशमुख या वतनदार का मालगुज़ारी में १० रुपया सैकड़े का हक़ सरदेशमुखी कहलाता था। यह लगान वसूल करने की ज़िम्मेदारी के बदले में था। इस प्रकार शिवाजी का दावा था कि वह सारे दक्खिन की मालगुज़ारी स्वयम् वसूल करेगा और उसकी रक्षा का ज़िम्मा अपने ऊपर लेगा।

§३. औरंगज़ेब की धर्मान्ध नीति—औरंगज़ेब अपनी धर्मान्धता का प्रमाण पहले ही दे चुका था। प्रसिद्ध सन्त मियाँमीर के शिष्य शाह मुहम्मद को बुला कर उसने डाँटा, तथा सरमद नामक सूफ़ी को फाँसी दिला दी थी। अब उसकी नीति उग्र रूप में प्रकट हुई। बिक्री के माल पर अढ़ाई रुपया सैकड़ा चुंगी लगती थी। हिन्दुओं पर वह चुंगी पाँच रुपये सैकड़ा कर दी गयी। इसके बाद मुसलमानों के माल पर से महसूल बिलकुल उठा दिया गया। मुसलमान बनने वालों को सरकारी ओहदे, तरक्की तथा कैद की माफ़ी आदि मिलने लगीं। दिल्ली और अन्य बड़े-बड़े शहरों में संगीत बन्द करा दिया गया। शहरों में होली, दिवाली और मुहर्रम के जुलूस निकालना तथा स्त्रियों का कब्रें पूजना रोका गया। 'काफ़िरों' के मन्दिर और विद्यालय ढहा देने का हुक्म निकाला गया (१६६९ ई०)। उसके बाद सब हिन्दू पेशकारों और दीवानों को राजकीय सेवा से निकालने का हुक्म हुआ; पर पीछे आधे पद हिन्दुओं को देने पड़े। इसके बाद मूर्तिपूजा रोकने का फ़रमान निकाला गया। अन्त में औरंगज़ेब ने गैर-मुस्लिमों पर फिर से जज़िया

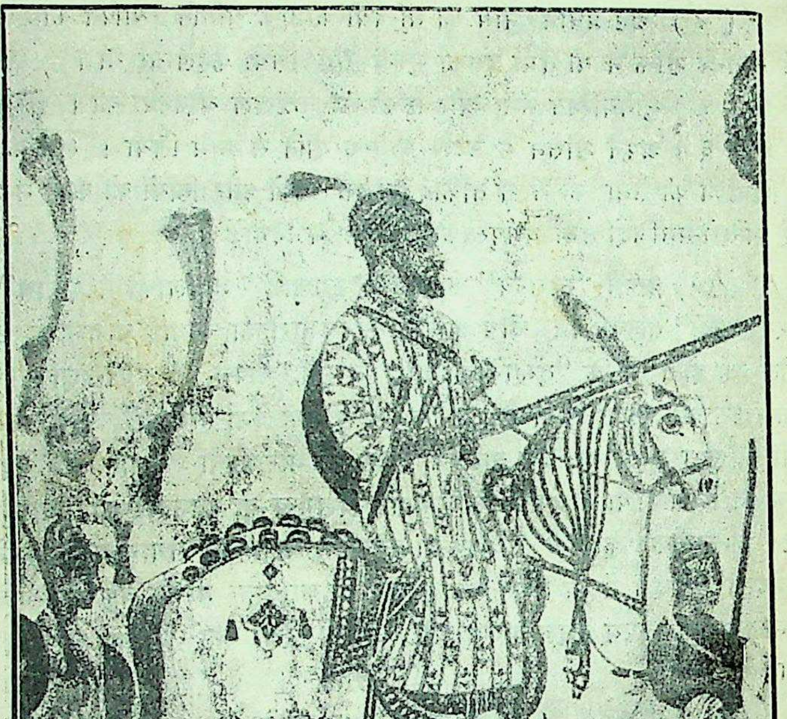

शिवाजी

(मीर मुहम्मद कृत १६८६ ई० से पहले का चित्र जो अब पैरिस के राष्ट्रीय पुस्तकालय में है)

लगा दिया (१६७९ ई०)। जज़िया एक किस्म का मुंड-कर था, इसलिए गरीबों पर उसका बोझ अधिक पड़ता था।

§४. शिवाजी का पिछला चरित (१६७०–८० ई०)—सन् १६७० ई० से शिवाजी ने फिर लड़ाई छेड़ दी। पुरन्दर की सन्धि के अनुसार जो किले उसने मुगलों को दे दिये थे, उनको एक-एक कर के फिर छीन लिया। उसने सूरत को फिर लूटा और बराड तथा बागलान (नासिक और सूरत के बीच के पहाड़ी इलाके) पर चढ़ाई कर साल्हेर का गढ़ ले लिया (१६७० ई०)। सन् १६७१ के अन्त में बहादुरखाँ को दक्खिन का सूबेदार बना कर भेजा गया। दिलेरखाँ पठान उसका सहायक था। उन्हें कोई स्थायी सफलता न हुई। शिवाजी ने बागलान का दूसरा बड़ा गढ़ मुल्हेर भी ले लिया। इसके बाद उसने सूरत के ठीक दक्खिन के कोंकण के प्रदेश—कोलवन—और नासिक ज़िले के कुछ अंश पर भी दखल कर लिया (१६७२ ई०)। फिर बराड और तेलंगाना तक कई धावे मारे। सन् १६७२ से १६७७ ई० तक शिवाजी मुगल इलाकों पर बराबर धावे मारता रहा। बहादुरखाँ और दिलेरखाँ ने उसे किसी और इलाके पर दखल न करने दिया, पर वे उसके धावे न रोक पाते थे। सन् १६७२ में बीजापुर का अली आदिलशाह मर गया। तब शिवाजी ने दक्खिन की ओर बढ़ कर पन्हाला और सतारा ले लिये, तथा हुबली और कनाडा पर भी धावे किये।

सन् १६७४ के शुरू में दिलेरखाँ ने कोंकण पर और बीजापुरियों ने पन्हाला तथा सतारा पर एक साथ चढ़ाई की; पर उन्हें कोई सफलता न मिली। उसी समय दिलेरखाँ को अपने पठान भाइयों से लड़ने के लिए उत्तरी सीमान्त पर बुला लिया गया। उसी बरस शिवाजी ने रायगढ़ में अपना अभिषेक कराया और तब से वह शिव छत्रपति कहलाने लगा। अब वह एक विद्रोही सरदार नहीं बल्कि स्वतन्त्र राजा हो गया। अभिषेक के एक महीना पीछे उसने बहादुरखाँ की छावनी पर धावा बोल कर एक करोड़ रुपया लूट लिया। दूसरे बरस बहादुरखाँ को सन्धि की बातों में बहका कर उसने बीजापुर से फोंडा (गोवा के पास) का किला, कोल्हापुर और कनाडा का तट (कारवार, अंकोला) छीन लिये। इसी समय बेदनूर की रानी ने शिवाजी की अधीनता मान कर वार्षिक कर देना शुरू किया।

तांजोर में शाहजी की जागीर का उत्तराधिकारी उसका छोटा बेटा व्यंकोजी हुआ था। उसका मन्त्री रघुनाथ नारायण हनुमन्ते था। हनुमन्ते व्यंकोजी को

छोड़ कर शिवाजी की तरफ़ चला आया, और रास्ते में गोलकुंडा के वज़ीर मदन्न पण्डित से मिला। उनकी योजना के अनुसार कुतुबशाह ने एक लाख होन (सोने का सिक्का) वार्षिक शिवाजी को देना कबूल कर के मुगलों से गोलकुंडा की रक्षा का भार उसे सौंप दिया (१६७६ ई०)। शिवाजी का दूत प्रह्लाद नीराजी गोलकुंडा में रक्खा गया। बहादुरखाँ अब बीजापुर को दबाने

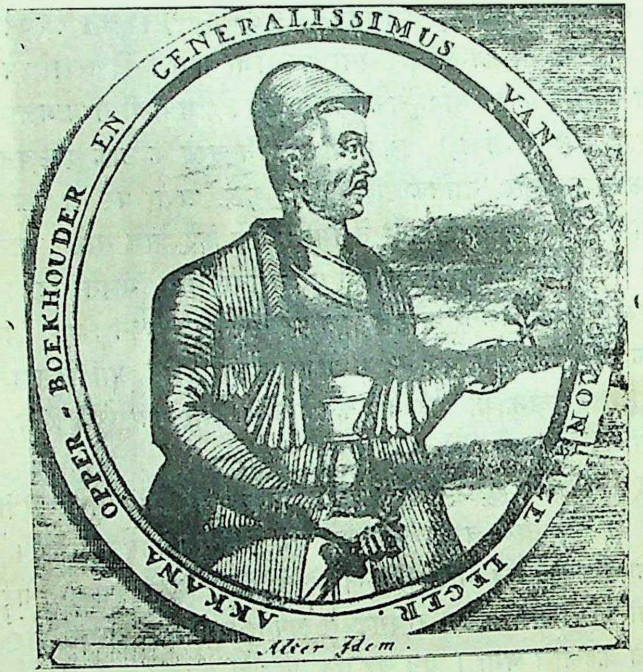
OPPER - BOEKHOUDER EN GENERALISSIMUS VAN
AKKANA
LEGER
Alter Idem

सेनापति अकन्न—एक समकालीन ओलन्देज़ चित्र [भा० पु० वि०]

में लगा था, और शिवाजी को भी दूर जाना था, इसलिए दोनों ने समझौता कर लिया। शिवाजी ने महाराष्ट्र का राज्य-कार्य पेशवा मोरो पिंगले को सौंपा और स्वयम् सन् १६७७ के शुरू में रायगढ़ से सीधे हैदराबाद की ओर प्रस्थान किया। वहाँ उसका खूब स्वागत किया गया। कुतुबशाह ने पाँच हज़ार सेना, तोपखाना तथा चढ़ाई का तमाम खर्चा दे कर शिवाजी को विदाई दी। कृष्णा नदी पार कर शिवाजी ने "कर्णाटक" पर चढ़ाई की और वेल्लूर से तांजोर की सीमा

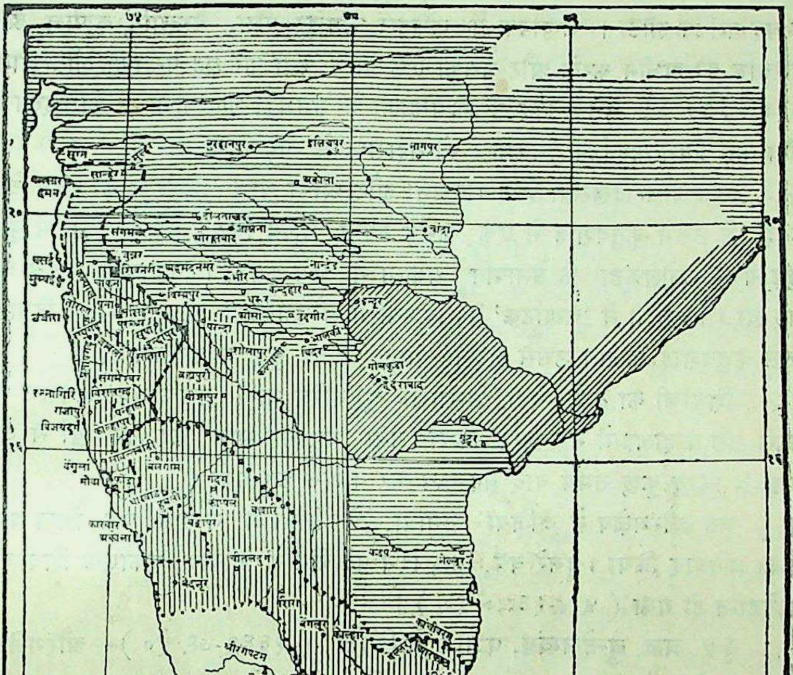
शिवाजी का राज्य
मुगल इलाका १६२० ई० में
बीजापुर " " "
गोलकुंडा " " "
शिवाजी का राज्य १६७४ ई० में
" " १६८० ई० में
पैमाना
अंगरेजी मील
० ५० १०० १५०
सूरत
दमन
बुरहानपुर
इलिचपुर
नागपुर
अकोला
दौलताबाद
औरंगाबाद
चांदा
अहमदनगर
पूना
बम्बई
जंजीरा
बीड
नान्देड़
सतारा
उदगीर
शोलापुर
बीदर
गोलकुंडा
हैदराबाद
रत्नागिरि
राजापुर
विजयदुर्ग
कोल्हापुर
बीजापुर
वेंगुर्ला
गोवा
बेलगांव
धारवाड़
गदग
कोप्पल
बल्लारी
कारवार
अंकोला
चीतलदुर्ग
बेदनूर
सिरा
बंगलूर
कोलार
श्रीरंगपट्टम
मैसूर
कांजीवरम
जिंजी
पुदुचेरी
त्रिचनापल्ली
तंजोर
कडप्पा
नेल्लूर
कर्नूल
२०
१६
१२
७४
७८
८२

तक सब देश जीत कर महाराष्ट्र के ढंग पर उसका फ़ौजी और माली बन्दोबस्त किया। हनुमन्ते के हाथ में उसका प्रबन्ध छोड़ कर असल कर्णाटक के पूरबी छोर

से वह वापिस लौटा। कर्णाटक में कोल्हार, बेंगलूर, सेरा, बेल्लारि, कोप्पल और धारवाड़ को अधीन करके और उसका एक प्रान्त बना कर वह पन्हाला लौट आया (१६७८ ई०)। उसके बाद उसने पन्हाला से तुंगभद्रा तक बीजापुर का इलाका जीत कर अपने कर्णाटक के प्रान्त को महाराष्ट्र से जोड़ दिया।

इस बीच दिलेरखाँ फिर दक्खिन लौट आया था। शिवाजी को मदद देने के दंड में उसने कुतुबशाह से एक करोड़ रुपया तलब किया, जिससे दोनों में युद्ध छिड़ गया। गोलकुंडा के सेनापति अक्कन्न ने उसे हराया। यह वज़ीर मदन्न का भाई था। शिवाजी ने 'कर्णाटक' की विजयों में से कुतुबशाह को कुछ भी न दिया। इससे कुतुबशाह ने अब उससे लड़ना चाहा, पर वह कुछ न कर सका।

शिवाजी का बड़ा बेटा सम्भाजी दुश्चरित्र था। उसके एक अपराध के कारण उसे पन्हाला में नज़रबन्द किया गया था; वह भाग कर दिलेरखाँ से जा मिला! किन्तु कुछ समय बाद वह ऊब कर वापिस आ गया।

जब औरंगज़ेब ने जज़िया लगाया, तो शिवाजी ने एक पत्र लिख कर उसका प्रतिवाद किया। दूसरे वर्ष, कुछ दिन की बीमारी के बाद, एकाएक शिवाजी का देहान्त हो गया (५-४-१६८० ई०)।

§५. ब्रज, बुन्देलखंड, पंजाब के विद्रोह (१६६९-७९ ई०)—औरंगज़ेब के हुक्म के मुताबिक जब मथुरा में मन्दिर तोड़े गये, तब गोकला जाट के नेतृत्व में वहाँ के किसान बिगड़ उठे (१६६९ ई०)। मथुरा का फ़ौजदार उनसे लड़ता हुआ मारा गया। दोआब और आगरा तक बलवा फैल गया, जिसे दबाने के लिए बादशाह को स्वयम् जाना पड़ा। अन्त में तोपों के मुकाबले में जाट हार गये तथा गोकला कैद हुआ और मार डाला गया।

उज्जैन में जो शाही कर्मचारी मन्दिर तोड़ने गये, उन्हें प्रजा ने मार डाला। ओरछा में उन्हें बुन्देलों ने मार भगाया। दिल्ली के पच्छिम नारनौल का ज़िला सतनामी पन्थ का केन्द्र था। वह पन्थ राजपूत, बनिये इत्यादि सभी जातों के मिश्रण से बना था। १६७२ ई० में सतनामियों ने विद्रोह किया और वे दिल्ली के पास तक जा पहुँचे। अन्त में तोपों और बड़ी फ़ौजों के मुकाबले में वे भी परास्त हुए।

तेगबहादुर जब सिक्खों के गुरु बने तो औरंगज़ेब ने उन्हें दिल्ली बुलाया। वहाँ से राजा रामसिंह उन्हें आसाम ले गया। आसाम से लौट कर गुरु ने पंजाब

में फिर छेड़-छाड़ शुरू कर दी और कश्मीर के हिन्दुओं को उत्साहित किया कि वे मुसलमान न बनें। बादशाह ने तेगबहादुर को दिल्ली बुला कर मुसलमान होने को कहा, परन्तु उसका हुक्म न मानने पर उन्हें अपनी जान देनी पड़ी (१६७५ ई०)। दिल्ली में सीसगंज गुरुद्वारा उस घटना का स्मारक है।

§६. छत्रसाल का उदय—(१६७१-७६ ई०)—अपने माता-पिता की मृत्यु पर छत्रसाल बुन्देला केवल ग्यारह बरस का था। अपने देश में तब उसे कोई शरण न देता था। उस दशा में उसने राजा जयसिंह की सेवा स्वीकार कर ली थी। जयसिंह के साथ वह पुरन्दर और बीजापुर गया, और फिर दिलेरखाँ के साथ गोंडवाने की चढ़ाई में। वहाँ से वह एक दिन अपनी स्त्री कमलावती के साथ खिसक गया और महाराष्ट्र में पहुँच कर शिवाजी से मिला (१६७१ ई०)। शिवाजी ने उसे अपने देश में जा कर सिर उठाने की सलाह दी। छत्रसाल तब दतिया के राजा शुभकर्ण बुन्देला से मिला, जो मुगलों की तरफ़ से दक्खिन में लड़ रहा था। छत्रसाल के राष्ट्रीय विद्रोह के प्रस्ताव को शुभकर्ण ने पागलपन कहा और उसे एक अच्छा मनसब दिलाना चाहा। छत्रसाल ने वह मंजूर न किया। ५ सवारों और २५ पियादों की अपनी सेना लिये वह बुन्देलखंड पहुँचा, और पूरबी बुन्देलखंड को आधार बना कर धामुनी ज़िले पर धावे करने लगा। वहाँ के कई फ़ौजदारों को उसने बारी-बारी से हराया।

§७. राजपूताने का युद्ध (१६७६-८१ ई०)—१६७८ ई० के अन्त में राजा जसवन्तसिंह जमरूद में ही मर गया। उसके पीछे कोई सन्तान न थी। औरंगज़ेब ने मारवाड़ राज्य को जब्त करना तय कर तुरन्त शाही फ़ौजदार भेज दिये और स्वयम् बड़ी फ़ौज के साथ अजमेर पहुँच गया। उधर जसवन्त की विधवा ने लाहौर में एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम अजित रक्खा गया। दुर्गादास राठौड़ राजपरिवार को दिल्ली ले आया। मारवाड़ से औरंगज़ेब जिस दिन दिल्ली पहुँचा (२-४-७६ ई०), उसी दिन उसने सारे साम्राज्य में जज़िया लगा दिया। उसने दुर्गादास से अजित को तलब किया और उसे मुसलमान बनने की शर्त पर राज्य देना स्वीकार किया। मुट्ठी भर साथियों के साथ दुर्गादास रानियों और उस बालक को लेकर निकल भागा। मुगल फ़ौज ने तब मारवाड़ पर चढ़ाई की। बादशाह ने खुद अजमेर में डेरा जमाया। पुष्कर घाटी की लड़ाई

में राजपूतों का भारी संहार हुआ। मारवाड़ के मैदान पर शाही फ़ौज ने कब्जा कर लिया और राजपूतों ने पहाड़ों और जंगलों की शरण ली।

मेवाड़ के राणा राजसिंह ने अजित का पक्ष लिया। तब औरंगज़ेब ने उदयपुर पर भी चढ़ाई की। राणा पहाड़ों में और अन्दर चला गया। शाही फ़ौज ने चित्तौड़ को अपना आधार बनाया। राजसिंह का आधार तब आड़ावला की चोटी पर कुम्भलमेर का गढ़ था। उसके पच्छिम मारवाड़ में और पूरब मेवाड़ में दोनों

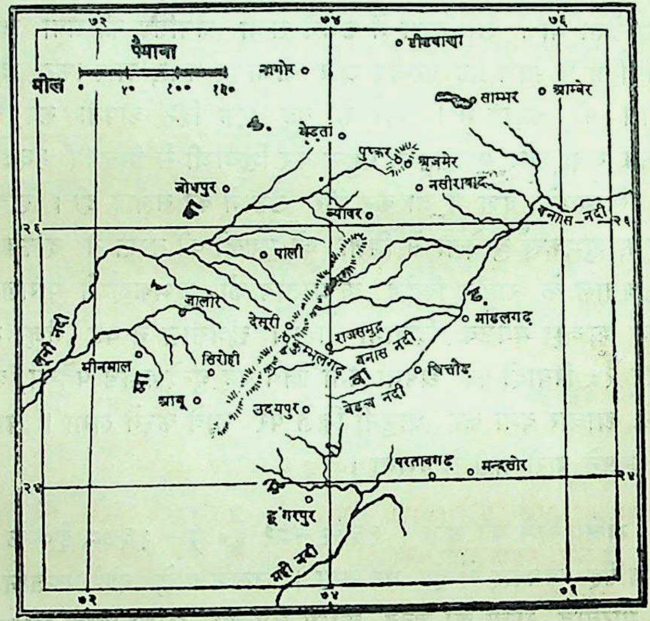
७२
७४
७६
पैमाना
मील ० ५० १०० १५०
नागोर
डीडवाणा
साम्भर
आम्बेर
मेड़ता
पुष्कर
अजमेर
नसीराबाद
जोधपुर
ब्यावर
बनास नदी
२६
पाली
जालोर
देसूरी
माण्डलगढ़
राजसमुद्र
बनास नदी
कुम्भलगढ़
लूनी नदी
मीनमाल
सिरोही
चित्तौड़
आबू
उदयपुर
बेड़च नदी
परतावगढ़
मन्दसोर
२४
डूंगरपुर
मही नदी
७२
७४
७६

राजपूत युद्ध

तरफ़ मुगल फ़ौजें थीं। औरङ्गज़ेब ने तीन तरफ़ से राणा के केन्द्र तक घुसने की योजना की। शाहज़ादा अकबर को मारवाड़ से देसूरी और झीलवाड़ा घाटियों द्वारा, शाहज़ादा मुअज़्ज़म उर्फ़ शाहआलम को उत्तर से राजसमुद्र के रास्ते, तथा शाहज़ादा आज़म को उदयपुर के रास्ते कुम्भलमेर पहुँचने का आदेश मिला। मुअज़्ज़म और आज़म एक पग भी न बढ़ सके। अकबर ने अपने हरावल को झीलवाड़ा तक पहुँचा दिया। आगे आठ मील पर कुम्भलमेर था। राजसिंह और दुर्गादास ने तब अकबर को फोड़ लिया। उन्होंने उसे समझाया कि तुम्हारा बाप अपनी धर्मान्धता

से साम्राज्य को नष्ट किये डालता है, तुम अपनी बपौती को बचाओ। बात पक्की हुई, पर उसी समय राजसिंह का देहान्त हो गया और एक मास शोक मनाने में टल गया।

१ जनवरी सन् १६८१ को अकबर ने अपने को बादशाह घोषित किया। चार मुल्लाओं ने औरंगज़ेब के खिलाफ़ फ़तवा दे दिया। पर एकाएक अजमेर पर टूटने के बजाय अकबर ने वहाँ तक पहुँचने में १५ दिन लगा दिये। इस बीच में सब फ़ौजें वहाँ आ जुटी थीं। राजपूत सेना के निकट आने पर औरंगज़ेब ने झूठी चिट्ठी वाली वही चाल चली जिससे शेरशाह ने मेड़ताँ पर सफलता पायी थी। गलती मालूम होने पर दुर्गादास ने अकबर को शरण दी। राजपूताने में उसे सुरक्षित न जान, उसने मुगल सूबों को चीरते हुए उसे सम्भाजी के दरबार में रायगढ़ पहुँचा दिया।

इधर कुछ मास बाद राजसिंह के बेटे जयसिंह ने बादशाह से सन्धि कर ली। जज़िये की माँग के बदले में उसने तीन परगने सौंप दिये। मारवाड़ बादशाह के कब्ज़े में रहा।

§८. मुगल साम्राज्य का अन्तिम विस्तार (१६८१-८६ ई०)—शिवाजी की मृत्यु के बाद अष्ट प्रधान ने रायगढ़ में उसके छोटे बेटे राजाराम को राजा घोषित किया; पर सम्भाजी ने तुरन्त रायगढ़ पर चढ़ाई कर उसे कैद में डाल दिया और उसके साथियों का दमन किया। उसने अष्ट प्रधान की परवा न की, और प्रयाग के एक कनौजिया पंडे 'कविकुलेश' को, जो मन्त्र-तन्त्र और कृत्या-अभिचार में कुशल था, अपना सलाहकार बनाया। महाराष्ट्र के लोग इस कारण उससे और भी घृणा करने लगे।

मराठों और अकबर का मेल खतरनाक था, इसलिए राणा जयसिंह से सन्धि कर औरंगज़ेब सीधा दक्खिन आया। उसने महाराष्ट्र के खिलाफ़ बीजापुर से भी मदद लेनी चाही। परन्तु बीजापुर और गोलकुंडा के सुल्तान अब यह अनुभव करने लगे थे कि उनके राज्य यदि मुगलों के हाथ में जाने से बचे हैं तो केवल मराठा राज्य की बदौलत; इसलिए उन्होंने मराठों को मदद दी।

औरंगज़ेब दक्खिन पहुँचा तो सम्भाजी जंजीरा द्वीप के सिद्दियों से लड़ने में लगा था। एक मुगल फ़ौज ने उत्तरी कोंकण से घुस कर कल्याण का किला ले लिया (१६८२ ई०)। तब वह जंजीरा छोड़ कर उधर मुड़ा और मुगलों को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कोंकण से निकाल कर उसने कल्याण को घेर लिया। मुगल इलाकों पर धावे मारने ही में उसने अपनी रक्षा का उपाय माना, और औरंगाबाद, बिदर, नान्देड और चाँदा तक धावे किये। १६८३ ई० में मुगलों को कल्याण भी छोड़ना पड़ा। तब सम्भाजी ने कोंकण की विजय पूरी करने के लिए अकबर के साथ गोवा पर चढ़ाई की।

किन्तु मुगलों ने फिर युद्ध छेड़ दिया। शाहआलम एक फ़ौज ले कर दक्खिनी कोंकण में घुसा, तब गोवा सम्भाजी के हाथ जाते-जाते बच गया (१६८४ ई०)। उत्तरी कोंकण में भी एक मुगल फ़ौज घुस आयी। इन दोनों फ़ौजों को कोंकण से निकाल कर सम्भाजी विलास में डूब गया।

औरंगज़ेब ने अब यह समझ लिया था कि महाराष्ट्र का दमन करने के लिए बीजापुर और गोलकुंडा को लेना आवश्यक है। इसलिए बीजापुर पर चढ़ाई कर घेरा डाला गया। मदन्न पंडित ने बीजापुर को मदद भेजी; तब शाहआलम को गोलकुंडा भेजा गया। उसने हैदराबाद ले लिया। कुतुबशाह गोलकुंडा के किले में भाग गया। उससे भारी हरजाना, बहुत सा इलाका तथा मदन्न और अक्कन्न को पदच्युत करने का वचन ले कर शाहआलम वापस आया। डेढ़ बरस तक घिरे रहने के बाद इधर बीजापुर भी औरंगज़ेब के हाथ आ गया (१६८६ ई०)। अकबर तब कोंकण से ईरान चला गया।

बीजापुर के बाद गोलकुंडा की बारी आयी। कुतुबशाह ने शाहआलम से मिन्नत की कि पिछले बरस की सन्धि के अनुसार उसे बचा रहने दिया जाय। पर औरंगज़ेब ने इस बातचीत के अपराध में ही अपने बेटे को उसके बेटों सहित क़ैद में डाल दिया! मीर शहाबुद्दीन नामक एक तूरानी सेनापति ने मेवाड़-युद्ध में बहादुरी दिखायी थी और फिर मराठा युद्ध में फ़ीरोज़जंग का पद पाया था। शाहआलम की अनुपस्थिति में उसे गोलकुंडा का घेरा सौंपा गया। अन्तिम समय कुतुबशाह ने बड़ी वीरता दिखायी। एक बरस के घोर युद्ध के बाद गोलकुंडा का पतन हुआ (१६८७ ई०)।

मुगल सेना तब कर्णाटक और तामिल प्रान्तों की ओर बढ़ी और मसुलीपट्टम से पलार नदी तक उसने सब इलाका ले लिया; पर वहाँ उसे जिंजी के मराठों ने रोक दिया। उधर एक मुगल सेना फिर कोंकण भेजी गयी। बदहोश

सम्भाजी संगमेश्वर पर पकड़ा गया (जनवरी १६८६ ई०) और औरंगज़ेब ने उसे अन्धा करवा कर मरवा डाला।

महाराष्ट्र के अष्ट प्रधानों ने राजाराम को कैद से छुड़ा कर रायगढ़ में सभा की। सम्भाजी के बेटे शिवाजी २य (उर्फ़ शाहू) का अभिषेक किया गया। उसकी माँ येसूबाई के प्रस्ताव पर राजाराम स्थानापन्न राजा बना। वज़ीर आसादखाँ के बेटे इत्तिक़ादखाँ ने तब रायगढ़ को आ घेरा। राजाराम वहाँ से निकल कर पन्हाला चला गया और रायगढ़ फ़तह हो गया। येसूबाई शाहू के साथ कैद हुई। इत्तिक़ाद को इसके उपहार में जुल्फ़िक़ारखाँ का पद मिला। येसूबाई के लिखने से राजाराम ने राजमुकुट धारण किया। उसने मराठा शासन का पुनःसंघटन किया, स्वयम् अपने मन्त्रियों के साथ, जिनमें प्रल्हाद नीराजी मुख्य था, जिजी जाना तय किया और महाराष्ट्र की रक्षा एक 'हकूमतपनाह' (अधिनायक) के हाथ में सौंप दी. जिसे राजा के सब अधिकार दिये गये। उस अधिनायक का नाम था रामचन्द्र नीलकंठ बावडेकर। शंकर मल्हार उसका सचिव था। पन्हाला से राज़ाराम की मंडली अनेक जगह बाल-बाल बचती हुई जिंजी ज़ा निकली (१६९० ई०)।

दक्खिनी छोर के सिवाय समूचा भारत अब औरंगज़ेब के अधिकार में आ चुका था; पर तेईस बरस पहले जैसे शिवाज़ी उसके हाथ से निकल गया था, वैसे ही इस बार राजाराम निकल गया।

§९. महाराष्ट्र का स्वतन्त्रता-युद्ध (१६९०–१७०७ ई०)—राजाराम जिंजी पहुँचा तो उसके पास न कोई इलाका था, न कोष और न सेना। तो भी उसने अपने शासन का फिर से संघटन किया। उसने पेशवा से भी ऊँचा 'प्रतिनिधि' का एक नया पद बनाया और उसपर प्रह्लाद नीराजी को नियुक्त किया। जागीर न देने की शिवाजी वाली नीति अब उसने छोड़ दी और मराठा सरदारों को मुगल इलाकों में जागीरें बाँट कर उन्हें जीतने की इजाज़त और प्रेरणा दी। सेनापति सन्ताजी घोरपडे और धनाजी जादव राजाराम को जिंजी पहुँचा कर महाराष्ट्र लौट आये। जुल्फ़िक़ारखाँ ने जिंजी का घेरा डाल दिया।

महाराष्ट्र में केवल तीन किले मराठों के पास बचे थे; पर रामचन्द्र ने तीन और वापस ले लिये। उधर जिंजी का घेरा और मज़बूत किया गया। वज़ीर आसादखाँ और शाहज़ादा कामबख्श भी वहाँ भेजे गये। रामचन्द्र ने महाराष्ट्र से ३० हज़ार सेना जमा कर सन्ताजी और धनाजी को उधर भेजा। सन्ताजी ने

तामिलनाड में पहुँचते ही दो मुगल फ़ौजदार पकड़ लिये और कडप से कांची तक सब मुगल थाने उठा कर अपने फ़ौजदार बैठा दिये। जुल्फ़िक़ार को अपनी फ़ौज समेटनी पड़ी। अब सन्ताजी ने उल्टा उसे घेर लिया (१६९२ ई०)। औरंगज़ेब ने यह देख कर घिरी हुई फ़ौज को कुमुक भेजी। सन्ताजी का स्वभाव उग्र था, अतः राजाराम ने अब मुख्य सेनापति का पद धनाजी को दिया (१६९३ ई०)। इससे सन्ताजी रूठ कर महाराष्ट्र चला आया। इधर उसने हैदराबाद तक धावे मारे और जुल्फ़िक़ार ने फिर जिंजी को घेर लिया।

दक्खिन के सब सूबों में मराठों ने अपने सूबेदार, कामविशदार और राहदार नियत कर दिये। कामविशदार मालगुज़ारी की चौथाई वसूल करते और राहदार चुंगी लेते थे; सूबेदार उनकी मदद के लिए ७ हज़ार सेना के साथ रहते थे। हर सूबे के दुर्गम स्थानों में उन्होंने गढ़ियाँ बना लीं, जहाँ वे कठिनाई के समय शरण ले सकें। अनेक गाँवों के मुखियों ने मराठों से मिल कर मुगलों को कर देना बन्द कर दिया; अनेक मुगल हाकिम खुद चौथ देने लगे। स्थानीय प्रजा दुहरे हाकिमों से तंग आ कर सभी जगह मुगलों के खिलाफ़ लड़ने को तैयार हो गयी। उत्तर भारत पर भी दक्खिन का प्रभाव पड़ने लगा। औरंगज़ेब ने देखा कि वह दक्खिन पर काबू नहीं कर सकता तो उसने जल्दी लौटने का इरादा छोड़ कर भीमा के किनारे ब्रह्मपुरी पर अपनी स्थायी छावनी डाल दी, और शाहआलम को कैद से छोड़ कर उत्तर-पच्छिमी सीमान्त की रक्षा के लिए भेजा (१६९५ ई०)।

इसी वर्ष के अन्त में सन्ताजी बीजापुर ज़िले में और धनाजी भीमा पर प्रकट हुआ; कई मराठे सरदार बराड़ और खानदेश पर टूट पड़े। धनाजी ने भीमा से जिंजी पहुँच कर वहाँ का घेरा फिर उठवा दिया। सन्ताजी ने चीतलद्रुग ज़िले में एक फ़ौजदार को बड़ी सफ़ाई से पकड़ कर और दूसरे को मार कर उनकी फ़ौजों को कुचल दिया। मुगल फ़ौज में उसकी ऐसी धाक जम गयी कि जब कोई घोड़ा पानी पीने में अटकता तो उससे कहते—'क्या तुझे पानी में सन्ताजी दिखायी देता है ?'

दक्खिन में युद्ध की प्रगति का अब यह रूप हो गया था कि उसका आरम्भ हमेशा सन्ताजी की ओर से होता, और मुगल नेताओं को अपनी रक्षा का ढंग सोचना पड़ता। ब्रह्मपुरी के पड़ोस तक उसके दल धावे मारते थे। अपनी इन विजयों के बाद सन्ताजी जिंजी गया और उसने फिर सेनापति बनना चाहा। प्रह्लाद

-नीराजी अब मर चुका था। धनाजी और सन्ताजी में परस्पर लड़ाई हो गयी। राजाराम ने धनाजी का पक्ष लिया। धनाजी हार कर भागा; राजाराम को सन्ताजी ने पकड़ लिया और फिर उसके आगे हाथ जोड़ कर कहा, "मैं अब भी तुम्हारा सेवक हूँ!" दोनों नेताओं के महाराष्ट्र पहुँचने पर फिर घरेलू युद्ध हुआ। सन्ताजी के कठोर नियन्त्रण से तंग आ कर उसकी सेना धनाजी से जा मिली; तब उसे अकेले भागना पड़ा। पीछे उसके एक शत्रु ने बदला चुकाने के लिए उसे मार डाला (१६६७ ई०)।

उसी साल जिंजी का घेरा फिर कसा गया। तब सात साल पीछे अन्त को जुल्फ़िक़ार उसे ले पाया (१६६८ ई०)। इस विजय के उपहार में उसे नसरतजंग का पद मिला। किन्तु राजाराम फिर निकल गया था और अब वह विशालगढ़ जा पहुँचा।

औरंगज़ेब ने अब महाराष्ट्र के गढ़ ले कर मराठों के दमन का अन्तिम यत्न शुरू किया। ब्रह्मपुरी में अपना बुंगा (आधार) रख कर वह मराठा गढ़ों को जीतने खुद रवाना हुआ (१६६६ ई०)। राजाराम ने बदले में बराड़, खानदेश और नर्मदा पार चढ़ाई करना तय किया। देवगढ़ के गोंड राजा ने मुसलमान हो जाने के बावजूद एक तरफ़ राजाराम और दूसरी तरफ़ छत्रसाल को गोंडवाना आने का निमन्त्रण दिया। पर राजाराम ने गोदावरी काँठे और बराड़ पर चढ़ाई की। उसे कुछ सफलता न मिली, तो भी मराठे इस बार नर्मदा पार तक जा निकले, और उन्होंने मांडू और धामुनी को लूट लिया। उस धावे की थकान से बीमार हो कर राजाराम ने प्राण त्याग दिये (१७०० ई०)।

उसकी मृत्यु से स्वतन्त्रता-युद्ध में तिल भर फ़रक न पड़ा। उसकी स्त्री ताराबाई अपने नन्हे बच्चे को गद्दी पर बिठा कर राजकार्य चलाने लगी। उसने अपने पति से बढ़ कर पराक्रम और दृढ़ता दिखायी। औरंगज़ेब एक गढ़ को जा घेरता, तो गढ़ की मराठा सेना अरसे तक उसका मुकाबला करती; बाहर से मराठों के धावे शाही शिविर पर होते रहते; अन्त में गढ़ की सेना बादशाह से भरपूर इनाम पा कर, इज्ज़त और सामान के साथ निकल जाने का वचन ले, किला छोड़ देती। तब बादशाह दूसरे किले पर चढ़ाई करता और मराठे दिये हुए क़िले को फिर ले लेने की ताक में रहते। यों साढ़े पाँच बरस में बारह किले बाद-

शाह ने जीते; किन्तु महाराष्ट्र के मुख्य किले ले लेने पर भी वह मराठों की शक्ति न तोड़ सका। सन् १७०२ में नसरतजंग को मराठा धावे मारने वालों के पीछे ६ हज़ार मील दौड़ना पड़ा। दूसरे बरस निमाजी शिन्दे नामक एक स्वतन्त्र मराठा सरदार ने बराड़ के फ़ौजदार को क़ैद कर लिया। फिर छत्रसाल का निमन्त्रण पा उसने नर्मदा पार की, और दोनों ने मिल कर सिरोंज तथा मन्दसोर तक धावा मारा। नर्मदा के सब घाट रुक गये और बादशाह के पास हिन्दुस्तान की डाक का आना बन्द हो गया। फ़ीरोज़जंग तब निमाजी के पीछे भेजा गया और निमाजी हार कर बुन्देलखंड के रास्ते वापस भाग आया।

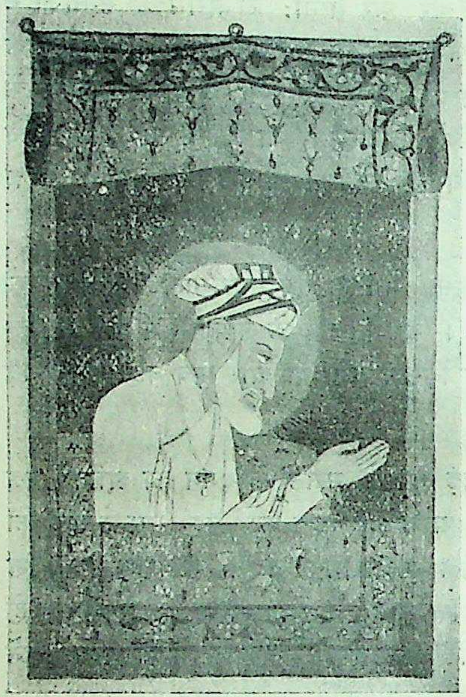

औरंगज़ेब [भा० क० भ०, काशी]

अन्त में औरंगज़ेब ने दिल्ली लौटने का निश्चय किया (१७०५ ई०)। लौटती फ़ौज को घेरे हुए विजयोन्मत्त मराठा दल भी साथ-साथ बढ़ने लगा। कभी-कभी तो वे बादशाह की पालकी तक आ पहुँचते! बड़ी मुश्किलों से वह सवारी अहमदनगर पहुँची, जहाँ अठासी बरस बूढ़े औरंगज़ेब को अपनी 'यात्रा का अन्त' दिखायी पड़ने लगा। धनाजी ने तभी गुजरात पर चढ़ाई कर नर्मदा पर तीन मुगल फ़ौजों को बारी-बारी से तहस-नहस किया, और दक्खिनी गुजरात से चौथ वसूल की। दूसरे बरस अहमदनगर में अल्लाह का नाम जपते हुए औरंगज़ेब ने अन्तिम साँस ली (२०-२-१७०७ ई०)।

चौबीस बरस के दक्खिन के युद्ध में उसकी फ़ौज के एक लाख आदमी और तीन लाख जानवर सालाना मरते रहे। साम्राज्य की वार्षिक आमदनी शुरू में ही कम होने लगी थी, इसलिए दिल्ली और आगरे के पुराने खजाने खाली हो गये।

अन्त में बंगाल की मालगुज़ारी का एक मात्र सहारा रह गया और फ़ौज की तनख्वाह तीन-तीन साल पिछड़ने लगी। जब अन्त में वह दिल्ली लौटने लगा तब दक्खिन के खेतों और मैदानों में मीलों तक सफ़ेद हड्डियों के ढेर बरफ की तरह छाये हुए दिखायी पड़ते थे।

§१०. बुन्देलखंड, ब्रज और पंजाब में स्वाधीनता की चेष्टाएँ—(१६८१-१७०७ ई०)—शिवाजी की सफलता ने दूसरे प्रान्तों में भी स्वाधीनता की भावनाएँ जगा दी थीं। शिवाजी की मृत्यु के समय तक छत्रसाल भी बुन्देलखंड के एक अंश में उसकी तरह अपना 'स्वराज्य' स्थापित कर चुका था और उस आधार से 'मुगलाई' (मुगल साम्राज्य) पर धावे कर चौथ वसूल करता था।

ब्रजभूमि में भरतपुर के पास सिनसिनी और सोगर गाँवों के मुखिया राजाराम और रामचेहरा ने जाट किसानों की सेना संगठित की और गढ़ियाँ बना कर सिर उठाया (१६८५ ई०)। आगरे का सूबेदार उन्हें न दबा सका तब औरंगज़ेब ने दक्खिन से बहादुरखाँ को, जिसे अब खानेजहाँ का पद मिल चुका था, उनके दमन के लिए भेजा। आगरे में खानेजहाँ के रहते हुए राजाराम ने सिकन्दरा पर चढ़ाई की, और अकबर के मकबरे से सारा कीमती माल लूट लिया (१६८८ ई०)। उसी वर्ष रेवाड़ी के पास मेवात के फ़ौजदार से लड़ता हुआ वह मारा गया। तब उसका भाई भज्जा और भज्जा का बेटा चूड़ामन ब्रज के नेता हुए। औरंगज़ेब ने रामसिंह कछवाहा के बेटे बिशनसिंह को, जिसने सतनामियों को दबाने में भी भाग लिया था, मथुरा का फ़ौजदार बनाया। उसने सिनसिनी और सोगर की गढ़ियाँ छीन लीं (१६९०-९१ ई०)। तब चूड़ामन भाग कर जंगलों में जा छिपा।

जोधपुर रियासत में सन् १६८१ से १६८६ ई० तक मुगलों और राठोड़ों की कशमकश चलती रही। जैसलमेर के भाटी भी राठोड़ों से मिल गये थे (१६८२ ई०)। "सूर्यास्त के बाद मुगल राज केवल थानों में रह जाता, और मैदान पर अजित का राज होता था।" अकबर को महाराष्ट्र से बिदा कर दुर्गादास मारवाड़ लौटा (१६८७ ई०)। तब फिर युद्ध शुरू हुआ। उसने मारवाड़ के सब मुगल थाने उठा दिये, और रोहतक-रेवाड़ी पर धावा कर दिल्ली के करीब तक जा निकला। वहाँ उस समब राजाराम जाट भी बलवा किये था। फिर उसने अजमेर पर धावा बोला (१६९० ई०)। मुगल सरकार ने राठोड़ों को राह-चुंगी की चौथ देना स्वीकार कर कुछ शान्त किया और सन्धि की बातें शुरू कीं जो

बरसों तक चलती रहीं। अजित भी ढीला पड़ गया। दुर्गादास ने स्वयम् ब्रह्मपुरी पहुँच कर सन्धि की (१६६८ ई०)। उसे पाटन की फ़ौजदारी दी गयी, मगर अजित को राज नहीं मिला। शाहज़ादा आज़म के गुजरात के सूबेदार बनने पर दुर्गादास को दरबार में बुला धोखे से मारने का यत्न किया गया (१७०१ ई०); पर उसको इसका पता लग गया और वह भाग निकला। इसके बाद फिर विद्रोह छिड़ा, पर अजित के मतभेद से वह विफल हुआ। गुजरात की चढ़ाई में धनाजी जादव की जीतने की खबर मिलने पर मारवाड़ में भी फिर बलवा हुआ और औरंगज़ेब के मरते ही अजितसिंह ने जोधपुर ले लिया।

सन् १६८६ से १६६२ ई० तक मुगल साम्राज्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। खुशालखाँ खटक, सम्भाजी और राजाराम जाट मारे जा चुके थे; छत्रसाल दबा हुआ था। महाराष्ट्र के ६-७ गढ़ों और जिंजी के सिवाय समूचा भारत मुगलों के पैरों तले था। पर रामचन्द्र ने जब उस दशा में भी महाराष्ट्र से ३० हज़ार सेना खड़ी कर ली, और सन्ताजी ने उस सेना से जिंजी पर मुगल शक्ति तोड़ दी, तो १६६३ ई० से पासा पलट गया। सन्ताजी की विजयों की प्रतिध्वनि उत्तर भारत में भी हुई। बुन्देलखंड और ब्रज के लोग फिर उठ खड़े हुए। पंजाब में सिक्खों ने भी शिवाजी के ढंग पर युद्ध छेड़ना चाहा। छत्रसाल ने धामुनी और कालंजर के किले ले लिये और भेलसा को लूटा। वह सारे मालवे पर भी धावे मारता था। बराड़ में निमाजी शिन्दे और गोंडवाने का राजा बख़्तबुलन्द उसे सहयोग देते थे। १७०५ ई० में फ़ीरोज़जंग ने औरंगज़ेब से छत्रसाल की सन्धि करवा दी। ब्रज के नये बलवे को दबाने के लिए शाहआलम आगरे का सूबेदार बनाया गया (१६६५ ई०)। चूड़ामन तब फिर जंगलों में भाग गया और नयी गढ़ियाँ बनाता रहा। १७०४ ई० में उसने सिनसिनी फिर वापिस ले ली, पर १७०५ और १७०७ ई० में उसपर चढ़ाई कर मुगलों ने हज़ारों जाटों का संहार किया।

अपने पिता तेगबहादुर की मृत्यु के बाद तरुण गुरु गोविन्द ने जमना और सतलज के बीच शिवालक की दूनों में शरण ली और वहीं अपनी तैयारी की। पौराणिक इतिहास की वीर गाथाओं से वह बहुत प्रभावित हुआ। उसने स्वयम् वीर-रस-पूर्ण कविताएँ रचीं। उसने सिक्खों को एक सैनिक सम्प्रदाय बना दिया (१६६५ ई०), और प्रत्येक सिक्ख के लिए पाँच ककार—केश, कंघा, कृपाण, कड़ा और कच्छ—धारण करने तथा सिंह नाम रखने का नियम कर दिया; जात-

पाँत का भेद भूल जाने को कहा और अपने पीछे ग्रन्थ को ही गुरु मानने तथा 'खालसा' (सिक्ख जनता) की पंचायत के 'गुरमत' के अनुसार चलने का आदेश दिया। इसके बाद उसने शिवाजी के रास्ते पर कदम रक्खा। उन्हीं पहाड़ों में दो तीन गढ़ियाँ बना कर उसने पहाड़ी राजाओं को अपने साथ मिलाना चाहा, परन्तु शिवाजी का मावलियों पर जैसा प्रभाव था, गुरु गोविन्दसिंह का इन पहाड़ियों पर वैसा कभी न हुआ। सभी सिक्ख अनुयायी पंजाब के मैदान के रहने वाले थे। राजाओं ने पहले गुरु की उपेक्षा की, फिर दबाव से साथ मिल कर मुगलों को कर देना छोड़ दिया, और अन्त में मुगलों से हार कर वे गुरु के शत्रु बन गये। इसी समय शाहआलम व्रज का विद्रोह दबा कर पंजाब को शान्त करने पहुँचा। गुरु गोविन्दसिंह बिलासपुर रियासत में आनन्दपुर के गढ़ में घिर गये (१७०१ ई०) और अन्त में केवल ४५ साथी रह जाने पर वहाँ से निकल भागे। साथियों में से केवल ५ ही बच कर निकल सके, और भेस बदल कर छिपे रहे। गोविन्दसिंह के दो लड़के फ़तहसिंह और जोरावरसिंह सरहिन्द के फ़ौजदार वज़ीरखाँ के हाथ पड़ गये, जिसने उन्हें मरवा डाला।

§११. **औरंगज़ेब के समय में फिरंगी व्यापारी और डकैत**—स्पेन से अलग होने के बाद पुर्तगाल ने इंग्लैंड से मैत्री रक्खी। पुर्तगाल की एक राजकुमारी अँगरेज़ राजा को ब्याही थी। उसके दहेज में पुर्तगाल के 'भारतीय उत्तरी प्रान्त' का मुम्बई द्वीप दिया गया (१६६१ ई०)। राजा ने वह द्वीप पीछे ईस्ट इंडिया कम्पनी को दे दिया। कम्पनी अपना मुख्य केन्द्र सूरत से हटा कर मुम्बई ले आयी। मुम्बई में अँगरेज़ों का व्यापार-केन्द्र बन जाने से बसई की अवनति होने लगी। औरंगज़ेब के समय में फ्रान्सीसियों ने भी पूरबी तट पर चन्द्रनगर और मसुलीपट्टम में तथा जिंजी नदी के मुहाने पर पुद्दुचेरी (पांडिचेरी) में ज़मीनें खरीद कर अपनी बस्तियाँ बसा लीं (१६६९-७४ ई०)। अँगरेज़ों ने हुगली नदी में भी अपने किराये के जहाज़ चलाना शुरू किया (१६७९ ई०)।

जब ग़ैर-मुस्लिमों पर जज़िया लगाया गया, तब उसके बदले में फिरंगियों के व्यापार पर एक रुपया सैकड़ा चुंगी बढ़ाना तय हुआ। अँगरेज़ कम्पनी के लन्दन के मुखिया जोशिया चाइल्ड ने यह बढ़ी हुई चुंगी न देने और साथ ही सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जाने का हुक्म दिया। उसने समुद्र में मुग़ल जहाज़ पकड़ कर बदला लेना चाहा। बंगाल के अँगरेज़ों को भी मुगलों से बहुत सी

"शिकायतें" थीं। बंगाल में शुजा ने अपनी सूबेदारी के समय में चुंगी के बदले एकमुश्त वार्षिक रकम लेना तय कर दिया था। अँगरेज़ चाहते थे कि बाद के सूबेदार भी वही रकम लेते जाँय, यद्यपि उनका व्यापार १६६८ ई० से १६८० ई० तक ३४ हज़ार पौंड के बजाय डेढ़ लाख पौंड हो गया था, और यह भी सन्देह था कि वे अँगरेज़ झंडे के नीचे दूसरों का माल भी ले जाते हैं।

कासिमबाज़ार कोठी के मुखिया जौब चारनाक को हिन्दुस्तानी व्यापारियों का रुपया देना था। अदालत ने उसके खिलाफ़ फ़ैसला दिया, तब वह हुगली भाग गया और वहाँ की कोठी का मुखिया बनाया गया। उसके नेतृत्व में अँगरेज़ों ने हुगली शहर लूट लिया (१६८६ ई०), और वहाँ से अपना सब सामान समेट कर सुतनती गाँव (कलकत्ता) पर डेरा डाल दिया। फिर वहाँ से भी हट कर उन्होंने मेदिनीपुर के हिजली द्वीप पर दखल कर लिया और बालेश्वर का किला छीन लिया। इन दोनों स्थानों से निकाले जाने पर वे मद्रास चले गये। उधर मुम्बई का मुखिया जौन चाइल्ड सूरत से सब कारबार हटा कर मुम्बई ले जा चुका था और मुगल जहाज़ों को पकड़ने लगा था। इसपर औरंगज़ेब ने सब अँगरेज़ों की गिरफ़्तारी का हुक्म दिया। तेलंगाना में बहुत से अँगरेज़ पकड़े गये। जंजीरा के सिद्दी ने मुम्बई द्वीप पर दखल कर वहाँ के अँगरेज़ों को किले में घेर लिया। तब जौन चाइल्ड ने सन्धि के लिए प्रार्थना की। औरंगज़ेब ने उनसे हरजाना ले कर उन्हें माफ़ कर दिया और कलकत्ता की ज़मीन खरीदने की इजाज़त दे दी (१६९० ई०)।

सन्ताजी घोरपडे की विजयों (१६९३-९६ ई०) से जब समूचे भारत में सनसनी मची, उसी समय बंगाल में दो विद्रोही ज़मीन्दारों ने बर्दवान, हुगली, माल्दा और राजमहल पर दखल कर लिया। उस खलबली में बंगाल के फिरंगियों को अपनी बस्तियों—कलकत्ता, चन्द्रनगर, चिंचुड़ा (चिन्सुरा)—की किलाबन्दी करने की इजाज़त मिल गयी। मुगल साम्राज्य में ये फिरंगियों के पहले किले थे।

भारतीय समुद्र में भी अब फिरंगी डकैतों का उत्पात क्रमशः बढ़ता गया। किसी जहाज़ में वे मुसाफ़िर या नौकर बन कर चढ़ जाते और राह में उसे छीन डकैती का साधन बना लेते। इस धन्धे में अँगरेज़ मुख्य थे। १६९६ ई० में अमेरिका से समुद्री डकैतों ने आकर हिन्द महासागर को घेर लिया। कुछ मलबार तट पर घूमने लगे और कुछ ने ईरान की खाड़ी और लाल सागर के मुहाने

को अपना केन्द्र बनाया। एक दल मोज़ाम्बिक जलग्रीवा में और एक सुमात्रा पर मँडराने लगा। ब्रिगमैन उर्फ़ एवोरी नामक अँगरेज़ ने एक जहाज़ छीन कर उसका नाम फ़ैन्सी रक्खा, और उससे कई मार्के की डकैतियाँ डालीं। सूरत के बन्दरगाह पर सब से बड़ा शाही जहाज़ गंज-सवाई था, जो हर साल हाजियों को मक्का ले जाता था। दमन और मुम्बई के बीच फ़ैन्सी ने उसका रास्ता रोका, उसकी तोपों को बेदम करके उसे तीन दिन जी खोल कर लूटा, और मक्का से लौटी हुई अनेक सैयद स्त्रियों पर मनमाना अत्याचार किया (१६९५ ई०)। गंज-सवाई के सूरत पहुँचने पर सारे साम्राज्य में सनसनी मच गयी। बादशाह के हुक्म से सब अँगरेज़ कैद कर लिये गये। फिरंगियों का व्यापार बन्द कर उनके शस्त्र और झंडे छीन लिये गये, तोपों के चबूतरे ढा दिये गये, कोठियों की दीवारें नीची की गयीं और गिरजों में घंटे बजना रोक दिया गया। औरंगज़ेब चाहता था कि फिरंगी व्यापारी मेहनताना ले कर अपने जंगी जहाज़ों द्वारा हाजी जहाज़ों की रखवाली करने का ज़िम्मा ले लें। सूरत की अँगरेज़ कोठी के मुखिया ऐन्स्ले ने अन्त में बादशाह को इकरारनामा लिख दिया, तब सब कैदी छोड़े गये (१६९६ ई०)।

दूसरे वर्ष किड और शिवर्स नामक दो 'महान् बदमाश' हिन्द महासागर में आये। इन में से एक अँगरेज़ था, दूसरा ओलन्देज़। अब तक डकैत लोग पराये जहाज़ छीन लेते थे; पर किड जिस जहाज़ का कप्तान था, उसे अँगरेज़ सरदारों की एक मंडली ने इसी धन्धे के लिए तैयार करके भेजा था। किड का आधार मदगास्कर में था। उसके बेड़े पर १२० तोपें थीं। इन डाकुओं की करतूतों के कारण फिरंगी व्यापारियों को फिर कैद होना पड़ा और आगे से ओलन्देज़ों ने लाल सागर की, फ्रान्सीसियों ने ईरान की खाड़ी की तथा अँगरेज़ों ने दक्खिनी समुद्र की रखवाली करने का ज़िम्मा लिया (१६९८ ई०)।

परन्तु इतने पर भी समुद्री डकैती नहीं रुकी और औरंगज़ेब को अन्त में व्यापारियों का इकरारनामा रद्द करना पड़ा, क्योंकि वह जानता था कि समुद्री डकैतों की पूरी रोक-थाम करना व्यापारी मंडलियों के लिए असम्भव है। भारतीय समुद्र की रक्षा करना भारतवर्ष के सम्राट् का कर्त्तव्य था। विदेशी व्यापारियों पर उसकी कोई ज़िम्मेदारी न थी। भारत-सम्राट् ने अपने को उस कर्त्तव्य-पालन में अशक्त देख कर स्वयम् उन व्यापारियों को जंगी बेड़े रखने को

उत्साहित किया। उन व्यापारियों के वंशजों ने भारत-सम्राट् के वंशजों को न केवल समुद्र की, प्रत्युत स्थल की भी रक्षा की चिन्ता से मुक्त कर दिया!

§१२. **सम्राट् बहादुरशाह**—औरंगज़ेब यह वसीअत छोड़ गया था कि उसके तीनों बेटों में साम्राज्य बँट जाय। शाहआलम ने भी इसपर अमल करना चाहा, क्योंकि वह चाहता था कि '.खुदा के बन्दों का .खून न बहे।' परन्तु आज़म को कुछ सूबों के राज्य से सन्तोष न था। उसने कहा, उसे चाहिए "तख्त या तख्ता।" धौलपुर के पास जाजऊ पर लड़ाई हुई, जिसमें आज़म मारा गया और शाहआलम बहादुरशाह के नाम से हिन्दुस्तान का बादशाह हुआ।

दक्खिन से इस युद्ध के लिए चलते वक्त आजम ने शाहू को इस शर्त पर भाग जाने दिया था कि वह बादशाह की अधीनता माने, पर उसकी माँ और भाई को नहीं छोड़ा था। बहादुरशाह ने वह स्थिति स्वीकार की। उसने गुरु गोविन्दसिंह को भी अपनी सेवा में ले लिया था। अब वह राजपूताने को शान्त करने चला। उसने आमेर के नये राजा सवाई जयसिंह की रियासत ज़ब्त की, क्योंकि जयसिंह ने आज़म का साथ दिया था। अजित को महाराजा बनाया, तो भी जोधपुर में काज़ी और मुफ़्ती फिर रक्खे। इसी समय बीजापुर में कामबख्श बादशाह बन बैठा। अजमेर से शाही सवारी सीधी दक्खिन की ओर बढ़ी और हैदराबाद के पास कामबख्श का अन्त हुआ।

मेवाड़, मारवाड़ और आमेर के राजा पुष्कर में मिले (१७१० ई०)। उन्होंने प्रण किया कि अब से वे मुगल सम्राट् की अधीनता न मानेंगे, शाही खानदान में अपनी बेटियाँ न देंगे और बादशाह यदि एक पर हमला करेगा तो दूसरे सब उसकी मदद करेंगे। इसके आधार पर उन्होंने आमेर और जोधपुर से मुगलों को निकाल कर मेवात पर चढ़ाई की। बहादुरशाह ने दक्खिन से राजपूताना वापस आ कर राजाओं से फिर सन्धि की। वहीं उसने छत्रसाल और चूड़ामन को बुला कर अपनी सेवा में लिया। यों औरंगज़ेब के समय के सभी हिन्दू विद्रोहियों से समझौता हो गया। परन्तु इसी समय पंजाब से सिक्खों के नये विद्रोह की खबरें आने लगीं।

§१३. **बन्दा वैरागी और सिक्खों का विद्रोह (१७१० ई०)**—शाही फ़ौज के साथ हैदराबाद जाते हुए गोदावरी के तट पर गोविन्दसिंह का देहान्त हुआ। मृत्यु से पहले एक पंजाबी वैरागी माधोदस से उनकी भेंट हुई। गुरु ने

उसे अपने अधूरे काम को आगे बढ़ाने के लिए अपनी तलवार दे कर पंजाब भेजा। माधोदास गुरु का 'बन्दा' बना। पूरबी पंजाब पहुँच कर बन्दा ने एक फ़ौज जमा की और सरहिन्द पर धावा बोल दिया। फ़ौजदार वज़ीरखाँ को मार कर सिक्खों ने गुरु गोविन्दसिंह के पुत्रों के कत्ल का जी खोल कर बदला लिया। सरहिन्द से वे दक्खिन, पूरब और पच्छिम की ओर बढ़े। जमना और सतलज के बीच उनका पूरा दख़ल हो गया। तब सहारनपुर लूट कर वे दोआब में बढ़े और सतलज पार कर द्वाबे में। जीते हुए इलाकों में वे सिक्ख फ़ौजदार नियम करते गये। बहादुरशाह अजमेर से सीधा बन्दा के दमन के लिए बढ़ा। उसके आने पर सिक्खों ने सरमौर के पहाड़ों में शरण ली, जहाँ वे लोहगढ़ नामक किले में घिर गये। गढ़ जीता गया, पर बन्दा भेस बदल कर निकल भागा।

उसी समय लाहौर में बहादुरशाह चल बसा (२७-२-१७१२ ई०) और उसके चार बेटों में वहीं परस्पर लड़ाई हुई। सबसे बड़े बेटे की जीत हुई और वह जहाँदारशाह के नाम से गद्दी पर बैठा। बन्दा ने तब साधौरा और लोहगढ़ फिर ले लिये।

§१४. फ़र्रुख़सियर और सैयद बन्धु—जहाँदारशाह का भतीजा फ़र्रुख़सियर इस समय पटने में था। बिहार और इलाहाबाद के सूबेदार अब्दुल्ला और हुसेनअली दो सैयद भाई थे। उनकी मदद से फ़र्रुखसियर ने आगरे के पास सामूगढ़ में जहाँदारशाह को हरा दिया (१०–१–१७१३ ई०)। वह पकड़ा और मारा गया। उसका वज़ीर ज़ुल्फ़िक़ारखाँ भी कत्ल किया गया।

फ़र्रुख़सियर ने अब्दुल्ला को अपना वज़ीर और हुसेनअली को मीर-बख़्शी बनाया। उनकी प्रेरणा से उसने पहला फ़रमान जज़िया हटाने का निकाला। औरंगज़ेब के पिछले समय से हिन्दुस्तानी मुसलमानों और "मुगलों" की स्पर्द्धा चली आती थी। सैयद बन्धु हिन्दुस्तानी मुसलमान थे, वे हिन्दुओं के होली आदि त्यौहारों में भाग लेते थे। 'मुगलों' में ईरानी और तूरानी (तुर्क) सम्मिलित थे। ज़ुल्फ़िक़ार की हत्या से ईरानी दल टूट गया। तूरानियों के अब दो मुख्य नेता थे—एक फ़ीरोज़जंग का बेटा ग़ाज़िउद्दीन फ़ीरोज़जंग (२य), जो बाद में निज़ामुल्मुल्क बना और जिसे हम सुविधा के लिए अभी से निज़ाम कहेंगे, तथा दूसरा निज़ाम का चचा मुहम्मद अमीनखाँ। मुहम्मद अमीन अब दूसरा बख़्शी बनाया गया और दक्खिन की सूबेदारी निज़ाम को दी गयी। फ़र्रुख़सियर कृतघ्न और कमज़ोर था।

उसने सैयदों से छुटकारा पाना चाहा; पर उसमें स्वयम् दृढ़ता न होने से तूरानी दल ने भी उसे सहयोग न दिया।

§१५. मराठों का गृह-युद्ध (१७०८–१३ ई०)—शाहू के छूट आने पर ताराबाई ने कहा—'वह सम्भाजी का बेटा नहीं, औरंगज़ेब का पाला हुआ नकली शाहू है!' किन्तु ताराबाई का अपना बेटा भी पगला था और महाराष्ट्र को एक राजा की ज़रूरत थी। धनाजी जादव का एक विश्वस्त कर्मचारी बालाजी विश्वनाथ भट्ट था। उसने धनाजी को शाहू की असलियत की तसल्ली करा दी तो धनाजी ने शाहू का पक्ष लिया। सतारा का गढ़ शाहू के हाथ आ गया। इन घटनाओं से महाराष्ट्र में घरेलू लड़ाई शुरू हुई। धनाजी १७१० ई० में मर गया, तो भी बालाजी ने धीरे-धीरे शाहू का पक्ष दृढ़ किया। अन्त में उसने ताराबाई की सौत रजसबाई से ताराबाई को कैद करा दिया (१७१२ ई०) और रजसबाई के बेटे सम्भाजी को कोल्हापुर में राजा बना रहने दिया। शाहू ने बालाजी को अपना पेशवा बनाया (१७१३ ई०)।

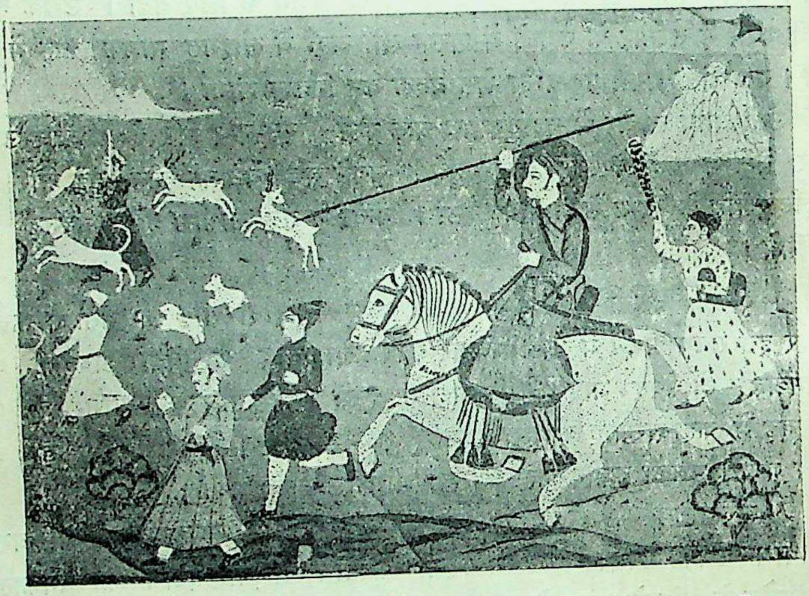

छत्रपति शाहू, शिकार खेलते हुए [भारत-इतिहास-संशोधक मंडल, पूना]

घरेलू युद्ध के कारण महाराष्ट्र में राजा की शक्ति खंडित होने से तथा मुगल बादशाहत की कमज़ोरी से लाभ उठा कर मराठे जागीरदार या सरंजामदार शक्तिशाली होते गये। बराड़ में कान्होजी भोंसले और दक्खिनी गुजरात में धनाजी के कर्मचारी खंडेराव दाभाडे ने पैर जमा लिये। धनाजी के बाद खंडेराव शाहू का सेनापति बना। कान्होजी आँग्रे ने कोंकण और समुद्र में अपनी शक्ति बना ली थी। वह शाहू का सरखेल अर्थात् जलसेनापति नियुक्त हुआ।

§ १६. **राजपूताना, पंजाब और ब्रज में विद्रोह-दमन (१७१२—१८ ई०)**—बहादुरशाह के मरते ही अजितसिंह ने मुगल हाकिमों को निकाल कर अजमेर ले लिया। तब हुसेन अली ने उसपर चढ़ाई की। अजित ने बिना लड़े ही सन्धि कर ली, अपने बेटे अभयसिंह को मुगल दरबार में भेजा और अपनी बेटी फ़र्रूखसियर को ब्याह देना स्वीकार किया (१७१४ ई०)।

लाहौर और जम्मू का शासन मुहम्मद अमीन के सम्बन्धी अब्दुस्समद और उसके बेटे ज़करिया को सौंप कर उन्हें बन्दा के खिलाफ़ भेजा गया। साधौरा और लोहगढ़ उन्होंने ले लिये, लेकिन बन्दा फिर भाग गया। बाद में वह गुरदासपुर-मढ़ी के किले में घिर गया। लोग समझते थे कि वह जादूगरी से निकल भागता है, इसलिए साम्राज्य की सेना ने तम्बू से तम्बू सटा कर घेरा पूरा किया और चारों तरफ़ दीवार बना दी। इस प्रकार घिरी हुई सेना नौ मास तक वीरता से लड़ती रही। रसद खतम होने पर वे अपने जानवर खाते रहे। फिर उन्होंने घास-पत्ती खाना शुरू किया। जब यह सहारा भी न रहा तो हड्डियों का चूरा, और कहते हैं कि अन्त में अपनी जाँघों का माँस तक खा कर वे लड़ते रहे! बन्दा के ७४० साथी पकड़ कर पिंजरों में बन्द किये और दिल्ली लाये गये। वहाँ वे बीभत्स क्रूरता से मारे गये (१७१६ ई०)।

बन्दा ने सिक्ख सम्प्रदाय के दो-एक बाहरी चिन्हों पर ज़ोर न दिया था, इसलिए कट्टर सिक्खों का एक दल, अपने को 'तत्व खालसा' कहता उससे अलग हो गया। मुगल सरकार ने इस फूट से लाभ उठाया और अगले आठ बरस तक अब्दुस्समद ने सिक्खों का ज़ोर से दमन किया। सिक्खों को तब जंगलों के सिवाय और कहीं शरण न रही।

सामूगढ़ की लड़ाई में चूड़ामन जाट ने निष्पक्ष हो कर दोनों तरफ़ों को लूटा था। बाद में वह दरबार में हाज़िर हुआ और उसे दिल्ली से चम्बल तक के रास्तों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की रक्षा का भार सौंपा गया (१७१३ ई०)। उसने इस इलाके पर पूरा अधिकार जमाना और आगे अपना इलाका बढ़ाना शुरू किया। उसने बादशाह को कर देना भी छोड़ दिया तथा होडल के आगे जंगल में एक थूण गढ़ बना लिया। उस गढ़ को लेने के लिए सवाई जयसिंह को भेजा गया। पर वज़ीर अब्दुल्ला दिल से चूड़ामन की तरफ़ था। पौने दो साल के घेरे के बाद गढ़ लेने के पहले ही अब्दुल्ला ने चूड़ामन से सन्धि करा दी (१७१८ ई०)।

§१७. हुसेनअली की दिल्ली चढ़ाई और फ़र्रुख़सियर का अन्त— फ़र्रुख़सियर और सैयदों का बिगाड़ बढ़ता गया। अन्त में समझौता हुआ, जिससे दक्खिन के सूबों का पूरा अधिकार हुसेन अली को मिला (१७१५ ई०)। फ़र्रुख़सियर ने मराठा सरदारों को गुप्त पत्र लिखे कि वे हुसेन से लड़ें, लेकिन इस खेल में हुसेन उससे बाज़ी ले गया। रामचन्द्र बावडेकर का सचिव शंकर मल्हार ताराबाई के समय में सन्यासी हो कर बनारस में रहने लगा था। वह हुसेन का मन्त्री बन कर अब उसके साथ दक्खिन लौटा। शंकर मल्हार के द्वारा हुसेन अली ने मराठा दरबार से सन्धि की और उनकी सब माँगें पूरी कराने का वचन दिया।

उधर फ़र्रुख़सियर ने सैयद अब्दुला को पकड़ने का विफल यत्न किता; फिर उसके विरोध के बावजूद जज़िया लगा दिया (१७१७ ई०)। थूण के मामले से विरोध और बढ़ा। फ़र्रुख़सियर ने अपना पक्ष दृढ़ करने को अजितसिंह को दिल्ली बुलाया, पर वह भी अब्दुल्ला की तरफ़ हो गया। फिर समझौता हुआ और गुजरात की सूबेदारी अजित को दी गयी।

अपने बेटे आलिम अली और शंकर मल्हार को दक्खिन में छोड़ हुसेन अली अब एक बड़ी फ़ौज के साथ दिल्ली की ओर चला। पेशवा बालाजी विश्वनाथ और सेनापति खंडेराव दाभाडे मराठा सेना सहित उसके साथ थे। दिल्ली पहुँच कर सैयद बन्धुओं ने अपने मित्रों की सब फ़ौजें शहर और किले में रख लीं। मुगल नेता तटस्थ रहे। येसूबाई और मदनसिंह मराठों को सौंप दिये गये। तब फ़र्रुख़सियर को कैद कर बहादुरशाह के एक पोते को गद्दी पर बैठाया गया। जज़िया फिर हटा दिया गया। अजितसिंह को अजमेर की सूबेदारी दी गयी और उसकी बेटी—फ़र्रुख़सियर की विधवा—भी लौटा दी गयी। अजित ने उसे मारवाड़ ले जा कर फिर हिन्दू बना लिया। सवाई जयसिंह को सोरठ (काठियावाड़) और निज़ाम को

मालवे का सूबा मिला। मराठों का शिवाजी के 'स्वाराज्य' पर तथा समूचे दक्खिन की चौथ और सरदेशमुखी पर अधिकार माना गया।

अवसर अनुकूल देख कर छत्रसाल ने भी विद्रोह किया। बुन्देले आगरा, इलाहाबाद और मालवा सूबों की सीमाओं को लूटने लगे। इसी बीच बादशाह तपेदिक से मर गया था। उसका एक भाई बादशाह बना, पर वह भी उसी रोग का शिकार हुआ। तब सैयदों ने बहादुरशाह के एक और पोते को गद्दी दी और वह मुहम्मदशाह कहलाया।

§१८. निज़ाम का दक्खिन भागना और सैयदों का पतन (१७२० ई०)— निज़ाम मालवा जाते समय दिल्ली से अपना परिवार और सम्पत्ति सब साथ लेता गया। मालवा में उसने एक बड़ी फ़ौज खड़ी की। उसे मालवे से वापस आने का हुक्म दिया गया; किन्तु उसने उलटे दक्खिन की राह ली और असीरगढ़-बुरहानपुर के किलों पर अधिकार कर लिया। सैयद दिलावरअली और भोपाल रियासत का संस्थापक दोस्त मुहम्मद रुहेला उसके पीछे भेजे गये और खंडेराव दाभाडे के साथ आलिम अली औरंगाबाद से बढ़ा। ताप्ती के उत्तर और दक्खिन खंडवा और बालापुर में दोनों फ़ौजों को निज़ाम ने बारी-बारी से हराया। दिलावर और आलिम अली मारे गये। 'बेदोस्त' रोहेला भाग गया और शंकर मल्हार कैद हुआ।

ये समाचार पा कर हुसेन अली बादशाह के साथ दक्खिन की तरफ़ बढ़ा। निज़ाम के चचा मुहम्मद अमीन ने रास्ते में उसका काम तमाम कर दिया। तब वह फ़ौज वापस लौटी। दिल्ली के पास लड़ाई में अब्दुल्ला भी कैद हुआ। उधर दिल्ली से लौट कर पेशवा बालाजी विश्वनाथ का भी उसी समय देहान्त हुआ।

§१९. अँगरेज़ों की प्रमुख सामुद्रिक शक्ति (१७०१–१८ ई०)—फ्रान्स का राजा लुई चौदहवाँ (१६४३-१७१५ ई०) औरंगज़ेब का समकालीन था। दोनों का शासन भी बहुत कुछ एक सा था। लुई ने भी अपने पूर्वज का धार्मिक स्वतन्त्रता फ़रमान रद्द कर दिया था। १७०० ई० में स्पेन-सम्राट् का देहान्त हुआ था। उसके कोई सन्तान न थी। उसकी बहन लुई को ब्याही थी, इसलिए मृत्यु से पहले उसने वसीयत कर दी थी कि लुई का पोता उसका उत्तराधिकारी हो। इस प्रकार फ्रान्स के साथ स्पेन भी लुई के कब्ज़े में आ जाता और अमेरिका में स्पेन का विशाल साम्राज्य फ्रान्स को मिल जाता। इसपर युरोप के दूसरे अनेक देश गुट्ट बना कर लुई से लड़े। अन्त में लुई की हार हुई (१७१४ ई०) और स्पेन का बन्दरगाह

जिब्राल्टर, जो रोम-सागर का द्वार है, इंग्लैंड को मिला। उसके अलावा, इंग्लैंड को स्पेन की अमेरिकन बस्तियों में आफ़्रिका से हब्शी गुलाम ले जा कर बेचने का ठेका भी मिला। वह बड़े नफे का व्यापार था; पहले वह फ्रान्स के हाथ में था, औद उससे पहले हालैंड के। इस प्रकार अब इंग्लैंड समुद्री शक्ति में सब देशों से आगे बढ़ गया।

बंगाल के योग्य सूबेदार मुशिदकुलीखाँ ने अँगरेज़ों के व्यापार पर चुंगी बढ़ा दी थी। तब उनके दूत फ़रुर्ख़सियर के पास गये। अजितसिंह की बेटी से फ़रुर्ख़सियर का विवाह होने के समय अंगरेज़ डाक्टर हैमिल्टन ने फ़रुर्ख़सियर की बवासीर की तकलीफ़ दूर कर दी (१७१५ ई०)। फ़रुर्ख़सियर ने उसे इनाम देना चाहा, तब उसने स्वयम् कुछ लेने के बजाय यह प्रार्थना की कि बंगाल में अंगरेज़ जो विलायती माल लावें उस पर चुंगी **न** ली जाय। इसी समय दक्खिन में मुम्बई के अंगरेज़ों ने कान्होजी आँग्रे को कुचलना चाहा। विजयदुर्ग और खंडेरी किलों पर उनके बेड़ों ने चढ़ाइयाँ कीं (१७१७-१९ ई०), पर वे दोनों जगह विफल हुए।

दसवाँ प्रकरण

मराठा प्रमुखता

(१७२०–१७९९ ई०)

अध्याय १

पेशवा बाजीराव

(१७२०–४० ई०)

§१. मुहम्मदशाह—बुन्देलखंड, ब्रज और राजपूताने की घटनाएँ (१७२०-२४ ई०)—मुहम्मदशाह ने **मुहम्मदअमीन** को अपना वज़ीर बनाया और **खानेदौरान शम्सामुद्दौला** नामक एक हिन्दुस्तानी मुसलमान को मीर बख़शी। बुन्देलखंड का दूसरा स्वाधीनता-युद्ध अभी जारी था और छत्रसाल ने कालपी पर दख़ल कर लिया था (१७२० ई०)। उधर अजितसिंह ने विद्रोह किया और अजमेर में नये सूबेदार को न घुसने दिया। चूड़ामन जाट ने अजित और छत्रसाल दोनों को मदद भेजी। छत्रसाल को दबाने के लिए मुहम्मदखाँ बंगश पठान को इलाहाबाद की सूबेदारी सौंपी गयी। इसने हाल ही में अपने फ़िरके को फ़रुर्खाबाद के इलाके

में बसाया था। बंगश ने कालपी से बुन्देलों को निकाल दिया। १७२१ ई० में मुहम्मदअमीन की मृत्यु हुई और महाराष्ट्र में खंडेराव दाभाडे की। तब निज़ाम को दक्खिन से बुला कर वज़ारत सौंपी गयी। चूड़ामन के बेटे आपस में झगड़ते थे, उन्हें वह न मना सका तो उसने आत्मघात कर लिया। उसके भतीजे बदनसिंह ने तब सवाई जयसिंह की अधीनता मान ली (१७२२ ई०), पर उसका बेटा मारवाड़ भाग गया। सवाई जयसिंह और बंगश दोनों अजित के ख़िलाफ़ भेज़े गये। उसने भी अधीनता मानी (१७२३ ई०)। दूसरे साल उसके छोटे बेटे बख्तसिंह ने उसे मार डाला। मारवाड़ से निपट कर बंगश ने जमना पार की (१७२४ ई०) और छः महीने में छत्रसाल को बाँदा के पास तक खदेड़ दिया।

मराठों को रोकने के लिए निज़ाम ने गुजरात और मालवा में अपने भाई सूबेदार नियुक्त किये। उसी समय ईरान से सफ़ावी राज्य के अन्त होने की खबर आयी। सन् १७०८ में कन्दहार के गिलज़ई अफ़गान स्वतन्त्र हो गये थे। अब उन्होंने समूचा ईरान जीत लिया। इधर अब भारत का सीमान्त अरक्षित रहने लगा था। पठानों को 'सहायता' देने के लिए काबुल के सूबेदार को जो रक़म भेजी जाती थी, उसे अब ख़ानेदौरान हज़म कर लेता था। काबुल की सेना का वेतन ५–५ बरस तक पिछड़ने लगा था। निज़ाम इस कुशासन को ठीक न कर सका, तो छुट्टी ले कर दिल्ली से हट गया (१७२३ ई०)।

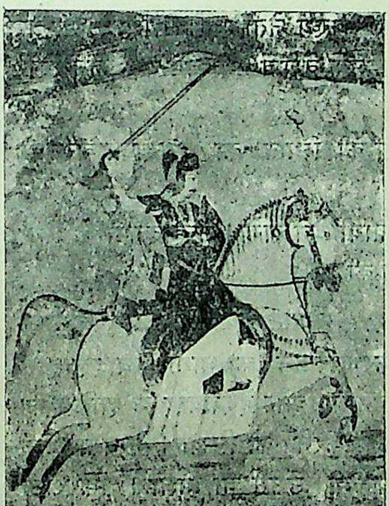

पेशवा बाजीराव [भा० इ० सं० मं०]

§२. बाजीराव की नैयारी (१७२०–२४ ई०)—बालाजी की मृत्यु पर शाहू ने उसके बेटे बाजीराव को पेशवा बनाया। मराठा राज्य की नीति अब क्या हो, इसपर शाहू की सभा में विचार हुआ। महाराष्ट्र में एक दक्खिनी दल था जिसका कहना था कि हम पहले अपने 'स्वराज्य' को सशक्त बना लें और समूचे दक्खिन को जीत लें, तब दिल्ली

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

की तरफ बढ़ने की सोचें। बाजीराव का रुख़ दूसरा था। वह और उसका भाई चिमाजी अप्पा अपने पिता के साथ दिल्ली हो आये थे। उसने कहा, "मुगल साम्राज्य समृद्ध और क्षीण है; उसकी जड़ पर चोट करो तो शाखाएँ स्वयम् गिर पड़ेंगी। हमें भारत में हिन्दू साम्राज्य स्थापित करना है। मेरी बात मानों तो मैं मराठा झंडा अटक की दीवारों पर गाड़ दूँगा।" शाहू ने अनुमोदन करते हुए कहा, "उसे किन्नरखंड पर जा गाड़ो।"

अगले ७५ साल तक मराठा राज्य की यही नीति रही। मुगल साम्राज्य यद्यपि इस बीच में बना रहा, किन्तु बड़ी घटनाओं का आरम्भ अब मराठा दरबार से होता था और मुगल दरबार को अपने बचाव की चिन्ता करनी पड़ती थी। बाजीराव ने पहले अपनी सेना को सुसंगठित किया। मराठे सरदार अब काफ़ी शक्तिशाली थे; अपनी स्वतन्त्र जागीरें होने के कारण वे बहुत उच्छृंखल भी थे। उन्हें जागीरों से वंचित कर नियन्त्रित करना बाजीराव के लिए सम्भव न था। राजकीय सेनापति स्वयम् एक बड़ा जागीरदार था। उस पद पर खंडेराव का बेटा त्र्यम्बकराव नियुक्त हुआ। बाजीराव ने अपनी स्वतन्त्र सेना खड़ी की, जिसके बल से वह दूसरे सरदारों पर नियन्त्रण रख सके। उस सेना के मुख्य नेता रानोजी शिन्दे, मल्हार होल्कर और उदाजी पँवार आदि थे। बाद में इनके वंशज भी बड़े-बड़े जागीरदार बन गये।

सन् १७२३ ई० में बाजीराव ने मालवा की स्थिति का अन्दाज़ा करने के लिए एक चढ़ाई की।

तभी से पंजाब में भी सिक्ख जत्थे दिखायी देने लगे। उन्हें दबाने के लिए सूबेदार ज़करियाख़ाँ ने एक गश्ती सेना नियुक्त की।

§३. निज़ाम का स्वतन्त्र होना; गुजरात, कर्णाटक, मालवा और बुन्देलखंड में युद्ध (१७२४–२८ ई०)—निज़ाम फिर दक्खिन को भागा। बादशाह ने मुहम्मदअमीन के बेटे कमरुद्दीन को वज़ीर बनाया और हैदराबाद के हाकिम को दक्खिन की सूबेदारी दे कर निज़ाम का मुकाबला करने को लिखा। छत्रसाल का बेटा कुंवरचन्द निज़ाम के साथ था। बाजीराव भी उससे जा मिला। शकरखेडा (बराड़) की लड़ाई में दक्खिन का सूबेदार मारा गया (१७२४ ई०) और निज़ाम दक्खिन का बेताज बादशाह बन गया। मुहम्मदशाह ने तब उसका दिल्ली आने का रास्ता रोकने को गुजरात का सूबा उसके चचा हमीदख़ाँ के बजाय

सरबुलन्दखाँ को तथा मालवा गिरिधरबहादुर नागर को सौंपा, और बंगश को बुन्देलखंड से बुला कर ग्वालियर भेजा।

हमीदखाँ ने गुजरात देने से इनकार किया, और दाभाडे के अधीन सरदार कन्ताजी कदम बन्दे तथा पिलाजी गायकवाड़ से मदद ली। उन्होंने सरबुलन्द के दो नायबों को मार डाला (१७२४-२५ ई०)। हमीदखाँ ने उन्हें गुजरात की चौथ दी। तब सरबुलन्द ने स्वयम् दिल्ली से आ कर हमीदखाँ को गुजरात की सूबेदारी से निकाला; पर उसे भी मराठों को चौथ देने की बात माननी पड़ी। पिलाजी ने बड़ोदा और दाभोई पर दखल कर लिया (१७२७ ई०)।

शकरखेडा की जीत के बाद निज़ाम और बाजीराव एक दूसरे का रुख देखते रहे। निज़ाम ने दक्खिन की तरफ़ अपनी शक्ति बढ़ायी और कई छोटे-छोटे सरदारों को दबाया। उसने शिवाजी के भतीजे तांजोर के राजा सर्फोजी से त्रिचनापल्ली छीन ली। सर्फोजी ने शाहू से मदद माँगी; तब दक्खिनी दल के नेताओं के साथ बाजीराव बेदनूर, गदग और श्रीरंगपट्टम् तक गया (१७२५-२६ ई०)। पर वह चढ़ाई विफल रही।

मालवा में गिरिधरबहादुर से बराबर मुठभेड़ जारी रही। बंगश के लौट आने से बुन्देलों को फिर छुट्टी मिली। छत्रसाल ने इस बीच बिहार की सीमा तक का इलाका जीत लिया। किन्तु १७२७ ई० के शुरू में बंगश और उसके बेटे कायमखाँ ने प्रयाग पर फिर जमना पार की, और दो साल तक बुन्देलों को दबाते हुए पूरबी बुन्देलखंड पूरा ले कर, महोबा, कुलपहाड़, जैतपुर तक छत्रसाल को ढकेल दिया। व्रज से जाटों को मदद आने के बावजूद भी १७२८ ई० के अन्त में जैतपुर भी छिन गया। तब छत्रसाल ने सन्धि की बातचीत से बंगश को बहकाना शुरू किया।

§४. बाजीराव की पहली विजयें (१७२८–३० ई०)—निज़ाम ने अब हैदराबाद को अपनी राजधानी बनाया और शाहू को चौथ देना बन्द कर दिया। बाजीराव झट सेना के साथ औरंगाबाद पर जा चढ़ा और निज़ाम का पीछा करके दौलताबाद के २० मील पच्छिम पालखेड पर उसे घेर लिया। निज़ाम ने तब सन्धिभिक्षा की और चौथ की सब बाकी रकम दे दी। यह मुँगी-शेवगाँव की सन्धि कहलाती है (मार्च १७२८ ई०)।

मालवे के किसानों और जमींन्दारों ने मुगल सरकार के जुल्म के खिलाफ सवाई जयसिंह से प्रार्थना की थी। जयसिंह ने कहा—बाजीराव को लिखो। मालवे

के किसानों ने अपनी एक सेना खड़ी कर ली और बाजीराव को बुलाया। चिमाजी खानदेश हो कर और बाजी बराड़ के रास्ते मालवा की ओर बढ़े। अमझरा पर चिमाजी अप्पा और उदाजी पँवार ने गिरिधरबहादुर और उसके भाई दयाबहादुर कों घेर कर मार डाला (नव० १७२८ ई० ।

इसी समय बूढ़ा छत्रसाल जैतपुर के पास संकट में पड़ा था। कहते हैं, उसने बाजीराव को लिखा—

जो गति ग्राह-गजेन्द्र की सो गति भई है आज !
बाजी जात बुन्देलाँ की, राखो बाजी लाज !

गढ़ा-मंडला के रास्ते बाजीराव बुन्देलखंड की ओर बढ़ा। अमझरा की जीत के तीन महीने बाद मराठों ने बंगश को घेर लिया, परन्तु बंगश बहादुरी से लड़ता रहा। चार महीने बाद उसके डेरे में अनाज सौ रुपये सेर भी न मिलता था। छत्रसाल ने तब उसे जाने दिया पर उससे लिखवा लिया कि वह फिर जमना को पार न करेगा।

सरबुलन्दखाँ ने राजा शाहू को गुजरात की चौथ देना स्वीकार कर लिया, तो उसे सूबेदारी से हटाकर राजा अभयसिंह राठोड़ को उसकी जगह भेजा गया (१७३० ई०)। मालवे की सूबेदारी बंगश को सौंपी गयी। तीन मास के अन्दर बंगश ने अधिकांश मराठों को नर्मदा पार निकाल दिया। मल्हार होल्कर जयपुर भाग गया।

§५. गुजरात, मालवा, बुन्देलखंड में मराठों की स्थापना (१७३१-३२ ई०)—निजाम ने अब पेशवा के सब शत्रुओं का गुट्ट बनाया। गुजरात को त्र्यम्बकराव दाभाडे के आदमियों ने जीता था; बाजीराव के नियन्त्रण से वे असन्तुष्ट थे। दाभाडे ने कहा—बाजीराव ने राजा शाहू को कैदी बना रक्खा है मैं उसे मुक्त करूँगा ! उसने अहमदनगर पर निज़ाम से मिल कर दक्खिन की ओर बढ़ना तय किया। उधर कोल्हापुर के सम्भाजी को निज़ाम ने अपनी ओर मिला लिया। तब नर्मदा के घाट पर निज़ाम और बंगश मिले, और चौमुखा षड्यन्त्र पूर्ण हुआ। ठिकाने की दो चोटों से बाजीराव ने उसे तोड़ दिया।

सम्भाजी के खिलाफ दक्खिनी दल भेजा गया, जिसने उसे पूरी तरह हरा दिया। सम्भाजी ने आगे से शाहू के अधीन रहना मान लिया।

त्र्यम्बकराव के निज़ाम से मिलने पर उतारू हो जाने पर शाहू ने लाचार हो बाजीराव को उसपर आक्रमण करने की आज्ञा दी। साथ ही आदेश दिया कि भरसक उसे मना लो या पकड़ लाओ। इससे पहले कि दाभाडे निज़ाम से मिल पाय, बाजीराव गुजरात पर टूट पड़ा। दाभोई पर दाभाडे बहादुरी से लड़ा। सफ़ेद झंडा दिखा कर बाजीराव ने कहा, 'ऐसी वीरता महाराजा के शत्रुओं के विरुद्ध दिखानी चाहिए।' पर त्र्यम्बकराव ने एक न सुनी और उसे पकड़ने के यत्न विफल हुए। उसी की तरफ़ से उसके मामा ने उसकी पीठ में गोली मार दी। निज़ाम और बंगश के जुदा होने के चौथे दिन यों निज़ाम का षड्यन्त्र धूल में मिल गया। दाभाई से बाजीराव सीधा निज़ाम की ओर बढ़ा। निज़ाम ने तब उससे यह गुप्त सन्धि की कि वह उत्तर की तरफ़ बेरोकटोक बढ़े, निज़ाम उसे पीछे से न छेड़ेगा।

इस घरेलू युद्ध का धक्का समूचे महाराष्ट्र को लगा। त्र्यम्बकराव की माँ उमाबाई ने शाहू के पास आकर बाजीराव से बदला लेने के लिए कहा। शाहू ने उमाबाई के गाँव में जा कर बाजीराव को उसके पैरों गिराया, और तब उमा के हाथ में तलवार दे उसे बाजीराव का सिर काटने को कहा! उमा ने बाजीराव को क्षमा किया। तब उसका छोटा बेटा यशवन्तराव सेनापति नियुक्ति किया गया। पर वह शराबी था, उसकी शक्ति धीरे-धीरे गायकवाड़ों के हाथ चली गयी।

उसी वर्ष (१७३१ ई०) छत्रसाल परलोक सिधारा। बुन्देलखंड का पूर्वार्द्ध तब उसके हाथ आ चुका था। उसने बाजीराव को अपना बेटा बना कर तीन बेटों में अपना राज बाँट दिया। इस प्रकार हृदयशाह के हिस्से पन्ना, जगतराज के हिस्से में जैतपुर और बाजीराव के हिस्से में सागर-दमोह आये। बाक़ी बेटो को जागीरें मिलीं। मराठों और बुन्देलो में पूरे सहयोग की सन्धि हुई।

राजा अभयसिंह ने पिलाजी गायकवाड़ से बड़ौदा छीन लिया और सन्धि की बात करने के बहाने पिलाजी को डाकोर तीर्थ में बुला कर धोखे से मार डाला (१७३२ ई०)। तब कोली आदि जातियाँ, जो मराठों के पक्ष में थीं, भड़क उठीं, और पिलाजी के बेटे दमाजी ने गुजरात का बड़ा अंश जीत कर अभयसिंह को जोधपुर भगा दिया।

अब बंगश बाकी रह गया। १७[illegible]१ ई० में उसने मराठों को निकाल दिया था, पर दूसरे वर्ष वे फिर दक्खिन और बुन्देलखंड से मालवा चढ़ आये। सिरोंज

पर बंगश चारों तरफ़ से घिर गया। दिल्ली और निज़ाम से व्यर्थ मदद माँगने के बाद उसने मराठों से सन्धि कर ली। तब दिल्ली से हुक्म आया कि बंगश के बजाय सवाई जयसिंह मालवे का सूबेदार नियुक्त किया गया।

अगले वर्ष रानोजी शिन्दे और मल्हार होल्कर ने गुजरात में चाँपानेर जीतने के बाद मालवा आकर जयसिंह को घेर लिया। उसने हार मानी और छः लाख रुपया तथा २८ परगने दे कर छुटकारा पाया।

इस प्रकार गुजरात, मालवा और बुन्देलखंड में मराठे स्थापित हो गये।

§.६ उत्तर भारत पर मराठों की चढ़ाई (१८३५–३६ ई०)—जयसिंह ने बूँदी के राजा बुधसिंह हाड़ा से राज छीन कर अपने एक दामाद को दे दिया था। बुधसिंह की स्त्री ने मल्हार होल्कर के पास राखी भेज कर उससे मदद माँगी। यों मराठों ने राजपूताने में पहले पहल हस्तक्षेप किया। बादशाह ने खानेदौरान को उनके खिलाफ़ भेजा। जयसिंह और अभयसिंह भी उसके साथ बढ़े। मुकुन्दरा घाटी के आगे रामपुरा के इलाके में उन सब को मराठों ने घेर लिया और जयपुर जोधपुर के अरक्षित इलाकों पर हमले शुरू किये। जयसिंह और खानेदौरान ने तब मराठों को मालवा की चौथ दिला देने का प्रस्ताव कर सन्धि की बात शुरू की जिससे युद्ध रुक गया।

लेकिन बादशाह ने यह प्रस्ताव मंजूर नहीं किया और जयसिंह से आगरा और मालवा के सूबे लेकर वज़ीर कमरुद्दीन को दिये। इस पर बाजीराव ने जयसिंह का सन्देश पाकर फिर युद्ध जारी किया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में मराठा सेना की हरावल ने राजपूताना, मालवा और बुन्देलखंड के रास्ते एक साथ उत्तर भारत पर चढ़ाई की। खानेदौरान, कमरुद्दीन तथा बंगश को उनके खिलाफ़ भेजा गया। तो भी वे चम्बल तक बढ़ आये और उनकी एक टुकड़ी जमना पार कर इटावे के भी इलाके में घुसी।

पीछे से बाजीराव स्वयम् चला आ रहा था। मेवाड़ की सीमा पर महाराणा उसे उदयपुर लिवा ले गया और उसने वार्षिक कर देना स्वीकार किया। किशनगढ़ पहुँचने पर जयसिंह ने उससे भेंट की। इससे पहले खानेदौरान और बंगश भी सन्धि की प्रार्थना कर रहे थे। बाजीराव ने युद्ध रोक दिया और मालवे के रास्ते लौटते हुए सन्धि की बातचीत जारी रक्खी।

१७३५ ई० तक पंजाब में सिक्खों ने बूढ़ा दल और तरुण दल नाम से अपने दो दल खड़े कर लिये। उनका केन्द्र अमृतसर प्रदेश था।

§. **बाजीराव की दिल्ली पर चढ़ाई (१७३७-३८ ई०)**—बाजीराव की पहली शर्तें ये थीं—(१) मालवे का सूबा किलों और पुरानी जागीरों के सिवाय उसे सौंप दिया जाय; तथा (२) दक्खिन के छः सूबों की मालगुजारी का ५% राजा शाहू को दिया जाय। मुहम्मदशाह ने इनपर "मंजूर" लिख यिया। लेकिन मुगल साम्राज्य को कमजोर पाकर बाजीराव ने अपनी शर्तें पीछे बहुत बढ़ा दीं। मुहम्मद शाह ने उनमें से कुछ मान लीं, पर सब मामने से इनकार किया। बाजीराव ने जयसिंह का गुप्त सन्देश पाकर फिर चढ़ाई की। जैतपुर के रास्ते वह आगरे के दक्खिन भदावर प्रदेश में जमना पर आ निकला। मल्हार होल्कर वहाँ से दोआब में घुस कर शिकोहाबाद आदि लूटता हुआ, जलेसर पर अवध के सूबेदार सआदतखाँ से हार कर, ग्वालियर पर बाजीराव से आ मिला। दिल्ली के तीन सेनापति--खानेदौरान, बंगश, सआदतखाँ—मथुरा पर जमा हुए। इसी समय रेवाड़ी पर एक मराठा हमले की खबर सुनकर वज़ीर क़मरुद्दीन उधर बढ़ा, और उधर से मथुरा की ओर लौटने लगा।

बाजीराव चम्बल पार कर इन दोनों फौजों को एक एक दिन की राह पर दाहिने बाएँ छोड़ता हुआ एकाएक दिल्ली पर आ पहुँचा (९-४-१७३७ ई०); सन्धि की बातचीत होने लगी, जिससे बाजीराव ने अपना इरादा बदल दिया। "हम दिल्ली जलाना चाहते थे, परन्तु फिर देखा कि वैसा करने और बादशाह की गद्दी नष्ट करने में लाभ नहीं है। क्योंकि बादशाह और खाने-दौरान हमसे सन्धि करना चाहते हैं, पर मुगल नहीं करने देते। हमारी तरफ़ से कोई अत्याचार होने से राजनीति का शूत्र टूट जाता, इसलिए जलाने का इरादा छोड़ कर बादशाह और राजा बख्तमल को पत्र भेजे।" इसी बीच दूसरे दिन दिल्ली की फ़ौज बाजीराव के मुकाबले को निकली और रिकाबगंज पर बुरी तरह हारी।

बाजीराव का दिल्ली पहुँचना सुन कर शाही सेनापति 'खीझ की अँगुली शर्म के दाँत पर रक्खे हुए' एकाएक लौटे। बाजीराव ने भी जब देखा कि बड़ी-बड़ी सेनाएँ चली आ रही हैं तो वह पच्छिम की ओर हट कर अजमेर जा निकला। वहाँ से वह फिर दिल्ली पर चढ़ाई करने या अन्तर्वेद में घुसने का इरादा कर ग्वालियर लौटा। चिमाजी को उसने लिखा—"इधर किसी का डर नहीं है, उधर

निज़ाम की एड़ियों में रस्से डाले रक्खो।" किन्तु बाजीराव के दिल्ली पहुँचने के के तीन दिन पहले मराठों की बड़ी सेना कोंकण में पुर्त्तगालियों के खिलाफ़ बढ़ चुकी थी, और खानदेश की मराठा टुकड़ी को भगा कर निज़ाम नर्मदा पार निकल आया था, इसलिए बाजीराव को एकाएक लौटना और कोंकण जाना पड़ा।

शाही दरबार में अब सब का यह मत था कि निज़ाम ही बाजीराव को रोक सकता है। इसलिए उसे फिर बुला कर वज़ीर बनाया गया। आगरा और मालवा के सूबे जयसिंह और बाजीराव के बजाय उसके बेटे गाज़िउद्दीन को दिये गये। निज़ाम मालवे को वापस लेने चला। अपने दूसरे बेटे नासिरजंग को उसने लिखा कि वह बाजीराव को दक्खिन से न निकलने दे। पर बाजीराव नर्मदा पार कर आया, और उसने भोपाल पर निज़ाम का सामना किया। पालखेड और जैतपुर वाली बात दोहरायी गयी। निज़ाम पूरी तरह घिर गया, परन्तु तोपों के सहारे कुछ आगे बढ़ा। अन्त में उसने दुराहासराय पर सन्धि की प्रार्थना की। उसने नर्मदा से चम्बल तक के प्रान्त पर मराठा आधिपत्य मनवाने और उन्हें ५० लाख की खंडनी देने का वचन दिया (जनवरी १७३८ ई०)।

§८. अँगरेज और आँग्रे ; पुर्तगालियों से युद्ध (१७२१-३९ ई०)— अपने ही देश के डकैतों को दबाने तथा कान्होजी आँग्रे की जलशक्ति तोड़ने में अपने को अशक्त देख ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने बादशाह से मदद माँगी। तब इँगलैंड से एक जंगी बेड़ा इस प्रयोजन के लिए मुम्बई आया। गोवा और बसई के पुर्त्तगाली गवर्नरों ने भी उसका साथ दिया। पर आँग्रे के कोलाबा किले से वे सब हार कर लौटे (१७२२-२३ ई०)। दूसरे वर्ष विजयदुर्ग पर ओलन्देज़ भी वैसे ही हारे। १७२९ ई० में आँग्रे की मृत्यु हुई। तब उसके बेटे आपस में झगड़ने लगे और उन झगड़ों में पुर्तगाली भी दखल देने लगे। बाजीराव ने उधर ध्यान दिया और पुर्तगालियों को दबना पड़ा। किन्तु उसके बाद पुर्तगाली वाइसराय के अभिमानी भतीजे ने मराठा दूत के सामने बाजीराव को 'नेगर' (हब्शी) कह दिया। चिमाजी अप्पा के नेतृत्व में महाराष्ट्र ने तब अपनी सारी शक्ति पुर्तगालियों के खिलाफ़ लगा दी। दो वर्ष तक घोर युद्ध होता रहा (१७३७-३९ ई०); दुराहासराय से लौट कर बाजीराव की सारी सेना कोंकण चली आयी और पुर्तगालियों का समूचा 'उत्तरी प्रान्त' मराठों के हाथ आया। बहादुरशाह गुजराती और अकबर जो काम करने को तरसते रहे, वह दो शताब्दी

बाद पूरा हुआ। पुर्तगालियों से बसई छीनने के लिए मराठों को भारी बलिदान करना पड़ा। चिमाजी का प्रस्ताव बसई के बाद मुम्बई लेने का था। इसलिए अँगरेज़ों ने चिमाजी और शाहू के पास अपने दूत भेजे। शाहू ने उनके साथ मैत्री रखना तय किया।

§९. **नादिरशाह की चढ़ाई (१७३८–३९ ई०)**—गिलज़ई पठानों का ईरान का राज्य दो वर्ष में टुकड़े-टुकड़े हो गया। अन्तिम सफ़ावी शाह के बेटे तहमास्प ने सिर उठाया; खुरासान में एक तुर्कमान सैनिक नादिरकुली ने उसका सेवक बन कर ईरान को स्वतन्त्र किया और उसे गद्दी पर बैठाया (१७२९ ई०)। किन्तु तहमास्प मूर्ख और दुर्बल था। जब सेना ने देखा कि वह अपने देश को फिर गँवा देगा तो उसने उसे हटा कर उसके बेटे को बादशाह बनाया। उसके मर जाने पर नादिरकुली नादिरशाह बना। उसने कन्दहार के अफ़ग़ानों पर चढ़ाई की (१७३७ ई०), और मुहम्मदशाह को लिखा कि वह भगोड़ों को अपनी सीमा में न घुसने दे। किन्तु अफ़ग़ान जब कन्दहार से गज़नी और काबुल भागने लगे, तब उस प्रान्त में उन्हें रोकने को कोई सेना न थी। नादिरशाह ने इसका जवाब तलब किया। दिल्ली से उसे साल भर तक कोई जवाब न मिला।

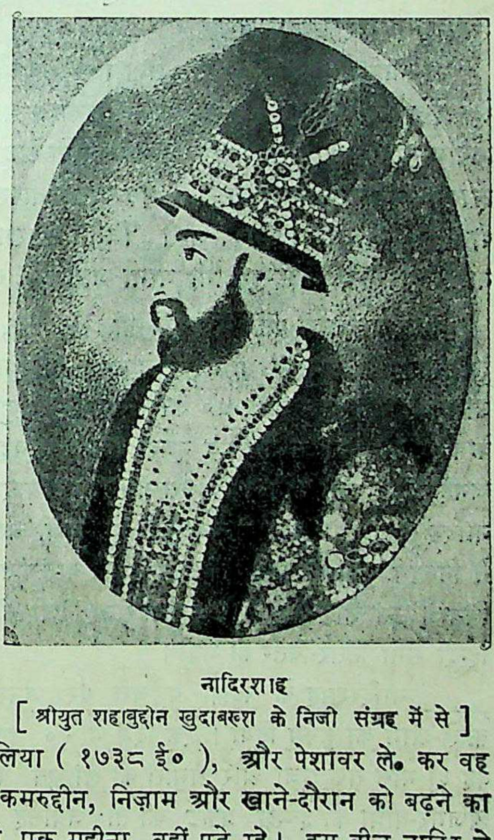

नादिरशाह

[श्रीयुत शहाबुद्दीन खुदाबख्श के निजी संग्रह में से]

तब नादिर ने काबुल ले लिया (१७३८ ई०), और पेशावर ले कर वह पंजाब की ओर बढ़ा। दिल्ली से कमरुद्दीन, निज़ाम और खाने-दौरान को बढ़ने का हुक्म हुआ। शाहदरा जा कर वे एक महीना वहीं पड़े रहे। इस बीच नादिर ने

ज़करियाख़ाँ से लाहौर भी ले लिया और पंजाब में उसकी सेना ने अकथनीय अत्याचार किये। दिल्ली दरबार ने राजपूत राजाओं को मदद के लिए लिखा और बाजीराव से भी प्रार्थना की। जयसिंह आदि ने तो उसे टाल दिया; पर बाजीराव ने लिखा "हमारे राज्य के लिए दिल्ली के बादशाह को ऐसे समय मदद देना बड़े गौरव की बात होगी। मल्हार होल्कर, रानोजी शिन्दे और उदाजी पँवार को भेजता हूँ।" किन्तु वे सब सेनानायक पुर्तगालियों के साथ उलझे हुए थे और किसी तरह कोंकण से न निकल सके। पानीपत पहुँच कर दिल्ली के सेनापतियों ने बादशाह को बुलाया और उसके आने पर वे करनाल तक आगे बढ़े। वहाँ उन्होंने मोर्चाबन्दी कर अपने को दीवार से घेर लिया। चुस्त और सजग शत्रु ने चारों तरफ़ से उनके रास्ते बन्द कर दिये।

नादिर की सेना मुख्यतः सवारों की थी और वे जिज़ैल नामक लम्बी बन्दूकों से लड़ते थे। भारतीय सवारों के मुख्य शस्त्रास्त्र भाला, तलवार और तीर थे। इसके सिवाय नादिर की सेना में एक अच्छी संख्या ऊँट सवारों की थी जो ज़म्बुरक अर्थात् हलकी लम्बी तोपों से लड़ते थे। इस 'दस्ती तोपख़ाने' के मुकाबले में भारतीयों के पास कुछ भी न था; उनका भारी 'जिन्सी तोपख़ाना' एक जगह टिका रहता था। नादिर के शब्दों में हिन्दुस्तानी मरना जानते थे, लड़ना नहीं।

सआदतख़ाँ पीछे से कुमुक ला रहा था, परन्तु वह ईरानियों के हाथ कैद हुआ। ख़ानेदौरान उसकी मदद को गया और मारा गया। कैदी सआदत के द्वारा सन्धि की बातें शुरू हुईं; ५० लाख खंडनी तय हुई, जैसी एक बरस पहले बाजीराव के लिए हुई थी। उसी समय मुगल दरबार में यह प्रश्न उठा कि ख़ानेदौरान की जगह मीर बख्शी कौन बने। इस प्रसंग में सआदत निज़ाम से रूठ बैठा। उसने नादिर से कहा, ५० लाख क्या लेते हो, दिल्ली चलो तो २० करोड़ मिलेंगे! नादिर ने निज़ाम, वज़ीर और मुहम्मदशाह को बातचीत के लिए बुला कर धोखे से पकड़ लिया। उन कैदियों के साथ ईरानी सेना दिल्ली की ओर बढ़ी। बिना नेताओं की हिन्दी सेना तितर-बितर हो गयी।

नादिरशाह के दिल्ली पहुँचने पर जनता ने विद्रोह किया। तब नादिर ने क़त्ले-आम का हुक्म दिया। एक दिन में २० हज़ार जानें ली गयीं। उसके बाद वह दो मास तक प्रजा और अमीरों को लांछित करता और निचोड़ता रहा। उसने अजमेर-यात्रा की इच्छा प्रकट की तो जयसिंह आदि ने अपने परिवार उदयपुर

भेज दिये। बाजीराव ने चम्बल के घाटों को अपने काबू में रखना तय किया। उसने लिखा, "पुर्त्तगाली युद्ध कुछ नहीं है; दक्खिन की सब शक्ति, हिन्दू और मुस्लिम, एक करनी होगी। मैं मराठों को नर्मदा से चम्बल तक फैला दूँगा।" पर बसई के ढहते ही (१४-५-१७३९) जब होल्कर और शिन्दे बाजीराव से मिलने बुरहानपुर की तरफ़ बढ़े, तब नादिरशाह को दिल्ली से लौटे ९ दिन हो चुके थे।

दिल्ली से नादिरशाह कुल १५ करोड़ रुपये नकद और ५० करोड़ के रत्नाभूषण और सामान, जिनमें तख्ते-ताउस भी शामिल था, ले गया। मुहम्मद-शाह को उसने उसकी जान और बादशाहत बख्शी, किन्तु ठठ्ठा (दक्खिनी सिन्ध) तथा सिन्ध नदी के पार के प्रान्त ले लिये और पंजाब में ज़करियाखाँ को अपनी ओर से नियुक्त किया। लौटते हुए नादिर का कुछ माल-असबाब दिल्ली के पास ही जाटों ने लूट लिया। पंजाब में सिक्खों ने रावी पर दुल्लेवाल किला बना लिया था। उन्होंने भी उसका बोझा कुछ हलका किया।

§१०. **बाजीराव का अन्त**—१७३९ ई० में बराड़ के रघुजी भोंसले ने गोंडवाने में देवगढ़ का राज्य जीत लिया। इसके बाद शाहू की प्रेरणा से उसने दक्खिनी प्रान्तों पर चढ़ाई की। तभी बाजीराव और चिमाजी दोनों भाइयों का बीमारी से देहान्त हो गया (१७४० ई०)। खबर पा कर रघुजी, जो पुद्दुचेरी में था, सतारा लौट आया, क्योंकि उसे पेशवा बनने की आशा थी।

तभी निज़ाम भी दक्खिन को लौट गया।

अध्याय २

पेशवा बालाजीराव

(१७४०–६१ ई०)

§ १. मराठों की तामिलनाड और बंगाल पर चढ़ाइयाँ; "भारतीय सिपाही का आविष्कार" (१७४०–४३ ई०)—बाजीराव की मृत्यु पर शाहू ने उसके नौजवान बेटे बालाजी को पेशवा बनाया और रघुजी भोंसले को, जो उसके विरोधी दक्खिनी दल का नेता था, फिर तामिलनाड की चढ़ाई पर भेजा।

राजाराम के जिंजी छोड़ने के बाद से तामिल देश पर दिल्ली-साम्राज्य का बराबर प्रभुत्व था। पहले जुल्फ़िक़ारखाँ ने, फिर फ़रुखसियर ने, सआदतुल्लाखाँ को 'कर्णाटक' का शासन सौंपा था। शकरखेडा-युद्ध के बाद निज़ाम ने भी उसे बना रहने दिया। लम्बे सुशासन के बाद १७३१ ई० में उसकी मृत्यु हुई। तब उसका भतीजा दोस्तअली 'कर्णाटक का नवाब' बना। अब वह दमलचेरी घाट पर रघुजी से लड़ता हुआ मारा गया। रघुजी तामिल मैदान की ओर बढ़ा। दोस्तअली का दामाद चन्दासाहेब त्रिचनापल्ली में लड़ता हुआ कैद हुआ (१७४१ ई०)। रघुजी ने उसे सतारा भेज दिया और कृष्णा के दक्खिन गुत्ती में बसे हुए मराठा सरदार मुरारीराव घोरपडे को त्रिची का हाकिम बनाया। चन्दा ने अपना परिवार पुद्दुचेरी के फ्रान्सीसी हाकिम द्यूमा (Dumas) के पास भेज दिया था।

रघुजी ने पुद्दुचेरी पहुँच कर द्यूमा से खिराज के बक़ाये और चन्दा साहब के परिवार को तलब किया। द्यूमा ने इनकार करते हुए कहला भेजा कि फ्रान्सीसी जाति ने कभी किसी को खिराज नहीं दिया। रघुजी ने अपने दूत को यह देखने भेजा कि द्यूमा किस बूते पर ऐसा लिखता है। द्यूमा ने अपनी रसद, तोपें और कवायद सीखे हुए सिपाही दिखाये। १२०० फ्रान्सीसी सैनिकों के सिवाय वहाँ ५,००० भारतीय सिपाही फ्रान्सीसी नियन्त्रण में कवायद सीखे हुए तैयार थे।

उनसे प्रभावित हो कर रघुजी लौट गया। उसे लौटा देने के लिए निज़ाम ने द्यूमा को भेट भेजी और मुहम्मदशाह ने उसे नवाब का पद दिया।

१८ वीं सदी में युरोप ने स्थल-युद्ध-कला में भी बड़ी उन्नति कर ली थी। बन्दूक का प्रयोग बढ़ जाने से अब वहाँ पैदल बन्दूकचियों की पाँतें तैयार हो गयीं थीं जो युद्ध का मुख्य साधन बन गयीं थीं। ये पाँतें एक साथ एक आदेश पर गोली दागतीं और इनकी सारी गति नेताओं के आदेशों पर नियमित रहती थी। इनके सामने ढीले अनुशासन पर चलने वाले रिसाले किसी काम के न थे। सेनाओं और युद्ध-शैली में केन्द्रीय नियन्त्रण बढ़ जाने से युरोप की शासनसंस्था में भी राजाओं का नियन्त्रण बढ़ गया, क्योंकि इन सुनियन्त्रित पैदल सेनाओं से राजाओं ने अपने उच्छृंखल सरदारों के कोटले ढहा कर उन्हें काबू में कर लिया। युरोप वाले यदि अब भारत में अपनी सेनाएँ ला सकते तो उसे आसानी से जीत लेते; पर इतनी दूर बड़ी फ़ौजें लाना सम्भव न था। इस दशा में द्यूमा ने भारतीय सिपाहियों को कवायद सिखा कर उन्हें नयी युद्ध-कला में दीक्षित किया। उसने यह अनुभव किया कि भारतवर्ष के लोगों में, एक पुरानी सभ्यता के वारिस होने के कारण, इतनी समझ और भौतिक वीरता है कि वे अच्छे सैनिक बन सकते हैं। आफ़्रिका आदि की दूसरी जिन जातियों से युरोप वालों को वास्ता पड़ा था, वे ऐसी न थीं। साथ ही उसने देखा कि भारतवासियों में राष्ट्रीयता का इतना अभाव है कि उन्हें किसी के भी भाड़े के सैनिक बन कर अपने भाइयों पर गोली दागने में कोई ग्लानि नहीं होती। इसके अलावा वे महात्त्वाकांक्षा और जिज्ञासा से भी इतने शून्य हैं कि जितनी बातें उन्हें सिखा दी जायँ उतनी सीख लेते हैं, पर उससे आगे बढ़ कर समूचे ज्ञान को अपनाने की उत्कंठा उनमें नहीं जागती। इसलिए जहाँ वे दूसरों के अच्छे हथियार बन सकते हैं वहाँ इस बात का खटका नहीं है कि वे स्वयम् युरोपी ढंग की सेनाएँ संगठित कर लें। द्यूमा को जो यह नयी बात सूझी, इसे युरोप वाले "भारतीय सिपाही का आविष्कार" कहते है। १८ वीं सदी का यह सब से बड़ा सामरिक आविष्कार था। युरोप वालों के हाथ में इससे एक ऐसा साधन आ गया जिससे उन्होंने पृथ्वी का नक्शा पलट दिया।

अठारहवीं सदी के शुरू में औरंगज़ेब ने मुर्शिदकुलीखाँ को बंगाल और उड़ीसा का नाज़िम और दीवान नियत किया था। उसके बाद उसका पद तथा बिहार की सूबेदारी भी उसके दामाद को मिली। अब अलीवर्दीखाँ ने उसके बेटे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को मार कर वह पद छीन लिया और बादशाह से, भी इसके लिए स्वीकृति ले ली (१७४० ई०)। दूसरे पक्ष के बुलाने से पहले रघुजी भोंसले के मन्त्री भास्कर कोल्हटकर ने और फिर खुद रघुजी ने रामगढ़ (आधुनिक हज़ारीबाग राज्य) और बाँकुड़ा के रास्ते बर्दवान पर चढ़ाई की और कटवा में छावनी डाल कर राजमहल से मेंदिनीपुर तक जीत लिया।

दुराहासराय की सन्धि को पक्का कराने के लिए पेशवा बालाजीराव ग्वालियर तक बढ़ आया था। बादशाह की तरफ़ से सवाई जयसिंह ने धौलपुर में उससे मिलकर उसे मालवे का सूबा दे दिया। उसके बाद बादशाह ने उससे प्रार्थना की कि वह बंगाल से रघुजी को निकाल दे। तदनुसार फ़रवरी १७४३ ई० में बालाजी प्रयाग, बनारस, गया, मुंगेर, बीरभूम के रास्ते बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद की तरफ़ बढ़ा। कटवा के उत्तर पलाशी गाँव पर अलीवर्दी ने उससे मिलकर बंगाल की चौथ देना स्वीकार किया। रघुजी बीरभूम की तरफ़ हट गया था; बालाजी ने पीछा कर उसे भगा दिया।

इसी समय तामिलनाड में भी रघुजी के किये कराये पर पानी फिर गया। निज़ाम ने वह प्रान्त फिर से जीत कर अनवरुद्दीन को नवाब नियत किया और मुरारीराव घोरपडे को भेट-पूजा से खुश कर लौटा दिया। इस दशा में राजा शाहू ने बालाजी और रघुजी के बीच समझौता करा दिया (३१-८-१७४३)। मालवा, आगरा, इलाहाबाद के सूबे बालाजी के अधिकार-क्षेत्र माने गये तथा बिहार, बंगाल, उड़ीसा और अवध रघुजी के। इसके बाद तुरन्त ही रघुजी ने नागपुर के गोंड राज्य को जीत लिया।

§७ उड़ीसा पर दख़ल, बंगाल-बिहार पर आधिपत्य—सन् १७४४ में भास्कर पन्त ने फिर बंगाल पर चढ़ाई की। इस बार अलीवर्दीख़ाँ ने उसे सन्धि की बातचीत के बहाने बुला कर उसके २१ नायकों सहित कत्ल कर डाला (३१-३-१७४४)। अगले वर्ष अलीवर्दी के अफ़गान सैनिकों ने, जो दरभंगा में बसे हुए थे, विद्रोह किया। उनके बुलाने से रघुजी भोंसले ने फिर चढ़ाई की, उड़ीसा पर दखल कर लिया और पच्छिमी बंगाल में छावनियाँ डाल कर बिहार में अफ़ग़ानों को मदद दी। बादशाह ने पेशवा से सन्धि करके बिहार की १० लाख चौथ पेशवा के लिए तथा बंगाल की २५ लाख बराड़ के भोंसले के लिए नियत कर दी। लेकिन बूढ़े अलीवर्दी ने भोंसले को चौथ देना स्वीकार न किया और वह आगे ५ वर्ष तक लड़ता

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रहा। अन्त में सन् १७५१ में उसने सन्धि की, जिसके अनुसार उसने उड़ीसा प्रान्त, मेदिनीपुर ज़िले के सिवाय, रघुजी को "जागीर के रूप में" दे दिया, और बंगाल की चौथ १२ लाख रुपया वार्षिक देना स्वीकार किया।

§३. राजपूताना और महाराष्ट्र के भीतरी झगड़े (१७४३–५२ ई०)—सन् १७४३ में सवाई जयसिंह की मृत्यु हुई; उसी वर्ष राजा शाहू को असाध्य रोग हुआ और छः बरस बीमार रह कर वह परलोक सिधारा (१४-१२-१७४९)। ९-६-१७४७ को नादिरशाह कत्ल किया गया तथा १५-४-१७४८ को मुहम्मदशाह और २१-५-१७४८ को निज़ाम चल बसा। १७४९ ई० में मारवाड़ का राजा अभयसिंह मरा। इन सब मृत्युओं से उत्तराधिकार के अनेक झगड़े खड़े हुए।

जयसिंह का बड़ा बेटा ईश्वरीसिंह जयपुर की गद्दी पर बैठा तो उसके छोटे भाई माधोसिंह ने राज्य का बड़ा हिस्सा माँगा। माधोसिंह के मामा उदयपुर के महाराणा जगतसिंह ने उसका पक्ष लिया। राजपूतों के इन तुच्छ झगड़ों में उलझ कर मराठा सरकार भी पथभ्रष्ट हो गयी। पहले वह ईश्वरीसिंह के पक्ष में थी, तो भी महाराणा ने मल्हार को अपने पक्ष में खींच लिया। बाद में मराठा सरकार ने भी माधोसिंह का पक्ष ले लिया। ईश्वरीसिंह ने पेशवा को याद दिलायी कि उसके पिता और बाजीराव की कैसी दाँतकाटी रोटी थी, लेकिन बालाजीराव ने एक न सुनी और १७४८ ई० में जयपुर राज्य पर चढ़ाई कर दी। ईश्वरीसिंह को झुकना पड़ा। दो बरस बाद वह हरजाने की रकम न चुका सका और मराठों ने फिर चढ़ाई की तो उसने और उसकी रानियों ने आत्महत्या कर ली। इन घटनाओं से राजपूत मराठों के शत्रु बन गये। माधोसिंह जयपुर का राजा बना, पर अब उसका रुख बदल गया, और समूचे राज्य में मराठों के विरुद्ध विद्रोह हुआ जो कठिनाई से दबाया गया।

अभयसिंह के मरने पर उसका भाई बख्तसिंह तथा उसका बेटा रामसिंह आपस में लड़ने लगे। बख्तसिंह ने १७५१ ई० में राज छीन लिया, पर अगले वर्ष वह मर गया और उसका बेटा विजयसिंह उत्तराधिकारी हुआ।

राजा शाहू के कोई सन्तान न थी। उसकी बीमारी के छः वर्षों में उत्तराधिकार के अनेक प्रस्ताव पेश हो कर रद्द होते रहे। ताराबाई ने कहला भेजा कि उसका एक पोता मौजूद है, जिसे उसने रजसबाई से बचाने को छिपा दिया था। बड़ी जाँच पड़ताल के बाद यह बात ठीक मानी गयी। शाहू की मृत्यु के बाद बालाजी और अन्य प्रधानों ने शाहू की इच्छानुसार ताराबाई के पोते रामराजा को

सतारा की गद्दी दी। रघुजी भोंसले ने बालाजी का साथ दिया। किन्तु ताराबाई की आकांक्षा अपने पोते के नाम पर स्वयम् शासन करने की थी। उसने उमाबाई दाभाडे से मिल कर षड्यन्त्र रचा और अपने पोते को भी षड्यन्त्र में मिलाना चाहा, पर उसके न मानने पर सतारा का किला छीन कर उसे कैद कर लिया। यशवन्तराव दाभाडे और दमाजी गायकवाड़ ने महाराष्ट्र पर चढ़ाई कर दी। बालाजी तब हैदराबाद के इलाके में गया हुआ था। उसे एकाएक लौटना पड़ा (एप्रिल १७५१)। विद्रोह को कुचल कर उसने दाभाडे और गायकवाड़ को कैद कर लिया और सतारा का किला और रामराजा ताराबाई के हाथ में रहने दिये। दमाजी गायकवाड़ ने गुजरात के कर का पिछला सब बकाया और आगे से वार्षिक कर और सब विजयों का आधा हिस्सा देना तथा राजकीय सेवा में अपनी सेना भेजना स्वीकार किया। ताराबाई ने भी पेशवा से समझौता किया, पर उसका किला और कैदी उसके हाथ में रहने दिये गये।

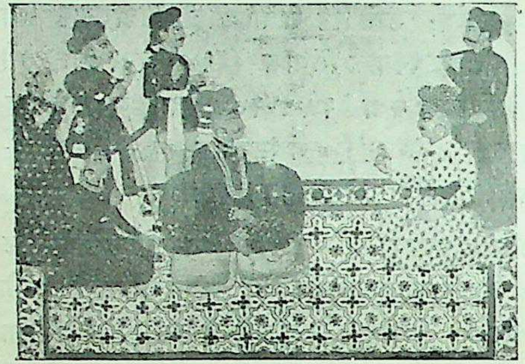

बलाजीराव पेशवा, दाहिने उसका पुत्र विश्वासराव, सामने नरोशंकर दानी (तीनों बैठे हुए)

[भा० इ० सं० मं०]

गुजरात में अहमदाबाद और खम्भात में अब तक दिल्ली की बादशाहत बनी हुई थी। इस समझौते के बाद बालाजी के भाई रघुनाथराव (राघोबा) के नेतृत्व में सम्मिलित मराठा सेना ने समूचा गुजरात जीत लिया (१७५२-५३ ई०)।

§४. उत्तर भारत में अफ़ग़ान और मराठे (१७४१–५२ ई०)— १७वीं शती के उत्तरार्ध और १८वीं के शुरू में प्राचीन पंचाल देश में अनेक अफ़ग़ान आ बसे थे। फ़र्रुखाबाद और शाहजहाँपुर में तथा बरेली ज़िले के आँवला और बानगढ़ कस्बों में उनकी खास बस्तियाँ थीं। अफ़ग़ानिस्तान में पहाड़ को रोह कहते हैं, इससे ये लोग रुहेले कहलाये। पुराने ज़मीन्दारों से छीन-खसोट कर रुहेलों ने बहुत सी जागीरें बना लीं। १७४१ ई० में उनके नेता अलीमुहम्मद

ने कटहर के फ़ौजदार को मार डाला। कमज़ोर मुगल दरबार ने अलीमुहम्मद को ही फ़ौजदार बना दिया, और कटहर या सम्भल का इलाका (उत्तर पंचाल) अब रुहेलखंड कहलाने लगा। रुहेलों की छीनाखसोटी तब और भी बढ़ गयी। १७४५ में खुद बादशाह ने बानगढ़ पर चढ़ाई की और अलीमुहम्मद को रुहेलखंड से हटा कर सरहिन्द का फ़ौजदार बना दिया।

उसी वर्ष पंजाब के ज़बर्दस्त सूबेदार ज़करियाखाँ की मृत्यु हुई और उसके बेटे आपस में लड़ने लगे। नादिरशाह के अधीन अहमद अब्दाली नामक पठान उसका सब से योग्य सेनापति था। नादिर के मारे जाने पर उसने मुकुट धारण किया और कन्दहार आ कर वह अफ़गानों का शाह बना। उसी साल जाड़े में उसने भारत पर चढ़ाई की। ज़करिया के बेटे से लाहौर छीन कर वह आगे बढ़ा। दिल्ली से वज़ीर कमरुद्दीन और शाहज़ादा अहमद उसके मुकाबले को चले। सरहिन्द के पास मानुपुर पर लड़ाई हुई जिसमें कमरुद्दीन तो मारा गया, पर उसके बेटे मुईनुल्मुल्क तथा सआदतखाँ के भतीजे अवध के सूबेदार सफ़्दरजंग ने अब्दाली को हरा कर लौटा दिया (११-३-१७४८ ई०)।

अब्दाली की इस चढ़ाई के समय उत्तर भारत के अफ़गान फिर से मुगल साम्राज्य के अन्त और अफ़गान साम्राज्य की स्थापना के सपने देखने लगे। अलीमुहम्मद सरहिन्द से भाग आया और उसके रुहेलों ने रुहेलखंड पर दखल कर लिया।

मानुपुर की लड़ाई के एक मास बाद मुहम्मदशाह की मृत्यु हुई। उसका बेटा अहमदशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा। मुईनुल्मुल्क को पंजाब की सूबेदारी दी गयी थी; सफ़्दरजंग को अब वज़ीर का पद दिया गया।

तभी अलीमुहम्मद भी मर गया। उसके पीछे चार रुहेले सरदार मिल कर रुहेलखंड का शासन चलाने लगे। सफ़्दरजंग ने अपने इन लड़ाकू पड़ोसियों से छुटकारा पाने को उन्हें परस्पर लड़ाने की युक्ति सोची। इसीलिए उसने फ़र्रुखाबाद के कायमखाँ बंगश को रुहेलखंड का सूबेदार बना कर भेजा। कायमखाँ मारा गया, तब सफ़्दर ने उसकी जागीर ज़ब्त कर ली!

सन् १७४९ के अन्त में अब्दाली ने फिर पंजाब पर चढ़ाई की। मुईन ने चनाब पर उसका सामना किया, पर उसे दिल्ली से कोई मदद न मिली और लाचार हो कर उसने अब्दाली को वार्षिक कर का वचन दे कर लौटाया।

कायमखाँ के भाई अहमद बंगश के नेतृत्व में फ़रुर्खाबाद के पठानों ने विद्रोह किया। उनसे लड़ता हुआ सफ़्दरजंग बुरी तरह हारा (१३-९-१७५० ई०)। तब उसने मराठों तथा व्रज के जाटों की मदद ली। मल्हार होल्कर और रानोजी शिन्दे (मृत्यु १७५० ई०) का बेटा जयप्पा शिन्दे जयपुर में थे। वहाँ से वे पेशवा की आज्ञा से दोआब आये। व्रज के नेता ठाकुर बदनसिंह ने जयपुर के सामन्त के रूप में बड़ी शक्ति बना ली थी। सिनसिनी, थूण आदि पुराने किलों की जगह उसने अब भरतपुर, दीग और कुम्भेर आदि गढ़ बना लिये थे। बदनसिंह अब बूढ़ा था, और उसका दत्तक पुत्र सूरजमल अब व्रज का नेता था।

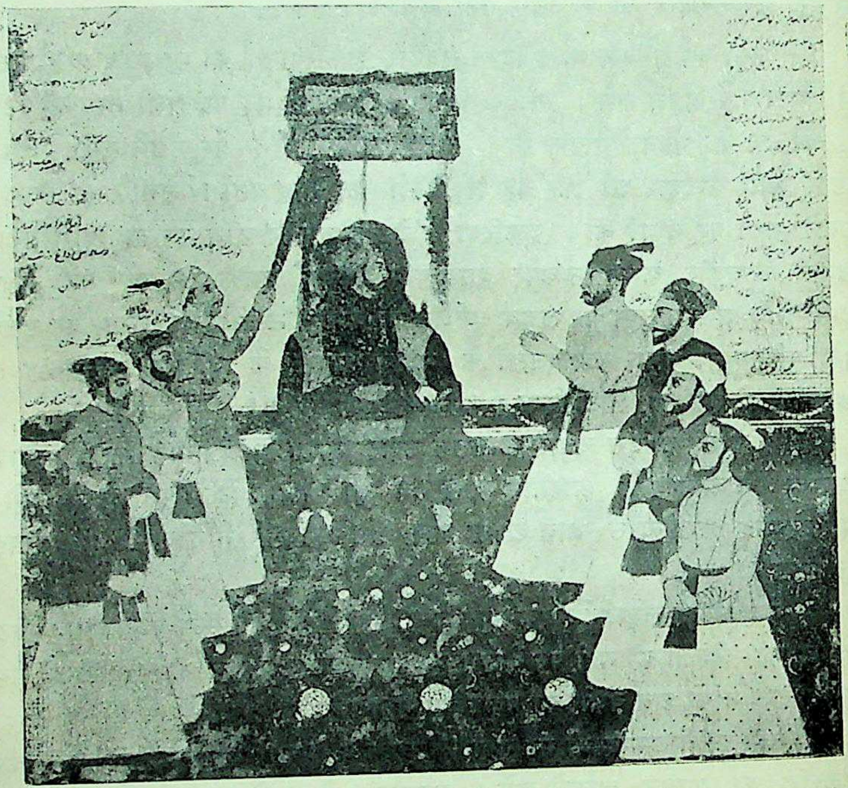

अहमदशाह दरबार में

बादशाह के बायें सब से आगे मुईनुलमुल्क; दाहने दूसरे गाजीउद्दीन

[दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मराठों और व्रज की सेना ने पठानों को हरा कर फ़रुखाबाद का क़िला फ़तहगढ़ ले लिया (१९-४-१७५१ ई०) । अहमद बंगश ने आँवले में शरण ली । तब मराठों ने रुहेलखंड पर चढ़ाई की और रुहेलों को कुमाऊँ की तराई तक ढकेल दिया । मार्च १७५२ ई० में सन्धि हुई जिससे दोआब में इटावा आदि इलाके मराठों को मिले ।

इधर दिसम्बर सन् १७५१ में अब्दाली ने पंजाब पर फिर चढ़ाई की, क्योंकि मुईन ने उसके पास कर न भेजा था । मुइन का दीवान राजा कौड़ामल लड़ता हुआ मारा गया (५-३-१७५२ ई०); तब मुईन को अब्दाली का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ा । बादशाह सफ़दरजंग को बुलाता रहा कि वह रुहेलों से सन्धि करके शीघ्र लौटे, पर सफ़दर मुईन का नाश चाहता था इससे वह ढील डालता रहा । अब्दाली के लाहौर ले लेने पर सम्राट् ने उसे लिखा कि वह अब्दाली के खिलाफ़ मराठों की मदद लावे । इसलिए सफ़दर ने मराठों से सन्धि की जिसकी मुख्य शर्तें ये थीं—पेशवा को दिल्ली साम्राज्य के सब भीतरी विद्रोहियों और बाहरी शत्रुओं के दमन का भार सौंपा गया, जिसके बदले में उसे अजमेर और आगरे की सूबेदारी, पंजाब और सिन्ध की चौथ, हिसार, सम्भल, मुरादाबाद, बदाऊँ ज़िलों की जागीर तथा पंजाब के चार महालों की मालगुज़ारी दी गयी । मतलब यह कि अवध और इलाहाबाद के सिवाय समूचे भारत का आधिपत्य पेशवा को सौंप दिया गया । सफ़दर मराठों की मदद से काबुल भी वापस लेने की बातें करने लगा ।

लेकिन वह जब ढील डाल रहा था, तभी अब्दाली ने लाहौर से अपना दूत दिल्ली भेज कर पंजाब का मुतालबा किया था, और कमज़ोर बादशाह ने उसे पंजाब दे दिया था । सफ़दर ने दिल्ली पहुँच कर जब यह सुना तो वह मराठों के साथ फ़ौरन पंजाब पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया । लेकिन पेशवा मराठों को तभी दक्खिन आने को पुकार रहा था । घरेलू विद्रोह को तो वह दबा चुका था, पर एक और भयंकर शत्रु से उसे वास्ता पड़ा था ।

ज़करियाख़ाँ की मृत्यु के बाद से सिक्ख पंजाब में प्रबल होते जाते थे । अब्दाली की पिछली चढ़ाई के समय उन्होंने अमृतसर से पहाड़ों तक कब्ज़ा कर लिया था । मुईन ने अब्दाली के लौटने पर अदीना बेग को उन्हें दबाने भेजा । अदीना ने उन्हें हरा कर उनसे यह समझौता किया कि उनसे मालगुज़ारी नाम को ली जायगी और वे दूसरी प्रजा से चुंगी वसूल कर सकेंगे । उस वर्ष के

अन्त में मुईन की मृत्यु हुई। उसकी विधवा मुगलानी बेगम पंजाब का शासन करने लगी।

§५. दक्खिन में फ्रान्सीसी और अँगरेज़ शक्ति का उदय (१७४४-५२ ई०)—सन् १७४४ में इंग्लैंड और फ्रान्स में युद्ध छिड़ा, तब द्यूमा के उत्तराधिकारी द्यूप्ले ने चोलमंडल की मद्रास आदि सब अँगरेजी बस्तियाँ छीन लीं। केवल एक देवनपटम् (फोर्ट सेन्ट डैविड) की बस्ती अँगरेजों के पास बची।

द्यूप्ले ने नवाब अनवरुद्दीन से मदद ली थी और बदले में उसे मद्रास देने को कहा था। अब वह उस वचन को भूल गया। अनवरुद्दीन ने अपने बेटे को १० हज़ार फ़ौज के साथ मद्रास पर भेजा। २३० फ्रान्सीसियों और ७०० भारतीय सिपाहियों की सेना ने अडयार नदी पर उस फ़ौज को हरा कर उसकी तोपें छीन लीं (१७४६ ई०)। इस लड़ाई से पहले-पहल यह प्रकट हुआ कि युरोपी तरीके पर तैयार की हुई सेना के सामने भारतीय सेना किसी काम की न थी। इंग्लैंड और फ्रान्स ने १७४८ ई० में सन्धि करके एक दूसरे की बस्तियाँ लौटा दीं।

द्यूप्ले ने अब द्यूमा के इस नये हथियार द्वारा भारतीय राजनीति में दख़ल दे कर फ्रान्सीसी सम्राज्य खड़ा करना चाहा। चन्दासाहब का परिवार पुद्दुचेरी में ही था, द्यूप्ले ने सोचा, यदि वह चन्दा को कैद से छुड़ा कर तामिल देश का नवाब बना सके तो वह वहाँ का सर्वेसर्वा हो जाय। उसने राजा शाहू को सात लाख रुपया दे कर चन्दासाहब को छुड़ा लिया (१७४८ ई०)।

तभी निज़ामुल्मुल्क भी चल बसा और उसके दूसरे बेटे नासिरजंग तथा उसके दोहते मुज़फ़्फ़रजंग में युद्ध छिड़ा। नासिर ने मराठों से मदद पायी। चन्दासाहब मुज़फ़्फ़रजंग से जा मिला तथा दोनों पहले तामिलनाड गये। सीमा पर पहुँचते ही फ्रान्सीसी सेना उनसे आ मिली। नवाब अनवरुद्दीन ने तामिल देश की राजधानी आरकाट से ५० मील पच्छिम आम्बूर के पास दमलचेरी घाट पर उनका सामना किया। अनवरुद्दीन मारा गया और उसका बेटा मुहम्मदअली बची-खुची सेना के साथ कावेरी पार त्रिचनापल्ली भाग गया।

द्यूप्ले ने कहा, फ़ौरन त्रिची पर चढ़ाई की जाय; लेकिन मुज़फ़्फ़र और चन्दासाहब ने महीनों जश्न-जुलूसों में बिता दिये, और वे तांजोर तक ही पहुँचे थे कि नासिरजंग एक बड़ी फ़ौज ले कर उनपर आ पड़ा (दिस० १७४९ ई०)। फ्रान्सीसी सेना के अनेक अफ़सर तभी इस्तीफ़े दे कर चले गये थे। मुज़फ़्फ़र ने अपने को

मामा के हाथ सौंप दिया। चन्दासाहब पुद्दुचेरी भागा। द्यूप्ले ने भी सन्धि का सन्देश भेजा, पर साथ ही नासिरजंग के पठान सरदारों से षड्यन्त्र शुरू किया। नासिर आरकाट जा कर ऐश में डूब गया।

तब द्यूप्ले अपनी ताक़त परखने लगा। थोड़ी सी सेना समुद्र के रास्ते भेज उसने मसुलीपटम ले लिया। फिर तामिलनाड के सबसे मजबूत किले जिंजी पर एक टुकड़ी भेज कर एक रात में उसे छीन लिया! नासिर ने तब द्यूप्ले से सन्धि कर ली। लेकिन तब तक पठान सरदारों वाला षड्यन्त्र भी पक चुका था और एक सरदार की गोली से नासिरजंग का काम तमाम हो गया (५-१२-१७५० ई०)।

मुज़फ़्फ़र कैद से छूट कर पुद्दुचेरी गया। उसने द्यूप्ले को कृष्णा से कन्याकुमारी तक का नाज़िम तथा चन्दासाहब को उसका नायब बनाया। मुहम्मदअली फिर त्रिची भागा, और अँगरेज़ों, मराठों तथा मैसूर के राजा से मदद माँगने लगा। सेनापति बुसी मुज़फ़्फ़रजंग को दक्खिन के सूबेदार की गद्दी पर बैठाने गोलकुंडा ले चला। रास्ते में एक बलवा दबाते हुए मुज़फ़्फ़र मारा गया। उसके तीन मामा वहीं मौजूद थे। बुसी ने उनमें से बड़े, सलाबतजंग, को सूबेदार बना कर प्रयाण जारी रक्खा।

नासिरजंग की मृत्यु पर बादशाह ने पेशवा की प्रेरणा से उसके बड़े भाई गाज़िउद्दीन को, जो दिल्ली में ही था, दक्खिन की सूबेदारी दी। गाज़िउद्दीन ने पेशवा को अपना नायब नियत किया। सलाबतजंग जब कृष्णा पर पहुँचा तो पेशवा वहाँ उसका रास्ता रोके खड़ा था। लेकिन तभी पेशवा को महाराष्ट्र के घरेलू विद्रोह की खबर मिली और अपनी कठिनाई का पता लगने दिये बिना वह सलाबत से एक बड़ी रकम लेना ठीक करके लौट गया। बुसी ने सलाबतजंग को औरंगाबाद पहुँचा कर सूबेदार घोषित किया (२०-६-१७५१ ई०)।

उधर चन्दासाहब ने त्रिची को घेर लिया था। अँगरेज़ों ने भी अब भारतीय सिपाहियों की सेना तैयार कर ली थी और यह समझ कर कि मुहम्मदअली को बचाने में ही उनका बचाव है, वे उसकी मदद करने लगे थे। इस प्रसंग में क्लाइव नामक एक अँगरेज़ ने यह प्रस्ताव किया कि आरकाट पर हमला किया जाय तो चन्दा उसे बचाने के लिए त्रिची का घेरा खुद ढीला कर देगा। तदनुसार क्लाइव ने आरकाट ले लिया (११-९-१७५१ ई०)। परिणाम वही हुआ। चन्दासाहब ने अपने बेटे राजूसाहेब के साथ अपनी आधी सेना आरकाट भेजी। उधर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मुहम्मदअली की मदद में मैसूरी सेनापति नन्दिराज तथा मुरारीराव घोरपडे भी आ गये थे। राजूसाहेब ने आरकाट को आ घेरा। उस फूटे कोटले में मुट्ठी भर सेना के साथ क्लाइव बहादुरी से डटा रहा। मुरारीराव उसको मदद को आया; तब राजूसाहेब को घेरा उठाना पड़ा (२५-११-१७५१ ई०)। क्लाइव तब मैदान में निकल कर लड़ता रहा।

घर का विद्रोह दबा कर बालाजी ने फिर औरंगाबाद पर चढ़ाई की। इसपर बुसी गोलकुंडा से बढ़ा और मराठों को हराता हुआ पूना से १६ मील कोरेगाँव तक आ पहुँचा (२८-११-१७५१ ई०)। इस युद्ध में युरोपी शैली की चुस्त और नियमित गोलाबारी को पहली बार देख कर मराठे दंग रह गये। तो भी उन्होंने जी-जान से मुकाबला किया और वे चारों तरफ़ छापे मार कर शत्रु को सताने लगे। उनके एक दल ने त्रिम्बक क़िला ले लिया। रघुजी भोंसले ने पेनगंगा और गोदावरी के बीच का निज़ाम का पूरबी प्रदेश दबा लिया। सलाबतजंग ने तब अहमदनगर लौट कर लड़ाई बन्द कर दी। पेशवा के बुलाने से उत्तर भारत की मराठा सेना गाज़िउद्दीन को साथ ले कर (४-५-१७५२ ई०) को दिल्ली से रवाना हुई। बुरहानपुर और औरंगाबाद के मुसलमान गाज़िउद्दीन के पक्ष में थे। उसने उनकी मदद से औरंगाबाद ले लिया।

इस बीच त्रिची के मोर्चे पर मुहम्मद अली का पलड़ा भारी होते देख तांजोर के राजा ने भी उसकी मदद की। चन्दासाहब योग्य शासक था, वह सफल होता तो मैसूर, तांजोर आदि दक्खिन के सब छोटे राज्यों को जीतने की कोशिश करता। इसीसे वे उसके विरोधी थे। अन्त में चन्दासाहब और फ़्रान्सीसी सेना को श्रीरंगम् द्वीप में हटना पड़ा, जहाँ वे खुद घिर गये। तांजोरी सेनापति ने चन्दासाहब को धोखे से पकड़ कर मार डाला (जून १७५२ ई०)।

मुहम्मद अली ने मैसूरियों को त्रिचनापल्ली देने का वचन दिया था। अब उसने धोखा दिया और क़िले में अँगरेज़ी सेना डाल दी। इस पर नन्दिराज और मुरारीराव फिर घेरा डाल कर पड़े रहे और फ़्रान्सीसियों का पक्ष लेने लगे।

गाज़िउद्दीन की एक सौतेली माँ ने उसे ज़हर दे दिया (१६-१०-१७५२ ई०)। तब सलाबतजंग के राज्य में झगड़ा खतम हुआ और उसने फ़्रान्सीसियों को बड़े पुरस्कार दिये। द्यूप्ले ने राजूसाहब को तामिलनाड का नवाब घोषित किया। गाज़िउद्दीन ने मराठों को बुरहानपुर, औरंगाबाद के इलाके देने को कहा था,

पेशवा ने उनका मुतालबा न छोड़ा। अन्त में सलाबतजंग ने भालकी पर पेशवा से सन्धि की (२५-११-१७५२ ई०), और बराड़ के पच्छिम के ताप्ती-गोदावरी के बीच के प्रदेश दे दिये।

यों पाँच बरस के युद्ध का परिणाम यह निकला कि हैदराबाद में, जिसे मराठे अपने मुँह का कौर समझे हुए थे, फ़्रान्सीसी शक्ति स्थापित हो गयी, पर उसकी थोड़ी-बहुत रोकथाम पेशवा कर पाया। तामिलनाड में जिंजी फ़्रान्सीसियों के हाथ, और आरकाट और त्रिची अँगरेज़ों के हाथ चले गये, तथा मैदान में दोनों का युद्ध चलता रहा जिसमें मैसूरी और मुरारीराव अब फ़्रान्सीसियों का साथ दे रहे थे।

§६. उत्तर और दक्खिन भारत पर मराठा चढ़ाइयाँ (१७५३–५६ ई०)—भालकी की सन्धि के बाद पेशवा को फ़ुरसत थी। यदि वह परिस्थिति को ठीक समझ सकता तो वह देखता कि दक्खिन से समुद्र पार के विदेशियों को निकालना तथा उत्तर भारत को सरहद्दी लुटेरों से बचाना, ये दो उसके प्रमुख कर्त्तव्य थे। इन्हें वह निभा सकता तो भारत का साम्राज्य तो उसके हाथों में आया हुआ था। दक्खिन से युरोपियों को निकालने के लिए वह मैसूर आदि छोटे राज्यों का सहयोग पा सकता था। उत्तर भारत की रक्षा के लिए राजपूतों, जाटों, सिक्खों का सहयोग लिया जा सकता था तथा दिल्ली साम्राज्य की बची-खुची शक्ति का उपयोग किया जा सकता था। लेकिन पेशवा अपने पुराने रास्ते पर ही चलता गया! उसकी दृष्टि में दिल्ली साम्राज्य की जड़ पर चोटें लग चुकीं थीं, और उसे गिरा कर उसकी शाखाएँ बटोरने का काम ही बाकी था। अब मराठा दरबार और सेना में यह मुख्य चर्चा थी कि सब से पहले समूचा दक्खिन मराठा साम्राज्य में आ जाना चाहिए। और चूँकि फ़्रान्सीसी इस काम में आड़े आ गये थे, इसलिए उन्हें उखाड़ फेंकना बालाजी ने अपना मुख्य ध्येय मान लिया। उसने यह भी सोचा कि उन्हें निकालने के लिए वह अँगरेज़ों का उपयोग कर सकता है! वह स्वयम् दक्खिन में उलझा रहा और उत्तर भारत में अपने भाई रघुनाथराव (राघोबा) या अपने सेनापतियों को भेजता रहा।

अ. उत्तर भारत—ईसी समय दिल्ली में बादशाह और सफ़दरजंग के बीच घरेलू युद्ध छिड़ गया। बादशाह ने कमरुद्दीन के बेटे इन्तिज़ामुद्दौला को वज़ीर बनाया। पिछले साल जब गाज़िउद्दीन की हत्या की खबर आयी थी तो

उसके बेटे शिहाब ने सफ़दर के पास फूट-फूट कर रो कर कहा था कि मुझ अनाथ के तुम्हीं बाप हो ! सफ़दर का दिल पिघल गया और उस १५ साल के लड़के को उसने इमादुल्मुल्क का पद दे कर साम्राज्य का मीर बख़्शी बनवा दिया था। वही इमाद अब सफ़दर का जानी दुश्मन हो गया। मराठे भी उसकी तरफ़ हो गये, लेकिन सूरजमल ने सफ़दर का साथ दिया। नजीबख़ाँ रुहेला अपनी सेना के साथ शाही पक्ष में आ मिला। सफ़दर की सेना धीरे-धीरे दिल्ली से ढकेली गयी। पीछे बादशाह और इन्तिज़ाम इमाद से स्पर्धा और सफ़दर से समझौते की बात करने लगे। समझौता होने पर सफ़दर अवध चला गया। इस घरेलू युद्ध में दिल्ली सरकार दिवालिया हो गयी और उसकी रही-सही सैनिक शक्ति भी चूर-चूर हो गयी।

पेशवा ने मुख्य मराठा सेना को तब तक रोके रक्खा जब तक दोनों पक्ष क्षीण न हो जाँय। जब रघुनाथ दादा के नेतृत्व में मराठा सेना उत्तर भारत पहुँची तो बादशाह और इमाद के बीच उसे अपनी-अपनी तरफ़ मिलाने की होड़ लग गयी। मराठों ने इमाद का साथ दिया, क्योंकि एक तो उन्हें उसके द्वारा दक्खिन में सुविधाएँ पाने की आशा थी, दूसरे वे और इमाद दोनों ब्रज के राजा को दबाना चाहते थे। परन्तु बादशाह और वज़ीर इस ख्याल से सूरजमल का पक्ष करते थे कि इमाद प्रबल न होने पाये। राजपूताने से राघोबा ने सीधे ब्रज पर चढ़ाई की (जनवरी १७५४ ई०)। सूरजमल ने कुम्भेरगढ़ की शरण ली। कुम्भेर के मुहासरे में मल्हार होल्कर का बेटा खंडेराव मारा गया। मई में सूरजमल ने समझौता किया और अधीनता मानी।

इसी बीच बादशाह और इमाद में खुला झगड़ा हो गया था। वज़ीर इन्तिज़ाम ने यह योजना बनायी कि मराठों और इमाद के खिलाफ़ सफ़दरजंग, सूरजमल और राजपूतों से मदद ली जाय। इस उद्देश से वह बादशाह को ले कर दिल्ली से सिकन्दराबाद तक आया, जहाँ सफ़दर और सूरजमल को भी बुलाया गया था। परन्तु अब यह खबर मिली कि सूरजमल से सन्धि करके मराठे मथुरा आ पहुँचे। मल्हार और करीब आ गया ! अहमदशाह के डेरे में भगदड़ मच गयी। २६ मई को प्रातः दो बजे गहरे अँधेरे में सब लोग दिल्ली भागने लगे। शाही बेगमें की बड़ी दुर्गति हुई। उनमें से अधिकांश मराठों के हाथ पड़ीं, जिन्हें मल्हार ने इज्ज़त के साथ पहरे में रख दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मल्हार ने जो कुछ कहा, अहमदशाह को मानना पड़ा। २-६-१७५४ को बादशाह ने इमाद को वज़ीर बनाया। इमाद ने कुरान हाथ में ले कर शपथ ली कि वह उससे कभी दगा न करेगा। दरबार से बाहर आ कर उसने बहादुरशाह के एक पोते को शाही महल की कैद से मँगवाया, उसे आलमगीर के नाम से गद्दी पर बैठाया, और अहमदशाह को कैद में डलवा दिया! तैमूरी वंश की बची खुची शक्ति और इज़्ज़त तो यों धूल में मिली ही, साथ ही मराठा सरकार की नीति भी राजपूताने के झगड़ों की तरह दिल्ली के झगड़ों के बीच केवल क्षणिक लाभ को देखने के कारण पथभ्रष्ट हो गयी। व्रज के लोग भी मराठों से चिढ़ गये; और सफ़्दरजंग के तजुरबे से लोगों को मालूम हो गया कि मराठा सरकार की मैत्री में कितना पानी है।

दिल्ली से राघोबा ने जयप्पा शिन्दे को मारवाड़ भेजा, जहाँ रामसिंह विजयसिंह के खिलाफ़ मदद माँग रहा था। जयप्पा से हार कर विजयसिंह ने नागोरगढ़ में शरण ली। जयप्पा ने घेरा डाल दिया। पेशवा का आदेश था कि विजयसिंह को बहुत न दबाया जाय। पर जयप्पा अड़ गया। इस बीच सफ़्दरजंग की मृत्यु हो गयी। पेशवा ने जयप्पा को फिर लिखा कि मारवाड़ का मामला निपटा कर अवध जाओ और प्रयाग-बनारस पाने की कोशिश करो। लेकिन हठी जयप्पा रेगिस्तान में अटका रहा। उसके अभिमानी बर्ताव से चिढ़ कर राजपूतों ने उसे कत्ल कर दिया (२४-७-१७५५)। तब उसका भाई दत्ताजी उसकी जगह डट गया और उसने विजयसिंह को पूरी तरह हरा कर बीकानेर भगा दिया। फ़रवरी १७५६ में सन्धि हुई जिसके अनुसार अजमेर मराठों को मिला।

मुख्य मराठा सेना साल भर पहले दक्खिन चली गयी थी। इस बार पेशवा ने मल्हार को भी दक्खिन की चढ़ाई के लिए बुला लिया।

पंजाब में मुगलानी बेगम के शासन की अव्यवस्था हटाने के लिए अब्दाली ने अपना प्रतिनिधि भेज दिया था। इमाद ने अदीना बेग को भेज कर उसे भगा दिया (जनवरी १७५६)। पीछे उसने मुगलानी को भी पकड़ मँगाया और अपना सूबेदार लाहौर में रख दिया।

इ. दक्खिन भारत—भालकी की सन्धि से मराठों और निज़ाम के बीच शान्ति हुई, पर तामिलनाड में युद्ध जारी था और त्रिची का घेरा पड़ा हुआ था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सलाबतजंग के भाइयों और दीवान से षड्यन्त्र करके पेशवा ने बुसी की शक्ति तोड़नी चाही; पर व्यर्थ। सन् १७५३ के अन्त में सलाबत ने आन्ध्र तट के चार उत्तरी सरकार (ज़िले)—कोंडपल्ली, एलोर, राजमहेन्द्री, शिकाकोल—फ्रान्सीसी कम्पनी को जागीर रूप में दे दिये।

दोनों पक्ष अब युद्ध से ऊब गये थे। फ्रान्सीसी कम्पनी की आर्थिक दशा अँगरेज़ी कम्पनी से बहुत कमज़ोर थी; उसमें जनता का उत्साहपूर्ण सहयोग न था, वह बहुत-कुछ सरकारी सहायता से चलती थी और उस समय की फ्रान्सीसी सरकार की तरह कुव्यवस्था का नमूना थी। उसके संचालकों ने अब द्यूप्ले को पदच्युत कर उसके स्थान में दूसरे व्यक्ति को भेजा (अगस्त १७५४), जिसने युद्ध रुकवा कर मुहम्मदअली को तामिलनाड का नवाब मान लिया। दोनों पक्षों ने एक आरज़ी सन्धि का मसविदा तैयार कर स्वीकृत के लिए विलायत भेजी। पर मैसूरियों ने मुहम्मदअली से युद्ध बन्द नहीं किया।

ठीक इसी समय बालाजीराव ने अपनी दक्खिन की चढ़ाई शुरू की। उसने सलाबतजंग के दीवान को अपने साथ मिला कर यह प्रस्ताव किया कि मराठे और निज़ाम मिल कर मैसूर और अन्य छोटे दक्खिनी राज्यों को जीत लें। मैसूर की सेना त्रिचनापल्ली में अँगरेज़ों को घेरे हुए थी, तो भी बुसी को उनके देश पर चढ़ाई करनी पड़ी। पेशवा और सलाबत की सेना के श्रीरंगपट्टम् पहुँचने पर मैसूरी सेना को त्रिची से लौटना पड़ा, जिससे मुहम्मदअली और अँगरेज़ों को निजात मिली। मैसूर के साथ ही बेदनूर पर भी चढ़ाई की गयी। कृष्णा नदी के दक्खिन, मैसूर और तामिलनाड की उत्तरी सीमा पर सावनूर, कर्नूल और कडप के पठान सरदारों के तथा गुत्ती के सरदार मुरारीराव घोरपडे के इलाके थे। नासिरजंग की मृत्यु के बाद से ये बहुत कुछ स्वतन्त्र हो गये थे। इनके इलाकों का बड़ा अंश ले कर इन्हें अधीन किया गया (मई १७५६)। निज़ाम की सेना इसके बाद लौट गयी, पर मराठों की दक्खिनी चढ़ाई अगले साल भर जारी रही।

इसी बीच महाराष्ट्र के भीतरी शासन में भी पेशवा ने एक भारी भूल की। कोंकण के आंग्रे भाइयों में से तुलाजी ने विद्रोह कर अनेक अत्याचार किये थे। बालाजी ने अपने उस प्रजाजन के खिलाफ़ विदेशी अँगरेज़ों से मदद ली! तुलाजी का सुवर्णदुर्ग छिन गया (एप्रिल १७५५) और वह विजयदुर्ग भाग गया। अँगरेज़ी बेड़ा लौट गया, पर मराठा सेना ने तुलाजी को घेर कर सन्धि के लिए विवश किया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसी बीच अमेरिका में अँगरेज़ और फ़्रान्सीसी उपनिवेशों में युद्ध छिड़ गया था (१७५५ ई०)। इंग्लैंड के प्रधान मन्त्री पिट ने वाटसन और क्लाइव को फ़्रान्सीसियों से लड़ने के लिए मुम्बई भेजा। उनका यह प्रस्ताव था कि अँगरेज़ मराठों के साथ मिल कर हैदराबाद पर चढ़ाई करें और बुसी को वहाँ से निकाल दें। ऐसा न हुआ तो क्लाइव और वाटसन ने विजयदुर्ग पर चढ़ाई करके तुलाजी का सब बेड़ा डुबा दिया (१२-४-१७५६ ई०)। तीस वर्ष पहले जिस आंग्रे से अँगरेज़ सदा डरते रहे, उसके मराठा बेड़े को मराठा सरकार ने उनसे स्वयम् डुबवा दिया! क्लाइव और वाटसन वहाँ से मद्रास गये और क्लाइव मद्रास का गवर्नर नियुक्त हुआ।

§७. अब्दाली की दिल्ली-मथुरा-चढ़ाई; अँगरेजों का बंगाल-बिहार तथा मराठों का पंजाब जीतना (१७५६–५८)—विजयदुर्ग पर अँगरेज़ी झंडा फहराने के दो दिन पहले बंगाल में बूढ़े अलीवर्दी का देहान्त हुआ और उसका दोहता सिराजुद्दौला नवाब बना। अँगरेज़ अपना कलकत्ते वाला किला बढ़ाने लगे। वे पहले से ही नवाब के खिलाफ़ षड्यन्त्र कर रहे थे। सिराज ने हुक्म दिया कि बंगाल में कोई विदेशी युद्ध की तैयारी न करे। अँगरेज़ों के न मानने पर सिराज ने चढ़ाई कर कलकत्ता ले लिया, और बंगाल भर में अँगरेज़ों की कोठियों पर दख़ल कर लिया। अँगरेज़ कलकत्ते के दक्खिन फल्ता भाग गये। सिराज ने उन्हें वहाँ बना रहने दिया, क्योंकि वह उन्हें तुच्छ समझता था। उसके ख्याल से युरोप कोई छोटा सा टापू था, जिसके कुल बाशिन्दे १०-१२ हज़ार थे, जिनमें से चौथाई अँगरेज़ थे! चन्द्रनगर के फ़्रान्सीसी सिराज की मदद के लिए तैयार थे। बालाजी ने देखा कि बंगाल में भी फ़्रान्सीसी हैदराबाद की तरह सर्वेसर्वा हो जायेंगे, इसलिए उसने वहाँ के अँगरेज़ों के मुखिया ड्रेक को सन्देश भेजा कि नवाब से न दबो, वह मदद को मराठा सेना भेज सकता है। ड्रेक ने यह मदद न ली, तो भी बालाजी ने अपनी सारी शक्ति इस ओर लगा दी कि बुसी बंगाल न पहुँचने पाय। उसने आन्ध्र तट की फ़्रान्सीसी जागीर में बलवा करा दिया, जिसे दबाने में बुसी को तीन मास लग गये। इसी बीच में वाटसन और क्लाइव ने मद्रास से जा कर कलकत्ता ले लिया (२-१-१७५७)।

इसी बीच पंजाब में भी भयंकर स्थिति पैदा हो गयी थी। इमाद का पंजाब लेना फ़कत अब्दाली को चिढ़ाना था। सन् १७५६ के जाड़े में अब्दाली ने पंजाब पर चढ़ाई की। जनवरी में वह दिल्ली की तरफ़ बढ़ा। इमाद को कुछ न सूझा कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

क्या करे। गृह-युद्ध के बाद के दिवालियापन में दिल्ली की सेना तितर-बितर हो चुकी थी। मराठे दक्खिन चले गये थे। इमाद ने नजीबखाँ से, सूरजमल से और सफ़दर के बेटे शुजाउद्दौला से व्यर्थ मदद माँगी। ग्वालियर से अन्ताजी माणकेश्वर अपनी ३ हज़ार की टुकड़ी के साथ उसकी मदद को आया। अब्दाली के नज़दीक आने पर रुहेले उससे जा मिले।

कायर इमाद चुपके से दिल्ली से निकला; अब्दाली की छावनी में जाकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया (सन् १६-१-१७५७ ई०)। रुहेलों के बीच से मुश्किल से रास्ता काटते हुए अन्ताजी दिल्ली के दक्खिन फ़रीदाबाद तक हट गया।

अब्दाली ने दिल्ली में प्रवेश किया और नादिरशाह की तरह शहर के धन और इज़्ज़त की मुहल्लेवार बाक़ायदा लूट शुरू की। बड़े-बड़े अमीर-उमरावों को साधारण चोरों की तरह यातनाएँ दी गयीं।

२० हज़ार अफ़गान सवारों ने फ़रीदाबाद में अन्ताजी को एकाएक घेर लिया। दिन भर लड़ने और अपनी तिहाई सेना के कटाने के बाद वह घेरा तोड़ कर मथुरा में जा निकला। वहाँ उसने सूरजमल से कहा, आओ मिल कर मुकाबला करें। पर सूरज तैयार न हुआ, और जब २२ फरवरी को अब्दाली दिल्ली से दक्खिन को बढ़ा तो उसने कुम्भेरगढ़ में शरण ली। व्रज में घुसते ही अब्दाली ने खुली लूट, कत्ले-आम और बलात्कार का हुक्म दे दिया। "सूरजमल व्रज की यह बरबादी कुम्भेर से देखता रहा।" लेकिन उसके बेटे जवाहरसिंह ने कहा कि जाटों की लाशों के ऊपर से अफ़गान भले ही व्रज में घुसें, ऐसे ही न घुस पायेंगे। १० हज़ार जवानों के साथ जवाहर ने मथुरा का रास्ता रोका। उस टुकड़ी के काटे जाने पर वह थोड़े से साथियों के साथ बच कर निकल गया और अफ़गानों ने मथुरा में प्रवेश किया। २१ मार्च को अफ़गान हरावल आगरे में घुसी, लेकिन वहाँ किले की तोपों ने मुकाबला किया। इस बीच सड़ती हुई लाशों के कारण अफ़गान सेना में ज़ोर का हैज़ा फैला, और अब्दाली ने एकाएक वापसी का हुक्म दिया। नजीब को दिल्ली में अपना प्रतिनिधि नियत कर, तथा पंजाब का शासन अपने बेटे तैमूर और अपने मुख्य सेनापति जहानखाँ को सौंप कर, कई करोड़ की लूट लिये वह वापस चला गया। वापसी में पटियाले के सिक्ख जाट आलसिंह तथा दूसरे सिक्खों ने उसकी लूट का बोझा हलका किया।

क्लाइव के कलकत्ता वापस लेने पर सिराज ने बुसी को मदद के लिए लिखा। लेकिन बुसी को तुरन्त न आते देख तथा अब्दाली के हमले का आतंक बंगाल तक पहुँच जाने से उसने क्लाइव से समझौते की बात की। उसे समझौते की बातों में रखते हुए क्लाइव ने चन्द्रनगर भी ले लिया (२३-३-१७५७)। उधर आन्ध्र ज़िलों का पूरा बन्दोबस्त कर बुसी गंजाम पहुँचा और समाचारों की राह देखने लगा। इतने में उसे चन्द्रनगर के पतन की खबर मिली। तब बंगाल जाना व्यर्थ समझ वह दक्खिन लौटा और आन्ध्र तट से अँगरेज़ी बस्तियों की एक-एक कर सफ़ाई करता गया।

तभी क्लाइव ने सिराज पर चढ़ाई कर दी। अलीवर्दी का बहनोई मीरजाफ़र सिराज का सेनापति था। क्लाइव ने उसके साथ षड्यन्त्र रचा। सिराज मुर्शिदाबाद से बढ़ा। हुगली और मोर के संगम पर पलाशी गाँव में लड़ाई हुई (२३-६-१७५७)। लड़ाई के बीच में मीर जाफ़र शत्रु से जा मिला। सिराज की हार हुई और वह मारा गया। क्लाइव ने मीर जाफ़र को मुर्शिदाबाद ले जा कर नवाब बनाया। मीर जाफ़र ने अँगरेज़ कम्पनी और उसके कर्मचारियों को प्रकट और गुप्त सन्धियों से करीब पौने तीन करोड़ रुपया हरजाने, भेट और रिशवत के रूप में तथा चौबीस-परगना ज़िला जागीर के रूप में देना स्वीकार किया था। मुर्शिदाबाद के खजाने में कुल डेढ़ करोड़ रुपया था। इसलिए जवाहरात और सामान को नीलाम कर और नकद मिला कर आधी रकम नावों में कलकत्ता भेजी गयी और बाकी को तीन सालाना किस्तों में देना तय हुआ।

उत्तर और पूरब भारत में जब ये घटनाएँ घट रही थीं तब पेशवा अपनी दक्खिनी चढ़ाई में उलझा था। अब्दाली का पंजाब लेना सुन कर उसने मल्हार और राघोबा को उत्तर की ओर भेजा, लेकिन स्वयम् कर्णाटक की तीसरी चढ़ाई जारी रक्खी। उस प्रसंग में मैसूर राज्य के १४ ज़िले उसके हाथ आये। बलवन्तराव मेहन्देले को वहाँ छोड़ कर १६ जून को पेशवा पूना लौटा और उसके बाद सलाबतजंग के राज्य में षड्यन्त्र करके बुसी को निकालने की कोशिश में उसने अपनी सारी ताकत लगा दी। लेकिन बुसी ने उसकी सब कोशिशें बेकार कर दीं (जनवरी १७५८)।

बलवन्तराव ने मैसूर के इलाकों पर काबू कर तथा कड़प, कर्नूल, सावनूर के नवाबों के गुट्ट को कुचल कर तामिल सीमा के घाटों तक अधिकार कर लिया

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

और तब आरकाट के नवाब मुहम्मद अली से बकाया चौथ तलब की। हम देख चुके हैं कि १७५५ ई० से अँगरेज़ों का रक्षित मुहम्मद अली वहाँ निर्विवाद स्थापित हो चुका था। बलवन्तराव अब भी तामिलनाड में नहीं आया; उसने केवल चौथ माँगी, जो अँगरेज़ों ने दे दी। लेकिन अब वहाँ फ्रान्सीसियों ने भी फिर युद्ध जारी कर त्रिची को घेर लिया और पुद्दुचेरी और आरकाट के बीच वन्दिवाश तथा नौ और क़िले ले लिये। यों सन् १७५७ में जहाँ बंगाल-बिहार पर अँगरेज़ों और आन्ध्र तट पर फ्रान्सीसियों का पूरा अधिकार हो गया, वहाँ तामिलनाड में फिर युद्ध जारी हो गया।

रघुनाथ १४ फरवरी को इन्दौर पहुँचा। लेकिन उसे सामान जुटाते समय लग गया। मई में मराठा हरावल ने आगरा पहुँच सूरजमल से समझौता किया। रुहेलों से दोआब वापिस ले कर उन्होंने दिल्ली को घेर लिया। नजीब ने सन्धि करके दिल्ली छोड़ दी (६-९-१७५७) और यह भी कहा कि कहो तो मैं अब्दाली के पास जाऊँ और सीमाएँ निश्चित करके स्थायी सन्धि करा दूँ। लेकिन रघुनाथ ने इसपर ध्यान न दिया। मराठों के उभाड़ने से पंजाब में सिक्ख भी विद्रोह करने लगे। अन्त में २१ मार्च १७५८ को रघुनाथ ने सरहिन्द जीत लिया, तथा एक मास बाद लाहौर में प्रवेश किया। तैमूर और जहानख़ाँ अटक पार भाग गये; मुलतान में भी मराठा छावनी पड़ गयी। पंजाब का शासन अदीना बेग को सौंपा गया। इसके बाद रघुनाथ दक्खिन लौट गया।

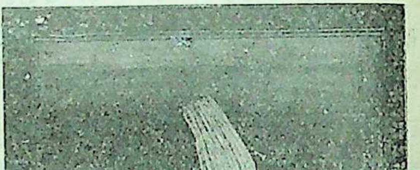
रघुनाथराव [भा० इ० सं० मं०]

§८. फ्रान्सीसी शक्ति का अन्त तथा निज़ामअली का पराभव (१७५८--६१ ई०)—सन् १७५६ में इंगलैंड से फिर युद्ध छिड़ने पर फ्रान्सीसी सरकार ने लाली नामक सेनापति को भारत भेजा। वह एप्रिल १७५८ में चोल-

मंडल पहुँचा। आते ही उसने देवनपटम को घेर लिया, और एक महीने बाद ले लिया। तब उसने बुसी को लिखा, "अब मद्रास लेते ही मेरा इरादा स्थल या समुद्र के रास्ते फ़ौरन गंगा पर पहुँचने का है।" लाली के आने से पहले बुसी आन्ध्र तट के ज़िलों का पक्का बन्दोबस्त कर हैदराबाद में अपना पूरा प्रभुत्व स्थापित कर चुका था। लाली से वह बड़ी आशाएँ लगाये हुए था।

देवनपटम के बाद मद्रास की बारी थी। लेकिन पुद्दूचेरी का ख़जाना खाली था। रुपये के लिए लाली ने तांजोर पर चढ़ाई की, पर उसमें उसे विफलता हुई। वह वीर और कुशल सेनापति था, लेकिन उतावला और किसी की न सुनने वाला। अब मद्रास पर हमला करने के लिए उसने त्रिची और मसुलीपटम वाली टुकड़ियों तथा बुसी को भी बुला लिया। बुसी ने उसे समझाना चाहा कि उसे हैदराबाद में रहने दिया जाय। लेकिन लाली ने कहा, "मुझे बादशाह और कम्पनी ने हिन्दुस्तान भेजा है अँगरेज़ों को मार भगाने के लिए।.........मुझे इससे क्या मतलब कि अमुक अमुक राजा अमुक नवाबी के लिए लड़ रहे हैं।

बुसी के चले आने पर आन्ध्र तट के एक पालयगार (जमींन्दार) ने विजगापट्टम ले कर अँगरेज़ कम्पनी को अपनी फ़ौज भेजने को लिखा। क्लाइव ने बंगाल से कर्नल फ़ोर्ड को वहाँ भेज दिया। फ़ोर्ड ने बचे-खुचे फ्रान्सीसियों के साथ सलाबतजंग को भी मसुलीपटम पर हरा दिया। सलाबत ने आन्ध्र तट का ८० × २० वर्ग मील इलाका अँगरेज़ों को दे दिया और आगे से फ्रान्सीसियों से सम्बन्ध त्याग दिया। यों जिस ज़मीन से लाली को युद्ध का सारा खर्चा मिल सकता था, वह उसकी अपनी बेसमझी से अँगरेज़ो के हाथ चली गयी।

इस बीच में राजूसाहब ने आरकाट ले लिया और लाली ने मद्रास को आ घेरा। लेकिन ठीक संकट के समय अँगरेज़ी बेड़े के आ जाने से लाली को मद्रास से हटना पड़ा। (१७ २-१७५६)।

सलाबत मसुलीपटम आया तो पीछे उसके भाई निज़ामअली ने हैदराबाद ले लिया। लौटने पर सलाबत को उसे अपना दीवान बनाना पड़ा और वह खुद नाम का सूबेदार रह गया।

सन् १७५६ के शुरू में पेशवा ने मैसूर में गोपालराव पटवर्धन को भेजा था। उसे पहले तो बराबर सफलता हुई, पर जब वह बेंगलूर को घेरे हुए था, तब हैदरअली नामक एक मैसूरी सेनापति ने बहादुरी से मुकाबिला करके घेरा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उठवा दिया। गोपालराव वहाँ से तामिलनाड गया, पर वहाँ उसे कुछ न सूझा कि क्या करे। हैदरअली इसके बाद श्रीरंगपट्टम जा कर उस राज्य का सर्वेसर्वा बन गया।

पेशवा अब अँगरेजों से आशंकित हो उठा था। सन् १७५८ में उसने जंजीरा के सिद्दी के खिलाफ़ मदद माँगी, जो उन्होंने नहीं दी। उन्हें डर था कि जंजीरा के बाद वह मुम्बई लेने की कोशिश न करे। फिर १७५६ ई० में अँगरेजों ने धोखे से सूरत का कोटला छीन लिया। पेशवा अब फ्रान्सीसियों से मिल कर जंजीरा और मुम्बई पर चढ़ाई करने की सोचने लगा। लेकिन अक्तूबर १७५६ में अब्दाली के फिर चढ़ाई करने पर मराठे कठिनाई में पड़ गये, और ठीक उसी समय आयरकूट इंगलैंड से ताज़ी सेना के साथ मद्रास आ पहुँचा। उसने आते ही विन्दवास ले लिया। उस किले को वापस लेने की चेष्टा में लाली की हार हुई और बुसी कैद हुआ (२२-१२-१७५६)। इसके बाद मुरारीराव घोरपडे, जो अब तक फ्रान्सीसियों की मदद कर रहा था, अपने दल के साथ तामिलनाड से चलता बना, और कूट ने आरकाट भी ले लिया।

निज़ामअली ने पेशवा के रोकने पर भी अँगरेजों से मैत्री की। इसलिए १७५६ ई० के अन्त में पेशवा ने चिमाजी अप्पा के पुत्र सदाशिवराव तथा अपने बेटे विश्वासराव को उसपर चढ़ाई के लिए भेजा। इब्राहीमख़ाँ गार्दी* नामक बुसी का सिखाया हुआ एक पदातिनायक उनकी सेवा में था। मांजरा नदी के काँठे में उद्‌गीर पर निज़ामअली हार गया, और अउसा के कोटले में घिर गया। चार दिन बाद उसने सन्धि की और असीरगढ़, दौलताबाद, बीजापुर, अहमदनगर और बुरहानपुर के किले तथा ६२ लाख आय का प्रदेश मराठों को दे दिया (जन० १७६०)। यों निज़ाम की शक्ति चूर-चूर हुई, और मराठे दो तीन वर्ष में समूचा दक्खिन जीत लेने के सपने देखने लगे।

सितम्बर १७६० में कूट ने पुद्दूचेरी को जा घेरा। लाली ने तब बालाजीराव से मदद माँगी। जिञ्जी का किला तब तक फ्रान्सीसियों के हाथ में था, और पेशवा की मदद के बदले में लाली उसे देने को तैयार था। पेशवा के लिए तामिलनाड में दखल दे कर युरोपियन शक्ति को तोड़ देने का यह अच्छा मौका था, पर वह मोलभाव करता रह गया—शायद इस कारण कि उसकी सारी शक्ति तब उत्तर

---

* 'गादी' शब्द का मूल फ्रान्सीसी ग़ार्द ही है।

भारत में लगी हुई थी — और जनवरी १७६१ ई० में कूट ने पुद्दूचेरी को ले लिया। बाद में जिञ्जी भी लिया गया। १७६३ ई० में पैरिस की सन्धि में फ्रान्स को उसकी पुरानी बस्तियाँ लौटा दी गयीं।

§९. मराठा अफ़ग़ान संघर्ष (१७५९–६१)—सन् १७५८ के अन्त में पेशवा ने मल्हार होलकर के बजाय दत्ताजी शिन्दे को आगरे का सूबेदार बना कर भेजा। पंजाब पर अधिकार दृढ़ करना और बिहार को जीतना, ये दो कार्य उसे सौंपे गये थे। अदीना बेग मर चुका था; उसकी जगह दत्ताजी का छोटा भाई साबाजी लाहौर का सूबेदार नियत हुआ। पेशवा ने अब यह समझ लिया था कि इमाद झूठा और निकम्मा आदमी है। उसकी जगह शुजाउद्दौला को वज़ीर बनाने का प्रस्ताव था। इसके बदले में शुजा से प्रयाग और बनारस इस तरह ले लेना था कि दत्ताजी बादशाह और वज़ीर के साथ बिहार पर चढ़ाई करे और उसी समय रघुनाथदादा बुन्देलखंड के रास्ते प्रयाग पर उससे आ मिले।

बिहार की चढ़ाई के लिए नजीब से हो सके तो समझौता करना, अन्यथा उसे उखाड़ देना था, क्योंकि उत्तर भारत में मराठा नीति के मार्ग में वह एकमात्र काँटा था। दत्ताजी कोरा लड़ाका सैनिक था। इमाद तो उसके आगे झुक कर वज़ीर बना रहा, पर नजीब से समझौता न हो पाया। जून के अन्त में उससे लड़ाई छिड़ गयी। हरद्वार के ३२ मील दक्खिन गंगा के खादर में शुक्रताल नामक नीची जगह थी। नजीब ने उसकी मोर्चाबन्दी कर और गंगा पर पुल बाँध कर वहाँ शरण ली। दत्ताजी ने उसका घेरा डाला। लेकिन शुक्रताल दूसरा नागोर बन गया और उसमें फँस कर दत्ताजी न तो बिहार पर चढ़ाई कर सका और न पंजाब को बचा सका। उसने गोविन्दपन्त बुन्देले* को हरद्वार के रास्ते नजीबाबाद पर हमला करने भेजा। वह हमला सफल न हुआ। गोविन्द तब शुक्रताल के पूरब तरफ पहुँचा; लेकिन वहाँ अवध की सेना खुद शुजा के नेतृत्व में रुहेलों की मदद को आ गयी थी, इससे वह कुछ न कर सका।

इस बीच अब्दाली ने पंजाब पर चढ़ाई कर दी थी। दत्ताजी की मदद न आती देख साबाजी को लाहौर छोड़ना पड़ा, और वह शुक्रताल पहुँचा (८-११-१७५९), परन्तु दत्ताजी इसके बाद भी वहीं अड़ा रहा।

---

* गोविन्दपन्त का असल उपनाम खेर था, पर वह अपने को बुन्देला कहता था।

नवम्बर बीतते-बीतते अब्दाली ने सरहिन्द ले लिया। इमाद ने यह सोच कर कि कहीं अब्दाली बादशाह का उपयोग न करे, आलमगीर २य को कत्ल कर दिया और कामबख्श के एक पोते को शाहजहाँ २य नाम से गद्दी दी। एक साल पहले उसने शाहज़ादा अली-गौहर को मारने की कोशिश की थी। अली-गौहर बचकर अवध भाग गया था और बिहार को फिर जीतने की विफल कोशिशें कर रहा था। उसने भी अब अपने को शाहआलम नाम से बादशाह घोषित किया।

८ दिसम्बर को दत्ताजी ने शुक्रताल का घेरा उठाया और जमना पार कर अब्दाली के मुकाबले को बढ़ा। तरावड़ी पर अफ़ग़ान हरावल से उसकी मुठभेड़ हुई; पर अब्दाली जमना पार कर नजीब से जा मिला और दोआब के रास्ते दिल्ली की ओर बढ़ा। दत्ताजी यह देख फ़ौरन दिल्ली आ गया और जमना के घाटों पर सेना तैनात कर प्रतीक्षा करने लगा। ६ जनवरी १७६० को दिल्ली के सामने जमना के बीच टापू में अफ़ग़ानों से लड़ता हुआ वह मारा गया। अब्दाली ने दिल्ली ले ली; इमाद भरतपुर भागा; जयप्पा शिन्दे का बेटा जमकोजी बची-खुची मराठा सेना के साथ नारनोल की तरफ हट गया।

इसी बीच मल्हार ने तेज़ी से राजपूताने से आकर नारनोल के पास मराठा सेना का नेतृत्व ले लिया। अब्दाली ने दिल्ली से दीग पर, जहाँ सूरजमल था, चढ़ाई की; पर मइल्हार उसके पीछे दिल्ली की ओर बढ़ा। अब्दाली को पीछे हटना पड़ा और मल्हार इसी तरह उसे दिल्ली से दोआब वापस ले गया। सिकन्दरावाद के पास नजीब का खजाना लूटने के लिए मल्हार दो-चार दिन रुक गया; वहाँ जहानखाँ उस पर अचानक आ टूटा (४ मार्च)। मल्हार हार कर भरतपुर भागा; लेकिन उसकी दाँवपेंच की लड़ाई से इस बार ब्रज का इलाका साफ बच गया।

दत्ताजी की मृत्यु से एक दिन पहले तक की खबरें पेशवा को उद्गीर की सन्धि से पहले मिल चुकी थीं। वह दक्खिन से एक बड़ी सेना भेज रहा था। इसलिए नजीब ने अब्दाली से प्रार्थना की कि वह गरमियों में न लौटे। अब्दाली ने अनूपशहर में छावनी डाल दी। पेशवा ने भी अपनी सेना शीघ्र भेज दी। सदाशिवराव भाऊ, जिसने दक्खिन के युद्धों में योग्यता दिखायी थी, इस सेना का नेता था। ३० मई को वह ग्वालियर आ पहुँचा। उत्तर भारत की मराठा सेना ब्रज में थी, उसका कुछ अंश गोविन्द बुन्देले के अधीन इटावा में था। भाऊ ने मल्हार और गोविन्द को लिखा था कि राजपूताना-बुन्देलखंड में मित्र ढूँढें और शुजा को

अपनी तरफ़ मिलायें। उसने बुन्देले को इटावा पर नावें तैयार रखने को भी लिखा था, जिससे वह आते ही जमना पार कर अवध और रुहेलखंड के बीच अपनी सेना का पच्चर घुसेड़ दे। पर उस साल जल्दी बरसात शुरू हुई और जमना में भारी बाढ़ आ गयी थी। सदाशिवराव ने राजपूत राजाओं को मनाने की बड़ी कोशिशें कीं, पर उन लोगों ने तटस्थ रहना ही तय किया* और जुलाई में शुजा भी अब्दाली से जा मिला। शुजा ने सोचा कि अब्दाली जीत गया तो वापस चला जायगा, पर मराठे जीत गये तो उसे अधीन करेंगे। यदि सफ़दरजंग की १७५२ वाली सन्धि के समय से मराठा सरकार किसी टिकाऊ और दूरदर्शिता-पूर्ण नीति पर चली होती तो इस समय ऐसी असहाय दशा न होती।

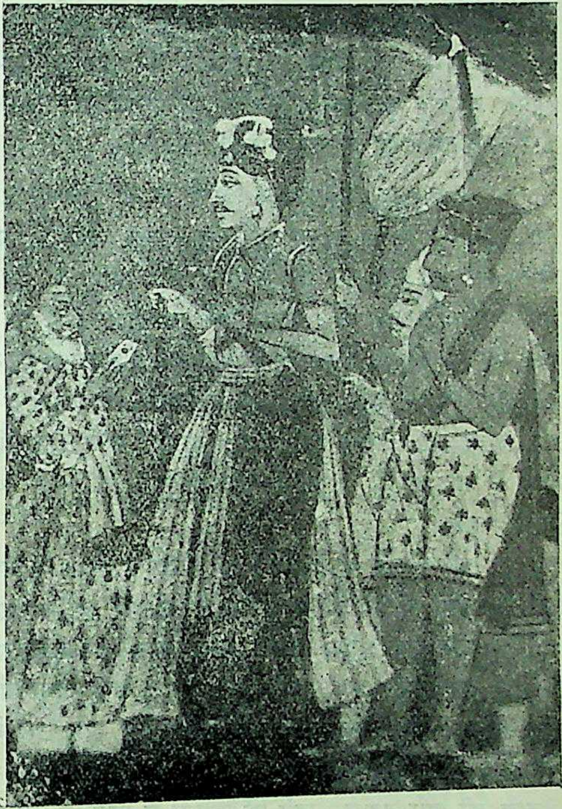

सदाशिवराव [भा० इ० सं० मं०]

---

* यह प्रचलित विश्वास है कि भाऊ के अभिमानी वर्त्ताव से खीझ कर राजपूताने और ब्रज के राजा अलग हो गये। समकालीन कागजों की नयी खोज से यह बिलकुल ग़लत साबित हुआ है।

१४ जुलाई को भाऊ आगरा आया। तब भी जमना में बाढ़ देख कर उसने दोआब में घुसने का इरादा छोड़ दिया। मल्हार और सूरजमल उत्तर भारत के अनुभवी योद्धा थे। उन्होंने सलाह दी कि भरतपुर को आधार बनाकर तोपखाने, पैदल सेना, स्त्रियों और भारी सामान को वहाँ छोड़ दिया जाय और हलके सवारों के साथ शत्रु से मुठभेड़ की जाय। पर सदाशिव फ्रान्सीसी शैली से लड़ने वाले अपने गार्दियों का अचूक प्रभाव देख चुका था, उसने उनकी सलाह न मानी। इससे सूरजमल का जी ऊब गया।

२ अगस्त को भाऊ ने दिल्ली ले ली। इससे उसे कोई वास्तविक लाभ न था, तो भी शत्रु पर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा, और सन्धि की चर्चा जारी हो गयी। सन्धि की बात शुरू होते ही सूरजमल रूठ कर चला गया। उसे अलग होने का कोई बहाना चाहिए था। मराठे और अफ़गान दोनों पर उसे भरोसा न था; वे दोनों लड़ मरें तो अच्छा, इसीसे उसे अब सन्धि होना पसन्द न था। मराठे यदि पंजाब पर दावा छोड़ दें और रुहेलों को न सताने का वचन दें तो अब्दाली अब लौटने को उत्सुक था। परन्तु पेशवा की पंजाब के लिए ज़िद्द थी और भाऊ को भी दिल्ली लेने के बाद अपनी शक्ति का मिथ्याभिमान हो गया था। यों सन्धि की बातें विफल हुईं।

अक्तूबर में शाहआलम को बादशाह तथा शुजाउद्दौला को वज़ीर घोषित कर सदाशिव पंजाब की तरफ़ बढ़ा। उसका उद्देश सरहिन्द ले कर अब्दाली का आधार काट देना था। उसने जमना के तट पर कुंजपुरा ले लिया, जहाँ अफ़गानों की १६ लाख की नकदी और माल उसके हाथ लगा और सरहिन्द का फ़ौजदार मारा गया। इससे सिक्खों के भी हौसले बढ़े और उन्होंने लाहौर और स्यालकोट घेर लिये। सदाशिव की यह योजना बहुत अच्छी होती यदि वह अगस्त में ही पंजाब की ओर बढ़ता, जब कि जमना में बाढ़ थी, और यदि वह पुरानी मराठा शैली से लड़ता होता। लेकिन भारी सामान, तोपखाने और पैदल सेना को लिये हुए अपने आधार से अटूट सम्बन्ध रक्खे बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता, युरोपी शैली के इस सिद्धान्त को वह बिलकुल समझा न था। उसने अपना आधार भरतपुर क्या दिल्ली में भी न रक्खा था, वह सब कुछ साथ लिये फिरता था। जब वह कुंजपुरा से आगे कुरुक्षेत्र जा रहा था, तभी खबर मिली कि नीचे बागपत पर जमना पार कर अब्दाली उसके और दिल्ली के बीच आ गया। सदाशिव पीछे

पानीपत की तीसरी लड़ाई

(१७६१ ई०)

व्याख्या

मराठी सेना		अब्दाली की सेना	
१—इब्राहीम गार्दी	(८,०००)	१४—बरखुरदार और अमीर बेग	(३,०००)
२—दमाजी गायकवाड़	(२,५००)	१५—१६—रुहेले सरदार	(१४,०००)
३—विट्ठल शिवदेव	(१,५००)	१७—अहमद बंगश	(१,०००)
४—छोटे सरदार	(२,०००)	१८—ऊँट सवार ज़म्बुरक लिए हुए	(१,००० × २)
५—भाऊ का झंडा		१९—काबुली पैदल सेना	(१,०००)
६—केन्द्र	(१३,५०००)	२०—केन्द्र, शाह वली	(१५,०००)
७—अन्ताजी माणकेश्वर	(१,०००)	२१—शुजा	(३,०००)
८—पिलाजी जादव के बेटे	(१,५००)	२२—नजीब	(१५,०००)
९—छोटे सरदार	(२,०००)	२३—शाहपसन्द	(५,०००)
१०—जसवन्त पँवार	(१,५००)	२४—रक्षित सेना (नसरुल्ला)	
११—शमशेर बहादुर	(१,५००)	२५—मुल्की हाकिम आदि	
१२—जनकोजी शिन्दे	(७,०००)	२६—शरीर रक्षक गुलामों का दल	(३,०००)
१३—मल्हार होलकर	(३,०००)	२७—अब्दाली का खेमा	

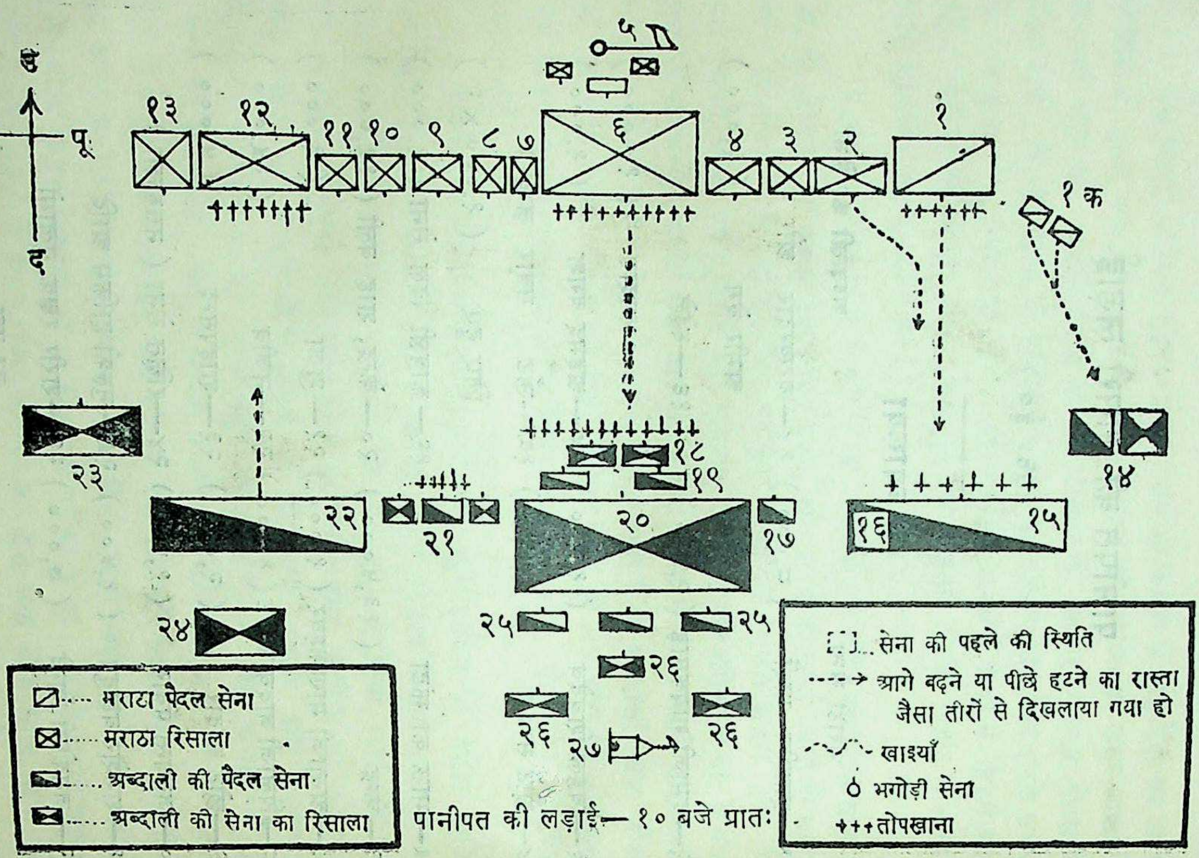
उ
प
पू
द
१३
१२
११
१०
९
८
७
६
५
४
३
२
१
१क
१४
१५
१६
१७
१८
१९
२०
२१
२२
२३
२४
२५
२५
२६
२६
२६
२७
☒...... मराठा पैदल सेना
⊠...... मराठा रिसाला
▨...... अब्दाली की पैदल सेना
■...... अब्दाली की सेना का रिसाला
[ ]... सेना की पहले की स्थिति
----→ आगे बढ़ने या पीछे हटने का रास्ता जैसा तीरों से दिखलाया गया हो
~~~ खाइयाँ
ȯ भगोड़ी सेना
+++ तोपखाना

पानीपत की लड़ाई— १० बजे प्रातः
~~~

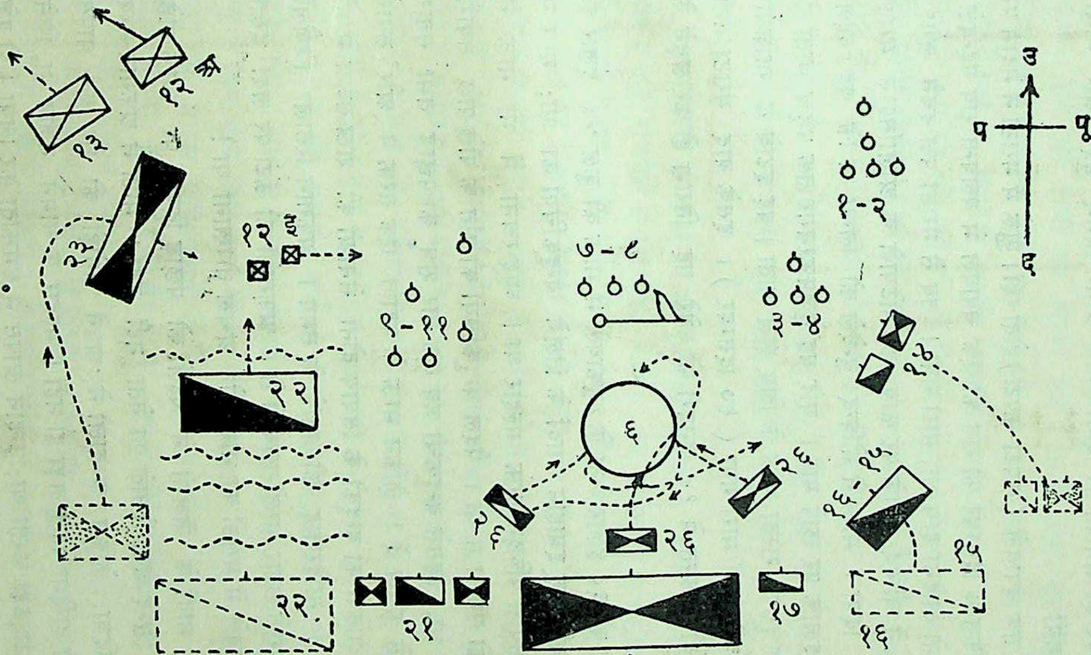
उ
प
पू
द
१-२
३-४
७-८
९-११
१२ आ
१२ इ
१२
१३
२३
२२
६
२६
१४
१६-१५
१५
१६
१७
२१
२२.
२० और २४

पानीपत की लड़ाई—ढाई बजे मध्याह्न

[सर यदुनाथ सरकार के 'फ़ाल आव दि मुगल एम्पायर' से]

लौटा। १ नवम्बर को पानीपत पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने हुईं, और मोर्चाबन्दी कर जम गयीं।

दो मास तक चपावलें (झपटा-झपटी) होती रहीं। शुरू में मराठों ने मैदान पर काबू रखा। लेकिन ७ दिसम्बर को रात की एक चपावल में बलवन्त राव मेहन्देले, जो भाऊ का मानो दाहिना हाथ था, मारा गया। तब से मराठा पक्ष दबने लगा। अफ़गान सवारों ने चौगिर्द इलाके पर काबू कर पटियाले के आलासिंह से मराठों का सम्बन्ध तोड़ दिया। भाऊ ने गोविन्द बुन्देले को लिखा था कि वह रुहेलों और अवध के इलाके पर छापे मारे। यदि वह मुज़फ़्फ़रनगर तक पहुँच जाता तो दिल्ली के बजाय दूसरा रास्ता भाऊ के लिए खुल जाता। वह इटावे से गाज़ियाबाद तक बढ़ा, और वहाँ मारा गया (१७ दिसम्बर)। इसके बाद मराठा सेना पूरी तरह घिर गयी। अन्त में १४ जनवरी को सवेरे वह निराश हो कर लड़ने के लिए निकली।

अब्दाली की ६० हज़ार सेना के मुकाबले में भाऊ की कुल ४५ हज़ार ही थी। उसका बायाँ पहलू इब्राहीम गार्दी के तिलंगे बन्दूकचियों का था; मध्य में खुद भाऊ और सब से पच्छिम तरफ़ मल्हार था। व्यूह-रचना में भी भाऊ ने फ्रान्सीसी शैली को समझा न था। पैदल बन्दूकचियों की पाँत के पीछे-पीछे सवारों को रखना ज़रूरी था, जिससे बन्दूकची जब एक बार शत्रु को पछाड़ें तभी सवार हमला कर के उसे कुचल दें। लेकिन भाऊ के पदाति एक तरफ़ थे और सवार दूसरी तरफ़। पदातियों की बन्दूकों के सिवाय दोनों सेनाओं की शस्त्र-सज्जा में भी वही अन्तर था जो नादिरशाह की चढ़ाई के समय। अफ़गान रिसाला जिज़ैलों से लड़ता था, मराठे सवार भालों-तलवारों से। अफ़गानों की ऊँटों पर लदी दस्ती ज़म्बुरकों के मुकाबले में मराठों का भारी और अचल तोपखाना था!

इब्राहीम गार्दी के तिलंगों ने रुहेलों को पछाड़ दिया, पर उनके पीछे से कोई दत्ताजी शिन्दे जैसा रिसाले का नेता नहीं बढ़ा। भाऊ ने अफ़गान-मध्य को पीछे धकेल दिया, लेकिन अब्दाली ने अपने भगोड़ों को घेर कर वापस लौटाया। मराठा दाहिना पहलू लड़ा ही नहीं। मल्हार के सामने नजीब था, जिसे मल्हार अपना बेटा कहा करता था; उन्होंने आपस में समझौता कर लिया। दो बजे के बाद विश्वासराव के माथे में गोली लगी; उसे दो घाव पहले लग चुके थे। भाऊ का वह प्रिय भतीजा अपने दादा की तरह अत्यन्त सुन्दर और होनहार था।

उसके शव को हाथी पर लेटवा कर भाऊ ने एक बार निहारा, और फिर सेनापति का कर्त्तव्य भूल वह घमसान में कूद पड़ा। बिना नेता की मराठा सेना में अब हर किसी ने अपनी समझ से काम लिया। मल्हार अपने दल को पच्छिम भगा कर शत्रु की पाँत के किनारे से घूम कर भाग निकला। बाकी सैनिकों और असैनिकों में से बहुत थोड़े बच कर निकल पाये। शुजा ने कुछ को बचाने में मदद की। सूरजमल के यहाँ उन सब को शरण मिली।

पेशवा मालवे तक आ गया था, जब उसे ये खबरें मिलीं। पछार पर उसे पानीपत से बचे हुए लोग मिले। इस चोट ने उसे असाध्य रोगी बना दिया।

अब्दाली की सेना का भी भारी संहार हुआ। उसने दिल्ली में प्रवेश किया और राजपूत राजाओं से कर तलब किया। तब जयपुर के माधोसिंह ने पेशवा से, जो मालवे में था, बूँदी आने की मिन्नत की और लिखा कि सब राजपूत राजा सेना सहित वहाँ आ मिलेंगे। पेशवा ने उसे डाँट कर लिखा—"पहले आप विजयसिंह के साथ अजमेर आइये। भाऊ ने सब अपराधों को माफ़ कर पिछली बातें भूलने को कहा था……राजपूतों को कुछ होश आना चाहिए। हमें विदेशियों ने हरा दिया तो नर्मदा पार चले जायेंगे। मुझे अब अब्दाली का डर नहीं है।" लेकिन अब्दाली की सेना भी बकाया वेतन के लिए विद्रोही हो रही थी और उसमें अब सिया-सुन्नी (मुसलमानों के दो मूल फ़िरके) आपस में लड़ रहे थे। दिल्ली को नजीब के हाथ सौंप वह २० मार्च को बिदा हुआ; पेशवा भी तब मालवे से पूने को रवाना हुआ। रास्ते से अब्दाली ने पेशवा को मनाने तथा उसके पुत्र और भाऊ की मृत्यु के लिए शोक प्रकट करने को अपना दूत भेजा। वह दूत मथुरा में सूरजमल, इमाद तथा मराठा प्रतिनिधियों से मिला। उन लोगों ने उसे वहीं रोक लिया, क्योंकि पेशवा अब मौत के मुँह में था। लाहौर में आबिदखाँ को सूबेदार नियत कर अब्दाली वापिस चला गया।

मथुरा की शान्ति-सभा में रुहेलों, बंगश और शुजा के प्रतिनिधि भी शामिल हुए, पर फल कुछ न निकला। कारण यह था कि सूरजमल को अब शान्ति पसन्द न थी; मराठे और अफ़गान दोनों पस्त हो गये थे; अब उसके लिए मौका था कि वह अपना राज बढ़ा ले। शान्ति-सभा के उठते ही उसने आगरे का किला ले लिया (१२-६-१७६१ ई०)।

शाहआलम को सब ने बादशाह माना था; पर वह नजीब के डर से दिल्ली न आया और अवध में ही रहा। २३-६-१७६१ ई० को बालाजीराव की मृत्यु हुई।

बालाजीराव शासन-प्रबन्ध में अपने पिता से अधिक योग्य था। उसने महाराष्ट्र की कर-प्रणाली और न्याय-प्रणाली को बहुत नियमित कर दिया, और सेना की खुराक और साज-सामान में भी बड़ी उन्नति की। किन्तु बाजीराव का सा महापुरुषत्व और दूरदर्शिता बालाजी में न थी। जिस दूरदर्शिता से हमारा देश स्वाधीन रह सकता, वह तब शायद किसी भी भारतवासी में न थी।

अध्याय ३

पेशवा माधवराव

(१७६१–७३ ई०)

§१. मराठा साम्राज्य की कठिनाइयाँ (१७६१–६३ ई०)—बालाजीराव की मृत्यु पर उसका दूसरा बेटा माधवराव, १६ वर्ष की उमर में, पेशवा बना, और राघोबा उसके नाम पर शासन करने लगा। सब तरफ़ मराठा साम्राज्य के सामन्त और पड़ोसी महाराष्ट्र की विपत्ति से लाभ उठाने की कोशिश कर रहे थे। राजपूतों ने अब्दाली के हटते ही विद्रोह किया। मल्हार होल्कर ने इन्दौर से उनपर चढ़ाई कर बानगंगा के किनारे माँगरोल पर जयपुर की सेना को हराया (२६-११-१७६१ ई०)। लेकिन उसके बाद तुरन्त ही शुजा ने बुन्देलखंड पर चढ़ाई कर कालपी और झाँसी जीत ली। उसी समय निज़ाम अली अपने भाई को कैद में डाल पूने की ओर बढ़ा। उसे तो राघोबा ने मार भगाया, पर हैदर अली ने उसके बाद शिरा, गुत्ति, हरपनहल्ली, चितलद्रुग आदि पर दखल कर लिया।

सन् १७६२ में माधवराव ने शासन अपने हाथ में ले लिया। इसपर राघोबा बिगड़ गया। माधवराव ने जिन व्यक्तियों को अपना सहायक बनाया था, उनमें से उसके मन्त्री बालाजी जनार्दन भानु उर्फ़ नाना फडनीस और हरि बल्लाल फडके तथा न्यायाधीश रामशास्त्री प्रभुणे आगे चल कर बहुत प्रसिद्ध हुए। राघोबा ने निज़ामअली से मिल कर पूने पर चढ़ाई की। घरेलू युद्ध से शत्रु का लाभ होता

देख कर माधवराव ने अपने को राघोबा के हाथ सौंप दिया और राघोबा फिर पेशवा के नाम से शासन करने लगा। परन्तु उसने अपने अन्यायपूर्ण शासन से अनेक सरदारों और नेताओं को विरोधी बना लिया और वे अब उसके देशद्रोह के दृष्टान्त का अनुसरण करने लगे। निज़ामअली ने फिर युद्ध छेड़ा। गोदावरी के किनारे पैठन के पास राक्षसभुवन पर राघोबा को शत्रु ने घेर लिया। उसकी सेना भाग खड़ी हुई। माधवराव ने, जो मराठा सेना की चन्दावल में क़ैद था, भागती हुई सेना को लौटा कर उस पराजय को विजय में परिणत कर दिया और राघोबा को बचा लिया (१०-८-१७६३)। तब राघोबा को उसे शासन में भाग देना पड़ा। माधवराव के सुशासन से महाराष्ट्र में शीघ्र शान्ति स्थापित हो गयी।

§२. पठानों तथा सिक्खों-जाटों का संघर्ष; सिक्ख राज्य की स्थापना (१७६१–६७ ई०)—अब्दाली के जाते ही पंजाब में चारों तरफ़ सिक्ख गढ़ियाँ बनने लगीं। आबिदखाँ ने गुजराँवाला पर, जहाँ चड़तसिंह नामक एक नेता ने गढ़ी बना ली थी, चढ़ाई की। सिक्खों ने आबिद को हरा कर भगा दिया। तब उन्होंने जलन्धर दोआबे पर हमला किया और सरहिन्द से पेशावर का रास्ता बन्द कर दिया। अब्दाली फिर लौट कर आया। सिक्ख सतलज पार भाग गये। अढ़ाई दिन में लाहौर से लुधियाने पहुँच वह उनपर एकाएक टूट पड़ा और उनका संहार किया (५-२-१७६२)। यह लड़ाई 'घुल्लू घेरा' नाम से प्रसिद्ध हुई। अब्दाली इस साल लाहौर में ही ठहर गया। उसने दिल्ली से पेशवा के वकील तथा नजीब को बुलाया; और अपना दूत पेशवा को मनाने के लिए पूना भेजा। इस बार उसने जम्मू के राजा रणजीतदेव की मदद से कश्मीर भी जीत लिया। वहाँ अब तक दिल्ली की ओर से दीवान सुखजीवनराम शासन कर रहा था। दिसम्बर में अब्दाली लौट गया।

सूरजमल ने आगरा लेने के बाद मेवात पर भी दखल कर लिया था। अब वह हरियाने (गुड़गाँव-रोहतक) की तरफ़ बढ़ने लगा। इसपर उसकी नजीब से ठन गयी और वह ग़ाज़ियाबाद के पास लड़ता हुआ मारा गया (२५-११-१७६३ ई०) नवम्बर १७६३ में सिक्खों ने फिर विद्रोह किया, कसूर और मालेरकोटला की पठान बस्तियों को उजाड़ डाला, और सरहिन्द को जीत कर सारा इलाका आपस में बाँट लिया। जहानखाँ ने अटक पार से उनपर चढ़ाई की; लेकिन चनाब पर उनके दूसरे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दल ने उसे हरा दिया, और फिर लाहौर पर हमला कर आबिदखाँ को भी मार डाला। नजीब ब्रज-राज्य की विपत्ति से लाभ उठाता, पर सिक्खों ने जमना पार कर उसके सहारनपुर और शामली कसबे लूट लिये। इस दशा में अब्दाली खुद आया (मार्च १७६४)। सिक्ख मैदान से हट गये और वह काबुलीमल नामक एक अफ़गान ब्राह्मण को लाहौर का शासन सौंप कर वापिस चला गया। उसके पीठ फेरते ही लहनासिंह, गुज्जरसिंह और शोभासिंह ने काबुलीमल से लाहौर का किला छीन कर गुरु नानक और गुरु गोविन्दसिंह के नाम का सिक्का चलाया। दूसरे सिक्ख दलों ने जेहलम तक जीत लिया। लहनासिंह अपने सुशासन के लिए शीघ्र प्रसिद्ध हो गया। जमना से जेहलम तक सिक्ख दलों के छोटे-छोटे राज्य स्थापित हो गये।

नवम्बर १७६४ में ब्रज के नये जाट राजा जवारसिंह ने दिल्ली को आ घेरा। उसने मराठों और सिक्खों से भी सहायता ली। पेशवा की आज्ञा से मल्हार उसकी मदद को गया। तीन महीने तक दिल्ली घिरी रही; लेकिन मल्हार ने नजीब से भीतर-भीतर समझौता कर लिया, और जवाहर के सरदार, जो उसके छोटे भाई को गद्दी देना चाहते थे, विश्वासघात करते रहे। जयपुर के राजा माधोसिंह भी नजीब को मदद देता रहा। अन्त में घेरा उठ गया। उसके बाद से जवाहर ने मराठों, माधोसिंह तथा अपने भाई और सरदारों से बदला लेना ही अपना कार्य मान लिया।

सन् १७६७ के शुरू में अब्दाली अन्तिम बार भारत आया। सिक्ख एक हार के बाद मैदान से हट गये। अब्दाली ने आलासिंह के पोते अमरसिंह को सरहिन्द का फ़ौजदार बनाया, पर दूसरे सिक्ख दलों का पीछा करता रहा। लेकिन अब उसके सैनिक खुल्लमखुल्ला बलवा करके अफ़गानिस्तान चल दिये। उनके हटते ही सिक्खों के एक दल ने रोहतासगढ़ ले कर सिक्ख राज्य को अटक तक पहुँचा दिया।

इस प्रकार सारा पंजाब सिक्ख दलों के छोटे-छोटे बारह राज्यों में बँट गया। वे राज्य 'मिसल' कहलाते थे। ये मिसलें वास्तव में सैनिक और पान्थिक (सिक्ख पन्थ की) पंचायतें थीं, जिनके मुखिया सिक्ख सैनिकों के दलों द्वारा चुने जाते थे। प्रायः प्रत्येक सिक्ख सैनिक था और उन सैनिकों में से अधिकांश कृषक थे। जिन सैनिकों में युद्ध में नेतृत्व करने की योग्यता थी, वे दलों के नेता बनते गये और अब उन दलों के छोटे-छोटे राज बन गये। नेताओं को चुनने की रस्म ज़रूर

CC-0. Agamnigam Digital Preseyation Foundation, Chandigarh

की जाती थी, भले ही बाप के बाद बेटा चुना जाता। साधारण सैनिक मिसल की ज़मीन में या तो मुखिया के 'पत्तीदार' होते थे या (सैनिक सेवा की शर्त पर ज़मीन पाने वाले) 'मिसलदार'; किन्तु ये मिसलदार चाहे जब एक मिसल को छोड़ कर दूसरी की सेवा में जा सकते थे। उनके अतिरिक्त दूसरे लोग 'ताबेदार' या 'जागीरदार' के रूप में भी ज़मीन पाते थे, पर उनपर मिसल के सरदार का पूरा निजी अधिकार रहता था। जो इलाके सिक्खों के संरक्षण में, पर उनके सीधे नियन्त्रण में न होते, उनसे 'राखी' कर लिया जाता था, और अपने इलाकों से 'मालिया' (मालगुज़ारी)। कृषक जनता कहीं इतनी सुखी न थी जितनी इन कृषक-सैनिकों के राज में। सिक्खों ने यह शीघ्र समझ लिया कि व्यापार पर भारी चुंगी होने से उन्हें हानि होती है, इसलिए उन्होंने चुंगी बहुत कम कर दी। उनका दंड-विधान भी कठोर न था। आपस की छीन-झपट से मिसलों की सीमाएँ प्रायः बदलती रहती थीं, तो भी सामूहिक विपत्ति के समय सब सरदार मिल जाते थे। हर साल दशहरे पर अमृतसर में सब सरदारों की संगत लगती थी, जहाँ सामूहिक कार्यों का निश्चय किया जाता था। अमृतसर का मन्दिर अकाली लोगों के हाथ में रहा जो किसी मिसल में शामिल न थे और सिक्ख धर्म की परम्परा के विशेष रक्षक थे—विशेष धार्मिक प्रवृत्ति वाले लोग ही अकाली बन जाते थे। अमृतसर नगरी में कई मिसलों के सरदारों ने अपनी अलग-अलग गढ़ियाँ बना लीं। वह नगरी इन्हीं मिसलों के शासन के बीच एक समृद्ध व्यापारी बस्ती बन गयी।

§३. बंगाल-बिहार, आन्ध्रतट और तामिलनाड में अँगरेज़ी राज्य की स्थापना (१७६०–६७)—मीर जाफ़र को शासन चलाने की कतई तमीज़ न थी और न वह अँगरेज़ों की रकमें चुका पाया। इसलिए सन् १७६० में कलकत्ता कौन्सिल ने उसे हटा कर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया। कौन्सिल ने उससे कम्पनी के लिए बर्दवान, मेदिनीपुर, चटगाँव ज़िलों की मालगुज़ारी और ५ लाख रुपया तथा अपने लिए २० लाख रुपये की रिशवतें लीं। मीर कासिम ने अपने दरबार का खर्च घटा कर अँगरेज़ों की बाकी रकमें और अपनी सेना की बकाया तनख्वाहें शीघ्र चुका दीं। वह अपनी राजधानी मुँगेर ले गया। वहाँ उसने बन्दूकें बनाने का कारखाना खोला और सिपाहियों को कवायद सिखा कर नये ढंग की सेना तैयार की। शासन को हर पहलू से उसने व्यवस्थित करना चाहा, लेकिन अँगरेज़ों ने उसे वैसा करने न दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ई० इं० कम्पनी बंगाल-बिहार में आयात-निर्यात का जो व्यापार करती थी, उसपर फ़र्रुख़सियर ने चुंगी माफ़ कर दी थी। कम्पनी के नौकर खानगी तौर पर भीतरी व्यापार भी करने लगे थे और पलाशी की विजय के बाद से वे उसपर भी नवाब के अधिकारियों को चुंगी न देते थे। आयात-निर्यात वाले माल को प्रमाणित करने के लिए कम्पनी के मुखिया 'दस्तक' दिया करते थे। वैसे 'दस्तक' लिये हुए और नावों पर अँगरेज़ी झंडे उड़ाते हुए अँगरेज़ों के गुमाश्ते अब जनता के रोज़मर्रा के बरतने की हर चीज़ का व्यापार करते फिरते और नवाब के अधिकारी यदि उन्हें कहीं टोकते तो उनकी मुश्कें बँधवा कर उन्हें पिटवाते थे। यही नहीं, वे जनता से मनमाने दामों पर खरीदने के नाम से माल छीन लेते, और उसी प्रकार मुँह-माँगे दामों पर ज़बरदस्ती उसे 'बेचते'। जो लोग लेने देने से इनकार करते, उन्हें वे कोड़ों से पिटवाते और कैद की सज़ा देते। हर गुमाश्ता जहाँ कहीं अपनी 'कचहरी' लगा लेता, छोटे बड़े सब पर हुक्म चलाता और चौकी बैठा कर लोगों के मकानों की तलाशियाँ ले कर जुरमाने वसूल करता। यह तो खानगी 'व्यापार' था। कम्पनी के निर्यात 'व्यापार' का ढंग यह था कि गुमाश्ता किसी भी औरंग (कारीगरों की बस्ती) में जा कर 'कचहरी' लगा देता। हरकारों को भेज कर वह दलालों और जुलाहों को वहाँ बुलवाता, और कुछ पेशगी दे कर उनसे यह मुचलका लिखवा लेता कि अमुक दाम पर अमुक दिन इतना माल देना होगा। जुलाहों की स्वीकृति का कोई प्रश्न न था। यदि वे पेशगी लेने से इनकार करते तो कोड़ों से मरम्मत की जाती। जिन जुलाहों के नाम गुमाश्ते की बही में चढ़ जाते, वे किसी दूसरे का काम न कर पाते। इन ज़ुल्मों से बचने के लिए अनेक नागोड (रेशम के कारीगर) अपने अँगूठे काट लेते।

मीर कासिम ने देखा कि वह इन गुंडों से प्रजा के व्यापार-व्यवसाय को बचा नहीं सकता, तो उसने अपनी आमदनी की परवाह न कर कुल व्यापार से चुंगी उठा दी। इसपर कलकत्ता कौन्सिल ने युद्ध छेड़ दिया और मीरजाफ़र से ५० लाख घूँस ले कर उसे फिर नवाब बनाया (दिसम्बर १७६३)। कासिम ने नागपुर के जनोजी भोंसले से मदद माँगी। जनोजी के कटक के हाकिम ने १७६०-६१ में बंगाल की चौथ के लिए चढ़ाई की थी और उसके विफल होने पर नागपुर का दूत कलकत्ते आकर चौथ माँग रहा था। अँगरेज़ों ने अब उससे कहा कि हम चौथ देंगे, पर कासिम को मदद न देना। घेरिया पर तथा राजमहल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के दक्खिन उधुआ नाला पर मीर कासिम की सेना वीरता से लड़ी, पर अन्त में हारी। कासिम और उसका स्विस सेनापति समरू, पटना में दो सौ अँगरेज़ कैदियों को कत्ल करके अवध को ओर भागे। फिर शुजा और शाहआलम को साथ ले कर उन्होंने बिहार पर चढ़ाई की। मेजर मुनरो ने बक्सर पर उन्हें हरा दिया

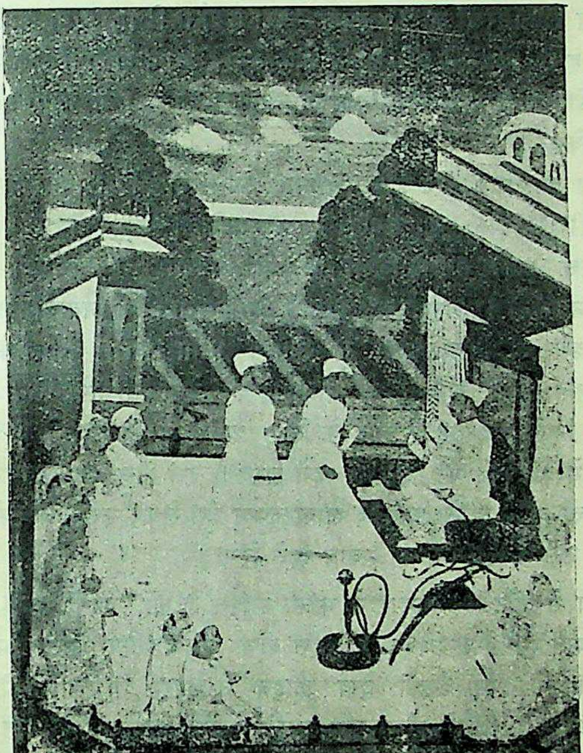

नवाब मीर कासिम [खुदाबख्श पुस्तकालय, पटना]

(२३-१०-१७६४) शाहआलम तब अँगरेज़ों की शरण में आ गया। कर्मनाशा पार कर वे अवध के सूबे में घुसे। उन्होंने चुनार का किला घेरा, पर उसे ले न सके, तो भी इलाहाबाद और लखनऊ ले लिये। शुजा ने रुहेलों और मराठों की मदद ली। वह मराठों से बुन्देलखंड छीन चुका था, तो भी मल्हार उसकी मदद को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आया। कोड़ा* की लड़ाई में अँगरेज़ी तोपों के सामने उसे भागना पड़ा (३-५-१७६५) शुजा ने तब आत्म-समर्पण कर दिया। उसी वर्ष क्लाइव फिर बंगाल में कम्पनी का मुखिया बन कर आया। उसने बनारस पहुँच कर शुजा-उद्दौला से और इलाहाबाद में शाआलम से अलग-अलग सन्धियाँ कीं।

शुजा ने अँगरेज़ों को ५० लाख रुपया हर्जाना दिया, तथा काशी के राजा को, एक तरह से, अँगरेज़ों की रक्षा में सौंप दिया। इसके अलावा उसने अँगरेज़ों के शत्रुओं को अपना शत्रु माना तथा अपने राज्य की रक्षा के लिए उनपर निर्भर रहना मंज़ूर किया।

शाह आलम ने ईस्ट इंडिया कम्पनी को बंगाल-बिहार और उड़ीसा की दीवानी दे दी। उड़ीसा का केवल मेदिनीपुर ज़िला अँगरेज़ों के हाथ में था। इसके अतिरिक्त आन्ध्र तट के ज़िलों पर भी बादशाह ने अँगरेज़ों का सीधा अधिकार मान लिया। 'कर्णाटक' अर्थात् तामिलनाड की नवाबी मुहम्मदअली को दी गयी और वह निज़ामअली से स्वतन्त्र माना गया। बंगाल की आमदनी में से २६ लाख रुपया कम्पनी ने बादशाह को देना स्वीकार किया तथा कोड़ा और कड़ा† ज़िले बादशाह के खर्च के लिए अवध से दिला दिये। शाहआलम इलाहाबाद में अँगरेज़ों की रक्षा में रहने लगा। इस बीच मीर जाफ़र मर चुका था। कलकत्ता कौन्सिल ने फिर २३ लाख रुपया घूँस लेकर उसके बेटे को गद्दी पर बैठाया, पर उसे केवल नाम का नवाब रहने दिया।

कोड़ा से लौट कर मल्हार ने झाँसी वापिस ले ली, परन्तु कुछ समय बाद वह चल बसा (२०-५-१७६६)। इस बीच राघोबा फिर उत्तर भारत आया था। मराठों को फिर आया देख क्लाइव ने छपरा में एक 'कांग्रेस' बुलायी (जुलाई १७६६), जिसमें शुजा खुद तथा व्रज और रुहेलखंड के दूत आये और सब ने मराठों के खिलाफ़ गुट्ट बनाने की कोशिश की। बंगाल-बिहार की आमदनी में से खर्चा निकाल कर सवा करोड़ रुपया वार्षिक कम्पनी को बचने लगा, जो अब

---

* फ़तहपुर जिले में एक कस्बा कड़ा-जहानाबाद। उन दिनों जिले का नाम इसी से पड़ता था।

† इलाहाबाद जिले में कड़ा-मानिकपुर का क़स्बा है। जिले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

हर साल भारत से इंग्लैंड को जाने लगा। कम्पनी के नौकरों की निजी लूट इससे अलग थी। डाइरेक्टरों ने क्लाइव को तीसरी बार इसीलिए भेजा था कि वह 'भेंट' और खानगी 'व्यापार' के नाम से होने वाली इस लूट को बन्द कर दे। पलाशी युद्ध के बाद से नौ साल में बंगाल-बिहार से कम्पनी के नौकरों ने प्रायः ६ करोड़ रुपया निजी तौर से भेंट या हरजाने के नाम से लिया था। 'भेंट' लेने की अब सख्त मनाही की गयी। खानगी व्यापार को बन्द करने के बजाय क्लाइव ने उसे शृंखलाबद्ध कर दिया। सब अँगरेज़ अफ़सरों की, पद के अनुसार, पत्ती डाल कर एक साझेदारी बना दी गयी जिसके हाथ में बंगाल-बिहार के नमक, सुपारी और अफ़ीम के व्यापार का एकाधिकार दे दिया गया। ये सुधार करके सन् १७६७ के शुरू में क्लाइव लौट गया। डाइरेक्टरों ने इस नये खानगी व्यापार को भी रोक दिया, परन्तु नमक और अफ़ीम का एकाधिकार खुद ले लिया।

मुहम्मदअली तामिलनाड का नवाब बना; पर अँरेगज़ों ने बीस बरस के युद्ध का सारा खर्च उसपर डाल दिया। आगे के लिए भी देश की रक्षा उसने कम्पनी को सौंप दी और उसके लिए कई ज़िलों की मालगुज़ारी उन्हें दे दी। युद्ध के खर्च को वह चुका न सका और उसपर वह कर्ज़ लद गया। कम्पनी के उस कर्ज़ या उसके सूद को चुकाने के लिए वह कम्पनी के नौकरों से उधार लेने लगा! धीरे-धीरे तामिल देश के तमाम खेतों की खड़ी फसलें तक उन सूदखोरों के हाथ में गिरवी रक्खी जाने लगीं!

§४. **हैदरअली (१७६१-६९ ई०)**—सन् १७६३ में हैदर बेदनूर, सावनूर और धारवार लेकर कृष्णा के करीब तक आ पहुँचा। घरेलू झगड़ों से छुट्टी पा कर मई १७६४ में माधवराव ने कृष्णा पार की। साल भर युद्ध चलता रहा जिसके अन्त में हैदर ने सावनूर, गुत्ति, अनन्तपुर आदि इलाके छोड़ दिये और बड़ा हरजाना दिया।

सन् १७६६ में हैदर ने मलबार पर चढ़ाई कर पूरा दखल कर लिया। पर १७६७ ई० के शुरू में पेशवा ने उसपर चढ़ाई की और शिरा का इलाका ले लिया। उसी समय निज़ामअली और अँगरेज़ों ने भी उसपर चढ़ाई कर दी थी और अँगरेज़ बारामहाल (सेलम, कृष्णगिरि) में घुस आये थे। हैदर ने पेशवा से शरण माँगी और वे सब इलाके लौटा दिये जिन्हें बालाजी ले चुका था। तब उसने अँगरेज़ों के उस बेड़े को नष्ट कर दिया जो मुम्बई से कनाड़ा पर चढ़ाई करने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

आया था। वह पूरब की तरफ़ बढ़ा तो निज़ामअली अँगरेज़ों का साथ छोड़ उससे मिल गया। अँगरेज़ सेनापति ने तिरुवंणमलै किले की शरण ली। छः मास के युद्ध के बाद निज़ामअली ने अँगरेज़ों से सन्धि कर ली और वे नवाब मुहम्मदअली को साथ ले मैसूर जीतने को निकले। जवाब में हैदर ने सारे तामिलनाड पर छापे मारना शुरू किया, और एकाएक मद्रास पर पहुँचकर वहाँ अँगरेज़ों से सन्धि की शर्त्तें लिखवायीं (४-४-१७६९)। वे शर्त्तें ये थीं कि दोनों एक दूसरे के इलाके लौटा देंगे तथा आगे से यदि एक पर शत्रु हमला करे तो दूसरा मदद करेगा।

§४. नेपाल में गोरखा राज्य की स्थापना—जब पंजाब में सिक्ख राज्य की स्थापना हो रही थी, ठीक उसी समय नेपाल में एक नया और मज़बूत हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। अलाउद्दीन खिलजी ने जब मेवाड़ जीता था, तब वहाँ के राजवंश की एक शाखा दक्खिन चली गयी थी, जिसमें शिवाजी पैदा हुआ था, और एक शाखा कुमाऊँ के पहाड़ों में चली आयी थी। कुमाऊँ से ये लोग और पूरब बढ़े और काली गंडक की दून में पालपा और गोरखा की बस्तियों में जा बसे।। ठेठ नेपाल की दून अर्थात् काठमांडू, भातगाँव और पाटन की बस्तियों में वहाँ के मूल निवासी नेवारों* के, जिनमें मिथिला के लिच्छिवियों का खून मिल चुका था, तीन सरदार राज करते थे। गोरखा के ठाकुर पृथ्वीनारायण ने नेपाल पर चढ़ाई कर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। पराजित नेवारों ने अँगरेज़ों से मदद माँगी। बेतिया से मेजर किनलोच तराई के पहाड़ों में घुसा, पर परास्त होकर लौटा (१७६७ ई०)। गोरखा बस्ती से आने के कारण पृथ्वीनारायण और उसके वंशज गोरखा कहलाने लगे।

§.६ साम्राज्य-स्थापना का पुनः प्रयत्न (१७६९-७२ ई०)—उत्तर भारत से लौट कर राघोबा ने फिर षड्यन्त्र शुरू किये। माधवराव ने उसे बड़ी जागीर देनी चाही, पर वह आधा राज्य माँगता था। इसी समय मुम्बई के अँगरेज़ों ने अपना एक कारिन्दा उसके पास षड्यन्त्र करने भेजा। माधवराव ने तब उसे एकाएक नासिक के पास कैद करके पूना ला कर महल में नजरबन्द कर दिया (१७६८ ई०)। हैदरअली ने अँगरेज़ों की नयी सन्धि के भरोसे पेशवा को

---

* नेवारों की भाषा तिब्बती से मिलती है और गोरखों की भाषा गोरखाली या परबतिया राजस्थानी से निकली है।

सालाना कर न भेजा और सावनूर पर हमला किया। इसलिए माधवराव ने उसके राज्य पर तीसरी चढ़ाई की (१७६६ ई०) और जीते हुए ज़िलों पर पूरा दखल और बन्दोबस्त करता हुआ वह बेंगलूर तक जा पहुँचा। हैदर ने तब बेंगलूर तक का सब इलाका दे कर सन्धि की (जून १७७२)। इस प्रकार मैसूर राज्य पहले से भी छोटा रह गया और पूरी तरह मराठों का सामन्त बन गया।

१७६६ ई० में पेशवा ने एक सेना रामचन्द्र गणेश के नेतृत्व में हिन्दुस्तान भी भेजी। रामचन्द्र के साथ विसाजी कृष्ण पंडित, रानोजी शिन्दे का छोटा बेटा महादजी और मल्हार होल्कर की उत्तराधिकारिणी—खंडेराव की विधवा-अहल्याबाई का सेनापति तुकोजी होल्कर भी गये। मराठों के आने से एक साल पहले व्रज का राजा जवाहरसिंह अपने एक सैनिक के हाथों मारा जा चुका था और नजीब अपने बेटे ज़ाबिता को दिल्ली में छोड़ नजीबाबाद चला गया था। जवाहर की हत्या से व्रज की शक्ति टूट गयी थी। नजीब मराठों से मिलने आया और ज़ाबिता का हाथ तुकोजी के हाथ में देते हुए उसने कहा कि इसपर वैसी ही दया रखना जैसे मल्हार ने मुझपर रक्खी थी। इसके बाद वह शीघ्र ही चल बसा। उत्तर भारत में मराठों की पहले सी स्थिति हो जाने पर शाहआलम ने अँगरेज़ों के बजाय उनकी शरण ली और मराठा सेना के साथ दिल्ली में प्रवेश किया (६-१-१७७२)। मराठों ने बादशाह की तरफ़ से रुहेलखंड को अधीन किया। शुजा ने घबरा कर अँगरेज़ों से मदद माँगी और वह अँगरेज़ी सेना के साथ रुहेलखंड की सीमा पर पहरा देता रहा। मराठों ने कोड़ा और इलाहाबाद भी लेने चाहे। वे कहीं झाड़खंड (रामगढ़ राज्य) के रास्ते बंगाल पर चढ़ाई न करें इसलिए अँगरेज़ों ने झाड़खंड के सब राज्यों को अपने अधीन कर लेने को कप्तान कैमक को बड़ी सेना के साथ भेजा।

अब मराठों और अँगरेज़ों का मुकाबला होता। माधवराव ने हैदरअली से सन्धि करते समय उसके साथ मिल कर मद्रास पर चढ़ाई करने का गुप्त प्रस्ताव किया। वह एक साथ उत्तर और दक्खिन में अँगरेज़ों पर आक्रमण करना चाहता था। हैदर का हित मराठों के साथ रहने में था; किन्तु उसने भोलेपन में, इस आशा से कि अँगरेज़ उसे मराठों के विरुद्ध मदद देंगे, वह प्रस्ताव अँगरेज़ों के आगे खोल दिया। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मोस्टिन को पूना भेजा। पर इसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बीच महाराष्ट्र का सब से योग्य पेशवा मृत्युशय्या पर पड़ गया था और वह शीघ्र ही परलोक सिधार गया (१८-११-१७७२)।

पेशवा माधवराव को युद्धों से जो फ़ुरसत मिली, वह उसने राष्ट्र का शासन-प्रबन्ध ठीक करने में लगा दी। उसमें अपने पिता की सी प्रबन्ध-योग्यता और अपने दादा की सी समर-नायकता और महापुरुषता थी। उसकी अकाल मृत्यु से महाराष्ट्र को पानीपत की हार से भी अधिक सदमा पहुँचा।

§६. बिहार और बंगाल में दुराज और दुर्भिक्ष; रेग्युलेटिंग ऐक्ट (१७६७–७३ ई०)—बिहार-बंगाल की सेना और कोष अब अँगरेज़ों के हाथ में आ गये थे। शासन और न्याय का काम अभी तक नवाब के हाकिम चलाते, जिन्हें अँगरेज़ों के कारिन्दे आसानी से अपनी कठपुतली बना लेते थे। मालगुज़ारी की वसूली भी पुराने हाकिमों द्वारा होती, पर उनके ऊपर हर ज़िले में अँगरेज़ हाकिमों की एक कौन्सिल बना दी गयी थी। यह एक तरह का दुराज था।

सन् १७५७ और ६० में कम्पनी के हाथ में जो ज़िले आये थे, उनमें मालगुज़ारी नीलाम करके सख्ती से वसूली शुरू की गयी थी। अब सारे बिहार-बंगाल और आन्ध्र-तट में वही होने लगा। हर ज़िले में अँगरेज़ मुखिया और कौन्सिलें नियुक्त कर दी गयीं। वे ऊँची से ऊँची बोली देने वाले को मालगुज़ारी की वसूली सौंप देते थे। इस प्रकार पुराने जागीरदारों की जगह, जिन्हें सैनिक सेवा के बदले में मालगुज़ारी सौंपी गयी थी और जो परम्परा से बँधी दरों से कर वसूल करते थे, अब कलकत्ते के दलाल और अँगरेज़ों के तुच्छ गुमाश्ते और पिछलग्गू मालगुज़ारी का ठीका ले कर किसानों पर अकथनीय जुल्म करने लगे। कम्पनी को तो केवल अपने नफ़े से मतलब था। सन् १७६५ से ७१ ई० तक छः बरस में कम्पनी को बंगाल और बिहार की मालगुज़ारी में से साढ़े चालीस लाख पौंड (लगभग ३ करोड़ रुपये) का मुनाफ़ा हुआ। कम्पनी के नौकर भीतरी व्यापार से जो निजी लाभ उठाते, या तनख्वाहें आदि पाते थे, सो अलग था। सन् १७६६ से ले कर अगले तीन बरसों में इन प्रान्तों में विलायत से जो माल आया, उससे करीब ४३३ लाख रु० का अधिक माल विलायत गया। यह वास्तव में खिराज था जो अब भारत से बाहर जाने लगा था! विलायत से डाइरेक्टरों ने हुक्म भेजा कि बिहार और बंगाल में रेशम के कपड़े न बनें, केवल कच्चा रेशम तैयार हो, और रेशम अटेरने वाले केवल कम्पनी की कोठियों ही में उसे अटेरें। (इस हुक्म के कारण पर हम आगे

विचार करेंगे)। इस तरह उद्योग-धन्धों का नाश होने लगा। उद्योग-धन्धों का नाश, धन की सालाना निकासी और दुराज से उन प्रान्तों की बड़ी दुर्गति हो गयी। १७७० ई० में बिहार-बंगाल में भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। कम्पनी के नौकरों ने तब अन्न के व्यापार पर एकाधिकार कर जनता का कष्ट और बढ़ा दिया। तीन करोड़ आबादी में से १ करोड़ जनता उस दुर्भिक्ष में मर गयी।

इंग्लैंड के लोगों के सामने यह प्रश्न आया कि उनके देश के कुछ व्यापारियों ने जो एक नया देश जीत लिया, वह किसका है ? उन व्यापारियों का या अँगरेज़ी राष्ट्र का ? स्वभावतः वहाँ यह सिद्धान्त स्थापित हुआ कि राष्ट्र का कोई व्यक्ति जो भूमि जीतता है, वह राष्ट्र के लिए जीतता है। इन व्यापारियों को भारत में व्यापार करने का एकाधिकार ब्रिटिश राष्ट्र से ही तो मिला था। इसलिए सन् १७६७ में अँगरेज़ी पार्लिमेन्ट ने एक कानून द्वारा कम्पनी के मुनाफ़े की दर नियत कर दी और यह तय किया कि कम्पनी ब्रिटिश सरकार के कोष में ४ लाख पौंड वार्षिक दिया करे। कुछ बरस बाद जब कम्पनी यह रकम न दे सकी तो उसके कार्य का नियमित करने के लिए एक 'रेग्युलेटिंग ऐक्ट' या नियामक क़ानून बनाया गया (१७७३ ई०)। इन कार्रवाइयों को समझने के लिए इंग्लैंड की राज्यसंस्था के विषय में कुछ जानना आवश्यक है।

अँगरेज़ जाति के पुरखा मुख्यतः ऐंग्लो-सैक्सन कबीलों के थे जो प्राचीन जर्मनी से इंग्लैंड में जा बसे थे। वे आर्य वंश की जर्मन या त्यूतन शाखा के थे। प्राचीन आर्य कबीलों में यह रिवाज था कि राजा सरदारों की सलाह से शासन करता था। उत्तर भारत को जब तुर्कों ने जीता, तभी इंग्लैंड को फ़्रान्स के नॉर्मन कबीले ने फ़तह किया। नॉर्मन राजाओं ने जब प्रजा के पुराने अधिकार कुचलने चाहे, तब प्रजा ने उन्हें बाधित किया कि वे सरदारों की सभा या 'पार्लिमेन्ट' की सलाह से ही शासन करें। धीरे-धीरे पार्लिमेन्ट में सरदारों के अतिरिक्त नगरों के नेता भी शामिल होने लगे। यह रिवाज बराबर जारी रहा है। इंग्लैंड के राजा जो कर लगाते वह पार्लिमेन्ट की स्वीकृति ले कर लगाते थे। जहाँगीर और शाहजहाँ के समकालीन इंग्लैंड के राजा जेम्स प्रथम और चार्ल्स प्रथम थे। उन्होंने निरंकुश होना चाहा; तब प्रजा ने कर देना बन्द कर विद्रोह किया और चार्ल्स को कैद कर फाँसी दे दी (१६४९ ई०—शिवाजी के उत्थान का वर्ष)। कुछ वर्ष प्रजा के मुखिया क्रामवेल के शासन के बाद चार्ल्स के बेटे फिर बुलाये गये। किन्तु आज

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

ने उन्हें फिर निकाल कर हालैंड के एक राजकुमार को, जिसने स्पेन के खिलाफ़ विद्रोह में प्रमुख भाग लिया था, इस शर्त्त के साथ अपने देश की गद्दी दी कि वह प्रजा के अधिकार स्वीकृत करे (१६८८-८६ ई०—सम्भाजी के पतन का वर्ष)।

इस क्रान्ति से प्रजा के अनेक बुनियादी अधिकार स्थापित हो गये। पार्लिमेन्ट की स्वीकृति बिना राजा कोई भी कर नहीं लगा सकता और न कहीं से रुपया उधार ले सकता था। पहले करों की स्वीकृति राजा को आयु भर के लिए दी जाती थी, अब वार्षिक आय-व्यय की स्वीकृति दी जाने लगी। इसका अर्थ राज-कर्मचारियों के वेतन को काबू में करना था। व्यय की स्वीकृति देने से पहले पार्लिमेन्ट उनके कार्यों की पूरी जाँच-पड़ताल करती। सेना की संख्या भी पार्लिमेन्ट प्रतिवर्ष नियत करने लगी। कानून बनाना और राजा का उत्तराधिकारी नियत करना भी पार्लिमेन्ट के ही हाथ में आ गया। पार्लिमेन्ट के सदस्यों को भाषण और विचार-विवाद की पूरी स्वतन्त्रता दी गयी। किसी व्यक्ति को अकारण और बेकायदा कैद करने का अधिकार राजा को न रहा। पार्लिमेन्ट में सरदारों के बजाय क्रमशः प्रजा के प्रतिनिधियों का पद बढ़ता गया; इस प्रकार समूचा शासन वास्तव में प्रजा के अपने हाथों में आ गया। पार्लिमेन्ट के हाथ में सब शक्ति आ जाने से राजा के लिए यह आवश्यक हो गया कि पार्लिमेन्ट में जो बहुपक्ष हो, उसी के नेताओं को अपना मन्त्री चुने। समय-समय पर पार्लिमेन्ट का नया चुनाव होने से प्रजा के रुझान के अनुसार उसका बहुपक्ष बनने लगा। अठारहवीं सदी के मध्य तक इंग्लैंड की यह राज्यसंस्था पूरी तरह स्थापित हो गयी। तब से राजा केवल नाम और प्रभाव के लिए रह गया। प्रबन्ध-सम्बन्धी और गोपनीय कार्य मन्त्रि-मंडल द्वारा होते हैं; किन्तु पार्लिमेन्ट बाद में उनकी सफ़ाई माँग सकती है। इस राज्यसंस्था में प्रजा का योग्यतम आदमी सुगमता से राष्ट्र का नेता बन जाता है और आन्तरिक उलझनों में राष्ट्र की कम से कम शक्ति का नाश होता है। अठारहवीं सदी में फ़्रान्स भारत और अमेरिका में अपने लोगों को सहारा न दे सका, या योग्य आदमी न भेज सका, इसका कारण यही था कि तब फ़्रान्स का आन्तरिक शासन खराब था। फ़्रान्स की प्रजा ने इंग्लैंड से १०० वर्ष पीछे अपना घर सँभाला, तब तक अँगरेज़ी साम्राज्य की नींव पड़ चुकी थी।

भारत की प्रजा अपने घर का जो प्रबन्ध स्वयम् न कर सकी, सो इंग्लैंड की प्रजा अब इतनी दूर से करने लगी। रेग्यूलेटिंग ऐक्ट के अनुसार, कलकत्ते में

बंगाल-बिहार के मुल्की और फ़ौजी शासन के लिए एक गवर्नर-जनरल ४ सदस्यों की एक कौन्सिल के साथ, तथा न्याय के लिए एक सुप्रीम कोर्ट नियत किया गया। सुप्रीम कोर्ट की नियुक्ति ब्रिटिश सरकार द्वारा होती थी। पहले पाँच वर्ष के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल की नियुक्ति भी ब्रिटिश सरकार ने की। मद्रास और बम्बई की 'प्रेसीडेन्सियों' पर गवर्नर-जनरल का निरीक्षण और नियन्त्रण रक्खा गया। गवर्नर-जनरल और कौन्सिल को रेग्युलेशन (नियम) बनाने का अधिकार दिया गया। वे रेग्युलेशन सुप्रीम कोर्ट में प्रकाशित होने से कानून बन जाते थे; किन्तु ब्रिटिश सरकार उन्हें रद्द कर सकती थी। अपने कार्यों के लिए गवर्नर-जनरल और कौन्सिल पार्लिमेन्ट के सामने जवाबदेह बनाये गये। डायरेक्टरों के लिए भारत की मालगुज़ारी तथा मुल्की और फ़ौजी शासन सम्बन्धी सब कागज़ात ब्रिटिश सरकार के सामने पेश करना आवश्यक कर दिया गया।

अध्याय ४

नाना फडनीस

(१७७३–१७९६ ई०)

§१. बिहार-बंगाल में अँगरेज़ी शासन की स्थापना—सन् १७७२ से बंगाल का गवर्नर वारन हेस्टिंग्स था। रेग्युलेटिंग ऐक्ट के अनुसार वही पहला गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। उसने दुराज का अन्त कर बिहार और बंगाल में सीधे ब्रिटिश शासन की स्थापना की। कलकत्ते में एक बोर्ड आव रेवन्यू स्थापित कर उसके अधीन हर ज़िले में एक अँगरेज़ कलक्टर नियत किया गया। एक सदर दीवानी और एक सदर निज़ामत अदालत कलकत्ते में बैठा कर उनकी देखरेख में कलक्टरों को ज़िलों में दीवानी मामले और पुराने देशी अधिकारियों को फ़ौजदारी मामले सुनना सौंपा गया। ये अदालतें किस कानून के अनुसार चलें, यह एक बड़ा प्रश्न था। हेस्टिंग्स ने हिन्दू और मुस्लिम विद्वानों द्वारा उनके कानून का एक संकलन करा के एक 'कोड' या स्मृति बनवायी। भारतवर्ष और पूरबी देशों के विषय में जानकारी प्राप्त करने और ज्ञान का संग्रह और खोज करने के लिए सर विलियम जोन्स ने वारन हेस्टिंग्स के प्रोत्साहन और संरक्षण में 'एशियाटिक सोसाइटी आव बंगाल' की स्थापना की (१७८४ ई०)

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

मालगुज़ारी का बन्दोबस्त नीलामी द्वारा ही होता रहा। उसके कारण पुरानी जागीरें कलकत्ते के दलालों और गुमाश्तों के हाथ बिकती गयीं। इनके जुल्मों से प्रजा में त्राहि-त्राहि की पुकार मच गयी। कहीं कहीं पुराने ज़मीन्दारों ने प्रजा को बचाने की कोशिश की—रानी भवानी नाम की राजशाही की एक ज़मीन्दारिन का नाम इस प्रसंग में प्रसिद्ध है। किन्तु इन्हें सफलता न हुई। कई जगह किसान खेत छोड़ कर भागे; तब उन्हें अँगरेज़ी फ़ौज ने घेर कर वापिस ढकेल दिया।

तामिलनाड के नवाब मुहम्मदअली से कर्ज़ चुकाते न बना तो उसने अपने उत्तमर्णों से कहा कि तांजोर के राजा को लूट कर वसूल कर लें इस प्रकार १७७१ ई० में अँगरेज़ी फ़ौज ने तांजोर पर चढ़ाई कर ४० लाख रुपया वसूल किया। १७७३ ई० में फिर चढ़ाई करके उन्होंने राजा को कैद किया और उसका इलाका मुहम्मद-अली ने उन सूदखोरों के हाथ रहन रख दिया। दक्खिन भारत का वह बाग़ तब वीरान हो गया।

सन् १७७५ में लार्ड पिगोट को मद्रास का गवर्नर बना कर इस उद्देश से भेजा गया कि वह नौकरों के खानगी कर्ज़ से पहले कम्पनी का कर्ज़ वसूल करने का प्रबन्ध करे। पिगोट ने तांजोर के राजा को छोड़ दिया, लेकिन मद्रास के कौन्सिलरों ने पिगोट को ही कैद कर लिया! वारन हेस्टिंग्स ने उसकी सुधि न ली और वह कैद में ही मरा। मुहम्मदअली के कर्ज़ बढ़ते ही गये, उनका कोई लिखित हिसाब भी न था! उसे भी क्या परवा थी, कर्ज़ चुकाने वाले तो तामिल किसान थे। १७८३ ई० में उस प्रान्त में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा।

वारन हेस्टिंग्स को अपनी कौन्सिल के कारण सदा दिक्कत रही। बहुमत के अनुसार कानून और बजट बनाना आदि ठीक होता है, किन्तु शासन-प्रबन्ध कभी बहुमत से नहीं चल सकता। ५ में से ३ सदस्यों के मत से यदि युद्ध शुरू कर दिया जाता, तो कुमुक भेजने का मौका आने पर एक सदस्य अपना मत बदल लेता। इससे यह तजरबा हुआ कि शासन-समितियों का काम केवल सलाह देना होना चाहिए, और शासन का अन्तिम दायित्त्व सदा एक व्यक्ति पर रहना चाहिए। यदि वह अपने दायित्त्व का दुरुपयोग करे तो पीछे उससे पार्लिमेन्ट सफ़ाई माँग सकती है।

§२. पेशवा नारायणराव और राघोबा; बारा भाई की समिति (१७७२–७५ ई०)—माधवराव के बाद उसका छोटा भाई नारायणराव पेशवा

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बना। माधव ने मृत्यु से पहले राघोबा से समझौता करके उसे छोड़ दिया था। नारायणराव ने उसे फिर कैद कर लिया। अँगरेज़ दूत मास्टिन से राघोबा का विशेष मेलजोल था। राघोबा ने नारायण को कैद कर स्वयम् छूटने का षड्यन्त्र किया, जिसका फल यह हुआ कि महल के रक्षक 'गार्दियों' ने नारायणराव की हत्या कर डाली (३०-८-१७७३ ई०)। राघोबा ने अपने को निर्दोष कह कर राज-काज अपने अधिकार में कर लिया; किन्तु नारायण को तिलाञ्जलि के दिन नाना फडनीस, हरि बल्लाल फड़के आदि बारह नेताओं ने शपथ ली कि वे उस हत्यारे को देश का शासन न करने देंगे।

इसी समय निज़ामअली और हैदरअली ने महाराष्ट्र की इस विपत्ति से लाभ उठा कर अपने छिने हुए इलाके वापिस लेने की कोशिश की। राघोबा उनकी तरफ़ बढ़ा। पीछे उन बारह नेताओं या "बारा भाई" की समिति ने नारायण की विधवा गंगाबाई और उसके गर्भस्थ बालक के नाम पर शासन अपने हाथ में ले लिया। राघोबा हैदरअली की सीमा से लौटा; किन्तु उसे पूना में घुसने की हिम्मत न हुई। उसने मुम्बई के अँगरेज़ों से बातचीत शुरू की और नर्मदा पार कर गुजरात जा पहुँचा। तभी गंगाबाई के पुत्र हुआ (१८-४-१७७४ ई०)। चालीसवें दिन उस सवाई माधवराव को पेशवाई के वस्त्र मिले। हरि फड़के, महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर ने राघोबा का पीछा किया। तब वह परेशान हो कर अँगरेज़ों की शरण में सूरत पहुँचा।

पलाशी और बक्सर की विजयों से अँगरेज़ों के दिलों में भारत में साम्राज्य बनाने की जो आकांक्षा जग गयी थी, पेशवा माधवराव के चरित्र ने उसे बहुत कुछ ठंडा कर दिया था। माधवराव की मृत्यु से वह आकांक्षा फिर भड़क उठी, और नारायणराव की हत्या से उसका रास्ता साफ़ हो गया। मोस्टिन से इस हत्या की खबर पाते ही वारन हेस्टिंग्स बनारस पहुँचा और शुजा से सन्धि कर अवध-रुहेलखंड को अपने शिकंजे में कस लिया। सूरत पहुँच कर राघोबा ने उनसे पूरी सन्धि की। उसी वर्ष नेल्सन, जो बाद में इंग्लेंड का प्रसिद्ध नाविक हुआ, मुम्बई आया था।

§३. अवध और रुहेलखंड पर ब्रिटिश आधिपत्य (१७७४-७५ ई०)—बनारस की नयी सन्धि के अनुसार शुजाउद्दौला ने कोड़ा और कड़ा* ज़िले

---

* इलाहाबाद ज़िले में कड़ा मानिकपुर का कस्बा है। ज़िले का नाम पहले उसी से पड़ता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अँगरेज़ों से ५० लाख रुपये में खरीद लिये तथा उनकी सेना के खर्च का एक हिस्सा देते रहना स्वीकार किया। अँगरेज़ों ने और ४० लाख रुपया ले कर उसे रुहेलखंड जीतने के लिए सैनिक सहायता देना स्वीकार किया। अब से उन्होंने बादशाह को २६ लाख वार्षिक देना भी बन्द कर दिया।

अँगरेज़ी सेना ने शुजा के साथ रुहेलखंड पर चढ़ाई की। मीरनपुरकटरा के पास बबूल नाले में रुहेले वीरता से लड़े, पर हार गये। शुजा ने तब रुहेलखंड को बुरी तरह लूटा और रुहेलों का संहार किया। अन्त में एक रुहेले सरदार की बेटी ने उसे मार डाला। उसके बेटे आसफुद्दौला को हेस्टिंग्स ने अपने राज्य में अधिक ब्रिटिश फ़ौज रखने के लिए बाधित किया, और उस फौज के खर्चे के लिए गोरखपुर, बहराइच जिलों की मालगुज़ारी ले ली। यों अवध अब पूरी तरह अँगरेज़ी का रक्षित राज्य बन गया। इसके अतिरिक्त उसने अब बनारस राज्य अँगरेज़ों को दे दिया। गोरखपुर-बहराइच में बंगाल-बिहार की तरह मालगुजारी की नीलामी के साथ प्रजा पर घोर जुल्म होने लगे। लगान न दे सकने वाले किसानों को पिंजरे में बन्द कर धूप में छोड़ देना अँगरेजी कारिन्दों का एक साधारण तरीका था। इन ज़िलों में बंगाल-विहार की तरह विद्रोह हुआ जो कुचला गया।

§४. पहला अँगरेज़ मराठा युद्ध (१८७५–८४ ई०) [अ] पुरन्दर **की सन्धि** तक—मुम्बई से कर्नल कीटिंग राघोबा की मदद के लिए खम्भात भेजा गया। उसे पूने पर चढ़ाई करने का हुक्म मिला था, पर वह नर्मदा पार न कर सका। उधर राघोबा और मोस्टिन की प्रेरणा से गुजरात के फतेसिंह गायकवाड़ ने भरुच अँगरेज़ों को दे दिया। कलकत्ते की बड़ी कौन्सिलने इस युद्ध को रोक कर अपने प्रतिनिधि उप्टन को बारह भाइयों से सन्धि करने के लिए पुरन्दर भेजा। १-३-१७७६ को सन्धि हुई जिसकी शर्त्तें ये थीं कि (१) साष्टी और भरुच अँगरेज़ों के पास रहें, और (२) राघोबा पेन्शन ले कर महाराष्ट्र में रहे। परन्तु सन्धि के बावजूद भी मुम्बई सरकार ने राघोबा को मराठों के हाथ न सौंपा।

कलकत्ता और मुम्बई की कौन्सिलों की तरह अब तक महाराष्ट्र में भी 'बारह भाइयों' की समिति शासन चला रही थी। किन्तु इस बीच धीरे-धीरे उसका अन्त हो कर एक ही अधिनायक का शासन स्थापित हो गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

[इ] वडगाँव का ठहराव और गौडर्ड का प्रयाण—इंग्लैंड की साम्राज्य-कांक्षा को फिर एक भारी धक्का लगा। अमेरिका की अँगरेज़ बस्तियों पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कुछ टैक्स लगाने चाहे; परन्तु उन लोगों ने कहा कि हमारे प्रतिनिधि ही हम पर टैक्स लगा सकते हैं, और विद्रोह कर अपनी स्वतन्त्रता घोषित कर दी (१७७६ ई०)। आठ वर्ष तक उन बस्तियों के साथ इंग्लैंड ने विफल युद्ध किया। यों साम्राज्य पर संकट आने से भारत में भी अँगरेज़ सतर्क हो गये।

वारन हेस्टिंग्स ने नागपुर के राजा मुधोजी भोंसले को मराठा संघ में से फोड़ लेने की कोशिश की और कर्नल लेस्ली को प्रयाग की तरफ से मराठा साम्राज्य में घुसने को भेजा। मुम्बई सरकार ने राघोबा के साथ पूने पर चढ़ाई की फ़ौज भेजी (नव० १७७८ ई०)। सागर के हाकिम बालाजी गोविन्द बुन्देला ने लेस्ली को रोके रक्खा, जो वहीं बीमार होकर मर गया। राघोबा के साथ वाली अँगरेज़ी सेना बड़ी परेशानी के बाद पूने से १८ मील तक पहूँच गयी। तब एक मराठा टुकड़ी ने कोंकण उतर कर उनका मुम्बई से सम्बन्ध तोड़ दिया। अपनी तोपें एक तालाब में फेंक कर वे वहीं से लौटने लगे; मगर दो दिन बाद वडगाँव में चारों तरफ़ घिर कर उन्होंने सन्धि के लिए प्रार्थना की। राघोबा ने महादजी शिन्दे को आत्म-समर्पण कर दिया और अँगरेज़ों ने यह ठहराव किया कि १७७३ ई० के बाद उन्होंने कोंकण में जो कुछ जीता है सब लौटा देंगे, भरुच महादजी को देंगे और बंगाल से आती हुई कुमुक को रोक देंगे।

सन्धि की शर्तें पूरी कराये बिना मराठों ने उस कैदी सेना को जाने दिया। उसके मुम्बई पहुँचते ही अँगरेज़ों ने सन्धि तोड़ दी। डेढ मास बाद लेस्ली का उत्तराधिकारी जनरल गौडर्ड भोपाल के नवाब के सहयोग और मुधोजी भोंसले की चश्मपोशी से लाभ उठा कर, "मराठा साम्राज्य को सूखे बाँस को तरह बीचोबीच से चीरता हुआ" सूरत जा पहुँचा। इधर राघोबा को जब झाँसी में नज़रबन्द रखने भेजा जा रहा था तब वह भी नर्मदा के घाट से भाग कर भरुच जा पहुँचा।

[उ] अन्तिम संगठित युद्ध (१७८०–८१ ई०)—गौडर्ड ने गुजरात में युद्ध छेड़ना तय किया, क्योंकि वहाँ फतेसिंह गायकवाड की मदद मिल रही थी। उन दोनों ने गुजरात में पेशवा के इलाकों पर चढ़ाई की और दाभोई और अहमदाबाद ले लिये। महादजी शिन्दे और तुकोजी होल्कर गौडर्ड के खिलाफ़ भेजे गये। वे उसे लुभा कर आगे-आगे बढ़ाने लगे। पीछे से एक मराठा टुकड़ी

ने कोंकण से आ कर उसे सूरत के आधार से काटना चाहा। कोंकण में एक अँगरेज़ टुकड़ी काट डाली गयी।

नाना ने अब अँगरेज़ों की तीनों प्रेसिडेन्सियों पर एक साथ हमला करना तय किया। मुधोजी भोंसले को सीधा करके उसने हैदर और निज़ाम अली के साथ सन्धियाँ कीं। निज़ाम से कुछ न बन पड़ा। मुधोजी को ३० हज़ार सेना बंगाल पर भेजने का हुक्म हुआ; परन्तु वह टालता रहा और उधर हेस्टिंग्स को पता दे दिया कि उसे यह सेना भेजनी पड़ेगी। हैदरअली के मराठों से मिल जाने की सूचना अँगरेज़ों को मद्रास के पास के जलते हुए गाँव देख कर मिली। मद्रास को घेर कर उसने तामिलनाड में जहाँ तहाँ अँगरेज़ी फ़ौज को खोज-खोज कर कैद किया।

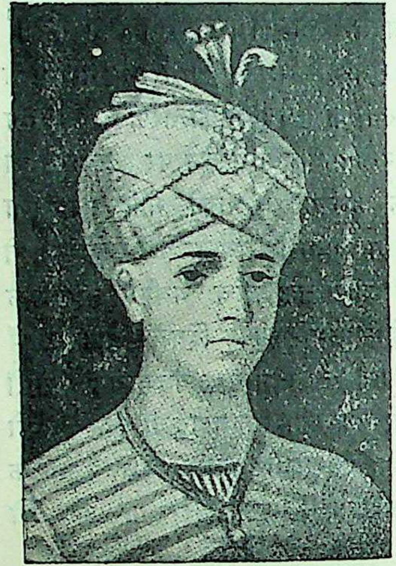

हैदरअली

[विक्टोरिया मिमोरियल, इं०म्यू०, कलकत्ता; श्री० सुन्दरलालजी के सौजन्य से]

उत्तरी रणांगण में अँगरेज़ों ने गोहाद के राणा को फोड़ लिया और उसकी मदद से कप्तान पौफम ने ग्वालियर ले लिया। शिन्दे को गौडर्ड का पीछा छोड़ कर उधर लौटना पड़ा। गौडर्ड तब कोंकण में हारती हुई अँगरेज़ी फ़ौज की मदद को गया। हैदरअली के खिलाफ़ गुण्टूर से बेली और मुनरो दो फ़ौजें ले कर चले। उन्हें मिलने न देकर हैदर ने बेली की सारी फ़ौज कैद कर ली या काट डाली। और मुनरो—बक्सर के मैदान का विजेता—अपनी तोपें काञ्जीवरम के तालाब में फेंक लस्टमपस्टम मद्रास भागा।

उधर गोडर्ड ने बसई को ले लिया। हेस्टिंग्स ने तब सन्धि का प्रस्ताव किया, परन्तु नाना और हरि फडके ने कोई उत्तर न दिया। गौडर्ड ने अरनाला द्वीप लेकर फिर सन्धि का प्रस्ताव भेजा। जवाब में नाना ने परशुरामभाऊ पटवर्धन और हरि फडके को सेना के साथ भेजा। उन्होंने गौडर्ड को पूरी तरह हरा कर कोंकण को अँगरेज़ी फ़ौज से साफ़ कर दिया।

जिस कप्तान कैमक को सन् १७७२ में झाड़खंड जीतने को नियुक्त किया गया था, वह १७८० ई० तक उस प्रान्त को पूरी तरह अधीन कर चुका था। अब उसे भी शिन्दे के राज पर उत्तर से चढ़ाई करने भेजा गया। मालवे में सिपरी ले कर वह सिरोंज तक बड़ आया।

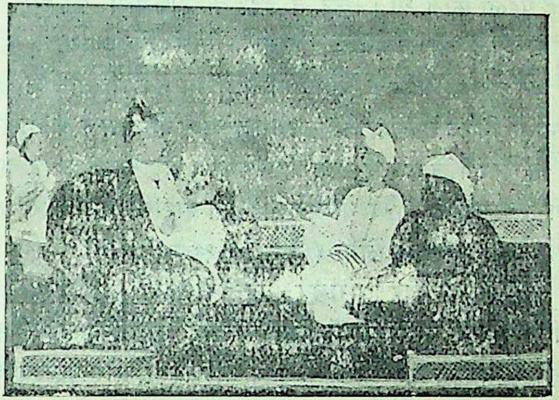

सवाई माधवराव पेशवा

सामने हरिपन्त फड़के (उजले कपड़े पहने) और महादजी शिन्दे

[भा० इ० सं० मं०]

युद्ध के खर्चे के लिए भी वारन हेस्टिंग्स को परेशान होना पड़ रहा था। काशी के राजा चेतसिंह पर दबाव डाल कर वह सन् १७७८ से कर तथा सेना के खर्च के अलावा ५ लाख रुपये वार्षिक ले रहा था। १७८१ ई० में उसने और रकम माँगी। चेतसिंह ने इनकार किया और मराठों से बात की; तब हेस्टिंग्स ने बनारस पहुँच कर उसे कैद कर लिया। इसपर प्रजा भड़क उठी और हेस्टिंग्स को घेर लिया। मुधोजी भोंसले के दूत उसके साथ थे। उन्होंने उसे बचा कर गंगा पार उसकी छावनी में पहुँचा दिया। अवध के आसफुद्दौला पर दबाव डाल कर हेस्टिंग्स ने उसकी माँ और दादी से एक करोड़ रुपया ऐंठ लिया। बनारस का राज्य हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के भानजे को दिया और उसकी शक्ति बहुत परिमित कर दी।

सन् १७७८ में फ्रान्स ने और उसके बाद स्पेन और हॉलैंड ने भी अमेरिका का पक्ष ले कर इंग्लैंड से युद्ध-घोषणा कर दी थी। फ्रान्सीसी एक ज़बरदस्त जंगी बेड़ा

भारत भेजने को तैयार कर रहे थे। इस दशा में हेस्टिंग्स ने बूढ़े आयरकूट को मद्रास भेजा। इसके साथ ही उसने मुधोजी भोंसले को ५० लाख रु० रिशवत दे कर न केवल बंगाल पर चढ़ाई करने से रोक दिया, प्रत्युत बंगाल से उसके इलाके द्वारा एक सेना मद्रास को कूट की कुमुक में भेजी। स्थल द्वारा बंगाल से मद्रास जाने वाली अँगरेज़ों की यह पहली फ़ौज थी। कूट ने हैदर की रोकथाम की और जगह-जगह घिरी हुई अंगरेज़ी फ़ौजों को छुड़ाया। (जुलाई–सितम्बर १७८१), तो भी वह उसे तामिलनाड से निकाल न सका। फ्रान्सीसी बेड़ा भी तब भारतीय समुद्र में पहुँचने वाला था। नाना ने निश्चय किया कि उस साल जाड़े में बंगाल के साथ-साथ मुम्बई पर भी चढ़ाई की जाय। लेकिन बरसात में कैमक ने महादजी के इलाके बुरी तरह उजाड़े थे; इसी से महादजी शिन्दे ने अब हिम्मत हार कर तटस्थ रहना और नाना से भी समझौता करा देना मान लिया (१३-१०-१७८१)।

[ऋ] सालबाई और मंगलूर की सन्धियाँ (१७८२—८४ ई०)— महादजी की मध्यस्थता से ग्वालियर के पास सालबाई में सन्धि हुई (१७-५-१७८२ ई०)। अंगरेज़ों ने राघोबा को मराठों के हाथ सौंप दिया और पुरन्दर की सन्धि के बाद जो इलाका जीता था सब लौटा दिया। भरुच शिन्दे को और अहमदाबाद आदि गायकवाड को इस शर्त पर दिये गये कि वे नियम से पूना को कर भेजते रहेंगे। पेशवा ने हैदरअली से तामिल प्रदेश लौटवाने का ज़िम्मा लिया। अँगरेज़ों ने राघोबा द्वारा मराठा साम्राज्य में वही खेल खेलना चाहा था जो मीर जाफ़र द्वारा बंगाल में खेला था; पर वे विफल हुए। इसी तरह गायकवाड और भोंसले को उन्होंने मराठा संघ से तोड़ना चाहा था, उसमें भी उन्होंने हार मानी। राघोबा गोदावरी के तट पर कोपरगाँव में आ रहा और दो वर्ष बाद मर गया।

हैदर ने युद्ध बन्द न किया था। सिंहल द्वीप का विशाल बन्दरगाह त्रिंकोमलै अँगरेज़ों ने हालैंड से छीन लिया था (सन० १७८२ ई०), पर तभी हैदर के बेटे टीपू ने ताञ्जोर पर एक ब्रिटिश टुकड़ी की पूरी सफ़ाई कर दी और फ्रान्स के श्रेष्ठ नाविक सूफ्राँ ने २००० फ्रान्सीसी सेना तट पर उतार दी। उनकी मदद से हैदर ने कुड्डलूर जीत लिया और सूफ्राँ ने त्रिंकोमलै भी वापिस छीन लिया। किन्तु युद्ध के बीच ही हैदरअली की मृत्यु हुई (७-१२-१७८२)। वह पहला स्वतन्त्र हिन्दुस्तानी शासक था जिसने अपनी सेना को युरोपी कवायद सिखा कर तैयार किया था। उसका शासन दृढ़ और निष्पक्ष था। मज़हबी तअस्सुब उसे छू न गया था।

उसके बेटे टीपू ने युद्ध जारी रक्खा। फ्रान्स से बुसी भी फिर भारत आया, पर उसके आने के बाद शीघ्र ही फ्रान्स-इंग्लैंड की सन्धि हो गयी। टीपू तब अकेला लड़ता रहा। अँगरेज़ों ने पच्छिम तट से उसके राज्य पर हमला किया, इसलिए उसे उधर जाना पड़ा। मार्च १७८४ में उसने मंगलूर में अँगरेज़ों से नफ़े के साथ सन्धि की।

§५. पिट का इंडिया ऐक्ट तथा **कार्नवालिस का शासन**—वारन् हेस्टिंग्स के शासन-काल के तजरबे से ब्रिटिश भारत के शासन-विधान को बदलने की जरूरत मालूम हुई; इससे प्रधान-मन्त्री (छोटे) पिट ने पार्लियामेन्ट से एक नया विधान-कानून पास कराया (१७८४ ई०)। इस कानून का सार यह था कि ब्रिटिश सरकार ६ व्यक्तियों का एक नियन्त्रण-वर्ग (बोर्ड आव कन्ट्रोल) नियत करे, तथा कम्पनी के डाइरेक्टर भारत के शासन और मालगुज़ारी-विषयक तमाम कागज़ात उसके पास भेजा करें, और वर्ग उनपर जो आज्ञा दे उसे वे भारत में अपने कर्मचारियों के पास पहुँचा दें। डाइरेक्टर कोई सीधी आज्ञा भारत में अपने कर्मचारियों को न दें; वर्ग के जो आदेश युद्ध आदि गोपनीय विषयों से सम्बन्ध रखते हों वे डाइरेक्टरों की समूची सभा के बजाय उस सभा के सदस्यों की गुप्त समिति द्वारा भेजे जाँय; गवर्नरों और प्रधान सेनापतियों के सिवाय बाकी सब कर्मचारियों की नियुक्ति कम्पनी करे; कलकत्ता कौन्सिल में ३ सदस्य हों; भारत के गवर्नर कोई युद्ध या युद्धपरक सन्धि गुप्त समिति की आज्ञा बिना न करें। इस कानून से कम्पनी का सासन-सम्बन्धी सब कार्य ब्रिटिश सरकार के पूरे नियन्त्रण में चला गया। कम्पनी का काम केवल बोर्ड के आगे प्रस्ताव रखना और उस की आज्ञाओं को भारत में पहुँचाना रह गया। हाँ, नियुक्ति का अधिकार भी कम्पनी के हाथ में बना रहा। ब्रिटिश भारत के शासन-विधान में बाद में चाहे जो परिवर्तन होते रहे, परन्तु उस विधान का ढाँचा बराबर वही रहा जो छोटे पिट ने खड़ा किया था। १७८६ ई० के एक संशोधन से गवर्नर-जनरल को अपनी कौन्सिल के बहुमत को भी न मानने का अधिकार दिया गया।

इस विधान-कानून के साथ-साथ नवाब मुहम्मद अली के कर्ज़ों का प्रश्न भी पार्लियामेन्ट के सामने आया। उस जमाने में इंग्लैंड के निर्वाचकमंडल बड़े भ्रष्ट थे। मुहम्मदअली के अँगरेज़ उत्तमर्णों ने लूट के रुपये से उनकी वोटें खरीद कर अपने प्रतिनिधि पार्लियामेन्ट में भी भर लिये थे। मन्त्रिमंडल को उन प्रति-

निधियों की उन वोटों की ज़रूरत थी, इसलिए पार्लियामेन्ट ने उनके सब असली और फ़र्ज़ी कर्ज़ों को स्वीकार कर लिया—अर्थात् तामिल किसानों की लूट पर अपनी मुहर लगा दी। तब गोरे सूदखोरों का एक नया दल, गिद्धों के झुंड की तरह तामिल भूमि पर आ मँडराने लगा और मुहम्मद अली के कर्ज़ और बढ़ते ही गये।

वारन हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी लार्ड कार्नवालिस (१७८६–९३ ई०) ने अपना ध्यान मुख्यतः शासन को व्यवस्थित करने पर लगाया। उसने पुलिस का संगठन किया, कलक्टरों के पास केवल वसूली का काम रहने दिया, और न्याय-कार्य के लिए अलग जज नियत किये। बंगाल-बिहार-बनारस में उसने ज़मीन का "स्थायी बन्दोबस्त" किया (१७९३ ई०), पर आन्ध्र तट के ज़िलों में की पहले सी नीलामी चलती रहने दी। पुराने जागीरदारों को सैनिक सेवा तथा स्थानीय शासन के कार्य के बदले में मालगुज़ारी सौंपी जाती थी। ब्रिटिश शासन में उनका सैनिक और शासन-सम्बन्धी कार्य कुछ नहीं बचा, और पिछले २८ वर्षों (१७६५-९३ई०) में उन जागीरदारों का स्थान प्रायः नये ठेकेदारों ने ले लिया। कार्नवालिस ने नीलामी की प्रथा हटाकर इन ठेकेदारों को मालगुज़ारी का ९० फ़ी सदी अँश जितना होता था स्थायी रूप से राज्य का अँश नियत कर दिया। बाद में इन ठेकेदारों का अँश बढ़ता गया और धीरे-धीरे वे ज़मीन के मालिक बन बैठे।

§६. नेपालियों का पहाड़ी साम्राज्य (१७७८-९२ ई०) नेपाल में प्रथ्वी नारायण ने ७ वर्ष और उसके बेटे प्रतापसाह ने पौने तीन वर्ष तक राज किया। प्रताप के बाद उसकी विधवा राजेन्द्रलक्ष्मी अपने बेटे रणबहादुर के नाम पर ९ वर्ष तक राज करती रही। उस शासन-काल में गोरखों ने ठेठ नेपाल के पच्छिम का सप्तगंडकी प्रदेश (गंडक की धाराओं का प्रस्रवणक्षेत्र) तथा पूरब का सप्तकौशिकी प्रदेश (कोसी का प्रस्रवणक्षेत्र) जीत लिया। राजेन्द्रलक्ष्मी के बाद रणबहादुर के नाम पर उसके चचा बहादुरसाह ने ५ वर्ष राज किया (१७८७-९२ ई०)। उस समय पच्छिम तरफ़ घाघरा का प्रस्रवणक्षेत्र तथा कुमाऊँ जीते गये। नेपालियों ने तिब्बत पर भी चढ़ाई की, जिसके बदले में ल्हासा की चीनी सेना ने नेपाल पर चढ़ाई कर उन्हें बुरी तरह हराया (१७९२ ई०)।

§७ उत्तर भारत में महादजी शिन्दे (१७८२-९२ ई०)—पिछले तजरबे से महादजी ने यह समझ लिया कि मराठों को पुरानी समर-शैली छोड़ कर

पच्छिमी कवायद अपनानी होगी। उसने फ्रान्सीसी अफ़सर अपने यहाँ रख कर पैदल बन्दूकची सेना तैयार करायी। उन अफ़सरों में द-ब्वाञ और पेरों बहुत प्रसिद्ध हुए।

पेशवा नारायणराव ने १७७३ ई० में मराठा सेना को दिल्ली से वापिस बुला लिया था। उसका विचार था कि पहले सारी शक्ति लगा कर तामिलनाड को जीता जाय। उसी वर्ष अहमदशाह अब्दाली की मृत्यु हुई। उसके बेटे तैमूरशाह ने सिक्खों से मुलतान वापिस ले लिया (१७७६ ई०); सिन्ध पर अब्दालियों का अधिकार बना ही था। महादजी अब फिर दिल्ली पहुँचा (१७८२ ई०)। बादशाह ने उसे सब शक्ति दे दी और पेशवा को अपना वकीले-मुतलक़ अर्थात् एकमात्र प्रतिनिधि बना दिया। महादजी ने सिक्खों के साथ अवध जीतने के लिए सन्धि की। किन्तु वह जैसा योग्य सेनापति था, शासन-प्रबन्ध में वैसा ही निकम्मा था। अनेक विरोधी पैदा हो जाने से उसे दिल्ली से भागना पड़ा (१७८५ ई०)। नजीबुद्दौला के पोते गुलाम क़ादिर ने तब दिल्ली पर अधिकार कर लिया। उसने शाहआलम की आँखें अपने हाथ से निकालीं, उसे बेतों से मारा, और शाही परिवार पर घृणित अत्याचार किये (१७८८ ई०)। महादजी उस समय नाना फडनीस की मदद पा कर दिल्ली वापिस आया और बादशाह की रक्षा कर गुलाम क़ादिर को उचित पुरस्कार दिया। द-ब्वाञ को राजपूताना भेजा (१७९०ई०)। पाटन और मेड़तों में राजपूतों से दो घोर युद्ध हुए। अजमेर, जोधपुर, जयपुर, मेवाड़, सभी ने मराठों की अधीनता मानी। बादशाह ने पेशवा के वंश में वकीले-मुतलक़ पद स्थायी कर महादजी को अपना "फ़रज़न्द जिगरबन्द" कहा और सारे साम्राज्य में गोहत्या बन्द करने का फ़रमान निकाला। पेशवा को वह पद सौंपने के लिए महादजी ने पूना की यात्रा की (१७९२ ई०)।

§८. टीपू से युद्ध (१७८५-९२ ई०)—टीपू कई बातों में अपने पिता से उलटा था! वह धर्मान्ध था। नाना ने हैदर का सहयोग लेने के लिए उसे जो इलाके सौंपे थे, उन्हीं में अब टीपू के अत्याचारों से ऊब कर दो हज़ार हिन्दुओं ने आत्मघात कर लिया। मराठों और निज़ामअली ने मिल कर तब उसपर चढ़ाई की (१७८६ ई०)। एक वर्ष बाद टीपू ने उनसे सन्धि की। १७८९-९० में उसने त्रावंकोर पर चढ़ाई की। तब नाना फडनीस, निज़ामअली और लार्ड कार्नवालिस तीनों ने उसके खिलाफ़ सन्धि कर एक साथ चढ़ाई की। परशुरामभाऊ पटवर्धन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

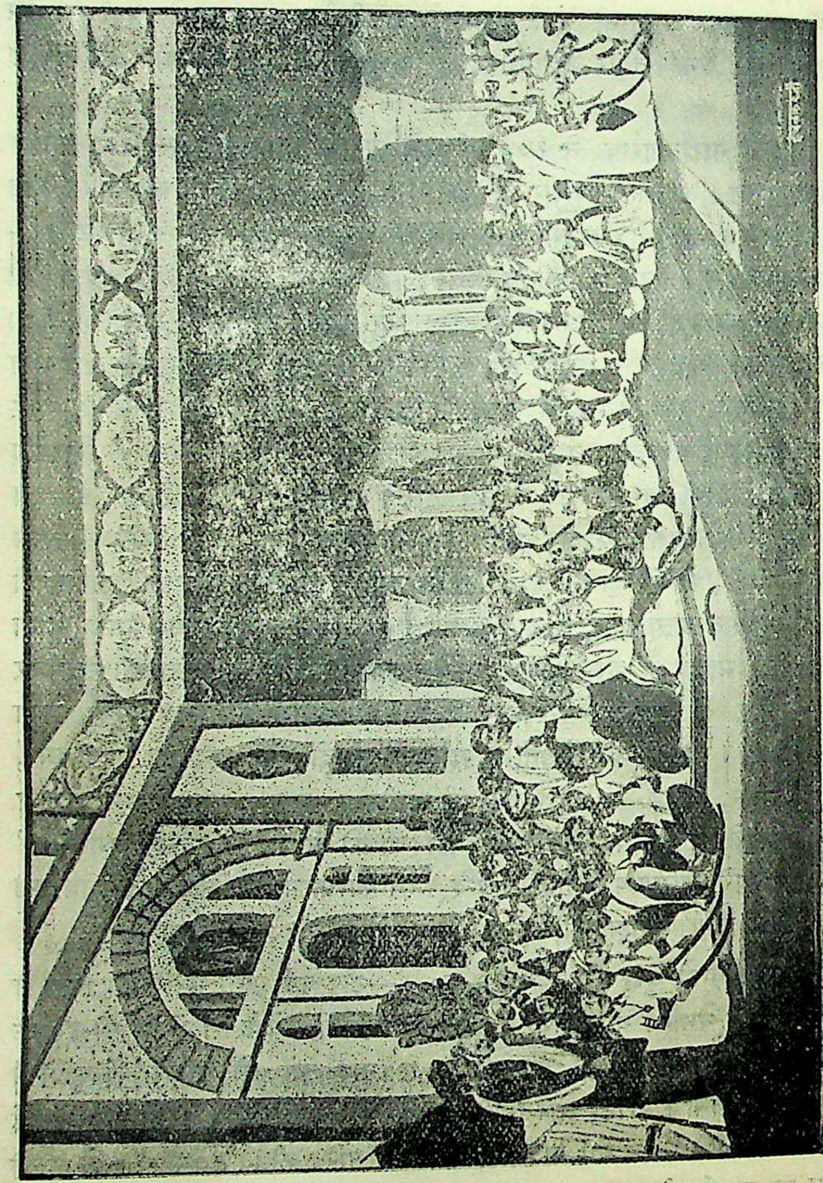

सवाई माधवराव पेशवा के दरबार में कार्नवालिस का दूत मैलेट, टीपू के खिलाफ़ सन्धि करते हुए। पेशवा के पास नाना फड़नीस बैठे हैं।

[गणेशखिंड महल, पूना में लगा चित्र; श्री पिंपलखरे द्वारा प्रतिलिपि, भा० इ० सं० मं० पूना के सौजन्य से]

और हरिपन्त फडके धारवार और शिरा से दक्खिन की ओर बढ़े। अँगरेज़ों ने मलबार से मैसूरी फ़ौज को निकाल दिया। मद्रास की तरफ़ से जनरल मीडोज़ आगे बढ़ा, पर उसे टीपू ने हरा दिया। तब खुद कार्नवालिस ने उधर आ कर बेंगलूर लेते हुए श्रीरंगपट्टम् आ घेरा। टीपू ने उसका सम्बन्ध चारों तरफ़ से काट कर उसे लौटने का बाधित किया। उस दशा में उसे एक सेना दिखायी दी जिसे शत्रु जान वह मरने को तैयार हुआ। किन्तु वह सेना मराठों की निकली। तीनों सेनाओं ने मिल कर फिर से श्रीरंगपट्टम् घेर लिया। टीपू ने सन्धि-भिक्षा की। कार्नवालिस टीपू के राज्य का अन्त करना, पर नाना उसे बनाये रखना चाहता था। इसलिए तीन करोड़ रुपया और आधा राज्य टीपू ने विजेताओं को दिया (१७९३ ई०)। उत्तरपच्छिमी और उत्तरपूरबी ज़िले क्रमशः मराठों और निजामअली को तथा कोडगु (कुर्ग), मलबार, दिन्दिगुल और बारामहाल (सेलम, कृष्णागिरि) अँगरेज़ों को मिले।

§९. मराठों की अन्तिम सफलता (१७९२-९५ ई०)—शाही खिलत और फ़रमान लेकर महादजी के पूना आने पर भारी समारोह किया गया। वह बादशाह की तरफ़ से यह सन्देश लाया था कि टीपू से युद्ध करना बड़ी भूल थी, इस समय अँगरेज़ों के खिलाफ़ उससे मिलना चाहिए। दिल्ली में भी इस बात की चर्चा थी। अँगरेज़ों ने तब अपने दूत मराठा राज्यों में भेज कर बड़ी सतर्कता से कोशिश की कि वैसा गुट्ट न बन पाय। डेढ़ वर्ष बाद पूने में ही महादजी का देहान्त हुआ। तभी हरिपन्त फडके और अहल्याबाई भी चल बसीं।

निज़ामअली कई बरस से चौथ न दे रहा था। उसने भी रेमों नामक फ्रान्सीसी को अपनी सेना को क़वायद सिखाने के लिए रख लिया था, और उसके भरोसे पर उसके दीवान ने पूने को जलाने की डींग मारनी शुरू कर दी थी। नाना फडनीस ने युद्ध की तैयारी की। निज़ामअली ने अँगरेज़ गवर्नरजनरल सर जौन शोर से मदद माँगी। शोर ने मराठों से लड़ना उचित न समझा। निज़ामअली अकेला बिदर से आगे बढ़ा। परशुरामभाऊ के नेतृत्व में मराठे पूना से बढ़े। एक लड़ाई के बाद निज़ामअली एकाएक भाग निकला और खर्डा के कोटले में शरण ली। दौलताबाद का क़िला, ताप्ती से परिन्दा किले तक का सारा प्रदेश और ३ करोड़ रुपया उसने पेशवा को तथा उसी हिसाब से भूमि और रुपया मुधोजी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

भोंसले के बेटे रघुजी को दिया, और अपने दीवान को पेशवा के हाथ सौंप कर मराठों से सन्धि की (१७९५ ई०)।

इस विजय से मराठा संघ की धाक बँध गयी। नाना फडनीस तब सारे भारत में प्रमुख पुरुष गिना जाने लगा। किन्तु उसी साल पेशवा सवाई माधवराव की एकाएक मृत्यु हुई। उसके कोई सन्तान न थी। उसके वंश का एकमात्र पुरुष राघोबा का बेटा बाजीराव (२य) बाकी था। इसलिए वह उसे अपना उत्तराधिकारी बनाने को कह गया।

कार्नवालिस के बाद सर जौन शोर १७९३ से ९८ ई० तक ब्रिटिश भारत का गवर्नर रहा। उसने कोई नया प्रदेश नहीं जीता, पर रुहेलखंड, अवध और आरकाट की रियासतों पर अपना शिकंजा और कसा।

§१०. मराठा साम्राज्य की दुर्दशा (१७९५-९९ ई०)—बाजीराव २य सुन्दर और मधुरभाषी, किन्तु क्रूर, कायर और मूर्ख था। नाना ने चाहा सवाई माधराव की विधवा किसी को गोद ले ले, पर महादजी के उत्तराधिकारी—उसके भाई के पोते—दौलतराव शिन्दे और उसके मन्त्री बालोबा ने इसका विरोध किया। तब नाना को बाजीराव को कैद से छोड़ कर पेशवाई देनी पड़ी। बाजीराव ने नाना को अपना प्रधान मन्त्री बनाया। इसपर दौलतराव और बालोबा ने पूना पर चढ़ाई की। उन्होंने बाजीराव को कैद कर लिया और उसके भाई चिमाजी को ज़बरदस्ती पेशवा बनाया। नाना इस समय भाग गया था। कुछ मास बाद उसने दौलतराव को समझा कर बाजीराव को छुड़ा लिया।

मराठा संघ की इस अव्यवस्था को अँगरेज़ सतर्कता से देख रहे थे। सन् १७९६ में प्रसिद्ध अँगरेज़ नेता टामस मुनरो ने लिखा—"अपने शासन की एकमुखता और अपनी महान् सामरिक शक्ति के कारण हम देसी राज्यों से आसानी से बाज़ी ले सकते हैं, और यदि हम केवल मौकों की ताक में ही रहें तो भी निकट भविष्य में बिना विशेष खटके और खर्चे के अपना राज्य सारे भारत पर फैला सकते हैं।"

१७९७ ई० में तुकोजी होल्कर की मृत्यु हुई। उसके बेटों के झगड़ों में दौलतराव शिन्दे ने दखल दे कर एक को मार डाला और दो को भगा दिया। उसके बाद बाजीराव ने दौलतराव द्वारा नाना को कैद करा लिया। पूना दरबार में यों दौलतराव सर्वेसर्वा हो गया। उसकी कृपा के बदले में बाजीराव को दो

करोड़ रुपया देना था। जब वह दे न सका तो उसने उसे पूना लूटने की छुट्टी दे दी! बाजीराव अब दौलतराव के खिलाफ़ तैयारी करने लगा तो दौलत नें नाना को छोड़ दिया और नाना फिर मन्त्री बना (१५-१०-१७६८)। पर इस बीच साम्राज्य में अराजकता मच चुकी थी।

इसी बीच अँगरेज़ों ने दो तरफ़ बाजी मार ली। उन्होंने निज़ामअली से सन्धि करके हैदराबाद में ब्रिटिश "आश्रित" सेना रख दी (१७६८ ई०)। खर्डा की विजय के बाद मराठे निज़ामअली को अपना सामन्त माने हुए थे; अब वह अँगरेज़ों का रक्षित हो गया। इसके बाद उन्होंने टीपू के राज्य पर चढ़ाई की। श्रीरंगपट्टम् के घेरे में टीपू लड़ता हुआ मारा गया (४-५-१७६६ ई०)। उसके राज्य का बड़ा अंश अँगरेज़ों और निज़ामअली ने बाँट लिया, तथा बाकी मैसूर के उस राजा के पोते को दे दिया जिसे हैदर ने पदच्युत किया था। वह राजा भी अँगरेज़ों का रक्षित बना। टीपू की मृत्यु की खबर मराठा दरबार पर गाज सी गिरी। हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश आधिपत्य स्थापित हो जाने से अँगरेज़ों का पलड़ा एकाएक भारी हो गया। वे महाराष्ट्र की ठीक सीमा पर पहुँच गये। अगले वर्ष नाना फडनीस चल बसा। "उसके साथ मराठा राज्य का सब सयानापन विदा हो गया।"

* * *

अध्याय ५

अठारहवीं शती का भारतीय समाज

§१. **हिन्दू पुनरुत्थान**—१७वीं-१८वीं सदियों में महाराष्ट्र, बुन्देलखंड, व्रज, पंजाब और नेपाल में जो राजनीतिक सचेष्टता और अग्रसर प्रवृत्ति प्रकट हुई, वह स्पष्ट ही एक पुनरुत्थान था, जो बहुत अंशों में १५वीं-१६वीं सदियों के धार्मिक सुधार से उत्पन्न हुआ था। गंगा के काँठे, सिन्ध, गुजरात, आन्ध्र और तामिल मैदानों में—अर्थात् भारतवर्ष के सब से उपजाऊ प्रान्तों में—वह पुनरुत्थान प्रकट नहीं हुआ और इन्हीं प्रान्तों में अँगरेज़ों को पहले-पहल पैर जमाने का अवसर मिला।

बाबर, अकबर और उनके साथियों में जो विशाल महत्वाकांक्षा थी, वह औरंगज़ेब के बाद उनके वंशजों में क्षीण और नष्ट हो गयी। जिन प्रान्तों में पुनरुत्थान नहीं हुआ, वहाँ दिल्ली साम्राज्य के टुकड़े कुछ समय पीछे तक बचे रहे। यदि फ्रान्सीसी और अँगरेज़ बीच में न आ पड़ते, तो वे भी मराठों या सिक्खों के हाथ आने को थे। वैभव के शिखर पर पहुँच कर और महत्वाकांक्षा के मिट जाने पर जो ऐशपसन्दी आ जाती है, पिछले मुगलों में वह घृणित रूप से प्रकट हुई।

§२. **साहित्य और कला**—दिल्ली साम्राज्य के विस्तार और पतन तथा हिन्दुओं के पुनरुत्थान का प्रभाव सामाजिक जीवन पर भी हुआ। पंचाल (रुहेलखंड और कनौज) और शूरसेन (व्रज) की बोलियों में से कोई एक सदा भारत की राष्ट्रभाषा बनती रही है—वे बोलियाँ तमाम आर्यावर्त्ती भाषाओं की केन्द्रवर्त्ती हैं। इस बार दिल्ली साम्राज्य के सहारे उत्तर पंचाल की 'खड़ी बोली' भारत भर में समझी जाने लगी। साम्राज्य के अन्तिम विस्तार के साथ उसमें एक नयी शैली की कविता प्रकट हुई जिसे हम उर्दू कविता कहते हैं। फारसी लिपि में लिखी खड़ी बोली का नाम ही उर्दू है। सब से पहले उर्दू कवियों में औरंगाबाद के वली (१६६८-१७४४ ई०) का नाम प्रसिद्ध है।

हिन्दू पुनरुत्थान का साहित्य पर भी प्रभाव पड़ा। भूषण और लाल कवि ने शिवाजी और छत्रसाल के विषय में हिन्दी में कविताएँ की, पर उनका दर्जा भटैती

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

से बहुत ऊँचा नहीं है। मराठी पोवाडे अर्थात् गाथाएँ, जो मराठा इतिहास की घटनाओं पर निर्भर हैं, काफ़ी जानदार हैं। पंजाबी कवि वारिसशाह के 'हीर-राँझा' में ग्राम्य जीवन का चित्र है, और पश्तो कवि अकमल की रचनाएँ भी सुन्दर हैं। पिछले मुगलों और उनके प्रान्तीय दरबारों का साहित्य कृत्रिम, अतिरंजित और विषयैषणापूर्ण है। मराठी के सिवाय भारतवर्ष की विद्यमान भाषाओं में तब गद्य नहीं के बराबर था। महाराष्ट्र में शिवाजी के अभिषेक के बाद से राज्य-कार्य के लिए गद्य का विकास हुआ। वहाँ अनेक 'बखर' अर्थात् ऐतिहासिक वृत्तान्त भी लिखे गये; किन्तु वे कहानियों से भरे हुए और अप्रामाणिक हैं। साहित्य और इतिहास की दृष्टि से उनसे कहीं अधिक महत्व के वे सैकड़ों फुटकर पत्र हैं जिनमें समकालीन घटनाओं का वर्णन है। उनकी भाषा नपी-तुली और अर्थपूर्ण तथा शैली विषद और सजीव है। उनमें ऊँचे दरजे की प्रतिभा झलकती है।

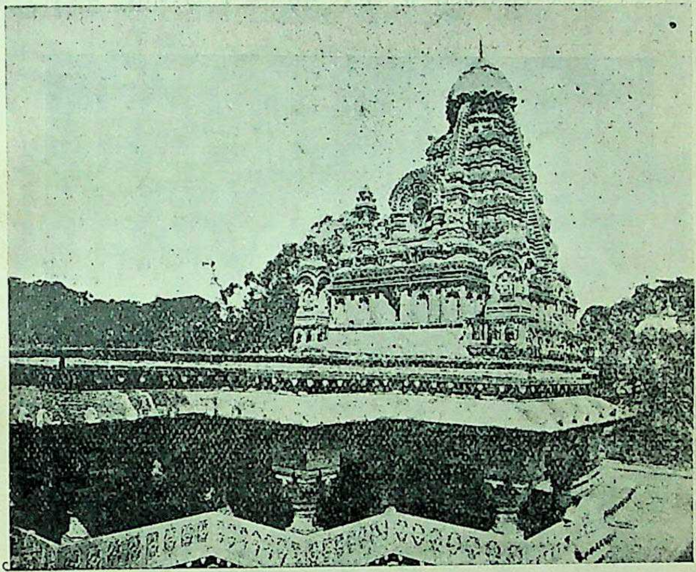

घृसणेश्वर, वेरूल [निज़ाम हैदरा॰ पु॰ वि॰]

जहाँ-जहाँ मराठों का राज्य पहुँचा, उन्होंने हिन्दू मन्दिरों और तीर्थों का पुनरुद्धार किया, और सार्वजनिक उपयोगिता के घाट, बगीचे, धर्मशालाएँ आदि

बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया। उज्जैन का महाकाल और काशी का विश्वनाथ मन्दिर तथा अजमेर का दौलतबाग आदि इसके नमूने हैं। इस सम्बन्ध में अहल्या बाई होल्कर का नाम उल्लेखनीय है। वेरूल ('इलोरा') के पास उसका घृसणेश्वर मन्दिर, पन्ना में छत्रसाल और कमलावती की समाधि, अमृतसर का 'दरबार-साहब', कन्दहार में अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, पूना में नाना फडनीस का बेलबाग आदि इस युग की स्थापत्य-कला के सुन्दर नमूने हैं। उज्जैन, जयपुर, बनारस और दिल्ली में जयपुर के संस्थापक सवाई जयसिंह की बनवायी बेधशालाएँ इस युग की मनोरंजक रचनाएँ हैं। उनकी अब खाली इमारतें बची हैं, यन्त्र सब गायब हो चुके हैं। ये सूचित करती हैं कि हिन्दुओं का पुराना ज्योतिष का ज्ञान इस युग में भी बना हुआ था तथा उनमें नये ज्ञान को अपनाने की शक्ति भी सर्वथा लुप्त न हो गयी थी। जयसिंह स्वयम् बड़ा ज्योतिषी था; उसने ज्योतिष की अनेक नयी तालिकाएँ तैयार की थीं। जब उसे मालूम हुआ कि युरोप में ज्योतिष की नयी खोजें

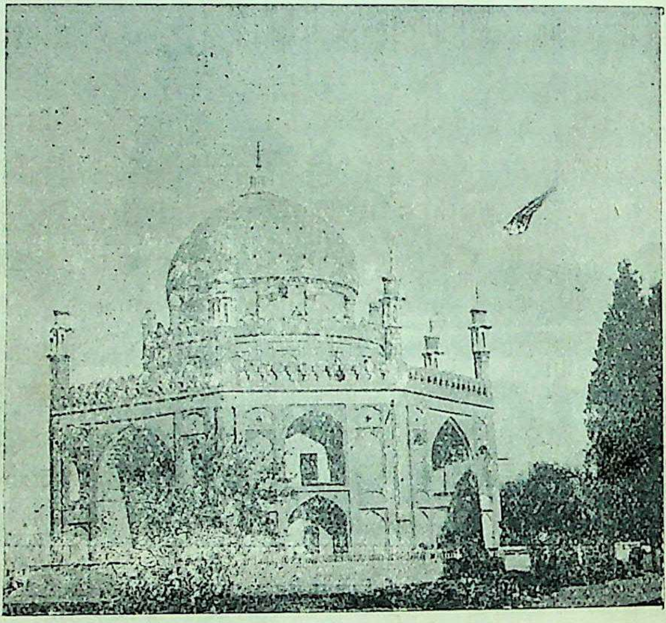

अहमदशाह अब्दाली का मकबरा, [फादर हेरस के सौजन्य से]

हुई हैं तो उसने बड़ा खर्च कर जर्मन ज्योतिषियों को बुलाया और उनकी तालिकाओं को जाँचा समझा।

§३. जनता का सुख-दुःख, आर्थिक तथा सामाजिक जीवन—अठारहवीं सदी के राजविप्लवों के बीच भी कृषक, कारीगर और व्यापारी जनता प्रायः खुशहाल और सुखी रही। परिवर्तन-काल में कुछ कष्ट ज़रूर होता था। पंजाब की सिक्ख मिसलें राज्य-संस्था का बड़ा अस्थिर नमूना थीं, तो भी उनके अधीन कृषक, शिल्पी और व्यापारी कितने खुशहाल थे, सो हम देख चुके हैं। अमृतसर जैसे व्यापार-केन्द्र का विकास उन्हीं के शासन में हुआ।

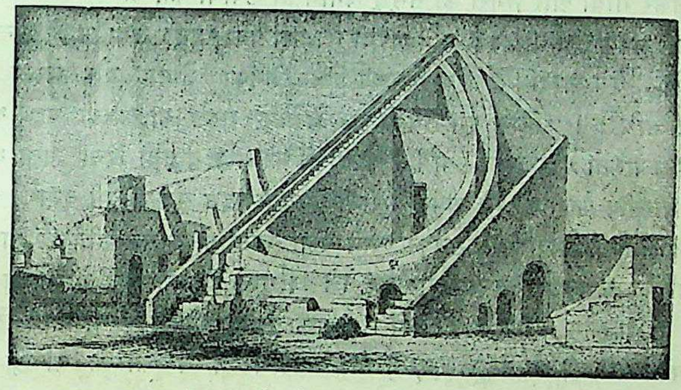

जन्तरमन्तर (=यन्त्रमन्दिर) दिल्ली का एक अंश

पठानों की अपने शत्रुओं के प्रति खूंख्वारी और दगाबाज़ी प्रसिद्ध है; तो भी रुहेलों की अपनी हिन्दू प्रजा उनके शासन में सुखी सुरक्षित और समृद्ध थी। कश्मीर के अफ़गान शासकों के विषय में यह बात नहीं कही जा सकती।

मराठा शासन के विषय में अनेक मत प्रचलित हैं। उन्नीसवीं शती के शुरू में जिन अँगरेज़ों ने मराठों को हरा कर दक्खिन और विन्ध्यमेखला में अँगरेजी शासन खड़ा किया, उनमें सर जौन मालकम से अधिक योग्य व्यक्ति कोई नहीं हुआ। उसके जीवन का मुख्य भाग महाराष्ट्र और मालवे में बीता। मालकम का कहना था कि उसने "सन् १८०३ में दक्खिनी मराठा ज़िलों को जैसा पाया उनसे अधिक धन-धान्य पूरित प्रदेश कभी कहीं नहीं देखे।" "पेशवा की राजधानी पूना बड़ी घनी और फूलती-फलती नगरी थी।" "मालवे में··मैंने आश्चर्य से देखा कि

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उज्जैन में व्यापारियों के बड़ी रकमों के लेन-देन बराबर चलते थे; ऊँची हैसियत और साख वाले साहूकार बड़ी समृद्ध दशा में थे; न केवल बड़ी तादाद में माल का आना-जाना बराबर जारी था, प्रत्युत वहाँ के बीमे के दफ्तरों ने, जो उस सारे इलाके में फैले हैं,...कभी अपना कारबार बन्द नहीं किया था।" "कृष्णा-तट के ज़िलों के समान कृषि और व्यापार की समृद्धि भारत के किसी और प्रान्त में न थी। मेरे विचार में इसके कारण थे—(एक तो) उनकी शासन-पद्धति जो कभी-कभी ज़्यादतियाँ करने के बावजूद भी नरम है···, (दूसरे) हिन्दुओं की कृषि के विषय में पूरी जानकारी और भक्ति; (तीसरे) हमारी अपेक्षा उनका शासन के कई पहलुओं को, खासकर गाँवों और नगरों को समृद्ध बनाने के उपायों को, अच्छा समझना,··· और सबसे बढ़कर जागीरदारों का अपनी जागीरों पर रहना तथा उन प्रान्तों का ऊँचे दर्जे के ऐसे आदमियों द्वारा शासन होना जिनका जीना और मरना उसी ज़मीन के साथ है।···किन्तु इन सब से भी बढ़कर समृद्ध का कारण यह था कि गाँवों की पंचायतों और अन्य स्थानीय संस्थाओं को सदा बढ़ावा दिया जाता था।"

भारतीय कारीगरों ने अपनी पुरानी योग्यता इस युग में भी बनाये रक्खी और यदि किसी नयी बात पर उनका ध्यान चला जाता तो वे उसे शीघ्र अपना लेते, बल्कि उससे भी अच्छा नमूना तैयार कर देते थे। सूरत के बन्दरगाह में जहाज़ बनते थे, उन्हें युरोपी लोग खरीद ले जाते थे। उधुआ नाला की लड़ाई में मीरकासिम ने अपने कारखाने की जो बन्दूकें बरती थीं, वे अँगरेजी बन्दूकों से अच्छी पायी गयी थीं। पर इस युग के भारतीय कारीगरों में प्रगति का भाव न था, और वह जागरूकता न थी कि वे दुनियाँ की प्रगति का पता रख सकें। अधिकांश कारीगर महाजनों के काबू में थे। वे उनसे अगाऊ रकम ले कर उसका हिसाब चुकाने को अपना तैयार माल देते रहते थे। महाजनों के इसी मार्ग से अँगरेज़ी ईस्ट इंडिया कम्पनी ने हमारे कारीगरों को अपने कब्जे में करके तबाह कर दिया। हमने देखा है कि सातवाहन और गुप्त युगों में कारीगरों की श्रेणियों की इतनी हैसियत थी कि राजा लोग अपनी स्थायी धरोहर उनके पास जमा करते थे*। लेकिन मध्य काल में उनकी शक्ति टूट गयी, और उनकी श्रेणियाँ पथरा कर जातें बन गयीं, जिनका काम केवल अपने सदस्यों पर तुच्छ और व्यर्थ के सामाजिक बन्धन लगाना रह गया। जैसे किसानों पर जागीरदारों ने अपना प्रभुत्व जमा लिया,

---

*पृ० १२५, १४७।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैसे ही कारीगरों पर महाजनों ने काबू कर लिया। यह परिवर्तन ठीक-ठीक कब और कैसे हुआ, इसकी खोज अभी तक नहीं हुई।

मराठों के उत्तर भारत जीतने से, उत्तर और दक्खिन के बीच आदान-प्रदान खूब बढ़ा। उत्तर भारत के अनेक रस्म-रिवाज और आराम-आसाइश के सामान दक्खिन में पहुँचे। संस्कृत के हस्त-लिखित ग्रन्थ बड़ी संख्या में उत्तर से दक्खिन में जाते रहे।

महाराष्ट्र और बुन्देलखंड ने इस युग में अनेक महान् स्त्रियाँ भी पैदा कीं। इस युग की प्रायः प्रत्येक मराठा और बुन्देला युवती को घुड़सवारी का अच्छा अभ्यास रहता था। लेकिन दूसरे प्रान्तों में स्त्रियों की हैसियत गिरी हुई थी। अधिक स्त्रियाँ रखना बड़प्पन का चिन्ह समझा जाता था। धार्मिक संशोधन और राजनीतिक पुनरुत्थान से हिन्दुओं की सामाजिक संकीर्णता कुछ कम ज़रूर हुई, तो भी बहुत कुछ बनी रही। इसी का यह फल है कि भारतीय हिन्दू और मुस्लिम के रोज़मर्रा के जीवन में आज भी एक अस्वाभाविक अन्तर बराबर बना हुआ है। इस युग का धार्मिक संशोधन इतना गहरा नहीं हुआ कि उस अन्तर को मिटा देता। इसका कारण हम अभी देखेंगे।

मराठों और बुन्देलों को एक बात का विशेष श्रेय है। महाराष्ट्र, चेदि, उड़ीसा और आन्ध्र की सीमा पर गोंडवाना में तथा महाराष्ट्र, गुजरात और मालवे के बीच खानदेश में जो जंगली जातियाँ थीं, उन्होंने उन्हें सभ्य बनाया। दक्खिनी गोंडवाना—नागपुर, चाँदा और भांडारा—में मराठी इसी युग में फैली और उत्तरी गोंडवाना—जबलपुर तथा मंडला—बुन्देली भाषा के क्षेत्र में इसी युग में आ गया।

§४. ज्ञान-जागृति का अभाव—भारतवर्ष का यह पुनरुत्थान अन्त में सफल न हुआ। मराठे और सिक्ख अँगरेज़ों के मुकाबले में न ठहर सके। इसके दो कारण हमने देखे हैं। एक तो यह कि जल और स्थल के शस्त्रास्त्रों और समर-कला में भारतवासी युरोपियनों से पिछड़ गये थे। दूसरे, हमारा राष्ट्रीय संगठन अँगरेज़ों के मुकाबले में अत्यन्त शिथिल और अशक्त था। राष्ट्रीयता का भाव महाराष्ट्र में काफ़ी था। तो भी महाराष्ट्र की राष्ट्रीयता इतनी गहरी न थी कि वह मराठों को अपने समूचे राष्ट्र-संगठन को विचार पूर्वक ऐसा ढाल लेने को प्रेरित करती कि जिससे राष्ट्र का अधिकतम हित हो सकता। अँगरेज़ों में एक योग्य नेता के हटने पर दूसरा उसका स्थान झट ले लेता था। इधर यह दशा थी कि बाजीराव

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

२य सा पतित व्यक्ति केवल इसलिए राष्ट्र का मुखिया बन गया कि वह बाजीराव १म का पोता था। अच्छा राष्ट्र-सगठन वह है जहाँ राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता का अधिकतम विकास करने का अवसर मिले और उसकी योग्यता से राष्ट्र को अधिकतम लाभ पहुँच सके।

लेकिन, हमारे पुरखों ने अपनी इन त्रुटियों को पहचान कर सुधार क्यों नहीं किया? अकबर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब, शिवाजी, बाजीराव, बालाजीराव जैसे हमारे योग्य शासक बराबर यह देखते रहे कि पच्छिमी लोग जहाज़रानी में, तोपों-बन्दूकों को बनाने और बरतन में तथा समरकला में हमसे आगे निकलते जाते हैं; किन्तु उनमें से किसी को भी यह न सूझा कि पच्छिम के उस ज्ञान को प्राप्त कर लें। अठारहवीं शती के शुरू में कोल्हापुर के अमात्य रामचन्द्र पन्त ने "आज्ञापत्र" नामक राजनीति का एक ग्रन्थ लिखा। उसमें उसने यह बात तो दर्ज की कि युरोपी लोग जहाज़रानी में और तोप-बन्दूक गोला-बारूद बनाने में दक्ष हैं, पर न तो उसने यह सोचा कि वे क्यों इन बातों में बढ़े हुए हैं और न उसे यह सूझा कि उनसे ये शिल्प हमें ले लेने चाहिएँ। उसे केवल यह सूझा कि वे लोग इन शिल्पों के कारण खतरनाक हैं, उन्हें भारत में बसने न देना चाहिए।

औरंगज़ेब को युरोपी समुद्री डाकुओं की समस्या से कितना परेशान होना पड़ा! उस जैसा योग्य और शक्त सम्राट अपना ध्यान उस समस्या को जड़ से सुलझाने में लगा देता तो भारतवर्ष की वह कमजोरी शायद उसके शासन-काल में ही दूर हो जाती। अन्तिम संकट आ जाने पर मीरकासिम, हैदरअली और महादजी शिन्दे ने जब पाश्चात्य युद्ध-शैली अपनायी भी तो केवल काम चलाऊ ढंग से। उन्होंने युरोपी अफ़सर ज़रूर रख लिये; परन्तु ऐसा उपाय उन्होंने न किया कि अगर वे अफ़सर कभी धोखा दें तब हम स्वयम् ज्ञानपूर्वक उनका स्थान ले सकें। नाना फडनीस को अँगरेज़ों की मुम्बई और कलकत्ता कौन्सिलों की गुप्ततम कार्रवाइयों का पता तुरत मिल जाता था; उनकी पूरी कार्य्यप्रणाली उसकी आँखों के सामने रहती थी; तो भी नाना को यह कभी न सूझा कि महाराष्ट्र में भी उसी नमूने पर बाराभाई-समिति को एक सुसंगठित और स्थिर संस्था बना दिया जाय। गोवा में पुर्त्तगाली १६वीं सदी से पुस्तकें छापने लगे थे। यदि मराठों का ध्यान उनकी मुद्रणकला को अपनाने की ओर चला जाता तो उनके देश में भी कैसी जागृति हो सकती थी! बसई जीत लेने पर

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

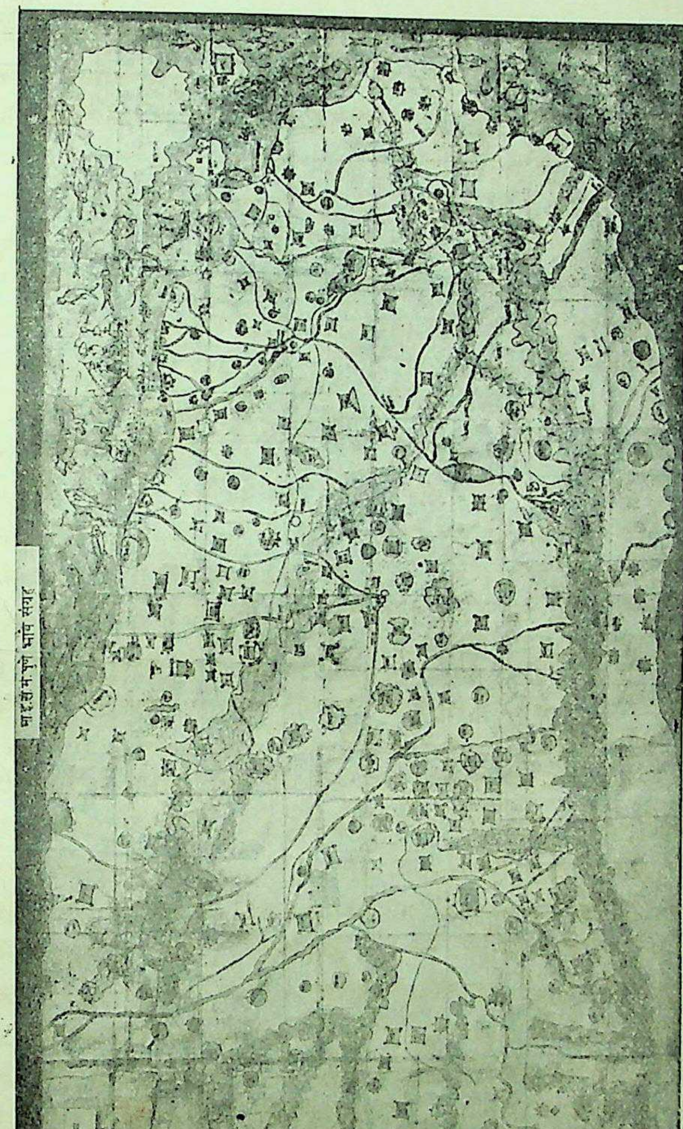
भा.इ.सं.मं. पुणे भांग संग्रह

पेशवाई जमाने का दक्खिन भारत का नक्शा [भा० इ० सं० मं०]

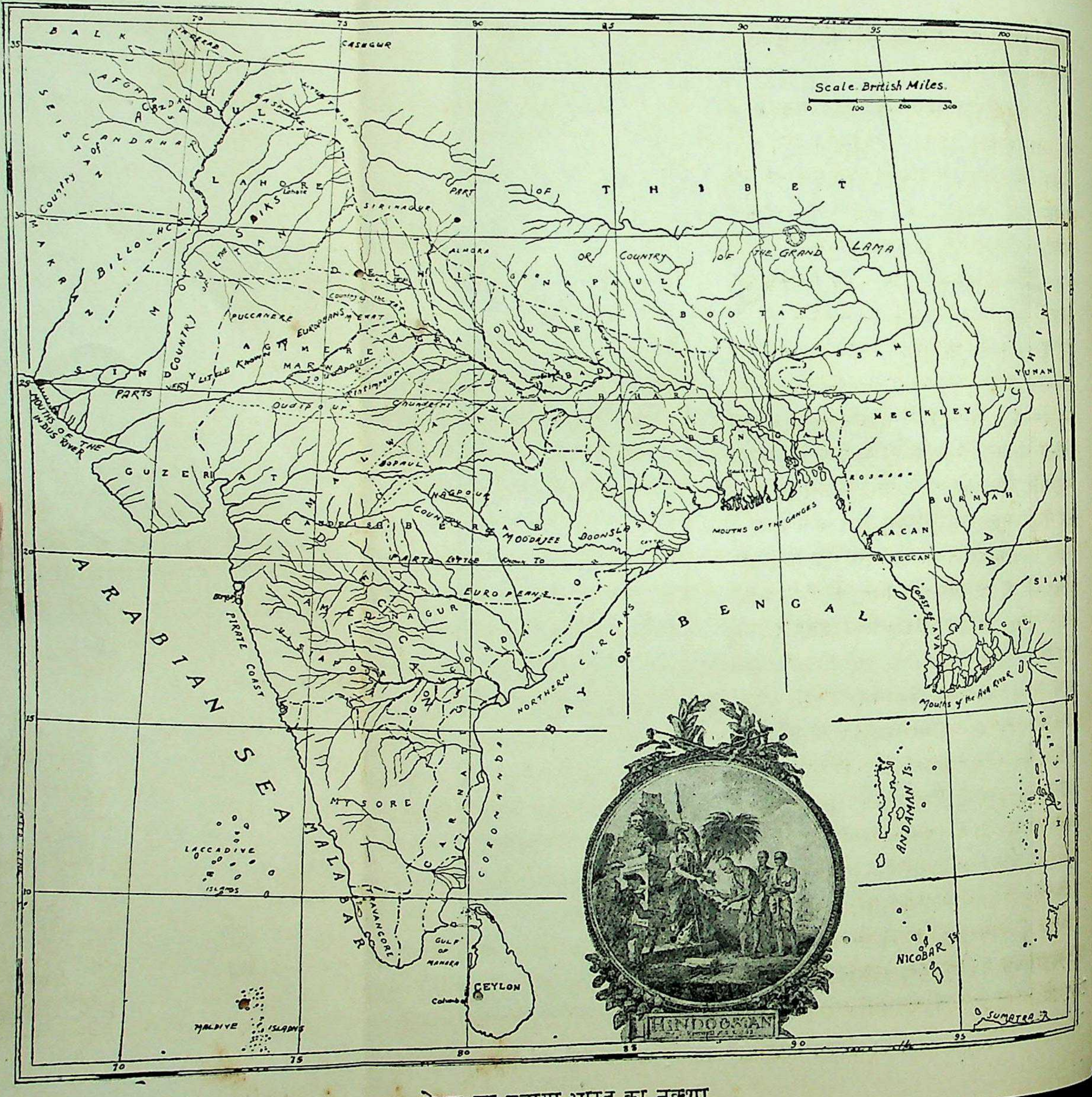
Scale British Miles.
0 100 200 300
BALK
INDERAB
CASHGUR
AFGHANS
CABUL
CASHMERE
LITTLE TIBET
SEISTAN
Country of CANDAHAR
LAHORE
Lahore
PART OF THIBET
SIRINAGUR
MOULTAN
BIAS
BILLOOCHES
MAKRAN
DELHI
ALMORA
OR COUNTRY OF THE GRAND LAMA
NAPAUL
BOOTAN
ASSAM
CHINA
YUNAN
Country of the Jats
PUCCANERE
MEWAT
AGRA
AGIMERE
SIND COUNTRY
PARTS VERY LITTLE KNOWN TO EUROPEANS
MARWAR
JOUDPOUR
Rantimpour
OUDIPOUR
Chunderi
OUDE
ALLAHABAD
BAHAR
BENGAL
MECKLEY
ROSHAAN
BURMAH
ARACAN
AVA
SIAM
MOUTHS OF THE INDUS RIVER
GUZERAT
MALWA
BOPAUL
NAGPOUR
CANDEISH
BERAR
COUNTRY
MOODAJEE
BOONSLA'S
CUTTACK
MOUTHS OF THE GANGES
RECCAN
PARTS LITTLE KNOWN TO EUROPEANS
DECCAN
AMEDNAGUR
BAY OF BENGAL
COAST OF AVA
PEGU
Mouths of the AVA RIVER
BOMBAY
PIRATE COAST
VISIAPOUR
GOLCONDA
NORTHERN CIRCARS
ARABIAN SEA
MALABAR
MYSORE
CARNATIC
COROMANDEL
LACCADIVE ISLANDS
TRAVANCORE
GULF OF MANARA
CEYLON
Colombo
MALDIVE ISLANDS
ANDAMAN IS.
NICOBAR IS.
SUMATRA
HINDOOSTAN
70
75
80
85
90
95
100
35
30
25
20
15
10

रेनल का बनाया भारत का नक़्शा

पुर्त्तगालियों के जहाज़ी कारखाने मराठों के हाथ आ गये; किन्तु उनका उपयोग उन्होंने नहीं किया।

इन उदाहरणों से स्पष्ट सिद्ध होता है कि १६वीं सदी तक हमारे पुरखों में जागरूकता और जिज्ञासा न थी; उनके ज्ञान-नेत्र बन्द थे; वे मानो घोर मोह-निद्रा में थे। वे अपने बँधे हुए मार्ग पर ही चले जा रहे थे; किन्तु अपने चारों तरफ़ की दुनिया की प्रगति के विषय में कुछ भी सतर्क न रहते थे। और तो और, उनके अपने देश के विषय में भी पच्छिमीं लोगों की जिज्ञासा उनसे अधिक थी। 'हिन्दुस्तानी' (उर्दू) का सबसे पहला व्याकरण किसी भारतवासी ने नहीं, प्रत्युत काटलर नामी एक ओलन्देज़ ने लिखा था। यह ओलन्देज़ दूतों के साथ बहादुरशाह के दरबार में लाहौर आया था (१७१२ ई०)। पेशवाई ज़माने का दक्खिन भारत का मराठा नक्शा मौजूद है; उसी शताब्दी का रेनल नामक अँगरेज़ का ई० इं० कम्पनी की प्रेरणा से तैयार किया हुआ नक्शा भी है। इन दोनों की तुलना से साफ़ मालूम हो जायगा कि भारतवर्ष के विषय में मराठों का ज्ञान कैसा था और अँगरेज़ों का कैसा। पेशवा बालाजीराव ने अपनी परिस्थिति को न समझ कर कैसी भूलें कीं, सो हम देख चुके हैं।

एक-दो उदाहरण इस मोह-निद्रा के अपवाद-रूप भी हैं। सन् १७५६ में अँगरेज़ों के विजयदुर्ग छीनने के समय हरि दामोदर नामक व्यक्ति वहाँ उपस्थित था। उसी वर्ष वह झाँसी का सूबेदार नियत हो कर आया और १७६५ ई० में अपनी मृत्यु के समय तक उस पद पर रहा! उसका बेटा रघुनाथ बराबर उसके साथ था। पानीपत के बाद मल्हार होल्कर के नेतृत्व में उत्तर भारत में मराठा साम्राज्य को पुनः स्थापित करने में इन पिता-पुत्र ने विशेष भाग लिया। सन् १७६५ से ९४ ई० तक रघुनाथ हरि झाँसी का सूबेदार रहा। इलाहाबाद के अँगरेज़ों से उसे प्रायः वास्ता पड़ता था। रघुनाथ ने यह समझ लिया था कि पच्छिम के नये ज्ञान को अपनाये बिना भारतवासियों का बचाव नहीं है। इस विचार से उसने अँगरेज़ी सीखी और अँगरेज़ी विश्वकोष (इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटानिका) का दूसरा संस्करण, जो तब प्रचलित था, मँगाया। उसके द्वारा उसने भौतिकी (फ़िज़िक्स), रसायन (केमिस्ट्री) आदि विज्ञान पढ़े। उसने झाँसी में एक विशाल पुस्तकालय, परीक्षणालय (लैबोरेटरी) और वेधशाला स्थापित कीं। किन्तु रघुनाथ हरि उस युग के भारत में एक अपवाद-रूप व्यक्ति था। काश कि अठारहवीं सदी के भारतीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिक्षित समाज में साधारण रूप से वह जागृति हो गयी होती जो रघुनाथ हरि के विचार में हुई थी !

१७वीं-१८वीं सदी के राजनीतिक पुनरुत्थान में भारतवासियों की कर्म-चेष्टा ही पुनर्जीवित हुई; ज्ञान और जिज्ञासा पुनर्जीवित नहीं हुई। नानक ने पंजाबियों को पाखंड और ढोंग के बदले शुद्ध भक्ति सिखायी थी; अर्जुन, गोविन्दसिंह और बन्दा ने भक्ति से सरल बने हृदयों में कर्मवीरता जगा दी; पर ज्ञान की ज्योति ने उन सच्चे और सचेष्ट सिक्खों को जागरूक न बनाया। १५वीं-१६वीं सदी के धार्मिक संशोधन ने मध्य काल की हिन्दुओं की शिथिलता और निष्क्रियता बहुत कुछ दूर की; ढोंग-ढकोसले को बहुत कुछ हटा कर सामाजिक अन्यायों को दूर किया; किन्तु वह सुधार की लहर इतनी गहरी न थी कि ज्ञान पाने के लिए बेचैनी पैदा करती और प्रत्येक वस्तु को विचारपूर्वक समझने और सुधारने की प्रवृत्ति भी जगा देती। १५वीं-१६वीं सदी की सुधार की लहर प्राचीन भारत के ज्ञान और जीवन का पुनरुद्धार नहीं कर सकी। वह पुनरुद्धार आज युरोपियन आर्य जातियों के संसर्ग से हो रहा है।

हम अचरज करते हैं कि औरंगज़ेब और बाजीराव जैसे महापुरुषों ने जागरूकता क्यों न दिखायी ? हमारा यह अचरज अपनी आज की स्थिति पर विचार करने से दूर हो सकता है। क्या आज सवा सौ बरस के ब्रिटिश शासन के बाद भी हममें सच्ची जिज्ञासा जाग गयी है ? हम आवश्यकता से बाधित हो कर आज अँगरेज़ी सीख लेते हैं; पर क्या संसार के उस ज्ञान को हमने आज भी अपनाने का यत्न किया है जो सारी शक्ति का स्रोत है ?

§५. इंग्लैंड में व्यावसायिक क्रान्ति—और हम लोग जब मोह-निद्रा में पड़े थे, तभी युरोप वाले एक और मैदान मारते जा रहे थे। वे अपनी शिल्प-व्यवसाय की प्रक्रियाओं में विचारपूर्वक सुधार और उन्नति करने लगे थे जिससे वहाँ—सबसे पहले इंग्लैंड में और फिर अन्य देशों में—एक "व्यावसायिक क्रान्ति" हो गयी।

युरोप में बहुत से शिल्प मध्य काल में भारत, चीन आदि पूरबी देशों से ही गये थे। चर्खा वहाँ मध्य काल में पहुँच चुका था। इटली वाले चीन से रेशम का कीड़ा चुरा ले गये थे। इंग्लैंड में तो सत्रहवीं सदी में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने ही सूती कपड़ा पहनने का प्रचार किया। तब तक वहाँ ऊनी कपड़ा ही बनता था। सूती कपड़े के व्यवसाय का दुनिया भर का केन्द्र ५वीं शताब्दी ई० पू० से १८वीं शताब्दी ई० तक भारतवर्ष ही था। लेकिन हम लोग जहाँ अपनी परम्परागत

अवस्था से सन्तुष्ट बैठे थे, वहाँ इंग्लैंड की प्रजा और राष्ट्र के नेताओं को अपने शिल्पों को आगे बढ़ाने का बराबर ध्यान था।

१६वीं सदी में ही युरोप में पैर से चलने वाला एक चरखा चल पड़ा था। सन् १६०७ में इटली में रेशम का डोरा बटने और अटेरने के लिए पनचक्की का प्रयोग होने लगा था। भारतवर्ष की छींट इंग्लैंड में बहुत पसन्द की जाती थी। पर ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने अपने ऊनी कपड़े के कारबार को बचाने के लिए १७०० और १७२१ ई० में भारतीय छींट का इंग्लैंड में लाना और पहनना या बरतना भी रोक दिया। ई० इं० कम्पनी तब वह कपड़ा युरोप के दूसरे देशों में ले जाती थी। एक जर्मन अर्थशास्त्री के शब्दों में "भारत के नफ़ीस सस्ते कपड़े इंग्लैंड खुद नहीं लेता, वह अपने मोटे मँहगे से सन्तोष कर लेता है। पर युरोपी राष्ट्रों को वह खुशी से सस्ता नफ़ीस माल देता है।"

सन् १७३३ में जौन के नामक अँगरेज़ ने "उड़ती ढरकी" (फ़्लाईशटल) की ईजाद की, जिससे ताने में बाना जल्दी डाला जाने लगा और कपड़े की उपज दूनी होने लगी। सन् १७६७ में हार्ग्रीव्स ने एक ऐसा चरखा निकाला जिसमें आठ तकुए एक ही पहिये से चलते थे और चिमटियों से पूनियाँ पकड़ी जातीं थीं जिन्हें एक ही आदमी सँभाल सकता था। इस चरखे को उसने अपनी स्त्री के नाम से "जेनी" कहा। बाद में उसने ऐसी जेनी बनायी जो १०० धागे एक साथ निकाल सकती थी। १७६९ ई० में आर्कराइट नामक नाई ने कातने का एक नया यन्त्र बनवाया जिसमें बेलनों के बीच से रेशे निकलते और घूमते तकुओं द्वारा काते जाते थे। यह "बेलन-ढाँचा" पनचक्की से चलता था। १७७९ ई० में क्राम्पटन ने जेनी और बेलन-ढाँचे को मिला कर एक नया यन्त्र बनाया जिसे उसने मिश्रित होने के कारण "खच्चर" (म्यूल) कहा। इन ईजादों से इंग्लैंड में इतना सूत पैदा होने लगा कि उसे हाथ के करघे पूरा बुन न पाते थे। उस दशा में १७८५ ई० में कार्टराइट ने शक्ति-करघा (पावर-लूम) निकाला जो पहले घोड़ों से चलाया जाता था, पर १७८९ ई० से भाप की शक्ति से चलने लगा। इसी अरसे में बेलने, धुनने, रँगने, छापने आदि के भी नये यन्त्र और तरीके निकल रहे थे। इनके कारण १८वीं सदी के अन्त तक इंग्लैंड में कपड़े का एक नया व्यवसाय उठ खड़ा हुआ। पलाशी के बाद से भारत की लूट की जो पूँजी ब्रिटेन पहुँच रही थी, उससे इन ईजादों को पनपने में बड़ी मदद मिली।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

किन्तु इन ईजादों और इस मदद के बावजूद भी इंग्लैंड का यह व्यवसाय भारत के अढाई हज़ार वर्ष पुराने व्यवसाय का मुकाबला न कर सकता था। इस दशा में इंग्लैंड ने अपनी नयी राजनीतिक शक्ति से लाभ उठाया। हम देख चुके हैं कि पलाशी के बाद बंगाल-बिहार के जुलाहों पर कैसे जुल्म ढाये गये तथा रेशमी कपड़ा बुनने का काम कैसे ज़बरदस्ती रोका गया। सन् १७९३ में मान्चेस्टर और ग्लास्गो के नये व्यवसायियों ने पार्लियामेन्ट द्वारा यह कोशिश की कि भारत से कुल कपड़े का आयात बन्द किया जाय तथा कातने-बुनने के नये यन्त्र भारत में न जाने पायँ। लेकिन भारत में इन यन्त्रों की नकल करने का होश ही किसे था? और यदि होता तो क्या भारत के बड़े भाग में, जो तब तक मराठों और सिक्खों के अधीन था, अँगरेज़ उन यन्त्रों का खड़ा होना रोक सकते थे?

कपड़े के शिल्प के साथ-साथ धात-शिल्प में तथा प्रकृति की शक्तियों से काम लेने के तरीकों में युरोप वाले जो उन्नति कर रहे थे, वह भी उल्लेखनीय है।

भाप की शक्ति से काम लेने का विचार बहुत पुराना था। सन् १६०१ में पोर्ता नामक इटालियन ने एक भद्दा सा भाप-ऐंजिन बना डाला था। १६२० ई० में एक और इटालियन ब्राँका ने उसमें सुधार किया। सत्रहवीं सदी के उत्तरार्द्ध में कई अँगरेज़ों ने उसमें और उन्नति की। अन्त में १७१२ ई० में न्यूकोमन नामी अँगरेज़ ने एक ऐसा भाप-ऐंजिन बना दिखाया जो खानों के भीतर से पानी उठाने वाले पिचकारों (पम्पों) को बखूबी चला सकता था।

लोहे की धात से लोहा निकालने की भट्ठियों में पनचक्की द्वारा हथौड़े और धौंकनियाँ चलाने का तरीका जर्मनी में १७वीं सदी में ही जारी हो गया था। इंग्लैंड में तब खानों से पत्थर-कोयला भी निकाला जाता था। १६०९ ई० में डार्बी नामक अँगरेज़ और उसके बेटे ने जले हुए पत्थर-कोयले के 'कोक' के साथ जला कर लोहा साफ़ कर दिखाया। छोटे डार्बी ने अपनी भट्टी में न्यूकोमन-ऐंजिन का प्रयोग किया। इसके बाद १७६० ई० में स्मीटन नामक अँगरेज़ ने चमड़े की धौंकनी के बजाय चार बेलनों वाला हवा का पिचकारा ईजाद किया, और १७६९ ई० में जेम्स वाट ने नया भाप-ऐंजिन तैयार कर दिखाया।

प्रायः इसी समय गाल्वानी और वोल्ता नामक इटालियन बिजली की शक्ति पर परीक्षण कर रहे थे।

आवाजाही के साधनों में भी उन्नति की जा रही थी। खानों से बन्दरगाहों तक कोयला-गाड़ियों को खींचने के लिए तख्तों से मढ़ी सड़कें इंग्लैंड में १७वीं शती में ही बन चुकी थीं। सन् १७७६ में उनके किनारे पर लोहे की पटरी (रेल) गाड़ देने का तरीका निकला। तब से ऐंजिनों से गाड़ी खींचने की बात लोग सोचने लगे। १७८१ ई० में जेम्स वाट ने एक ऐसा तरीका निकाला जिससे ऐंजिन के नल के भीतर चकिया (पिस्टन) की गति, जो ऊपर नीचे ही होती थी, चक्करदार भी हो सके। इससे अनेक यन्त्रों का ऐंजिन से चलना सम्भव हो गया। १७८४ ई० में कोर्ट ने लोहा कमाने की नयी प्रक्रियाएँ निकालीं, और दस बरस बाद मौडस्ले ने नयी खराद निकाली जिससे यन्त्रों के औज़ार शुद्धता से बनने लगे। १८०० ई० में अकेले इंग्लैंड की लोहे और कोयले की उपज दुनियाँ के और सब देशों के बराबर थी। भारत में भी ईस्ट इंडिया कम्पनी लोहे का माल काफ़ी लाती थी; यहाँ तक कि मराठी कागज़ों में हमें लोहे की कील के लिए 'इंग्रज' शब्द मिलता है।

यह व्यावसायिक क्रान्ति उन्नीसवीं शती में भी जारी रही। १८३० ई० तक बहुत सी बड़ी-बड़ी ईजादें हो गयीं। सन् १८०० तक कपड़े और धात-शिल्प की नयी ईजादों में सम्बन्ध जुड़ गया, और चरखे और करघे सब लोहे के बनने लगे और भाप से चलने लगे।

युरोपियन लोग जब यों शिल्प-व्यवसाय के नये तरीके निकाल रहे थे, तब भारतवासी अपने पुराने रास्ते पर ही चले जा रहे थे!

ग्यारहवाँ प्रकरण

अँगरेज़ी राज

(१७९८—)

अध्याय १

भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य की स्थापना

(सन् १७९८—१८२७ ई०)

§१. ज़मानशाह और नैपोलियन का आतंक—तैमूरशाह अब्दाली की मृत्यु पर उसका बेटा ज़मानशाह काबुली की गद्दी पर बैठा (१७९३ ई०)। रुहेलखंड के एक सरदार और अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला ने उससे प्रार्थना की कि भारत पर चढ़ाई कर उन्हें अँगरेज़ों से छुटकारा दिलावे। महाराजा शिन्दे और ज़मानशाह के बीच भी गुप्त रूप से दूतों का विनिमय हुआ। ज़मानशाह की चढ़ाई की अफ़वाह से उत्तर भारत में हलचल मच गयी। सर जान शोर ने अवध राज्य का कुछ हिस्सा अपने सीधे शासन में ले कर अनूपशहर में ब्रिटिश छावनी डाल दी (१७९८ ई०)।

एक और शत्रु भी अब अँगरेज़ों के सिर पर मँडरा रहा था। हम देख चुके हैं कि भारत में फ़्रान्सीसियों की विफलता का कारण था उनके अपने देश का शासन सुशृंखल न होना। सन् १७९३ ई० में फ़्रान्स में राज्यक्रान्ति हुई। अपने स्वेच्छाचारी राजा को फाँसी दे कर फ़्रान्स वालों ने मनुष्य-मात्र की स्वाधीनता और समानता की घोषणा की। उस समय युरोप के कई राज्यों ने मिल कर फ़्रान्स के उस शिशु प्रजातन्त्र को कुचलना चाहा। अकेले फ़्रान्स ने उन सब को हरा दिया। फ़्रान्सीसी राष्ट्र समिति की तरफ़ से नैपोलियन बोनापार्त नामक युवक सेनापति ने मिस्र पर चढ़ाई की (मई १७९८ ई०)। मिस्र तब तक कुस्तुन्तुनिया के तुर्क साम्राज्य में था। नैपोलियन ने उसकी सेना को आसानी से हरा दिया।

मिस्र से .फ्रान्सीसी भारतीय समुद्र की तरफ़ बढ़ सकते थे। नेल्सन नामक अँगरेज़ नाविक ने नील नदी के मुहाने में .फ्रान्सीसी बेड़े को जला दिया। तो भी जब तक .फ्रान्सीसी सेना मिस्र में बनी रही, तब तक अँगरेज़ों को चैन न था।

§२. हैदराबाद और मैसूर में ब्रिटिश प्रभुता को स्थापना—जिन भारतीय राज्यों ने .फ्रान्सीसी अफ़सर रख कर नये ढंग की सेना सधा ली थी, उनकी तरफ़ से भी अँगरेज़ सतर्क थे। शिन्दे और टीपू उनमें प्रमुख थे; होल्कर और निज़ाम ने भी उनका अनुसरण किया था। इन सेनाओं से अँगरेज़ों को कोई डर न था। प्रत्युत जब महादजी शिन्दे ने पहले पहल युरोपियन ढंग की सेना तैयार करनी शुरू की, तब वारन हेस्टिंग्स ने कहा था कि यही मराठों के पतन का कारण होगी। कारण स्पष्ट था। इन सेनाओं को नये ढंग की कवायद तो सिखायी गयी थी, पर इनका संगठन पुराना सामन्त-प्रणाली वाला ही था। सैनिकों की भरती सेनापतियों के हाथों में ही सौंप दी जाती और उनके खर्च के लिए उन्हें बड़ी-बड़ी जागीरें दे दी जाती थीं। दूसरे, इस नयी युद्ध-कला को मराठों ने इस प्रकार हृदयंगत नहीं किया कि वे स्वयम् अपनी सेना का संचालन कर सकें। इस काम में वे युरोपियन अफ़सरों पर ही निर्भर रहते, जो उनकी सामन्त-शासन-प्रणाली के अनुसार अब राज्य के बड़े-बड़े इलाकों के शासक भी थे। ये विदेशी सामन्त यदि कभी विश्वासघात करें तो मराठों का सेना-यन्त्र और शासन-यन्त्र बिलकुल बेकार हो सकता था। इसी से सर टामस मुनरो ने मराठा सेनाओं के विषय में कहा था कि "उन्हें एक-सी वर्दी पहना कर कवायद क्या करायी जाती है, मानो सजा कर कुर्बानी के लिए ले जाया जाता है!" तो भी जब नैपोलियन मिस्र में था, भारत में .फ्रान्सीसी अफ़सरों के अधीन बड़ी-बड़ी सेनाओं का होना खतरनाक था।

इस समय लार्ड वेल्ज़ली ब्रिटिश भारत का मुख्य शासक बन कर आया। भारत में .फ्रान्सीसी सेनाओं को तोड़ देना उसका मुख्य ध्येय था। उसका पहला लक्ष्य निज़ाम था। हैदराबाद में किर्कपैट्रिक और मालकम नामक अँगरेज़ दूतों ने बड़ी दक्षता से निज़ाम के वज़ीर से रेमों की सेना की छोटी-छोटी टुकड़ियाँ, विसर्जित करवा दीं। उधर मद्रास से ब्रिटिश सेना चुपचाप हैदराबाद की सीमा पर आ गयी। तब निज़ाम को एकाएक हुक्म दिया गया कि वह बची-खुची फ़्रान्सीसी सेना को तोड़ दे और उसके बदले अवध के नवाब की तरह ब्रिटिश "आश्रित" सेना को अपने राज्य में अपने खर्च पर रख ले। निज़ाम और उसका वज़ीर यह सुन

कर हक्के-बक्के रह गये, पर उन्हें ब्रिटिश सेना रखना स्वीकार करना पड़ा (१-६-१७६८ ई०)।

निज़ाम के काबू में आते ही लार्ड वेल्ज़ली ने टीपू के खिलाफ़ युद्ध-घोषणा कर दी। उसके भाई आर्थर वेल्ज़ली और जनरल हैरिस ने पूरबी घाटों से तथा मुम्बई की सेना ने पच्छिमी घाटों से मैसूर में प्रवेश किया। मलवल्ली पर हैरिस ने टीपू को हराया और फिर उसे श्रीरंगपट्टम् में घेर लिया। आगे क्या हुआ, सो कहा जा चुका है।

मैसूर-युद्ध के समय वेल्ज़ली को बराबर डर बना हुआ था कि कहीं शिन्दे टीपू की मदद न करे। महादजी शिन्दे के पूना आने के समय से ही अँगरेज़ सशंक थे, और शिन्दे का पूना में रहना ही उन्हें अखरता था। कोलब्रुक नामक दूत को नागपुर भेजा गया कि वह बराड के राजा को टीपू और शिन्दे के खिलाफ़ भड़का कर निज़ाम और अँगरेज़ों के गुट्ट में मिला दे। तुकोजी होल्कर का तीसरा बेटा जसवन्तराव तब नागपुर में शरणार्थी था। उसे उभाड़ने में कोलब्रुक कामयाब हुआ।

§३. ज़मानशाह की चढ़ाई—ज़मानशाह सन् १७६६ ई० के अन्त में लाहौर तक आया था; किन्तु पीछे अपने भाई महमूद की करतूतों के कारण उसे शीघ्र लौटना पड़ा था। उसकी रोक-थाम के लिए वेल्ज़ली ने अब ईरान को अफ़गानिस्तान के विरुद्ध उभाड़ने की नीति पकड़ी। मुम्बई से अँगरेज़ों का एक कारिन्दा बुशहर भेजा गया। उसने यह कह कर शाह को उकसाया कि सुन्नी अफ़गानों ने लाहौर में शियों पर बड़े ज़ुल्म किये हैं। सन् १७६८ के अन्त में ज़मान फिर लाहौर आया। इस बार महमूद को ईरान से मदद मिल गयी। जिस चड़तसिंह ने गुजरांवाला में पहले-पहल ओबेदखाँ का मुकाबला किया था, उसके पोते रणजीतसिंह को लाहौर का राजा नियुक्त कर ज़मानशाह लौट गया। इसके बाद मालकम को ईरान भेजा गया। उसे यह आदेश था कि ज़मानशाह की शक्ति का ठीक पता लगावे और उसके निर्वासित भाइयों से मेल-जोल पैदा करे।

भारतवर्ष में जो लोग ज़मानशाह की चढ़ाई से आशाएँ लगाये या घबड़ाये हुए थे, उनमें से कोई भी सिक्खों की शक्ति को पहचान न पाया था। यदि ज़मान को पीछे की चिन्ता न भी होती तो भी अब वह पंजाब को लाँघ कर ठेठ हिन्दुस्तान तक न पहुँच सकता था। उसके लौट जाने पर वेल्ज़ली का ध्यान सिक्खों की

तरफ़ गया और शिन्दे के दरबार के अँगरेज़ एजेन्ट ने एक गुप्त दूत सिक्ख सरदारों के पास भेजा।

उधर नैपोलियन भी सन् १७९९ ई० तक मिस्र से फ़्रान्स पहुँच कर फ़्रान्स का अधिनायक बन गया था। सन् १८०० में एक भारतीय फ़ौज मिस्र भेजी गयी। लाल सागर से उतर कर यह भूमध्य सागर तक पहुँची, पर उससे पहले फ़्रान्सीसी सेना आत्म-समर्पण कर लौट चुकी थी।

§४. तामिलनाड और रुहेलखंड पर ब्रिटिश दख़ल—यों अढ़ाई साल के भीतर लार्ड वेल्ज़ली ने अफ़गानों और फ़्रान्सीसियों के आतंक को दूर कर अँगरेज़ों को भारत की प्रमुख शक्ति बना दिया। अब उसने जीर्ण राज्यों को मिटा कर अँगरेज़ी इलाके को बढ़ाना शुरू किया। सन् १७९९ ई० में तांजोर के राजा को पेन्शन दे कर उसका इलाका ले लिया। सूरत का किला एक "नवाब" के हाथ में था जो अँगरेज़ों का रक्षित था। उसे भी अब पेन्शन दे कर अलग किया गया। निज़ाम ने दो मैसूर-युद्धों में तुंगभद्रा के दक्खिन के जो ज़िले पाये थे, वे उसने ब्रिटिश फ़ौज के खर्चे की रकम के बदले में दे दिये। तामिलनाड का बूढ़ा नवाब मुहम्मदअली सन् १७९५ में मर चुका था। सन् १८०१ में उसके राज्य पर अँगरेज़ों ने दख़ल कर लिया। मुहम्मदअली के गोरे उत्तमर्णों ने तब २० करोड़ रुपये के नये कर्जों का दावा पेश किया। अब इन दावों की जाँच की गयी तो १ करोड़ ३४ लाख के सिवाय सब फ़र्ज़ी निकले। इसी साल लार्ड वेल्ज़ली ने अवध के नवाब की ब्रिटिश फ़ौज की "सहायता" की रकम बढ़ा दी और उससे रुहेलखंड और फ़र्रुखाबाद के इलाके लेकर उनका शासन अपने भाई हैनरी वेल्ज़ली को सौंप दिया।

§५. गायकवाड़ और पेशवा का ब्रिटिश रक्षा में आना—वेल्ज़ली ने मराठा संघ में अपनी नीति का जो बीज बोया था, वह अब फल लाने लगा। सन् १८०० में गोविन्दराव गायकवाड़ के मरने पर उसका बेटा आनन्दराव बड़ोदा की गद्दी पर बैठा। वह कमज़ोर दिमाग का था। अपने राज्य में अपनी रक्षा के लिए उसने ब्रिटिश सेना बुला कर रख ली (मार्च १८०२ ई०)।

पेशवा, शिन्दे और भोंसले के दरबारों के ब्रिटिश दूत भी उन्हें एक दूसरे का डर दिखा कर ब्रिटिश सेना रख लेने को बराबर उकसा रहे थे। अन्त में पेशवा अँगरेज़ों की "आश्रित" सेना रखने पर राज़ी हो गया, लेकिन इस शर्त पर कि वह

कम्पनी के ही इलाके में रहेगी और पेशवा जब चाहे उसे बुला सकेगा। "वह आसन्न विनाश को देखे बिना इससे अधिक मानने वाला न था"। वह विनाश भी शीघ्र उपस्थित हो गया! तुकोजी होल्कर के बेटे विठोजी होल्कर ने कोल्हापुर में शरण ले कर उपद्रव किया। वह पकड़ा गया और पेशवा के हुक्म से क्रूरतापूर्वक मारा गया। जसवन्तराव होल्कर ने तब पूना पर चढ़ाई की। दौलतराव शिन्दे उत्तर भारत जा चुका था। होल्कर ने उसकी बची-खुची फ़ौज और पेशवा की फ़ौज को हरा दिया। पेशवा तब पूना छोड़ कर भागा—शिन्दे की शरण में नहीं, अँगरेज़ों की शरण में। बसई पहुँच कर उसने अपने इलाके में "आश्रित" सेना रखने की सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये (३१-१२-१८०२ ई०)।

अपनी पराधीनता का वह पट्टा लिख देने के बाद पेशवा पछताने लगा, और फिर अपने सरदारों से सुलह की सोचने लगा। उसके, होल्कर के और शिन्दे के दूत बराड के बूढ़े राजा के पास इस अभिप्राय से पहुँचे कि वह सब के बीच तसफ़िया करा दे। भोंसले, शिन्दे और होल्कर का मिलना तय हुआ। इससे पहले कि वे मिल पाँय, आर्थर वेल्ज़ली सेना के साथ मैसूर से बढ़ा। होल्कर पूना से भाग गया और २० एप्रिल को वेल्ज़ली वहाँ पहुँच गया। दूसरे दिन उसने लिखा, "मराठा संघ के सरदारों ने ... हमें यहाँ आराम से आने और छावनी डालने दी है। अब हमारी सेना यहाँ ऐसी जम कर बैठी है कि कोई हमें उखाड़ नहीं सकता। उधर, अभी वे आपस में सुलह नहीं कर सके, हम पर हमला करने की सम्मिलित योजना की बात ही दूर है!"

§६. दूसरा मराठा युद्ध (१८०३ ई०)—होल्कर से पिट कर बाजीराव अँगरेज़ों की शरण में गया था, इसलिए उसने चाहा कि अँगरेज़ अब होल्कर को सज़ा दें। उसने शिन्दे और भोंसले को परामर्श के लिए पूना आने को कहा। लेकिन अँगरेज़ों का ध्येय दूसरा था, और होल्कर उनके लिए बड़ा उपयोगी साबित हुआ था। उसे उन्होंने कुछ न कहा और मीठी-मीठी बातों से अगले युद्ध से अलग रक्खा। शिन्दे और भोंसले को उन्होंने हुक्म दिया कि पेशवा के इलाके में न घुसें। वे दोनों तब अजन्ता घाट पर रुक गये। किन्तु अँगरेज़ों को उनसे युद्ध करना ही था; उनका विशेष लक्ष्य था शिन्दे का तोपखाना और युद्ध का सामान छीन लेना या नष्ट कर देना, उसकी पैदल सेनाओं को तोड़ देना, और दिल्ली-आगरा की पेरों की उस "फ्रान्सीसी रियासत" पर दखल कर लेना जो जमना से सतलज

की तरफ़ बढ़ रही थी और सिन्ध के रास्ते समुद्र तक पहुँच सकती थी। मराठा राजाओं से कहा गया कि वे अजन्ता घाट से भी पीछे हट जाँय और एक दूसरे से अलग हो जाँय। उनके इनकार करने पर सब तरफ़ से उनपर चढ़ाई की गयी। आर्थर वेल्ज़ली और स्टीवन्सन पूना और हैदराबाद से बराड की ओर बढ़े। लार्ड लेक ने कानपुर से कोयल (अलीगढ़) पर चढ़ाई की। एक सेना गंजाम से उड़ीसा में घुसी, जिसकी मदद को एक टुकड़ी कलकत्ते से समुद्र के रास्ते भी आयी। एक और सेना गायकवाड के इलाके से शिन्दे के गुजराती किलों और इलाकों पर दखल करने चली। एक छठी सेना मैसूर की सीमा पर तैनात रक्खी गयी जिससे पेशवा और दक्खिनी महाराष्ट्र के सरदार विद्रोह न कर पाँय। लार्ड लेक के दूत शिन्दे के जागीरदारों, राजपूत राजाओं, गूजर और सिक्ख सरदारों तथा युरोपियन अफ़सरों को फोड़ने का काम भी कर रहे थे।

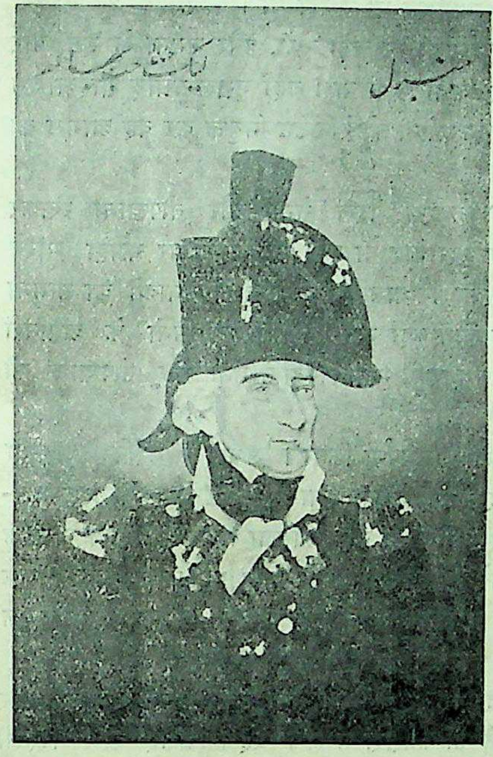

लार्ड लेक

दिल्ली में अंकित समकालीन चित्र

[दिल्ली म्यूज़ि०, भा० पु० वि०]

अहमदनगर का किला दक्खिन में शिन्दे का वतन था। उसे लेकर वेल्ज़ली औरंगाबाद की ओर बढ़ा। उधर लेक ने अलीगढ़ के पास कोयल का किला ले लिया (२९-८-१८०३); शिन्दे के कई युरोपियन अफ़सर तब अँगरेज़ों से जा मिले। उसी दिन गुजरात में भरुच का क़िला सर किया गया। एक हफ्ते बाद

शिन्दे के अँगरेज़ नौकर लूकन के विश्वासघात से अलीगढ़ भी ले लिया गया। तब पेरों ने शिन्दे की सेवा छोड़ दी। अँगरेज़ों के इलाके पर चढ़ाई करना तो दूर रहा, वह इन दोनों युद्धों में स्वयम् उपस्थित भी न रहा था।

अलीगढ़ के बाद लेक ने दिल्ली पर चढ़ाई की, और जमना के इस पार एक फ्रान्सीसी अफ़सर को हरा कर किला ले लिया। वहाँ मुग़ल सम्राट् शाहआलम को रक्षा में ले कर और आक्टरलोनी को रेज़िडेंट नियुक्त कर वह आगरा को रवाना हुआ।

उधर वेल्ज़ली के मुकाबले को एक पैदल सेना और तोपख़ाना रखकर शिन्दे और भोंसले रिसाले के साथ हैदराबाद या पूना के इलाकों पर झपट्टा मारने की घात में लगे थे। बराड की सीमा पर असई गाँव में दोनों सेनाओं का सामना हुआ (२३-९-१८०३ ई०) राजा लोग वहाँ नहीं थे। मराठा सेना के अफ़सरों और सरदारों ने धोखा दिया। इस हार से मराठा पदाति-सेना और तोपख़ाने की रीढ़ टूट गयी।

अक्तूबर में आगरे के किले ने समर्पण किया। उधर दो महीने में उड़ीसा का तट-प्रदेश—पुरी, कटक आदि—जीत लिया गया था। उड़िया जनता तमाशबीन बनी रही; भोंसले की सेना ने वहाँ ढीला सा मुकाबला किया। पेशवा ने एक नयी सन्धि द्वारा बुन्देलखंड का प्रदेश अँगरेज़ों को दे दिया था, पर वहाँ के शासक शमशेरबहादुर और कुछ सरदारों से अँगरेज़ों को लड़ना पड़ा। अक्तूबर तक कर्नल पावेल ने बुन्देलखंड ले लिया।

असई की हार के बाद शिन्दे ने पैदल सेना उत्तर भारत भेज दी, और खुद दोनों राजा फिर झपट्टा मारने की कोशिश में लगे रहे। असई और दिल्ली की बची-खुची नेतृहीन सेना तोपखाने के साथ निरुद्देश घूमती थी, जब लेक ने उसका पीछा किया। मथुरा और अलवर के बीच लासवाड़ी पर १ नवम्बर को युद्ध हुआ जिसमें शिन्दे के सैनिक "दैत्यों की तरह, या सच कहें तो वीरों की तरह लड़े। यदि फ्रान्सीसी अफ़सर उनका संचालन करते होते तो न जाने क्या परिणाम होता ?" अलीगढ़, दिल्ली, असई और लासवाड़ी की हारों से शिन्दे की पैदल सेना और तोपखाना कुचले गये।

उधर असई के बाद स्टीवन्सन ने बुरहानपुर और असीरगढ़ का घेरा डाला और वेल्ज़ली राजाओं की रोक-थाम करता रहा। असीरगढ़ में शिन्दे के १६

युरोपियन अफ़सर किला सौंप कर स्टीवन्सन से जा मिले। वेल्ज़ली को मराठा रिसाले का पीछा करना असम्भव और खतरनाक दीखा। इसलिए उसने शिन्दे से युद्ध-विराम की सन्धि कर ली और उसे सन्धि के धोखे में रख कर इलिचपुर के पास उसपर एकाएक हमला कर दिया। आरगाँव की इस लड़ाई में शिन्दे की फिर हार हुई (२६-११-१८०३ ई०)। तब अँगरेज़ों ने गवीलगढ़ ले लिया, जिसके बाद राजाओं ने अलग-अलग सन्धि की (दिसम्बर १८०३ ई०)। अँगरेज़ों ने जो प्रदेश जीत लिये थे, वे उन्हीं के पास रहे। भोंसले ने बराड भी निज़ाम को सौंपा। दोनों राजाओं ने स्वीकार किया कि अँगरेज़ों के सिवाय और किसी युरोपियन को अपनी सेवा में न रक्खेंगे। फ़रवरी १८०४ ई० में शिन्दे ने होल्कर के डर से अँगरेज़ों से "आश्रित" सन्धि कर ली। उसके बाद लार्ड वेल्ज़ली ने उससे गवालियर और गोहद के ज़िले भी ले लिये।

§७. होल्कर से युद्ध (१८०४–५ ई०)—जसवन्तराव होल्कर को बड़ी आशाएँ दी गयीं थीं। उनके आधार पर अब उसने बुन्देलखंड, दोआब और हरियाना के अनेक ज़िले, जो पहले होल्कर वंश के रह चुके थे, लार्ड लेक से माँगे। तब न केवल उसकी आशाओं पर पानी फिरा, प्रत्युत उसने देखा कि उसकी सेना के अँगरेज़ अफ़सर कम्पनी से षड्यन्त्र कर रहे हैं। इसपर उसने अपने तीन अँगरेज़ नौकरों को पकड़ कर फाँसी दे दी। एप्रिल १८०४ ई० में लेक ने हिन्दुस्तान से और कर्नल मरे ने गुजरात से होल्कर के इलाकों पर चढ़ाई की। पीछे पूना से कर्नल वालेस भी उसके खिलाफ़ बढ़ा।

लेक ने मौन्सन को जयपुर भेज कर वहाँ के राजा को अपनी तरफ़ मिलाया। होल्कर वहीं था; वह पीछे हट गया। टोंक-रामपुरा का गढ़ ले कर मौन्सन उसके पीछे-पीछे बढ़ा। उधर से मरे गुजरात से इन्दौर की तरफ़ बढ़ रहा था। शिन्दे भी अब अँगरेज़ों के साथ था; उसके सेनापति बापू शिन्दे और जीन फ़िलोस ने होल्कर के सिहोर और भेलसा आदि शहर छीन लिये। मौन्सन और मरे शिन्दे की इस सेना से मालवा में मिलने आ रहे थे।

मौन्सन कोटा के दक्खिन मुकुन्दरा का दर्रा पार कर होल्कर के खास इलाके में घुसा। मरे भी मालवा की सीमा पर आ गया था। तब होल्कर युद्ध के लिए निकला। उसके हिलते ही मौन्सन और मरे दोनों उल्टे पाँव भागे। होल्कर ने मौन्सन का पीछा किया। अपनी तोपों को कीले ठोक कर फेंकते, गोला-बारूद

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

को नष्ट करते, स्त्रियों, बच्चों और घायलों को उनकी क़िस्मत पर छोड़ते और अनेक जगह पिटते हुए जुलाई के अन्त में वह रामपुरा वापिस पहुँचा, जहाँ उसे लेक की भेजी कुमुक मिली। इधर बापू शिन्दे कोटा में होल्कर से मिल गया। होल्कर को मौन्सन से उलझा देख मरे फिर लौटा और उसने इन्दौर पर बग़ैर किसी लड़ाई के दख़ल कर लिया।

मौन्सन को होल्कर ने रामपुरा से खदेड़ते हुए आगरा पहुँचा दिया। अन्तर्वेद में इस समय अँगरेज़ी राज के खिलाफ़ बड़ा असन्तोष फैला था। असन्तुष्ट लोग भरतपुर के राजा रणजीतसिंह के पास पहुँचने लगे। होल्कर के दूत भी उसके पास पहुँचे। पिछले साल के युद्ध में लेक ने उस राजा को मराठों से "स्वतन्त्र" कर उससे सन्धि की थी, अब वह होल्कर के पक्ष में हो गया। होल्कर ने मथुरा पर चढ़ाई की; अँगरेज़ी सेना वहाँ से हट गयी। दौलतराव शिन्दे तब बुरहानपुर में था। वह भी युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ा।

इस दशा में लेक कानपुर से दिल्ली आया। होल्कर ने मथुरा छोड़ दिल्ली को जा घेरा। दिल्ली को वह आक्टरलोनी से ले न सका और दोआब में घुसा। लेक ने उसका पीछा किया। हार कर होल्कर दीग की ओर भागा और अन्त में भरतपुर में शरण ली।

तब लेक ने भरतपुर को आ घेरा (३-१-१८०५ ई०)। तीन बार उसने किले पर हल्ला बोला, परन्तु तीनों बार विफल रहा। जसवन्तराव ने जिस बहादुरी से अँगरेज़ों का मुकाबला किया उसे देखकर दूसरे मराठों के भी हौसले बढ़े और वे सोचने लगे कि व्यर्थ में ही हिम्मत हार कर उन्होंने अपना राज खो दिया। उन्होंने देखा, अब उसे वापिस लेने का मौक़ा है। इस विचार से शिन्दे भी होल्कर से मिलने को भरतपुर की ओर बढ़ा। अँगरेज़ों ने देखा, मराठों और जाटों का मेल होने से पहले ही भरतपुर से सन्धि कर लेनी चाहिये। इसलिए मार्च के अन्त में होल्कर को किले में से जाने दे कर उन्होंने रणजीतसिंह से सन्धि कर ली।

शिन्दे चम्बल तक पहुँचा था कि भरतपुर का घेरा उठ गया। सबलगढ़ पर होल्कर उससे मिला। वहाँ पेशवा और भोंसले के दूत भी आये थे। शिन्दे का दोग़ला अँगरेज़ सेनापति फ़िलोस बराबर ऐसी ढील करता रहा था ज़िससे वह समय पर भरतपुर न पहुँच सके। होल्कर के कहने से अब उसे कैद किया गया।

लेक ने दोनों राजाओं पर हमला करना चाहा, पर वे अजमेर की तरफ़ हट गये। गर्मी में उनका पीछा करना सम्भव न था।

इस दशा में लार्ड वेल्ज़ली को वापिस बुला कर बूढ़े कार्नवालिस को शान्ति-स्थापना के लिए फिर भारत भेजा गया। जुलाई के अन्त में वह कलकत्ते पहुँचा, और नाव द्वारा उत्तर भारत के लिए रवाना हुआ। शिन्दे के दीवान मुंशी कमलनयन को मालकम इससे पहले ही ग़द्दार बना चुका था और उसके द्वारा मराठा गुट्ट को फोड़ने की कोशिश कर रहा था। कार्नवालिस ने प्रस्ताव किया कि यदि शिन्दे और होल्कर अलग हो जाँय तो शिन्दे को गोहद और गवालियर इलाके तथा जयपुर का आधिपत्य लौटा दिये जाँय। इसपर शिन्दे ने होल्कर का साथ छोड़ दिया। होल्कर ने अजमेर से यह कह कर पंजाब की राह ली कि सिक्ख सरदारों और काबुल के शाह को साथ ले कर अँगरेज़ों से लड़ूँगा।

ग़ाज़ीपुर पहुँच कर कार्नवालिस चल बसा (५-१०-१८०५ ई०)। तब सर ज्यार्ज बार्लो स्थानापन्न गवर्नर-जनरल नियुक्त हुआ। शिन्दे के साथ सन्धि हो गयी, और उसे आश्रित सेना की सन्धि से भी मुक्त किया गया।

होल्कर अब अमृतसर पहुँचा; लेक भी उसके पीछे-पीछे ब्यास तक चढ़ गया। अमृतसर में सिक्ख सरदारों की संगत जुटी; उनमें से कुछ मराठों से मिलना चाहते थे तो कुछ अँगरेज़ों से। होल्कर काबुल के शाह को बुलाने की भी बात करता था। सरदार रणजीतसिंह को पंजाब में अपना राज्य स्थापित करना था, इसलिए वह नहीं चाहता था कि पंजाब में मराठा, अफ़गान और अँगरेज़ सेनाएँ आयें। उसके प्रभाव से होल्कर को पंजाब में कुछ मदद न मिली। तब वह पेशावर जाने लगा। लेकिन लेक ने उसे सन्देश भेजा कि वह शान्ति से लौट जाय तो उसके सब इलाके लौटा दिये जाँयगे। इस आधार पर उसने सन्धि कर ली (दिसम्बर १८०५ ई०)।

§८. मराठा राज्यों की अवनति—नये गवर्नर-जनरल मिन्टो ने अपने ७ बरस (१८०७-१३ ई०) के शासन में वेल्ज़ली द्वारा विजय किये हुए प्रदेशों में अँगरेज़ी शासन की नींव को पक्का किया। जसवन्तराव होल्कर सन् १८०८ में पागल हो गया। उसके बच्चे के नाम से शासन चलने लगा और राज्य की बागडोर पठान सरदार अमीरखाँ के हाथ में रही। वह होल्कर के नाम पर राजपूताने को लूटता रहा। सन् १८०९ में उसने निज़ाम के उभाड़ने से नागपुर राज्य पर चढ़ाई की।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वह राज्य कम्पनी का आश्रित न था, तो भी मिन्टो ने अँगरेज़ी सेना भेज कर उसे अमीरख़ाँ से बचाया, और इस सेवा के बदले में भोंसले से कुछ भी न माँगा। वास्तव में अमीरख़ाँ कम्पनी के हाथ पहले से ही बिका हुआ था। और यह नाटक इसलिए रचा गया जिससे नागपुर का राजा समझ ले कि होल्कर से उसे कम्पनी की आश्रित सेना ही बचा सकती है।

शिन्दे के विषय में सन् १८०४ में ही आर्थर वेल्ज़ली ने लिखा था, "उसके दरबार में हमारा पैर ऐसा जमा है कि वह कम्पनी से लड़े तो उसकी आधी सेना और सरदार हमारी तरफ़ होंगे।" यों मराठा राज्य अब भीतर से खोदे हो रहे थे।

§९. उत्तर-पच्छिमी सन्धियाँ—नेपोलियन सन् १८०० में फ्रान्स का अधिनायक और १८०४ में वहाँ का सम्राट् बन गया था। भारत पर उसकी नज़र बराबर लगी थी, और मिन्टो के समय उसकी चढ़ाई का वास्तविक भय उपस्थित हो गया।

ईरान में नादिरशाह के पतन के बाद काज़ार वंश का राज्य शुरू हुआ था। उस वंश के समय में सन् १८०६ ई० से रूस ईरान को उत्तर-पच्छिमी सीमा पर दबाने लगा। ईरानियों ने वेल्ज़ली वाली सन्धि के अनुसार अँगरेज़ों से मदद माँगी, पर अँगरेज़ों को तब रूस से मैत्री रखनी थी। ईरानी दूत तब नैपोलियन के दरबार में पहुँचे। इसी बीच जून १८०७ में नैपोलियन और रूस-सम्राट् के बीच भी सन्धि हो गयी। तब रूस, तुर्की और ईरान के सहयोग से नैपोलियन ने कन्दहार, ग़ज़नी, गोमल, डेरा इस्माइलख़ाँ के रास्ते भारत पर चढ़ाई करने की योजना बनायी।

इस दशा में अँगरेज़ों ने ईरान, अफ़गानिस्तान, सिन्ध और पंजाब में अपने दूत भेजे।

(१) **ईरान**—ईरान में मालकम को भेजा गया, पर वह विफल लौटा। किन्तु नैपोलियन के फिर युरोप के झगड़ों में फँस जाने पर इंग्लैंड और ईरान के बीच यह सन्धि हो गयी कि यदि कोई युरोपियन शक्ति ईरान पर चढ़ाई करेगी तो अँगरेज़ ईरान को धन और सेना की मदद देंगे।

(२) **अफ़गानिस्तान**—ज़मानशाह को सन् १८०१ में उसके सौतेले भाई महमूद ने गद्दी से उतार कर अन्धा कर दिया था। ज़मान के सगे भाई शुजा ने १८०३ ई० में महमूद से गद्दी छीन ली, तो भी उसे बराबर महमूद का डर बना

था। पेशावर, अटक, डेराजात, मुल्तान और सिन्ध अभी तक अब्दाली साम्राज्य के अधीन थे।

सन् १८०८ में कम्पनी का दूत एल्फ़िन्स्टन बीकानेर मुल्तान के रास्ते पेशावर पहुँच कर शाह शुजा से मिला। एल्फ़िन्स्टन ने शाह से .फ्रान्स के ख़िलाफ़ मदद माँगी तो शाह शुजा ने बदले में महमूद के ख़िलाफ़ रुपये की मदद चाहा इसके लिए वह सिन्ध प्रान्त कम्पनी के पास रहन रखने को अथवा उसकी दीवानी सौंपने को तैयार था। उसने कहा, महमूद ईरानियों की मदद से गद्दी लेना चाहता है, और यदि वह सफल हुआ तो ईरानियों और फ़ान्सीसियों के पैर सिन्ध पर जमे समझो। अन्त में यह सन्धि हुई कि ईरानियों या .फ्रान्सीसियों की चढ़ाई होने पर शाह शुजा उन्हें रास्ता न देगा और कम्पनी शाह की रुपये से मदद करेगी।

(३) सिन्ध—सिन्ध के स्थानीय शासक तालपुर ख़ानदान के बलोच थे, जो हैदराबाद, मीरपुर तथा खैरपुर में रहते थे। वे शाह शुजा से छुटकारा पाने को उत्सुक थे। जब कम्पनी का दूत उनके यहाँ पहुँचा तो ईरानी दूत वहाँ पहले से उपस्थित थे, और ईरान और .फ्रान्स दोनों की तरफ़ से बात कर रहे थे। उन्होंने सिन्धी अमीरों को शाह शुजा से स्वतन्त्र करने और कन्दहार दिलाने का प्रलोभन दिया था। अँगरेज़ों की मदद का वचन मिलने पर सिन्धियों ने उसे तरजीह दी और अँगरेज़ रेज़िडेंट अपने यहाँ रख लिया।

§१०. रणजीतसिंह का उदय और उसकी रोक-थाम—मिन्टो की सन्धियों में से सब से मुख्य वह थी जो रणजीतसिंह के साथ की गयी। वह सन्धि वस्तुतः दूसरे मराठा युद्ध का परिणाम थी।

सन् १७९९ में ज़मानशाह के लौटने के बाद से रणजीतसिंह पंजाब में अपना राज्य बढ़ा रहा था। ठेठ पंजाब में सिक्ख मिस्लें जीर्ण हो रही थीं; उन्हें वह मौके के मुताबिक़ अधीन करता जाता था। अफ़ग़ानिस्तान में घरेलू लड़ाई होने पर रणजीत ने पच्छिमी पंजाब पर भी धीरे-धीरे दखल कर लिया। कश्मीर के पूरब पहाड़ों में छोटे-छोटे राजपूत राज्य थे; कटोच (काँगड़ा) का राजा संसारचन्द उन्हें क्रमशः जीत रहा था। परन्तु नेपाल के गोरखे तमाम पहाड़ी राज्यों को जीतते हुए सन् १८०५ में सतलज पर आ पहुँचे, और संसारचन्द उनसे उलझ गया। तब रणजीतसिंह को पहाड़ में अपना राज फैलाने का मौका मिल गया। सतलज और जमना के बीच सरहिन्द का इलाका भी मुख्यतः सिक्ख मिस्लों के अन्तर्गत

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

था। इनके सरदार पहले मराठों को कर देते थे, जिससे अँगरेज़ों ने उन्हें मुक्त कर दिया था। रणजीतसिंह ने सन् १८०६-७ में दो बार उस इलाके पर चढ़ाई की और बहुत-सा प्रदेश अधीन किया। वहाँ के कुछ सरदार तब अँगरेज़ों के पास पहुँचे।

इस दशा में मेटकाफ़ को रणजीतसिंह के पास भेजा गया। मेटकाफ़ ने उससे नैपोलियन् के खतरे की बात कही, तब रणजीत ने पूछा कि ब्रिटिश सरकार सरहिन्द पर उसका आधिपत्य मानती है कि नहीं। मेटकाफ़ ने कुछ उत्तर न दिया; तब रणजीत ने उसकी उपस्थिति में तीसरी बार सतलज पार की और अम्बाला आदि प्रदेशों पर दख़ल कर लिया। इस बीच नैपोलियन का खतरा मिट गया था। तब रणजीतसिंह से कहा गया कि सरहिन्द के राज्य अँगरेज़ों के रक्षित हैं। जनवरी १८०९ ई० में आक्टरलोनी दिल्ली से फ़ौज ले कर लुधियाना आ डटा। रणजीतसिंह ने पहले युद्ध की ठानी, दौलतराव शिन्दे के पास दूत भेजे, और सरहिन्द के सिक्खों को उभाड़ने की कोशिश की। अन्त में विवश हो कर एप्रिल में उसने सन्धि पर दस्तख़त कर दिये, तीसरी चढ़ाई में जीते इलाके लौटा दिये, और यह माना कि आगे से सतलज पार न करेगा। इसके बाद भी इन्दौर और गवालियर दरबारों के साथ उसकी बातचीत चलती रही। सन् १८११ से उसने अँगरेज़ों से लड़ने का विचार त्याग दिया।

उधर गोरखे पहाड़ में अपना राज्य बराबर बढ़ा रहे थे। १८११ ई० में अँगरेज़ों ने रणजीतसिंह को इजाज़त दी कि वह उनके मुकाबले के लिए भले ही सतलज लाँघ सकता है।

इधर एल्फ़िन्स्टन और मेटकाफ़ लौट कर आये और उधर शाह शुजा को महमूद ने अफ़गानिस्तान से निकाल दिया। तब वह रणजीतसिंह की शरण में आया (१८१३ ई०)। दोनों ने भाई-चारा करते हुए पगड़ियाँ बदलीं, जिससे प्रसिद्ध कोहेनूर हीरा रणजीतसिंह को मिला। उसी बरस अटक के क़िलेदार ने वह क़िला रणजीतसिंह को सौंप दिया। शाह महमूद के वज़ीर फ़तहख़ाँ ने अपने भाई दोस्त-मुहम्मद के साथ अटक वापिस लेने के लिए चढ़ाई की। रणजीतसिंह के सेनापति मोहकमचन्द ने उन दोनों को हरा दिया।

§११. **भारतीय समुद्र पर एकाधिपत्य**—मारिशस और उसके पड़ोस के द्वीप फ़्रान्स के अधीन थे। नैपोलियन के ज़माने में फ़्रान्सीसी जहाज़ वहाँ से

अँगरेज़ी जहाज़ों पर छापे मारते थे। युरोप के प्रायः सभी देश, एक एक करके नैपोलियन के काबू में आ गये। तब उसने युरोप के सब बन्दरगाह अँगरेज़ी जहाज़ों के लिए बन्द कर दिये। बदले में अँगरेज़ों ने पुर्तगाल, हालैंड और फ़ान्स के भारतीय समुद्र वाले सभी उपनिवेशों पर भारतवर्ष से चढ़ाइयाँ कर दखल कर लिया। मारिशस आदि टापू फ़ान्स से छिन गये। हालैंड के आशा अन्तरीप के उपनिवेश (केप-कालोनी) में एक फ़ान्सीसी सेनापति को समर्पण करना पड़ा। वह जावा गया। पर जावा पर भी स्वयम् लार्ड मिन्टो ने चढ़ाई की। वहाँ कर्नल जिलेस्पी ने उस सेनापति को फिर हराया।

आर्थर वेल्ज़ली ने भारत से लौट कर नैपोलियन के युद्ध में भाग लिया, और ड्यूक ऑव वैलिंगटन का पद पाया। सन् १८१५ में जर्मन सेनापति ब्ल्यूखर ने वैलिंगटन की मदद से वाटर्लू नामक स्थान में नैपोलियन को हरा दिया। वह पकड़ा गया और ईस्ट इंडिया कम्पनी के सेन्ट हेलिना टापू में क़ैद किया गया। तब केप-कालोनी और मारिशस के सिवाय अन्य सब बस्तियाँ उनके पहले मालिकों को लौटा दी गयीं।

§१२. भारत में ब्रिटेन की औपनिवेशिक नीति—उक्त घटनाओं से प्रकट है कि नैपोलियन के युद्धों के समय भारतीय साम्राज्य ब्रिटेन के लिए कितने काम का साबित हुआ। नैपोलियन ने जब युरोप के बन्दरगाह ब्रिटिश माल के लिए रोक दिये तब इंग्लैंड के नये-नये कारखानों का माल भारत के बाज़ारों में बिना चुंगी भेजा जाने लगा। इस विषय पर हम आगे और विचार करेंगे। यहाँ इतना कहना काफ़ी है कि इसी समय से भारत इंग्लैंड का औपिनिवेशिक बाज़ार बनता चला गया। यह बाज़ार सन् १८१३ ई० से सब अँगरेज़ों के लिए खोल दिया गया; ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार केवल चीन के व्यापार में रह गया।

इसके अतिरिक्त सन् १८१३ ई० में कम्पनी को नया चार्टर देते समय पार्लिमेन्ट में यह विचार भी प्रकट हुआ कि भारत में अँगरेज़ बस्तियाँ बसायी जाँय। भारत के पहाड़ी प्रान्तों का जलवायु इसके लिए उपयुक्त होने के कारण उन प्रान्तों को जीतना आवश्यक समझा गया।

§१३. नेपाल-युद्ध (१८१४-१६ ई०)—सन् १८०० ई० से नेपाल का राजा एक बच्चा था और १८०४ से १८३७ तक राज्य की बागडोर भीमसेन थापा नामक एक सरदार के हाथ में रही। गोरखा राज इससे पहले जमना तक पहुँच

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

चुका था; १८०५ ई० में उसके पच्छिमी भाग के शासक अमरसिंह थापा ने उसे सतलज तक पहुँचा दिया और फिर सतलज पार कर कटोच के राजा का काँगड़ा किला घेर लिया। यह किला चार बरस घिरा रहा। १८०६ ई० में उसे रणजीतसिंह ने ले लिया और गोरखों को सतलज के दक्खिन आना पड़ा।

सन् १८०४ से ही गोरखपुर, चम्पारन और पुर्णिया के अनिश्चित सीमान्त पर अँगरेज़ों से झगड़ा चल रहा था। इन झगड़ों के निपटारे की बातचीत भी चलती थी। सन् १८१३ में लार्ड हेस्टिंग्स के गवर्नर-जनरल बन कर आने पर अँगरेज़ों ने रुख़ बदला और गोरखा सरकार को विवाद-ग्रस्त जमीनें एकदम छोड़ देने को कहा। गोरखे उस धमकी से न दबे। तब युद्ध हुआ।

अँगरेज़ों ने पाँच रास्तों से नेपाल पर चढ़ाई करनी चाही। लुधियाना से आक्टरलोनी सतलज दून में अमरसिंह के खिलाफ़ बढ़ा। मेरठ से जिलेस्पी देहरादून की तरफ़ चला; उसे जीत कर उसकी सेना का एक हिस्सा गढ़वाल में घुसता और दूसरा नाहन पर आक्टरलोनी से जा मिलता। बनारस, गोरखपुर में एक सेना बुटवल के रास्ते पालपा-गोरखा पर चढ़ाई करने को तैयार की गयी। पटना मुर्शिदाबाद से एक और सेना काठमांडू के खिलाफ़ रवाना हुई। और एक छोटी सेना पुर्णिया-सीमा की रक्षा को तथा सिकिम के राजा को उभाड़ने को रक्खी गयी।

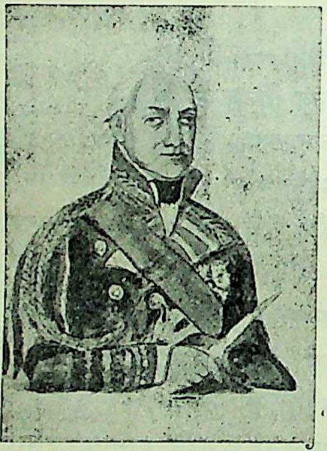
डेविड आक्टरलोनी
दिल्ली में अंकित समकालीन चित्र
[दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

मेरठ वाली साढ़े तीन हज़ार सेना सबसे पहले देहरादून जा पहुँची। अमरसिंह के भतीजे बलभद्रसिंह थापा ने २४० गोरखों के साथ शहर से ४ मील दूर कलुंगर के पहाड़ पर सालों की पाँत से घिरी पत्थर की बाड़ में शरण ली। अँगरेज़ सेनापति ने पहाड़ की फेदी* पर तोपें जमा दीं। ब्रिटिश तोपों का जवाब नेपाली पत्थरकलों (muskets) से देने लगे। नैपोलियन के साथी को जावा में हराने वाले जिलेस्पी से यह सहा न गया कि मुट्ठी भर हिन्दुस्तानी

---

* पहाड़ की जड़ को, जहाँ से चढ़ाई शुरू होती है, नेपाल में फेदी कहते हैं।

उसका यों मुकाबला करें। ३ दिन में पहाड़ का पूरा घेरा डालकर उसने "गढ़" पर हल्ला बोला (३१-१०-१८१४ ई०)। कलेजे में गोली खा कर वह वहीं ढेर हो गया।

जिलेस्पी का उत्तराधिकारी महीना भर घेरा डाले पड़ा रहा। और कुमुक आने पर २७ नवम्बर को अँगरेज़ों ने फिर "किले" पर हल्ला बोला, परन्तु फिर उसी तरह ढकेले गये। इसके बाद उन्होंने गोरखों की पानी लेने की जगह मालूम कर उस ओर तोपों का मुँह तीन दिन-रात बराबर खोले रक्खा। ३० नवम्बर को तोपें चुप हुईं, तब किले से बन्दूकें चलना भी बन्द हुआ; और ७० आदमी हाथ में कृपाण और कन्धे पर पथरकला लिये, कमर में खुखरी और सिर पर चक्र बाँधे, और स्त्रियों बच्चों को पीठ पर लपेटे, नालापानी के झरने पर उतरे, और वहाँ अपनी प्यास बुझाकर अँगरेज़ी पाँतों के बीच में राह काटते चले गये। स्तब्ध अँगरेज़ी सेना ने उन्हें साफ़ निकल जाने दिया और तब तीसरी बार गढ़ पर हल्ला बोल कर उसे ज़मींदोज़ कर दिया।

ब्रिटिश सेनापति ने तब जमना पार कर नाहन के पदच्युत राजा को अपनी तरफ़ मिलाया। नेपालियों ने नाहन से उत्तर हट कर जैथक पर मुकाबला किया। अँगरेज़ी सेना वहाँ तक पहुँचने में एक तिहाई कट गयी और जैथक का पानी काटने की उसकी कोशिश बेकार हुई।

उधर अमरसिंह आक्टरलोनी से लोहा ले रहा था। आक्टरलोनी ने नालागढ़ और बिलासपुर के राजाओं को अपनी तरफ़ मिला लिया, तो भी अमरसिंह तिहाई सेना से उसका मुकाबला करता रहा। गोरखपुर वाली सेना हार कर लौटी। उसका सेनापति उसे छोड़ कर भाग गया। बिहार वाली सेना की भी वैसी ही दुर्गति हुई। लेकिन कोसी के पूरब वाली सेना ने सिक्किम के राजा से मिल कर पुर्णियाँ के उत्तर मोरंग प्रदेश पर कब्ज़ा कर लिया। आक्टरलोनी ठंडे दिमाग़ से अपनी जगह पर डटा रहा और मार्च सन् १८१५ में उसने अमरसिंह को घेर लिया। मुरादाबाद के एक अँगरेज़ डाक्टर ने जासूसों द्वारा कुमाऊँ-गढ़वाल के बारे में जानकारी प्राप्त कर षड्यन्त्र फैलाये थे। कुमाऊँ-गढ़वाल के लोग अँगरेज़ों से मिलने को तैयार थे और नेपाल सरकार ने उधर ध्यान नहीं दिया था। इस दशा में अल्मोड़े पर चढ़ाई की गयी। एप्रिल सन् १८१५ में कर्नल निकल्स ने प्रायः बिना लड़ाई के अल्मोड़ा ले लिया।

तब मुज़फ़्फ़रपुर और रक्सौल के बीच सगौली गाँव में सन्धि की बातचीत शुरू हुई। नेपाली दूतों ने मान लिया कि वे काली से सतलज तक का तमाम इलाका छोड़ देंगे तथा अँगरेज़ों के सिवाय किसी युरोपियन को नेपाल में न आने देंगे। पर नेपाल दरबार ने यह स्वीकार न किया। जनवरी १८१६ में फिर युद्ध शुरू हुआ, और आक्टरलोनी काठमांडू की तरफ़ बढ़ा। उसके राजधानी से ५० मील पहुँचने पर नेपाल दरबार ने उक्त सन्धि स्वीकार की।

देहरादून में कलुंगर पहाड़ के सामने रिस्पना नदी के बीच एक एकान्त टापू पर जिलेस्पी और बलभद्र की स्मारक दो सीधी-साधी समाधें साथ-साथ खड़ी हैं। दक्खिन तरफ़ की समाध के पूरब ओर यह लेख खुदा है—

THIS IS INSCRIBED
AS A TRIBUTE OF RESPECT
FOR OUR GALLANT ADVERSARY
BULBUDDER
COMMANDER OF THE FORT
AND HIS BRAVE GOORKHAS
WHO WERE AFTERWARDS
WHILE IN THE SERVICE
OF RUNJEET SINGH
SHOT DOWN IN THEIR RANKS
TO THE LAST MAN
BY AFGHAN ARTILLERY

अर्थात्—"यह लेख हमारे वीर प्रतिद्वन्द्वी, गढ़ के नायक बलभद्र और उसके उन बहादुर गोरखों के प्रति, आदर का भाव प्रकट करने के लिए खोदा गया, जो बाद में, रणजीतसिंह की सेवा में रहते समय, अफ़गान तोपख़ाने के मुकाबले में सब के सब अपनी पाँतों में वीरगति को प्राप्त हुए।"

§१४. पेंढारी तथा तीसरा मराठा युद्ध (१८१७–१९ ई०)—दक्खिन की रियासतों में सेना के साथ अनियमित सवार रखने की प्रथा चली आती थी, जो शान्ति के समय खेती-बारी करते, परन्तु जिन्हें युद्ध के समय शत्रु के देश में पहुँचने पर वेतन के बजाय लूटने की इजाज़त मिल जाती थी। इन लोगों को पेंढारी कहते थे। शिन्दे और होल्कर वंशों की सेवा में रहने के अनुसार ये शिन्देशाही या होल्करशाही कहलाते थे। मालवा इनका केन्द्र था।

सन् १८०३ ई० की अपनी हारों के विषय में मराठों की यह धारणा थी कि युरोपियन शैली की नकल करने से वे हारे। इसीसे मराठा राज्य पेंढारियों की वृद्धि

से सन्तुष्ट जान पड़ते थे। शायद वे उन्हें आगे चल कर अपनी सेवा में लेने की सोचते थे। सन् १८१४-१५ ई० में गोरखों ने मराठा राज्यों में अपने दूत भेजे; उन्होंने रणजीतसिंह, बरमा के राजा तथा चीन-सम्राट् को भी अँगरेज़ों के खिलाफ़ उभाड़ना चाहा। गोरखों की जीतों से मराठों के हौसले बढ़े। पूना से बालाजी कुंजर नामक एक व्यक्ति सब मराठा दरबारों में और नर्मदा के किनारे निमावर पर चोतू पेंढारी की छावनी में भी गया। पेंढारी नेताओं ने निश्चय किया कि वे अँगरेज़ों और उनके मित्र निजाम के राज़्य पर छापे मारेंगे। सभी भारतीय राज्य अँगरेज़ों से कुढ़ते थे। लार्ड हेस्टिंग्स ने यह सम्भावना देखी कि यदि रणजीतसिंह सतलज पार कर आये और बरमा का राजा चटगाँव पर चढ़ाई कर दे तो सब मराठे राज्य भी उठ खड़े होंगे। रणजीत तो सेना ले कर सतलज तक आया भी, लेकिन और सब भारतीय राजा ढिलमिल यक़ीन और पस्तहिम्मत थे। गोरखों की तरह डट कर लड़ने को कोई तैयार न था।

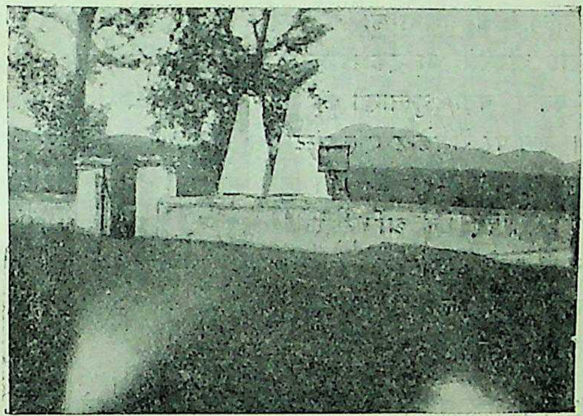

जिलेस्पी और बलभद्र की समाधें; पीछे कलुंगर पहाड़ दिखायी देता है।

दूसरी तरफ़ अँगरेज़ों की तैयारी ठोस थी। गायकवाड और पेशवा के राज्यों में अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र और बुन्देलखंड में सन् १८०३ ई० से उनकी छावनियाँ पड़ीं थीं। गवालियर के रेज़िडेन्ट के अधीन जेम्स टाड नामक व्यक्ति को राजपूताने का नक़शा तैयार करने तथा राजपूत राज्यों को मराठों के खिलाफ़ उभाड़ने को नियत किया गया था। टाड का नक़शा सन् १८१५ में तैयार हो गया और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

उसके षड्यन्त्र भी सफल हुए। इधर इसी बीच रघुजी भोंसले की मृत्यु हुई। उसके उत्तराधिकारी अप्पासाहेब भोंसले ने अँगरेज़ों से आश्रित सन्धि कर ली (१८१६ ई०)। नागपुर राज्य में अँगरेज़ी छावनियाँ पड़ जाने से शिन्दे और होल्कर के राज्य दक्खिन तरफ़ से भी घिर गये। शिन्दे पेशवा को फिर से उठाने की सोचता था, पर अब उन दोनों के बीच अँगरेज़ों ने यह लोहे की दीवार खड़ी कर दी।

पेशवा और भोंसले के एक बार काबू में आने के बाद से अँगरेज़ों की नीति यह रही कि उन्हें और अधिक दबाया जाय, यहाँ तक कि वे खीझ कर मुकाबले के लिए उठें, और तब उन्हें पूरी तरह कुचल दिया जाय।

गायकवाड को पेशवा की बड़ी रकम देनी थी। उसके बारे में समझौता कराने के लिए अँगरेज़ों का एक पिछलग्गू गंगाधर शास्त्री पूना भेजा गया। इस आदमी का बर्ताव बड़ा गुस्ताखी का और चिढ़ाने वाला था। वह पंढरपुर में मारा गया। इस पर रेज़िडेन्ट एल्फ़िन्स्टन ने पेशवा को एक नयी सन्धि करने को बाधित किया (१३-६-१८१८ ई०), जिससे पेशवा ने बहुत से किले और इलाके दिये तथा गुजरात पर कुल अधिकार छोड़ दिया। इसके बाद उससे कहा गया कि एक सेना खड़ी करके पेंढारियों के दमन के लिए अँगरेज़ों को दे। तब उसने जाना कि इस प्रकार उसकी सेना भी उससे ले लेने के बाद उससे फिर किसी "सन्धि" पर दस्तख़त कराये जायेंगे।

सन् १८१५ के अन्त में निज़ाम की आश्रित सेना के अँगरेज़ अफ़सर ने शिन्देशाही पेंढारियों पर हमला किया। जवाब में पेंढारी निज़ाम राज्य पर टूट पड़े और कृष्णा नदी के किनारे बढ़ते हुए "उत्तरी सरकारों" को लूटने लगे। अँगरेज़ी सरकार ने शिन्दे से उनकी रोक-थाम करने को न कहा, प्रत्युत स्वयम् मराठा राज्यों में घुस कर उनका दमन करने का निश्चय किया। ३० हज़ार पेंढारियों को दबाने के बहाने १ लाख १४ हज़ार अँगरेज़ी सेना मैदान में उतारी गयी। उत्तरी सेना ने स्वयम् लार्ड हेस्टिंग्स के नेतृत्व में रेवाड़ी, आगरा, कालपी और कालिंजर पर मोर्चे लिये। दक्खिनी सेना दाहोद (गुजरात) से खानदेश होते हुए बराड तक तैनात थी। उसकी दुहरी पाँत थी, एक उत्तर मुँह किये आगे बढ़ती और दूसरी दक्खिन मुँह किये पेशवा या भोंसले को शिन्दे-होल्कर की सेनाओं से मिलने से रोकती।

अँगरेज़ों की इस योजना और मराठों की मनोवृत्ति को देखते हुए कहना पड़ता है कि यह युद्ध नहीं, एक बड़ा शिकार था। डेढ़ मास के भीतर शिन्दे, होल्कर, पेशवा और भोंसले चारों की शक्ति कुचल दी गयी।

हेस्टिंग्स के शब्दों में "शिन्दे देशी राजाओं में सबसे अधिक शक्त था। उसकी सेना पुराने सधे हुए सिपाहियों की थी, तोपें बहुत अच्छी और तोपची होशियार थे।" गवालियर के २० मील दक्खिन, सिन्ध से चम्बल तक, एक पहाड़ी डांडा है। हेस्टिंग्स ने कालपी से बढ़ कर उसके तंग दर्रों को एकाएक रोक लिया। शिन्दे घिर गया। अब या तो वह डट कर लड़ने को तैयार होता, या, यदि भागता तो सेना, तोपखाने और खजाने को छोड़ किसी पगडंडी से ही भाग सकता था। इस दशा में हेस्टिंग्स ने उससे नयी सन्धि पर हस्ताक्षर कराये (५-११-१८१७ ई०)। इस बीच में टाड की चेष्टा से राजपूत राज्यों के दूत ब्रिटिश सरकार के पास शरण-भिक्षा माँगने आ चुके थे। शिन्दे ने राजपूताने पर अपना आधिपत्य छोड़ दिया और १६ राजपूत राज्य कम्पनी की रक्षा में ले लिये गये।

उधर एल्फ़िन्स्टन ने अपनी टुकड़ी को पूना से ४ मील, खडकी, हटा लिया और मुम्बई तथा सिरूर छावनी (भीमा नदी पर, पूना से अहमदनगर की राह में) से फ़ौज मँगायी। पेशवा के सेनापति बापू गोखले ने उस पर चढ़ाई की। ठीक उसी दिन जब शिन्दे ने सन्धि की, खडकी पर मराठों की हार हुई और पेशवा पूना छोड़ सेना के साथ भाग निकला। अँगरेज़ों के साथ उसकी कई जगह मुठभेड़ें हुईं, जिनमें कोरेगाँव और आष्टी की लड़ाइयाँ प्रसिद्ध हैं। महाराष्ट्र की जनता के भी उभड़ने का डर था, इसलिए एल्फ़िन्स्टन ने बालाजी नातू नामक एक ग़द्दार द्वारा शिवाजी के वंशज सतारा के राजा को हाथ में किया, और उससे मराठों के नाम एक घोषणा निकलवायी कि पेशवा का साथ न दिया जाय।

नागपुर में भी तभी वैसी ही घटनाएँ हुईं। अप्पासाहब आश्रित सन्धि के शिकंजे में परेशान था; उसने उसकी शर्तों को कुछ नरम करने की प्रार्थना की। इसपर रेज़िडेन्ट ने पड़ोस की छावनियों से सेना बुला ली, और शहर से सटी हुई सीताबल्डी की टेकरी पर मोर्चा लिया। राजा की सेना यह देख कर भड़क गयी और अँगरेज़ी फ़ौज पर कुछ गोलियाँ चल गयीं। अँगरेज़ों ने इसपर राजा को हुक्म दिया कि अपनी सब युद्ध-सामग्री सौंप और सेना तोड़ कर हमारी छावनी में चले आओ। अप्पासाहब यह मान कर कैदी बन गया। ३० दिसम्बर तक सेना ने

भी समर्पण कर दिया। तब राजा से कहा गया कि तमाम किले और सागर तथा नर्मदा के प्रदेश (अर्थात् आधुनिक मध्य-प्रान्त के सब हिन्दी-भाषा इलाके) सौंप दे, तथा गवीलगढ़, सरगुजा आदि पर आधिपत्य छोड़ दे। राजा ने वह भी मान लिया; पर अब वह भीतर-भीतर मुकाबले की तैयारी करने लगा। तब १५ मार्च को उसे .कैद कर प्रयाग को रवाना किया गया। परन्तु वह रास्ते से भाग गया।

होल्कर के राज्य में अँगरेज़ों ने अब अमीरख़ाँ को खुल्लम-खुल्ला मिला कर उसे टोंक की नवाबी दे दी। तब उस राज्य की सेना पर चढ़ाई की गयी। महीदपुर पर युद्ध हुआ। तोपचा दल के नेता रोशन-बेग ने वीरता से मुकाबला किया, पर अमीरख़ाँ का दामाद अब्दुलगफ़ूर तभी शत्रु से जा मिला। यों अँगरेज़ों की जीत हुई। अब्दुलगफ़ूर को जाओरा की रियासत दी गयी। मन्दसोर की सन्धि से होल्कर राज्य अँगरेज़ों का रक्षित बन गया।

इस बीच पिंढारी लब्बरों (जत्थों) से भी युद्ध जारी था। उन्होंने पहले अँगरेज़ी घेरा चीर कर उत्तर की ओर निकलना चाहा, पर गवालियर से पीछे ढकेले गये, और फिर दक्खिन और पूरब से घेर लिये गये। इस दशा में भी उनकी शक्ति तोड़ना सुगम न जान पड़ा, क्योंकि वे फुर्तीले सवार थे और छापे मारना ही उनका काम था। अँगरेज़ों ने तब उनमें से बहुतों को जागीरें दे कर फोड़ लिया। बाक़ी पिंढारी भी यदि चाहते तो उनके लिए चुपचाप किसानों में मिल जाना बहुत सुगम था। तो भी वे मुसीबतों, खतरों, भूख और मौत की परवा न करते हुए अन्त तक लड़ते रहे। जनता की सहानुभूति उनके साथ थी और उनके बारे में कोई सूचना अँगरेज़ों को मुश्किल से मिल पाती थी।

अप्पासाहब ने भाग कर महादेव पहाड़ियों में शरण ली। उसने चौरागढ़ अँगरेज़ों से वापिस छीन लिया, नागपुर और छत्तीसगढ़ में षड्यन्त्र फैलाया, और शिन्दे की चश्मपोशी से बुरहानपुर में फ़ौज भरती करना शुरू किया। असीरगढ़ जसवन्तराव लाड नामक सरदार के हाथ में था जो समूचे महाराष्ट्र को स्वतन्त्रता-युद्ध के लिए उभाड़ना चाहता और स्वयम् शहीद होने को उत्सुक था। उसने पेशवा को निमन्त्रण दिया। पेशवा के पास अभी ११ हज़ार सेना बाक़ी थी। अँगरेज़ों ने देखा कि उसका असीरगढ़ पहुँचना खतरनाक होगा। और यदि वह युद्ध में मारा जाय या .कैद हो जाय तो भी समूचा महाराष्ट्र भड़क उठेगा। इस दशा में उसे खरीद लेना ही उचित समझा गया। ८ लाख रुपया वार्षिक पेन्शन

पाने की शर्त पर उसने अपने को सौंप दिया (१८-६-१८१८ ई०)। तब उसे बिठूर (कानपुर के पास) भेज दिया गया। उसके राज्य का कुछ अंश सतारा के राजा को दे कर बाक़ी अँगरेज़ों ने ले लिया।

उसी वर्ष अक्तूबर में एक अँगरेज़ी सेना महादेव पहाड़ियों में घुसी। अप्पासाहब तब चीतू पेंढारी की मदद से असीरगढ़ पहुँच गया। स्वयम् चीतू गढ़ तक न पहुँच कर जंगल में भागा जहाँ वह एक बाघ के मुँह में पड़ गया। ७ एप्रिल १८१९ ई० को असीरगढ़ भी ले लिया गया, लेकिन अप्पासाहब निकल भागा था। वह इसके बाद क्रमशः लाहौर, मंडी और जोधपुर में शरणागत रहा।

उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट है कि मराठे अँगरेज़ों की गुलामी से असन्तुष्ट होते हुए भी कितने पस्त-हिम्मत थे। इस युद्ध में भाग लेने वाले एक अँगरेज़ अफ़सर ने लिखा है, "अपने शत्रुओं में भी इतनी क्षुद्र-हृदयता देख कर निराशा नहीं रोकी जाती। ऐसे तीस किले कुछ हफ़्तों में ले लिये गये, जिनमें से प्रत्येक शिवाजी जैसे स्वामी के रहते भारत की समूची अँगरेज़ी सेना को रोके रख सकता था, जिन्हें अभेद्य बनाने के लिए दृढ़-संकल्प रक्षकों के सिवाय किसी चीज़ की ज़रूरत न थी।...यह समूचा देश, जो प्राकृतिक नाकेबन्दी की दृष्टि से शायद संसार में सबसे विकट है, जिसे प्रकृति ने मानो स्वाधीनता के सफल युद्ध लड़े जाने के लिए ही बनाया है,...जिसमें अनसधे अर्द्धसज्जित सिपाही अत्यन्त चतुर अनुभवी सैनिकों को रोक सकते थे,...कुछ हफ़्तों में ही...हमारे हाथ आ गया।"

सन् १८१६ में कच्छ का राजा भी अँगरेज़ों की रक्षा में आ गया था।

§१५. पहला बरमा युद्ध (१८२४-२६)—लार्ड हेस्टिंग्स ने १८२३ ई० तक शासन किया। सन् १८२३ से २८ ई० तक लार्ड ऐम्हर्स्ट भारत का गवर्नर-जनरल रहा। उसके समय में बरमा से पहला युद्ध हुआ।

बरमी जाति का केन्द्र मध्य इरावती काँठे में है। वे पहले पोगू के तलाईं राज्य के अधीन थे। तलाईं उस आग्नेय वंश में से हैं जो बरमियों और स्यामियों के आने से पहले समूचे परले हिन्द में फैला हुआ था। अठारहवीं शती के मध्य में बरमी स्वतन्त्र हुए। उसके बाद उन्होंने पोगू, स्याम का तनेताई (तनासरीम) प्रान्त, अरकान राज्य तथा उत्तरी बरमा जीत लिये। कुछ विद्रोही अरकानी भाग कर चटगाँव में आ बसे। लार्ड मिन्टो और हेस्टिंग्स के शासन-काल में ये लोग बराबर युरोपियनों के नेतृत्व में अरकान पर छापे मारते और चटगाँव में शरण लेते थे। ये एक

तरह से ब्रिटिश पेंढारी थे। सन् १८२२ तक मणिपुर और आसाम जीत कर बरमी लोग कछार राज्य को जीतने लगे। तब अँगरेज़ी सेना कछार और आसाम में घुसी। साथ ही कलकत्ता और मद्रास से एक अँगरेज़ी फ़ौज ने रंगून पर भी चढ़ाई की। बरमियों ने शहर खाली कर दिया था। अँगरेज़ों ने उसे ले लिया, पर रसद और वाहन न मिलने से तथा बरमियों के छापों के कारण आगे न बढ़ सके।

इधर बरमी सेनापति महाबन्धुल चटगाँव ज़िले में घुसा और वहाँ एक अँगरेज़ी सेना को कुचल कर आगे बढ़ने लगा। ढाका और कलकत्ता में तब आतंक छा गया। लेकिन रंगून का लिया जाना सुन बन्धुल उधर लौट पड़ा। "ऐसे सेनापति से विशेष डरने की ज़रूरत न थी जिसने (शत्रु की) ऐसी कठिन स्थिति से लाभ उठाने की न सोची।"

कछार की तरफ़ से अँगरेज़ बरमा में न घुस सके, लेकिन उन्होंने समुद्रतट के अरक्षित तनेताई (तनासरीम) प्रान्त पर दखल कर लिया, जहाँ उन्हें रसद-सामान काफ़ी मिल गया। १ली एप्रिल १८२५ ई० को दोनाबू की लड़ाई में महाबन्धुल मारा गया; उसके बाद अँगरेज़ प्रोम तक जा पहुँचे। जाड़े में अँगरेज़ सेनापति के राजधानी आवा से चौथे पड़ाव यांडबो पहुँच जाने पर सन्धि हुई (२-३-१८२६ ई०)। बरमियों ने आसाम, कछार, अरकान और तनाताई प्रान्त सौंप दिये।

बरमा-युद्ध के सिलसिले में कलकत्ते के पास एक दुर्घटना हो गयी। बंगाल के देसी सिपाहियों को उन दिनों बारकें न मिलती थीं; अपने खर्च से उन्हें झोंपड़े बनाने पड़ते थे। युद्ध-भूमि तक अपना सामान ले जाने का प्रबन्ध भी खुद करना पड़ता था। वेतन ५ रुपया ८ आना मासिक ही था। जब तक अँगरेज़ी राज्य कर्मनाशा नदी तक था, वे इसमें कठिनाई न मानते थे। अब बारकपुर की रेजिमेन्ट को रंगून जाने का हुक्म हुआ तो पहले तो उन्होंने समुद्र पार जाने से इनकार किया, पीछे कहा कि दूना भत्ता मिलना चाहिए। जंगी लाट सर एडवर्ड पाजेट ने परेड में देशी रेजिमेन्ट को गोरी फ़ौज से घिरवा कर उन्हें हुक्म दिया कि कूच को तैयार हों या शस्त्र रख दें। उनसे यह भी नहीं कहा गया कि तोपों में अंगूरी छर्रा भरा है और वे छुटने को तैयार हैं। एक बार इनकार करते ही उनको तोपों से उड़ा दिया गया (१-११-१८२४ ई०)।

§१६. रणजीतसिंह का सेना-संगठन और राज्य-वृद्धि (१८०६-२७ ई०)—सन् १८०५ में रणजीतसिंह केवल एक सरदार था, पर १८०६ ई०

तक वह महाराजा बन चुका था। सतलज पार की सब मिस्लें तब तक उसके राज्य में मिल चुकीं थीं। वह अपने को सिक्ख जनता का अधिनायक मानता और प्रत्येक राजकीय काम 'खालसा' (सिक्ख जनता) के नाम पर ही करता था। उसकी प्रजा सुशासित और खुशहाल थी। पंजाब के किसान और व्यापारी मिस्लों के शासन में भी खुशहाल थे। अमृतसर जैसे समृद्ध नगर का उस समय में उदय होना इसका एक प्रमाण है। मिस्लों के सरदारों की पारस्परिक छीना-झपटी के कारण जो अव्यवस्था रहती थी, उसे भी अब रणजीतसिंह ने हटा दिया।

सन् १८०९ तक सब सिक्ख सेना सवारों की ही थी। अठारहवीं शती में सिक्ख सवारों ने तीर, कमान और भाले के बजाय बन्दूक अपना ली थी, और घोड़े पर चढ़े-चढ़े पथरकला चलाने में वे बड़े होशियार गिने जाते थे। सन् १८०५ में लार्ड लेक के पंजाब आने पर रणजीत भेस बदल कर उसकी छावनी में यह देखने गया था कि शिन्दे और होल्कर को हरा देने वाले अँगरेज़ों की व्यूह-रचना कैसी है। १८०९ ई० में उसने मेटकाफ़ के अँगरक्षकों की सुशृंखल गति-विधि देख कर तारीफ़ की। तब से उसने पंजाब में भी वैसी पंक्तिबद्ध पदाति सेना खड़ी करने का निश्चय किया। भीमसेन थापा का ध्यान उससे भी पहले इस ओर जा चुका था, और १८१४-१५ ई० के युद्ध में रणजीत ने जब गोरखों को अँगरेज़ों का मुकाबला करते देखा तो उसका पंक्तिबद्ध नियन्त्रण में विश्वास और भी दृढ़ हो गया। उसने कुछ गोरखा सेना अपने यहाँ रख ली, तथा ब्रिटिश सेना से सीख कर निकले हुए लोगों को सेवा में ले कर पंजाबियों की नियमित सेना तैयार करनी शुरू की।

राजपूत, मराठे और पठान योद्धाओं को पाँत में खड़े हो कर आदेश के अनुसार लड़ने में हेठी मालूम होती थी। सिक्खों में वह भाव बहुत कम था, और जो था भी, उसे रणजीत के प्रोत्साहन ने निकाल दिया। वह पैदल सेना को अच्छा वेतन देता, उसकी क़वायद और साज-सामान पर पूरा ध्यान रखता और बीच-बीच में खुद वर्दी पहन कर क़वायद में शामिल होता था। तोप का काम सिक्खों ने और भी उत्सुकता से सीखा। पंजाबी सेना इस प्रकार प्रायः तैयार हो चुकी थी, जब सन् १८२२ में फ्रान्सीसी सेनापति वेंतुरा और अलार ईरान के रास्ते लाहौर आये और सेवा में लिये गये। उन्होंने उस सेना का नियन्त्रण और पूर्ण कर दिया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस बीच रणजीत पच्छिमी पंजाब की तरफ़ क्रमशः बढ़ रहा था। सन् १८१६ ई० में शाहशुजा उसकी शरण से अँगरेज़ों की शरण में लुधियाना भाग आया, और वे उसे ५० हज़ार रुपया वार्षिक वृत्ति देने लगे। सन् १८१८ ई० में शाह महमूद के बेटे ने उसके वज़ीर फ़तहख़ाँ को मार डाला। फ़तहख़ाँ का एक भाई मुहम्मद अज़ीम कश्मीर का नाज़िम था। उसने काबुल पर चढ़ाई की। शाह महमूद भाग कर हरात चला गया। तब से दुर्रानी ख़ानदान के पास केवल हरात बचा रहा, और कश्मीर, पेशावर, काबुल, गज़नी तथा कन्दहार पर मुहम्मद अज़ीम अपने भाइयों की मदद से राज करने लगा।

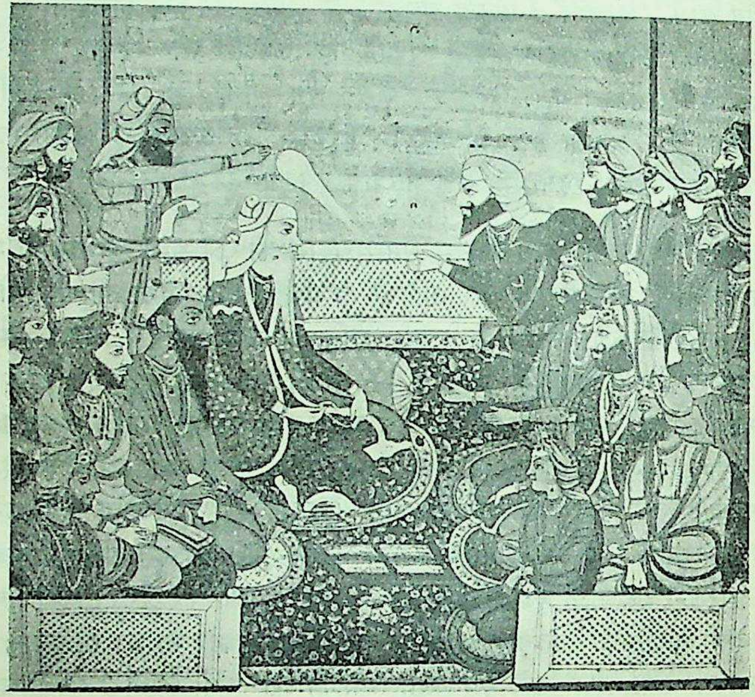

महाराजा रणजीतसिंह दरबार में

महाराजा के दाहिने बैठे (१) खड्गसिंह (२) नौनिहालसिंह; सामने बैठे (१) हीरासिंह (२) शेरसिंह (३) गुलाबसिंह (४) प्रतापसिंह; सामने खड़े (१) ध्यानसिंह (२) सुचेतसिंह।

समकालीन पंजाबी चित्र

[प्रिन्स आव वेल्स म्यू०, मुम्बई, के ट्रस्टियों के सौजन्य से]

लेकिन इस बीच रणजीतसिंह के सेनापति दीवानचन्द ने मुलतान जीत लिया था, और रणजीत ने अटक पार कर पेशावर के पास ख़ैराबाद में छावनी डाल दी थी। अगले तीन बरस में कश्मीर, डेरा-ग़ाज़ीख़ाँ और डेरा-इस्माइलखाँ भी जीते गये। सन् १८२३ में मुहम्मद अज़ीम पेशावर पर आया। नौशेरा पर काबुल नदी के दक्खिन रणजीतसिंह ने उसका सामना किया। नदी के उत्तर तरफ़ के पठान भी जिहाद की घोषणा कर पहाड़ों पर आ जुटे। रणजीत ने अपनी सेना का एक हिस्सा मुहम्मद अज़ीम के मुकाबले को छोड़ स्वयम् काबुल नदी पार की। सिक्ख रिसाले का पठानों पर हमला विफल हुआ। तब पठानों ने हमला कर सिक्ख पैदल-पाँतों को भी गड़बड़ा दिया। लेकिन गोरखा सैनिकों की पाँतें उस हमले के बीच चट्टान की तरह डटी रहीं। नदी पार से तोपों की मार ने भी पठानों की बाढ़ को रोका। इस बीच में पिछली सिक्ख पाँतें आगे बढ़ आयीं और रिसाले ने फिर हमला किया। रणजीत की पूरी जीत हुई (१४-३-१८२३ ई०)। दूसरे दिन पठान फिर इकट्ठे हुए, लेकिन मुहम्मद अज़ीम मैदान से भाग गया था। तब ख़ैबर दर्रे तक रणजीतसिंह ने अधिकार कर लिया। पेशावर में उसने मुहम्मद अज़ीम के एक भाई को अपना सामन्त नियत किया।

इसके बाद मुहम्मद अज़ीम चल बसा और उसका भाई दोस्त मुहम्मद काबुल पर राज करने लगा। कन्दहार में भी उसके भाइयों का राज था। काबुल और कन्दहार ये दो ही प्रदेश अब इन भाइयों के स्वतन्त्र राज्य में थे।

सन् १८१८ ई० में फ़तहख़ाँ के मारे जाने पर अँगरेज़ों ने शाह शुजा को भी अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई करने जाने दिया था। लुधियाना से बहावलपुर सक्खर के रास्ते वह शिकारपुर तक बढ़ा और वहाँ से हार कर लौटा था।

अध्याय २

अँगरेज़ी शासन का संगठन

(१७६६–१८३६ ई०)

§ १. मुनरो, एल्फ़िन्स्टन, मालकम, मेटकाफ़, और बेंटिंक का कार्य— क्लाइव और हेस्टिंग्स की पहली विजयों के बाद जब उनके सामने देश के प्रबन्ध और जमीन के बन्दोबस्त के प्रश्न आये, तो उन्हें कोई पद्धति न सूझ पड़ी, और वे साल-ब-साल मालगुज़ारी को नीलाम करते रहे। कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार और

बनारस में जमीन का स्थायी बन्दोबस्त किया और एक शासनपद्धति स्थापित की। आन्ध्र देश के "उत्तरी सरकारों" में तब भी पुराने तरीके से मालगुज़ारी की नीलामी चलती रही। सन् १७९२ ई० में कार्नवालिस को टीपू से मलबार और बारामहाल (सेलम, कृष्णागिरि) मिले। बारामहाल का बन्दोबस्त एक फ़ौजी अफ़सर को सौंपा गया। टामस मुनरो उसका सहायक था।

वेल्ज़ली के समय टीपू के राज्य में से कनाड़ा, कोयम्बतूर और नीलगिरि कम्पनी ने ले लिये। निज़ाम को तुंगभद्रा के दक्खिन के बेल्लारि, अनन्तपुर, कडप ज़िले मिले, जो उसने अँगरेज़ों को दे दिये। फिर तांजोर और आरकाट राज्यों पर दखल किया गया। इन इलाकों में से अधिकांश का बन्दोबस्त टामस मुनरो ने ही किया। बाद में मद्रास अहाते के शासन का संगठन उसी को सौंपा गया, और सन् १८२० से सन् १८२७ तक वह मद्रास का गर्वनर रहा।

वेल्ज़ली के अधीन काम सीखने वाले नवयुवकों में से मौएट स्टुअर्ट एल्फ़िन्स्टन, जान मालकम और चार्ल्स मेटकाफ़ के नाम उल्लेखनीय हैं। इनके कार्य-क्षेत्र क्रमशः महाराष्ट्र, मध्य भारत तथा उत्तर भारत थे।

एल्फ़िन्स्टन सन् १८१९ से सन् १८२७ तक मुम्बई का गवर्नर रहा; उसके बाद उसी पद पर मालकम ने काम किया। वेल्ज़ली ने अवध के नवाब से इलाहाबाद, फ़र्रुख़ाबाद तथा रुहेलखंड के इलाके लिये, और इटावा से पच्छिम के जमना-तट के ज़िले शिन्दे से जीते। पहले इनका शासन बंगाल अहाते के अधीन रहा। १८३४ ई० से जब आगरा का अलग प्रान्त बना तो मेटकाफ़ उसका पहला गवर्नर नियत किया गया।

लार्ड विलियम बेंटिक सन् १८०३ से १८०७ ई० तक मद्रास का गवर्नर था। वेल्लूर में सिपाहियों का एक बलवा होने पर उसे पदच्युत किया गया था। सन् १८२८ में उसे भारत का गवर्नर-जनरल बना कर भेजा गया। उसके बाद एक बरस (१८३५-३६ ई०) मेटकाफ़ उस पद पर रहा। सर टामस मुनरो ने मद्रास में जिस शासन-योजना का विकास किया, प्रायः उसी का अनुसरण एल्फ़िन्स्टन ने मुम्बई में किया, और फिर उन दोनों की नीति का बेंटिक ने समूचे भारत पर प्रयोग किया।

६२. मद्रास और मुम्बई का रैयतवारी बन्दोबस्त—बारामहाल का मालगुज़ारी-बन्दोबस्त करते समय मुनरो ने यह देखा कि वहाँ जमींदार नहीं थे।

उसने वहाँ सीधा किसानों से बन्दोबस्त किया। तब से उसका झुकाव रैयतवारी अर्थात् किसानों से सीधा बन्दोबस्त करने की तरफ़ हो गया।

कम्पनी हर इलाके को अधिक से अधिक दुहना चाहती थी। मालगुज़ारी जितनी बढ़ सके बढ़ायी जाती, और उसे सख्ती से वसूल किया जाता। मलबार में अँगरेज़ अफ़सरों के ऐसा करने पर वहाँ के 'राजाओं' और नायर सरदारों ने विद्रोह किया। उस विद्रोह को कड़ाई से कुचला गया। यों धीरे-धीरे मलबार से जमींदार प्रायः लुप्त हो गये।

तांजोर के किसान अपने मुखियों द्वारा राजा को मालगुज़ारी दिया करते थे। ये मुखिया पट्टकदार कहलाते थे और धीरे-धीरे जमींदार बनते जाते थे। अँगरेज़ों ने सीधा किसानों से बन्दोबस्त किया जिससे पट्टकदारों की सफ़ाई हो गयी।

आरकाट के इलाकों में अनेक छोटे सरदार थे। उनकी जागीरें पालयम और वे पालयगार कहलाते थे। ये पुराने समयों के गाँवों के मुखियों या राज्याधिकारियों के वंशज थे जो नवाब के अनिच्छुक सामन्त बन गये थे। अनेक राज-विप्लवों के बीच यही देश के वास्तविक शासक रहे थे। इनकी सामरिक शक्ति भी काफ़ी थी। नवाब मुहम्मदअली ने इनके दमन के लिए अनेक बार अँगरेज़ों से मदद ली। अँगरेज़ों को भी इन्हें कुचल देना अभीष्ट था। सन् १७९९-१८०० ई० में इनकी अपने-अपने गाँवों से बाहर की जमीनें ज़ब्त करके बाक़ी जमीनों पर एकाएक ११७ फ़ी सदी मालगुज़ारी बढ़ा दी गयी। इस पर इन्होंने विद्रोह किया तो इनकी जागीरें ज़ब्त की गयीं और बहुतों को फाँसी दे दी गयी। मुनरो ने लिखा—"कोई आवारा राजा सिर उठायेगा तो मैं उसे ठीक कर दूँगा।" सन् १८०२-३ में बचे खुचे पालयगारों के साथ स्थायी जमींदारी और बाक़ी इलाकों में रैयतवारी बन्दोबस्त किया गया।

"उत्तरी सरकारों" में सन् १८०२ से १८०५ तक लार्ड वेल्ज़ली ने जमींदारों से स्थायी बन्दोबस्त करा दिया। वहाँ बहुत सी "हवेली" अर्थात् राजकीय जमीनें भी थीं। उनकी चकबन्दी करके उन चकों की जमींदारियाँ नीलाम कर दी गयीं। पुराने जमींदार तो पुराने स्थानीय शासक थे और पुरानी परम्परा से चलते थे। पर इन नये जमींदारी खरीदने वालों ने केवल नफ़े के ख्याल से पूँजी लगायी थी, इसलिए ये किसानों से अधिक से अधिक लगान लेने लगे।

मद्रास के अधिक हिस्सों में किसानों से सीधा बन्दोबस्त करने का उद्देश्य यह नहीं था कि किसानों के पास उनकी पूरी कमाई बनी रहे, प्रत्युत यह कि उपज का जो हिस्सा जमींदार ले जाते, वह भी कम्पनी को मिले। रैयतवारी बन्दोबस्त में भी किसान को जमीन का मालिक न माना गया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी खुद मालिक बन बैठी थी, और मालिक अपनी पूँजी से जिस नफ़े की आशा करता है, भारत के खेतों से वह नफ़ा वह खुद लेना चाहती थी। किसान उसकी दृष्टि में उसकी "रैयत" थे, जिन्हें मज़दूरी भर मिलनी चाहिए थी। इस प्रकार इस पद्धति में हाकिम रैयत को जो खेत सौंप दे, उसका ज़िम्मा उस रैयत को लेना ही पड़ता था। बाद में नफ़ा न होने से अगर वह खेत को छोड़ कर भागे भी, तो उसका पीछा करके उसे पकड़ा जाता। एक-एक कलक्टर के लिए डेढ़-डेढ़ लाख किसानों के साथ बन्दोबस्त करना सम्भव न था। इसलिए छोटे अमले किसानों पर मनमानी करने लगे।

किसानों की दृष्टि से जमींदारी और रैयतवारी दोनों बन्दोबस्त एक समान थे। एक में जमींदार जमीन के मालिक बन बैठे थे और दूसरे में कम्पनी; किसान दोनों दशा में मालिक के बजाय 'रैयत' बन गये थे। पुराने जागीरदार वास्तव में स्थानीय शासक थे, और जिन किसानों से वे वसूली करते थे, ज़मीन के मालिक वही थे। जागीरदारों की शासन-शक्ति अँगरेज़ों ने तोड़ दी। लेकिन इसके बावजूद बंगाल-बिहार में जब कार्नवालिस ने उन जागीरदारों के साथ जमीन का बन्दोबस्त किया तो उसका अर्थ केवल यह था कि स्थानीय शासन के कार्य में से वसूली का काम उन्हें सौंपा गया जिसके बदले में उन्हें १० प्रतिशत कमीशन दिया गया। जिन लोगों के साथ बन्दोबस्त किया गया था, वे प्रायः मालगुज़ारी-वसूली को नीलामी में खरीदने वाले व्यापारी थे। लेकिन धीरे-धीरे उनका वह वसूली का ठेका जमीन की मिलकियत बनता गया और "नीलाम ख़रीदने वालों ने जो शक्तियाँ हथिया लीं, उनके कारण किसानों के पास किसी अधिकार की परछाँही भी नहीं बची, और एक खुशहाल और समृद्ध कृषक जनता दरिद्रता की सबसे निचली सतह पर जा गिरी।"

उस समय मद्रास बोर्ड आव रेविन्यू ने एक ऐसा प्रस्ताव किया जिससे वहाँ के किसानों को उसी गढ़े में गिरने से बचाया जा सकता था। भारतवर्ष में उस समय तक सब जगह गाँवों की पुरानी पंचायतें बनी हुई थीं। मद्रास बोर्ड का प्रस्ताव था कि सरकार प्रत्येक गाँव की पंचायत से मालगुज़ारी का स्थायी बन्दोबस्त

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कर दे, और गाँव के भीतर उसका बँटवारा तथा उसकी वसूली सब पंचायत पर छोड़ दे। इससे किसानों की मिलकियत भी नष्ट न होती और स्थानीय स्वशासन भी उनके हाथों में बना रहता। लेकिन मुनरो के प्रभाव से यह प्रस्ताव स्वीकृत न हो पाया, और सन् १८२० में, मद्रास प्रान्त में जहाँ-जहाँ जमींदारों से स्थायी बन्दोबस्त न हो चुका था, वहाँ अस्थायी रैयतवारी बन्दोबस्त कर दिया गया, और उपज की ४५, ५०, ५५ फ़ी सदी तक मालगुज़ारी तय की गयी। पीछे मुनरो ने इस दर को घटा कर उपज का तिहाई कर दिया।

मुम्बई का विशाल प्रान्त तीसरे मराठा युद्ध के बाद बना। वहाँ भी अनेक जगह कृषक ही जमीन के मालिक थे, जो मिराशी या मिराशदार कहलाते थे। जहाँ जागीरदार थे, उनकी शक्ति तोड़ने की भरसक चेष्टा की गयी। गाँवों की पंचायतें सब जगह थीं, जो "आत्म-परिपूर्ण छोटे-छोटे राज्य जैसी थीं।" एल्फ़िन्स्टन ने मालगुज़ारी का बन्दोबस्त तो सीधा कृषकों से कराया (१८२४–२८ ई०), पर वसूली का काम गाँव के मुखियों को सौंप दिया। इससे वे मुखिया सरकारी नौकर बन गये। पंचायतों के हाथ में कोई सामूहिक कार्य न रह जाने से वे धीरे-धीरे लुप्त होती गयीं।

मुम्बई प्रान्त के इस बन्दोबस्त में बहुत ग़लत माप और पैदावार के बढ़ाये हुए अन्दाज़ के आधार पर उपज की ५५ प्रतिशत मालगुज़ारी नियत की गयी। कृषकों को भयंकर यातनाएँ दी गयीं; वे घर छोड़ कर भागने लगे। सन् १८३५ ई० में विंगेट ने फिर ३० बरस के लिए बन्दोबस्त किया, जिसमें माप तो ठीक की गयी, पर कर की दर ऊँची ही रही। किसान अपनी जमीनें बचाने के लिए सूदख़ोर महाजनों के पंजों में पड़ने लगे।

§ ३. ग्राम-पंचायतें और अँगरेज़ी शासन-योजना—कार्नवालिस की चलायी शासन-योजना सफल न हुई थी। मिन्टो और हेस्टिंग्स के समय बंगाल-बिहार के ज़िलों पर डाकुओं का स्वच्छन्द राज बना रहता था। अँगरेज़ राज-कर्मचारी देश से अपरिचित होने के कारण शासन और न्याय का काम न चला सकते थे।

मद्रास में अब शासन के पुनः संगठन का काम भी सर टामस मुनरो को सौंपा गया। मुनरो ने ये प्रस्ताव किये—(१) गाँव-पंचायतें फिर से संगठित कर गाँवों में पुलिस का प्रबन्ध उन्हीं को सौंप दिया जाय; (२) न्याय-विभाग में भरसक देशी जज नियुक्त किये जाँय; और (३) कलक्टर को मजिस्ट्रेट के अधिकार भी दिये जाँय।

उसकी पहली बात न मानी गयी। दूसरी बात अंशतः मानी गयी और छोटे पदों पर देशियों की नियुक्त होने लगी। तीसरी बात को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने उत्सुकता से स्वीकार किया। उन्हें अपनी आमदनी से मतलब था, इसलिए मालगुज़ारी वसूल करने वाले हाकिमों के हाथ में अधिक से अधिक ताक़त देना उन्हें पसन्द था। बाद में बेंटिंक ने यह योजना समूचे भारत के लिए जारी कर दी।

बम्बई का शासन-संगठन एल्फ़िन्स्टन ने किया। उसने अँगरेज़ों के चलाये हुए कुल नियम-क़ायदों को स्मृतिबद्ध कर दिया। मुनरो की तरह उसने भी छोटे पदों पर भारतीयों को नियुक्त करने की नीति पकड़ी। उसने शिक्षा फैलाने की भी कोशिश की। उस समय की अनेक ग्राम-पंचायतें पाठशालाएँ भी चलाती थीं। उसने उन शालाओं को पुस्तकें छपवा कर देने का प्रबन्ध किया। लेकिन वे पंचायतें स्वयम् लुप्त होने जा रहीं थीं।

§ ४. उत्तर भारत का महालवारी बन्दोबस्त—अवध के नवाब के सौंपे हुए इलाके सन् १८०१ ई० में सात ज़िलों में बाँटे गये, और उनकी मालगुज़ारी एकदम २०-३० लाख रुपया वार्षिक बढ़ा दी गयी। यह घोषणा की गयी कि १० बरस बाद स्थायी बन्दोबस्त किया जायगा। सन् १८०३ में शिन्दे से जीते हुए इलाके के ५ ज़िले बनाये गये और वहाँ भी ऐसी ही घोषणा की गयी। उस युद्ध और मालगुजारी बढ़ाने का परिणाम सन् १८०४ का दुर्भिक्ष हुआ।

सर चार्ल्स मेटकाफ़
दिल्ली में अंकित समकालीन चित्र
[दिल्ली म्यू०, भा० पु० वि०]

मिन्टो और हेस्टिंग्स दोनों ने अपने-अपने शासन-काल में इन इलाकों में स्थायी बन्दोबस्त कर डालने का अनुरोध किया। लेकिन डाइरेक्टरों ने फ़ैसला किया कि वैसा न होगा।

यह फ़ैसला हो जाने पर सन् १८२२ ई० में उत्तर भारत तथा भोंसले से जीते गये कटक प्रदेश के मालगुज़ारी बन्दोबस्त के लिए तह योजना बनायी गयी कि कुल जमीन-मिलकियत की जाँच की जाय, और एक-एक "महाल" अर्थात् जायदाद की एक-एक इकाई पर सरकारी "जुम्मा" तय कर दिया जाय। जहाँ जमींदार हों, वहाँ जमींदारों से और जहाँ किसानों की जमीनें हों वहाँ

गाँव के मुखियों से बन्दोबस्त किया जाय। इन मुखियों का कलक्टर के रजिस्टर में नम्बर रहता था इससे ये नम्बरदार कहलाये।

यह योजना भी एक अरसे तक सफल न हुई। सरकार की माँग इतनी अधिक थी कि किसान और जमींदार दे न पाते थे। मिलकियत की जाँच में लोग सहयोग न देते थे। सन् १८३० में मेटकाफ़ ने प्रस्ताव किया कि पंचायतों को बनाये रक्खा जाय और व्यक्तिशः किसानों से बन्दोबस्त न किया जाय। सरकार ने यह स्वीकार नहीं किया। सन् १८३३ में बेंटिंक ने मालगुज़ारी की दर घटा दी। उसके अनुसार रौबर्ट बर्ड ने सन् १८३३ से १८४९ तक इन इलाकों का ३० साल के लिए बन्दोबस्त किया।

सागर और नर्मदा प्रदेश अर्थात् आजकल का हिन्दी मध्य प्रान्त सन् १८१८ में अँगरेज़ी शासन में आया। सन् १८६१ ई० तक उसका शासन कभी सीधा भारत-सरकार के और कभी उत्तर-पच्छिमी प्रान्त (आधुनिक युक्त प्रान्त) के अधीन रहा। शुरू में वहाँ त्रिवार्षिक और पंचवार्षिक बन्दोबस्त होता रहा। मराठा सरकार जितनी मालगुज़ारी लेती थी, अँगरेजों ने एकदम उससे सातगुनी कर दी। सन् १८३५-३६ में २०-वार्षिक बन्दोबस्त किया गया, पर मालगुज़ारी की दर तब भी मराठा दर से तिगुनी रही। फल यह हुआ कि "परगने मानो मुर्दा हो गये। ऐसी बरबादी हुई कि मानव जीवन के चिन्ह न दिखायी देते थे।"

§५. नमक और अफ़ीम का एकाधिकार—कम्पनी ने जो भी नया प्रदेश पाया वहाँ क्लाइव की नीति का अनुसरण करते हुए नमक और अफ़ीम के कारोबार पर अपना एकाधिकार रक्खा।

§६. शिक्षा, कानून और अन्य सुधार—कलकत्ते में पहले-पहल सन् १८१७ में डैविड हेयर नामक एक घड़ीसाज़ ने एक अँगरेज़ी स्कूल खोला। सन् १८२३ में कम्पनी की सरकार ने शिक्षा के लिए कुछ खर्च मंजूर किया। कलकत्ते में एक "मदरसे" की स्थापना सन् १७८५ में और बनारस में संस्कृत कालेज की स्थापना सन् १७९१ में ही हो चुकी थी। अब दिल्ली और आगरा में भी कालेज खोले गये, और संस्कृत और अरबी की कुछ पुस्तकें छापी गयीं।

सन् १८३३ में कम्पनी को नया चार्टर मिलने पर शिक्षा के सम्बन्ध में एक कमिटी बैठायी गयी। मैकाले उसका सभापति था। भारतवासियों को कैसी शिक्षा दी जाय, यह प्रश्न उस कमिटी के सामने था। कमिटी में कुछ ऐसे अँगरेज़ थे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जो संस्कृत, फ़ारसी आदि "प्राच्य" भाषाओं का अध्ययन और "प्राच्य" पुरातत्व की खोज करते थे। इनका मत था कि इन्हीं भाषाओं और इनके पुराने साहित्यों द्वारा भारतीय युवकों को शिक्षा दी जाय। दूसरा पक्ष पाश्चात्य शिक्षा वालों का था। बंगाल में उन्नीसवीं शती के आरम्भ में (१७७४-१८३३ ई०) राममोहन राय नामक एक सुधारक प्रकट हुए थे। उनका कहना था कि भारतवासियों को "प्राच्य" शिक्षा से वैसा लाभ न होगा जैसा युरोपियन गणित विज्ञान आदि की शिक्षा देसी भाषाओं में पाने से होगा।

मैकाले ने "प्राच्य" शिक्षा का मज़ाक उड़ाया और पाश्चात्य पक्ष का साथ दिया। पर उसने पश्चिमी विज्ञान के बजाय अँगरेज़ी भाषा और साहित्य की शिक्षा पर ही जोर दिया, और इस बात की उपेक्षा की कि देशी भाषाओं द्वारा भी शिक्षा दी जा सकती थी। वास्तव में भारतीयों की शिक्षा के लिए ठीक मार्ग यही था कि देशी भाषाओं में पाश्चात्य विज्ञान को अपना लिया जाता। मैकाले का एक और प्रयोजन भी था—"जहाँ हमारी भाषा जायगी, वहाँ हमारा व्यापार भी पहुँचेगा।" अन्त में अँगरेज़ी पक्ष की जीत हुई। तब से अँगरेज़ी स्कूलों-कालेजों की स्थापना होने लगी।

सन् १८३३ ई० के नये चार्टर के अनुसार कम्पनी का व्यापार उठा दिया गया; अब से उसका काम केवल शासन रह गया। भारत में व्यापार करने तथा बसने के लिए सब अँगरेज़ों को स्वतन्त्रता और प्रोत्साहना दी गयी। भारत की मुल्की सेवा (सिविल सर्विस) में भाग लेने वाले युवकों की शिक्षा के लिए इंगलैंड में प्रबन्ध किया गया। तब तक तीनों प्रान्तों के गवर्नर अलग-अलग क़ायदे (रेगुलेशन) बनाते थे। अब यह तय हुआ कि समूचे भारत के लिए गवर्नर-जनरल कानून बनाया करे। कानूनों के मसविदे तैयार करने को गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक अतिरिक्त मेम्बर नियत किया गया। पहले-पहल यह पद मैकाले को मिला। मैकाले ने इस पद पर रहते हुए भारतीय दंड-विधान (इंडियन पिनल कोड) का मसविदा तैयार किया।

लार्ड विलियम बेंटिंक ने मुनरो और एल्फ़िन्स्टन का अनुसरण करते हुए भारतवासियों के लिए छोटे ओहदे खोल दिये। मालगुज़ारी की दर बेंटिंक ने सब जगह कम की। तब तक देश के भीतरी व्यापार पर जगह-जगह चुंगी लगती थी। बेंटिंक ने बंगाल से कुल चुंगी-चौकियाँ उठा दीं।

राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ़ आन्दोलन उठाया था। बेंटिक ने एक क़ायदे द्वारा उस प्रथा को रोक दिया। समूचे भारत के रास्तों पर तब ठग लोग यात्रियों को लूटते-मारते थे। बेंटिक ने कर्नल स्लीमन को उनके उन्मूलन का काम दिया। तब तक फ़ारसी अदालती भाषा थी। बेंटिक ने अँगरेज़ी और प्रान्तीय भाषाओं को वह स्थान दे दिया।

§ ७. **बेंटिक के समय की राजनीतिक घटनाएँ**—मैसूर के जिस शिशु राजा को वेल्ज़ली ने स्थापित किया था, बेंटिक ने उसे पेन्शन दे कर अलग कर दिया (सन् १८३१ ई०); अगले ५० वर्ष मैसूर का शासन अँगरेज़ों के हाथ में रहा। कछार और 'कुर्ग' (कोडुगु) राज्यों की भीतरी अव्यवस्था से लाभ उठा कर बेंटिक ने उन्हें ज़ब्त कर लिया। 'कुर्ग' की पहाड़ी भूमि अँगरेज़ों के बसने के लिए उपयुक्त समझी गयी। वहाँ बहुत से अँगरेज़ कहवे की काश्त कराने को बस गये।

दौलतराव शिन्दे सन् १८२७ ई० में मर चुका था। उसकी विधवा बायजाबाई बालक राजा जनकोजी के नाम पर शासन चलाती थी। बेंटिक ने चाहा कि राजा पेन्शन ले कर राज्य छोड़ दे। लेकिन गवालियर का रेज़िडेन्ट कैवेंडिश इस षड्यन्त्र से सहमत न हुआ और उसने "आगरा को बम्बई से जोड़ देने का सुयोग खो दिया।"

जयपुर और जोधपुर राज्यों के मामलों में भी बेंटिक ने दखल दिया और साँभर ज़िले तथा साँभर झील पर कुछ समय के लिए कब्ज़ा कर लिया।

सन् १८३० ई० से अँगरेज़ सतलज से आगे बढ़ने का आयोजन भी करने लगे।

———

अध्याय ३

उत्तर-पच्छिमी सीमान्त की ओर बढ़ना

(१८३०–१८४६ ई०)

§ १. **मध्य एशिया में रूसी और अँगरेज़ अग्रदूत**—हम देख चुके हैं* कि १५वीं-१६वीं शती में रूसियों ने अपने देश के पूरबी भाग से मंगोलों को निकाल दिया था। उसी प्रसंग में वे यूराल से पूरब बढ़ते गये। सन् १५८० ई० में उन्होंने इर्तिश नदी के निचले काँठे में सिबिर नामक कसबे पर दखल कर लिया। वहाँ से पूरब तरफ़

---

*ऊपर, पृ० २७६।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

निर्जन बर्फ़ीले प्रदेशों पर अधिकार जमाते हुए सन् १६३६ में वे ओखोत्स्क समुद्र तक जा पहुँचे। सिबिर के नाम से इस विशाल प्रदेश का नाम उन्होंने सिबिरिया रक्खा। १७वीं शती के मध्य तक उनका साम्राज्य दक्खिन तरफ़ बैकाल झील तक पहुँच गया। १६वीं शती के शुरू से वे कोह काफ़ के रास्ते ईरान को दबाने लगे और उनके अग्रदूत मध्य एशिया में पहुँचने लगे। सन् १८१५ में एक रूसी व्यापारी लदाख के राजा तथा रणजीतसिंह के नाम रूसी अमात्य की चिट्ठियाँ ले कर आया।

इधर अँगरेज़ अग्रदूत भी अब भारत से मध्य एशिया को जाने लगे। सन् १८१६ में मूरक्राफ़्ट नामक अँगरेज़ पंजाब-लदाख के रास्ते यारकन्द और बुखारा की यात्रा के लिए रवाना हुआ। उसके बाद कई अँगरेज़ों ने मध्य एशिया की यात्रा की।

नैपोलियन के पतन के बाद फ्रान्स और इंगलैंड की पुरानी स्पर्द्धा समाप्त हुई, और रूस तथा इंगलैंड में यह नयी स्पर्द्धा शुरू हो गयी।

§ २. सिन्धु-नौचालन-योजना—सिन्ध प्रान्त उत्तर-पच्छिमी देशों की कुंजी है। मुलतान-डेराजात जीतने के बाद से रणजीतसिंह उसे ले लेने का मौका देख रहा था; शिकारपुर पर तो उसका खास तौर से दावा था। इधर अँगरेज़ भी सिन्ध पर घात लगाये हुए थे। सिन्ध नदी की जाँच करने का उन्होंने अब एक अच्छा बहाना बनाया। इंगलैंड के राजा की तरफ़ से रणजीतसिंह को भेंट करने के लिए एक गाड़ी और घोड़े बम्बई भेजे गये, और उन्हें सिन्ध और रावी नदियों द्वारा लाहौर भेजना तय हुआ! जब लेफ़्टिनेन्ट बर्न्स इस बेड़े को ले कर सिन्ध में घुसा (१८३१ ई०) तो नदी के किनारे एक सैयद ने हाथ उठा कर कहा, "सिन्ध अब गया! अँगरेज़ों ने हमारी नदी को देख लिया!"

रणजीत भी अँगरेज़ों की इस चाल से बेचैन हो सिन्ध की सीमा पर अपना अधिकार दृढ़ करने लगा। उसकी रोकथाम करने को वेंटिंक रोपड़ में उससे मिला (अक्टूबर १८३१ ई०)। रोपड़ आने से पहले वह कर्नल पौटिंजर को सेना के साथ हैदराबाद भेज चुका था। सिन्ध के अमीरों को यह सन्धि करने को बाधित किया गया कि वे अँगरेज़ी जहाज़ों के लिए सिन्ध नदी को खुला रक्खेंगे और उसमें गोदी (डौक्-यार्ड) स्थापित करेंगे; परन्तु इसके साथ यह शर्त थी कि कोई जंगी सामान या बेड़ा सिन्ध में से न गुज़रेगा। यह हो जाने पर रणजीत से लाहौर में कहा गया कि वह भी सिन्ध-सतलज-संगम के ऊपर सतलज में अँगरेज़ी नावों के लिए वैसी ही सुविधा कर दे। उससे यह भी कहा गया कि ब्रिटिश सरकार उसे

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

शिकारपुर जीतने की इजाज़त नहीं दे सकती। रणजीत इस पर बहुत झुँझलाया, तो भी उसने सतलज का रास्ता खोल दिया। सिन्ध के मुहाने से रोपड़ तक अब अँगरेज़ी स्टीम-बोटें चलने लगीं। मिट्ठनकोट (सिन्ध-सतलज-संगम के नीचे) तथा हरि-के-पत्तन (व्यास-सतलज-संगम पर) के सामने अँगरेज़ कारिन्दे इस व्यापार की देखभाल के लिए रहने लगे।

§३. **बर्न्स की मध्य एशिया यात्रा**—सन् १८३२ के शुरू में बर्न्स तीन साथियों के साथ दिल्ली से मध्य एशिया की यात्रा के लिए निकला। पंजाब अफ़गानिस्तान हो कर वह बुखारा तक गया। और सन् १८३३ में वापिस आ कर इंगलैंड चला गया। वहाँ उसका बड़ा स्वागत हुआ। इंगलैंड का राजा विलियम चतुर्थ भी उससे मिला और उसकी कहानी बड़ी रुचि से सुनने के बाद कहा, "तुम्हारा जीवन बना रहे, हमारे पूरबी साम्राज्य का लाभ हो।" सन् १८३५ में बर्न्स भारत लौट आया।

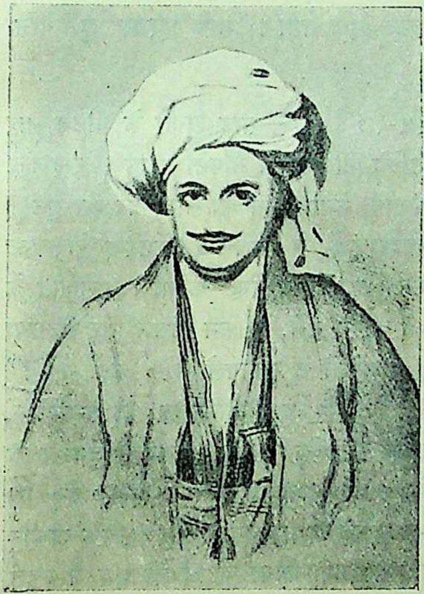

बर्न्स मध्य एशिया वेष में

§४. **सिक्ख राज का दक्खिन और पच्छिम से घेरा जाना**—(अ) शाहशुजा की अफ़गानिस्तान पर दूसरी* चढ़ाई (१८३३-३५ ई०)—इस सिलसिले में अँगरेज़ी सरकार ने शाहशुजा को रुपये की मदद दे कर फिर अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई करने दी। उस उथल पुथल में कोई न कोई पक्ष अँगरेज़ों की शरण माँगेगा, सो निश्चित ही था।

---

*लुधियाना आने के बाद से यह शाहशुजा की दूसरी चढ़ाई थी, सन् १७९० और १८१५ में भी वह प्रयत्न कर चुका था, उन्हें भी गिनें तो यह चढ़ाई चौथी थी।

रणजीतसिंह के तटस्थ रहे बिना शाहशुजा चढ़ाई न कर सकता था, इसलिए उसने उससे सन्धि की और सिन्ध पार के उसके जीते सब इलाके उसे विधिवत् दे दिये। शाह लुधियाने से बहावलपुर के रास्ते सिन्ध में घुसा और शिकारपुर के पास सिन्धियों को हरा कर कन्दहार की ओर बढ़ा। रणजीतसिंह ने सोचा कि काबुल में सफल होने पर शाह का रुख़ शायद बदल जाय, इसलिए उसने सेनापति हरिसिंह नलवा को भेज कर पेशावर को अपने सीधे शासन में ले लिया।

कन्दहार पर शाहशुजा और ख़ैबर पर हरिसिंह को देख दोस्त मुहम्मद ने अँगरेज़ों से शरण माँगी। लेकिन १-७-१८३४ ई० को उसने कन्दहार के पास शाह को हरा दिया, और तब अँगरेज़ों को भूल गया। शाह शुजा लुधियाना लौट आया।

इ. सिन्ध के लिए स्पर्द्धा (१८३५-३७ ई०)—शाह शुजा के लौटने पर शिकारपुर के शासक ने अपने को रणजीतसिंह की रक्षा में सौंपना चाहा। रणजीत के पोते नौनिहालसिंह की अधीनता में पंजाबी सेना सिन्ध की सीमा पर आ जुटी। तब अँगरेज़ों ने दख़ल दे कर कहा कि हैदराबाद में अब से अँगरेज़ रेजिडेन्ट रहेगा और वही सिन्धियों के बाहरी मामलों का नियन्त्रण करेगा। रणजीत के सरदारों ने उससे आग्रह किया कि अँगरेज़ों की न सुने, लेकिन उसने सिर हिलाया और कहा, "मराठों के दो लाख भाले (अँगरेजों के मुक़ाबले में) कहाँ गये ?" और फिर उस मामले को भूल जाने के लिए उसने उसी नौनिहाल की शादी पर, जो सिन्ध का विजेता होता, गवर्नर-जनरल को निमन्त्रित किया। गवर्नर-जनरल के बजाय जंगी लाट सर हेनरी फ़ेन शादी में सम्मिलित हुआ (मार्च १८३७ ई०)। उस मौके पर उसने पंजाब की शक्ति का अन्दाज़ लगा लिया और उसके अधीन एक अफ़सर ने लाहौर इलाके का पूरा नक़शा बना लिया जो अगले युद्ध में बहुत काम आया।

उ. सिक्ख-अफ़गान युद्ध (सन् १८३५-३७ ई०)—शाह शुजा को भगाने के बाद दोस्त मुहम्मद ने सिक्खों के खिलाफ़ युद्ध-घोषणा की। वह ख़ैबर पार तक आया। ११ मई सन् १८३५ को रणज़ीत ने उसे प्रायः घेर लिया; तब वह लड़े बिना भाग निकला।

हरिसिंह ने खैबर से आगे बढ़ने को जमरूद की किलाबन्दी की। दोस्त मुहम्मद के बेटे अकबरखाँ ने जमरूद पर हमला किया। ३०-४-१८३७ ई० की लड़ाई में हरिसिंह मारा गया और सिक्खों की हार हुई। लेकिन अफ़गान जमरूद को ले न सके और पीछे हट गये। रणजीत ने शीघ्र बड़ी कुमुक भेजी और खुद रोहतास तक आ गया। वह दोस्तमुहम्मद को अँगरेज़ों के हाथ में न जाने देना चाहता था, इसलिए उसे मना कर सन्धि की। पर इस बीच अँगरेज़ दूत भी काबुल पहुँच चुका था, और उसने सिक्खों-अफ़गानों के मामले में दखल देना चाहा। रणजीत ने देखा कि अँगरेज़ अब उसे पच्छिम तरफ़ भी रोकना और घेरना चाहते हैं।

ऋ. काबुल में अँगरेज़ 'वाणिज्य'-दूत—सन् १८३६ में लार्ड ऑकलैंड भारत का गवर्नर-जनरल बन कर आया। उसने बर्न्स को अँगरेज़ी 'वाणिज्य-दूत' बना कर काबुल भेजा। दोस्तमुहम्मद ने चाहा कि अँगरेज़ उसे पेशावर का इलाका रणजीतसिंह से वापिस दिला दें। बर्न्स ने उसे अँगरेज़ों की मदद मिलने की आशा दिलायी।

तभी ईरानियों ने रूसियों की मदद से हरात को घेर लिया और रूसी दूत काबुल पहुँचा। कर्नल पौटिंजर मुस्लिम फ़कीर का वेष धारण कर हरात के किले में जा घुसा और किले के रक्षकों का नेता बन उसने बहादुरी से ईरानियों का मुकाबला किया।

बर्न्स ने दोस्तमुहम्मद को आशाएँ तो बहुत दिलायीं, पर उन्हें पूरा न कर सका। कारण यह हुआ कि उसकी सरकार का रुख तब और ही था। वह एक भारी षड्यन्त्र पका रही थी। तब वह काबुल से वापिस लौट आया। उधर भारत से एक जंगी बेड़ा ईरान की खाड़ी में पहुँचा, जिससे डर कर ईरानियों ने हरात का घेरा उठा दिया (९-९-१८३८ ई०)।

लृ. सिक्खों का लदाख़ जीतना—अँगरेज़ों ने सिक्ख राज्य की प्रगति पूरब, दक्खिन तथा पच्छिम तरफ़ रोक दी, पर वह उत्तर तरफ़ हिमालय के बाँध को पार कर बढ़ने लगा। गुलाबसिंह नामक एक डोगरा* राजपूत एक सिपाही

---

* रावी और चनाब के बीच हिमालय की तराई, जिसका मुख्य नगर जम्मू है, डुगर कहलाती है, और उसके निवासी डोगरे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के रूप में रणजीतसिंह की सेना में भरती हुआ था। अपनी योग्यता के बल पर उसने धीरे-धीरे जम्मू की जागीर प्राप्त की। उसके छोटे भाई ध्यानसिंह और सुचेतसिंह भी ऊँचे पदों पर पहुँचे। तीनों को राजा का पद मिला। बाद में रावी से जेहलम तक सारे पहाड़ी इलाकों का शासन उन्हें सौंपा गया। गुलाबसिंह के अधीन किष्टवार के सेनापति ज़ोरावरसिंह ने १८३५ ई० में तिब्बत के सबसे पच्छिमी प्रान्त लदाख पर चढ़ाई की और उसे जीत लिया।

§५. त्रिपक्ष सन्धि—उत्तर पच्छिमी भारत के प्रश्न पर अँगरेज़ राजनीतिज्ञों में इस समय तीन विचार-धाराएँ प्रचलित थीं। एक मत यह था कि सतलज और थर अँगरेज़ी राज की बहुत अच्छी सीमाएँ हैं; और यदि रूस का प्रभाव अफ़गानिस्तान तक पहुँच भी जाय तो भी सिक्खों की मैत्री पर भरोसा रखना चाहिए। दूसरा मत बर्न्स का था। वह यह कि अँगरेज़ों को अफ़गानिस्तान से मैत्री करके रूस की दाल वहाँ न गलने देनी चाहिए। "वेल्ज़ली ने अफ़गानों पर ईरान द्वारा दबाव डलवाया था, अब हम सिक्खों द्वारा डाल रहे हैं. क्यों न हम अफ़गानों से सीधा सम्बन्ध रक्खें ?" लेकिन लन्दन और शिमला के राजनेताओं को न सिक्खों से प्रेम था, न अफ़गानों से; उन्होंने एक हिम्मत की कल्पना की थी। कल्पना यह थी कि शाहशुजा को मीरजाफ़र बना कर काबुल की गद्दी पर बैठाया जाय, सिन्ध शाह के नाम पर उनके काबू में आ जाय और पंजाब तीन तरफ़ से घिर जाय!

परन्तु रणजीतसिंह की सहमति के बिना यह योजना न चल सकती थी। इसलिए गवर्नर-जनरल का कौंसिलर मैकनाटन, जो इस षड्यन्त्र का दिमाग था, सन् १८३८ की गरमी में रणजीत के पास गया। शाहशुजा कई बार पहले भी अपनी गद्दी वापिस लेने के लिए रणजीत से मदद माँग चुका था, और उन दोनों के बीच सन्धि का मसविदा भी तैयार हो गया था। पर वह बात इस आशंका से टल गयी थी कि अँगरेज़ न जानें इस मामले में क्या रुख़ लें। रणजीत ने पहले समझा, अँगरेज़ अब उस योजना के लिए सहमति दे रहे हैं। लेकिन जब उसे मालूम हुआ कि वे इसमें सचेष्ट भाग लेंगे, और पंजाबी सेना के बजाय अँगरेज़ी सेना ही शाहशुजा को काबुल ले जायगी, तब वह बातचीत अधूरी छोड़ कर चल दिया। मैकनाटन ने जब उसे सन्देश भेजा कि वह भाग ले या न ले, काबुल पर चढ़ाई होगी ही, तब वह बड़ी अनिच्छा से षड्यन्त्र में शामिल हुआ। अँगरेज़ों

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

का यह आग्रह था कि चढ़ाई दो तरफ़ से हो—पंजाब से और सिन्ध से, और साथ ही यह कि अँगरेज़ी सेना शाहशुजा के साथ सिन्ध के रास्ते से जाय। इसमें उनके दो मतलब थे, एक तो वे शाह को रणजीत के हाथ में नहीं देना चाहते थे, और दूसरे, इस बहाने वे सिन्ध को पूरी तरह काबू में कर लेना चाहते थे।

§ ६. अफ़गानिस्तान पर चढ़ाई—फ़ीरोज़पुर में अँगरेज़ी सेना जमा हुई और शाहशुजा को साथ लिये नये जंगी लाट सर जौन कीन की नायकता में सतलज के बायें-बायें सिन्ध में घुसी। मैकनाटन तथा बर्न्स उसके साथ थे। सिन्ध में उस फ़ौज के दाखिल हो जाने पर सिन्ध के अमीरों से एक बड़ी रकम ली गयी तथा उनसे इक़रार कराया गया कि आगे से वे सिन्ध में एक 'आश्रित' ब्रिटिश सेना रक्खेंगे। खैरपुर के अमीर ने बक्खर का किला अँगरेज़ों को "उधार" दिया।

दर्रा बोलन को पार कर इस सेना ने कन्दहार और ग़ज़नी फ़तह कर लिये। दोस्तमुहम्मद काबुल से भाग गया। अगस्त सन् १८३९ में ब्रिटिश सेना ने शाहशुजा को काबुल की गद्दी पर बैठा दिया। तभी रूसियों ने मध्य एशिया में खीवा के राज्य पर चढ़ाई की, लेकिन वे उसमें पूरी तरह विफल हुए (नवम्बर १८३९ ई०)।

उधर शाहशुजा का बेटा तैमूर लुधियाना के अँगरेज़ एजेन्ट के साथ सिक्खों की रक्षा में पंजाब के रास्ते बढ़ा। लेकिन सिक्खों और अँगरेज़ों का भीतर-भीतर संघर्ष चल रहा था। लार्ड आकलैंड रणजीतसिंह के पास आया और उसे इस बात के लिए राज़ी किया कि अफ़गानिस्तान से अँगरेज़ी सेना पंजाब के रास्ते लौट सके। तभी रणजीतसिंह की मृत्यु हो गयी (२७-६-१८३९ ई०)।

§ ७. कुमार नौनिहालसिंह—रणजीतसिंह की मृत्यु पर उसका बेटा खड़गसिंह महाराजा तथा ध्यानसिंह वज़ीर बना। खड़गसिंह जितना ढीला था, उसका उन्नीस बरस का बेटा नौनिहालसिंह उतना ही तेजस्वी था। राज्य की सब बागडोर नौनिहाल के हाथ में चली गयी।

लार्ड कीन की सेना पंजाब हो कर लौटी और नौनिहाल को उसे रास्ता देना पड़ा, लेकिन अँगरेज़ी और पंजाबी सेना एक दूसरे को शत्रु की तरह घूरती रहीं। दोस्तमुहम्मद और उसके पठान विद्रोह की तैयारी कर रहे थे। नौनिहाल उन्हें मदद देने लगा। दूसरी तरफ़ वह नेपालियों से अँगरेज़ों के खिलाफ़ सहयोग करने लगा।

नेपाल का राजा गीर्वाणयुद्धविक्रम सन् १८१६ ई० में नौजवान ही मर गया था। उसका बेटा तब दो बरस का बच्चा था। राज्य की बागडोर सन् १८३७ ई० तक भीमसेन थापा के ही हाथ में रही। इस बीच नेपाल में अँगरेज़ों के खिलाफ़ युद्ध भावना बराबर बनी रही और नेपाली दूत न केवल भारत के देशी राज्यों को, प्रत्युत भूटान, बरमा और चीन को भी उभाड़ने की कोशिश करते रहे। १८३७ ई० में भीमसेन का भतीजा मातबरसिंह पंजाब पहुँचा। उसी बरस नेपाल के राजा ने भीमसेन को कैद में डाल दिया, और राज में दूसरा पक्ष प्रबल हुआ। लेकिन अँगरेज़ों के प्रति उसकी भी वही नीति रही। इसी समय लदाख के सिक्ख शासक ज़ोरावरसिंह ने बोलौर (राजधानी स्कर्दू) को जीत लिया, और लदाख से पूरब के तिब्बती इलाकों को लेते हुए नेपाल की तरफ़ बढ़ने लगा।

५ नवम्बर १८४० ई० को महाराजा खड़गसिंह की मृत्यु हुई। नौनिहाल अपने पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया करके लौटता था जब एक छत के गिरने से उसकी जान जाती रही। तभी दोस्तमुहम्मद ने भी आत्मसमर्पण कर दिया और उसे कैद कर कलकत्ते पहुँचाया गया।

§८. सिक्ख सेना की शक्ति का उदय—नौनिहालसिंह की मृत्यु पर उसको माँ चन्दकौर राज करने लगी। रणजीत का दत्तक पुत्र शेरसिंह उसका प्रतिनिधि तथा ध्यानसिंह वज़ीर रहा। लेकिन चन्दकौर पर अतरसिंह तथा अजीतसिंह सिन्धनवाला सरदारों का प्रभाव था जिनसे शेर और ध्यान की न बनती थी। वे दोनों लाहौर से हट गये और बहुत सी सेना को मिला कर उन्होंने जनवरी १८४१ ई० में लाहौर को आ घेरा। चार दिन बाद समझौता हुआ। चन्दकौर को जागीर दी गयी, शेरसिंह महाराजा बना, तथा सेना का वेतन एक रुपया मासिक बढ़ गया। सिन्धनवाले भाग कर अँगरेज़ों की शरण में पहुँचे।

लेकिन सेना अब शेरसिंह के काबू में न रही। वह जहाँ-तहाँ जिन अफ़सरों और दूसरे लोगों से नाराज़ थी, उनसे बदला चुकाने लगी। लोग डरने लगे कि सारे पंजाब में लूट मचेगी; अमृतसर के व्यापारी अँगरेज़ों की रक्षा की पुकार करने लगे। अँगरेज़ों ने भी मौके से लाभ उठाना चाहा। मैकनाटन ने शाहशुजा के नाम पर पेशावर और डेराजात को लेना चाहा। लुधियाने का पोलिटिकल एजेन्ट महाराजा शेरसिंह की "मदद" के लिए लाहौर पर चढ़ाई करने को तैयार हो गया। जब रणजीतसिंह का विश्वस्त सेवक फ़कीर अज़ीज़ुद्दीन यह प्रस्ताव

ले कर आया तो शेरसिंह ने उसके मुँह पर हाथ रख कर अपनी गर्दन पर अँगुली फेरते हुए संकेत किया, कि चुप रहो, ऐसी बात मुँह से निकालोगे तो सेना मेरी गर्दन उतार लेगी !

लेकिन सेना शीघ्र शान्त हो गयी और उसने कोई लूट-मार न की। सिक्ख सेना निरी भाड़े की टट्टू न थी; उसके अन्दर एक उच्च भाव भी था। उसकी विभिन्न टुकड़ियों की पंचायतें बन गयीं थीं जो अपने को "खालसा" या सिक्ख जनता का प्रतिनिधि और उसके हितों का रक्षक समझती थीं। अपनी स्वतन्त्रता के लिए वे सजग थीं और अपनी जत्थाबन्द एकता और नियन्त्रण का उन्हें अभिमान था। साधारण बातों में वे नियुक्त अफ़सरों के आदेश मानती रहीं पर देश के शासन में अपनी समझ के अनुसार दखल देने लगीं। पंजाब की यह सेना अधिकतर सिक्खों की थी, पर उसमें हिन्दू और मुसलिम सैनिक और अफ़सर भी काफ़ी थे। अँगरेज़ और उनके कारिन्दे पंजाब की स्वतन्त्रता हरना चाहते हैं, यह भाव सेना में फैल गया था, और उनके प्रति वह बड़ी सशंक थी।

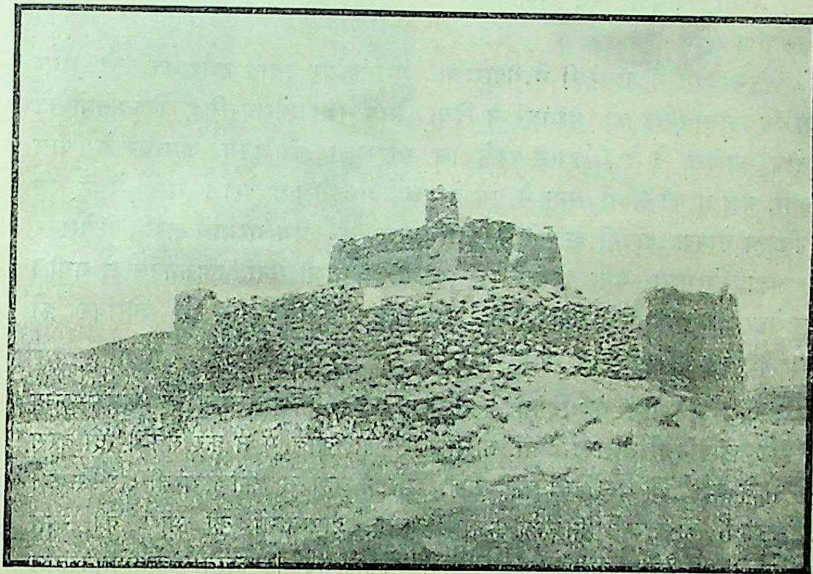

जोरावरसिंह की समाध

कश्मीर में सेना ने अपने अफ़सर को मार डाला था। वहाँ शान्ति-स्थापना के लिए राजा गुलाबसिंह को भेजा गया। तब से कश्मीर के शासन को भी उसने अपने काबू में कर लिया। नौनिहाल की नीति पर चलते हुए उसने पठानों और नेपालियों से मेल रक्खा। मई-जून सन् १८४१ में ज़ोरावरसिंह ने सिन्ध और सतलज के स्रोतों की दूनें जीत कर मानसरोवर के पास छावनी डाल दी और हिमालय के उस पार पंजाब और नेपाल की सीमाएँ मिटा दीं! मैकनाटन पेशावर लेना चाहता था; पंजाब-सरकार ने गुलाबसिंह को पेशावर सौंपना तय किया।

उस दशा में अँगरेज़ों ने महाराजा शेरसिंह पर दबाव डाल कर उसे मना लिया कि गुलाबसिंह को पेशावर न दिया जाय तथा ज़ोरावरसिंह तिब्बतियों को गारतोक वापिस दे दे। इससे पहले कि महाराजा का हुक्म ज़ोरावर के पास पहुँचता, ल्हासा की चीनी सेना ने पूस के जाड़े में उसे आ घेरा। बर्फ़ में ठिठुरते हुए सिक्ख सैनिक अपनी बन्दूकों के कुन्दे जला कर हाथ गरमाने लगे। ज़ोरावर उस लड़ाई में मारा गया और नेपाल की सीमा वाली सेना तहसनहस हो गयी। मानसरोवर के रास्ते में तकलाकोट से तीन मील पर तोयो गाँव में ज़ोरावर की समाध है जिसे तिब्बती अब भी पूजते हैं।

§९. अफ़गानों का विद्रोह—अँगरेज़ों ने अफ़गानिस्तान के मुख्य-मुख्य शहरों में छावनियाँ डाल दीं थीं, तो भी देश को काबू में न कर सके। दो बरस में न तो वे देश का बन्दोबस्त कर सके, और न वहाँ से फ़ौज भरती कर सके। शिया-सुन्नियों के बीच "निफ़ाक फैलाने" और अफ़गानों की भाड़े की सेना खड़ी करने की मैकनाटन की सब कोशिशें बेकार हुईं। फलतः अफ़गानिस्तान को काबू में रखने को बराबर भारत से फ़ौज लानी पड़ती और भारत के खर्च से शासन चलाना पड़ता। इसके अलावा, अफ़गान अँगरेज़ों की बड़ी फ़ौज का मुकाबला न करते, पर उनकी छोटी टुकड़ियों और उनके रसद-सामान पर बराबर छापे मारते थे।

निष्फलता की खीझ से अँगरेज़ों की ऐंठ बढ़ने लगी। मैकनाटन हरात और पेशावर जीतने की धुन में था। काबुल के अँगरेज़ अफ़सरों ने अनेक अफ़गान परिवारों की इज्ज़त खराब की। इस बात को काबुली भूलने वाले न थे। २ नवम्बर १८४१ ई० को उन्होंने बर्न्स का मकान घेर लिया और उसे सड़क

पर खींच कर मार डाला। काबुल के अँगरेज़ों ने मदद के लिए कन्दहार और गन्दमक सन्देश भेजे; पर कोई मदद न आयी। इस बीच उनकी रसद भी अफ़गानों ने छीन ली। तब ११ दिसम्बर को मैकनाटन ने अकबरखाँ से यह सन्धि की कि अँगरेज़ों को अफ़गानिस्तान से लौटने दिया जाय तो वे दोस्तमुहम्मद को छोड़ देंगे। अकरबखाँ ने ओल माँगे। अभी यह बातचीत चलती थी कि मैकनाटन ने फिर अफ़गान सरदारों को अकबरखाँ के खिलाफ़ भड़काना चाहा। मैकनाटन और अकबरखाँ का मिलना तय हुआ। अकबर ने इन तुच्छ षड्यन्त्रों के बारे में उससे सफ़ाई तलब की, तब दोनों गर्म हो उठे और मैकनाटन वहीं मारा गया।

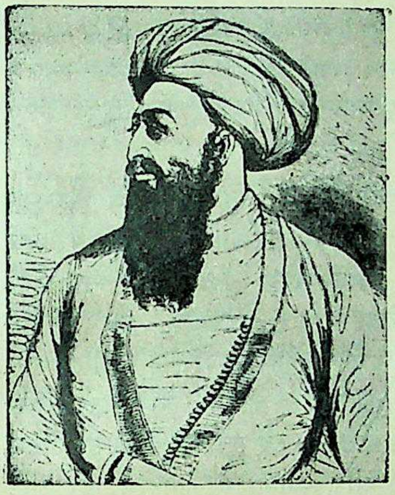

अमीर दोस्तमुहम्मद

इसके बाद जनवरी में फिर अफ़गानों से एक सन्धि कर, अपनी तोपें और रसद उन्हें सौंप कर, तथा १२० कैदी, जिनमें दो अफ़सर तथा अनेक स्त्रियाँ थीं, अकबरखाँ का ओल दे कर, अँगरेज़ी सेना और उसके हालीमुवाली, कुल १६ हज़ार आदमी वापिस चले। एक हफ़्ते में जगदलक दर्रे तक पहुँचते-पहुँचते वे सब खतम हो गये! एक घायल डाक्टर ब्राइडन बच कर उस संहार की कहानी सुनाने जलालाबाद पहुँचा।

जलालाबाद वाली सेना भी घिर गयी थी। फ़ीरोज़पुर से चार रेजिमेन्ट पंजाब के रास्ते उसकी मदद को पेशावर भेजी गयीं। पेशावर में अँगरेज़ों ने सिक्ख अधिकारियों से अनुरोध किया कि वे उनकी मदद करें या खुद जलालाबाद तक बढ़ें। सिक्ख नाज़िम ने अपनी रेजिमेन्ट के पंचों से पूछा। उन्होंने घृणा से इनकार कर दिया। लॉर्ड आकलैंड ने तब जनरल पोलक को पेशावर भेजा और कन्दहार के जनरल नौट को अफ़गान-युद्ध का अधिनायक बना दिया। तभी

आकलैंड के स्थान में एलिनबरो गवर्नर-जनरल होकर आया (२८-२-१८४२)। उसके आने के शीघ्र बाद अँगरेज़ी सेना को ग़ज़नी भी छोड़ना पड़ा और शाहशुजा गोली से मारा गया।

पर उसी समय पोलक ने खैबर पार किया और दस दिन बाद जलालाबाद पहुँच गया, जहाँ ब्रिटिश सेना अब वीरता से लड़ रही थी। एलिनबरो ने नयी हारों से घबरा कर पोलक को पेशावर वापिस आने और नौट को कन्दहार से लौटने का हुक्म भेजा, परन्तु उन दोनों ने वे हुक्म नहीं माने।

§१०. **चीन से युद्ध**—इस बीच में अँगरेज़ों का चीन से भी युद्ध चल रहा था। चीन में पहले-पहल सोलहवीं शती में पुर्त्तगाली व्यापारी पहुँचे थे और उन्होंने मचाओ बन्दरगाह ले लिया था। उनकी लुटेरी प्रवृत्ति देख कर चीन-सम्राट् ने और किसी बन्दर में उन्हें घुसने न दिया। ओलन्देज़ और अँगरेज़ १७ वीं शती में वहाँ पहुँचे। सन् १७५७ ई० से युरोपियन व्यापार के लिए चीन का केवल एक सबसे दक्खिनी बन्दरगाह काङ्तुङ (कैन्टन) नियत कर दिया गया था। परन्तु वहाँ भी वे लोग बसने न पाते थे। वे मचाओ से ख़ास मौसम में बिना परिवारों के काङ्तुङ आने पाते और व्यापारिक लेन-देन कर लौट जाते थे। शुरू में यह व्यापार एकतरफ़ा था। चीन से ये लोग रेशम, चाय आदि ले जाते, और बदले में कोई चीज़ इनके पास लाने को न होती, इसलिए सोना-चाँदी ही लाते थे। धीरे-धीरे ये भी कई चीज़ें लाने लगे जिनमें अफ़ीम मुख्य थी। पीछे अफ़ीम का आयात इतना बढ़ता गया कि सन् १८३० ई० से चीन के निर्यात का पलड़ा हलका रहने लगा। भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी का अफ़ीम के व्यापार पर एकाधिकार होने से अँगरेज़ों को इस व्यापार में दुहरा नफ़ा था।

चीन सम्राट् ने सन् १८३८ में अफ़ीम के व्यापार को बन्द करने की कोशिश की। अँगरेज़ व्यापारियों की सब अफ़ीम जब्त कर ली गयी और उनसे ज़मानत माँगी गयी कि आगे से अफ़ीम न लायेंगे। इस पर अँगरेज़ काङ्तुङ से हाङ्काङ हट गये और युद्ध छेड़ दिया (१८४० ई०)। उन्होंने काङ्तुङ की रास्ता-बन्दी कर दी, उत्तर की तरफ़ बढ़ कर तट को उजाड़ा, और पाँच बन्दरगाह छीन लिये। उसके बाद काङ्तुङ पर दखल कर लिया, और जहाजों से याङ्चे नदी में घुस कर चीनी साम्राज्य के एक सूखे बाँस की तरह दो टुकड़े करने लगे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अफ़गान विद्रोह के कारण चीन से शीघ्र सन्धि की गयी (अगस्त १८४२ ई०)। हाङ्काङ अँगरेज़ों को मिला; ज़ब्त अफ़ीम के दाम के अलावा बड़ा हरजाना भी उन्होंने पाया। काङ्तुङ से शंघाई तक पाँच बन्दरगाह व्यापार के लिए खोल दिये गये और उनमें रहने तथा खुला व्यापार करने का अधिकार भी मिल गया। सबसे बढ़ कर यह बात हुई कि चीन ने चुंगी नियत करने का अपना अधिकार छोड़ दिया और आगे से विदेशी व्यापारियों की सलाह से हलकी चुंगी लगाना तय किया।

§११. अफ़गान युद्ध का अन्त—एलिनबरो ने अब नौट को ग़ज़नी काबुल ख़ैबर हो कर लौटने की तथा पोलक को उससे सहयोग करने की इजाज़त दे दी। पोलक जलालाबाद से चला और राह में अफ़गानों को हराते हुए फिर काबुल पर अँगरेज़ी झंडा जा गाड़ा (१६-९-४२ ई०)। एक दिन बाद नौट भी वहाँ आ पहुँचा। एलिनबरो के आदेश से वह गज़नी से महमूद के मक़बरे के वे किवाड़ उखाड़ लाया जो सोमनाथ के मन्दिर से ले जाये गये माने जाते थे। अँगरेज़ कैदियों को छुड़ाने के बाद उन्होंने काबुल बाज़ार लूट कर जला दिया, और तब भारत वापिस लौटे। उनके अटक पार करने पर दोस्तमुहम्मद को भी कैद से छोड़ दिया गया। एलिनबरो ने फ़ीरोज़पुर में लौटती सेना का स्वागत किया (जनवरी १८४३ ई०)। "सोमनाथ के दरवाजों" का उसने बड़ा प्रदर्शन कराया, पर वास्तव में वे सोमनाथ के पुराने मन्दिर के न थे। आगरे तक पहुँचने के बाद वे वहाँ किले में डाल दिये गये।

§१२. सिन्ध पर दख़ल—सिन्धियों ने अपने देश में अँगरेज़ी सेना को घुसने दिया और उसे अपने पड़ोसियों के विरुद्ध युद्ध का आधार बनने दिया था। इसका फल उन्हें अब भोगना था।

एलिनबरो ने सर चार्ल्स नेपियर को उनके देश पर दख़ल करने भेजा। नेपियर ने अमीरों पर नयी सन्धि मढ़ी, जिसका सार यह था कि आश्रित सेना के लिए जो रुपया वे देते हैं, उसके बदले ज़मीन देनी होगी, और सिन्ध में अँगरेज़ी सिक्का चलेगा। इससे पहले कि अमीर उस पर दस्तख़त करें, वह इलाकों पर दख़ल करने और इस तरह हुक्म चलाने लगा मानो वही देश का शासक हो। इस पर जनता ने उभड़ कर रेज़िडेन्सी को घेर लिया। अमीरों की ३० हज़ार सेना का नेपियर ने मियानी पर ३ हज़ार से सामना किया (१७-२-१८४३ ई०)।

उनके तोपची दल और रिसाले के नेता को वह पहले ही खरीद चुका था। उसकी जीत निश्चित थी।

इसके बाद उसने हैदराबाद को घेर कर सर किया। ब्रिटिश सेना ने उस धनी शहर को खुल कर लूटा; अकेले नेपियर को उस लूट में से सात लाख रुपये मिले। अँगरेज़ सारजेन्टों और सैनिकों की स्त्रियाँ अमीरों के जनानों में भेजी गयीं; और उन्होंने उन अभागिनियों की नाकों और कानों से कीमती ज़ेवर नोच-नोच कर विनोद किया और अपनी जेबें भरीं। रेज़िडेन्ट सर जेम्स आउटराम ने इस लूट का एक रुपया भी छूने से इनकार किया। लेकिन नेपियर एक सीधा सिपाही था; उसे मक्कारी पसन्द न थी। जब इस धींगाधाँगी पर कुछ लोगों ने अँगुली उठायी तो उसने सीधा जवाब दिया, "हमारा भारत जीतने का...एकमात्र उद्देश्य रुपया था। पिछले साठ बरस में भारत से एक अरब पौंड से अधिक निचोड़ा जा चुका कहा जाता है। इसमें से एक-एक शिलिंग लहू में से बीना गया, पोंछा गया और कातिल की जेब में रक्खा गया है; पर चाहे कितना ही पोंछो और धोओ, निगोड़ा दाग तो छुटता नहीं।"

हैदराबाद जीतने के एक महीना बाद नेपियर ने खैरपुर (उत्तर सिन्ध) के अमीर को डबो पर हराया, और उसके बाद समूचे सिन्ध पर दखल कर लिया।

§१३. गवालियर का अन्तिम पराभव—सिन्ध के बाद पंजाब की बारी थी। लेकिन अँगरेज़ पंजाब की तरफ़ बढ़ते तो उन्हें बायीं ओर से एक और शत्रु का ख़तरा रहता। वह थी गवालियर की सेना। गवालियर अभी तक अँगरेज़ों का आश्रित या अधीन न हुआ था। सन् १८०४ में दौलतराव शिन्दे ने आश्रित सेना रखने की सन्धि थी, लेकिन होल्कर-युद्ध के बाद की सन्धि द्वारा वह रद्द हो गयी थी*। १८१७ ई० की सन्धि से उसने राजपूताने पर आधिपत्य तो छोड़ा, लेकिन स्वयम् अँगरेज़ों के अधीन न हुआ था। महादजी शिन्दे ने जिस सेना की नींव रक्खी थी, वह अभी तक मौजूद थी, और सतलज के दक्खिन वही एकमात्र सधी हुई सुसज्जित भारतीय सेना थी। अँगरेज़ों की दृष्टि में "ऐसी बड़ी सेना का यहाँ रहना सतलज से आने वाले शत्रु के मुकाबले को बढ़ने वाली हमारी सेना के लिए खतरनाक था। इसलिए वे मनाते थे कि "गवालियर दरबार और उसकी सेना को भूकम्प निगल जाय तो अच्छा हो।"

---

*ऊपर पृ० ४५३।

७-२-१८४३ ई० को राजा जनकोजीराव शिन्दे की एकाएक मृत्यु हुई। उसकी ११ वर्ष की विधवा ८ बरस के एक बच्चे, जयाजीराव को गोद ले कर राज करने लगी। असल राज-काज दरबार के हाथ में रहा। एलिनबरो ने दरबार पर दबाव डाल कर अपने एक पिट्ठू को प्रधान नियत कराया। परन्तु कुछ समय बाद रानी और दरबार ने उसे हटा कर सर्वसम्मति से दादा खासगीवाला को प्रधान नियत किया। दादा योग्य शासक था। उसने सेना का सब बक़ाया वेतन दे डाला; युरोपियन और दोग़ले अफ़सरों को हटा दिया तथा अनेक अँगरेज़-विरोधियों को, जिन्हें गत महाराजा ने रेज़िडेन्ट के दबाव में आ कर हटा दिया था, फिर से पद दिये।

एलिनबरो ने गवालियर के उत्तर और पूरब सेना जमा कर दरबार से मुतालबा किया कि दादा को उसके हाथ सौंप दे। दरबार ने दब कर ऐसा कर दिया तो एलिनबरो ने उसे और दबाया। अँगरेज़ी सेना दोनों तरफ़ से बढ़ी। उधर लड़ाई की कोई तैयारी न थी, इसी से चम्बल के घाटों पर भी उसे किसी ने न रोका। मुसीबत सिर पर आ जाने पर गवालियर की सेना लड़ी। एक ही दिन (२९-१२-१८४३ ई०) गवालियर के उत्तर महाराजपुर तथा दक्खिन पनियार पर लड़ाइयाँ हुईं, जिनमें गवालियर की नेतृहीन सेना बहादुरी से लड़ कर हारी। महाराजपुर की जीत अँगरेज़ों को काफ़ी मँहगी पड़ी।

सिन्ध पर दख़ल करने के कुछ मास बाद यदि गवालियर पर भी अँगरेज़ दख़ल कर लेते तो देशी राज्य भड़क उठते, इसलिए एलिनबरो ने संयम से काम लिया और गवालियर को अधीन राज्य बना कर ही सन्तोष किया।

§१४. पंजाब में सेना का राज और उसके खिलाफ़ तैयारी— सन् १८४३ ई० में सिक्खों ने कश्मीर के उत्तरपच्छिम गिल्गित जीत लिया। वह उनकी अन्तिम विजय थी। सन् १८३५ ई० में फ़ीरोज़पुर के जागीरदार के निःसन्तान मरने पर अँगरेज़ी सरकार ने उस शहर को ले कर वहाँ एक भारी छावनी डाल दी थी। एलिनबरो ने अम्बाला, कसौली और जुतोग (शिमला) में भी नयी छावनियाँ डालीं।

सिन्धनवाला सरदारों को अँगरेज़ी सरकार की कोशिश से सिक्ख दरबार में फिर ऊँचा स्थान मिल गया। अजीतसिंह सिन्धनवाला महाराजा शेरसिंह का घनिष्ठ मित्र बन गया। इसके बाद एक दिन (१५-९-१८४३ ई०) उसने एका-

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक शेरसिंह, कुमार प्रतापसिंह, और वज़ीर ध्यानसिंह की हत्या कर डाली। ध्यान के बेटे हीरासिंह की प्रेरणा से सेना ने लाहौर का किला घेर लिया; अजीतसिंह लड़ाई में मारा गया। तब रणजीतसिंह की एक छोटी रानी जिन्दाँकौर का ५ साल का बच्चा दिलीपसिंह महाराजा तथा हीरासिंह उसका वज़ीर बनाया गया।

एलिनबरो पंजाब पर घात लगाये बैठा था। वह सतलज में लाने को बम्बई में लोहे की ऐसी नावें तैयार करवा रहा था जो पीपों (पेण्टूनों) की तरह भी बर्ती जा सकें। एप्रिल १८४४ ई० में इसने लिखा, "मेरी अभिलाषा है कि नवम्बर १८४५ ई० तक हमको सतलज पार न करनी पड़े।"

अगले महीने अतरसिंह सिन्धनवाला ने, जो कि थानेसर में अँगरेज़ों की शरण में था, अपने दल के साथ फ़ीरोज़पुर पर सतलज पार की और एक प्रसिद्ध सन्त को तथा रणजीतसिंह के एक दत्तक बेटे को अपने साथ मिला कर लाहौर की तरफ़ बढ़ने लगा। वज़ीर हीरासिंह ने इस संकट के अवसर पर खालसा पंचायत के सामने खड़े हो विनती की और उन्हें याद दिलाया कि सिन्धनवाले अँगरेज़ों के हथियार हैं। एक सेना तब उनके खिलाफ़ बढ़ी। लड़ाई में अतरसिंह और उसके साथी मारे गये।

हीरासिंह राजकाज में अपने शिक्षक पंडित जल्ला की सलाह से चलता था। जल्ला विचारशील आदमी था। पंजाब के लोकमत को प्रभावित करने के लिए वह प्रेस की स्थापना की बात भी सोचता था। उसका ख्याल था कि पंजाब की मालगुज़ारी का बड़ा अंश गुलाबसिंह के हाथ चला जाने से राज्य की क्षति होती है। इसलिए उसने सेना में धीरे-धीरे यह विचार फैला दिया कि गुलाबसिंह से उसकी जागीरें वापिस लेनी चाहिए। वह दूसरे सरदारों की जागीरें भी ज़ब्त करने लगा। लेकिन इस काम में उसने कुछ जल्दी की। जिन सरदारों की जागीरें ज़ब्त की गयीं थीं, वे सिक्ख थे, और सिक्ख सेना को उकसाने लगे। इस बीच जल्ला के मुँह से रानी जिन्दाँ के विषय में कुछ अनुचित शब्द निकल गये। रानी के भाई जवाहरसिंह ने तब सेना को एकदम भड़का दिया। जल्ला और हीरासिंह पकड़ कर मार दिये गये (२१-१२-१८४४ ई०)।

कुछ अव्यवस्था के बाद जवाहरसिंह तथा एक लालसिंह ने नया शासन बनाया। उन्होंने गुलाबसिंह से समझौता कर लिया। लेकिन सेना के पंचों ने समझौते की शर्तें न मानीं और जम्मू पर चढ़ाई की। चतुर गुलाब ने दान और

विनय द्वारा सेना को खुश किया, और अपनी जागीरों का बड़ा अंश राज्य को सौंप दिया। उसके कुछ सैनिक लाहौर की सेना से झगड़ पड़े, तब उसने अपने को सेना के हाथ में सौंप दिया और कैदी हो कर वह उनके साथ लाहौर तक गया। वह कैदी चाहता तो आसानी से वज़ीर बन सकता था क्योंकि सेना उसकी योग्यता और विनय की कायल थी। लेकिन ग़ैर-सिक्ख होने के कारण उसे उन पर भरोसा न था। उसकी उपस्थिति में जवाहरसिंह बाक़ायदा वज़ीर बनाया गया (१४-५-१८४५ ई०)।

जवाहर तुच्छ आदमी था। सेना के प्रभाव से घबरा कर उसने दो बार सतलज पार भागने की कोशिश की, पर सेना चौकन्नी थी। रणजीतसिंह के एक और दत्तक बेटे ने अटक में विद्रोह किया। वह पकड़ कर लाहौर लाया गया। जवाहर ने उसे मरवा डाला। इस बात से सेना ऊब उठी। पंचों ने कहा कि ऐसी बातें राज्य में होने पायेंगी तो वे सब खतरे में पड़ जायेंगे। पंचायतों की संगत जुटी और उसमें तय हुआ कि जवाहर को मृत्यु-दंड दिया जाय। २१-६-१८४५ ई० को उसे खालसा संगत के सामने बुलाया गया। बहुत सा सोना और रत्न ले कर हाथी पर बैठे हुए, महाराजा को साथ लिये वह वहाँ पहुँचा और भेंट-पूजा से पंचों को फुसलाना चाहा। उसे सख्ती से कहा गया कि चुप रहे और महाराजा को एक तम्बू में बैठा दिया गया। तब पंचों की आज्ञा से सैनिकों ने आगे बढ़कर जवाहर को गोली से मार दिया। इसके बाद राज्य में किसी किस्म की लूटमार या अव्यवस्था न हुई।

अब गुलाबसिंह को वज़ीर बनने के लिए बुलाया गया, पर वह त्रास के मारे न आया। इस पर नवम्बर १८४५ ई० में लालसिंह को वज़ीर तथा तेजसिंह को प्रधान सेनापति चुना गया।

उधर लॉर्ड एलिनबरो की जगह पर लॉर्ड हार्डिंज आ गया था (१-८-१८४४ ई०) और पंजाब के पड़ोस की छावनियों में सेना और सामान बराबर बढ़ाया जा रहा था। सितम्बर १८४५ ई० में बम्बई वाले नाव पोन्टून फ़ीरोज़पुर आ पहुँचे। सिक्ख सरदारों के साथ षड्यन्त्र चल ही रहे थे। सिक्खों के अनेक स्वार्थी सरदार सदा से चाहते थे कि पंजाब में अँगरेज़ दखल दें जिससे वे अपनी जायदादों में स्थिर हो जाँय। सतलज के पूरब के सरदारों ने इसी प्रेरणा से अपने को अँगरेज़ों की रक्षा में सौंपा था। सतलज के पच्छिम के सरदार पहले

रणजीतसिंह की प्रतिभा से और अब शस्त्र-बद्ध जनता के तेज से पराभूत रहे। वे अब सोचने लगे कि सेना के नाश से ही उनका बचाव होगा। जिन लालसिंह और तेजसिंह को सिक्खों ने अपना नेता चुना वे न केवल उसी किस्म के सरदारों में से थे प्रत्युत अँगरेज़ों के षड्यन्त्र में गहरे शामिल हो कर भड़काऊ कारिन्दों का काम कर रहे थे।

§१५. सतलज की लड़ाइयाँ—अक्टूबर में हार्डिंज पंजाब की तरफ़ रवाना हुआ। लालसिंह और तेजसिंह ने सेना को अँगरेज़ों की तैयारी दिखाकर ताना देते हुए पूछा—"क्या तुम देखते रहोगे जब कि पंजाब को विदेशी पददलित करेंगे?" वीर सिक्खों ने उत्तर दिया—"हम जान पर खेल कर अपनी भूमि को बचायेंगे।" वे न केवल इन नीच देशद्रोहियों के बहकाने में आ गये, प्रत्युत युद्ध के समय एक नेता की जरूरत देखते हुए पंचायतें बन्द कर इन्हीं के हाथ में सेना की कुल बागडोर सौंप दी! यों नवम्बर १८४५ ई० में, ठीक उस समय जब कि अँगरेज़ चाहते थे, सिक्खों ने युद्ध का निश्चय किया, और उनकी सेना सतलज की ओर बढ़ी।

शुरू दिसम्बर में हार्डिंज अम्बाला पर प्रधान सेनापति गफ़ से आ मिला। अम्बाला से अँगरेज़ी सेना फ़ीरोज़पुर की तरफ़ बढ़ी। सिक्खों ने फ़ीरोज़पुर के ऊपर सतलज पार की। फ़ीरोज़पुर में तब केवल ७ हज़ार अँगरेज़ी सेना थी। सिक्खों के लिए स्पष्ट रास्ता यह था कि सबसे पहले उस छावनी को छीन लेते। लेकिन लालसिंह और तेजसिंह को तो अपनी सेना को घिरा देना अभीष्ट था। उन्होंने अँगरेज़ अफ़सरों को सन्देश भेजा कि डरें नहीं, और अपने सिक्खों से कहा कि इस तुच्छ सेना से क्या लड़ना, आगे बढ़ कर गवर्नर जनरल को मारो या कैद करो! यों अपनी सेना को आगे ले जा कर फ़ीरोज़पुर से २० मील, मुदकी गाँव पर, लालसिंह ने उसके एक अंश को अँगरेज़ों की बड़ी फ़ौज के साथ टकरा दिया (१८ दिसम्बर १८४५ ई०)। गफ़ ने उसे धकेल दिया और तय किया कि शत्रु से लड़ने से पहले फ़ीरोज़पुर वाली टुकड़ी से मिला जाय।

सिक्ख सेना की हरावल मुदकी और फीरोज़पुर के बीच फीरूशहर* गाँव के गिर्द घोड़े के सुम की शकल में पड़ी थी। २१ दिसम्बर को अम्बाला और फ़ीरोज़पुर की सेनाओं के मिल जाने पर हार्डिंज और गफ़ ने उस पर सन्ध्या से

---

*'फ़ीरूशहर' का अँगरेज़ी में 'फ़ीरोज़शाह' बना दिया गया है।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

एक घंटा पहले हमला किया। अँगरेज़ी सेना भरोसे से बढ़ी, उनकी तोपें गोले उगलने लगीं। लेकिन सिक्ख तोपों ने तेज़ी से और ठीक निशाने से जवाब दिया; तोपों के बीच से सिक्ख पदाति दृढ़ता से बन्दूकें दाग़ते रहे। इस मुक़ाबले को देख कर सब दंग रह गये। अँगरेज़ों की तोपें उखड़ गयीं, बढ़ते हुए दस्ते धक्के खा कर लौटे, पाँतें टूट गयीं और अँधेरे में नायकों को पता न चलता कि उनके सिपाही कहाँ गये। ढेर हुई सेना जहाँ जाड़े से बचने को आग जलाती, वहीं सिक्ख तोपों के गोले आ कर पड़ते। अँगरेज़ उस दिन जिस धरती पर खड़े थे, उस पर उन्हें भरोसा न था। कोई रक्षित सेना उनके नज़दीक़ न थी; सिक्खों के पास दूसरी ताज़ी सेना तैयार थी।

गफ़ और हार्डिंज ने तब भी हिम्मत करके हमला किया और दूसरे दिन सुबह सिक्खों को उस शिविर से ढकेल दिया। लेकिन तभी सिक्ख सेना का दूसरा अंश, तेजसिंह की नायकता में, आ गया। गद्दार तेजसिंह जान बूझ कर देर करता रहा, जिससे लालसिंह वाली सेना पूरी पस्त हो जाय और अँगरेज़ फिर अपनी पाँतें बाँध लें। उसके बाद भी उसने दृढ़ता से हमला न किया, और छोटी-मोटी मुठभेड़ें करके ठीक उस समय भाग निकला जब कि अँगरेज़ी तोपों का गोला खतम हो चुका था और उनकी सेना का एक अंश फ़ीरोज़पुर लौट रहा था। उस समय यदि सिक्ख दृढ़ता से बढ़ते तो अँगरेज़ों की बाकी सेना की पूरी सफ़ाई हो जाती।

इस लड़ाई से पता चला कि सिक्ख तोपों की मार अँगरेज़ी तोपों से लम्बी, गोला ज़्यादा भारी, पछाड़ कम तथा चलाने वाले अँगरेज़ी चालकों से अच्छे थे। सिक्ख नेताओं की ग़द्दारी से अँगरेज़ों की जीत तो हुई, पर उनकी शक्ति को लक़वा मार गया। उन्होंने सिक्खों को आराम से सतलज पार कर नयी तैयारी करने दी, तथा स्वयम् दूर-दूर से नयी सेनाएँ और एक-एक दो-दो अफ़सर भी बुलाये। उन्हें अब दिल्ली और जमना के घाटों की चिन्ता थी!

अँगरेज़ों की कुमुक आने पर उन्होंने फ़ीरोज़पुर से हरिके पत्तन तक मोर्चे बनाये। सिक्ख सामने सतलज के उस पार थे। सरहिन्द इलाके में रसद-सामान जुटाने और लाने में भी अँगरेज़ों को दिक्कत होने लगी। तभी दस हज़ार सिक्ख सेना ने रणजोरसिंह के नेतृत्व में लुधियाने के सामने सतलज पार की। मेजर-जनरल हैरी स्मिथ को लुधियाना बचाने भेजा गया। रणज़ोर लुधियाने

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

के सात मील पच्छिम बद्दोवाल पर था; स्मिथ ने दाहिने घूम कर, उससे बच कर, निकलने की कोशिश की (२१-१-१८४६ ई०)। लेकिन सिक्ख उसका रास्ता काटने बढ़े। मुख्य सेना के आने पर स्मिथ मुकाबला करने को पाँतें बनाने लगा। तब उसने देखा कि चुस्त सिक्खों ने उसके पिछली तरफ़, रेत के टीलों के पीछे-पीछे से, चुपके-चुपके अपनी तोपें ला कर उसका बाँया पासा घेर लिया है। "ये तोपें बड़ी फुर्ती और ठिकाने से गोलों की धारा बहाने लगीं। उनके गोलों की लगातार साँय-साँय में झुंड के झुंड गिरते सैनिकों की कराहें न सुन पड़ती थीं।" स्मिथ ने सेना को फिर कूच का हुक्म दिया। सिक्खों ने पीछा न किया, "क्योंकि उनका कोई नेता न था, या जो था वह अँगरेज़ों की हार न चाहता था।" यह मुकाबला फीरुशहर के मुकाबले की तरह सैनिकों ने अपनी सूझ से किया था। उन्होंने स्मिथ की टुकड़ी का तमाम असबाब लूट लिया और अनेक अँगरेज़ कैद किये।

सिक्खों के हौसले अब बढ़ने लगे। समूची सेना ने स्वाभाविक प्रेरणा से गुलाबसिंह को बुला कर वज़ीर बनाया। ग़द्दार लालसिंह और तेजसिंह भीतर-भीतर काँपने लगे। २७ जनवरी को गुलाबसिंह लाहौर पहुँचा। लेकिन वह बहुत देर से पहुँचा! रणजोरसिंह बद्दोवाल से सतजल के किनारे १५ मील नीचे हट गया था। लुधियाना पहुँच कर नयी कुमुक के साथ हैरी स्मिथ उसके मुकाबले को निकला। अलीवाल और बुन्दरी गाँवों पर २८ जनवरी को फिर उनकी लड़ाई हुई। रणजोरसिंह अपने डोगरों के साथ भाग निकला; सिक्ख तोपची और पदाति वीरता से लड़े, पर उनकी पूरी हार हुई। इस हार ने अवसर-दर्शी गुलाबसिंह का रुख़ बदल दिया। अब वह भी अँगरेज़ों से बातचीत करने लगा। हार्डिंज ने भी देखा, सिक्खों के समान वीर सुसज्जित बहुसंख्यक सैनिकों का वैसे योग्य नेता के संचालन में चले जाना खतरनाक़ है, और उसे खरीद लेने का निश्चय किया।

हार्डिंज ने कहा कि सिक्ख सरकार को स्वीकार किया जा सकता है, बशर्ते कि वह अपनी सेना को तोड़ दे। गुलाबसिंह ने कहा कि सेना पर उसका काबू नहीं है। तब यह तय हुआ कि सिक्ख सेना पर अँगरेज़ हमला करें और जब वह पिट जाय तब सिक्ख सरकार खुल्लम-खुल्ला उसका साथ छोड़ दे तथा अँगरेजों को बे-रोक-टोक लाहौर जाने दे। "सयानी नीति और बेहया ग़द्दारी की ऐसी अवस्थाओं के बीच सुबराहान की लड़ाई लड़ी गयी।"

शुरू फ़रवरी में दिल्ली से अँगरेज़ों की किलातोड़ तोपें आ गयी, जिन्हें, सिक्खों के खिलाफ़ मैदान में बर्तना तय किया गया था। सिक्ख सरकार के देश-द्रोह के कारण सिक्ख सेना को रसद-बारूद भी ठीक न मिल रहा था। उनकी मुख्य सेना सतलज के पूरब सुबराहान के मोर्चे पर जमा हुई। मोर्चाबन्दी किसी एक योजना या आदेश पर न हुई थी। "सैनिकों ने सब कुछ किया पर नेताओं ने कुछ नहीं किया था। हिम्मती दिल और मेहनती हाथ बहुत थे, पर चलाने वाला दिमाग़ कोई न था।" मध्य और बायें पासे में सधे हुए सैनिक और अच्छी मोर्चाबन्दी थी; दाहिना पासा नदी के बालू में था, जहाँ मोर्चें बनाना कठिन था, और वहीं अनियमित सेना तेजसिंह के नेतृत्व में "रहने दी गयी या जान बूझ कर रक्खी गयी थी।" अँगरेज़ों ने उसी पासे पर सब से ज़ोर की चोट लगाना तय किया।

१० फ़रवरी को प्रातःकाल के अँधेरे और गहरी धुन्ध में अँगरेज़ी सेना चुपचाप बढ़ी। सिक्ख झटपट तैयार हुए। सूर्योदय के साथ ही अँगरेज़ी तोपखाने ने मुँह खोला और तीन घंटे बौछार करता रहा। लेकिन सब विफल हुआ। सिक्ख "दमक के बदले दमक और आग के बदले आग लौटाते हुए" निडर डटे रहे।

दूर की गोलाबारी से कुछ बनता न देख अँगरेज़ी सेना का बायाँ पासा हमले के लिए बढ़ा और शत्रु के बढ़े हुए मोर्चों और खन्दकों में जा घुसा। ग़द्दार तेजसिंह पहला हमला होते ही भागा और सतलज पार करते हुए पुल के बीच की एक नाव डुबाता गया। तब अँगरेज़ों का दाहिना पासा भी बढ़ा, और बार-बार ढकेले जा कर भी बढ़ता ही रहा। सख्त मुकाबले के बावजूद उन्होंने खाई कूद कर धुसबन्दी पर चढ़ कर, शत्रु की तोपों को छीन लिया। लेकिन लड़ाई खतम न हुई। सिक्ख पाँतों में सब जगह छेद हो जाने पर भी उनकी अकेली-दुकेली तोपें जहाँ-तहाँ चलती रहीं, और उनकी पाँत के मध्य में वीर आदमी डटे थे जो चप्पा-चप्पा जमीन के लिए जूझते थे। गोलों की मार के बीच धुसबन्दी पर बेधड़क खड़े अनेक सिक्ख तलवार घुमा कर अपने तोपचियों को दिखाते थे कि किधर गोरों के झुंड जमा हैं। धीरे-धीरे सब मोर्चें ले लिये गये और सिक्ख सेना नदी की तरफ़ ढकेली गयी। पर अन्त तक "एक भी सिक्ख ने समर्पण न किया या शरण न माँगी। वे भौहें ताने और बेरुखी दिखाते धीरे-धीरे टहलते हुए

इट जाते थे या अकेले-दुकेले शत्रु-दल से लड़ते हुए निश्चित मौत पाते थे। पराजितों के अदम्य तेज को देख विजेता चकित रह जाते; उनके शस्त्र उन पर वार करते रुक जाते थे। परन्तु नेताओं की प्रतिहिंसा तृप्त न हुई थी, या कूटनीति अपना हिसाब न चुका पायी थी। लाशों के ढेरों के बीच खड़े हो उन्होंने तोपखाने को और आगे—क़रीब सतलज के अन्दर तक—बढ़े चलने का आदेश दिया, जिससे कि वह सेना, जो इतने दिन तक उनकी शक्ति की अवहेलना करती रही थी, पूरी तरह नष्ट हो जाय।"

अँगरेज़ी सेना सतलज पार कर पंजाब में घुसी। अमृतसर की तरफ़ अभी २० हज़ार सिक्ख सेना और थी; पर उनकी पंचायती शक्ति टूट चुकी थी, और दरबार ने अँगरेज़ों से सुलह कर ली थी। सेना ने दरबार की यह बात मान ली कि वज़ीर गुलाबसिंह, लाहौर में सिक्ख राज रखते हुए, जैसी चाहे सुलह करें। पंजाब-सरकार ने अँगरेज़ों को सतलज-व्यास का दोआबा तथा डेढ़ करोड़ रुपया हरजाना देना मान लिया।

गुलाबसिंह की आकांक्षा पंजाब का वज़ीर बनने की थी। हार्डिंज ने देखा कि वह वज़ीर बन जाय तो बची-खुची सिक्ख सेना के सहारे अब भी पंजाब में मज़बूत राज्य खड़ा कर लेगा। इसलिए उसने उसे सिक्खों से अलग करना तय किया। लाहौर दरबार डेढ़ करोड़ में से पचास लाख की रकम ही दे पाया था। बाकी १ करोड़ के बजाय अँगरेज़ों ने व्यास से सिन्ध तक का पहाड़ी इलाका ले कर उसमें से काँगड़ा और हज़ारा के सिवाय बाकी ७५ लाख में गुलाबसिंह को बेच दिया, और उसे महाराजा का पद दिया।

देश-द्रोही लालसिंह वज़ीर बनाया गया। वह और उसके साथी बची-खुची सिक्ख सेना के मुकाबले में भी न टिक पाते इसलिए उन्होंने दिलीपसिंह के बालिग़ होने तक अँगरेज़ी सेना को पंजाब में रख लिया और एक अँगरेज़ रेज़िडेन्ट को दरबार का मुखिया बना कर पूरा शासन सौंप दिया।

§ १६. कोट की हत्याएँ (१८४६ ई०)—लार्ड एलिनबरो ने अपने शासनकाल में नेपाल को भी जीतने की योजना बनायी थी। सन् १८४३ ई० में नेपाल के महाराजा ने सेनापति मातबरसिंह को वाँपिस बुला कर प्रधानमन्त्री बनाया। तभी जंगबहादुर नामक व्यक्ति रानी की सहायता से शक्तिशाली हो उठा। फिर उसने १८४५ ई० में मातबरसिंह को महल में बुलवा कर मरवा डाला। फिर

सितम्बर १८४६ ई० में रानी के हुक्म से ३१ सरदारों को काठमांडू के कोट में बुलवा कर उनके सौ अनुचरों सहित एकाएक मरवा डाला। कुछ और हत्याएँ करने के बाद उसने राजा और रानी को भी बनारस भगा दिया और युवराज को गद्दी दी। जंगबहादुर ने अपने और अपने भाइयों के वंश में नेपाल का प्रधानमन्त्रित्व स्थिर कर दिया। महाराजा तब से नाम का महाराजा पर असल में नज़रबन्द हो गया।

अध्याय ४

खंडहरों की सफ़ाई

§१. **खंडहरों की सफ़ाई**—भारतीय राज्य चोटें खा-खा कर खंडहर बन चुके थे; अब उन खंडहरों की सफ़ाई करना बाकी था। अँगरेज़ अब भारत की ज़मीन और साधनों से नफ़ा कमाने को अधीर हो रहे थे। सिन्ध जीतने पर एक अच्छा कपास का क्षेत्र उनके हाथ आ गया था। लेकिन पंजाब, बराड और नागपुर की कपास भी उन्हें ललचा रही थी। नीलगिरि और कोडुगु में कहवे की तथा बिहार-बंगाल में नील और पाट की खेतियाँ करा के अँगरेज़ पूँजीपति नफ़ा कर रहे थे। अवध की ज़मीन भी वैसे व्यवसाय के लिए उन्हें लुभाती थी। कुमाऊँ और शिमला में उन्होंने नयी बस्तियाँ बसायीं और बगीचे लगाये थे। नेपाल को देख कर भी उनके मुँह में पानी भर आता था।

अँगरेज़ों के हाथ में अब नये यन्त्र और साधन भी आ गये थे जिनके द्वारा वे समूचे भारत पर शीघ्र पूरा दखल कर लेने की सोचते थे। सन् १८१३-१४ ई० में स्टिफ़िन्सन ने लोहे की पटरी पर दौड़ने वाला एंजिन बना दिखाया था और १८२५-३० ई० में इंग्लैंड में पहली रेलगाड़ी चल पड़ी थी। तभी आम्पीयर नामक फ्रान्सीसी ने बताया कि बिजली से चुम्बक-शक्ति का काम लिया जा सकता है, और इस आधार पर १८३६ ई० में मौर्स नामक अमेरिकन ने तारलेखन (टेलीग्राफ़ी) की ईजाद की। भाप से चलने वाले जहाज़ (स्टीमर) फ्रान्स और अमेरिका में उन्नीसवीं शती के शुरू से ही जारी थे, और हम देख चुके हैं कि सिन्ध और पंजाब के युद्धों में उनका प्रयोग हुआ था। लोहे के तारों और पटरियों से अब सारे भारत को कसा जा सकता था।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इस कार्य के लिए सन् १८४७ ई० के शुरू में डलहौसी को हार्डिंज का उत्तराधिकारी बना कर भेजा गया। उसने कहा, "मैं हिन्दुस्तान की ज़मीन को समथर कर दूँगा", और आते ही खंडहरों की सफ़ाई में लग गया।

§ २. दूसरा सिक्ख युद्ध (१८४८-४९ ई०)—सिक्ख राज्य के एक बार काबू में आते ही अँगरेज़ उस पर अपना शिकंजा कसने और मुसलमानों को सिक्खों के ख़िलाफ़ उभाड़ने लगे। रणजीतसिंह के विश्वस्त मन्त्री फकीर अज़ीज़ुद्दीन का भाई नूरुद्दीन दरबारियों में से एक था। उसके द्वारा रेज़िडेन्ट ने दरबार में अपना पक्ष दृढ़ करके रानी जिन्दाँ को लाहौर से शेखपूरा हटा दिया। वे अँगरेज़ अफ़सर, जो पंजाबी हाकिमों की "मदद" के लिए सीमान्त के जिलों में भेजे गये थे, पच्छिमी पंजाब की लड़ाकू मुस्लिम जातियों से षड्यन्त्र करने लगे। इस प्रकार एडवर्ड्स सिन्ध काँठे के टिवाणों को तथा ऐबट और निकल्सन हज़ारा जिले के हज़ारियों को उभाड़ रहे थे।

रणजीतसिंह के समय का मुलतान का नाज़िम दीवान सावनमल और उस का बेटा मूलराज सिक्ख राज्य के सब से योग्य शासकों में से थे। अब दीवान मूलराज से शासन ले लेने के लिए एक काहनसिंह और दो अँगरेज़ों को भेजा गया। मुलतान में बलवा हो गया (१९-४-१८४८ ई०); अँगरेज़ों के साथ के रक्षक मुलतानियों से जा मिले। मूलराज के शासन में प्रजा बहुत सुखी थी। उस इलाके के हिन्दू, सिक्ख, मुस्लिम, सभी उसके झंडे के नीचे जमा होने लगे। महारानी जिन्दाँकौर ने भी उसे पत्र भेज कर उत्साहित किया। रेजिडेन्ट करी ने नूरुद्दीन की मदद से महारानी को कैद कर बनारस भेज दिया। सिक्ख सैनिक इस पर क्षुब्ध हो उठे। लेकिन उन्हें सूझता न था कि क्या करें। वे कहते, "हमारी महारानी निर्वासित हो गयीं, दिलीपसिंह अँगरेज़ों के हाथ में है, लड़ें तो किसके लिए लड़ें! किन्तु यदि मूलराज चढ़ाई करे तो हम सरदारों और अफ़सरों को पकड़ कर उससे जा मिलेंगे।" इससे प्रकट है कि वीर और स्वाधीनता-प्रेमी सिक्ख अपना कोई राष्ट्रीय संगठन न होने के कारण किंकर्तव्य-विमूढ़ हो गये थे।

मुलतान के बलवे को दबाने के बजाय करी उसके बहाने लाहौर-दरबार को ज़लील करने लगा। उसने दरबार से कहा कि बलवे को दबाओ, नहीं तो पंजाब को दखल किया जायगा। उधर एडवर्ड्स सिन्धसागर के क़बीलों को ले कर

मूलराज से लड़ने लगा। दरबार की तरफ़ से सरदार शेरसिंह मूलराज के खिलाफ़ गया, पर उसकी सेना मूलराज से जा मिली (१४-६-१८४८ ई०)।

शेरसिंह का पिता चतरसिंह हरिपुर-हज़ारा में हाकिम था। इसी समय ऐबट ने हज़ारियों का भड़का कर उसे घिरवा दिया था। इस दशा में शेरसिंह भी उत्तर की तरफ़ गया और उसने सिक्खों की ओर से अँगरेज़ों के विरुद्ध युद्ध-घोषणा की। काबुल के अमीर दोस्तमुहम्मद ने सिक्खों को सहायता देने की सन्धि की। लेकिन लाहौर दरबार अब भी रेज़िडेन्ट के काबू में रहा, और उसकी सेना अन्त तक अँगरेज़ों के हाथ में रही।

जंगी लाट गफ़ लाहौर से शेरसिंह के खिलाफ़ बढ़ा। शेरसिंह के पास उससे कम सेना थी। चनाब के घाट रामनगर पर पहली मुठभेड़ हुई जिसमें किसी पक्ष की जीत न हुई। डेढ़ मास बाद जेहलम के काँठे में चिलियाँवाला पर शेरसिंह ने गफ़ को बुरी तरह हरा दिया (१३ जनवरी १८४६ ई०)। तब वह अँगरेज़ी सेना के गिर्द घूम कर लाहौर की तरफ बढ़ने लगा, जहाँ गुलाबसिंह भी उससे आ मिलने का इरादा कर रहा था। उधर दोस्तमुहम्मद के पठान भी युद्ध की गति-विधि को देख रहे थे। गफ़ ने सिक्ख सेना का पीछा किया और गुजरात पर उसे आ पकड़ा। यदि सिक्ख वहाँ शेरसिंह की योजना पर लड़ते तो गफ़ की शायद फिर हार होती और वह पठानों और सिक्खों के बीच घिर जाता, लेकिन अपने साथी सरदारों का बहुमत शेरसिंह को मानना पड़ा और गुजरात पर सिक्खों की हार हुई (२२ फ़रवरी १८४६ ई०) तब वे फिर पीछे मुड़े। अँगरेज़ी सेना ने उनका पीछा किया। रावलपिंडी पहुँच कर सिक्खों ने आत्मसमर्पण कर दिया (१२ मार्च, १८४६ ई०)। उधर नौ मास तक बहादुरी से लड़ने के बाद मूलराज भी जनवरी में समर्पण कर चुका था। महारानी जिन्दाँकौर ने बनारस से भाग कर नेपाल में शरण ली।

लॉर्ड डलहौसी ने पंजाब पर दखल कर लिया (२६ मार्च १८४६ ई०), और तीन अफ़सरों का एक बोर्ड पंजाब के शासन के लिए नियत किया। बाद में बोर्ड के बजाय अकेले जॉन लारेन्स को चीफ़ कमिश्नर बनाया गया। इन लोगों ने पंजाब को बहुत शीघ्र निःशस्त्र करके शान्त कर दिया, और सबसे अद्भुत बात यह की कि कुछ ही बरसों में स्वाधीनवृत्ति सिक्खों को पूरा भाड़े का सिपाही बना दिया।

§३. दूसरा बरमा युद्ध—बरमा तट के अरकान और तनेताई (तनासरीम) प्रान्त अँगरेज़ों के अधीन थे। उनके बीच का पोगू का प्रान्त ले लेने से बंगाल की खाड़ी का समूचा तट उनके हाथ में आ जाता। यह भी ख्याल था कि पोगू में सोने की खानें हैं। इसलिए डलहौसी ने सन् १८५२ में उसे छीन लिया। वह घटना, जो कि एक अमेरिकन राजनेता के शब्दों में, "एक छीनाखसोटी की कहानी" है, संक्षेप में इस प्रकार है।

दो अँगरेज़ी नावों के कप्तानों ने बरमा के समुद्र में तीन बंगाली माँझियों को मार डाला। रंगून की बरमी अदालत ने इस पर उन्हें १७१ पौंड जुरमाने की सज़ाएँ दीं। भारत सरकार ने इस पर बरमा-राज से ६२० पौंड हरजाना तलब किया, और उसे वसूल करने के लिए दो जंगी जहाज़ भेज दिये। बरमा के राजा ने हरजाना देना मान लिया। तब ब्रिटिश जहाज़ के नायक ने कहा कि उनके आदमियों का रंगून के शासक ने अपमान किया है और बरमा के राजा का बड़ा जहाज़ छीन लिया। वह बात खतम हुई तो डलहौसी ने इस चढ़ाई के खर्चे का १ लाख पौंड तलब किया, और उसके न मिलने पर पोगू प्रान्त पर दख़ल कर लिया।

§.४ ज़ब्तियाँ और दख़ल—भारतवर्ष को "समथर" बनाने की नीति कम्पनी के डायरेक्टर सन् १८३४ में ही निश्चित कर चुके थे, और उसके अनुसार कई छोटी-छोटी रियासतें राजाओं के निःसन्तान मरने पर ज़ब्त कर ली गयीं थीं। महाराष्ट्र में एक "इनाम कमीशन" जाँच कर रहा था, जिसने ३५ हज़ार "इनामों" (जागीरों) में से प्रायः २१ हज़ार को ज़ब्त करवाया। अब उसी तरह महाराष्ट्र में सतारा, बुन्देलखंड में जैतपुर तथा उड़ीसा में सम्भलपुर रियासतें ज़ब्त की गयीं। १८५१ ई० में बिठूर में बाजीराव चल बसा; उसने नानासाहब नामक व्यक्ति को गोद ले रक्खा था। डलहौसी ने उसे बाजीराव वाली पेन्शन देना स्वीकार न किया।

सन् १८५३ में निज़ाम से बराड ले लिया गया। नज़र तो उसके समूचे राज्य पर थी, पर वह इस समय बच गया। उसी बरस झाँसी के राजा के मरने पर उसकी विधवा लक्ष्मीबाई के गोद लिये बेटे को गद्दी नहीं दी गयी। उसके बीस दिन बाद नागपुर में भी वही बात हुई। वहाँ से राजा के रत्न-आभूषण भी नीलामी के लिए कलकत्ते भेजे गये और हाथी-घोड़े सब माँस के मूल्य पर

नीलाम कर दिये गये। अवध का नवाब वाजिदअली शाह १८४७ ई० में गद्दी पर बैठा था। वह अपनी सेना की क़वायद की ओर बहुत ध्यान देने लगा। १३ फ़रवरी सन् १८५६ को उससे राज ले कर उसे कलकत्ते में नज़रबन्द कर दिया गया। इसके बाद डलहौसी भारत की बागडोर कैनिंग को दे कर इंग्लैंड चला गया।

सतारा के राजा और नानासाहब ने अपने एलची लन्दन भेजे। नानासाहब ने इस विषय में कुछ और भी सोच लिया था। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने भी कहा, "मेरा झाँसी देंगा नहिं।" लक्ष्मीबाई बनारस में एक मराठा परिवार में पैदा हुई और बचपन में नाना की बहन की तरह बिठूर में पली थी।

अध्याय ५

स्वाधीनता का विफल युद्ध

§ १. **स्वाधीनता-युद्ध का आयोजन**—स्वाधीनता-युद्ध का विचार पहले-पहल शायद बिठूर में नानासाहब और उसके मन्त्री अज़ीमुल्ला के बीच पैदा हुआ। लन्दन में अज़ीमुल्ला और सतारा के एलची रंगो बापूजी ने इस विषय पर परामर्श किया था। अज़ीमुल्ला अँगरेज़ी और फ्रान्सीसी दोनों भाषाएँ बोल सकता था। लन्दन से युरोप घूमता हुआ वह भारत लौटा। अँगरेज़ और रूसी तब क्रीमिया में लड़ रहे थे (१८५४-५६ ई०); इसलिए अज़ीमुल्ला ने समझा, भारत के उठने का यह अच्छा मौका है। उसके भारत पहुँचने के बाद सन् १८५५ में उसने और नाना ने तथा रंगो बापूजी ने भारत के तमाम राज्यों को स्वाधीनता-युद्ध में शामिल होने के लिए निमन्त्रण भेजे। दिल्ली में बादशाह बहादुरशाह और बेगम ज़ीनतमहल, कलकत्ते में नवाब वाजिदअलीशाह तथा उनका वजीर अली नक़ीखाँ आदि उनकी योजना में सम्मिलित हो गये।

आन्दोलन के नेताओं ने देशभाइयों को सम्बोधित कर लिखा, "भाइयो, हम खुद ही विदेशी की तलवार अपने बदन में घोपते हैं।" इसलिए उन्होंने अँगरेज़ों की तमाम भारतीय सेना को अपनी तरफ़ मिलाने की कोशिश की और दूर-दूर तक गुप्त रूप से प्रचारक भेजे। इन प्रचारकों में से फ़ैज़ाबाद का मौलवी अहमदशाह आगे चल कर मुख्य नेताओं में से एक हुआ। अँगरेज़ी सरकार के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बहुतेरे मुलाज़िम, पुलिस तथा अँगरेज़ों के बावर्ची, भिश्ती आदि भी संगठन में मिलाये गये।

सन् १८५५-५६ ई० में अँगरेज़ों का ईरान से भी युद्ध चलता था। ईरानियों ने हरात को घेरा, जिसके जवाब में अँगरेज़ों ने बुशहर बन्दर लेकर उन्हें घेरा उठाने को बाधित किया। मई १८५६ ई० में ईरान ने सन्धि की और तब अँगरेज़ी सेना वहाँ से सीधे चीन की चढ़ाई के लिए जाने लगी। काबुल के अमीर दोस्त मुहम्मद से भी सिक्ख-युद्ध के बाद १८५५ और १८५७ ई० में सन्धियाँ की गयीं।

सन् १८५३ से कम्पनी की फौज में एक नये किस्म के कारतूस चले थे जिनकी टोपी दाँत से काटनी पड़ती थी। जनवरी १८५७ में कलकत्ते के पास बारकपुर छावनी के सिपाहियों को दमदम के कारखाने के एक मेहतर से मालूम हुआ कि उन्हें गाय और सुअर की चर्बी से चिकना किया जाता है। इस खबर ने देश भर में फैले अँगारों को एकाएक सुलगा दिया।

३१ मई १८५७ ई० सारे भारत में एक साथ विद्रोह करने का दिन नियत किया गया था। यह बात केवल छावनियों के नेताओं को मालूम थी; बाकी लोगों ने उनकी आज्ञा पालने का प्रण किया था। मार्च में नाना और अज़ीमुल्ला "तीर्थ-यात्रा" के लिए निकले और दिल्ली, अम्बाला, लखनऊ, कालपी में अपने संगठन को देखते तथा ज़ाहिरा अँगरेज़ अफ़सरों से दिल खोल कर मिलते हुए बिठूर लौट आये।

§२. मंगल पाँडे और मेरठ का बलवा—छावनियों के अन्दर विप्लव के नेताओं ने बड़ी कोशिश की कि कारतूसों के मामले से सिपाही भड़कें नहीं और ३१ मई तक बिलकुल शान्त रहें। लेकिन धर्मान्धता ने सिपाहियों को बेकाबू कर दिया। फ़रवरी में बारकपुर की एक पलटन ने उन कारतूसों को बर्त्तने से इनकार किया। उसी पलटन के मंगल पाँडे नामक एक सिपाही ने २९ मार्च को पाँत के आगे कूद कर अपने साथियों को धर्म-युद्ध के लिए ललकारा, और तीन अफसरों को वहीं ढेर कर दिया। मंगल पाँडे को फाँसी दी गयी, और बारकपुर की दो पलटनें तोड़ दी गयीं। अली नक़ीखाँ ने बड़ी होशियारी से बंगाल की छावनियों में अपने केन्द्र बनाये थे, और ये दोनों पलटनें उस संगठन में शामिल थीं। इनके अब निहत्थे बैठने से बंगाल के संगठन की कमर टूट गयी। मंगल पाँडे के नाम से आगामी युद्ध में अँगरेज़ सभी विद्रोही सिपाहियों को पाँडे कहने लगे।

मेरठ के रिसाले में ८५ सिपाहियों को चर्बी वाले कारतूस न छूने के अपराध में दस-दस साल की सजाएँ दी गयीं। उनके साथियों ने पहले तो निश्चित तिथि तक शान्त रहना तय किया, लेकिन जब वे शहर में से जाते थे तब शहर की स्त्रियों ने उन्हें ताने दिये कि तुम्हारे भाई तो कैद में गये और तुम मक्खियाँ मार रहे हो! उन्होंने उसी रात (९ मई) दिल्ली में नेताओं को खबर भेजी और दूसरे दिन बलवा करके दिल्ली को चल दिये। गोरी फ़ौज के अफ़सरों को भी यह न सूझा कि तोपखाने से उनका पीछा करें।

दूसरे दिन वे दिल्ली पहुँचे। वहाँ कोई गोरी फ़ौज न थी। अँगरेज़ अफ़सर एक देशी सेना को ले कर उनके मुकाबले को आये तो वह सेना भी विद्रोहियों से जा मिली। वे अफ़सर मारे गये और तार-बाबू पंजाब के कुछ स्थानों को खबर दे ही पाया था कि काट दिया गया। लाल किले में पहुँच कर विद्रोहियों ने सम्राट् बहादुर शाह से कहा कि हमारा नेतृत्व कीजिये। बहादुरशाह और बेगम ज़ीनतमहल ने देखा कि अब ३१ मई तक रुके रहना असम्भव है, इसलिए उन्होंने स्वाधीनता का ऐलान कर दिया। किले के पास बड़ा शस्त्रागार था; उसके भीतर नौ अँगरेज़ थे। उन्होंने उसे सौंपने के बजाय बारूदखाने में आग लगा कर अपने साथ २५ विद्रोहियों और अनेक शहरियों को भी उड़ा दिया। उसके बाद भी शस्त्रागार में बहुत बन्दूकें थीं जो विद्रोहियों के हाथ आयीं। शस्त्रागार पर अधिकार हो जाने के बाद बाकी सभी देशी पलटनें विद्रोहियों से मिल गयीं। १६ मई तक दिल्ली से अँगरेज़ी राज के सब चिह्न मिट गये।

§३. **दबाने की पहली चेष्टाएँ**—मेरठ पलटन के इस उतावले कार्य से युद्ध की योजना गड़बड़ा गयी, और अँगरेज़ों को सँभलने का मौका मिल गया। उत्तर भारत की देशी पलटनें प्रायः सब "पुरबियों"* अर्थात् अवध वालों की थी। ये सब विप्लव के संगठन में आ गयी थीं। विप्लव शुरू होते ही ये सबसे पहले गोरी पलटनों पर हमला करतीं। इस दृष्टि से युद्ध की योजना में सबसे नाजुक कड़ी पंजाब था, क्योंकि एक तो वह "पुरबियों" के अपने घर से दूर था और दूसरे उत्तर भारत की प्रायः सब गोरी सेना पंजाब में जमा थी। अँगरेज़ों को पहले खबर मिल जाने से पंजाब की पुरबिया पलटनें खतरे में पड़ गयीं।

---

* हमारे देश में दिशाओं की गिनती अन्तर्वेद मे है। ठेठ हिन्दी के इलाके के पूरब सबसे पहले अवध पड़ता है, इसी से वहाँ के निवासी पुरबिये कहलाते हैं।

१३ मई को मियाँमीर (लाहौर) की देशी सेना को परेड के समय तोपखाने और गोरे रिसाले से घेर कर शस्त्र रखवा लिये गये। उसी दिन फ़ीरोज़पुर की पलटन ने बलवा कर दिया, और फ़ीरोज़पुर के महत्त्वपूर्ण नाके को शत्रु के हाथ छोड़ वह दिल्ली को चल दी!

२१ मई को पेशावर की पलटन से शस्त्र रखवाये गये, और उसके बाद पेशावर के उत्तर होती-मर्दान की पलटन पर चढ़ाई की गयी। इस पलटन के लोगों ने भागना चाहा, उन्हें तब पकड़-पकड़ कर, तोपों के मुँह पर बाँध कर उड़ा दिया गया या सिन्ध नदी में बहा दिया गया।

उधर लार्ड कैनिंग ने दिल्ली की खबर पाते ही जंगी लाट को, जो शिमले में था, फ़ौरन दिल्ली पर चढ़ने का हुक्म दिया। जंगी लाट अम्बाला पहुँचा, पर जनता द्वारा पूरा वहिष्कार होने से रसद का सामान न जुटा सका। इस दशा में पटियाला, नाभा और जींद के राजाओं ने उसे मदद दी। वे तीनों सिक्ख राजा जिनके इलाके जमना और सतलज के बीच पड़ते हैं, अँगरेज़ों के कारण ही अपनी हस्ती को क़ायम समझते थे। पहले वे रणजीतसिंह से बचने को अँगरेज़ों की शरण में गये थे, फिर सिक्ख युद्धों में अपने भाइयों के खिलाफ़ लड़े थे। अब उनकी मदद से अँगरेज़ी सेना रास्ते की ग्रामीण जनता को बीभत्स यातनाओं से मारती हुई दिल्ली की तरफ़ बढ़ी।

मेरठ वाली गोरी फ़ौज भी उससे मिलने को बढ़ी। इससे पहले कि वे मिल पाँय, ३० मई को दिल्ली के क्रान्तिकारियों ने मेरठ वाली फ़ौज पर हमला किया। गोरों ने उनके बायें पासे को तोपें छोड़ कर पीछे हटने को बाधित किया। लेकिन जब वे तोपों पर क़ब्ज़ा करने को बढ़े तब तोपों के बीच छिपे हुए एक सिपाही ने पलीता लगा कर अपने साथ बहुत से गोरों को भी उड़ा दिया।

ईरान का युद्ध तभी समाप्त हुआ और अँगरेज़ों ने चीन से झगड़ा कर लिया था। लार्ड कैनिंग ने अब चीन जाती फ़ौज को लौटा लिया। लखनऊ के चीफ़ कमिश्नर हैनरी लारेन्स ने 'रेज़िडेन्सी' की किलाबन्दी शुरू की। उसी प्रकार कानपुर के सेनापति ह्वीलर ने एक किला बनाया। ह्वीलर ने उसके अलावा नानासाहब से मदद माँगी। नाना कानपुर में आया और ह्वीलर ने खज़ाने की रक्षा का काम उसे सौंप दिया!

§४. विप्लव का चौमुखा फूटना—(१) अन्तर्वेद और अवध—३१ मई से १० जून तक रुहेलखंड, दोआब और अवध के हर ज़िले में सेना और प्रजा ने स्वाधीनता की घोषणा कर बहादुरशाह का हरा झंडा फहराया और अँगरेज़ी राज के चिह्न मिटा दिये। रुहेलखंड में बहादुरखाँ ने नये शासन का संगठन किया; इलाके की रक्षा के लिए स्वयम्सेवक भरती किये और बरेली की पलटन को बख़्तख़ाँ के नेतृत्व में दिल्ली भेज दिया।

कानपुर में अँगरेज़ों ने नये क़िले में शरण ली, और नाना ने ६ जून से उसका मोहासरा शुरू किया। इलाहाबाद के किले में कुछ सिक्ख सेना थी। क्रान्तिकारियों की उन्हें समझाने की सब कोशिशें बेकार हुईं और उस किले पर अँगरेज़ी झंडा फहराता रहा। बनारस के आसपास विद्रोह होने पर ४ जून को बनारस से देसी सेना से शस्त्र रखवाने की कोशिश की गयी। लेकिन उन्होंने मुकाबला किया और इलाके में फैल गये। बनारस के राजा तथा सिक्ख सैनिकों की मदद से शहर पर अँगरेज़ों का अधिकार बना रहा।

अवध में केवल लखनऊ शहर हेनरी लॉरेन्स के हाथ में बना रहा। स्वाधीनता के प्रचारक अहमदशाह को फाँसी की सज़ा सुना कर फ़ैजाबाद जेल में रक्खा गया था। उसे विद्रोहियों ने फाँसी की कोठरी से निकाल कर क्रान्ति का नेता बनाया। अन्तर्वेद में अनेक जगह और अवध में प्रायः सब जगह युद्ध के नेताओं ने व्यक्तिगत रूप से अँगरेज़ों को अपने घरों में शरण दी और लखनऊ या बनारस पहुँचा दिया। ये अँगरेज़ इलाकों के जानकार थे और इन्होंने गोरी सेना के साथ शीघ्र लौट कर क्रान्ति के दबाने में बड़ी मदद की।

(२) बिहार-बंगाल—बिहार-बंगाल में उत्तेजना काफ़ी थी। तो भी बिहार का संगठन उतना मज़बूत न था, इसी से ठीक समय पर वहाँ कुछ न हुआ। कलकत्ते में १४ जून को बारकपुर की एक और पलटन से शस्त्र रखवा लिये गये, और १५ जून को वाजिदअली शाह और अली नक़ीख़ाँ को किले में कैद कर दिया गया।

(३) विन्ध्यमेखला—नसीराबाद (अजमेर) की पलटन २८ मई को ही विद्रोह कर दिल्ली की तरफ़ चल दी। झाँसी की रानी और बाँदा का नवाब अन्तर्वेद के साथ ही उठे। ग्वालियर में कम्पनी की सेना १४ जून को विद्रोह करके जयाजीराव शिन्दे से कहने लगी कि हमारा नेतृत्व करो और आगरा, दिल्ली,

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानपुर पर चढ़ाई करो। "शिन्दे के लिए बदला लेने का बहुत ही बढ़िया मौका था। यदि वह इस सेना के साथ अपनी मराठा सेना को भी ले कर निकलता तो आगरा और लखनऊ एकदम ले लिये जाते,……इलाहाबाद के किले का घेरा पड़ जाता और……विद्रोही बनारस के रास्ते कलकत्ते पर जा पहुँचते।" लेकिन शिन्दे अपने मन्त्री दिनकरराव की सलाह से विद्रोहियों को टालता रहा और वह सेना वहीं खाली बैठी रही।

मऊ की पलटन ने विद्रोह कर इन्दौर की रेज़िडेन्सी पर हमला किया। होल्कर की अपनी सेना भी उनसे मिलना चाहती थी, पर होल्कर भी उसी तरह टालता रहा। प्रजा ने इन राजाओं को उभाड़ने की कोशिश की, पर ये लोग न उठे।

नसीराबाद और नीमच की पलटनें ५ जुलाई को आगरा पर आ टूटीं। अँगरेज़ों ने किले में शरण ली। भरतपुर के राजा की सेना विद्रोहियों के मुकाबले को भेजी गयी। उन लोगों ने कहा—'हम ख़ुद विद्रोह न करेंगे, क्योंकि हमारे राजा का हुक्म नहीं है, पर अपने इन भाइयों पर गोली न चलायेंगे।' ऐसा ही बर्त्ताव जयपुर, जोधपुर की सेनाओं ने भी किया। स्पष्ट है कि राजपूताने और मालवे में प्रजा और सेना सब जगह स्वतन्त्र होने को तत्पर थी, पर जिनसे वह नेतृत्व और संचालन की आशा करती थीं उन्होंने धोखा दिया।

(४) पंजाब और नेपाल—जालन्धर और फिल्लौर की पुरबिया पलटनों पर अँगरेज़ों को सन्देह न हुआ था। ६ जून को ये विद्रोह कर लुधियाना की तरफ़ बढ़ीं। लुधियाने के अँगरेज़ों ने सतलज का पुल तोड़ दिया और नाभा की सिक्ख सेना के साथ घाट पर सामना किया। तो भी क्रान्तिकारियों ने नदी पार कर ली, गोरों और सिक्खों को भगा दिया और लुधियाने पर कब्ज़ा कर लिया। इसके बाद वहाँ उनका कोई नेता न होने से वे दिल्ली चले गये। यदि वे लुधियाने पर कब्ज़ा बनाये रखते तो पंजाब से दिल्ली जाने वाली कुमुक का रास्ता काट सकते, तथा पटियाला, नाभा और जींद के देशद्रोहियों पर पीछे से चोट कर सकते।

सिक्खों को अपनी स्वतन्त्रता गँवाये आठ ही बरस बीते थे, पर उनके देश पर काबू रखने वाली अँगरेज़ी सेना का बड़ा अंश जब विद्रोह कर के चला गया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

तब भी उन्होंने सिर न उठाया। वे पिछली हार से पस्तहिम्मत हो गये थे, और अब उनके सामने अँगरेज़ों ने विद्रोहियों को जैसे कुचल दिया उससे उन पर अँगरेज़ों की संगठित शक्ति का आतंक और भी जम गया। उनके सरदार पहले से ही विश्वासघाती थे। अँगरेज़ों ने १८४८ ई० में पंजाबी मुसलमानों को सिक्खों के खिलाफ़ उभाड़ा था; अब क्योंकि युद्ध का नेता सम्राट् बहादुरशाह था इसलिए सिक्खों को मुसलमानों के खिलाफ़ उभाड़ा! सरहद्दी मुस्लिम क़बीले इस वक्त चढ़ाई न करें इसलिए मुल्लों को घूस दे कर उनमें प्रचार करने भेजा। यों पंजाब की वीर जातियाँ लज्जास्पद रूप से बेवक़ूफ़ बनती रहीं। इसके अलावा जॉन लॉरेन्स ने पंजाब के ज़िलों से ६ प्रतिशत सूद पर कम्पनी के लिए एक क़र्ज़ उठाया। लोगों ने क़ाफ़ी दबाव पड़ने पर अपना रुपया दिया, लेकिन जब एक बार दे दिया तो उनका स्वार्थ अँगरेज़ों के साथ बँध गया।

नेपालियों ने अपनी १८१६ ई० वाली हार का बदला लेने की जैसी कोशिशें कीं थीं, वैसी किसी और भारतीय जाति ने न कीं थीं। अब भी अँगरेज़ यह सोचते थे कि नेपाली इस मौके को न चूकेंगे। लेकिन जंगबहादुर पूरी तरह अँगरेज़ों के साथ था और उसके नेतृत्व में गोरखों ने अँगरेज़ों का साथ दिया।

(५) **दक्खिन**—दक्खिन में विप्लव संगठित रूप से नहीं हो सका। अँगरेज़ों ने पहले-पहल भारतीय सेना मद्रास में ही भरती की थी और वह प्रायः तिलंगों अर्थात् आन्ध्रों की थी। क्रान्ति के नेता तिलंगों तक नहीं पहुँच सके। हैदराबाद की प्रजा और सेना में जून-जुलाई में बड़ी उत्तेजना थी; लेकिन निज़ाम के वज़ीर सालारजंग ने उसे दबा कर बराबर अँगरेज़ों का साथ दिया। नागपुर की पलटन १३ जून को उठना चाहती थी, पर उससे पहले ही मद्रासी सेना ने वहाँ पहुँच कर उसे दबा दिया। इसी तरह बम्बई की पल्टन की दशा हुई। कोल्हापुर, बेलगाँव और जबलपुर में जुलाई, अगस्त, सितम्बर में विद्रोह हुए जो दबा दिये गये। रंगो बापूजी को भागना पड़ा, उसके लड़के को फाँसी दी गयी। दक्खिनी महाराष्ट्र में सन् १८५८ तक कुछ विफल चेष्टाएँ होती रहीं।

§५. **इलाहाबाद और कानपुर का पतन**—अम्बाला और मेरठ वाली अँगरेज़ी सेनाएँ ७ जून को दिल्ली के पास आ मिलीं। एक गोरखा पलटन भी उनसे आ मिली थी। दिल्ली के पास बुन्देल-की-सराय पर क्रान्तिकारियों से उनकी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गहरी लड़ाई हुई। उसके बाद सेनापति बर्नार्ड ने दिल्ली के पच्छिम पहाड़ी पर डेरा लगा दिया।

पंजाब और बंगाल में क्रान्तिकारी संगठन टूट जाने और बिहार के फ़िलहाल चुप रहने से अँगरेज़ दिल्ली और बनारस से अपनी कार्रवाई शुरू कर सके। बनारस से सेनापति नील इलाहाबाद की तरफ़ बढ़ने लगा। रास्ते के गाँवों में आम रास्तों पर टिकटिकियाँ खड़ी कर उसके सैनिक निहत्थे आदमियों को फाँसी चढ़ाते जाते। इसके बाद वे आम और नीम के पेड़ों पर लोगों को लटकाने लगे। फाँसी चढ़ने वालों के अंगों से अँगरेज़ी ८ और ९ अंकों की शकलें बना कर वे विनोद करते। उसके बाद यातना देने की कला के कई नये तरीके उन्होंने ईजाद किये। आदमी की गर्दन में लकड़ियाँ बाँध कर जला देना, युवतियों के केशों और कपड़ों में आग लगा कर तमाशा देखना और समूचे गाँवों को घेर कर आग लगा कर तमाम प्राणियों सहित भून देना—ये उस अँगरेज़ी सेना के विनोद के कुछ तरीके थे।

११ जून को नील इलाहाबाद पहुँचा और किले पर अँगरेज़ी झंडा देख कर चकित हुआ। ४०० सिक्खों ने उस झंडे की रक्षा की थी। नील ने फ़ौरन गोरों को किले के भीतर रख कर सिक्खों को गाँव जलाने भेज दिया। एक हफ़्ते की लड़ाई के बाद उसने इलाहाबाद शहर पर अधिकार करके उसी तरह बदला चुकाया। कानपुर में घिरे हुए अँगरेज़ तब नील को मदद के लिए पुकार रहे थे। लेकिन नील के सब पैशाचिक कृत्यों के बावजूद भी देहाती जनता दबी न थी और इसीलिए वह समय पर कानपुर न पहुँच सका।

कानपुर के अँगरेज़ों ने निराश हो २५ जून को शस्त्र रख दिये। नानासाहब ने उनके प्रयाग पहुँचने के लिए नावों का प्रबन्ध कर दिया। सतीचौरा घाट पर उन्हें विदा करने को अज़ीमुल्ला तथा नाना का भाई बालासाहेब उपस्थित थे। तभी नील के जुल्मों से पीड़ित लोग, जो कानपुर में जमा हो रहे थे, बदले की पुकार मचाने लगे। ज्योंही नावें चलीं कि लोग उन पर टूट पड़े। नाना के पास यह ख़बर पहुँची तो उसने हुक्म भेजा कि स्त्रियों और बच्चों को बचाया जाय। १२५ स्त्रियाँ-बच्चे, जो वहाँ थे, बचा कर नज़रबन्द रक्खे गये और पुरुष सब पंक्ति में खड़े कर मार डाले गये।

कानपुर की लड़ाई खतम होते ही लखनऊ पर क्रान्तिकारियों का दबाव बढ़ा और २९ जून को हेनरी लारेन्स ने चिनहट गाँव पर उनसे हार कर

रेज़िडेन्सी में शरण ली। क्रान्तिकारियों ने वाजिदअली शाह के नाबालिग़ बेटे को अवध का नवाब घोषित किया। उसकी माँ हज़रतमहल उसके नाम पर शासन चलाने लगी।

तभी सेनापति हैवलाक, जो ईरान से लौटा था, मुख्य अफ़सर नियत हो इलाहाबाद पहुँचा, और गाँवों को घेर कर जलाता हुआ कानपुर की तरफ़ बढ़ा। नाना की सेना को हरा कर उसने फ़तहपुर में प्रवेश किया और उस शहर को लूटने के बाद ज़िन्दा भून दिया। खबर पा कर नाना खुद मुक़ाबले के लिए बढ़ा। तभी अँगरेज़ों के कुछ जासूस पकड़े गये जिनसे यह भेद खुला कि बीबीगढ़ की कोठी में नज़रबन्द अँगरेज़ स्त्रियाँ चोरी से इलाहाबाद खबरें भेजती रही हैं। इस बात से तथा फ़तहपुर की घटना से उत्तेजित कुछ सिपाहियों ने नाना की इजाज़त बिना उन सब को कत्ल करके पड़ोस के कुएँ में फेंक दिया*। एक सख़्त लड़ाई में नाना को हराने के बाद १७ जुलाई को हैवलाक ने कानपुर में प्रवेश किया। नाना फ़तहगढ़ (फ़रुखाबाद) की तरफ़ हट गया।

§६. **दिल्ली का पतन**—इस बीच दिल्ली पर सख़्त लड़ाई जारी थी। पंजाब से जॉन लारेन्स अँगरेज़ों को बराबर नयी कुमुक भेज रहा था। शहर के भीतर शस्त्रों के कारखाने खुले थे जिनमें तत्परता से काम हो रहा था। बादशाह ने एक ऐलान निकाल कर स्वाधीन भारत में गो-हत्या की मुमानियत कर दी।

१२ जून से क्रान्तिकारियों ने बाहर निकल कर अँगरेज़ी फ़ौज पर हमले शुरू किये। लेकिन उनमें योग्य नेता की कमी थी। शुरू में शाहज़ादे सेनाओं के नेता बनाये गये। वे नेतृत्व तो क्या करते, उलटा उनकी उच्छृंखलता से शहर में अव्यवस्था मची रहती। इस दशा में बरेली के सेनापति बख़्तख़ाँ की ओर सब की निगाहें लगी थीं। २ जुलाई को वह दिल्ली पहुँचा और बादशाह के हुक्म से प्रधान सेनापति नियत हुआ। बख़्तख़ाँ ने तमाम जनता को शस्त्रबद्ध होने का हुक्म दिया। ३ जुलाई की परेड में २० हज़ार सेना दिल्ली में मौजूद थी। अगले रोज़ ख़ुद बख़्तख़ाँ ने पहाड़ी पर हमला किया। ६ से १४ जुलाई तक पहाड़ी पर सख़्त लड़ाई होती रही।

---

* इन स्त्रियों की बेइज़्ज़ती और अंगच्छेद किये जाने की अनेक कल्पित कहानियाँ बना ली गयीं थीं जो तहक़ीक़ात से सब निर्मूल सिद्ध हुईं।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

बख्तख़ाँ योग्य और वीर सेनापति था, लेकिन वह साधारण कुल का था। उस युग के भारतवासी नेतृत्व को ऊँचे कुल की पैदाइश से अलग करके न देख सकते थे। इसी से बख्तख़ाँ के आदेश पूरी तरह न माने जाते। जो लोग भाड़े के सिपाही होने की दशा में किसी भी गोरे के हुक्म पर जान देने को भी

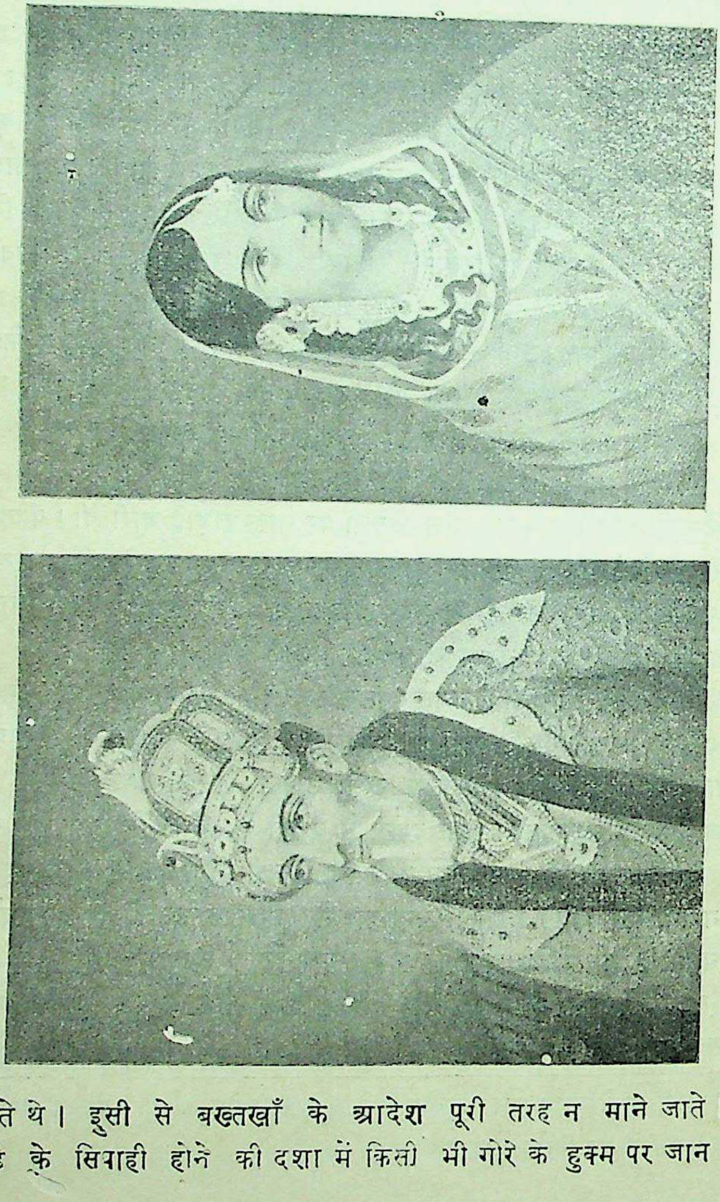

बहादुरशाह और ज़ीनतमहल

दिल्ली में हाथी दाँत पर बना हुआ समकालीन चित्र

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दौड़ पड़ते थे वही स्वाधीन होने पर अपने नेता के आदेश मानने में ननु-नच करते ! यदि जयाजीराव शिन्दे जैसा कोई नेता क्रान्तिकारियों को मिल जाता तो उनकी सफलता में कोई सन्देह न था। इस दशा में उदारचेता बहादुरशाह ने अनेक भारतीय राजाओं के पास इस आशय का पत्र अपने हाथ से लिख कर भेजा—"मेरी यह ख्वाहिश है कि तमाम हिन्दोस्तान आज़ाद हो जाय। इसके लिए जो क्रान्तिकारी युद्ध शुरू किया गया है वह तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कोई ऐसा शख्स जो कौम की मुख्तलिफ़ ताकतों को संगठित कर एक ओर लगा सके और जो अपने को तमाम कौम का नुमाइन्दा कह सके, मैदान में आकर इस क्रान्ति का नेतृत्व अपने हाथों में न ले ले। अँगरेज़ों के निकाल दिये जाने के बाद अपने ज़ाती फ़ायदे के लिए हिन्दोस्तान पर हकूमत करने की मुझ में ज़रा भी ख्वाहिश नहीं है। अगर आप राजा लोग आगे आने को तैयार हों तो मैं अपने तमाम शाही अख्तियार आपके किसी ऐसे संघ के हाथ में सौंप दूँगा जिसे इस काम के लिए चुन लिया जाय।"

इस बीच पंजाब से एक नयी सेना और तोपखाना ले कर निकल्सन दिल्ली आ रहा था। बख्तखाँ ने उसका रास्ता काट कर तोपें छीनने का निश्चय किया और नजफ़गढ़ की ओर बढ़ा (२५ अगस्त)। वहाँ पहुँचने पर नीमच वाली पलटन ने बरेली वाली पलटन के पास डेरा डालना स्वीकार न किया और बख्तखाँ की आज्ञा न मान कर एक पड़ोसी गाँव में डेरा डाला ! निकल्सन ने उन्हें अलग पड़ा देख कर हमला किया। नीमच वाली पलटन वीरता से लड़ती हुई समूची काटी गयी। वह वीरता किस काम की थी ?

इसके बाद अँगरेज़ी सेना ने बढ़ कर आक्रमण करना शुरू किया। १४ सितम्बर को उन्होंने दिल्ली की फ़सील पर हल्ला बोला। गोले-गोलियों की बौछार के बीच कश्मीरी दरवाजे का एक हिस्सा उड़ा कर निकल्सन के नेतृत्व में उन के तीन दस्ते भीतर घुस गये। भीतर भी चप्पा-चप्पा ज़मीन के लिए सख्त लड़ाई जारी रही। एक तंग गली में अक्षरशः खून की धारा बह गयी और निकल्सन सहित अँगरेज़ों के तीन नेता गिर गये। सेनापति विल्सन ने लौटना तय किया। "लौटना !" घायल पड़े निकल्सन ने चीख कर कहा—"लौटने की बात की तो मुझमें अब भी इतना दम है कि विल्सन की जान ले लूँगा !" क्रान्तिकारियों का एक दल दिल्ली छोड़ कर प्रान्त में फैल गया; दूसरा दल दस दिन तक उसी तरह

डट कर लड़ता रहा। जब तीन-चौथाई शहर लिया जा चुका तो बख्तखाँ ने सम्राट् से कहा कि आप मेरे साथ निकल चलें, हम इलाके में युद्ध जारी रक्खेंगे। लेकिन बादशाह के एक सम्बन्धी ने बादशाह को धोखा दे कर पकड़वा दिया। वही आदमी हडसन नामक अँगरेज़ के हाथ अनेक शाहजादों को पकड़वाता रहा। बादशाह और ज़ीनतमहल रंगून भेजे गये, शाहज़ादे मार डाले गये।

इसके बाद क़त्ले-आम और बलात्कार की बारी आयी। एल्फिन्स्टन के शब्दों में अँगरेज़ों ने "नादिरशाह को निश्चय से मात कर दिया।" पुरुष, स्त्री, बच्चे की कोई तमीज़ न थी। "सब ओर मुर्दों का बिछौना बिछा हुआ था। हमारे घोड़े इन्हें देख कर डर से बिदकते थे।" अपनी इज्ज़त बचाने को कुओं में कूदने वाली स्त्रियों के कारण अनेक कुएँ पट गये। बदला चुकाने के कई नये तरीके बरते गये—जैसे ज़िन्दा आदमी को संगीनों से दबा कर धीमी आँच पर भूनना, या ताँबे के जलते टुकड़ों से दाग कर मारना आदि। और शर्म के साथ यह दर्ज करना पड़ता है कि इन कामों में सिक्ख गोरों का साथ दे रहे थे। गुरु नानक के अनुयायिओं का इतना पतन आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। लेकिन एक बार जब आदमी गुलामी स्वीकार कर ले और भाड़े का सिपाही बन जाय तब उसमें और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जाता।

तीन दिन की खुली लूट के बाद बाकायदा एक "लूट-दफ़र (प्राइज़-एजेन्सी) क़ायम किया गया जिसने दिल्ली को पूरी तरह उजाड़ डाला।

इधर अवध में गहरा युद्ध जारी था। २० जुलाई को लखनऊ रेज़िडेन्सी पर क्रान्तिकारियों ने पहला हमला किया। हेनरी लारेन्स गोली का शिकार हुआ। नील को कानपुर में छोड़ हैवलाक गंगा पार कर लखनऊ रवाना हुआ। लेकिन उस इलाके की तमाम प्रजा अँगरेज़ों के खिलाफ़ खड़ी थी और तीन बार कोशिश करने पर भी वह आगे न बढ़ सका। इसके अलावा जब उसने गंगा पार की तो नाना बिठूर को वापिस ले कर कानपुर की तरफ़ बढ़ा, और तभी खबर आयी कि बिहार में भी विद्रोह भड़क उठा है। २५ जुलाई को पटना में पीर अली नामक नेता को फाँसी दी गयी, जिस पर दानापुर की पल्टन विद्रोह कर शाहाबाद जिले में जगदीशपुर के राजा कुँवरसिंह के यहाँ चली गयी, और उस अस्सी बरस के बूढ़े राजा ने आरा शहर पर हमला किया। १२ अगस्त को हैवलाक कानपुर वापिस आ गया; १७ को उसने नाना के सेनापति तात्या टोपे को हराया। तब

उसने कुमुक के लिए कलकत्ते सन्देश भेजा । इस बीच कुँवरसिंह को अँगरेज़ों ने जंगलों में भगा दिया था और नेपाल का जंगबहादुर पूरबी अवध पर चढ़ाई करने पर क्रान्तिकारियों द्वारा पीछे धकेल दिया गया था ।

लखनऊ के भीतर भी क्रान्तिकारियों की वही दशा थी जो दिल्ली में । बहादुरी थी, लेकिन नियन्त्रण और अनुशासन का तथा संचालन की एकसूत्रता का अभाव था । क्रान्तिकारियों की तोपों ने एक बार रेज़िडेन्सी की दीवार में इतना बड़ा छेद कर दिया कि समूची सेना भीतर घुस सकती थी; पर किसी ने उससे लाभ न उठाया । केवल तीन आदमियों ने भीतर घुसने की कोशिश की; और उन तीन ने चाहे निकल्सन से बढ़ कर वीरता दिखायी, तो भी सामूहिक चेष्टा के बिना वह वीरता किस काम की थी ?

नयी कुमुक के साथ १५ सितम्बर को आउटराम कानपुर पहुँचा । अब हैवलाक के बजाय उसे मुख्य अफ़सर नियत किया गया था । जब हैवलाक मुख्य अफ़सर नियत हो कर आया था तो नील ने उसके प्रति कुछ गुस्ताखी की थी । हैवलाक ने उसे लिखा, "यदि सार्वजनिक हित में बाधा पड़ने का डर न होता तो मैं तुम्हें कैद कर लेता ।" उसके बाद नील रूठ नहीं गया, प्रत्युत सच्चे दिल से सहयोग देता रहा । आउटराम ने आकर देखा कि हैवलाक यदि लखनऊ की तरफ़ नहीं बढ़ सका तो इसमें उसका कुछ दोष न था । इसलिए उसने पहला आदेश यही दिया कि "मैं वीर हैवलाक को अपने पद का अधिकार सौंपता हूँ; लखनऊ का मोहासरा उठने तक मैं एक स्वयम्सेवक की तरह उसके अधीन काम करूँगा ।" अँगरेज़ अपने सार्वजनिक चरित्र में व्यक्तिगत भावों को किस प्रकार अनुशासित कर लेते हैं !

अब हैवलाक, आउटराम और नील तीनों गंगा पार कर २३ सितम्बर को लखनऊ के पास आ निकले । दो दिन बाद वे शत्रु की पाँतों में से रास्ता काटते हुए रेज़िडेन्सी में जा पहुँचे । लेकिन वे खुद अपने साथियों की तरह मोहासरे में फँस गये । नील उस लड़ाई में मारा गया ।

§७. लखनऊ और झाँसी का पतन—भारत में क्रान्ति शुरू होते ही इंग्लैंड से गोरी सेनाओं और अनुभवी सेनापतियों की कुमुक रवाना की गयी । ऐसे दो सेनापति सर कालिन कैम्बेल और सर ह्यू रोज़ अब कलकत्ता और बम्बई पहुँच गये थे । कैम्बेल कलकत्ते से जंगी बेड़े के साथ चलकर ३ नवम्बर को

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

कानपुर पहुँचा। उधर दिल्ली से एक अँगरेज़ सेनापति दोआब में नील से बढ़ कर ज़ुल्म करता हुआ कानपुर आया। कानपुर से कैम्बेल लखनऊ गया और १४ नवम्बर को रेज़िडेन्सी की तरफ़ बढ़ने लगा। १० दिन की सख्त कशमकश के बाद, जिसमें मकानों के एक-एक कमरे और एक-एक सीढ़ी के लिए लड़ाई होती रही, वह रेज़िडेन्सी का उद्धार कर सका। शहर तब भी क्रान्तिकारियों के हाथ में रहा।

कैम्बेल जिस दिन लखनऊ पहुँचा, उसी दिन तात्या टोपे ने कालपी का किला ले लिया और उसके बाद कानपुर के अँगरेज़ नायक को घेर कर "अँगरेज़ी सेना से उसका कैम्प, उसका सामान और मैदान सब कुछ छीन कर" शहर ले लिया। कैम्बेल को लखनऊ से लौटना पड़ा। कानपुर वापिस ले कर उसने तात्या को कालपी भगा दिया।

अब अवध, रुहेलखंड, दोआब और बुन्देलखंड क्रान्ति के मुख्य क्षेत्र थे। इसलिए कैम्बेल ने एक सेनापति को कानपुर से इटावा के रास्ते दोआब में भेजा; दो अँगरेज़ सेनापति और तीसरा जंगबहादुर पूरब से लखनऊ की ओर बढ़े; और सर ह्यू रोज़ बम्बई से मऊ आ कर बुन्देलखंड की तरफ़ चला।

लखनऊ में मौलवी अहमदशाह ने कोशिश की कि अँगरेज़ी सेना के अवध तक पहुँचने से पहले आउटराम की टुकड़ी का सफ़ाया कर दे। "अहमदशाह एक महान् आन्दोलन और एक बड़ी सेना दोनों का नेतृत्व करने के योग्य था।" लेकिन वह भी बख्तखाँ की तरह साधारण कुल का था, और उसके आदेश पूरी तरह माने न जाते थे। एक बार तो उसके प्रतिस्पर्द्धियों ने बेगम हज़रतमहल को बहका कर उसे कैद तक करा दिया। बाद में छुटने पर उसके साथ बेगम खुद भी मैदान में आयी, लेकिन उसी असंगठित रूप से काम होता रहा।

कैम्बेल दोआब से फिर लखनऊ घूमा। पूरब से आने वाली तीनों सेनाएँ मार्च में उससे आ मिलीं। ६ से १५ मार्च तक लखनऊ शहर में वैसी ही लड़ाई हुई जैसी सितम्बर में दिल्ली में हुई थी; और बाद में वैसी ही घटनाएँ। हज़रतमहल और अहमदशाह ने मोहासरे में से निकल कर युद्ध जारी रक्खा।

अँगरेज़ी सेनाएँ जब अवध पर चढ़ाई कर रहीं थीं, तब कुँवरसिंह आज़मगढ़ ले कर बनारस की तरफ़ बढ़ा। शत्रु का आधार काटने की उसकी इस

कोशिश से कैनिंग को, जो इलाहाबाद में था, चिन्ता हुई। लेकिन कुँवरसिंह इसे छोड़ कर जगदीशपुर चला गया, जहाँ रास्ते के एक घाव से उसकी मृत्यु हुई।

मऊ से चल कर, सागर और चन्देरी लेते हुए ह्यू रोज़ झाँसी की तरफ़ बढ़ा। एक अँगरेज़ सेनापति ने तभी जबलपुर से सागर के रास्ते बाँदा पर चढ़ाई की। लक्ष्मीबाई ने झाँसी के चौगिर्द इलाके को वीरान कर दिया था, लेकिन ग्वालियर और ओरछा राज्यों की मदद के कारण रोज़ को रसद की तकलीफ़ न हुई। २० मार्च को वह झाँसी के सामने पहुँचा; २४ को रानी ने लड़ाई शुरू की। तात्या टोपे रानी की मदद के लिए बढ़ा; लेकिन रोज़ ने उसे हरा कर भगा दिया। सख्त लड़ाई के बाद ३ एप्रिल को अँगरेज़ी सेना एक भारतीय गद्दार की मदद से झाँसी के किले में जा घुसी। लक्ष्मीबाई १०-१५ साथियों के साथ निकल भागी, और पीछा करने वालों को काटते-गिराते कालपी जा पहुँची। बाँदा और महोबा के सर हो जाने पर बाँदा का नवाब अलीबहादुर भी वहीं आ पहुँचा।

§८. अवध, रुहेलखंड और विन्ध्यमेखला में पिछली कशमकश—लखनऊ के पतन के बाद अवध के नेताओं ने क्रान्तिकारियों के नाम आदेश निकाला, "खुले मैदान में दुश्मन का सामना मत करो; नदियों के घाटों पर पहरा रक्खो, दुश्मन की डाक काटो, रसद रोको और चौकियाँ तोड़ दो। फिरंगी को चैन न लेने दो।" यह एक-दो हारों से खत्म होने वाला युद्ध नहीं था। नानासाहब हज़रतमहल और अहमदशाह मैदान में थे। दिल्ली का एक शाहज़ादा फ़ीरोज़ भी वहीं आ पहुँचा था। कैम्बेल ने उन्हें उत्तर की तरफ धकेलने की कोशिश की। इस कोशिश में उसका एक साथी सेनापति मारा गया। शाहजहाँपुर को लेकर कैम्बेल रुहेलखंड की तरफ़ बढ़ा जो बहादुरखाँ के नेतृत्व में अब तक स्वाधीन था। ५ मई को बहादुरखाँ सहित सब नेता बरेली में घिर गये, लेकिन शहर सर होने तक वे सब निकल गये। अहमदशाह ने फिर शाहजहाँपुर ले लिया, और जब कैम्बेल ने उसे वहाँ घेरा तो नाना, हज़रतमहल और फ़ीरोज़ मदद को पहुँच उसे बचा लाये। ५ जून को अवध के एक ग़द्दार जमीन्दार ने अहमदशाह की दग़ा से हत्या करके उसका सिर अँगरेज़ी डेरे में पहुँचा दिया। एक अँगरेज़ ऐतिहासिक के शब्दों में "मौलवी अहमदशाह सच्चा देशभक्त था। उसने किसी निहत्थे की हत्या से अपनी तलवार पर धब्बा न लगाया था। संसार के वीर और सच्चे लोगों में उसका नाम आदर के साथ याद किया जाना चाहिए।"

कालपी में तात्या टोपे, लक्ष्मीबाई और अलीबहादुर के अतिरिक्त नानासाहब का भतीजा रावसाहब तथा बुन्देलखंड के अनेक सरदार जमा हुए थे। डेढ़ मास के अवकाश में वे अपना एक नेता न चुन सके। तात्या टोपे, जिसमें अँगरेज़ों की दृष्टि से "एक सच्चे सेनापति के स्वाभाविक गुण मौजूद थे", बहुत ही साधारण कुल में पैदा हुआ था—वह बाजीराव के दानाध्यक्ष का बेटा था। लक्ष्मीबाई स्त्री थी, और सो भी सिर्फ़ २२ वर्ष की लड़की ! ये लोग इसी पसोपेश में रहे कि ह्यू रोज़ कालपी की तरफ़ बढ़ आया। लक्ष्मीबाई ने तब दक्खिन बढ़ कर कोंच पर उसका मुकाबला किया, लेकिन वह उसे रोक न सकी और रोज़ ने कालपी भी ले ली (२४ मई)। क्रान्तिकारी नेता बच कर निकल गये।

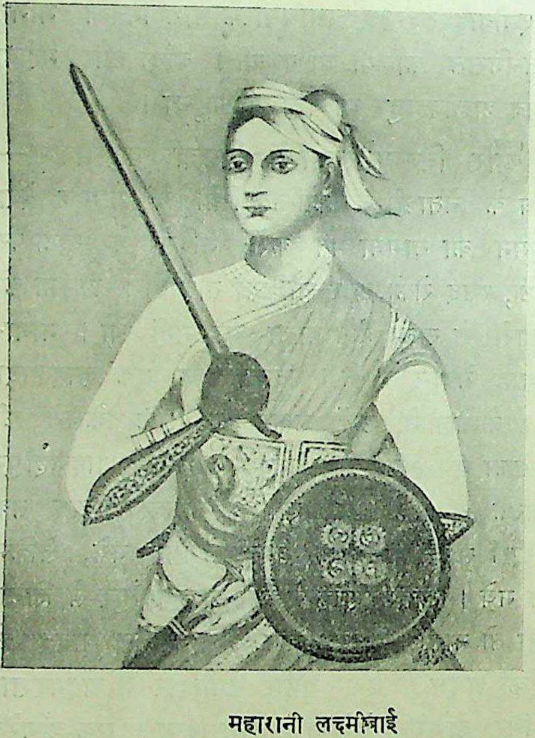

महारानी लक्ष्मीबाई

[महारानी के भतीजे श्री गोविन्द चिन्तामण ताम्बे के सौजन्य से]

इसके बाद एक नयी योजना के अनुसार तात्या गुप्त रूप से ग्वालियर गया। उसके लौटने पर २८ मई को सब ने जयाजीराव शिन्दे के पास पत्र भेजा, "हमारे और अपने पुराने सम्बन्ध को याद कीजिये। हमें आप से सहायता की आशा है, जिससे हम दक्खिन की ओर बढ़ सकें।" मदद देने के बजाय शिन्दे मुकाबले के लिए निकला; पर उसकी सेना क्रान्तिकारियों से आ मिली, और वह आगरा की ओर भाग गया।

ग्वालियर में दरबार करके रावसाहब को पेशवा तथा तात्या को उसका सेनापति नियत किया गया। लक्ष्मीबाई ने चाहा कि सेना को तुरन्त तैयार कर मैदान में लाया जाय। लेकिन रावसाहब को अभी दावतों और उत्सवों से छुट्टी न थी ! इतने में ह्यू रोज़ १७ जून को

ग्वालियर पर आ पहुँचा। ग्वालियर राज्य की सेना कम्पनी की सेना के सामने न ठहर सकी। तो भी लक्ष्मीबाई ने बिखरी सेना को इकट्ठा किया और मुकाबले के लिए डट गयी। दो दिन तक वह "अलौकिक वीरता" से लड़ती रही। दूसरे दिन शत्रु भीतर घुस आये और रानी उनके बीच घिर गयी। शत्रु की पाँतों को चीर कर रानी ने दूसरे क्रान्तिकारियों से मिलने की कोशिश की। गोरे सवारों ने उसका पीछा किया। उनमें से अनेक को काट गिराने के बाद वह स्वयम् वीरगति को प्राप्त हुई।

मौलवी अहमदशाह की घृणित हत्या से अवध में युद्ध की आग और भड़क उठी। क्रान्तिकारी दल घाघरा के उत्तर अयोध्या के सामने नवाबगंज पर इकट्ठे हुए और फिर लखनऊ पर चढ़ाई करने की सोचने लगे। एक अँगरेज़ सेनापति ने उनपर हमला किया। अवध की समथर भूमि गुरिल्ला युद्ध के लिए उपयुक्त नहीं है, तो भी वह युद्ध साल भर जारी रहा।

तात्या टोपे, रावसाहब और अलीबहादुर के साथ ग्वालियर से निकल कर दक्खिन जाने की कोशिश करने लगा। अँगरेज़ी सेनाएँ बराबर उसे आगे पीछे से घेरने की कोशिश करती रहीं। पहले वह राजपूताने की ओर मुड़ा; टोंक का नवाब उसके मुकाबले को आया; पर नवाब की सेना तोपों सहित उससे आ मिली, और तात्या मेवाड़ में आ निकला। वहाँ उसकी तोपें छिन गयीं; और तीन सेनाओं से बच कर चम्बल पार कर वह झालरापाटन पहुँचा। झालावाड़ का राजा मुकाबले को आया, लेकिन उसकी सेना भी तात्या को चुम्बक शक्ति से खिंच गयी, और राजा को ३२ तोपें तथा १५ लाख रुपया देना पड़ा। इसके बाद छः सेनापति उसे घेरने को दौड़ते रहे; कहीं वह अपना सब कुछ गँवा देता, तो कहीं फिर नयी सेना, नया खज़ाना और नया तोपखाना पा लेता। अन्त में ललितपुर में वह पाँच तरफ़ से घिरता मालूम हुआ, लेकिन उस घेरे को तोड़ कर, तीन सेनाओं के पीछा करने के बावजूद होशंगाबाद पर नर्मदा पार कर अक्टूबर में वह नागपुर आ निकला! यदि एक साल पहले महाराष्ट्र में पेशवा का सेनापति आ गया होता तो शायद दशा और ही होती। लेकिन अब उसे नागपुर से कोई मदद न मिली। वह बड़ोदा की ओर फिरा; फिर उत्तर भारत को लौटा और छः महीने उसी तरह लड़ता रहा। अन्त में अलवर के पास एक विश्वासघाता ने उसे धोखे से पकड़ा दिया (७-४-१८५९)।

१ नवम्बर १८५८ को महारानी विक्टोरिया ने अपने ऐलान से ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त कर भारत का शासन सीधा अपने हाथों में ले लिया। बेगम हज़रतमहल ने उसके उत्तर में ऐलान निकाला, "हमारी प्रजा को इस पर एतबार नहीं करना चाहिए, क्योंकि कम्पनी के कानून, कम्पनी के अँगरेज़ मुलाज़िम, कम्पनी का गवर्नर-जनरल और कम्पनी की अदालतें......सब ज्यों की त्यों बनी रहेंगी।"

अवध के क्रान्तिकारी और छः महीने तक उसी तरह लड़ते रहे। "वे बिना रसद के जहाँ चाहें जा सकते थे, क्योंकि लोग सब जगह उन्हें भोजन पहुँचा देते थे। वे बिना पहरे के अपना असबाब जहाँ चाहें छोड़ सकते थे। उन्हें सदा अपनी और अँगरेज़ों की स्थिति का ठीक पता रहता था, क्योंकि लोग उन्हें घंटे-घंटे पर सूचना देते रहते थे।" एप्रिल १८५६ तक यों युद्ध चलता रहा। अन्त में अवध के ६० हज़ार स्त्री-पुरुष-बच्चे नेपाल-तराई में धकेल दिये गये। नानासाहब ने जंगबहादुर से इन निर्वासितों के लिए रहने की इजाज़त माँगी। लेकिन उसने उलटा नेपाल में अँगरेज़ी सेना को घुसने दिया। अनेक लोग शस्त्र फेंक कर वेष बदल कर लौट आये; अनेकों ने "हार मानने की अपेक्षा नेपाल के जंगलों में भूखों मर जाना पसन्द किया।" हज़रतमहल को नेपाल दरबार ने शरण दी। अँगरेज़ों ने नेपाल से जो तराई का इलाका १८१६ ई० में छीना था, वह अब लौटा दिया।

अध्याय ६

कम्पनी-राज में भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा

§१. कम्पनी के शासन में भारतीय किसानों की हालत—एक व्यापारी मंडली ने हमारे देश को जीत लिया और किसानों से उनकी ज़मीन की मिलकियत भी छीन ली। व्यापारी अपना धन्धा नफ़े के खातिर ही करते हैं। उन व्यापारियों ने भारतवर्ष की भूमि और जनता को अपने कारोबार का साधन बना डाला। "हर हिन्दुस्तानी के बारे में यही समझा जाता (था) कि वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की कमाई करने को पैदा हुआ प्राणी है।"

हमने देखा है कि रैयतवारी पद्धति में खेती का नफ़ा जमीन के मालिक की हैसियत से कम्पनी ले लेती थी; किसानों को खाली मजदूरी मिलती थी। लेकिन

बहुत बार उनकी मजदूरी भी खेती से न निकलती थी; तब वे खेत छोड़ना चाहते थे, पर उन्हें छोड़ने न दिया जाता था, जिसका यह अर्थ था कि वे बँधे हुए गुलाम बन गये थे। इस दशा में या तो कर्ज़ ले कर या यातनाओं से बाधित हो कर ही वे लगान दे पाते थे। मद्रास इलाके में लगान की वसूली के लिए जो यातनाएँ प्रचलित थीं, उनका परिगणन एक सरकारी रिपोर्ट में यों किया गया है—

"धूप में खड़ा रखना; भोजन या हाजत के लिए न जाने देना; किसानों के मवेशियों को चरने न जाने देना;··मुर्गा बनाना; अँगुलियों के बीच डंडियाँ डाल कर दबाना; चिमोटी, चाबुक की मार···दो नादिहन्दों के सिर टकराना या दोनों को पीठ की ओर से केशों से बाँध देना; शिकंजे में कसना; गधे या भैंस की पूँछ से केश बाँध देना; इत्यादि।"

ऐसी यातनाएँ कब तक सही जातीं? धीरे-धीरे उनका स्थान ऋण ने ले लिया। "वे रैयत जो पहले समृद्ध थे, ज़मीन पर पूँजी लगा सकते थे,··· अपनी उपज को जब तक अच्छे दाम न मिलें रोक रखते थे, अब भारी सूद वाले ऋण में डूब" गये।

पहले किसान न केवल अपनी जमीनों के मालिक थे, प्रत्युत गाँव के भीतर सरकारी मालगुज़ारी का बँटवारा और वसूली उनकी पंचायतें ही करती थीं। अब ये काम तुच्छ सरकारी कारिन्दे करने लगे, और किसान का काम केवल हुक्म मानना रह गया। इस पद्धति का परिणाम यह हुआ कि "हर आदमी अपनी नज़रों में गिर गया और सदा के लिए ताबेदारी में फँस गया। आत्मनिर्भर ईमानदार व्यक्ति वाली मर्दानी चाल उसकी न रही। अपने से बड़े की कृपा या त्यौरी की परवा न कर सम्मान से सीधा खड़ा होना उसके लिए असम्भव हो गया।"

इस दशा में भी यदि खेती जारी रही तो इस कारण कि "भूख से लाचार हो कर किसान खेती करने को बाधित होता था।"

§२ शिल्प का ह्रास—कम्पनी का पुराना "व्यापार" भी सन् १८३३ तक जारी रहा। उस "व्यापार" के लिए अब मालगुज़ारी में से ही पूँजी बचा ली जाती थी; इसलिए उस पूँजी से जो माल खरीद कर इँग्लैंड भेजा जाता था, उसके बदले में कुछ न आता था? यह पूँजी व्यापारी रेज़िडेण्टों की कोठियों में बाँट दी जाती थी। रेज़िडेण्ट लोग खास दिन पर पड़ोस के जुलाहों की हाज़िरी तलब करते और उन्हें रुपया अगाऊ दे देते थे। माल की दर रेज़िडेण्ट तय कर देते थे, जुलाहा

न माने तो उसके घर पर पहरा बिठा दिया जाता था। माल लाने में देरी हो तो चमोटी लिये चपरासी भेजा जाता था जिसका खर्चा जुलाहे पर पड़ता था। रेगुलेशन बनाया गया था कि जो जुलाहा कम्पनी से अगाऊ ले, वह और किसी को माल न दे। जमीन्दारों और किसानों को हुक्म था कि व्यापारी रेज़िडेण्टों और उनके कारिन्दों से अदब से बरतें और उन्हें जुलाहों के घर पहुँचने में बाधा न दें। सन् १८१३ से कम्पनी के सिवाय दूसरे अँगरेज़ों को भी भारत में व्यापार करने की इजाज़त मिल गयी। ये खानगी व्यापारी चमोटी और शिकंजे का प्रयोग और भी खुल कर करते थे। यों पलाशी के बाद से अँगरेज़ों ने व्यापार का जो नया तरीका निकाला था, वह सन् १८३३ तक जारी रहा।

गुलामी की ये यातनाएँ भोगने के बाद भारतीय शिल्प को अब सर्वनाश का सामना करना था। भारतवर्ष का विदेशी व्यापार अब पूरी तरह अँगरेज़ों के काबू में था। अठारहवीं शती से ही वे भारतीय माल को अपने देश में घुसने से रोकने लगे थे।* नैपोलियन ने युरोप के सब बन्दरगाहों को अँगरेज़ी माल के लिए बन्द कर दिया। उस दशा में अँगरेज़ों ने अपने कारखानों का फालतू माल भारत पर लादना शुरू किया। तो भी "सन् १८१३ तक भारतीय कपड़ा इंग्लैंड में अँगरेज़ी कपड़े से ५०, ६० फ़ी सदी कम दाम पर भी नफ़े में बिक सकता था। तब उसपर ७०, ८० फ़ी सदी चुंगी या सीधी रोक लगा दी गयी। ऐसा न होता तो पेसली और माँचेस्टर की मिलें शुरू में ही बन्द हो जातीं और फिर भाप की ताक़त से भी न चल सकतीं।"

इसके बाद चौथाई शताब्दी तक भारत में ब्रिटिश कपड़े पर $\frac{१}{२}$ फ़ी सदी चुंगी रही, और ब्रिटेन में भारतीय पर १० से १००० फ़ी सदी तक। सन् १८१६-१७ में भारतीय जुलाहों ने अपने देश की जनता को पहनाने के बाद १६६ लाख रुपये का कपड़ा बाहर भेजा। सन् १८४६-४७ तक वह सारा निर्यात गायब हो गया, उल्टा ४ करोड़ का कपड़ा इंग्लैंड से भारत को आया। सूरत, ढाका और मुर्शिदाबाद की समृद्ध बस्तियाँ उजड़ गयीं। ढाका की आबादी डेढ़ लाख से ३० हज़ार रह गयी और उसे जंगल और मलेरिया ने आ घेरा।

कोई-कोई भारतीय शिल्प इस संहार के बीच भी बहादुरी से डटे रहे। मारवाड़ और गुजरात में रंग-बिरंगी चुनरियाँ तैयार होती थीं। लड़कियाँ अपनी

---

* ऊपर पृ० ४४१, ४४२।

चपल अँगुलियों से कपड़े में गाँठें बाँध कर उसे एक रंग में रँगतीं, फिर नयी गाँठें बाँध कर दूसरे रंग में; इस तरह एक कपड़े पर कई रँग चढ़ाये जाते और वह कपड़ा 'बाँधणी' कहलाता था। भारत के ऐसे रेशमी 'बाँधणे' (रुमाल) फ्रान्सीसियों को बहुत भाते थे और सन् १८५७ तक उनका व्यापार चमकता रहा। "यह भारत की मरती कारीगरियों में से अन्तिम थी।"

सन् १८४० तक कलकत्ते और बम्बई में अच्छे जहाज़ बनते थे। बम्बई के पारसियों ने इस व्यवसाय में नाम कमाया था। लेकिन इंग्लैंड में सन् १६५१ से १८४६ तक ऐसे "नाविक कानून" रहे कि इंग्लैंड में जो माल आय वह अँगरेज़ी जहाजों में ही आय। जिन देशों के साथ इंग्लैंड की बराबरी की सन्धियाँ थीं, उनमें भी अँगरेज़ी जहाजों को सुविधाएँ थीं। उन सुविधाओं से वंचित होने के कारण भारत में जहाज बनाने का काम चल न सका।

"भारत के जो लोग दस्तकारी से खाली होते गये, वे मुख्यतः कृषि में गये।" यों जमीन पर बोझ बढ़ता गया और जंगलों और चरागाहों वाली ज़मीनें भी खेती में लगायी जाने लगीं।

§३. खिराज तथा राष्ट्रीय ऋण—भारतवर्ष को जीतने और काबू रखने का सब खर्चा तो ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भारत से वसूल किया ही, उसके अलावा भारतीय सेना को जब अँगरेज़ों के स्वार्थ के लिए मिस्र, जावा, बर्मा, अफ़गानिस्तान, चीन और ईरान भेजा तब उसका खर्चा भी भारत से लिया। अकेले अफ़गान युद्ध के लिए भारतीय जनता को १५ करोड़ रुपया देना पड़ा। दूसरी तरफ़, भारतवर्ष का ग़दर दबाने के लिए जो गोरी सेना विलायत से आयी, उसकी इंग्लैंड से चलने से छः महीने पहले तक की तनख्वाहें तथा इंग्लैंड की छावनियों में भारतीय सेवा के नाम से जमा सेना की १८६० ई० तक की तनख्वाहें भी भारत ने दीं!

इन सब खर्चों और अँगरेज़ हाकिमों की भारी तनख्वाहों के बावजूद भी कम्पनी के कुल शासन-काल में सरकारी व्यय से आय अधिक हुई। लेकिन ब्रिटिश सरकार का जो बोर्ड ऑव् कण्ट्रोल लन्दन में था, उसका खर्चा और कम्पनी की पूँजी पर डिविडेण्ड या मुनाफ़ा भी भारत की जनता को देना पड़ता था। जिस साल सरकारी आमदनी खर्चे से कम हुई, या जब-जब उसमें से मुनाफ़ा देने की गुंजाइश न रही, तब-तब कम्पनी भारत के नाम पर कर्ज़ लेती गयी और

उससे अपना मुनाफ़ा पूरा करती रही। उस कर्ज़ का सूद भारतीय जनता पर पड़ता गया। यों कम्पनी के शासन में हर साल क़रीब ३०, ३५ लाख पौंड इस लन्दन के खर्चें और मुनाफ़े के लिए भारत से इंग्लैंड को जाता रहा। यह कुल मालगुज़ारी का क़रीब $\frac{१}{१०}$ होता था। अँगरेज़ हाकिम जो अपनी निजी बचत भेजते वह अलग थी। इस खिराज की खातिर भारत पर जो ऋण लदता गया वह सन् १८५८ ई० में ६९५ लाख पौंड था।

यह खिराज सोने चाँदी के रूप में नहीं, प्रत्युत माल के रूप में प्रतिवर्ष जाता रहा। हमने देखा है कि ईस्ट इंडिया कम्पनी पहले मालगुज़ारी में से बचत करके उससे कपड़ा खरीद कर विलायत भेजती थी। पीछे जब भारत के शिल्पियों से खरीदने को कुछ न रहा, तब अन्न के रूप में यह जाने लगा। दूसरे देशों को भारत जितना माल भेजता उतना ही उनसे मँगाता भी था। पर इंग्लैंड को वह "आयात से निर्यात की अधिकता द्वारा खिराज देता" रहा। एक तो दस्तकारी की चीजों को अन्न दे कर खरीदना ही दरिद्रता का कारण था, दूसरे यह गुलामी का कर भी भारतीय जनता अन्न में चुकाने लगी। एक स्पष्टवादी अँगरेज़ के शब्दों में "हमारी पद्धति एक स्पंज के समान है जो गंगा-तट से सब अच्छी चीज़ों को चूस कर टेम्स-तट पर जा निचोड़ती है।" इस पद्धति का एक ही परिणाम हो सकता था—दुर्भिक्ष, बार-बार दुर्भिक्ष।

§ ४. गोरे प्लाण्टर तथा भारतीय कुली—उक्त कारणों से देश में एक बड़ी संख्या ऐसे लोगों की होती गयी जो किसी भी शर्त पर मजदूरी करने को तैयार थे। उन्नीसवीं शती के शुरू से अनेक गोरे भारत की खेती-बाड़ी में पूँजी लगा कर उन सस्ते मजदूरों से लाभ उठाने लगे। बंगाल-बिहार में वे नील की खेती कराने लगे। सन् १८१३ ई० से भारत में गोरी बस्तियाँ बसाने की बाकायदा कोशिशें होने लगीं। कोडुगु (कुर्ग) और नीलगिरि में कहवे और सिनकोने की काश्त के लिए तथा आसाम, कुमाऊँ और काँगड़ा में चाय की खेती के लिए गोरों को माफ़ी ज़मीनें दी गयीं। अपने देश के अनेक खनिजों की तरफ़ भारतवासियों का ध्यान न था। बर्दवान की कोयले की खानें पहले पहल १८१४ ई० में अँगरेज़ों ने खुदवाना शुरू किया।

निलहे गोरे किसानों पर पाशविक जुल्म करते। बंगाली लेखक दीनबन्धु मित्र ने अपने नाटक 'नीलदर्पण' में उन जुल्मों का चित्रण किया। सन् १८५९-६०

में निलहों के खिलाफ़ किसानों ने एक साथ विद्रोह किया; उसके बाद से नील की खेती कम रह गयी और उसमें कुछ सुधार हुए।

भारत में गोरों को बसाने की कोशिशें सफल न हुईं, क्योंकि अँगरेज़ "अपना अन्तिम जीवन भारत में बिताना न चाहते" थे। उसका भी कारण यह था कि वे भारत में अपना समाज न खड़ा कर सके—वे भारतवासियों का न तो अमेरिका के मूल बाशिन्दों की तरह संहार कर सके, और न उन्हें आफ्रिका-निवासियों की तरह इतना रौंद ही सके कि भारत में स्वतन्त्र युरोपियन समाज पनप सकता।

सोलहवीं सदी से युरोपियन लोग अपनी अमेरिका आदि बस्तियों से ज़लील मेहनत का काम लेने के लिए आफ्रिका के लोगों को पकड़ ले जाते थे। उन्नीसवीं शती के शुरू तक वे बस्तियाँ हब्शी गुलामों से पट चुकी थीं और उनमें काम की तलाश करने वाले गोरे मजदूर भी काफ़ी पैदा हो चुके थे। इस दशा में करीब सन् १८३३ में युरोपियनों का अन्तःकरण गुलामी प्रथा को देख कर भड़कने लगा और गुलामी रोकने के कानून बने। लेकिन मारिशस, त्रिनिदाद, गियाना, जैमेका आदि के खांड पैदा करने वाले और अनेक दूसरे गोरे उपनिवेशकों का काम अभी गुलामों के बिना न चल सकता था, अतः उनके लिए अब भारत से "प्रतिज्ञाबद्ध मजदूर" जाने लगे। भूखे मरते बेकारों को सब्ज़ बाग़ दिखा कर भरती कराने वाले "आरकाटी" पाँच साल के इक़रारनामे पर अँगूठा लगवा कर ले जाते। उन इक़रारनामों को तोड़ना कानून से फौजदारी अपराध बना दिया गया। ये मजदूर "कुली" कहलाते जो गुलाम का ही नया नाम था। विदेशों में कुली शब्द भारतीय का समानार्थक हो गया। आसाम के चाय-बगीचों में भी प्रतिज्ञाबद्ध कुली ले जाये जाने लगे।

§ ५. **नमक का एकाधिकार**—कम्पनी ने अपने शासन-काल में नमक पर बराबर एकाधिकार रक्खा, और "उत्पादन के खर्चे पर ३०० या २५० फ़ी सदी का जालिम कर" लगाती रही। फलतः इंग्लैंड में जहाँ सन् १८५२ में नमक का भाव ३० शिलिंग फ़ी टन था, वहाँ भारत में २१ पौंड फ़ी टन था। इसी से इंग्लैंड से भारत को नमक का अभ्यात भी काफी होता रहा।

§६. **नहरें और रेलपथ**—गंगा-जमना का दोआब अँग्रेज़ों के हाथ में आने पर लार्ड मिण्टो के समय उनका ध्यान उसकी पुरानी नहरों की तरफ़ गया।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

हेस्टिंग्स के समय से जमना की नहरों का पुनरुद्धार किया जाने लगा। ऑकलैंड के समय गंगा नहर की खुदाई शुरू की गयी और ग़दर के समय तक उसपर काम जारी था।

जमना की नहरों का सफल पुनरुद्धार होने से कावेरी-कोलरून की पुरानी नहरों की तरफ़ भी ध्यान गया। उन नहरों के पुनरुद्धारक सर आर्थर कौटन ने पीछे गोदावरी और कृष्णा के मुहानों में भी आणीकट बना कर नहरें निकालीं। सिन्ध और पंजाब जीतने के बाद मुलतान-सिन्ध की पुरानी नहरों की भी रक्षा की गयी।

सन् १८४५ से भारत में रेलपथ बनाने का आयोजन चला। ईस्ट इंडियन और ग्रेट इंडियन पेनिन्सुला रेल-कम्पनियों ने सरकार की मदद से काम जारी किया। सरकार ने उनसे यह ठहराव किया कि उनकी पूँजी पर ५% से जितना कम मुनाफ़ा होगा, उतना भारत सरकार देगी, और यदि अधिक होगा तो अधिक अँश का आधा सरकार लेगी। सन् १८५८ तक पाँच और कम्पनियाँ इन्हीं शर्तों पर खड़ी हो गयीं।

§७. भारत-विषयक अध्ययन का उदय—बंगाल एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना के बाद से युरोपियनों का भारत-विषयक अध्ययन तेज़ी से बढ़ा। सर विलियम जोन्स ने यह पहचाना कि संस्कृत, यूनानी और लातीनी भाषाएँ सगोत्र हैं। कोलब्रुक ने संस्कृत व्याकरण, गणित, ज्योतिष आदि की ओर तथा चार्ल्स विल्किन्स ने भारत के पुराने लेखों की ओर ध्यान दिया। भारतीय पंडित अपने पुराने लेखों को पढ़ते न थे; पर कोशिश करते तो सातवीं शती से इधर के लेखों को पढ़ सकते थे। सन् १७८५ में विल्किन्स ने बंगाल का एक पाल अभिलेख तथा राधाकान्त शर्मा ने अशोक की दिल्ली वाली लाट पर का बीसलदेव चौहान का लेख पढ़ डाला। उसके बाद विल्किन्स ने गया के पास का मौखरि अभिलेख पढ़ डाला, जिससे गुप्त युग की लिपि आधी पहचानी गयी।

सन् १८०२ में नैपोलियन के एक अँगरेज़ कैदी से श्लीगल नामक जर्मन ने पैरिस में संस्कृत सीखी। श्लीगल का समकालीन फ़्रान्सीसी फ्रांज़ बॉप था। इन दोनों ने संस्कृत की ईरानी तथा युरोपियन भाषाओं से तुलना कर तुलनात्मक भाषा-विज्ञान की नींव डाली। इन भाषाओं के तुलनात्मक अध्ययन से जाना गया कि इन्हें बोलने वाली जातियों के धर्म-कर्म, देवगाथाओं, प्रथाओं और संस्थाओं

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में भी बड़ी समानता थी, और यों आर्य जाति का पता चला। यह उन्नीसवीं शती की एक सब से बड़ी खोज थी। उक्त तुलनात्मक अध्ययनों से समाज के क्रम-विकास का विचार जगा, जो हमारी आधुनिक विचारपद्धति की प्रमुख आधार-शिला है।

अठारहवीं शती में युरोपियनों ने भारत के जो नक्शे बनाये थे, वे सब अन्दाज़ से थे। अब सन् १८०२ ई० में लैम्बटन को मद्रास की "आधार-रेखा" मापने पर लगाया गया, जिससे भारत की पैमाइश वैज्ञानिक ढंग पर शुरू हुई।

सिंहल में काम करने वाले अँगरेज़ों का ध्यान इसी समय पाली बौद्ध वाङ्मय की ओर गया। सन् १८३४ ई० तक इलाहाबाद किले की अशोक-लाट पर का समुद्रगुप्त का लेख पूरा पढ़ा गया जिससे गुप्त युग की लिपि पूरी जानी गयी।

सांची, भारहुत, वेरूल आदि के अभिलेखों की छापों का इस बीच संग्रह किया गया था; पंजाब में सेनापति वेंतुरा ने एक-दो पुरानी "ढेरियां" खुदवा कर स्तूपों के अवशेष निकाले थे, तथा बर्न्स आदि यात्रियों ने पंजाब और अफ़गानिस्तान से पुराने सिक्कों का संग्रह किया था। भारत के विभिन्न स्थानों में अशोक के जो अभिलेख हैं, उनकी छापों के मिलाने से जेम्स प्रिन्सेप ने पहचान लिया कि उनमें से बहुत से एक ही हैं। उस लिपि के कुछ अक्षर गुप्त लिपि की मदद से चीन्हे गये। अफ़गानिस्तान से पाये गये सिक्कों में अनेक यूनानियों के थे। उनके एक तरफ़ यूनानी लेख हैं, दूसरी तरफ़ उन्हीं के प्राकृत अनुवाद। यूनानी के मदद से प्राकृत लेख पढ़े गये और यों धीरे-धीरे मौर्य युग की ब्राह्मी लिपि सन् १८३७ ई० तक समूची पहचान ली गयी।

अपने इतिहास के पुनरुद्धार से भारतीय राष्ट्र आज अपने को फिर पहचानने लगा है। उन्नीसवीं शती के युरोप पर प्राचीन भारतीय आदर्शों का सीधा प्रभाव भी बहुत हुआ। जर्मन महाकवि गुइथे (१७४९-१८३२ ई०) ने कालिदास की शकुन्तला को पृथ्वी और अन्तरिक्ष के माधुर्य का सार कहा, और शकुन्तला के नमूने के प्रक्रमपूर्ण रसमय जीवन का आदर्श युरोपियन साहित्य में चला दिया। गीता और मनुस्मृति के विचारों को अनेक जर्मन दार्शनिकों ने अपनाया।

§८. शिक्षा और सामाजिक दशा—मैकाले की शिक्षापद्धति का उल्लेख हो चुका है। हार्डिंज के समय ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाल में शिक्षा फैलाने की विशेष चेष्टा की। सन् १८५४ में कम्पनी के ऊँचे अधिकारियों ने कहा कि

भारत में विद्यापीठों (युनिवर्सिटियों) की स्थापना का समय आ गया है और लन्दन विद्यापीठ के नमूने पर यहाँ के विद्यापीठ बनाना तय किया। तदनुसार सन् १८५७ में कलकत्ता, मद्रास और बम्बई युनिवर्सिटियों की स्थापना हुई।

कलकत्ते में गोरे अखबार तो बहुत पहले से निकलते थे, पर बंगला अखबार पहले-पहल सन् १८१८ से तथा उसके शीघ्र बाद गुजराती, हिन्दी और मराठी अखबार भी शुरू हुए।

गुलामी और दरिद्रता का प्रभाव भारतीयों के चरित्र पर पड़ना अवश्यम्भावी था। तो भी ग़दर के ज़माने तक अभी उनका चरित्र उतना गिरा न था। ठगी प्रथा को उखाड़ने वाले कर्नल स्लीमैन ने लिखा था, "मैंने ऐसे सैकड़ों मौके देखे जब एक हिन्दुस्तानी की सम्पत्ति, स्वाधीनता, जीवन, सब एक झूठ बोलने से बच सकते थे, पर उसने न बोला।"

§९. ब्रिटिश सरकार का कम्पनी से भारत को खरीदना—इंग्लैंड के कारखानेदारों को ईस्ट इंडिया कम्पनी का एकाधिकार अखरता था। वे सोचते थे कि कम्पनी हटायी जाय तो सब अँगरेज़ खुल कर भारत में अपने व्यापार के लिए सुविधाएँ पायँ और बस भी सकें। सन् १८५३ में इस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। मार्च १८५८ में पार्लियामेण्ट ने "भारत में विशेषतः पहाड़ी ज़िलों……में युरोपियन बस्तियाँ बसाने और मध्य-एशिया में व्यापार-वृद्धि के उपाय सोचने को" एक कमिटी बैठायी। यह आन्दोलन चल ही रहा था कि ग़दर के कारण कम्पनी को हटाने का एक बहाना मिल गया।

एलिनबरो के शब्दों में ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाथ में भारतवर्ष गिरवी था। ब्रिटिश सरकार ने उसे दाम दे कर छुड़ा लिया। लेकिन वे दाम उसने अपने पास से नहीं दिये। कम्पनी की पूँजी का मूल्य १२० लाख पौंड लगाया गया, जिसे धीरे-धीरे भारत ने चुकाया। सन् १८७४ में इसमें से ४६ लाख पौंड बाकी रहा जो भारत के कर्ज़ में शामिल कर दिया गया। उसके सिवाय कम्पनी का ६९५ लाख पौंड कर्ज़ा तो भारत पर डाला ही गया। यों ईस्ट इंडिया कम्पनी के बजाय भारतवर्ष लन्दन के उन महाजनों के हाथ गिरवी रक्खा गया जिन्होंने इस भारतीय ऋण के ऋणपत्र खरीदे।

अध्याय ७

महारानी का राज

(१८५८-१८७६ ई०)

§ १. **गदर के कारण शासननीति में परिवर्तन**—महारानी विक्टोरिया के भारत के शासन को अपने हाथ में लेने पर इंग्लैंड के मन्त्रिमंडल में एक सपरिषद् भारत-सचिव नियुक्त किया जाने लगा। भारत में कैनिंग को ही पहला वाइसराय (राज-प्रतिनिधि) नियत किया गया। मार्च १८६२ में उससे एल्गिन ने शासन-भार लिया। नवम्बर १८६३ में पंजाब की एक पहाड़ी बस्ती में एल्गिन की मृत्यु हुई। उस समय उत्तर-पच्छिमी सीमान्त पर वहाबियों से युद्ध चल रहा था। इसलिए सर जॉन लारेन्स को, जिसने गदर के समय पंजाबी सीमान्त को काबू में रक्खा था, वाइसराय बना कर भेजा गया। जनवरी १८६९ में लारेन्स का उत्तराधिकारी मेयो हुआ। फरवरी १८७२ में वह मारा गया। तब नार्थब्रुक वाइसराय हो कर आया और उसने जनवरी १८७६ तक शासन किया। इस बीच भारत में ब्रिटिश शासन-नीति की धारा एक ही दिशा में चलती रही।

गदर से अँगरेज़ शासकों ने बहुत कुछ सीखा और अपनी शासन-नीति को कई अंशों में बदल दिया।

(१) उन्होंने गोरी फ़ौज की संख्या बढ़ा दी और देसी को घटा दी, तथा यह निश्चय किया कि आगे से तोपखाने में देसियों को न लिया जाय। सन् १८५६ में फ़ौज में २६० हजार देसी और ४५ हजार गोरे थे; सन् १८६१ में १२० हजार देसी और ७६ हजार गोरे रक्खे गये। आगे यही अनुपात रहा। इसके साथ ही हथियार कानून बना कर भारतीय जनता को निहत्था किया गया।

(२) भारतवर्ष में गोरी बस्तियाँ बसाने की कोशिश फिर जारी की गयी। ऐसी बस्तियाँ गदर जैसे समयों में हिन्दुस्तानियों को दबा रखने में सहायक होतीं। आसाम और नीलगिरि में गोरों को माफ़ी जमीनें दी गयीं।

(३) देसी रियासतों को तोड़ने से गदर का प्रवाह उमड़ा था और उस प्रवाह के बीच नेपाल, ग्वालियर, हैदराबाद आदि बची हुई रियासतों ने बाँध

का काम दिया था। इसलिए अब निश्चय किया गया कि आगे से देसी रियासतों का ऊपरी रूप कभी न बिगाड़ा जाय, पर उनमें "भीतर से अँगरेज़ों की देखरेख जितनी पक्की से पक्की हो सके, रक्खी जाय।" इसी उद्देश्य से काठियावाड़ और राजस्थान में राजकुमारों के लिए स्कूल खोले गये जिनमें उन्हें बचपन से ही अँगरेज़ी प्रभाव में रक्खा जा सके।

(४) गदर के गुप्त संगठन को अँगरेज़ों का कुछ पता न चला था। अब पुलिस और खुफ़िया पुलिस का पक्का आयोजन किया गया।

(५) गदर में मुसलमानों ने विशेष भाग लिया था। मेयो के समय से मुसलमानों को रियायतें दे कर राष्ट्रीय आन्दोलनों से अलग खींचे रखने की नीति शुरू की गयी।

(६) रेलपथ बना कर भारत को लोहे के डंडों में जकड़ लेने की कोशिश की गयी। मेयो के शब्दों में "भाप-जहाज और रेलपथ इंग्लैंड को हर साल भारत पर अपनी गिरिफ़्त दृढ़तर करने में समर्थ बना रहे हैं।" "कार्यक्षम पुलिस, रेलपद्धति के विकास और सेना के हाथ में नयी राइफ़लों द्वारा भारत १८७० ई० में पहले से कम खर्चीली सेना द्वारा काबू में रक्खा जा सकता है।" इसके अलावा सन् १८६६ में स्वेज़ नहर के खुल जाने से युरोप से भारत का रास्ता बहुत छोटा हो गया। इस नहर को .फ्रान्सीसी इंजीनियर दि-लेसेप ने खोदा। उसने १८५४-५६ ई० में एक कम्पनी खड़ी की और उसके लिए तुर्की के सुल्तान से नहर की जमीन ६६ साल के ठेके पर ले ली। तुर्की के सुल्तान, मिस्र के खदीव (राज-प्रतिनिधि) तथा .फ्रान्सीसी महाजनों ने कम्पनी के हिस्सों का मुख्य भाग खरीदा। पीछे १८७५ ई० में अँगरेज़ों ने खदीव के सब हिस्से तथा और भी हिस्से खरीद लिये।

(७) सन् १८३३ से गवर्नर जनरल की शासन समिति में एक क़ानून-सदस्य के शामिल होने से वही व्यवस्था-समिति (लेजिस्लेटिव काउन्सिल) बन जाती थी। सन् १८५३ से उसमें एक सदस्य के बजाय हर बड़े प्रान्त का एक अफ़सर और दो-चार और व्यक्ति शामिल किये जाने लगे थे। अब सन् १८६१ से उसमें गवर्नर जनरल के पसन्द किये ६ से १२ तक सदस्य, जिनमें आधे ज़रूर गैरसरकारी होते, रक्खे जाने लगे। प्रान्तों में गवर्नरों की भी वैसी व्यवस्था-समितियाँ बनायी गयीं।

§२. वहाबी और कूका विद्रोह—अठारहवीं सदी में अरब के नज़्द प्रान्त में इब्न अब्दुल वहाब नामक एक धर्म-सुधारक हुए। वे शकुन मानने, तीर्थ-यात्रा करने तथा खुदा के स्थान में मुहम्मद की इबादत करने को बुरा कहते थे। अनुयायियों ने सन् १८१० में हज़रत मुहम्मद की कब्र उखाड़ फेंकी। तब तुर्की के खलीफ़ा ने मिस्र के पाशा को उनके खिलाफ़ भेज कर उन्हें बहुत कुछ दबाया। तो भी वहाबियों का धर्म-प्रचार जारी रहा और अन्य मुस्लिम देशों में भी पहुँच गया। भारत के सीमान्त पर, पेशावर जिले के उत्तर, सिन्ध नदी और मलाकन्द दर्रे के बीच, उन्होंने एक केन्द्र बनाया, जहाँ से वे धर्म-सुधार के साथ-साथ राजनीतिक स्वाधीनता का सन्देश भी बंगाल के मुसलमानों तक पहुँचाने लगे। सन् १८५२-५३ में और फिर गदर के समय अँगरेज़ों ने दो बार उन पर चढ़ाइयाँ कीं। १८६३ ई० के जाड़े में उन्होंने फिर खतरा उपस्थित किया; लेकिन लारेन्स के भारत आने से पहले ही उनकी हार हो चुकी थी।

उसी वर्ष यह पता चला कि उत्तर भारत में जगह-जगह वहाबियों के गुप्त केन्द्र हैं। सन् १८६४ से ६६ ई० तक कई षड्यन्त्र के मुकदमे करके अनेक वहाबी नेताओं को जेल या कालापानी भेजा गया। २०-९-१८७१ ई० को बंगाल का चीफ़ जस्टिस कचहरी की सीढ़ियों पर क़त्ल किया गया। ८-२-१८७२ ई० को अंडमान जेल का निरीक्षण कर लौटते हुए लार्ड मेयो को एक पठान ने मार डाला। इसके बाद वहाबी आन्दोलन ठंडा पड़ गया।

इसी समय लुधियाना जिले में गुरु रामसिंह नामक एक सुधारक सिक्खों में हुए। इन्होंने अँगरेज़ों से पूरा असहयोग करने का प्रचार किया। इनके अनुयायी नामधारी या कूके कहलाये। सन् १८७१-७२ में कूकों ने विद्रोह किया। गुरु रामसिंह कैद कर बरमा भेज दिये गये और बहुत से कूके कैदी तोपों से उड़ा दिये गये।

§३. कृषक-अधिकार-कानून तथा प्रान्तीय अर्थनीति—(अ) **कृषक अधिकार-कानून**—अँगरेज़ों के जमीन-बन्दोबस्त से भारतीय किसान कैसे अपनी सम्पत्ति से महरूम होते गये, सो हमने देखा है। कार्नवालिस का यह उद्देश न था। लेकिन अँगरेज़ी कानून की दृष्टि में जो मालगुजारी देता वही जमीन का मालिक था, क्योंकि इंग्लैंड में १८वीं सदी के आरम्भ से जागीरदार लोग जमीन के पूरे मालिक बन चुके थे। भारत में भी उस कानून के प्रयोग से ठेकेदार जमीन के

मालिक और किसान निरे आसामी बनते गये। इससे जनता में घोर कष्ट और और असन्तोष फैलने लगा। गदर के बाद अँगरेजों का ध्यान उस असन्तोष को शान्त करने की ओर गया। भारतीय परम्परा को थोड़ा-बहुत बचाने के लिए यह कल्पना की गयी कि जमींदारों के स्वामित्व के साथ-साथ किसानों के भी "दखीलकारी" या "मौरूसी" हक हैं, और इसके अनुसार सन् १८५९ से १८७३ ई० तक कानून बनाये गये।

सन् १८६१ में मध्य प्रान्त की रचना करके वहाँ नया जमीन-बंदोबस्त शुरू किया गया। उस प्रान्त में मराठा युग से मालगुज़ार लोग चले आते थे, जिन्हें किसानों से बन्दोबस्त करने, कर वसूल करने, तालाब आदि बनवाने तथा किसानों को बेदखल करने के भी अधिकार थे, पर जमीन को बेचने या रहन रखने के अधिकार न थे। वे वास्तव में मालगुज़ारी वसूल करने वाले कर्मचारी थे, जिनके पद वंशानुगत हो गये थे। अँगरेज़ हाकिमों ने अब उन्हें जमीन का मालिक मान लिया और उनकी मालगुज़ारी इतनी बढ़ा दी कि वे भी किसानों का लगान बढ़ाये बिना न रहें।

रैयतवारी इलाकों के लिए सन् १८५५ में ही कम्पनी के डायरेक्टरों ने यह मान लिया था कि "सरकार का हक लगान नहीं, भूमिकर है"—अर्थात् जमीन के मालिक किसान ही हैं। इसके अनुसार १८६४ ई० में भारत-मन्त्री ने आदेश दिया कि उपज में से लागत-खर्च काट कर वास्तविक आय पर ही कर लगाया जाय और वह उस आय के आधे से अधिक न हो। लेकिन इस आदेश पर अफ़सरों को चलाने के लिए कोई कानून नहीं बना। जहाँ एक-एक कलक्टर डेढ़-डेढ़ लाख किसानों से बन्दोबस्त करता और बिना कारण बताये मालगुजारी बढ़ा सकता था, तथा जहाँ किसान को उसके खिलाफ़ न्यायालय में अपील करने का अधिकार भी न था, वहाँ इस आदेश का अमल में आना असम्भव था। जमींदारी इलाकों के जमींदारों पर सरकार ने जो बन्धन लगाये, रैयतवारी इलाकों के अपने अफ़सरों पर वे नहीं लगाये। परिणाम यह हुआ कि "५० फ़ी सदी मालगुज़ारी सिर्फ़ कागज़ी सलाह रही। व्यवहार में समूचा लगान (अर्थात् मालिक का हक) लिया जाता रहा और अनेक बार मुनाफ़े का अंश भी।"

सन् १८६० में ठेठ हिन्दुस्तान में घोर अकाल पड़ा। सरकारी जाँच से मालूम हुआ कि अकाल अनाज की कमी से नहीं, प्रत्युत जनता में अनाज खरीदने की शक्ति न होने से हुआ। तब यह प्रस्ताव किया गया कि समूचे भारत में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया जाय, "जिससे जमीन-मालिकों के स्वार्थ ब्रिटिश राज की स्थिरता में गड़ जाँय" और अकाल न पड़ें। इसपर एक अरसे तक विचार होता रहा। अन्त में सन् १८८३ ई० में भारत-सचिव ने इसका निषेध कर दिया। गदर के बाद जनता की खुशहाली की खातिर सरकार अपनी आय छोड़ने को तैयार थी; पर बाद में जनता ने बराबर शान्तिमय प्रवृत्ति दिखायी तो वैसे त्याग की जरूरत न रही।

(इ) प्रान्तीय अर्थनीति—पहले प्रान्तीय सरकारों को भारत सरकार की ओर से हर महकमे के खर्च की बँधी रकम हर साल दी जाती थी। सन् १८७० ई० से प्रान्तीय मालगुज़ारी को अलग करने की बुनियाद डाली गयी।

§४. सीमा पार की घटनाएँ—गदर के कारण भारत से फ़ौज चीन जाते-जाते रुक गयी थी। गदर समाप्त होते ही सन् १८६० में वह भेजी गयी। यह भारत के खर्च पर दूसरा अफ़ीम-युद्ध था, जिससे अँगरेज़ों ने चीन के बन्दरगाहों पर अधिकार जमाया।

न्यूज़ीलैंड के सरदारों से सन् १८४० में सन्धि कर अँगरेज़ों ने वहाँ बसना शुरू किया था। वहाँ के मूल निवासी मावरी लोगों ने जब देखा कि अँगरेज़ उन्हें गुलाम बना डालेंगे तो अपना एक संघ बना कर अँगरेज़ों के हाथ जमीन बेचना बन्द कर दिया। तब सन् १८६०-६१ में भारतीय सेना वहाँ भेजी गयी और दस बरस में मावरियों को कुचल दिया गया।

एल्गिन के समय वहाबियों के युद्ध के अतिरिक्त भूटान से भी छेड़छाड़ चल रही थी। सन् १८६५ में भूटान से युद्ध हुआ, जिससे (१) भूटान की तराई या "दुआर" अँगरेज़ों को मिले। उस इलाके में अब चा-बागान हैं; और (२) भूटान और सिक्किम के बीच अँगरेज़ी पच्चर घुस गया, जिसमें होकर तिब्बत का सीधा रास्ता जाता है।

अफ़गानिस्तान के अमीर दोस्तमुहम्मद के मरने पर उसका बेटा शेरअली गद्दी पर बैठा (१८६३ ई०)। सन् १८६९ तक वहाँ घरेलू लड़ाई चलती रही, पर अन्त में शेरअली सफल हुआ। लारेन्स ने गदर के बाद की अहस्तक्षेप नीति के

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

अनुसार इस झगड़े में दखल न दिया। इसी बीच रूसी साम्राज्य भारत के नज़दीक पहुँच रहा था। सन् १८४६ में अँगरेज़ों ने पंजाब जीता था, तभी रूसियों ने उत्तरी कास्पियन से सीर के मुहाने तक जीत लिया था। १८५४ ई० में उन्होंने बलकाश के दक्खिन ईली का काँठा ले लिया था। अब सन् १८६४ से ६८ ई० तक उन्होंने ईली और सीर के मुहानों के दक्खिन, फ़रगाना का एक अंश तथा समूची बोखारा सल्तनत (ताशकन्द, समरकन्द, बोखारा) जीत ली। लारेन्स ने इसपर यह प्रस्ताव किया कि रूस और इंग्लैंड अपने प्रभाव-क्षेत्र बाँट लें और रूस यदि उस रेखा से आगे बढ़े तो युद्ध हो। इसके अनुसार रूस ने अफ़गानिस्तान की तरफ़ आमू नदी को अपनी सीमा स्वीकार किया।

सन् १८६७ में ब्रिटेन का अबीसीनिया से युद्ध हुआ। तब मुम्बई से एक सेना अबीसीनिया भेजी गयी।

लार्ड मेयो ने सन् १८७१-७२ में पूरबी सीमा के लुशाई पहाड़ियों के खिलाफ़ सेना भेजी। दूसरी तरफ़ उसने ईरान की पूरबी सीमा सीस्तान के दक्खिनी छोर से समुद्रतट के ग्वादर शहर तक, अंकित करा दी, जिससे लासबेला और कलात रियासतें ब्रिटिश प्रभाव-क्षेत्र में आ गयीं। मेयो ने उनमें दस्तन्दाज़ी करने को एक अफ़सर भेजा।

मलाया प्रायद्वीप में अँगरेज़ १८वीं सदी के अन्त में हस्तक्षेप कर रहे थे। सन् १८७४-७५ ई० में भारत से फ़ौज भेज कर उन्होंने सिंगापुर के उत्तर पेरक रियासत को धर दबाया। उससे पड़ोस की रियासतें भी काबू में आ गयीं।

कास्पियन के पूरबी तट से बढ़ते हुए सन् १८७३ में रूसियों ने खीवा को भी जीत लिया। तब अँगरेज़ों ने भी अफ़गानिस्तान में दखल देने की सोची। भारत-मन्त्री ने लार्ड नार्थब्रुक को लिखा कि हरात और कन्दहार में ब्रिटिश एजेण्ट रक्खे जायँ। नार्थब्रुक को यह न जँचा और उसने इस्तीफ़ा दे दिया।

§५. भारत ब्रिटिश पूँजीशाही के शिकंजे में—उपर्युक्त घटनाओं से प्रकट है कि महारानी के राज्य में भारत का ब्रिटिश साम्राज्य-साधना के लिए पहले से भी अधिक उपयोग किया जाता रहा। सन् १८६५ में भारत से इंग्लैंड तक समुद्र के भीतर पनडुब्बा तार जारी किया गया। उसके लगाने का समूचा खर्च भारत पर डाला गया। हमने देखा है कि भारत की मालगुजारी में से ५ फ़ी सदी नफ़े की गारण्टी पाकर अँगरेज़ पूँजीपतियों ने रेल कम्पनियाँ खड़ी की थीं। नफ़े की

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

गारण्टी के कारण इन्होंने अत्यन्त फ़िजूल-खर्ची से लाइनें बनवायीं। जब कभी हिसाब में गबन के कारण उन्हें घाटा हुआ, तब भी उन्हें ५ फ़ी सदी नफ़ा तो अपने बेहोश मालिक, भारतीय किसान, की तरफ़ से दिलाया ही गया।

लार्ड मेयो के समय कम्पनी-रेलों के बजाय सरकारी रेलें शुरू की गयीं, और यह तय हुआ कि उत्पादक कार्यों के लिए मालगुज़ारी में से खर्च करने के बजाय क़र्ज़ ले कर रुपया लगाया जाय। यदि मालगुज़ारी की बचत हो तो उसे भी उत्पादक कार्य में क़र्ज़ के रूप में दे दिया जाय और अनुत्पादक क़र्ज़ में से उतनी कमी कर दी जाय। यह बात बुरी न थी, बशर्तें कि जनता की इच्छा से और जनता के हित में कार्य होता। भारतीय जनता को नहरों की जरूरत थी और नहरें रेलों से $\frac{१}{६}$ खर्च पर बन सकती थीं। दूसरे सन् १८७१ तक मुख्य रेल-पथ (कलकत्ते से मुम्बई, मुम्बई से मद्रास और कलकत्ते से मुलतान तक) पूरे हो चुके थे। लेकिन इसके बाद भी ब्रिटिश पूँजी के विनियोग की खातिर भारत में पटरियों का जाल बिछाता गया और भारत का क़र्ज़ बढ़ता गया।

भारत की गुलामी से लाभ उठाने का दूसरा तरीक़ा इसके जकात के नियन्त्रण द्वारा था। गदर के बाद की आर्थिक कठिनाई में कैनिंग की सरकार ने आयात पर थोड़ी-सी चुंगियाँ बढ़ा दीं। लेकिन अँगरेज़ व्यापारियों के दबाव से उसे वे चुंगियाँ दो बरस में ही घटानी पड़ीं। अगले "दस वर्ष में भारत का व्यापार बढ़ा, पर जकात की आय घटी। उस आय की मात्रा उपहासास्पद थी।" सूती धागों के आयात पर ३$\frac{१}{२}$ फ़ी सदी और कपड़े के आयात पर ५ फ़ी सदी चुंगी थी। उस समय २-३ कपड़े की मिलें कलकत्ते में तथा एक दर्जन बम्बई में खुल चुकी थीं। लंकाशायर को इतने से भी चिढ़ थी। सन् १८७५ में लार्ड नार्थब्रुक पर दबाव डाला गया कि इस ५ फ़ी सदी चुंगी को भी हटा दे। तब नार्थब्रुक ने इस्तीफ़ा दे दिया।

भारतीय शिल्पों का नाश होने पर बेकार जनता की सस्ती मजदूरी से भी अँगरेज़ पूँजीपतियों ने लाभ उठाया। लार्ड मेयो की आशा थी कि "भारत की सस्ती मजदूरी ब्रिटिश व्यवसायों के कर्तृत्व के लिए नया क्षेत्र उपस्थित करेगी।" चाय, काफ़ी, सिनकोना, जूट और नील की काश्त की सफलता का उल्लेख कर उसने कहा कि हमें जंगलों खानों और समुद्र की मछलियों पर भी ध्यान देना है, और इसलिए उसने जंगल, भूगर्भ तथा समुद्री पड़ताल आदि के महकमे खोले।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

जिन कारबारों में अँगरेज़ों की पूँजी लगी थी, उनकी पूँजी का नफ़ा हर साल भारत से बाहर जाता था।

सन् १८५८ में भारत पर ६९५ लाख पौंड कर्ज़ डाला गया था। महारानी के राज के १९ सालों में वह कर्ज़ दूना हो गया। इसके अलावा कम्पनी की १२० लाख पौंड पूँजी पर भी भारत को सूद देना पड़ता था। इस सूद और विलायत में भारत-सरकार के खर्चे के नाम पर भारत को अब (सन् १८७० के बाद) १½ से २ करोड़ पौंड वार्षिक का माल आयात की अपेक्षा अधिक विलायत भेजना पड़ता था। यों महारानी के राज के १२ बरसों में भारत से धन की वार्षिक निकासी चौगुनी हो गयी, और इस धारा की पूर्ति के लिए जनता के कर का बोझ ५० फ़ी सदी बढ़ गया, जिसमें नमक-कर ही विभिन्न प्रान्तों में ५० फ़ी सदी से १०० फ़ी सदी तक बढ़ा।

भारत न केवल कपड़ा और अन्य कारीगरी की चीज़ें अन्न दे कर खरीदता रहा, प्रत्युत अपना यह खिराज भी अन्न और कच्चे माल से चुकाता रहा। अनाज का निर्यात इस अर्से में वार्षिक ३० लाख से ८० लाख पौंड हो गया। तेलहन और कच्चे चमड़े का निर्यात भी इसी तरह बढ़ा। तेलहन की खली सर्वोत्तम खाद होती है, इसलिए तेलहन का निर्यात "जमीन की उपजाऊ शक्ति का निर्यात" था। कच्चे चमड़े के निर्यात का बढ़ना चमारों के शिल्प के ह्रास का सूचक था।

यह पद्धति हमारे देश में अब तक जारी है। जाड़े के मौसम में हमारे गाँव और मंडियों में अनाज का जो चुस्त चालान दिखायी देता है वह स्वतन्त्र व्यापार नहीं, प्रत्युत गरीब किसानों को अपना पेट काट कर गुलामी का खिराज देना होता है। इसीलिए अकाल के सालों में भी वह "व्यापार" वैसी ही चुस्ती से चलता रहता है। विदेशी व्यापार सब हुण्डियों द्वारा होता है। भारत के जो व्यापारी माल बाहर भेजते हैं, वे उन व्यापारियों से दाम पा कर हुण्डियाँ दे देते हैं जिन्होंने बाहर से माल मँगाया होता है। लेकिन चूँकि मँगाया हुआ माल हर साल भेजे हुए माल से कम होता है, इसलिए माल मँगाने वालों से भेजने वालों को पूरा मूल्य नहीं मिल पाता। इस कमी के लिए लन्दन में भारत-सचिव हुण्डियाँ निकालता है, जिनका भुगतान भारत के खज़ानों से हो जाता है।

———

अध्याय ८

सम्राज्ञी का राज

(१८७६-१९०१ ई०)

§१. **युरोप की विश्व-प्रभुता**—सन् १८७६ में महारानी विक्टोरिया ने भारत सम्राज्ञी का पद धारण किया। यह घटना एक नयी लहर की सूचक थी। इंग्लैंड ने अपना साम्राज्य बनाने में युरोप के दूसरे देशों से कैसे बाज़ी मार ली, सो हमने देखा है। नैपोलियन की अन्तिम हार के धक्के से सँभल कर फ्रान्स सन् १८३० से फिर साम्राज्य की तलाश करने लगा। उसने तुर्की साम्राज्य का अलजीरिया और चीन साम्राज्य का हिन्दचीन प्रदेश जीत लिये और स्वेज़ नहर बना कर मिस्र में प्रभाव जमाया। इटली और जर्मनी १९ वीं सदी के मध्य तक टुकड़ों में बँटे हुए थे। सन् १८६० के बाद ये दोनों राष्ट्र संघटित हुए और तब ये भी साम्राज्य और उपनिवेशों की खोज करने लगे।

अमेरिका महाद्वीप के पुराने बाशिन्दों का युरोप वालों ने संहार ही कर डाला था, और उनकी जगह पर अपने नये राष्ट्र खड़े कर लिये थे। आफ्रिका का तट युरोपियनों के अधीन था और यह स्पष्ट था कि यदि वे भीतर घुसें तो वहाँ उनका मुकाबला करने वाला कोई न था। उत्तरी आफ्रिका नाम को तुर्की के सुल्तान के अधीन था। एशिया महादेश में भारत जैसा पुरानी सभ्यता वाला देश न केवल युद्ध और राजनीति में, प्रत्युत शिल्प और व्यापार में भी, युरोप के मुकाबले में पस्त हो गया और चीन, ईरान और तुर्की बार-बार पछाड़ खा चुके थे। युरोप के राष्ट्रों को अब यह स्पष्ट दिखायी देने लगा कि शीघ्र ही समूचे संसार पर उनकी प्रभुता हो जाना निश्चित है। इस विश्वास के साथ अब वे एक दूसरे से होड़ करते हुए पुराने खोखले राज्यों पर गिद्धों की तरह झपटने लगे। प्रशिया के राजा ने प्रायः सब जर्मन रियासतों को अधीन कर सन् १८७१ में जर्मन सम्राट् का पद धारण किया। उसी की नकल पर इंग्लैंड को महारानी भारत सम्राज्ञी बनी। इस उपलक्ष में १ जनवरी सन् १८७७ को दिल्ली में एक दरबार किया गया। उसी समय मद्रास और मैसूर प्रान्तों में घोर दुर्भिक्ष था, जिसमें साल भर में ५० लाख मनुष्य भूख से तड़प-तड़प कर मर गये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

§२. **दूसरा अफ़गान युद्ध**—साम्राज्य-लोलुपता की इस नयी झोंक में इंग्लैंड के अमात्यों ने तय किया कि मध्य एशिया में रूस साम्राज्य से अपनी सीमा भिड़ा दी जाय। इसके लिए उन्होंने लार्ड लिटन को भारत का वाइसराय बना कर भेजा।

लिटन ने कलकत्ते से सीधे अम्बाला आ कर अमीर शेरअली के पास यह सन्देश भेजा कि काबुल में एक अँगरेज़ दूत रखना अभीष्ट है, और हरात में तो एक अँगरेज़ कारिन्दा रखना ही होगा। इस बात-चीत के दौरान में ही यह अफ़गानिस्तान को घेरने भी लगा। अफ़गान देश की दक्खिन-पूरबी सीमा सिबी है, जिसके उत्तर-पच्छिम, बोलान दर्रे के उस पार, शालकोट ('कोइटा') का खुला ऊँचा पठार मानों अफ़गान किले का दक्खिनी बुर्ज है। दर्रा बोलान तक कलात की सीमा है। कलात, लासबेला और बलोचिस्तान में अँगरेज़ कारिन्दे दस्तन्दाज़ी कर ही रहे थे। दिसम्बर १८७६ ई० में कलात और लासबेला के खानों तथा बलोच सरदारों ने एक सन्धि पर दस्तखत कर दिये जिससे अँगरेज़ी सेना को बोलान के रास्ते 'कोइटा' में घुसने का मौका मिला और अँगरेज़ "वस्तुतः कलात के मालिक बन गये।" पूरब तरफ़ लिटन ने कावग्नारी को कोहाट से कुर्रम दून में घुसने को भेजा, और उत्तर-पूरब तरफ़ कश्मीर के महाराजा को शस्त्र देकर उभाड़ा कि वह चितराल के रास्ते के दर्रों पर काबू कर ले। उसने गिल्गित में ब्रिटिश एजेन्सी स्थापित कर ली, और कश्मीर के दिवालिये राज के खर्च पर वहाँ तक तार की पाँत पहुँचा दी। उसका "लक्ष्य अफ़गान शक्ति को क्रमशः खंडित और कमज़ोर करना था।"

इस बीच युरोप में बड़ी घटनाएँ घट रही थीं। बालकन प्रायद्वीप की युरोपियन जातियों ने तुर्क साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया। उनकी मदद में रूसी सेना कुस्तुन्तुनियाँ के दरवाज़ों पर आ पहुँची। रूस का कुस्तुन्तुनियाँ ले लेना अँगरेज़ों के स्वेज़ मार्ग के लिए खतरनाक होता, इसलिए उन्होंने अपना बेड़ा दरेदानियाल में ला घुसेड़ा और तुर्की के सुल्तान से यह कह कर कि वे रूस से उसका बचाव करेंगे, एक गुप्त सन्धि कर ली। उस सन्धि का सार यह था कि तुर्क साम्राज्य का एशियाई प्रदेश ब्रिटिश प्रभाव-क्षेत्र बन जायगा और सिप्रुस (साइप्रस) द्वीप अँगरेज़ों को मिलेगा। अँगरेज़ों ने माल्टा द्वीप में हिन्दुस्तानी फ़ौज भी मँगा ली। जर्मनी की मध्यस्थता से दोनों साम्राज्यों के बीच युद्ध होता-होता रुका और बर्लिन में युरोपीय

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

राष्ट्रों की सभा हुई (जून-जुलाई १८७८ ई०)। तुर्क साम्राज्य का निपटारा करना उस सभा का मुख्य उद्देश था। शुरू में ही प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधि से यह ऐलान करने को कहा गया कि वे कोई गुप्त सन्धि करके नहीं आये हैं। ब्रिटेन के मन्त्री डिज़रायली और सालिस्बरी ने कोई चारा न देख वैसा कह दिया। पर कुछ दिन बाद ही उनका भेद खुल गया। उनकी इस करतूत से खीझ कर फ्रान्सीसी प्रतिनिधि सभा छोड़ कर जाने लगा। तब एक और गुप्त सन्धि द्वारा फ्रान्स को मनाया गया। उस सन्धि का सार यह था (१) कि फ्रान्स यदि तुर्क साम्राज्य का त्यूनिस प्रान्त दबा ले तो ब्रिटेन आपत्ति न करेगा, (२) मिस्र के आर्थिक नियन्त्रण में फ्रान्स का आधा हिस्सा होगा, और (३) सीरिया में षड्यन्त्र करने का एकाधिकार फ्रान्स को रहेगा।

माल्टा में हिन्दी फ़ौज देख कर रूसियों ने सोचा कि उस फ़ौज को अपने घर के नज़दीक काम दिया जाय। इसलिए जिस दिन बर्लिन में सन्धि-सभा शुरू हुई, उसी दिन ताशकन्द से जनरल स्टोलटाफ़ ने काबुल को कूच किया। शेरअली ने रूस से स्थायी मैत्री की सन्धि की, पर बर्लिन की सन्धि हो जाने पर स्टोलटाफ़ काबुल से लौट गया।

उसके लौट जाने पर लिटन अफ़गानिस्तान पर टूट पड़ा। अँगरेज़ी सेना तीन तरफ़ से बढ़ी। एक टुकड़ी ने खैबर से बढ़ कर जलालाबाद ले लिया; दूसरी ने कुर्रम के रास्ते घुस कर पैवार घाटा छीन लिया; और तीसरी ने 'कोइटा' से कूच कर कन्दहार जीत लिया। शेरअली तुर्किस्तान भाग गया और वहीं उसकी मृत्यु हुई। उसके बेटे याकूबखाँ के साथ २६-५-१८७९ ई० को गन्दमक पर सन्धि हुई। उसके अनुसार (१) अफ़गानिस्तान ने अपनी विदेशी नीति अँगरेज़ों को सौंप दी; (२) काबुल में अँगरेज़ रेज़िडेण्ट तथा हरात आदि नाकों में अँगरेज़ कारिन्दे रखना तय हुआ; (३) पैवार घाटे सहित कुर्रम दून, कोइटा-पिशीन, थल-छोटियाली और सिबी के इलाके अँगरेज़ों को दिये गये; और (४) यह तय हुआ कि कन्दहार में अँगरेज़ी सेना जाड़े तक ठहरेगी, बाकी इलाकों से लौट जायगी। गन्दमक की सन्धि से अफ़गानों की स्वतन्त्रता समाप्त हुई; वे अँगरेज़ों के रक्षित बन गये और उन्होंने अपने देश के दक्खिन-पूरबी जिले, जिनकी जनता शुद्ध पठान है, अँगरेज़ों को दे दिये।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

लेकिन विदेशी संगीनों को अपने देश में देखना अफ़गान बरदाश्त नहीं कर सकते। ३-६-१८७६ ई० को विद्रोह कर उन्होंने रेज़िडेण्ट कावग्नारी को मार डाला। इसपर सेनापति रौबर्ट्स कुर्रम से शुतुरगर्दन घाटा पार कर, चारासियाब पर अफ़गानों को हराते हुए, काबुल आया, और फ़ौजी कचहरी बैठा कर ८७ अफ़गानों को फाँसी दिला दी। याकूबखाँ को नजरबन्द कर मेरठ भेजा गया। फाँसियों से अफ़गान फिर भड़के और रौबर्ट्स को घेर लिया। कन्दहार से स्टिवर्ट ने आ कर उसे घेरे से निकाला। परन्तु अब अँगरेज़ों ने अपने को फँसा पाया। वे सारे अफ़गानिस्तान को जीत न सकते थे और वहाँ कोई शासन खड़ा किये बिना लौटते तो सन् १८४२ वाली घटनाएँ दोहरायी जातीं। कन्दहार एक कठपुतले शासक के हाथ सौंप दिया गया था, पर बाकी इलाकों के लिए कोई शासक मिलता न था। लिटन ने रौबर्ट्स के पास एक अफ़सर को इस आदेश से भेजा कि "काबुल पहुँचते ही हमें उस चूहेदानी से निकालने का ढंग सोचना।" इस बीच शेरअली का भतीजा अब्दुर्रहमान, जो तब तक रूसी तुर्किस्तान में शरणागत था, अफ़गानिस्तान में प्रकट हुआ। लिटन ने "जंगल के बीच इस मेढ़े" को पा कर खैर मनायी। किन्तु तभी लिटन का उत्तराधिकारी बना कर रिपन को भारत भेजा गया।

हरात शेरअली के बेटे आयूबखाँ के काबू में था। रिपन अब गन्दमक की सन्धि में से केवल काबुल और हरात में अँगरेज़ अफ़सर रखने की शर्त हटा कर, बाकी शर्तों को रखते हुए, अब्दुर्रहमान को अफ़गानिन्तान देने को तैयार था। अब्दुर्रहमान भी इतने से सन्तुष्ट था। उनकी बातचीत चल ही रही थी कि आयूब ने कन्दहार पर हमला कर जनरल बरोज़ को माईबन्द पर करारी शिकस्त दी। (२७-७-१८८० ई०)। रिपन ने तब रौबर्ट्स को काबुल से कन्दहार भेजा और बाक़ी सेना काबुल से लौटा ली। रौबर्ट्स ने कन्दहार पहुँच आयूब को हरा दिया। सन् १८८१ के शुरू में अँगरेज़ी सेना कन्दहार भी खाली कर आयी। अब्दुर्रहमान ने तब कन्दहार और हरात भी जीत लिये।

दूसरे अफ़गान युद्ध के सिलसिले में सिबी तक रेलपथ पहुँचा दिया गया।

§३. मिस्र पर ब्रिटिश नियन्त्रण—मिस्र के जिस खदीव के समय स्वेज़ नहर खुली थी, उसने अपनी फ़िज़ूलखर्ची से बड़ा कर्ज़ कर लिया था। इसी कर्ज़ के कारण उसे स्वेज़ नहर के अपने हिस्से अँगरेज़ों के हाथ बेचने पड़े थे। लेकिन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वैसा करने पर भी उसका क़र्ज़ न उतरा और सन् १८७६ में उसने अपने देश की मालगुज़ारी को अपने फ्रान्सीसी और अँगरेज़ उत्तमर्णों के हाथ गिरवी रख दिया। सन् १८८२ में फ्रान्स और इंग्लैंड के शासन के विरुद्ध मिस्री लोगों ने अरबी पाशा के नेतृत्व में विद्रोह किया। फ्रान्सीसी सरकार ने खर्च के डर से उस विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ न किया; अँगरेज़ों ने भारत के खर्च पर और भारत से फ़ौज भेज कर उस विद्रोह को कुचल दिया। तब से मिस्र पर अकेले इंग्लैंड का नियन्त्रण रहने लगा। नाम को वहाँ तुर्की के सुल्तान का आधिपत्य और खदीव का शासन बना रहा।

सूडान और सोमाली देश भी मिस्र के अधीन थे। वहाँ तभी महदी के नेतृत्व में विद्रोह हुआ। मिस्री फ़ौजें महदी के मुकाबले में हारीं और उनके साथ का अँगरेज़ी तोपखाना छीना गया। जनरल गौर्डन को तब सूडान की राजधानी खार्तूम पर भेजा गया; लेकिन वह ११ हज़ार फ़ौज के साथ कैद हो गया। सन् १८८४ के अन्त में उसे छुड़ाने को फिर चढ़ाई की गयी, पर इस फ़ौज के खार्तूम पहुँचने के दो दिन पहले सब कैदी मार डाले गये थे। अँगरेज़ों ने सूडान तट के सुआकीम और सोमाली तट के ज़ैला, बर्बरा आदि क़िलों में भारतीय सेना डाल कर सन्तोष किया।

§४. भारतीय जागरण का आरम्भ—शुरू-शुरू में जिन भारतवासियों ने अँगरेज़ी शिक्षा पायी, वे प्रायः समाज-सुधार और शिक्षा-प्रचार के बड़े पक्षपाती थे। अँगरेज़ी राज के प्रति उन्हें अनुरक्ति थी और इंग्लैंड की शासन-पद्धति के वे प्रशंसक थे। वे समझते थे कि भारत में समाज-सुधार और ज्ञान-प्रसार अँगरेज़ी राज के द्वारा ही हो सकता है। अपने देश की बढ़ती हुई दरिद्रता और गुलामी की ओर भी उनका ध्यान जाता था, पर वे समझते थे कि अँगरेज़ हमें माँगने भर से वे अधिकार दे देंगे, जिनसे हम अपने देश की दशा सुधार सकेंगे। उनकी माँगें भी तुच्छ होती थीं। १८५० ई० के क़रीब तक कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में इस तरह की माँगने वाली संस्थाएँ भी स्थापित हो गयी थीं। बंगाल के राजा राममोहन राय (१७७४-१८३३ ई०) और ईश्वरचन्द्र विद्यासागर (१८२०-१८९१ ई०) का उल्लेख हो चुका है। उत्तर भारत के सैयद अहमदखाँ (१८१७-१८९८ ई०), महाराष्ट्र के गोपाल हरि देशमुख (१८२३-१८९२ ई०) और गुजरात के दादाभाई नवरोजी (१८२५-१९१७ ई०) भी पहले अँगरेज़ी-शिक्षित-सुधारकों में से थे।

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सन् ५७ के गदर के समय जब समूचा रुहेलखंड अँगरेज़ों से लड़ रहा था, तब सैयद अहमदख़ाँ वहीं अँगरेज़ों को बचाने में लगे थे। पीछे उन्होंने अपनी एक पुस्तक में यह लिखा कि गवर्नर-जनरल की काउन्सिल में यदि एक हिन्दुस्तानी सदस्य होता जिसके द्वारा सिपाही अपने कष्ट सरकार तक पहुँचा सकते, तो गदर न होने पाता! सन् १८७७ में लार्ड लिटन से सैयद अहमदख़ाँ ने अलीगढ़ मुस्लिम कालेज की नींव रखवायी।

दादाभाई नवरोज़ी दूसरे अँगरेज़ीदानों की तरह अँगरेज़ी राज के भक्त न थे। उन्होंने पहलेपहल अपने देश की दरिद्रता और उसके कारणों को ठीक-ठीक समझा और उनपर प्रकाश डाला।

स्वामी दयानन्द

अँगरेज़ी शिक्षा से अपरिचित लोगों में अँगरेज़ी राज से वैसा अनुराग न था। उनमें अब कुछ ऐसे व्यक्ति पैदा हुए जिनके कारण ग़दर के बाद का भारतवासियों का घोर अनात्मविश्वास कुछ कम हुआ। गुजरात के दयानन्द (१८२४-१८८३ ई०) तथा बंगाल के रामकृष्ण परमहंस (१८३४-१८८६ ई०) उनमें प्रमुख थे। दयानन्द धर्म-सुधारक और समाज-सुधारक थे, परन्तु उन्हें सुधारों के लिए प्रेरित करने वाला भाव यह था कि इससे राष्ट्र शक्तिशाली हो कर स्वाधीन हो सकेगा। उन्होंने लिखा, "कोई कितना ही करे, परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा प्रजा पर पिता-माता के समान कृपा, न्याय और

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।" गुजराती होते हुए भी दयानन्द ने अपने ग्रन्थ हिन्दी में लिखे, क्योंकि उनके विचार में "भिन्न-भिन्न भाषा, पृथक्-पृथक् शिक्षा और अलग-अलग व्यवहार का विरोध बिना छूटे··· अभिप्राय सिद्ध होना कठिन" था। विज्ञान के प्रसार, शिल्प की उन्नति और स्वदेशी की ओर दयानन्द का विशेष ध्यान था। रामकृष्ण परमहंस की मुख्य देन थी सब धर्मों का समन्वय। अपने जीवन की उच्चता से उन्होंने उन अँगरेज़ी-पढ़ों में से भी अनेक को अपनी तरफ़ खींचा जो प्रत्येक भारतीय वस्तु को तुच्छ मानने लगे थे, और उनकी हार-मनोवृत्ति को बदल दिया।

बंकिमचन्द्र

अँगरेज़ी शिक्षा और अँगरेज़ी राज की चोट के कारण भारतीय वाङ्मय में भी जागरण के चिह्न दिखायी दिये। बँगला कविता में सन् १८५८ से ही स्वाधीनता और राष्ट्रीयता की पुकार गूँजने लगी थी। बंकिमचन्द्र (१८३८–१८९४ ई०) अँगरेज़ी-पढ़ों में से पहले व्यक्ति थे जिन्होंने दयानन्द की तरह पूर्ण स्वाधीनता का आदर्श सामने रक्खा। वारन हेस्टिंग्स् के समय बंगाल में गुरिल्ला युद्ध करने वाले सन्यासियों के चरित से एक कहानी बनाकर उन्होंने आनन्दमठ नाम से स्वतन्त्रता के योद्धाओं का आदर्श अंकित किया (१८८२ ई०)। उस मठ के सन्यासियों से उन्होंने काली की वन्दना के बहाने मातृभूमि की वन्दना "वन्देमातरम्" गीत से करायी। बंकिम ने जो लहर बँगला में चलायी, वही नर्मद (१८३३–१८८६ ई०) ने गुजराती में, हाली (१८३७–१९१४ ई०) ने उर्दू में, हरिश्चन्द्र (१८५०–८५ ई०) ने हिन्दी में और विष्णुशास्त्री चिपलूणकर (१८५०–८१ ई०) ने मराठी में चलायी। चिपलूणकर के साथी बाल गंगाधर तिलक थे। सन् १८८१ में पहलेपहल उन्हें अपने एक लेख की खातिर चार मास की कैद मिली। सन् १८७० ई० के बाद मद्रास के सिवाय सभी प्रान्तों में देसी अखबार थे और उनमें राष्ट्रीय स्वाधीनता की भावना प्रकट होने लगी थी। इसी ज़माने में *कनिंगहाम, बर्जेस आदि अँगरेज़ विद्वानों ने भारतीय पुरातत्व की खोज जारी रक्खी जिससे हमारे इतिहास के पुनरुद्धार का मार्ग बना।

इसी समय भारतीय व्यवसायी देश में नये कल-कारखाने भी स्थापित करने लगे। पहले-पहल सन् १८५४ में बम्बई में कावसजी नानभाई दावर ने कातने-बुनने की एक मिल खड़ी की। सन् १८८५ तक भारत में ४-५ दर्जन कपड़े की मिलें लग चुकी थीं।

§५. स्थानीय स्वशासन, कृषक अधिकार कानून तथा इल्बर्ट बिल— लार्ड रिपन ने जागृति के इन अस्फुट चिह्नों को पहचाना और ऐसी चेष्टा की कि "आने वाली महान् कठिनाई का समय रहते प्रतिकार हो जाय।" गाँवों तक के प्रबन्ध का विदेशी द्वारा संचालन जागृत जनता को बहुत अखरता। इसलिए रिपन ने "स्थानीय स्वशासन" जारी किया। यह योजना मेयो की थी, जिसके अनुसार बम्बई शहर की सभा को सन् १८७५ में और कलकत्ते को १८७६ में कुछ अधिकार मिले थे। रिपन ने सन् १८८१ में प्रान्तीय सरकारों को सब शहरों और गाँवों के लिए वैसा "स्वशासन" देने का अधिकार दे दिया। उसने लिखा "देसी पद्धति को हमने बहुत-कुछ नष्ट किया है। पर उसके...अवशेष देश के अनेक भागों में हैं, और उन अवशेषों पर मैं स्थानीय स्वशासन की इमारत खड़ी करना चाहता हूँ।" लेकिन पुरानी पद्धति में स्थानीय पंचायतें राज्य की बुनियाद थीं, इस 'स्थानीय स्वशासन' के बोर्ड राज्य के बनाये हुए खिलौने थे।

कैनिंग और लारेन्स के कृषक-अधिकार-कानूनों से किसानों को राहत न मिली थी। जमींदारों और किसानों के सम्बन्ध जिन रिवाजों के अनुसार थे, वे अब टूट रहे थे। क़ानून की मदद से अपनी आमदनी से निश्चिन्त हो जाने से जमींदार शहरों में बस रहे थे। इस दशा में रिपन ने फिर किसानों को उनके अधिकारों का एक अंश वापिस दिलाने की कोशिश की। उसके प्रस्तावित क़ानून उसके उत्तराधिकारी डफ़रिन के समय स्वीकृत हुए।

उस समय के जाब्ता फ़ौजदारी के अनुसार देसी जज अँगरेज़ अभियुक्तों का विचार न कर सकते थे। रिपन ने अपनी काउन्सिल के मेम्बर इल्बर्ट से सन् १८८३ में एक में एक बिल पेश कराया, जिसका उद्देश देसी जजों को वह अधिकार देना था। इस पर हिन्दुस्तान के गोरे भड़क उठे। उन्होंने रिपन का सामाजिक बहिष्कार किया, सरकारी कर्ज़ का बहिष्कार करना तय किया और गोरी फ़ौज को भड़काने की कोशिश की। एक सलाह यह भी थी कि लार्ड रिपन का अपहरण करके उन्हें जहाज़ में रख कर विलायत भेज दिया जाय!

रिपन को अन्त में झुकना पड़ा और यह समझौता किया गया कि गोरे अभियुक्तों का विचार जूरी से होगा।

§६. **रूस से सीमा-निर्णय**—सन् १८८४ में रूसियों ने मर्व शहर फ़तह किया जो अफ़गान सीमा से १५० मील पर है। इस पर अँगरेज़ फिर बिदके। अन्त में यह तय हुआ कि रूसी और ब्रिटिश प्रतिनिधियों का एक सम्मिलित मंडल हरीरूद से आमू दरिया तक अफ़गानिस्तान की सीमा अंकित कर दे। यह मंडल जब सीमा पर पहुँचा तो रूसियों और अफ़गानों की छीनझपट जारी थी। रूसियों ने मर्व के सौ मील दक्खिन पंजदेह बस्ती अफ़गानों से छीन ली। इसी बीच भारत में लार्ड रिपन की जगह डफ़रिन आ गया था और अमीर अब्दुर्रहमान उससे रावलपिंडी में भेंट कर रहा था। डर था कि अफ़गान रूसियों को रोकेंगे तो रूसी हरात पर हमला करेंगे। कोइटा में डफ़रिन ने भारी सेना जमा की। उसने अब्दुर्रहमान से पूछा, हरात की रक्षा के लिए सेना भेजी जाय? लेकिन अब्दुर्रहमान नहीं चाहता था कि अँगरेज़ी सेना अफ़गानिस्तान में घुसे। इसलिए रूसी दक्खिन तरफ़ जहाँ तक बढ़ना चाहते थे, वह सीमा उसने स्वयम् मान ली।

§७. **उत्तरी बरमा का जीता जाना**—फ्रान्स के हिन्दचीन ले लेने के बाद से बरमा राज्य की सीमा उससे लगने लगी थी। अँगरेज़ों के शिकंजे से बचने के लिए बरमा के राजा ने फ्रान्स, जर्मनी और इटली से व्यापारिक सन्धियाँ कीं। माँदले में एक फ्रान्सीसी बैंक और फ्रान्सीसी रेल खोलने की योजना बनी। ब्रिटिश सरकार ने फ्रान्स पर दबाव डाल कर उसे तोड़ दिया। उसके बाद इरावती से अँगरेज़ी बेड़ा ऊपर बढ़ा और दस दिन में उत्तरी बरमा को जीत लिया (नवम्बर १८८५ ई०)। बरमा के राजा को कैद कर रत्नागिरि भेजा गया। लेकिन देश को जीतने के बाद अँगरेज़ बरमा से सेना और पुलिस खड़ी न कर सके, और कई बरस तक बरमी लोग गुरिल्ला-युद्ध करते रहे। भारत की शक्ति और खर्च से ही अँगरेज़ों ने बरमा को दबाये रक्खा।

§८. **सीमान्तों पर अग्रसर नीति**—सन् १८८५ के रूसी खतरे के समय जो अतिरिक्त सेना खड़ी की गयीं, उसे स्थायी करके आगे बीस बरस तक भारत-सरकार ने सीमान्तों पर अग्रसर नीति जारी रक्खी। डफ़रिन के शासन-काल (१८८५-८८ ई०) में सिन्ध-काँठे का रेल-पथ तैयार हुआ, अफ़गान कबीलों

और चितराल के मामलों में दखल दिया जाने लगा, और गिल्गित ले लेने की योजना बनी। बरमा के जीते जाने से लुशाई-चिन प्रदेश चारों तरफ़ से घर गये।

सन् १८८९ से ९३ ई० तक लार्ड लैंसडौन के शासन में यही नीति और तेजी से चली। सन् १८८९ में अफ़गान कबीलों के झगड़ों से लाभ उठा कर झोब इलाका अँगरेज़ी संरक्षण में लिया गया, कश्मीर के महाराजा को पदच्युत किया गया तथा चितराल को रुपये की "सहायता" दी जाने लगी। सन् १८९० में मणिपुर और लुशाई के विद्रोह दबाये गये। सन् १८९१ में चितराल ने अपनी विदेशी-नीति और सीमाओं की रक्षा भारत-सरकार को सौंप दी। कश्मीर की गद्दी तो महाराजा को वापिस दी गयी, पर गिल्गित में एक ब्रिटिश अफ़सर स्थायी रूप से रहने लगा। गिल्गित के उत्तर तरफ़ हुन्ज़ा और नगर पर चढ़ाई कर उन्हें भी अधीन किया गया। इसी समय रूसी पामीर जीतने लगे, इसलिए सन् १८९२ में पामीर की सीमा-निर्णय के लिए एक मिश्रित प्रतिनिधि-मंडल बैठाया गया। उसी वर्ष सरहदी रेलपथ दर्रा बोलान के पार कोइटा और चमन तक, जो अफ़गानिस्तान की जमीन में था, पहुँच गया।

सन् १८९३ में लुशाइयों ने फिर विद्रोह किया। अब की बार उन्हें निःशस्त्र कर दिया गया। इस वर्ष भारत-सरकार ने चीन, तिब्बत और अफ़गानिस्तान से सीमा-निर्णय किया। चीन के सीमा-निर्णय से कचीन इलाका और शान रियासतें अँगरेज़ों की रक्षित हो गयीं और तिब्बत के सीमा-निर्णय से सिकिम पूरी तरह अँग्रेज़ी आधिपत्य में आ गया। अमीर अब्दुर्रहमान ने मोहमन्द, अफ़रीदी, वजीरी और झोब पटानों के इलाकों और चमन पर आधिपत्य छोड़ दिया, तथा चितराल दीर बाजौर और स्वात में दखल न देना स्वीकार किया। उसने कहा, "इंग्लैंड अफ़गानिस्तान का कोई टुकड़ा चाहता नहीं, तो भी उड़ाने का कोई मौका चूकता नहीं; रूस की बनिस्बत इस दोस्त ने ज़्यादा ले लिया है।" उसने यह भी कहा कि कबीलों के इलाकों में युद्ध हुए बिना न रहेगा।

यह भविष्यवाणी लैन्सडौन के उत्तराधिकारी एल्गिन के शासन-काल (१८९३-९८ ई०) में ही पूरी हो गयी। सन् १८९५ के शुरू में चितराल में विद्रोह हुआ। गिल्गित से एक अँगरेज़ी टुकड़ी भेजी गयी, पर वह भी घेर ली गयी। तब मलाकन्द और गिल्गित से दो बड़ी फ़ौजें भेज कर चितराल फिर जीता गया। इसी

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

वर्ष अँगरेज़ों ने टोची (कुर्रम नदी को दक्खिनी शाखा) की दून पर कब्जा कर लिया और पामीर में रूस और अफ़गानिस्तान की सीमाएँ अंकित हो गयीं।

अँगरेज़ों ने अब चितराल में छावनी रखना तथा वहाँ तक सड़क और थाने बनाना तय किया। इससे सन् १८९७ में टोची से स्वात तक समूचा सीमान्त भड़क उठा। मलाकन्द से एक अँगरेज़ सेनापति स्वातियों के खिलाफ़ तथा पेशावर से दूसरा अफ़रीदी-तीराह में घुसा। सन् १८५७ के बाद से भारत में यही सब से कठिन युद्ध हुआ। तीराह की चढ़ाई से अफ़रीदी दबे नहीं, और उन्होंने फिर यह दिखा दिया कि पठान अपने इलाके में विदेशी सेना को देख नहीं सकते। इसीलिए एल्गिन के उत्तराधिकारी कर्ज़न ने खैबर, कुर्रम और वज़ीरिस्तान से धीरे-धीरे सेना लौटा ली और वहाँ स्थानीय लश्कर खड़े किये। १९०१ ई० में कर्ज़न ने उत्तर-पच्छिमी इलाकों को पंजाब से अलग कर एक प्रान्त बना दिया। सन् १९०१ में ही अमीर अब्दुर्रहमान चल बसा और उसका बेटा हबीबुल्ला गद्दीनशीन हुआ।

§९. भारत में ब्रिटिश अर्थनीति। (१८७६-१९०१ ई०)—हमने देखा कि नार्थब्रुक के इस्तीफ़ा देने का एक कारण यह भी था कि वह विलायती कपड़े पर से चुंगी हटाने को अन्याय समझता था। लिटन आते ही उस चुंगी को हटा देता, पर तभी चाँदी का भाव गिरने तथा मद्रास में घोर दुर्भिक्ष होने से भारत-सरकार की आय बहुत गिर गयी, जिससे उसे रुकना पड़ा। तब भारत-सचिव ने उसे लिखा कि भारत में "पाँच और मिलें काम जारी करने वाली हैं"—मानों कोई बड़ा अनर्थ होने वाला है—और सन् १८७९ में, जब अफ़गान युद्ध जारी था, और दक्खिन में सन् १८७७ तथा उत्तर भारत में सन् १८७८ के दुर्भिक्षों के प्रभाव बाकी थे, लिटन ने ३० कौंट तक के कपड़े पर से चुंगी हटा कर भारतीय आय का वह स्रोत सुखा दिया। सन् १८८२ में लार्ड रिपन ने नमक और शराब को छोड़ कर सब चीज़ों का आयात बिना चुंगी के कर दिया। डफ़रिन और लैन्सडौन के समय सामरिक खर्च की बढ़ती के कारण १८९४ ई० में फिर सब आयात पर ५% चुंगी लगायी गयी, और साथ ही भारतीय मिलों के २० कौंट से ऊपर के कपड़े पर भी उतनी ही चुंगी बैठा दी गयी। लंकाशायर के व्यवसायी इतने से सन्तुष्ट न हुए; इसलिए १८९६ ई० में विदेशी और भारतीय, बारीक और मोटे, सभी कपड़े पर ३½% चुंगी कर दी गयी। मोटे भारतीय कपड़े पर की चुंगी से लंकाशायर को कोई

सीधा लाभ न था, क्योंकि विलायत से वैसा कपड़ा आता न था; उससे केवल भारत के गरीबों को कपड़ा मँहगा मिलने लगा।

एक तरफ़ आय के इस स्रोत का बलिदान किया जाता था, तो दूसरी तरफ़ अँगरेज़ी साम्राज्यलोलुपता के युद्धों का बोझ भारत पर पड़ता था। अफ़गान युद्ध के खर्च का १/४ तथा मिस्र-युद्ध के खर्च का १/३ से कम इंग्लैंड ने दिया; बाकी सब भारत पर पड़ा।

तीसरे, अँगरेज़ी पूँजी के विनियोग की खातिर भारत में रेलपथों का बनाना बराबर जारी रहा। जब अकाल पड़ते तो अकाल-पीड़ित स्थानों में अनाज पहुँचाने की सुविधा के बहाने नये रेल-पथ खोले जाते। १८७३ ई० में कुल पाँच हज़ार मील रेल थी, १६०१ में २५ हज़ार हो गयी। दक्खिन पंजाब में नहरें निकाल कर बस्तियाँ बसायी गयीं थीं। उनकी गेहूँ की उपज से शताब्दी के अन्त में सीमान्त के रेल-पथ गेहूँ के व्यापार-पथ बन गये। तब सन् १६०० में पहले-पहल भारतीय रेलों से सब खर्च निकाल कर बचत हुई।

एक नयी पेचीदगी इस बीच उपस्थित हुई थी। दुनियाँ में चाँदी की उपज अधिक होने से सन् १८७० से रुपये का भाव गिरने लगा। उससे पहले १६ वीं में रुपये का भाव बराबर २ शिलिंग था। रुपया सस्ता होने से उपज के दाम बढ़े और भारत के व्यापार-व्यवसायों को कुछ स्फूर्ति मिली। बन्दोबस्त-अफ़सरों ने उसी हिसाब से मालगुज़ारी बढ़ा दी, इसलिए सरकारी आय में कुछ फ़रक नहीं पड़ा। भारत को चाँदी की मन्दी से कोई कष्ट न होता, उलटा लाभ ही था। लेकिन भारत इँग्लैंड को हर साल जो खिराज देता था, उसका हिसाब इँग्लैंड चाँदी में गिनने को तैयार न था, वह उसे सोने के हिसाब से ही लेता रहा। इससे कठिनाई होने लगी।

इस दशा में सन् १८७८ में लार्ड लिटन ने प्रस्ताव किया कि रुपये का टकसालना परिमित करके उसका दाम बढ़ाया जाय। यदि जनता को अपनी चाँदी टकसालों में ले जा कर मनचाही मात्रा में रुपये बनवाने का अधिकार रहता तो चाँदी और रुपये का दाम एक ही सतह पर रहते। किन्तु यदि जनता के लिए टकसालें बन्द कर दी जायँ तो कम-ज़्यादा संख्या में रुपया बना कर सरकार रुपये के दाम ज़्यादा या कम कर सकती थी। लिटन इसी ढंग से रुपये का दाम बढ़ाना चाहता था। लेकिन रुपया सस्ता होने पर जो टैक्स बढ़ाये गये थे, वे रुपये को मँहगा

करके फिर घटाये न जाते। यों लिटन का उद्देश था जनता से धोखे से अधिक कर वसूल करना। ब्रिटिश सरकार ने वैसा करने की स्वीकृति न दी। लार्ड डफ़रिन ने फ़ौजी खर्च की खातिर भारत का कर्ज बढ़ाया, जिससे विनिमय की दर भारत के खिलाफ़ और गिरी। तब उसने फिर लिटन वाले प्रस्ताव को दोहराया, पर ब्रिटिश सरकार ने फिर स्वीकृति न दी। लैन्सडौन और एल्गिन के समय उजाड़ू फ़ौजी खर्च की खातिर कर्ज और बढ़ गया, और रुपये का भाव गिरते-गिरते १३·१ पेनी पर पहुँच गया। तब सन् १८९३ से १८९९ ई० तक भारत सरकार ने ब्रिटिश सरकार की सहमति से टकसालें बन्द कर दीं, और "११ आने के सच्चे रुपये को १६ आने का झूठा रुपया बना कर करदाता से धोखे से ४५ फ़ी सदी अधिक कर वसूल करना" शुरू किया। तब से रुपया सांकेतिक सिक्का रह गया। उसमें अपने मूल्य के बराबर की चाँदी न रही, और उसका मूल्य पौंड के मूल्य पर निर्भर हो गया।

अबोध जनता ने समझा, उसकी किस्मत के फेर से मन्दी आ गयी है और उसे पहले जितनी ही मालगुज़ारी देने के लिए अधिक अनाज बेचना पड़ता है। उसे क्या मालूम था कि यह मन्दी सरकार की ही लायी हुई थी, जो इस ढंग से दस-बारह करोड़ वार्षिक का अनाज किसानों से इस कारण अधिक वसूल करने लगी थी कि उसे अब विलायत को इतना खिराज अधिक देना पड़ता था। सन् १८९७-९८ से १९०१-२ ई० तक भारत की कुल मालगुजारी रुपयों में प्रायः उतनी ही रही, पर पौंडों में ६४२·५ लाख से ७६३·५ लाख हो गयी—और ये वर्ष वे थे जब सारे देश में लोग दुर्भिक्षों से तड़प-तड़प कर मर रहे थे।

रुपये का दाम बढ़ने से लाखों किसानों के कर्ज भी बढ़ गये—"भारत के गरीब कर्जदार वर्ग के गले में बँधी पत्थर की चक्की का बोझ बढ़ गया" और "उन समृद्ध वर्गों को लाभ हुआ जो जनता की मुसीबत पर जीते हैं।" और लाभ हुआ उन अँगरेज़ नौकरों और व्यवसायियों को जो भारत से अपनी बचत या मुनाफ़ा इँग्लैंड को भेजते हैं। "पर यह लाभ भारतीय करदाता के खर्च पर—भारत में हर कर्ज को बढ़ा कर' हुआ। भारत के गरीबों की बचत चाँदी के तुच्छ गहनों के रूप में थी। "भारत सरकार के प्रस्ताव का अर्थ (था) गरीबों की उस बचत का $\frac{१}{२}$ जब्त कर लेना। रुपये का दाम कृत्रिम रूप से बढ़ने से किसानों के चाँदी के कँगने और बाजूबन्द लागत से कम पर बिकने लगे। यों एक कलम की मार से

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

सरकार ने गरीबों का असल धन छीन लिया, जिससे कि वह अपने कर्ज (खिराज) को सुविधा से चुका सके।"

करों की इस चौमुखी वृद्धि के अलावा सन् १८७५ से १९०५ ई० तक भूमि-कर में साधारणतया ५० फ़ी सदी बढ़ती हुई और जमीन के मामलों में अमलों का हस्तक्षेप कानूनों द्वारा अधिकाधिक बढ़ाया गया। सन् १८७५ में भारत-सचिव लार्ड सालिस्बरी ने लिखा था, "भारत का खून निकालना यदि जरूरी है, तो नश्तर उन अंगों पर लगाना चाहिए जहाँ खून ज़्यादा है।" लेकिन यह सलाह अमल में नहीं आयी, और कर का बोझ किसानों पर ही पड़ता रहा।

१९ वीं सदी के अन्त में भारत के निर्यातों और आयातों का अन्तर करीब दो करोड़ पौंड वार्षिक रहा। यह खिराज अनाज के रूप में ही जाता था। भारतीय जनता की हालत तब यह थी कि देहात में मज़दूरी की दर दो आना रोज थी और "भूख बहुत कुछ आदत बन गयी थी"

§१०. **जनता में असन्तोष**—लार्ड लिटन के शासन-काल में युद्ध, दुर्भिक्ष और दमन के कारण जनता में भीतर-भीतर बड़ा असन्तोष था। कुछ विचारशील अँगरेज़ों ने यह सोचा कि यदि उसे प्रकट होने का रास्ता न मिलेगा तो कभी एकाएक कोई विस्फोट हो जायगा। उनमें से एक, ह्यूम, ने डफ़रिन से सलाह कर एक ऐसी संस्था का आयोजन किया जिसमें अँगरेज़ी-पढ़े हिन्दुस्तानी अपने कष्टों और आकांक्षाओं को प्रकट कर सकें। यह संस्था "इंडियन नैशनल काँग्रेस" के नाम से पहले-पहल दिसम्बर १८८५ ई० में बम्बई में जुटी। बकौल लार्ड डफ़रिन के, इन "भारतीय नेताओं के सामने यही आदर्श था कि भारत की विदेशी हमलों से···रक्षा ब्रिटिश सेना ही करती रहे; पर भीतरी मामलों का प्रबंध उन्हें गोरों की दस्तन्दाजी के बिना सौंप दिया जाय।" उनका "अग्रगामी दल भी अधिक से अधिक प्रान्तीय काउन्सिलों का सुधार ही माँगता था।"

इन माँगों को देखते हुए सन् १८९२ में ब्रिटिश पार्लियामेण्ट ने "इंडियन काउन्सिल्स ऐक्ट" पास किया। इसके अनुसार बड़े प्रान्तों की व्यवस्था-समितियों में सदस्यों की संख्या बढ़ा कर २०-२१ कर दी गयी, और उनमें आधे गैर-सरकारी सदस्य म्युनिसिपैलिटियों, जिला-बोर्डों आदि की सिफ़ारिश पर नामजद किये जाने

लगे। केन्द्रीय काउन्सिल के १० गैर-सरकारी सदस्यों में से ४ प्रान्तीय काउन्सिलों से चुन कर आने लगे। बहुपक्ष सब जगह सरकारी सदस्यों का ही रहा। पहले यह प्रथा थी कि जब कोई नया टैक्स लगाना हो, तभी अर्थ-सचिव काउन्सिल में प्रस्ताव लाता था। अब से वार्षिक बजट पेश होने लगा पर सदस्य लोग उस पर विचार ही प्रकट कर सकते थे, उनके मत न लिये जाते थे। सदस्यों को प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया।

जगदीशचन्द्र वसु

सन् १८९३ ई० में शिकागो (अमेरिका) में एक सर्व-धर्म-सम्मेलन हुआ। उसमें रामकृष्ण परमसंह के शिष्य विवेकानन्द ने वेदान्त की व्याख्या की। विवेकानन्द के प्रवचन से अनेक अमेरिकन प्रभावित हुए। सन् १८९७ में जगदीशचन्द्र वसु ने भौतिक विज्ञान में कुछ नयी खोजें कीं, जिनसे युरोपियन विद्वान् भी चकित हुए। भारतवासियों में इन घटनाओं से आत्मविश्वास की एक नयी लहर उठी।

सन् १८९६-९७ में भारत में व्यापक दुर्भिक्ष फैला, जिसमें करीब १० लाख आदमी मरे। उस दुर्भिक्ष के बीच भी सीमान्त का खर्चीला युद्ध चलता रहा, और १४ करोड़ रुपये का अनाज विलायत गया। उसी साल बम्बई में पहले-पहल प्लेग आयी। जनता में घोर असन्तोष था और वह ब्रिटिश शासन को ही अपने इन कष्टों का कारण अनुभव करने लगी थी। सरकारी अफ़सरों ने जब प्लेग के कारण लोगों के रहन-सहन में दस्तन्दाजी की, तो लोग और भी खीझे, और पूना में दो अँगरेज मारे गये। तब सरकार ने दमन शुरू किया; तिलक को डेढ़ साल की कैद दी गयी।

लार्ड कर्ज़न जब वाइसराय हो कर आया तब कलकत्ता-नगरसभा की शक्ति घटाने की एक तजवीज़ पेश थी। कर्ज़न ने उसे और कड़ा किया और बम्बई के लिए भी वैसा ही क़ानून तैयार किया। सन् १९०१ में उसने युनिवर्सिटियों पर

सरकारी नियन्त्रण बढ़ाने और फ़ीसें ऊँची करने की तजवीज़ की। सन् १६०० में पहले से भी विस्तृत और घोर दुर्भिक्ष शुरू हुआ, जो ४ वर्ष जारी रहा।

§११. भारत द्वारा अँगरेज़ी साम्राज्य-साधना—हमने देखा है कि सन् १८८२-८४ में अँगरेज़ सूडान को जीत न पाये थे। सन् १८६६ में सेनापति किचनर ने मिस्र से नील के काँठे में ऊपर बढ़ कर समूचे सूडान को ले लिया। सूडान के उपरले हिस्से में फशोदा पर फ्रान्सीसी सेना थी; वह अँगरेज़ी सेना को बढ़ती देख हट गयी, जिससे इंग्लैंड-फ्रान्स का युद्ध होता-होता टल गया। सूडान के साथ सोमालीलैंड भी अँगरेज़ों ने लेना चाहा, पर वहाँ एक मुल्ला ने उनका मुकाबला किया। सन् १८६६ से १६२० ई० तक वह मुल्ला लड़ता रहा। उसके मुकाबले को सन् १६०३ से सिक्ख सेना वहाँ रक्खी गयी।

सन् १८६४-६५ में जापान ने चीन साम्राज्य को हरा कर फ़ारमोसा द्वीप ले लिया। चीन की यह कमज़ोरी देख युरोपीय राष्ट्र उस पर टूट पड़े और "चीनी तरबूज की फाँकें काटने" लगे। सन् १८६६ में चीन साम्राज्य का ८० फ़ी सदी प्रदेश उन्होंने अपने "प्रभावक्षेत्रों" में बाँट लिया। अंगरेज़ों ने सबसे बड़ी फाँक ली—याङ्चे नदी का समूचा काँठा ब्रिटिश प्रभावक्षेत्र माना गया। अपने देश की यह लांछना देख कर चीन में एक दल खड़ा हुआ जिसने युरोपियनों को मार कर चीन से निकालना चाहा। ये अपने को 'घूँसेबाज' कहते थे। इन 'घूँसेबाजों' (बौक्सरों) से बदला चुकाने को सन् १६०० में ब्रिटेन, रूस और जर्मनी की सेनाएँ एक साथ चीन पर आ चढ़ीं। ब्रिटिश सेना भारत की ही थी। चीन को हराने और अनेक बर्बर कृत्य करने के बाद इन्होंने उसे एक अरब रुपया हरजाना देने और चीन के अनेक शहरों में इन राष्ट्रों की सेना रखने को बाधित किया। हरजाने के बदले में कई बन्दरगाहों की आय गिरवी रक्खी गयी।

ईरान की खाड़ी पर सत्रहवीं सदी से अँगरेज़ों ने एकाधिकार कर रक्खा था। सन् १८५३ में उन्हें उसे सब राष्ट्रों के जहाजों के लिए खोलना पड़ा था, तो भी वे वहाँ के तुर्क, अरब और ईरानी सरदारों के झगड़ों में एकमात्र मध्यस्थ होने का—अर्थात् उस खाड़ी के आधिपत्य का—दावा करते थे। सन् १८६८ में फ्रान्स ने ओमन के सुल्तान से मस्कत के ५ मील दक्खिन-पूरब बन्दर जिस्सा ले लिया। यह खबर पाते ही कर्ज़न ने कलकत्ते से बेड़ा भेजा और सुल्तान के महल पर गोलाबारी की धमकी दे कर फ्रान्सीसियों का ठेका रद्द करा दिया। सन् १६०० में

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

रूस का वैसा ही प्रयत्न विफल हुआ। उसी वर्ष जर्मनी ने अपनी बर्लिन-बगदाद रेलवे योजना के लिए ईरान खाड़ी पर कोवैत के शेख से जमीन लेनी चाही, पर अँगरेज़ों ने लेने न दी।

हम देख चुके हैं कि दक्खिनी अफ्रिका के आशा अन्तरीप पर ओलन्देज़ लोगों का उपनिवेश "केप कालोनी" नैपोलियन के समय अँगरेज़ों ने छीन लिया था। वहाँ के ओलन्देज़ उपनिवेशकों ने, जो बोअर कहलाते हैं, तब उत्तर हट कर ओरांज और नाटाल उपनिवेश बसाये। अँगरेज़ों ने नाटाल भी ले लिया, तब वे वाल नदी के पार जा बसे। ओरांज और ट्राँसवाल पर भी अँगरेज़ों ने आधिपत्य कर लिया, पर भीतरी शासन में बोअरों को पूरी स्वतन्त्रता रही। सन् १८८५ में दक्खिनी ट्रान्सवाल में सोने की खानें निकल आयीं, तब अँगरेज़ बड़ी संख्या में वहाँ जा बसे। १८९५ ई० में उन अँगरेज़ों ने षड्यन्त्र कर ट्रान्सवाल पर कब्जा करना चाहा। बोअरों ने तब युद्ध ठाना और १८९९ ई० में नाटाल और केप कालोनी पर हमला कर अँगरेज़ों को खदेड़ने लगे। उस दशा में हिन्दुस्तानी फ़ौज वहाँ भेजी गयी, जिसने लेडीस्मिथ का किला बोअरों के हाथ न जाने दिया और नाटाल को बचाया। यह युद्ध सन् १९०१ तक चलता रहा। उसी बीच महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई। अन्त में समूचे दक्खिनी आफ्रिका पर अँगरेज़ों का आधिपत्य हो गया।

अध्याय ९

हमारा ज़माना

(सन् १९०१—)

§१. ईरान की-खाड़ी और तिब्बत में हस्तक्षेप—साम्राज्य-साधना की जो नयी लहर सन् १८७५ में इंग्लैंड में उठी थी, सन् १९०५ तक उसका वेग बना रहा। सन् १९०३ में लार्ड कर्ज़न खुद ईरानी-खाड़ी में गया और वहाँ के मुख्य शहरों में अँगरेज़ 'व्यापार-दूत' स्थापित किये।

चीन के बोदे साम्राज्य का तिब्बत प्रान्त पर अधिकार ढीला-ढाला था। पच्छिमी तिब्बत में सोने की खानें हैं। सन् १९०३ में तिब्बत की चढ़ाई के लिए कर्ज़न ने कर्नल यंगहस्बैंड को भेजा। ब्रिटिश सेना तिब्बत के धनी मन्दिरों को

लूटती हुई ३ अगस्त सन् १९०४ को ल्हासा जा पहुँची। दलाई लामा वहाँ से भाग गया था। उसके प्रतिनिधि से सन्धि की गयी। ग्याँचे में अँगरेज़ "व्यापार-दूत" और यातुङ और गारतोक में व्यापार-निरीक्षक रखना तय हुआ। तिब्बत ने अपनी विदेशी नीति अँगरेज़ों को सौंप दी।

§२. कर्ज़न के अन्य कार्य; वंग-भंग—पुरातत्त्व-विभाग की स्थापना और सहकार-समितियों का आयोजन लार्ड कर्ज़न के प्रशंसित कार्यों में से थे, अन्यथा "इस छोकरे से राजनीतिज्ञ" की याद उसके दमन के कार्यों और मूर्खतापूर्ण भाषणों से ही की जाती है। सन् १९०४ में उसने युनिवर्सिटी-कानून जारी किया और फिर बंगालियों की जागती हुई राष्ट्रीयता को दबाने के लिए अक्टूबर सन् १९०५ में बंगाल के दो टुकड़े कर दिये।

§३. स्वदेशी आन्दोलन—इसके जवाब में बंगाल में स्वदेशी वस्तुओं के प्रचार और ब्रिटिश माल के बहिष्कार का आन्दोलन शुरू हुआ। इस बहिष्कार आन्दोलन के संचालक 'गरम दल' के कहलाते थे, और उनके मुकाबले में राष्ट्रीय काँग्रेस के सुधारवादी नेता 'नरम दल' के। तिलक, अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल, लाजपतराय आदि गरम दल के अगुआ थे।

गरम दल की सहानुभूति पूर्ण स्वाधीनता-आन्दोलन के साथ थी। हम देख चुके हैं कि सन् १८५७ की विफलता के बाद दयानन्द और बंकिमचन्द्र ने स्वतन्त्रता के आदर्श की फिर से घोषणा की थी। विवेकानन्द और तिलक ने उसे पुष्ट किया था। इन्हीं के शिष्यों और साथियों में अब उस आदर्श को क्रिया में परिणत करने की पहली चेष्टाएँ हुईं। युवकों में जो चिनगारियाँ ये फैला रहे थे, उन्हें कर्ज़न के कार्यों और विश्व की परिस्थिति ने सुलगा दिया।

सन् १९०४ में रूस और जापान का युद्ध हुआ, जिसमें जापान ने रूस को पछाड़ दिया। युरोप की विश्व-प्रभुता के विचार को इससे ज़ोर का धक्का लगा। सन् १८६९ तक जापान भी एशिया के दूसरे राष्ट्रों की तरह था। तब से उसने युरोप के विज्ञान, शिल्प तथा आर्थिक और राजनीतिक संगठन को अपनाना शुरू किया था। जापान की इस जीत से चीन, भारत, ईरान और तुर्की में भी बिजली की लहर सी दौड़ गयी।

दयानन्द के एक शिष्य श्यामजी कृष्ण वर्मा सन् १९०० में लन्दन जा बसे और प्रवासी भारतीय विद्यार्थियों में क्रान्ति के विचार फैलाने लगे थे। तभी बंगाल

के युवकों में सखाराम गणेश देउस्कर और वारीन्द्रकुमार घोष उसी तरह के विचार डाल रहे थे। सन् १९०६ में वारीन्द्र ने विवेकानन्द के भाई उपेन्द्रनाथ दत्त से मिल कर 'युगान्तर' पत्र जारी किया। महाराष्ट्र में इसी समय 'अभिनव भारत समिति' और पूर्वी बंगाल में 'ढाका अनुशीलन समिति' की स्थापना हुई (सन् १९०६)। अगले दो बरस में ढाका समिति की ५०० शाखाएँ बंगाल और उत्तर भारत में खड़ी हो गयीं। पंजाब में सन् १९०७ के शुरू में लोग 'नयी हवा' का अनुभव करने लगे।

यह समूचा आन्दोलन आत्म-निर्भरता के विचार पर उठा था। "हमें पूर्ण स्वाधीनता चाहिए···फिरंगी की कृपा से मिले अधिकारों पर हम थूकेंगे; हम अपनी मुक्ति स्वयम् पायेंगे।"

सन् १९०१-२ में दयानन्द के एक पंजाबी शिष्य महात्मा मुंशीराम ने हरद्वार में एक "गुरुकुल" की स्थापना की थी। अब उसमें उन्होंने आधुनिक विज्ञान की उच्चतम शिक्षा भी हिन्दी में दिलानी शुरू की। बंगाल में भी इस समय एक जातीय शिक्षा-परिषद् स्थापित हुई, जिसका कलकत्ते में स्थापित किया शिल्प-विद्यालय हमारे देश के सर्वोत्तम शिक्षणालयों में से है।

साहित्य, कला और विज्ञान के क्षेत्र में भी इस जागृति ने मौलिक कृतियों को उत्पन्न किया। सन् १९०३ में प्रफुल्लचन्द्र राय अपने एक वैज्ञानिक ग्रन्थ के कारण प्रसिद्ध हुए। उन्नीसवीं सदी में भारतीय कलाकारों की प्रतिभा पाश्चात्य शैली के सामने पराभूत-सी थी। रविवर्मा नामक केरल चित्रकार ने पच्छिमी शैली में भारतीय कल्पनाओं को प्रकट करना चाहा, पर उनकी रचनाएँ भद्दी हुई थीं। सन् १९०३-४ में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक नयी चित्रण-शैली का विकास किया जो विदेशी शैलियों की अनेक बातें अपना लेने के बावजूद भी पूरी तरह भारतीय है। रविवर्मा के 'शिव' और अवनीन्द्र के शिष्य नन्दलाल वसु के 'शिव' की तुलना से उन्नीसवीं सदी के पिछले अंश और सन् १९०५-८ की भारतीय मनोवृत्तियों का अन्तर मानों आँखों के सामने आ जाता है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बंगला गीतों में उसी नयी मनोवृत्ति की गूँज थी।

§४. आँग्ल-रूसी समझौता—उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में जर्मनी एक प्रबल राष्ट्र हो उठा था। उससे हार कर फ्रान्स ने सन् १८९३ में रूस से स्थायी मैत्री कर ली। बीसवीं सदी के शुरू में जर्मन व्यवसायी दुनियाँ के बाजारों में

अँगरेज़ों को पछाड़ने लगे और जर्मन राजनेता विश्व-साम्राज्य के सपने देखने लगे। तुर्कों के सम्राट् से मैत्री करके उन्होंने बर्लिन से बगदाद तक रेल-पथ बनाने की योजना की। इससे अँगरेज़ अत्यन्त आशंकित हो उठे और फ्रान्स और रूस से अपने पुराने बैर को भूल कर मैत्री की सन्धियाँ कर लीं। इंग्लैंड फ्रान्स की मैत्री सन् १९०५ में और इँग्लैंड रूस की १९०७ ई० में हुई। इन सन्धियों के अनुसार इंग्लैंड ने फ्रान्स के साथ स्याम का और रूस के साथ ईरान का बँटवारा कर लिया।- उत्तरी ईरान रूस का और दक्खिनी अँगरेज़ों का प्रभाव-क्षेत्र निश्चित हुए। इस बंटवारे से "ईरान का गला घोंटना" शुरू हुआ।

§५. मौर्ली-मिण्टो सुधार—वंग-भंग के एक महीना बाद लार्ड कर्ज़न ने भारत से विदा ली; उसके उत्तराधिकारी मिण्टो को भारत में पहले राष्ट्रीय आन्दोलन से पाला पड़ा। जॉन मौर्ली उस समय भारत-सचिव था। मौर्ली और मिण्टो ने 'दाहने हाथ से दमन और बाएँ हाथ से शमन' का रास्ता पकड़ा।

मिण्टो ने अपने एक भाषण में सूचना दी कि भारतवासियों को कुछ स्वशासनाधिकार दिये जायँगे, और साथ ही सरकारपरस्त मुस्लिम रईसों को इशारा किया कि वे विशेष अधिकार माँगें। इशारा पाते ही सर आग़ाखाँ कुछ बड़े-बड़े मुसलमानों के साथ लार्ड मिण्टो के पास यह प्रार्थना ले कर पहुँचे (१-१०-१९०६ ई०) कि यदि देश के निर्वाचित प्रतिनिधियों को कुछ अधिकार देने हों तो मुसलमानों को अलग प्रतिनिधि चुनने दिया जाय। मिण्टो ने इससे सहमति प्रकट की और उसके इशारे पर "भारतीय मुसलमानों में ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति के भाव बढ़ाने के लिए" मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी। मई १९०७ ई० में पंजाब के लाजपतराय और अजीतसिंह को कैद कर ६ मास के लिए बरमा में निर्वासित किया गया। राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्र होने पर नरम दल उसका साथ न दे सका। दिसम्बर सन् १९०७ में राष्ट्रीय काँग्रेस सूरत में हुई; वहाँ दोनों दलों में खुल्लमखुल्ला लड़ाई हो गयी। गोपाल कृष्ण गोखले के नेतृत्व में नरम दल का काँग्रेस पर कब्जा रहा; गरम दल अलग हो गया।

इस बीच स्वदेशी और बहिष्कार आन्दोलन बंगाल, महाराष्ट्र और पंजाब से हिन्दी, आन्ध्र और तामिल प्रान्तों में भी फैल गया था। उस आन्दोलन के सिलसिले में कलकत्ते के एक मजिस्ट्रेट ने कई युवकों को बेतों की सजा दी। पीछे उसकी बदली मुज़फ़्फ़रपुर हो गयी। २० एप्रिल १९०८ ई० को खुदीराम वसु

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नामी युवक ने मुज़फ़्फ़रपुर में बम द्वारा उसकी हत्या की चेष्टा की। इस मामले में वारीन्द्रकुमार घोष और उनके कई साथी गिरफ़्तार हुए। तिलक ने इस पर लिखा, "सरकार की फ़ौजी शक्ति बमों से नहीं टूट सकती—पर बम से सरकार का ध्यान उस अन्धेरखाते की तरफ़ खींचा जा सकता है जो उसकी सैनिक शक्ति के मद के कारण उपस्थित है।" इस लेख पर तिलक को ६ साल की कैद मिली। तभी प्रेस ज़ब्त करने का कानून बना, जिससे 'युगान्तर' बन्द हुआ। बंगाल के नौ नेता निर्वासित किये गये, ढाका समिति तथा अन्य कई समितियाँ ग़ैरकानूनी करार दी गयीं (नवम्बर-दिसम्बर १९०८ ई०)। तब से वे गुप्त काम करने लगीं।

बाल गंगाधर तिलक

सन् १९०९ ई० में अँगरेज़ी पार्लियामेण्ट में भारतीय शासन का नया कानून स्वीकृत हुआ। उसके अनुसार केन्द्रीय तथा प्रान्तीय व्यवस्था-समितियों की कुल सदस्य-संख्या १२४ से ३३१ की गयी, जिनमें निर्वाचित सदस्यों की संख्या ३९ से १३५ हो गयी। केन्द्रीय समिति के सदस्य २१ से ६० हुए। जमीन्दारों, व्यापारियों आदि को विशेष अतिरिक्त प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया गया, जो स्वाधीन-शासन के इस बुनियादी सिद्धान्त के विरुद्ध था कि राष्ट्र की प्रत्येक प्रजा परस्पर समान है। मुसलमानों के प्रतिनिधि अलग चुनने की तजवीज़ की गयी। व्यवस्था-सभाएँ मुख्यतः राष्ट्र के आर्थिक और राजनीतिक जीवन को नियमित करती हैं। इस कार्य को विभिन्न साम्प्रदायिक विश्वासों के अनुसार चुने हुए लोगों के हाथ में सौंपने का यह अर्थ था कि मज़हबी विश्वासों के अन्तर को जनता के समूचे जीवन में फैलाया जाय, जिससे भारतीय जनता में एक ऐसी पक्की दराड़ पड़ जाय जो उसे एक राष्ट्र बनने से हमेशा रोकती रहे। सदस्यों को प्रस्ताव रखने, प्रश्न पूछने और बजट पर विचार प्रकट करने मात्र का अधिकार (वोट देने का नहीं) दिया गया। केन्द्रीय और प्रान्तीय शासन-समितियों में एक-एक दो-दो भारतीय सदस्य रखना भी तय हुआ। उस समय लार्ड रिपन जैसे अँगरेज़ राजनेताओं को भी सन्देह था कि शासन-समितियों में भारतीयों को लेने से काम कैसे चलेगा।

धीरे-धीरे उन्होंने देख लिया कि हिन्दुस्तानी सिपाहियों की तरह हिन्दुस्तानी शासन-सदस्यों से भी अँगरेज़ अपना काम मज़े में निकाल सकते हैं।

इस शासन-नीति का असर क्रान्ति आन्दोलन पर नहीं पड़ा। सन् १६०६ के अन्त में पंजाब में धर-पकड़ हुई। अजीतसिंह तब अपने साथी सूफ़ी अम्बाप्रसाद और शुजाउलहक़ के साथ ईरान भाग गये। वहाँ उन्होंने ईरान पर आती हुई ब्रिटिश और रूसी प्रभुता के खिलाफ़ ईरानियों को जगाने की कोशिश की। दिल्ली के एक युवक हरदयाल भी, जो इंग्लैंड में श्यामजीकृष्ण वर्मा से दीक्षा पा कर पंजाब लौटे थे, विदेश भागे, और मिस्र पहुँच कर वहाँ के युवकों में स्वाधीनता के विचार फैलाने लगे।

सन् १६१०-११ में बंगाल के अतिरिक्त नासिक, सतारा, ग्वालियर और तिरुनेवली (तिनेवली) में क्रान्तिकारी षड्यन्त्र के मुकदमे चले। इससे महाराष्ट्र और तामिलनाड के क्रान्ति-आन्दोलन ठंडे पड़ गये और कलकत्ते के चौगिर्द भी शान्ति हो गयी, पर पूरबी बंगाल की स्थिति में कोई फ़रक नहीं पड़ा। हरदयाल मिस्र से युरोप पहुँचे, और वहाँ से अमेरिका-प्रवासी पंजाबियों में क्रान्ति के बीज बोने को रवाना हुए।

इस बीच मई १६१० ई० में सम्राट् एडवर्ड (७म) की मृत्यु हो गयी और नवम्बर १६१० ई० में लार्ड मिण्टो की जगह लार्ड हार्डिञ्ज आ गये थे। साहित्यिक जागृति का सिलसिला जारी रहा; सन् १६१० में हिन्दी साहित्य सम्मेलन की स्थापना हुई।

§६. वंग-भंग का रद्द होना, दक्खिनी आफ्रिका का सत्याग्रह, कोमागातामारू—सन् १६११ के अन्त में सम्राट् जार्ज (५म) भारत आये और दिल्ली में अभिषेक दरबार में बंग-भंग को रद्द करने की घोषणा की। आसाम और बिहार-उड़ीसा के प्रान्त बंगाल से अलग किये गये, तथा भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली बदली गयी।

सन् १६११-१२ ई० में पूरबी बंगाल को छोड़ कर भारत के सब प्रान्तों में ऊपरी शान्ति बनी रही; लेकिन भारत के मुसलमानों में कुछ क्षोभ दिखायी दिया। उत्तरी आफ्रिका में तुर्क साम्राज्य का त्रिपोली (लीबिया) प्रान्त १६११ ई० में इटली ने धर दबाया। १६१२ ई० में तीन बाल्कन राष्ट्रों ने मिल कर तुर्क

साम्राज्य के युरोप वाले अंश को छीन लिया। भारत के मुसलमान इससे क्षुब्ध हुए और कुछ लोग घायल तुर्कों की उपचार-शुश्रूषा के लिए तुर्की गये।

२३ दिसम्बर, १९१२ ई० को लार्ड हार्डिञ्ज ने शाही जुलूस के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। चाँदनी चौक में उनकी गाड़ी पर एक बम फेंका गया जिससे वे बाल-बाल बचे। क्रान्तिकारी दल ने मानों यह सूचना दी कि वंग-भंग के रद्द होने से वह शान्त नहीं हो गया। इस घटना से दिल्ली षड्यन्त्र का मामला चला, जिसमें पूरबी बंगाल और उत्तर भारत के दलों का परस्पर सम्बन्ध प्रकट हुआ। रासबिहारी वसु नामक एक अभियुक्त पकड़ा नहीं गया।

दक्खिनी आफ़्रिका में जो शर्तबन्द भारतीय कुली जाते थे, उनमें से बहुत से शर्त छूटने के बाद वहीं रह जाते थे। दुकानदारी और अन्य धन्धों से भी वहाँ बहुत से हिन्दुस्तानी गये हुए थे। दक्खिनी आफ़्रिका के युरोपियनों को उनका स्वतन्त्र हो कर वहाँ रहना या बसना अखरता था। उन्होंने कई क़ानून बना कर खास इलाकों में हिन्दुस्तानियों को व्यापार करने, ज़मीन लेने या घुसने तक से रोक दिया। इस पर सन् १९१३ में मोहनदास करमचन्द गान्धी के नेतृत्व में वहाँ के हिन्दुस्तानियों ने सत्याग्रह किया; २,५०० आदमी ट्रान्सवाल से नाटाल में घुसे; उनके नेता गिरफ़्तार किये गये; जगह-जगह हड़तालें हुईं। अन्त में वहाँ की सरकार की ओर से जनरल स्मट्स ने गान्धीजी से समझौता किया और कानून में कुछ रद्दोबदल किया।

अँगरेज़ों की फ़ौज या पुलिस की नौकरी में बहुत से पंजाबी, खास कर सिक्ख, बरमा, मलाया और चीन जाते थे। इनके बहुत से साथी-संगी दूसरे धन्धों के लिए भी इन प्रदेशों में जाने और बसने लगे थे। पच्छिमी अमेरिका में तब नयी जमीनें आबाद हो रही थीं। मेहनती पंजाबी मलाया और चीन से वहाँ पहुँचने लगे। वहाँ वे खेती की मजदूरी से फ़ी आदमी पाँच-सात रुपया रोजाना कमा लेते थे। सन् १९११ में हरदयाल कैलिफ़ोर्निया पहुँच कर इन्हीं लोगों में क्रान्ति के विचार फैलाने लगे। सान फ्रान्सिस्को में इन लोगों ने एक "गदर दल" स्थापित किया।

कनाडा की सरकार ने ऐसा कानून बनाया जिससे भारतीय मजदूरों का वहाँ जाना प्रायः असम्भव हो जाय। ब्रिटिश साम्राज्य में भारतवासियों की कैसी दुर्गति है, यह दिखलाने के लिए गुरुदत्तसिंह नामक एक पंजाबी ने एक जापानी जहाज

कोमागातामारू किराये पर लिया, और हाङ-काङ से पंजाबी श्रमजीवियों को उसमें लेकर वंकोवर पहुँचे (२३ मई १९१४ ई०)। २ मास तक वह जहाज़ वंकोवर के बन्दर पर खड़ा रहा, पर कनाडा सरकार ने भारतीय श्रमिकों को अपनी जमीन पर पैर नहीं रखने दिया, और अन्त में एक जंगी जहाज गोलाबारी के लिए भेज कर लौटने को बाधित किया।

§७. **तिब्बत पर आधिपत्य**—सन् १९१२ में चीन में क्रान्ति हुई और साम्राज्य के स्थान में प्रजातन्त्र स्थापित हुआ। इससे पहले कि यह नया प्रजातन्त्र समूचे चीन साम्राज्य पर अधिकार जमा सके, रूसियों और अँगरेज़ों ने उसके टुकड़े काट लिये। मंगोलिया का रूस की तरफ़ का बड़ा भाग चीन से अलग हो गया और "बाहरी मंगोलिया" कहलाया। भारत से अँगरेज़ी सरकार ने तिब्बत और आसाम की सीमा की अबोर जाति के इलाके पर चढ़ाई कर उसे ले लिया, तथा सन् १९१३-१४ में तिब्बत के मुख्य भाग को अपना रक्षित बना लिया। तब से तिब्बत में भारत की डाक-तार भारत की ही दरों पर चलती है।

चीन की जागृति का एक और परिणाम यह हुआ कि सन् १९१३ से भारत से चीन को अफ़ीम जाना बिलकुल बन्द हो गया।

§८. **विश्वव्यापी युद्ध**—सन् १९१४ में रूस, फ्रान्स और ब्रिटेन का, जो अपने को "मित्र राष्ट्र" कहते थे, जर्मनी से युद्ध ठन गया। जर्मन सेना फ्रान्सीसी सेना को ढकेलती हुई अगस्त के अन्त तक पैरिस के ६० मील तक जा पहुँची, लेकिन वहाँ फ्रान्सीसी डट गये और जर्मन भी वहीं खन्दकें खोद कर पड़ गये। आफ़्रिका के जर्मन उपनिवेशों पर अँगरेज़ों ने चढ़ाइयाँ कीं, जिनमें भारतीय सेना से काम लिया गया।

युद्ध शुरू होते ही ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने निश्चय किया कि भारतीय सेना से इस युद्ध में पूरा काम लिया जाय और उसका पूरा खर्च भी भारत ही उठाये। इसके अनुसार युद्ध के शुरू के महीनों में दो लाख से ऊपर भारतीय सेना बाहर भेजी गयी।

पैरिस की ओर विफल हो कर जर्मन अक्टूबर-नवम्बर में इंग्लिश चैनल की ओर बढ़ें। तट से २० मील तक वे पहुँच गये, पर तट को न पा सके। वहाँ उनकी बाढ़ जिस फ़ौज ने रोकी, उसकी हरावल सिक्खों की थी। जैसा कि बाद में एक जर्मन विद्वान् ने लिखा, "फ्रान्स की खन्दकों में जो बालू के बोरे थे, वे

भारतीय जूट (पाट) के थे, उनके पीछे से जो सिपाही गोलियाँ दागते थे, वे भारतीय थे।”

२६ अक्टूबर को तुर्की जर्मनी के पक्ष में मिल गया। भारतीय मुसलमान भी इससे भड़क न उठें, ऐसा खटका हुआ, पर अँगरेज़ों ने निज़ाम और आग़ाखाँ से घोषणाएँ निकलवा कर तथा अबुलकलाम आज़ाद, शौकतअली, मुहम्मदअली जैसे उग्रपन्थियों को नज़रबन्द कर उन्हें शीघ्र शान्त कर दिया, और पीछे तो भारतीय मुस्लिम सेना को ख़ास तुर्कों के साथ भी भिड़ाते रहे। अरब, इराक, फ़िलिस्तीन और सीरिया तब तक तुर्क साम्राज्य में थे, और मिस्र पर भी तुर्की का नाम मात्र का आधिपत्य था। भारत से तुरन्त एक फ़ौज इराक (मेसोपोतामिया) को और एक मिस्र को भेजी गयी। पहली फ़ौज ने २१ नवम्बर को बसरा ले लिया। दक्खिनी ईरान में भारतीय फ़ौज बढ़ायी गयी, और कोइटा-नुश्की रेल-पथ को ठीक ईरान की सीमा पर दुज़्दाप तक पहुँचाने की योजना की गयी। भारत में फ़ौज की भरती जोरों से बढ़ायी गयी।

फ़रवरी सन् १९१५ में तुर्कों ने स्वेज़ पर चढ़ायी की। वह विफल हुई, उलटा एप्रिल में मित्र-सेना दर्रे-दानियाल में घुसी। गालीपोली पर तुर्कों ने इस फ़ौज को रोके रक्खा।

बसरा वाली भारतीय सेना बगदाद के २५ मील तक जा पहुँची। वहाँ से तुर्कों ने उसे पीछे ढकेला और कुत पर आ कर चारों तरफ़ से घेर लिया। जनवरी सन् १९१६ में गालीगोली से ब्रिटिश सेना को हटना पड़ा और एप्रिल में कुत में घिरी फ़ौज ने भी समर्पण कर दिया।

सन् १९१७ में कई बड़ी घटनाएँ हुईं। ब्रिटिश भारतीय सेना ने कुत को वापिस ले कर बग़दाद भी जीत लिया। यों सारा इराक तुर्क साम्राज्य से छिन गया। तभी रूस की प्रजा और सेना के भीतर क्रान्ति का उबाल आ रहा था। १५ मार्च को ज़ार (रूस-सम्राट्) ने गद्दी छोड़ दी और रूसी नरम दल के नेता करेन्स्की ने प्रजातन्त्र स्थापित किया। लेकिन रूसी किसानों-मज़दूरों और सैनिकों का गरम दल (बोल्शेविकी) इससे सन्तुष्ट न हुआ, और लेनिन के नेतृत्व में ७ नवम्बर की क्रान्ति में उन्होंने सदियों की गुलामी से मुक्ति पायी। १५ दिसम्बर को उन्होंने जर्मनों से सन्धि कर ली। अमेरिका ने मित्र-राष्ट्रों को युद्ध-खर्च के लिए बड़ा कर्ज़ दिया था। उनके हारने से वह रकम डूब जाती; इसलिए एप्रिल

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

१९१७ ई० में अमेरिका भी उनकी तरफ़ से युद्ध में शामिल हुआ। लारेन्स नामक एक अँगरेज़ कर्नल अरब जातियों के अन्दर तुर्की के खिलाफ़ षड्यन्त्र कर रहा था। उसने अरबों को तुर्कों से भिड़ा दिया, और अरबों के संरक्षक बन कर अँगरेज़ों ने नवम्बर १९१७ ई० में फ़िलिस्तीन ले लिया।

रूसी साम्राज्य के टूटने पर मार्च १९१८ में जर्मन काले सागर और कोह काफ़ पर आ पहुँचे, और तुर्क ईरान में घुस कर भारत की ओर बढ़ने लगे। इस दशा में भारत में सेना की भरती और तेज़ी से बढ़ायी गयी। इसमें काफ़ी ज़ोर-ज़बरदस्ती से काम लिया गया। दुज़्दाप तक रेल-पथ तैयार हो चुका था। भारतीय सेना ईरान को रौंदती हुई जर्मनों-तुर्कों के मुकाबले को बढ़ी। कुछ समय के लिए उसने बाकू भी ले लिया।

सन् १९१८ ई० में लाखों की संख्या में ताज़ी अमेरिकन सेना के फ्रान्स में आने से जर्मन पक्ष दबने लगा। तभी फ्रान्स ने तुर्की का सीरिया प्रान्त जीत लिया। ३० अक्टूबर को तुर्की ने शस्त्रन्यास किया, तब ११ नवम्बर को जर्मनों ने भी शस्त्रन्यास कर दिया।

भारत से कुल १३ लाख आदमी, जिनमें ८ लाख योद्धा थे, इस युद्ध के विभिन्न मोर्चों पर गये। किन्तु इनका काम सिर्फ़ सैनिक-मज़दूरों का था। अफ़सरों की माँग आने पर भारत में कई फ़ौजी विद्यालय खोले गये और उनमें कलकत्ता-बम्बई के गोरे व्यापारियों के लड़कों को सिखा कर २३ हज़ार अफ़सर तैयार किये गये। भारत से युद्ध में भेजे गये ढोर-डंगर और सामान की कोई हद न थी। आर्थिक कुर्बानी जो भारत को करनी पड़ी, उसकी चर्चा आगे की जायगी।

§९. विप्लव की चेष्टाएँ—युरोप में युद्ध छिड़ते ही अमेरिका के भारतीय गदर दल ने अपने सदस्यों को भारत भेजना प्रारम्भ किया। सब से पहले आने वालों में एक युवक कर्त्तारसिंह था, जिसने अमेरिका में वायुयान-इंजिनियरिंग सीखा था। सरकार ने इन आगन्तुकों की नजरबन्दी के लिए भारत-प्रवेश-फ़रमान निकाला।

सितम्बर में ही हरदयाल इस्ताम्बूल पहुँचे और गदर-दल का तरुण तुर्क दल से सम्बन्ध जोड़ा। यह तरुण तुर्क दल सन् १९०५ ई० के करीब पैदा हुआ था, और तुर्कों को मज़हब की पुरानी शृंखलाओं से छुड़ा कर

राष्ट्रीयता के आधार पर विज्ञान की मदद से एक शक्तिशाली राष्ट्र बनाना चाहता था। भारत से जो मुस्लिम युवक सन् १९११-१२ में तुर्की गये थे, वे भी इन तरुण तुर्कों के आदर्शों से प्रभावित हुए थे। तुर्की से हरदयाल जर्मनी गये, जहाँ अब जर्मन युद्ध-विभाग की देख-रेख में एक "भारतीय राष्ट्रीय दल" काम करने लगा। हरदयाल, तारकनाथ दास, चम्पकरामन पिल्लै, बरकतुल्ला आदि इसके प्रमुख कार्यकर्त्ता थे।

हरदयाल (१८८४-१९३९ ई०)

अमेरिका से डेढ़-दो हज़ार गदर-दल वाले सितम्बर-अक्टूबर में भारत आये। रास्ते में चीन और मलाया की पंजाब फौज में ग़दर के विचार फैलाते हुए इनमें से जो बच कर पंजाब पहुँच जाते, वे भारत की छावनियों में वही काम करते। इनका एक केन्द्र स्याम में था। स्याम की उत्तरी सीमा पर तब जर्मन इंजिनियर एक रेल-पथ बनवा रहे थे, जिसमें पंजाबी मज़दूर काम करते थे। उस रेल-पथ से बरमा पर चढ़ायी करने की योजना थी।

गदर-दल की ओर से कर्त्तारसिंह और विष्णु गणेश पिंगले, रासबिहारी वसु का पता निकाल कर बनारस पहुँचे। वहीं बंगाल के क्रान्तिकारी नेता भी आये और कार्यक्रम निश्चित हुआ। तभी अली अहमद सिद्दीकी और हकीम क़ायम अली, जिन्हें तरुण तुर्कों से प्रेरणा मिली थी, रंगून पहुँचे, और गदर-दल से मिल कर काम करने लगे।

इसके बाद बन्नू-पेशावर से सिंगापुर तक तमाम फ़ौजों में क्रान्तिकारी कारिन्दे पहुँच गये, और सब फ़ौजों की भीतरी हालत उन्होंने जान ली। भारत में उस समय गोरी फ़ौज कुल १५ हजार थी। रंगून और सिंगापुर की पल्टनों में सर-

कार को कुछ गड़बड़ दीख पड़ी। रंगून की बलोची पल्टन में से २०० आदमी कैद किये गये और सिंगापुर की पंजाबी पल्टन की बदली कर दी गयी।

फ़ीरोज़पुर और रावलपिंडी में भारत के सबसे बड़े शस्त्रागार हैं। २१ फ़रवरी को उनपर और लाहौर के शस्त्रागार पर देसी पल्टनें हमला करतीं, और उसके बाद जहाँ-तहाँ देसी फ़ौज बलवा कर उठती। फ़रवरी में ही पंजाब पुलिस को इस मामले को भनक मिली। १९ फ़रवरी को शस्त्रागारों पर गोरी फ़ौजों का पहरा लगा दिया गया, और लाहौर-अमृतसर में क्रान्तिकारी अड्डों पर पुलिस ने छापे मारें। उन छापों में हथियारों के अलावा तिरंगे राष्ट्रीय झण्डे और ऐलाने-जंग भी पकड़े गये। इससे देसी फ़ौज की हिम्मत टूट गयी। लेकिन २१ फ़रवरी को सिंगापुर की फौज ने बलवा करके टापू पर अधिकार कर ही लिया। अँगरेज़ी जंगी जहाज़ों ने आ कर सात दिन बाद टापू को वापिस लिया। पंजाब में ज़ोरों की धर-पकड़ हुई, और "भारत रक्षा कानून" जारी किया गया। क्रान्तिकारियों ने यह सोचा कि उनके अपने दल के पास शस्त्र काफ़ी होते तो वे स्वयम् शस्त्रागारों पर पहला हमला कर देते। इसलिए उन्होंने कोशिशें जारी रक्खीं। कर्त्तारसिंह और पिंगले छावनियों के बीच पकड़े गये। सरकार ने इसके बाद इंग्लैंड से बहुत सी नयी गोरी फ़ौज भारत मँगा ली। आगे से भारतीय फ़ौज बाहर भेजी जाती और गोरी फ़ौज भारत में ही रक्खी जाती।

अमेरिका से गदर-दल के नेता रामचन्द्र ने ३० हजार राइफलों और जर्मन अफ़सरों के साथ एक जर्मन जहाज़ को जावा भेजने का प्रबन्ध किया था। वह जहाज़ १ जुलाई को सुन्दरबन में पहुँचता। बंगाली क्रान्तिकारी बालेश्वर और चक्रधरपुर पर बंगाल नागपुर रेलवे के तथा देवघर के पास अजय नदी पर ईस्ट इंडियन रेलवे के पुलों को उड़ा कर बरसात में बंगाल पर कब्जा कर लेते और जर्मन अफ़सर उन्हें सामरिक शिक्षा देने लगते। पर वे शस्त्र अमेरिकन सरकार ने पकड़ लिये। पीछे अँगरेज़ों को इस भेद का पता मिलने पर कलकत्ता दल का नेता यतीन मुखर्जी और उसके साथी बालेश्वर के पास एक जंगल में खन्दकों में लड़ते हुए मारे गये (९ सितम्बर)। यतीन का साथी नरेन्द्र भट्टाचार्य तथा रासबिहारी बसु भारत से निकल गये इन्होंने शांघाई और जावा के जर्मन कौंसलों और चीनी क्रान्तिकारियों के सहयोग से फिर शस्त्र भेजने की चेष्टाएँ कीं, पर वे भी विफल हुईं। दिसम्बर १९१५ के बाद फिर कोई कोशिश नहीं हुई। सन् १९१५ से १७ ई० तक

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इन कोशिशों के फलस्वरूप अनेक मुकदमे हुए। पंजाब और बंगाल में सैकड़ों आदमियों को फाँसी और कालापानी मिला और कई हजार नजरबन्द किये गये। इसके बाद पूरबी बंगाल के सिवाय भारत के सब प्रान्तों में शान्ति बनी रही।

सन् १९१५ में एक जर्मन-तुर्की-हिन्दी प्रतिनिधि-मंडल काबुल भी पहुँचा। महेन्द्रप्रताप और बरकतुल्ला इसमें शामिल थे। इन्होंने अफ़गानों को उकसाने की कोशिश की।

§१०. भारत में युद्धकालीन परिवर्तन—महायुद्ध के समय भारत का सामरिक खर्च २ से ३ करोड़ पौंड वार्षिक होता रहा। उस समय भारत-सरकार की कुल मालगुजारी वार्षिक १० करोड़ पौंड से कम थी। दिसम्बर १९१५ ई० में भारत में पहला युद्ध-ऋण उठाया गया। उसके बाद तो कई युद्ध-ऋण लिये गये।

प्रत्येक सरकार जो कागज़ी मुद्रा या दूसरी सांकेतिक मुद्रा चलाती है, उसकी खातिर सोने का एक रक्षित भंडार रखती है। भारत में टकसालें बन्द होने पर भारत का एक 'स्वर्ण मान भंडार' तथा एक 'कागज़ मुद्रा भंडार' लन्दन में रक्खा गया था। युद्ध के समय इन भंडारों में से १३ करोड़ पौंड ब्रिटिश सरकार को उधार दे दिये गये।

मार्च १९१७ ई० में भारत-सरकार ने ब्रिटेन को युद्ध की खातिर १० करोड़ पौंड "दान" दे दिया। सितम्बर १९१८ ई० में ४½ करोड़ पौंड का और "दान" देना तय हुआ, पर युद्ध समाप्त हो जाने से यह समूची रकम दी न गयी। ये रकमें भारत में ही कर्जों द्वारा उठायी गयीं। कर्ज उठाने में काफ़ी जोर-जबरदस्ती की जाती रही। उन कर्ज़ों से अमीरों ने तो सूद पैदा किया, और ग़रीब जनता पर ३० बरस के लिए १० करोड़ वार्षिक सूद का बोझ बढ़ गया।

खर्च की दिक्कत के कारण सन् १९१७ ई० में सरकार को विलायती कपड़े पर भी ७½ फ़ी सदी चुंगी लगानी पड़ी। वैसे भी युद्ध के कारण भारत के व्यवसायों को कुछ बढ़ावा मिला। यों तो भारत ने सब तरह की रसद-सामग्री इंग्लैंड की मदद को भेजी, पर यहाँ लोहे की कीलें, पेंच, कमानियाँ, तार के रस्से जैसी साधारण चीज़ें भी तैयार न हो सकती थीं। अँगरेज़ शासकों ने अनुभव किया कि भारत में व्यवसायों को न पनपने देने की उनकी पुरानी नीति युद्ध जैसे समय में घातक हो सकती है, और तब से उन्होंने भारतीय पूँजीपतियों को अपने साथ लेने की नीति पकड़ी।

क्रान्तिकारियों की सब कोशिशें बेकार हुईं, पर उनके बलिदानों से देश में एक पीड़ा की कराह उठी जिससे दूसरे लोग भी कुछ करने को बेचैन होने लगे। एप्रिल १९१६ ई० में तिलक ने पूना में 'होमरूल लीग' की स्थापना की। दिसम्बर १९१६ ई० में काँग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नरम और गरम दल में मेल हो गया, और मुस्लिम लीग ने भी उनके साथ मिल कर शासन-सुधारों की एक नयी माँग तैयार की। इस योजना में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व को मान लिया गया।

महात्मा गान्धी सन् १९१५ के शुरू में भारत चले आये थे। लखनऊ काँग्रेस से उन्हें बिहार के लोग चम्पारन के निलहे गोरों के जुल्मों की जाँच करने ले गये। चम्पारन पहुँचने पर उन्हें जिले में न घुसने का हुक्म मिला, जिसपर उन्होंने सत्याग्रह किया। वह हुक्म लौटा लिया गया, जाँच हुई, और निलहों ने विलायत का रास्ता लिया।

प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा को उठाने के लिए गान्धीजी सन् १८९४ से ही आन्दोलन कर रहे थे। दक्खिन आफ्रिका सत्याग्रह की सफलता के बाद उस आन्दोलन ने ज़ोर पकड़ा। गान्धीजी ने अपने मित्रों को फ़िजी भेज कर हालात की जाँच करायी। उसके बाद उन्होंने घोषणा की कि यदि वह प्रथा न उठायी जायगी तो वे सत्याग्रह शुरू करेंगे। तब लार्ड हार्डिञ्ज के उत्तराधिकारी लार्ड चेम्सफ़ोर्ड ने इस प्रथा को बन्द किया।

सन् १९१८ में खेड़ा और अहमदाबाद के किसानों और मजदूरों के कष्टों को दूर करने के लिए भी गान्धीजी ने सत्याग्रह का प्रयोग किया। भारतवासियों ने तब यह देखा कि निहत्थे होने पर भी उनके पास आत्मसम्मान की रक्षा का एक साधन है। उसी वर्ष गान्धीजी इन्दौर में हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति हुए। हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा होगी, यह विचार दयानन्द का था, और इसे तिलक ने पुष्ट किया था; किन्तु द्राविडभाषी प्रान्तों में भी हिन्दी का प्रचार कभी हो सकेगा, यह बात सन्दिग्ध थी। गान्धीजी ने इन्दौर में "दक्खिन भारत हिन्दी प्रचार" की नींव डाल दी।

§११. मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार और राउलट कानून—सन् १९१५ की विद्रोह-चेष्टा दबाने के साथ ही भारत के शासकों ने समझ लिया कि और शासन-सुधार देने होंगे, और उन सुधारों की रूपरेखा मार्च १९१६ ई० में बना ली। २० अगस्त १९१७ ई० को भारत-मन्त्री मौण्टेगू ने घोषणा की कि भारत में ब्रिटिश

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तरदायी शासन धीरे-धीरे स्थापित करना ब्रिटिश सरकार का लक्ष्य है। उस जाड़े में मौण्टेगू भारत आये और लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के साथ देश में घूमे। तभी श्री राउलट की अध्यक्षता में, एक कमिटी क्रान्तिकारियों को दबाने के उपाय सुझाने को बैठायी गयी। सन् १९१८ में राउलट कमिटी की रिपोर्ट तथा मौण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार-योजना प्रकाशित हुई। राउलट कमिटी की सलाहों का सार यह था कि भारत-रक्षा कानून द्वारा युद्ध-काल में सरकार ने जो विशेष अधिकार ले लिये थे, वे स्थायी कर दिये जायँ।

सन् १९१९ के शुरू में भारत सरकार ने केन्द्रीय व्यवस्था समिति में इसके अनुसार दो कानूनों के मसविदे पेश किये। इसपर महात्मा गान्धी ने उन कानूनों के शान्तिमय उल्लंघन की घोषणा की। ६ एप्रिल को समूचे देश में लोगों से उपवास, हड़ताल और प्रतिवाद करने को कहा गया। उस दिन देश भर में प्रदर्शन हुआ। गान्धीजी बम्बई से दिल्ली-पंजाब के लिए रवाना हुए, पर ८ एप्रिल को उन्हें पलवल में गिरफ़्तार कर बम्बई वापिस भेज दिया गया। उनकी गिरफ़्तारी की खबर से अहमदाबाद, वीरमगाम और नडियाद में दंगे हो गये। गान्धीजी ने अहमदाबाद जा कर स्थिति शान्त की और सत्याग्रह स्थगित कर दिया। १० एप्रिल को अमृतसर में अन्दोलन के नेता गिरफ़्तार हुए। जनता ने इसपर प्रदर्शन किया; कुछ सरकारी इमारतें जला दीं और ५ अँगरेज़ों को मार डाला। १२ और १४ एप्रिल को कसूर और गुजरांवाला में भी वैसी ही घटनाएँ हुईं। असल बात यह थी कि महायुद्ध के समय पंजाब में भरती कराने और युद्ध-ऋण उठाने में जो ज़्यादतियाँ की गयी थीं, उनसे जनता बेहद चिढ़ी हुई थी, और मौका पाते ही उसका गुस्सा उबल पड़ा।

पंजाब में सौर तिथि का चलन है, और नया वर्ष वैशाख-संक्रान्ति (१३ एप्रिल) को शुरू होता है। उस उत्सव के दिन अमृतसर की घनी बस्ती के बीच जलियाँवाला बाग नामक तंग मैदान में सन्ध्या को एक सभा हो रही थी। जनरल डायर ने सौ देसी सिपाहियों और ५० गोरों के साथ उस बाग के एकमात्र दरवाजे को रोक लिया और निहत्थी भीड़ पर गोलियों की बौछारें शुरू कर दी, जिससे ४०० आदमी मरे और डेढ़ हज़ार घायल हुए। फिर घायलों को वहीं कराहता छोड़ कर वह चला गया।

१५ एप्रिल से पंजाब में फ़ौजी राज घोषित किया गया, जो ११ जून तक जारी रहा। इस बीच जनता से सब वाहन छीन लिये गये और दो से अधिक आदमियों के इकट्ठा चलने की मनाही कर दी गयी। अमृतसर की एक गली में लोगों को पेट के बल रेंगाया गया। हज़ार के करीब आदमियों पर फ़ौजी अदालतों में मुकदमे चले, फाँसी और कालापानी की सजाएँ खुले हाथों दी गयीं। खुली टिकटिकियाँ लगा कर लोगों को उनपर नंगा बाँध कर बेंत लगाये गये। गाँवों और खेतों पर हवाई जहाज़ों से बम बरसाये गये। रेलगाड़ियाँ जनता के लिए शुरू में ही रोक दी गयी थीं। बाहर से कोई आदमी पंजाब न जा सकता था, और न पंजाब की खबर बाहर जा पाती थी।

पंजाब की गाड़ियाँ खुलते ही कांग्रेस की ओर से एक कमिटी जाँच के लिए वहाँ गयी। यह जाँच अभी जारी थी कि मौंटेगू-चेम्सफ़ोर्ड योजना कानून बन गयी। उसका सार यह था कि केन्द्रीय और प्रान्तीय व्यवस्था-सभाओं में निर्वाचित बहुमत होगा; केन्द्रीय सभा सब कानूनों के मसविदों पर तथा लगभग १३१ करोड़ रुपये के वार्षिक बजट में से १९ करोड़ पर सम्मति दे सकेगी, पर उस सम्मति को मानना या न मानना गवर्नर-जनरल की इच्छा पर निर्भर होगा। प्रान्तीय सभाओं का शिक्षा, आबकारी आदि विषयों पर नियन्त्रण होगा; वे विषय 'हस्तान्तरित' कहलायेंगे; उन्हें चलाने वाले मन्त्री उन सभाओं के बहुपक्ष के प्रति जिम्मेदार होंगे। बाकी विषय, जैसे अमनचैन की रक्षा आदि, 'रक्षित' होंगे; उनके लिए गवर्नरों की शासन-समितियों में दो सदस्य होंगे, जिनमें से एक हिन्दुस्तानी होगा। साम्प्रदायिक निर्वाचन की प्रथा जारी रहेगी।

दिसम्बर १९१९ ई० में अमृतसर में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। उससे ठीक पहले यह कानून तैयार हुआ। तभी युद्ध के समय के सब नजरबन्द तथा अधिकांश क्रान्तिकारी कैदी भी छोड़ दिये गये।

§१२. अफ़गानिस्तान का स्वतन्त्र होना—महेन्द्रप्रताप और बरकतुल्ला ने तरुण अफ़गानों में स्वतन्त्र होने की उत्कट भावना जगा दी थी। २० फ़रवरी सन् १९१९ को अमीर हबीबुल्ला, जो अँगरेज़ों का मित्र था, मारा गया। कुछ दिन उसके भाई नसरुल्ला के अमीर रहने के बाद हबीबुल्ला का बेटा अमानुल्ला गद्दी पर बैठा।

भारत में अशान्ति देख कर अमानुल्ला ने सोचा कि यह स्वाधीन होने का अच्छा मौका है, और ३ मई को खैबर पर हमला कर दिया। वज़ीरिस्तान के पठानों ने भी विद्रोह किया। अँगरेज़ों ने जलालाबाद और काबुल पर हवाई जहाज़ों से बम गिराये तथा खैबर और चमन की तरफ़ से अफ़गान इलाके में घुसना शुरू किया। २८ मई को अमीर ने सन्धि की प्रार्थना की। सन्धि की बातचीत अढ़ाई बरस चलती रही।

सन् १९१८ में जर्मनों से छुट्टी पाते ही फ्रान्सीसियों और अँगरेज़ों ने रूस में दस्तन्दाज़ी करना शुरू किया था। रूसी गद्दारों, पोलैंड और इस्तोनिया द्वारा उन्होंने रूस पर चढ़ाइयाँ करवायीं। इंग्लैंड ने इन चढ़ाइयों पर १० करोड़ पौंड खर्च किया। सन् १९२० ई० के अन्त तक रूसी क्रान्तिकारियों ने इन सब शत्रुओं को मार भगाया। उन्होंने तुर्की, ईरान, चीन और अफ़गानिस्तान के बारे में ज़ारशाही रूस के इंग्लैंड से जो गुप्त और प्रकट समझौते थे, उन्हें प्रकाशित और रद्द कर दिया। अँगरेज़ों ने देखा, अब वे अफ़गानिस्तान को दबाये रखना चाहें तो वहाँ रूस का प्रभाव और बढ़ेगा, इसलिए उसे विदेशी सम्बन्धों में पूरी स्वतन्त्रता दे दी (२२-११-१९२१ ई०)।

§१३. असहयोग और खिलाफ़त आन्दोलन—युरोप में युद्ध रुक जाने पर पैरिस के वारसाइ महल में साल भर सन्धि के सम्मेलन होते रहे। विजेताओं ने जी खोल कर पराजितों को लाञ्छित किया। तुर्की साम्राज्य से अरब अलग हो चुका था; इराक, फ़िलिस्तीन और सीरिया प्रान्त अँगरेज़ों और फ्रान्सीसियों ने दबा लिये थे। विजेताओं ने अब अपना एक गुट्ट बना कर उसका नाम "राष्ट्र-संघ" रक्खा और उस संघ ने इन तथा अन्य जीते हुए देशों के "शासनादेश" विजेताओं को दे दिये। तुर्की का साम्राज्य तो नष्ट हो ही गया, ठेठ तुर्की को भी दबाया जा रहा था। भारतीय मुसलमान १९वीं शती से तुर्की के सुल्तान को इस्लाम का खलीफ़ा मानते थे। खिलाफ़त को टूटता देख वे क्षुब्ध होने लगे। गांधीजी ने उन्हें सरकार से असहयोग करने की सलाह दी।

अमृतसर कांग्रेस ने कांग्रेस को जनता की संस्था बनाने के लिए उसका नया विधान तैयार करने का काम गान्धीजी को सौंपा। पंजाब के अत्याचारों की याद में सन् १९२० में ६ से १३ एप्रिल तक राष्ट्रीय सप्ताह मनाया गया। मई में तुर्की

की सन्धि प्रकाशित हुई। २८ मई को भारतीय खिलाफ़त कमिटी ने असहयोग की नीति निर्धारित की।

कांग्रेस के नेताओं में अभी परामर्श जारी था कि १ अगस्त को लोकमान्य तिलक चल बसे। ४ से ९ सितम्बर तक कलकत्ते में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन लाला लाजपतराय के सभापतित्व में हुआ; उसमें व्यवस्था-सभाओं, स्कूल-कालेजों और अदालतों का बहिष्कार करना तय हुआ। विदेशी कपड़े का बहिष्कार होने पर स्वदेशी मिलों का कपड़ा काफ़ी न होगा, इसलिए हाथ की कताई-बुनाई को बढ़ावा देने का निश्चय हुआ। दिसम्बर में नागपुर कांग्रेस ने इन प्रस्तावों का समर्थन तथा गान्धीजी का बनाया हुआ नया विधान स्वीकृत किया। कांग्रेस का ध्येय अब से "शान्तिमय और उचित उपायों द्वारा स्वराज पाना" हो गया। नये विधान से कांग्रेस जनता की देशव्यापी तथा कार्यक्षम संस्था बन गयी। गान्धीजी का कहना था कि "यदि हम कांग्रेस विधान को चरितार्थ करें तो उस चरितार्थ करने से ही स्वराज्य मिल जायगा।"

सन् १९१४ में विदेशों से जो सिक्ख भारत में विप्लव करने आये थे, पंजाब सरकार ने उनके विषय में सिक्ख गुरद्वारों के महन्तों से घोषणा करा दी थी कि वे धर्म-द्रोही हैं। अब उन लोगों ने जेलों से छूटने पर इन दुश्चरित्र के अड्डे—गुरद्वारों के सुधार की ओर ध्यान दिया और सन् १९२० के अन्त तक एक कमिटी खड़ी कर ली जो पीछे शिरोमणि गुरद्वारा प्रबन्धक कमिटी कहलायी।

कांग्रेस के नये विधान के अनुसार १५ व्यक्तियों की एक कार्य-समिति बनी और उसकी हर महीने बैठक होने लगी। कांग्रेस की पुकार पर सरकारी स्कूलों-कालेजों के विद्यार्थी उन्हें छोड़ने लगे और राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना हुई। अदालतें खाली तो न हुईं, पर उनका रोब जाता रहा। व्यवस्था-सभाओं में कांग्रेसी लोग नहीं गये। असहयोग का अन्तिम रूप करबन्दी होगा, यह बात सब के मन में थी। उसकी तैयारी के लिए ३० जून तक कांग्रेस के एक करोड़ सदस्य बनाना, स्वराज्य कोष में एक करोड़ रुपया जमा करना तथा २० लाख चर्खे चालू करना तय हुआ।

२ एप्रिल को लार्ड रीडिंग ने लार्ड चेम्सफ़ोर्ड से शासन-भार लिया। कांग्रेस का कार्य ज़ोर से चलते ही सरकार ने धर-पकड़ शुरू कर दी। जो लोग पकड़े जाते, वे मुक़दमों में अपनी सफ़ाई न देते थे। ८ जुलाई को कराची में खिलाफ़त सम्मेलन

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में घोषणा की गयी कि मुसलमानों के लिए ब्रिटिश फौज में रहना हराम है। जुलाई के अन्त तक कांग्रेस के ५० लाख सदस्य बन गये, तथा स्वराज कोष में ११५ लाख रुपये जमा हो गये थे। ३० सितम्बर तक विदेशी कपड़े का पूरा बहिष्कार करना तय हुआ। इस प्रसंग में स्वयम्-सेवक लोग घर-घर से विदेशी कपड़ा इकट्ठा कर उसकी होली करने लगे, और सरकार ने जोर का दमन जारी किया। कराची प्रस्ताव की खातिर मुस्लिम नेता गिरफ़्तार किये गये, तब कार्य-समिति के आदेश से १६ अक्टूबर को देश भर में सभाएँ कर यह बात दोहरायी गयी कि किसी भी भारतीय का ब्रिटिश सरकार की नौकरी करना राष्ट्रीय गौरव और राष्ट्रहित के विरुद्ध है।

५ नवम्बर को प्रान्तीय कांग्रेस समितियों को सामूहिक सत्याग्रह करने का अधिकार दिया गया। चुनी हुई तहसीलों या जिलों में करबन्दी करना उस सत्याग्रह का मुख्य अंश होता। इसके बाद दमन और बढ़ा, दिसम्बर तक प्रायः ३० हज़ार सत्याग्रही जेलों में बन्द हो चुके थे।

सन् १९२१ के अन्त में अहमदाबाद काँग्रेस ने अगली लड़ाई के लिए गान्धी जी को अधिनायक नियत किया। गान्धीजी सूरत जिले के बारडोली तालुके में करबन्दी की तैयारी कर रहे थे। १ फ़रवरी को उन्होंने वाइसराय को अन्तिम सूचना देते हुए लिखा, "मैं आपसे अनुरोध करता हूँ कि आप देश की अहिंसात्मक हलचल में…सरकार की तटस्थता की घोषणा कर दें।…यदि आप सात दिन के भीतर ऐसी घोषणा कर देंगे तो मैं तब तक के लिए सत्याग्रह मुलतवी कर दूँगा, जब तक सारे कैदी छूट कर नये सिरे से विचार न करलें।"

सरकार भला अपने खिलाफ की जाती हुई तैयारी में तटस्थ कैसे हो जाती? और वह भी उस दशा में जब उसके लिए ज्यादतियाँ करके—खास कर स्त्रियों पर जोर-जबरदस्ती करके—जनता को भड़का देना बहुत ही सुगम था? वही हुआ। वह हफ्ता बीतते-बीतते ५ फ़रवरी को गोरखपुर जिले के चौरीचौरा स्थान में उसी प्रकार भड़कायी हुई जनता ने २१ सिपाहियों और एक दारोगा को थाने में खदेड़ कर उस थाने में आग लगा दी। गान्धी जी ने इस पर सामूहिक सत्याग्रह बन्द कर दिया और देश को रचनात्मक कार्य में लगने का आदेश दिया। २४-२५ फ़रवरी को भारतीय कांग्रेस-समिति ने उनका समर्थन किया। ज्योंही एक बार कांग्रेस के नेता पीछे हटे कि सरकार ने उनकी रही-सही शक्ति तोड़ने को धड़ाधड़ गिरफ्तारियाँ

शुरू की। १३ मार्च को गान्धीजी गिरफ्तार किये गये, और उन्हें ६ साल की कैद की सज़ा दी गयी।

हमने देखा है कि महायुद्ध के समय अँगरेज़ों ने भारत में व्यवसाय स्थापित करने की आवश्यकता अनुभव की थी। युद्ध के बाद जापान ने अपना व्यापार बहुत बढ़ा लिया। भारत के कृषिप्रधान होने का लाभ इंग्लैंड के बजाय जापान को मिलने लगा। इस दशा में सरकार ने अपनी ज़कात नीति सन् १९२२ से बदली, और व्यवसायों के संरक्षण के लिए एक टैरिफ़ (ज़कात) बोर्ड नियुक्त किया। भारत में पूँजी लगाने वाले ब्रिटिश व्यवसायियों ने भारतीय पूँजीपतियों को साथ लेना शुरू किया। उन्होंने देखा कि वैसा करने पर भी "अँगरेज़ों का पुराना नियन्त्रण ज्यों का त्यों बना रहता है, क्योंकि हिन्दुस्तानी अपने मुनाफ़े भर से सन्तुष्ट हो जाते हैं, उन्हें प्रबन्ध में हिस्सा लेने की इच्छा नहीं होती।"

§ १४. असहयोग और क्रान्ति आन्दोलनों की प्रतिक्रिया (१९२२–२९ ई०)—सन् १९२१ के बाद के बरसों में छोटे-मोटे प्रश्नों पर अथवा धर्म की आड़ ले कर कई सामूहिक सत्याग्रह होते रहे। इन से पहला स्थान अकालियों के सत्याग्रहों का है। गुरद्वारों का सुधार चाहने वाले सिक्ख अपने को अकाली कहते थे। सन् १९२१ से २४ तक एक न एक प्रश्न को लेकर वे सरकार से अहिंसात्मक लड़ाई चलाते रहे। उनके जत्थे लाठियों की मार और गोलियों को बौछार के सामने भी डटे रहते। उनकी शिरोमणि-समिति गैरकानूनी करार दी गयी, तो भी वह गुप्त रूप से आन्दोलन को चलाती रही। सन् १९२५ ई० में सरकार ने गुरद्वारा कानून बना कर गुरद्वारों को सिक्खों के निर्वाचित प्रतिनिधियों के हाथ सौंप दिया, तब यह आन्दोलन शान्त हुआ।

राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों को ले कर भी कई सत्याग्रह हुए। सन् १९२८ में बारडोली के किसानों ने लगान की बढ़ती के विरुद्ध सत्याग्रह किया। उनकी यह मांग थी कि खुली जाँच में स्पष्टतः कारण दिखाये बिना बढ़ती न की जाय। उनका सत्याग्रह सफल हुआ

राष्ट्रीय कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से असहयोग और उसकी संस्थाओं के बहिष्कार को बराबर अपनी नीति कहती और सत्याग्रह में विश्वास प्रकट करती रही। सन् १९२३ में एक स्वराज-दल खड़ा हो गया जिसका कहना था कि व्यवस्था-सभाओं में जा कर उनके "भीतर से असहयोग" किया जाय। कांग्रेस ने उन्हें इसके लिए

इजाजत दे दी। ५ फ़रवरी १६२४ ई० को महात्मा गान्धी बीमारी के कारण छोड़ दिये गये। गान्धीजी के अनुयायी अपने "रचनात्मक कार्य क्रम" में लगे रहे, और उन्होंने राष्ट्रीय कांग्रेस के संगठन और आत्मनिर्भरता के भाव को बनाये रक्खा। गान्धीजी के आन्दोलन का परोक्ष प्रभाव भी बहुत हुआ। एक तो हज़ारों आदमियों के जेल का पानी पी आने से हिन्दुओं की छूत-छात घटने लगी। दूसरे, स्त्रियों ने भी आन्दोलन में भाग लिया, जिससे उन्हें समाज में कुछ स्वतन्त्रता मिलने लगी। १६२२ ई० में तो केवल तीन स्त्रियाँ जेल गयीं, पर उन्होंने आगे के लिए रास्ता खोल दिया। तीसरे, खद्दर से देश का एक राष्ट्रीय पहनावा बन गया, जिससे सादगी फैली और गरीब-अमीर एक समान दिखायी देने लगे। इसके सिवाय अछूतोद्धार तो गान्धीजी के प्रत्यक्ष कार्यक्रम का एक अंश ही था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता भी कांग्रेस के कार्यक्रम में रही, पर सन् १६२२ के बाद से एकता के बजाय विरोध बढ़ता दिखायी दिया। सितम्बर १६२२ ई० में मुलतान में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। खिलाफ़त और कांग्रेस के नेता उसे शान्त न कर सके। तब कुछ लोगों ने कहा कि हिन्दू कमज़ोर और असंगठित हैं, जब तक वे संगठित न होंगे, पक्की हिन्दू-मुस्लिम एकता न होगी। उन्होंने "हिन्दू संगठन" का आन्दोलन शुरू किया। इसके जवाब में मुसलमानों ने 'तंज़ीम' का आन्दोलन चलाया। पृथक्-पृथक् संगठित सम्प्रदायों का मेल हो भी जाता तो वह राष्ट्रीय एकता न होती, लट्ठबन्द समझौता होता। यों फ़िसाद बढ़ता ही गया, और अगले वर्षों में सभी प्रान्तों में दंगे होते रहे।

इस बीच खिलाफ़त का विचित्र ढंग से अन्त हो गया था। सन् १६१६ ई० में तुर्की के सुल्तान ने ठेठ तुर्की का स्मिर्ना प्रान्त यूनान को देना मान लिया था। मित्र राष्ट्रों का जंगी बेड़ा और सेना तब तुर्की को घेरे पड़े थे, यूनान तो उनका कठपुतली था। यूनानियों ने स्मिर्ना को लेना चाहा तो तरुण तुर्कों ने मुस्तफ़ा कमाल के नेतृत्व में उनका सामना किया, अंकरा में राष्ट्रीय परिषद् बुला कर राष्ट्रीय प्रजातन्त्र की नींव डाल दी, और रूस से मदद माँगी। रूस से कोहकाफ़ के रास्ते गोला-बारूद आने पर उन्होंने यूनानियों को मार भगाया (अक्तूबर १६२२ ई०)। तुर्की का सुल्तान तब एक अँगरेज़ी जहाज में माल्टा भाग गया। राष्ट्र-परिषद् ने उसके भतीजे को खलीफ़ा बनाया। पर उसके हाथ में कोई राजनीतिक अधिकार

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

नहीं दिया। मित्र राष्ट्रों ने तुर्की से सन्धि कर अक्तूबर १६२३ ई० में अपनी सेनाएँ हटा लीं।

इसके बाद तथा सम्राट् की प्रिवी कौंसिल के मेम्बर अमीरअली आग़ाख़ाँ ने तुर्की के प्रधान मन्त्री के पास अँगरेज़ी में एक पत्र भेजा। उन्होंने लिखा, "निर्वाचित प्रतिनिधियों की शक्ति कम करने को हम नहीं कहते, पर खलीफ़ा की शक्ति मुसलमानों के मज़हबी मुखिया के रूप में शरियत के अनुसार अक्षुण्ण रक्खी जाय।" मुस्तफ़ा कमाल ने कहा, "आग़ाखाँ अँगरेज़ों का खास कारिन्दा है," और उसके द्वारा अँगरेज़ों ने तुर्की को कमज़ोर बनाने की यह नयी चाल चली है। तुर्क प्रजातन्त्र ने खिलाफ़त को उठा देने का निश्चय किया। ४ मार्च १६२४ ई० को प्रातः दो बजे पहरेदारों ने खलीफ़ा को जगा कर गद्दी पर बैठाया। तब उसको राष्ट्र-परिषद् का हुक्म सुनाया, और उस हुक्म के अनुसार उसे गद्दी से उतार कर निर्वासित कर दिया। उसी दिन तुर्क मन्त्रिमंडल में से धर्माधिकारी पद, तमाम मजहबी मकतब और काजियों की कचहरियाँ उठा दी गयीं।

अगले वर्ष ईरान ने भी तुर्की का अनुसरण किया। अफ़गानिस्तान में अमीर अमानुल्ला ने वही राह पकड़ी। किन्तु अफ़गान प्रजा अभी उसके लिए पूरी तैयार न थी। जिस कर्नल लारेन्स ने तुर्की के खिलाफ़ अरबों को उभाड़ा था, वही अब अफ़गान कबीलों में जा पहुँचा। १६२८ ई० में अफ़गानिस्तान में विद्रोह हुआ, और अमानुल्ला को देश छोड़ कर भागना पड़ा।

अहिंसात्मक असहयोग विफल होने पर १६२२ ई० में क्रान्तिकारी नेता फिर अपने संगठन को नया करने लगे। अमेरिका से गदर दल के कुछ लोग रूस पहुँचे। उनके साथियों ने पंजाब में "किर्त्ती"* (श्रमिक) आन्दोलन शुरू किया। जो नरेन्द्रनाथ भट्टाचार्य १६१५ ई० में भारत से भाग गये थे, वे भी रूस पहुँच कर मानवेन्द्रनाथ राय नाम रख कर रूसी क्रान्ति का सन्देश भारत में भेजने लगे। पुराने क्रान्तिकारी अभी इन प्रवृत्तियों को देख-समझ ही रहे थे कि कुछ अधीर युवकों ने सन् १६२३ ई० के मध्य से बंगाल में त्रास के कार्य शुरू कर दिये। सरकार को दमन का मौका मिल गया। २५ अक्तूबर सन् १६२४ को बंगाल सरकार ने एक नया फ़रमान (आर्डिनान्स) निकाल कर एकाएक नजरबन्दियाँ शुरू कीं।

---

* पंजाबी 'कित्त' संस्कृत कृति का रूपान्तर है। 'कित्तीं' यानी कितंवाला, कर्मकर, श्रमिक, मजदूर।

उत्तर भारत में सन् १९२३-२४ ई० में "हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल" नामक एक गुप्त संस्था स्थापित हुई, जिसका उद्देश्य था, "भारत के संयुक्त राष्ट्रों का संघ-प्रजातन्त्र स्थापित करना।" इन्होंने भी धन-संग्रह का पुराना रास्ता अपनाया, और सन् १९२५ के अन्त में इनके मुख्य केन्द्र पकड़े गये।

इस दमन के बावजूद भी क्रान्तिकारी आदर्शों का देश में प्रचार होता रहा। सन् १९०७-९ वाले अजीतसिंह का भतीजा भगतसिंह "हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल" में था। सन् १९२६ में उसने लाहौर में एक "नौजवान भारत सभा" स्थापित की। उसकी देखा-देखी समूचे देश में युवक-सभाएँ स्थापति हो गयीं। काँग्रेस ने सन् १९२० से अपना ध्येय "स्वराज" बना लिया था। लेकिन जब "स्वराज" का अर्थ पूछा जाता तो गान्धीजी कहते, "सम्भव हो तो ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर, आवश्यक हो तो बाहर।" क्रान्तिकारियों का स्पष्ट ध्येय पूर्ण स्वराज्य ही था। दूसरे, वे अहिंसात्मक साधनों तक परिमित न रहना चाहते थे। धीरे-धीरे देश का बहुमत उनके ध्येय की तरफ़ झुकता गया, पर साधनों के विषय में उसने गान्धीजी की बात को न छोड़ा।

एप्रिल १९२६ ई० में लार्ड रीडिंग ने लार्ड अर्विन को शासन-भार दे दिया था। सरकार ने देखा कि भारत को फिर कुछ शासन-अधिकार देने होंगे, तो उनका मसविदा बनाने को सर जॉन साइमन की प्रमुखता में एक कमीशन नियत किया। फरवरी सन् १९२८ में यह कमीशन भारत आया। जहाँ-जहाँ वह गया, जनता ने उसके बहिष्कार के प्रदर्शन किये। प्रदर्शनकारियों पर अनेक जगह लाठियों की मार पड़ी।

सन् १९२८ में अधिकतर नजरबन्द भी छोड़ दिये गये। उस वर्ष के अन्त में कलकत्ते में राष्ट्रीय कांग्रेस में युवक दल ने पूर्ण स्वाधीनता को ध्येय मनवाना चाहा। गान्धीजी के कहने से यह तय हुआ कि ब्रिटिश सरकार यदि एक साल में भारत को अभीष्ट शासनपद्धति न दे, तो कांग्रेस पूर्ण स्वाधीनता को लक्ष्य बना कर करबन्दी का आन्दोलन शुरू करेगी।

सन् १९२९ में देश आगामी लड़ाई की तैयारी में लगा और सरकार ने दमन शुरू किया। भारत भर के ३१ मजदूर नेताओं पर मेरठ में तथा भगतसिंह आदि "हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल" के कुछ लोगों पर लाहौर में मुकदमा चलाया गया। लाहौर के कैदियों ने राजनीतिक कैदियों से मनुष्योचित व्यवहार की माँग

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

पर भूख-हड़ताल शुरू कर दी। यतीन्द्रनाथ दास नामक एक अभियुक्त ६४ दिन के अनशन के बाद १३ सितम्बर को चल बसा। १९ सितम्बर को बरमा में एक राजनीतिक कैदी भिक्षु विजय का १६४ दिन के अनशन के बाद देहान्त हुआ। इन बलिदानों से देश में नयी लहर उमड़ आयी।

३१ दिसम्बर १९२९ ई० को लाहौर में राष्ट्रीय कांग्रेस ने भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता को अपना लक्ष्य घोषित किया। उसने यह भी कहा कि स्वाधीन भारत अँगरेज़ी सरकार द्वारा भारत के नाम पर लिये गये कर्ज को निष्पक्ष जाँच कराये बिना स्वीकार न करेगा।

§१५. पहला सत्याग्रह-युद्ध (१९३०-३४ ई०)—अ. पहली मुहिम— २६ जनवरी सन् १९३० को समूचे भारत में स्वाधीनतादिवस मनाया गया। उस दिन तिरंगा झंडा फहरा कर लोगों ने यह घोषणा की—

"स्वाधीन होना, अपने श्रमों का फल भोग करना और जीवन की आवश्यक वस्तुएँ पाना भारतीय जनता का अपरिहार्य अधिकार है। यदि कोई शासन जनता को इन अधिकारों से वंचित कर पीड़ित करता है, तो जनता का अधिकार है कि उसे बदल दे या उखाड़ दे।... ब्रिटिश शासन ने भारतीय जाति को न केवल उसकी स्वाधीनता से वंचित किया, प्रत्युत जनता के दोहन-शोषण पर अपनी नींव डाली है, और भारत को आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक पहलुओं से उजाड़ डाला है।

आर्थिक रूप से भारत को उजाड़ दिया गया है। हमारी जनता से हमारी आय के अनुपात से बेहिसाब मालगुज़ारी ली जाती है। हमारी औसत आय दैनिक सात पैसा है; और हम जो भारी कर अदा करते हैं, उनमें से २० फ़ी सदी किसानों से ली जाने वाली जमीन-मालगुजारी से और ३ फ़ी सदी नमक-कर से आता है जिसका कड़ा बोझ प्रायः गरीबों पर पड़ता है।

ग्राम व्यवसाय नष्ट कर दिये गये हैं, जिससे किसान साल में चार मास बेकार रहते है, और दस्तकारी के अभाव में उनकी बुद्धि कुंठित होती हैं।

ज़कात और मुद्रा-पद्धति को इस तरह चलाया गया है कि किसानों पर और बोझ लदें।...ज़कात की दरों से ब्रिटिश कारखाने वालों का स्पष्ट पक्षपात प्रकट है। ...शासन अत्यन्त फ़िज़ूलखर्ची से (चलता है)। विनिमय दर को और भी मनमाने ढंग से चलाया जाता है, जिससे देश से करोड़ों रुपये बाहर बहा करते हैं।

राजनीति में भारत का पद कभी इतना गिरा नहीं रहा जितना ब्रिटिश राज में। सुधारों से जनता को कोई असल राजनीतिक शक्ति नहीं मिली। हममें से बड़े से बड़ों को विदेशी के आगे झुकना पड़ता है। हमें अपने विचार प्रकट करने और परस्पर मिलने की स्वतन्त्रता नहीं है...। (हमारी) शासन की प्रतिभा मार दी गयी है...।

हमारी संस्कृति को दबाते हुए अँगरेज़ी शिक्षापद्धति हमें अपनी परिस्थिति से उखाड़ने की कोशिश करती और अपनी ज़ंजीरों से चिपटे रहना सिखाती है।

हमें निहत्था करके आध्यात्मिक रूप से नामर्द बना दिया गया है, और हमारे देश पर कब्ज़ा किये बैठी विदेशी सेना द्वारा...हमें यह सुझाया जाता है कि हम स्वयम् अपने देश और अपने घर-द्वार की...रक्षा नहीं कर सकते। हमें विश्वास है कि यदि हम इस अमानुषी शासन को सहायता देना और कर देना बन्द कर दें, और उत्तेजित किये जाने पर भी हिंसा के लिए न उभड़ें तो इसका अन्त निश्चित है...।"

महात्मा गान्धी सत्याग्रह-युद्ध के अधिनायक नियत हुए। गान्धीजी ने सबसे पहले नमक कानून तोड़ना तय किया, क्योंकि एक तो नमक-कर गरीबों के लिए स्वयम् अभिशाप है, और दूसरे भारत का वार्षिक खिराज इंग्लैंड तक पहुँचाने की कल का वह एक ज़रूरी पुर्जा है। हमने देखा है कि भारत इंग्लैंड से हर साल जितना माल मँगाता है, उससे कहीं अधिक भेजता है। १९२५ ई० में यह अधिकता ६७ करोड़ रुपये, अर्थात् नादिरशाह की लूट* से दो करोड़ अधिक, थी। यह खिराज ले जाने वाले जहाज अपनी वापसी यात्रा में खाली नहीं आ सकते—उन्हें कोई बहुत सस्ती चीज लानी चाहिए, इसलिए अँगरेज़ी नमक लाते हैं। और अँगरेज़ी नमक भारत में बिक न सके, यदि भारतीय नमक पर ब्रिटिश सरकार का यह कर न लगा हो।

गान्धीजी ने सूरत जिले के समुद्र-तट के दांडी गाँव में नमक कानून तोड़ना तय किया, और १२ मार्च को सवेरे साबरमती आश्रम, अहमदाबाद, से ७९ साथियों के साथ दांडी के लिए पैदल रवाना हुए। ६ एप्रिल को उन्होंने दांडी के समुद्रतट से मुट्ठी भर नमक चुना और वह संकेत पाते ही भारत भर में नमक-कानून तोड़ा गया। जगह-जगह गिरफ़्तारियाँ हुईं और जनता पर गोलियाँ चलीं।

---

*ऊपर पृष्ठ ३७१।

उधर बंगाल के एक त्रासवादी दल ने १८ एप्रिल की रात को चटगाँव में फौजी शस्त्रागार को लूट लिया। उसी रात बंगाल में नया आर्डिनान्स चलाया गया, और सुबह से पहले बंगाल के क्रान्तिकारी नेताओं ने, जो सन् १९२८ में जेलों से छूटे थे, अपने को फिर नजरबन्द पाया।

महात्मा गान्धी ११ मार्च, १९३० ई० की सन्ध्या को

[श्री नवीनचन्द्र गान्धी के सौजन्य से]

२३ एप्रिल को पेशावर में जनता के जुलूस को गोलियों की मार से हटाने की कोशिश की गयी। वीर पठान गोली खा कर गिरते गये, पर पीछे न हटे। चारसद्दा के खान अब्दुल गफ़्फ़ार खाँ ने उन्हें गान्धीजी के मार्ग की दीक्षा दी थी। उस प्रसंग में गढ़वाली सैनिकों की दो पलटनों को निहत्थी जनता पर गोली दागने को कहा गया। चन्दनसिंह के नेतृत्व में उन सैनिकों ने वैसा करने से इनकार किया। उन्हें फ़ौजी कानून से सजाएँ दी गयीं। पीछे पेशावर शहर को फ़ौज के हाथ में दे दिया गया।

इस बीच गान्धीजी दांडी में बराबर कानून तोड़ रहे थे। २७ एप्रिल को वाइसराय ने एक प्रेस-आर्डिनान्स जारी किया जिससे राष्ट्रीय अखबारों को प्रकाशन बन्द करना पड़ा और साइक्लोस्टाइल पर छपे गैरकानूनी परचे निकलने लगे। गान्धीजी ने

सूरत जिले में धरासना के सरकारी नमकघर पर 'धावा' मारना तय किया। इस पर ४ मई की रात को उन्हें गिरफ़्तार कर पूना के पास यरवदा जेल में भेज दिया गया।

गान्धीजी के गिरफ़्तार होने पर कार्यसमिति ने निश्चय किया कि रैयतवारी प्रान्तों में करबन्दी की जाय, बिहार-बंगाल में चौकीदारी टैक्स न दिया जाय, मध्य प्रान्त आदि में जंगल कानून तोड़े जाँय, नमक-कानून तोड़ना जारी रहे, विदेशी कपड़े और शराब-अफ़ीम को रोका जाय तथा ब्रिटिश माल का पूरा बहिष्कार किया जाय। बारडोली, बोरसद (जिला खेड़ा) और उत्तर कनाडा के किसानों ने इसपर मालगुजारी देना बन्द कर दिया। मेदिनीपुर में तथा भागलपुर के थाना-बिहपुर में चौकीदारी टैक्स देना बन्द हुआ।

गान्धीजी ने अपने पीछे अब्बास तैयबजी को और उन्होंने सरोजिनो नायडू को अधिनायक नियत किया था। वे दोनों १५ दिन के भीतर धरासना के धावों में गिरफ़्तार हो गये। विदेशी कपड़े और शराब पर धरना देने में स्त्रियों ने मुख्य भाग लेना शुरू किया। पुलिस नेताओं को गिरफ़्तार करती और साधारण लोगों को लाठियों से खदेड़ती थी।

खान अब्दुलगफ़्फ़ार खाँ

[श्री नवीनचन्द्र गान्धी के सौजन्य से]

सरोजिनी देवी के बाद मोतीलाल नेहरू अधिनायक हुए। उन्होंने काँग्रेस की ओर से भारतीय मिलों से ठहराव किये। जिन मिलों में तीन-चौथाई पूँजी तथा प्रबन्ध भारतीय हो, जो ब्रिटिश सामग्री न खरीदने, ब्रिटिश बीमा कम्पनियों आदि को काम न देने, मज़दूरों के साथ उचित बरताव करने आदि की प्रतिज्ञा करें, उन्हीं को स्वदेशी माना जाता। मोतीलालजी ने भारत की अधिकांश मिलों से स्वदेशी प्रतिज्ञा ले ली। २७ जून को कार्यसमिति ने निश्चय किया कि अत्याचारी अमलों का सामाजिक बहिष्कार किया जाय, सरकारी ऋणपत्र न लिये जायँ, और चूँकि रुपये में उसके मूल्य की तिहाई चाँदी भी नहीं है, इसलिए रुपये या नोट न लेकर भरसक सोना ही लिया जाय। इन कार्रवाइयों के फलस्वरूप ३० जून को मोतीलाल गिरफ्तार हुए और कार्यसमिति गैरकानूनी करार दी गयी। —

आन्दोलन इसके बाद कड़ा होता गया। बंगाल में विदेशी कपड़े का आयात साल के अन्त में ६५ फ़ी सदी तक गिर गया। लंकाशायर में मिलें बन्द हो कर बेकारी फैलने लगी। जिन इलाकों में करबन्दी हुई थी, वहाँ समूचे गाँवों को घेर कर पीटना, लूटना, जलाना, अश्लील अत्याचार, किसानों से वसूली न होने पर जिस किसी राही से उसका माल छीन लेना और उससे कहना कि अमुक किसान से वसूल कर लो—इन तरीकों से शासन चलाया गया। बारडोली और बोरसद के ८४ हजार किसान पड़ोस के बड़ोदा राज्य के इलाकों में प्रवास कर गये। बोरसद में ३०, वर्गफीट का एक पिंजरा १८ कैदियों के लिए हवालात का काम देता—दिनरात में केवल एक बार वह खोला जाता था। बारडोली में गिरफ़्तार किसानों को नपुंसक बनाने का डर दिखाया जाता था। प्रश्न होता है कि भारतीय पुलिस और फ़ौज विदेशी के इशारे पर ऐसे घृणित कार्य क्यों करती रहीं? सच कहें तो साधारण पुलिस और फौज के दिल में काफ़ी सहानुभूति थी, पर उन्हें कोई रास्ता न सूझता था। राष्ट्र के नेता इतनी दूर तक जाने को तैयार न थे कि पुलिस और फौज को नौकरी छोड़ देने को कहते, और यदि उनका अधिकांश नौकरी छोड़ देता तो उससे उत्पन्न परिस्थिति की जिम्मेदारियाँ उठा लेते।

अधिनायकों का सिलसिला जारी रहा। बंगाल और पंजाब में हिंसा प्रतिहिंसा भी जारी रही। ७ अक्तूबर को लाहौर वाले मामले में भगतसिंह और उसके दो साथियों को फाँसी की सजा सुनायी गयी। उसी मास सब काँग्रेस

सभाएँ गैर-कानूनी करार दी गयीं, और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त करने का आर्डिनान्स निकला। "काला दमन" जारी रहा। साल के अन्त में ७० हज़ार स्त्री-पुरुष जेलों में थे।

इ. गान्धी-अर्विन समझौता—इस बीच भारत-सरकार ने भारत से ७३ आदमियों को भारत के विभिन्न प्रान्तों और रियासतों का प्रतिनिधि कह कर लन्दन भेजा, और वहाँ पार्लियामेन्ट के १३ सदस्य इन लोगों से शासन-सुधारों के विषय में खुली बातचीत का दिखावा करने को १३ नवम्बर से शाही महल में बैठने लगे। युरोप में बराबरी की हैसियत से खुली बातचीत मेज के चौगिर्द गोल दायरे में बैठ कर की जाती है, इसलिए यह गोलमेज-सम्मिलनी कहलायी।

१९-१-३१ को पहली गोलमेज सम्मिलनी को विसर्जित करते हुए ब्रिटेन के प्रधान मन्त्री ने नये शासन-विधान की रूपरेखा यों प्रकाशित की—'भारत का केन्द्रीय शासन संघीय व्यवस्था-सभा के प्रति, जिसमें प्रान्तों और रियासतों के प्रतिनिधि होंगे, अंशतः जिम्मेदार होगा; अंशतः इसलिए कि सामरिक, वैदेशिक और अर्थनीतिक साख के मामलों में संघ-सभा का नियन्त्रण न चलेगा; और प्रान्तों को भीतरी मामलों में पूरी स्वतन्त्रता दी जायगी।'

इसके ६ दिन बाद काँग्रेस कार्य-समिति के सब सदस्य बिना शर्त छोड़ दिये गये। ये लोग पहले प्रयाग में फिर दिल्ली में, इकट्ठे हुए। महात्मा गान्धी और लार्ड अर्विन की बातचीत चली और ५ मार्च को दोनों ने एक समझौते पर हस्ताक्षर कर दिये। इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने संघ के ध्येय को माना और गोलमेज सम्मिलनी में अपना प्रतिनिधि भेजना स्वीकार किया, पर इस शर्त के साथ कि संघ-व्यवस्था-सभा पर यदि कोई प्रतिबन्ध होंगे तो "भारत के हित के लिए" ही होंगे। सत्याग्रह और ब्रिटिश माल बहिष्कार बन्द किया गया, पर विदेशी कपड़े और शराब पर धरना जारी रक्खा गया। सत्याग्रह-विरोधी फ़रमान, मुकदमे और सजाएँ रद्द की गयीं, सिवाय उन पुलिस और फ़ौजियों की सजाओं के जिन्होंने हुक्म न माना था। ज़ब्त सम्पत्ति लौटाने का वचन दिया गया।

मार्च के अन्त में कराची में राष्ट्रीय कांग्रेस जुटी। उससे ठीक पहले २३ मार्च को भगतसिंह और उसके साथियों को फाँसी लगी। "यह कहना अत्युक्ति नहीं है कि उस समय भगतसिंह का नाम भारत में उतना ही प्रसिद्ध और प्रिय था जितना गान्धी का।" २३ मार्च को देश भर में हड़तालें हुईं। उस प्रसंग में

कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हो गया। दंगे को शान्त करने की कोशिश करते हुए गणेशशंकर विद्यार्थी मारे गये। कराची कांग्रेस ने गान्धी-अर्विन समझौता स्वीकृत किया, गान्धीजी को गोलमेज़-सम्मिलनी के लिए अपना प्रतिनिधि चुना, और भारत के कर्ज की निष्पक्ष जाँच की माँग की। उसने जनता के मूल अधिकारों के विषय में भी अपना मन्तव्य प्रकाशित किया।

क्रान्तिकारियों से समझौता न होने के कारण बँगाल में त्रास के कार्य जारी रहे।

१७ एप्रिल को लार्ड अर्विन ने लार्ड विलिंग्डन को शासनभार सौंप कर विदा ली। इसके बाद समझौते की शर्तें टूटने लगीं। गान्धीजी ने मामला सालिस-सिपुर्द करना चाहा, विलिंग्डन ने यह नहीं माना। इसपर गान्धीजी ने गोलमेज-सम्मिलनी में जाने से इनकार कर दिया। २७ अगस्त को वाइसराय ने बारडोली की बकाया मालगुजारी की जाँच कराना स्वीकार किया, तब गान्धीजी लन्दन को रवाना हुए।

गणेशशंकर विद्यार्थी

पीछे, देश की स्थिति बिगड़ती गयी। बंगाल में संघर्ष जारी ही था। १३ दिसम्बर को दो बंगाली लड़कियों ने त्रिपुरा के जिला हाकिम को मार डाला। अवध में मन्दी के कारण किसानों को लगान दूभर हो रहा था। काँग्रेस ने उन्हें कुछ राहत दिलानी चाही। इसपर १४ दिसम्बर को एक आडिनान्स निकाला गया और पुरुषोत्तमदास टंडन, जवाहरलाल नेहरू और तसद्दुक अहमद शेरवानी गिरफ़्तार किये गये। २४ दिसम्बर को सीमाप्रान्त में तीन आर्डिनान्सों की घोषणा करके अब्दुल ग़फ़्फ़ारखाँ और उनके भाई को कैद किया गया, और २६ को कोहाट में जनता पर गोलियाँ चलायी गयीं।

दिसम्बर १९३० ई० से दक्खिनी बरमा में भी सशस्त्र विद्रोह शुरू हुआ था। एप्रिल से जून तक वह जोरों पर रहा। जुलाई में भारत से फ़ौज भेजी गयी। साल के अन्त तक धीरे-धीरे विद्रोह दब गया।

इस बीच लन्दन की सम्मिलनी में हिन्दू, मुस्लिम, अछूत आदि दलों के “प्रतिनिधि” बनने वाले ‘स्वराज्य’ के लाभों के बँटवारे के विषय में दुनिया के सामने अनथक किचकिच करते रहे। अन्त में ब्रिटिश प्रधान मन्त्री राम्से मैकडानल्ड ने बन्दर-बाँट की प्रसिद्ध नीति के अनुसार अपने को सालिस रूप में पेश किया। गान्धीजी ने उस कार्रवाई को ‘लाश चीरना’ कहा। हिन्दुओं और अछूतों के बीच एक स्थायी पचर ठोक देने की मैकडानल्ड की कोशिश को देखते हुए उन्होंने कहा “सिक्ख सदा सिक्ख रह सकते हैं वैसे ही मुस्लिम और ईसाई भी। पर क्या अछूत सदा अछूत बने रहेंगे? अछूतपन जिन्दा रहे, इससे तो मैं हिन्दुत्व का मर जाना पसन्द करूँगा। यदि मुझ अकेले को भी इसका मुकाबला करना पड़ा तो जान तक दे कर करूँगा।”

२८ दिसम्बर को गान्धीजी वापिस बम्बई पहुँचे।

उ. दूसरी मुहिम—समझौता टूट चुका था। काँग्रेस कार्य-समिति ने फिर से नमक-सत्याग्रह तथा विदेशी कपड़े, शराब और ब्रिटिश माल का बहिष्कार चलाना तय किया। लार्ड विलिंग्डन ने नये साल की भेंट रूप में चार नये फ़रमान निकाल कर सब काँग्रेस संस्थाएँ गैरकानूनी करार दीं, और गान्धीजी और वल्लभभाई पटेल को यरवदा रवाना कराया। नये फ़रमानों ने जिला हाकिमों को जनता के जान-माल पर सोलहों आना अधिकार दे दिया। आन्दोलन और दमन पुराने मार्ग पर चलने लगे। आन्दोलन का संचालन गुप्त रूप से होने लगा।

इस बीच १७ अगस्त को राम्से मैकडानल्ड का “साम्प्रदायिक निर्णय” प्रकाशित हुआ। उसमें अछूतों के लिए भी पृथक् निर्वाचन की योजना थी। गान्धीजी ने लन्दन में की हुई प्रतिज्ञा के अनुसार सूचना दी कि इसे बदला न जायगा तो वे २० सितम्बर से आमरण उपवास करेंगे। तब पूना में हिन्दू नेताओं का सम्मेलन सरकार ने होने दिया। उसमें एक एकमत योजना तैयार हो गयी। आगामी दस बरस के लिए व्यवस्था-सभाओं में “हरिजनों” (अछूतों) को रक्षित स्थान दिये गये, और यह तय हुआ कि प्रत्येक स्थान के लिए हरिजनों के चुने हुए चार उम्मीदवारों में से एक साधारण निर्वाचन-मंडल द्वारा चुना जाय। सरकार ने इस योजना को मान लिया। गान्धीजी की प्रेरणा से एक हरिजन-सेवक संघ स्थापित हुआ, और गान्धीजी को जेल के भीतर से उसका कार्य चलाने की सुविधा दी गयी।

इस समय तक सत्याग्रह आन्दोलन बहुत कुछ कुचला जा चुका था, पर बंगाल में त्रास-कार्य बाढ़ पर थे। सितम्बर में वाइसराय और जंगी लाट ने बरेली, मेरठ, रुड़की और देहरादून की छावनियों को उठा कर बंगाल भेज दिया, और फ़ौज द्वारा बंगाली त्रास-दलों को दबाने की कोशिश शुरू की। साल के अन्त में सब फ़रमानों को स्थायी कानून का रूप दिया गया।

८ मई १९३३ ई० को गान्धीजी ने आत्मशुद्धि के लिए फिर २१ दिन का उपवास शुरू किया। इसपर उन्हें छोड़ दिया गया। उनके कहने से सत्याग्रह तीन मास के लिए स्थगित किया गया। उस बीच गान्धीजी ने वाइसराय से समझौते की बात करनी चाही। लार्ड विलिंग्डन के इनकार करने पर काँग्रेस-नेताओं ने तय किया कि सामूहिक-सत्याग्रह बन्द कर व्यक्तिगत सत्याग्रह जारी रक्खा जाय। अगस्त के शुरू में गान्धीजी फिर गिरफ़्तार हुए और उन्हें एक साल की कैद दी गयी। उन्होंने फिर अनशन किया और २३ अगस्त को उन्हें फिर छोड़ दिया गया। उन्होंने कहा, वे साल भर अपने को कैदी मानेंगे और तब तक केवल हरिजन-सेवा करेंगे।

व्यक्तिगत सत्याग्रह भी कुछ देर बाद ठंडा पड़ गया। ७ एप्रिल १९३४ ई० को गान्धीजी ने देश को सलाह दी कि स्वराज्य के लिए युद्ध रूप में सत्याग्रह बन्द किया जाय, विशेष शिकायतों को दूर करने के लिए भले ही जारी रहे। १८-१९ मई को पटना में काँग्रेस की महासमिति ने सत्याग्रह बन्द कर दिया और व्यवस्था-सभाओं के चुनाव में लड़ना तय किया। सरकार ने इसके बाद सीमाप्रान्त और बंगाल के सिवाय दूसरे प्रान्तों की कांग्रेस-संस्थाओं पर से रोक हटा ली, और कैदियों को धीरे-धीरे छोड़ना शुरू किया।

२६-२७-२८ अक्टूबर १९३४ ई० को बम्बई में कांग्रेस का अधिवेशन हुआ। कांग्रेस के सभापतियों को अब देश राष्ट्रपति कहता है। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद ने अपने भाषण में कहा, "हम एक बार विफल हों, दो बार विफल हों, पर एक दिन ज़रूर सफल होंगे।"

§१९. भारतीय संघ के विभिन्न आदर्शों का संघर्ष (१९३५ ई०)—५ जून सन् १९३५ को भारत-शासन का नया विधान ब्रिटिश पार्लियामेन्ट से स्वीकृत हुआ। इस विधान के अनुसार कहने को भारतवर्ष के विभिन्न प्रान्त और रियासतें अपने भीतरी मामलों में स्वतन्त्र हैं, और उन्हीं का संघ भारत-सरकार

होगी। भारतवर्ष की एक संघ-प्रजातन्त्र रूप में कल्पना पहले-पहल सन् १९२३-२४ ई० में हिन्दुस्तान प्रजातन्त्र मंडल वालों ने की थी*। किन्तु उस संघ की इकाइयाँ भारत के परम्परागत जनपद (भाषा-प्रदेश) होते। महात्मा गान्धी ने जब सन् १९२० ई० में काँग्रेस का विधान बनाया, तब से वे बराबर कह रहे हैं कि देश का भाषा-प्रदेशों में विभाजन स्वराज पाने का एक प्रमुख उपाय है। वास्तव में भारतवर्ष उन जनपदों का संघ है ही†। उन जनपदों को व्यक्त करने के लिए आधुनिक प्रान्तों और रियासतों का 'समथर' किया जाना तथा सारे भारत की प्रजा के समान मौलिक अधिकार निश्चित होना ज़रूरी है। नये भारत शासन-विधान में संघ की व्यवस्था-सभा में विद्यमान प्रान्तों की प्रजा के तथा रियासतों के राजाओं के प्रतिनिधि होंगे। उस व्यवस्था-सभा का भी शासन पर पूरा नियन्त्रण न होगा—समर-नीति और विदेशी नीति का चलाना तथा भारत की 'अर्थनीतिक साख' बनाये रखना गवर्नर-जनरल के संरक्षित कार्य होंगे। भारत की अर्थनीतिक साख कायम रक्खी जायगी लन्दन के उन महाजनों के हित में जिनके हाथों में भारत गिरवी है। उनकी दृष्टि में वह साख तभी तक कायम रहेगी, जब तक भारत अपना सालाना खिराज देता चलेगा।

संघ के प्रान्त कहने को स्व-शासित हैं, पर उनमें भी गवर्नरों के विशेष अधिकार हैं, तथा मुख्य भृत्य-वर्गों की नियुक्ति तथा उस नियुक्ति की शर्तें निश्चित करना ब्रिटिश भारतमन्त्री के हाथ में है, और उनकी तनखाहें संरक्षित कर दी गयी हैं। १९१९ ई० के सुधारों में ७० लाख आदमियों को मत देने का अधिकार था; अब वह ३६० लाख को दिया गया है। सम्प्रदायों के अनुसार पृथक् निर्वाचन जारी है, और आसाम और बंगाल में गोरे व्यापारियों को उनकी संख्या से बहुत अधिक स्थान दिये गये हैं। छोटे सम्प्रदायों का संरक्षक अँगरेज़ गवर्नरों को बनाया गया है। संघ अथवा प्रान्तों की व्यवस्था-सभाएँ ब्रिटिश व्यापारियों को नुकसान पहुँचाने वाला कोई काम करें तो उसे रद्द करने के विशेष अधिकार गवर्नरों और गवर्नर-जनरल को दिये गये हैं।

---

*ऊपर, पृष्ठ ५७१।

†ऊपर प्रकरण १, अध्याय १ में हमने भारत को उन जनपदों के समूह रूप में ही देखा है। पृष्ठ ४ के नक्शे पर वे अंकित हैं। समूचे इतिहास में हमने उनपर ध्यान रक्खा है, क्योंकि ऐसा किये बिना भारतीय इतिहास स्पष्ट न होता।

एप्रिल सन् १९३६ में प्रस्तावित सुधारों के अनुसार सिन्ध और उड़ीसा पृथक् प्रान्त बनाये गये, तथा लार्ड विलिंग्डन से लार्ड लिनलिथगो ने शासन-भार लिया। सन् १९३७ के शुरू में नये विधान की प्रान्तीय व्यवस्था-सभाओं के चुनाव हुए। युक्तप्रान्त, बिहार, मध्यप्रान्त, उड़ीसा, मद्रास और बम्बई में कांग्रेस का जोरदार बहुमत आया। सीमाप्रान्त और आसाम में ३८ और ३५ प्रतिशत स्थान कांग्रेस को मिले। बंगाल, पंजाब और सिन्ध में जनता प्रायः मुस्लिम है और जमीन्दार या महाजन प्रायः हिन्दू हैं। किसानों का जमीन्दारों महाजनों से संघर्ष मुस्लिम-हिन्दू संघर्ष बन जाता है, जिससे राष्ट्रीय दृष्टि दब जाती है। इन प्रान्तों में कांग्रेस का बहुमत नहीं हुआ।

प्रान्तीय स्वशासन की योजना के अनुसार यह प्रश्न आया कि कांग्रेस मन्त्रिपद ग्रहण करे या न करे। १ एप्रिल से बरमा भारत से अलग किया गया, और प्रान्तों में नये मन्त्रिमंडल बने। कांग्रेस ने पद लेने से पहले यह वचन लेने पर आग्रह किया कि जब तक कांग्रेस की कार्रवाई विधान के प्रतिकूल न होगी, तब तक गवर्नर अपने विशेष अधिकार न बरतेंगे। अन्त में ब्रिटिश अधिकारियों ने ऐसे वचन दिये और जुलाई में ६ प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमंडल स्थापित हुए। कांग्रेस ने अपने सब मन्त्रि-मंडलों के नियन्त्रण और पथ-प्रदर्शन के लिए सर्वश्री वल्लभभाई पटेल, राजेन्द्र प्रसाद और अबुलकलाम आज़ाद की एक नियामक समिति बना दी। पीछे सीमाप्रान्त में भी कांग्रेसी बहुमत हो गया और ३ सितम्बर को वहाँ भी कांग्रेसी मन्त्रि मंडल बना।

क्रान्तिकारी कैदियों को छोड़ने के प्रश्न पर बिहार और युक्तप्रान्त के मन्त्रियों और गवर्नरों में मतभेद हो गया। इसपर फ़रवरी १९३८ ई० में इन प्रान्तों के मन्त्रि-मंडलों ने इस्तीफ़े दे दिये। झगड़ा बढ़ने से पहले गवर्नरों ने ज़िद छोड़ दी और दस दिन में इस्तीफ़े लौटाये गये। जुलाई में मध्यप्रान्त के मन्त्रिमंडल में कुछ आपसी झगड़ा हुआ। उस प्रसंग में प्रधान-मन्त्री खरे ने गवर्नर से कह कर अपने दो साथियों को बरखास्त करा दिया। खरे का आपसी झगड़े में काँग्रेस के पास न जा कर गवर्नर की शरण लेना वैसा ही था, जैसा बाजीराव दूसरे का पूना छोड़ कर बसई भागना। नियामक समिति ने खरे को त्यागपत्र देने और गवर्नर को बरखास्त किये मन्त्री को प्रधान-मन्त्री बनाने को बाधित किया। सितम्बर में आसाम में कांग्रेस का सम्मिलित मन्त्रिमंडल बन गया। सिन्ध

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

में भी इस बीच कांग्रेसी नीति का बहुतकुछ अनुसरण करने वाला मन्त्रिमंडल बन चुका था।

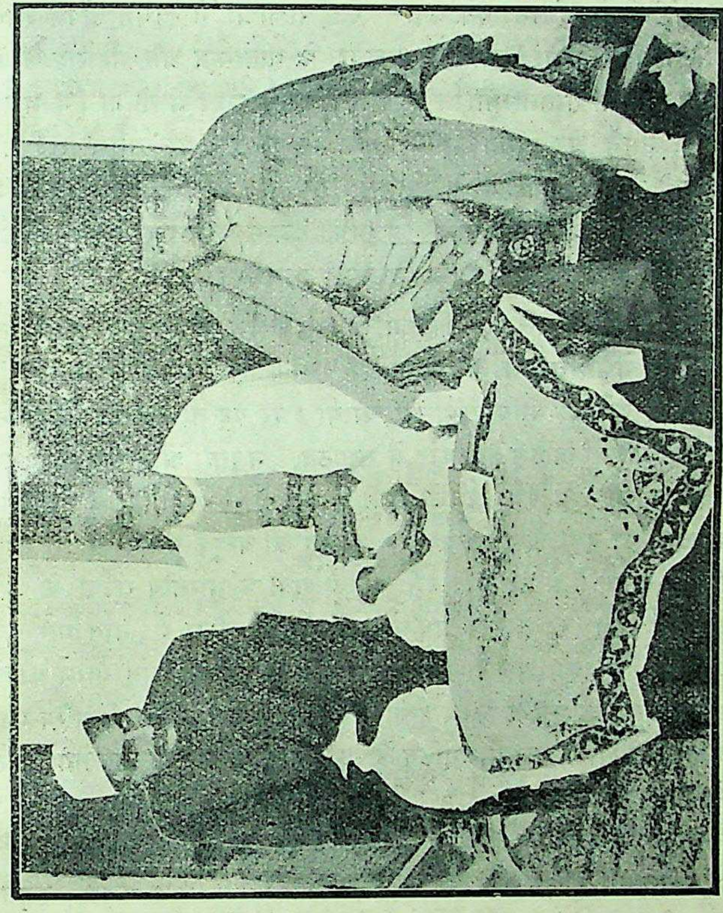

नियामक समिति, स्वराजभवन प्रयाग में परामर्श करते हुए

इस बीच रियासती प्रजा में भी जागृति हुई। सन् १६३८ में अनेक रियासतों में प्रजामंडल स्थापित हुए; मैसूर और त्रावंकोर में उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए जोरदार संघर्ष चला; उड़ीसा, राजपूताना, पंजाब और काठियावाड़ की रियासती प्रजा ने मौलिक अधिकारों के लिए लड़ाई छेड़ी। सन् १६३६ में राजकोट, जयपुर और उड़ीसा की रियासतों की लड़ाइयों ने उग्र रूप धारण किया

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

और हैदराबाद में जनता के मूल धार्मिक अधिकारों के लिए आर्यसमाज ने सत्याग्रह छेड़ा। कश्मीर राज्य की ९१ फ़ी सदी जनता मुसलमान है। सन् १९३१ में वहाँ जनता का आन्दोलन मुस्लिम आन्दोलन के रूप में शुरू हुआ था। १९३९ ई० में वह शुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन बन गया। कुछ राजाओं ने स्वयम् अपने शासनों में प्रजा का सहयोग लिया। इनमें से मालवा के सीतामऊ और महाराष्ट्र के औंध राज्य में पूरा उत्तरदायी शासन स्थापित हो गया है, और औंध में तो प्राचीन भारतीय राज्यसंस्था के नमूने पर ग्रामों में प्रजातन्त्रों की बुनियाद पर समूची राज्यसंस्था खड़ी की जा रही है। हैदराबाद में आर्यसमाज का सत्याग्रह सफलतापूर्वक समाप्त हो चुका है। उड़ीसा की रियासतों से प्रजा को हज़ारों की संख्या में प्रवास करना पड़ा। रियासतों के भीतर की यह कशमकश अभी जारी है।

कांग्रेस ने अपने शासन में किसानों को राहत देने की, नशाबन्दी की तथा प्राथमिक शिक्षा में दस्तकारी को स्थान देने की कोशिशें की हैं। इन कार्यों पर ऐतिहासिक निर्णय देने का समय अभी नहीं आया। पर यह तो प्रकट है कि प्रान्तिक 'स्वशासन' के भीतर ब्रिटिश सरकार से संगठित, नियुक्त और संचालित पुराने भृत्य-वर्ग का ढाँचा बना है। उनकी भारी तनख्वाहों, पेन्शनों के लिए प्रान्तों की परिमित आमदनी का बड़ा अंश गिरवी है। पुलिस की बन्दूकें-संगीनें ब्रिटिश सरकार के कारखानों में बनती हैं। यह भृत्य-वर्ग पिछली शती के भारतीय राज्यों के भीतर ब्रिटिश आश्रित सेना की तरह से प्रान्तिक शासनों का भीतर से नास मार सकता है। ब्रिटिश सरकार की उसके द्वारा प्रान्तिक स्वशासनों का नास मारने की चेष्टा का कम या ज़्यादा होना इसपर निर्भर होगा कि उसके मुकाबिले में मन्त्रि-मंडलों के पीछे जनता की शक्ति कितनी संगठित है और उस शक्ति का उपयोग कितनी बुद्धिमत्ता से किया जाता है।

इससे यह भी प्रकट है कि काँग्रेसी मन्त्री अपने शासन में इस भृत्य-वर्ग की शक्तियों का, खास कर पुलिस और फ़ौज का, जितना कम प्रयोग करते, उतने ही शक्तिशाली बनते जाते। लेकिन मज़हबी फ़िसादों के कारण काँग्रेसी मन्त्रियों को गोरी फ़ौज तक बुलानी पड़ी और उस फ़ौज से जनता पर गोलियाँ तक चलवानी पड़ी हैं। राष्ट्रीय नेताओं ने सोचा कि जनता का ध्यान उसके आर्थिक हिताहित पर केन्द्रित किया जाय, तब वह मज़हबी जोश उभाड़ने वालों की असलियत पहचान लेगी। इस कार्यक्रम में आंशिक सफलता ही हुई है, एक तो इस कारण कि अभी

तक इस दिशा में पूरी चेष्टा नहीं हुई, और दूसरे इस कारण कि मुस्लिम जनता को अपने आर्थिक हिताहित को देखने में तो समय लगेगा, पर वह अपने प्रति हिन्दुओं द्वारा होने वाले सामाजिक अन्याय को हरदम देखती और अनुभव करती है। हिन्दुओं की सामाजिक संकीर्णता, छूतछात और मनुष्य से मनुष्योचित बरताव न करना, प्रजातन्त्र के बुनियादी सिद्धान्तों के खिलाफ़ हैं। जब तक हिन्दुओं की वह संकीर्णता रहेगी, तब तक मुस्लिम जनता को उभाड़ने वालों का कार्य सुगम होगा।

मज़हबी झगड़ों के अलावा किसान और मजदूर क्रान्तिकारी आन्दोलनों को काबू में रखने के लिए भी कांग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने ब्रिटिश सरकार के दमन-यन्त्र से काम लिया है, या उन्हें लेना पड़ा है। यह किस अंश तक गान्धीजी के अनुयायियों के अधिकार-मद के कारण हुआ और किस अंश तक उग्रपन्थियों की गैरजिम्मेदारी के कारण, इस दोष का बँटवारा करने का समय अभी नहीं आया है।

सन् १९१९ में बिल्कुल कुचला गया जर्मन राष्ट्र इधर फिर शक्तिशाली हो उठा है, और गत ४ सितम्बर से ब्रिटेन और फ्रान्स का उससे फिर युद्ध ठन गया है। ब्रिटिश सरकार ने युद्ध शुरू होने से पहले ही एक तरफ़ मिस्र और इराक़ में और दूसरी तरफ़ सिंगापुर में अपने साम्राज्य के बचाव के लिए भारतीय सेना को भेज दिया, और फिर भारत और जर्मनी के बीच भी युद्ध घोषित कर दिया। इन घटनाओं के प्रतिवाद में काँग्रेसी मन्त्रि-मंडलों ने पदत्याग कर दिया और गवर्नरों ने प्रान्तों का शासन अपने हाथों में ले लिया है। भविष्य संकटपूर्ण जान पड़ता है।

§ १७. **सिंहावलोकन**—हमने देखा है कि मध्य काल में भारतीय राष्ट्र को एक मोह निद्रा-सी आ घेरती है और जिन भारतीय राजनेताओं को सोलहवीं सत्रहवीं शतियों में युरोपियन नाविकों और जलडकैतों का तथा अठारहवीं-उन्नीसवीं शतियों में युरोपियन योद्धाओं और राजनेताओं का सामना करना पड़ा, वे बहुत कुछ अपनी परिस्थिति को न समझ सकने के कारण—उस मोह निद्रा में पड़े रहने के कारण—ही हारते रहे। उसी मोह निद्रा के कारण भारतीय जनता अपनी सामूहिक शक्ति को न पहचानती रही, और मुट्ठी भर विदेशियों से पद-दलित होती रही। क्या आज हम उस नींद से जाग उठे हैं?

CC-0. Agamnigam Digital Preservation Foundation, Chandigarh

इसमें सन्देह नहीं कि पिछले ४० बरस की घटनाओं पर जब हम विचार करते हैं, तो हमें अपना राष्ट्र बराबर उन्नति-दिशा में चलता—एक नव जागरण की घाटी में से गुजरता, या एक नये जन्म की वेदनाएँ अनुभव करता—जान पड़ता है। भारतीय जनता अब अपने सामूहिक हित को थोड़ा-बहुत सोचने-समझने और अपनी सामूहिक इच्छा को व्यक्त करने लगी है। वह स्वतन्त्रता चाहती है, यह पिछले बीस बरस की घटनाओं से प्रकट है। किन्तु क्या वह स्वतन्त्रता पा भी सकती है ?

सामूहिक इच्छा का सामूहिक शक्ति के रूप में परिणत होना जनता के जागृत और संगठित होने की मात्रा पर निर्भर है। इसमें सन्देह नहीं कि पिछले ४० बरसों में हमारे राष्ट्र की साहित्य, विज्ञान, कला और शिल्प-सम्बन्धी जागृति बराबर बढ़ रही है। भौतिक और सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में तथा साहित्य, कला और शिल्प के क्षेत्र में अनेक ऊँची कृतियाँ इस अरसे में पैदा हुई हैं। पर हमारी जनता के भीतर उनकी ज्योति किस हद तक पहुँची है ?

जनता तक ज्ञान की जागृति उसी अंश तक पहुँचेगी जिस अंश तक वह ज्ञान जनता की भाषा में होगा। यदि हमारे राष्ट्र के कुछ लोगों ने ऊँचा ज्ञान पा लिया है, पर उसे वे अँगरेज़ी में ही कहते-लिखते हैं, तो उसका स्थायी लाभ अँगरेजी-भाषी राष्ट्रों की सन्तान को ही होगा। हमारी राष्ट्रीय जागृति का यह एक अच्छा पैमाना है कि पिछले सवा दो बरस के कांग्रेसी शासन में भी न केवल सरकारी काम-काज का प्रत्युत हमारे युवक-युवतियों की शिक्षा का भी वाहन अँगरेजी ही बनी रही !

यह अवस्था कुछ निराशाजनक है, तो भी इसमें सन्देह नहीं कि आज हम पहले की अपेक्षा कुछ जागृत हैं और हमारे बीच ऐसे लोगों की संख्या बराबर बढ़ रही है जो जागृत आँखों से अपने चौगिर्द के भौतिक और सामाजिक जगत् को देखने समझने और उसके विषय में स्वतन्त्र चिन्तन करने लगे हैं। अपने राष्ट्र की अतीत और विद्यमान परिस्थिति को समझने का वैसा ही एक विनम्र प्रयत्न यह "इतिहास-प्रवेश" भी है।
